Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

100370

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्
आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति
भूतपूर्व कुलपति, गुरुकुल काँगड़ी
विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त
ग्रंथ संग्रह

अथर्ववेदभाष्यम्

प्रथमो भागः (१-४)

DONATION
100373

आर्यभाषायामनुवादः भावार्थादिसहितम्

संस्कृते व्याकरणनिरुक्तादिप्रमाणसमन्वितम्

पुस्तकालय

श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिमधैरवीरावीरप्रतापि
श्री सयाजीराव गायकवाड़ाधिष्ठितबड़ौदेपुरी-
गतश्रावणमासदक्षिणापरीक्षायाम् ऋग्वेद-
सामाथर्ववेदभाष्येषु लब्धदक्षिणेन

श्री पण्डित क्षेमकरणदासत्रिवेदिना

विरचितम्

पदवाक्यप्रमाणज्ञानां वैयाकरणप्रवराणां **पं० ब्रह्मदत्तजिज्ञासु-**
महोदयानाम् अन्तेवासिन्या **डा० प्रज्ञादेवी**
व्याकरणाचार्यया (Ph. D.)
सम्पादितम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन]

ग्रन्थप्राप्तिस्थानम्—

डा० कु० प्रज्ञादेवी आचार्या पाणिनि कन्या
महाविद्यालय, वाराणसी।

द्वितीयं संस्करणम्, १०००

मूल्यम् २६.००

प्रकाशक:—डा० इन्द्रदयाल सेठ, पी० एच० डी०
अथर्ववेद भाष्य कार्यालय
३४ लूकरगञ्ज, इलाहाबाद

मुद्रक :—तारा प्रिंटिङ्ग वर्क्स (द्वितीय तृतीय काण्डान्त)
विष्णु मुद्रणालय (प्रथम चतुर्थ काण्ड)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेद तथा गोपथ ब्राह्मण आदि के भाष्यकार

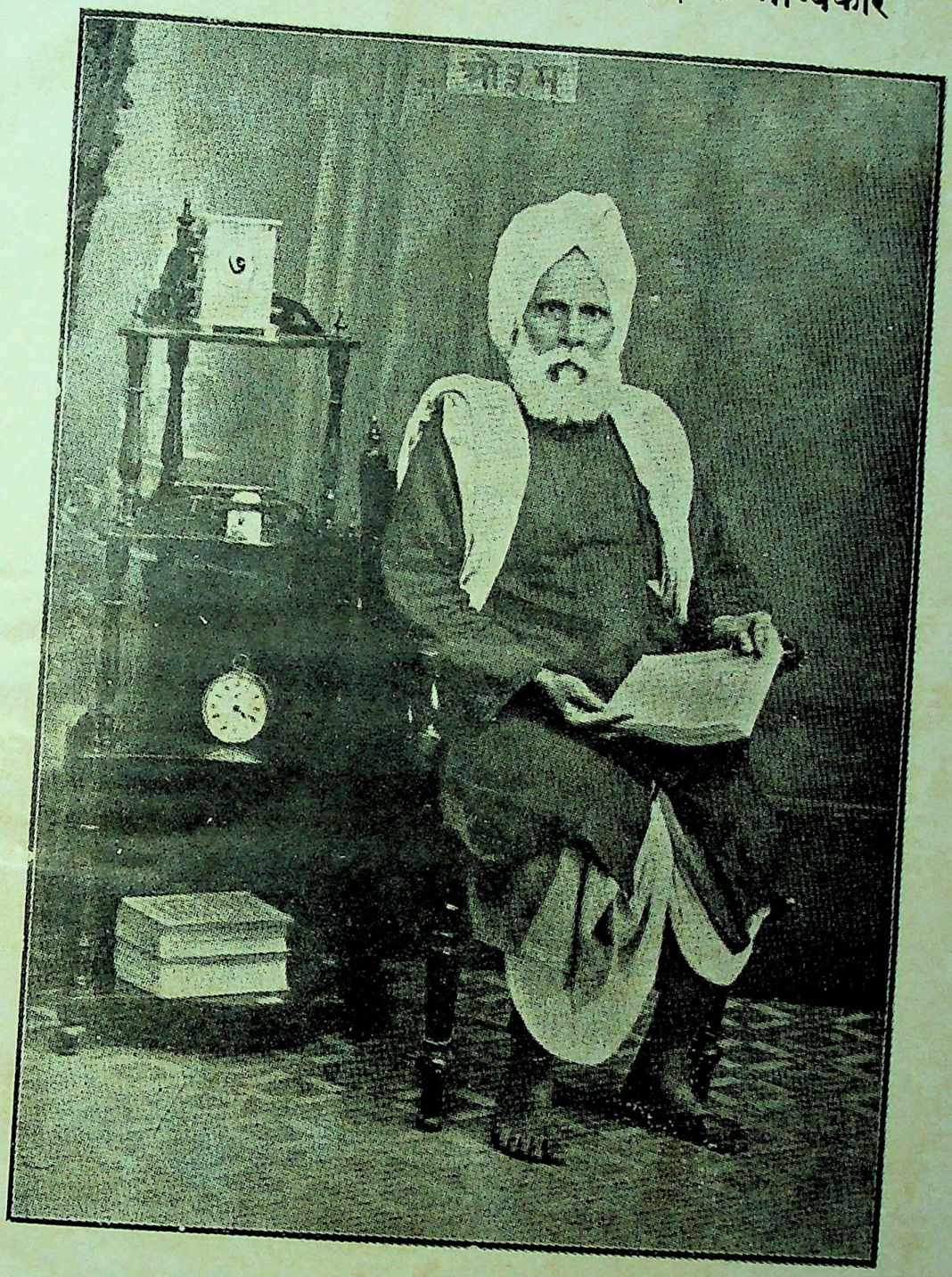

स्व० पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी

जन्म : ३ नवम्बर १८४८ ई०

निधन : १३ फरवरी १९३९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

भाष्यकार की स्वलिखित संक्षिप्त आत्मजीवनी

(१) जन्म और वंशावली

१–मैं (पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, कायस्थ सकसेने शमसाबादी सेठ) तिथि कार्तिक शुक्ला सप्तमी संवत् १९०५ विक्रमीय (३ नवंबर १८४८ ई०) को ग्राम शाहपुर-मंडराक, परगना कोल जिला अलीगढ़ में उत्पन्न हुआ था। मेरे पिता लाला फुन्दनलाल जी, दादे लाला अमरसिंह जी, परदादे लाला मोतीलाल जी, नगरदादे लाला सदाराम जी और महानगर दादे वा सगर दादे लाला किशोरलाल जी थे ॥

२–मेरे दादे लाला अमरसिंह जी फ़ारसी पढ़े थे, वे शाहपुर के पटवारी थे, और मेरे पिता लाला फुन्दनलाल जी हिन्दी जानते थे और वहां पर खेती करते थे। गाँव और आन गाँव वाले इस घराने को बड़ा मानते थे और उनसे सम्मति लेकर काम करते थे। लाला अमरसिंह जी के पीछे मेरे बड़े भाई लाला गोपालराय जी, और उनके पीछे उनके पुत्र लाला झुन्नीलाल जी पटवारी हुये। वे पटवारगरी छोड़कर अलीगढ़ जा रहे और नौकरी आदि से निर्वाह करके अपने पुत्र कान्ताप्रसाद को बी० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण कराया। वह खेती हमारे घराने में मेरे और मेरे भाई भतीजे आदि के नाम से अभी चली आती है ॥

३–हम अपने माता पिता से अठारह भाई बहिन जन्मे थे। उनमें से चार भाई (लाला गोपालराय, मैं, लाला लेखराज, और लाला दीपचन्द) और चार बहिनों के विवाह हुये। लाला लेखराज और लाला दीपचन्द बिना सन्तान स्वर्गवास कर गये। लाला गोपालराय के पुत्र लाला झुन्नीलाल और रघुवरदयाल थे। लाला झुन्नीलाल का स्वर्गवास हो गया, उनके पुत्र लाला कान्ताप्रसाद बी० ए० हैं। लाला रघुवरदयाल अलीगढ़ रहते हैं। मेरे आठ सन्तान हुये जिनमें से तीन पुत्रियों और एक पुत्र का विवाह हुआ। पुत्र का नाम लाला विष्णुदयाल है और उनके दो पुत्र लाला शंकरदयाल सेठ बी० एससी० और इन्द्रदयाल सेठ हैं ॥

(२) बालकपन और पढ़ाई

४–मैं दो तीन वर्ष का था, तब मेरे बहुत चेचक निकली, जिसके चिह्न शरीर भर में हैं। हमारे घर पर अलीगढ़ के लाला हरसहाय मेरे बड़े भाई लाला गोपालराय जी और गाँव के कुछ लड़कों को फ़ारसी पढ़ाते थे। जब मैं पांच छह वर्ष का हुआ, मेरा मक्तब (फ़ारसी पढ़ने का आरम्भ) उनसे कराया गया दो तीन वर्ष तक करीमा, खालिक़बारी, आमदनामा आदि पुस्तक मैं पढ़ता रहा ॥

५–संवत् १९१४ विक्रमी (१० मई १८५७ ई०) में मेरठ से विद्रोह (बलवा वा ग़दर) आरम्भ हुआ। देश में बड़ी गड़बड़ मची। ग्राम ग्राम में पुराने-पुराने बैर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाल कर लोग आपस में लूट मार करने लगे, भयानक दृश्य हो गया। हमारे दादे और पिता जी ने देखा कि ग्राम के सब कायस्थों की और हमारी भी अवश्य लूट मार होगी और जीवनाश का बड़ा भय है। उन्होंने घर का सब गहना पाता, और काग़ज़ों के बस्ते ग्राम के एक प्रतिष्ठित पुरुष ठाकुर जयरामसिंह को सौंप दिये। मैं और दादे जी पैदल दोपहर पीछे अलीगढ़ को भागे, मार्ग में लुटेरों ने हमारे कपड़े लत्ते लूट लिये। यही दशा अलीगढ़ आदि को भागे हुये दूसरे कायस्थ लोगों की हुई। अलीगढ़ में बूआ फूफा के घर मेरे भाई गोपालराय जी फ़ारसी पढ़ते थे, मैं उनके पास रहा और दादे जी हरसहाय के घर ठहरे। पिता जी दादी जी को घर छोड़ कर रात में सब स्त्रियों को घासीपुर ग्राम में ले गये। इसी प्रकार सब कायस्थ लोग जहां जिसका मुंह पड़ा, स्त्रियों को ले गये। दूसरे दिन आस पास के और ग्राम के ठाकुर लोगों ने हमारे पड़ोसी लाला मुकुन्दीलाल और लाला छेदी-लाल कायस्थों के घरों को खोद खोद कर बुरी भांति लूटा। मुखिया लोगों ने हमारी दादी जी को छत पर चढ़ा दिया और कहा तुम निश्चिन्त रहो, तुम्हारी लूट नहीं होगी। तीसरे पहर अकेले पिता जी घर का समाचार लेने को घासी-पुर से चले। इधर शाहपुर से कुछ लुटेरे भी उनके खोज में निकले और पिता जी को मार्ग में पकड़ कर शाहपुर लाये और तलवारें नंगी करके चामुण्डा देवी के स्थान पर चढ़ाने ले गये। यह समाचार दादी जी ने सुन पाया और एक गड़ासा लेकर चलीं और चामुण्डा के स्थान पर पिता जी के पास बैठ कर लुटेरों से बोलीं कि पहले तुम मुझसे लड़ लो फिर इसे हाथ लगाओ। इसी अवसर पर ठाकुर जयरामसिंह आदि मुखिया लोग आ गये और लड़ाके लोगों को हटाकर पिताजी को सकुशल दादी जी के साथ घर पहुंचा दिया। हम सब लोग भी अलीगढ़, घासी-पुर आदि बाहिर से घर आ गये, तबसे ग्राम में आपस की ही मार से शान्ति हो गयी, और सब मिलकर बाहर वालों की मार धाड़ से बचने का उपाय करने लगे और बंदूकों, तलवारों, फरसा आदि हथियारों से सजकर पहरा देकर ग्राम की रक्षा में लग गये। मैं भी एक छोटी सी तलवार बांधता था और घर की तलवार आदि हथियारों को तेल आदि मलकर पैना करता था। लोग जब बाहिर वालों की चढ़ाई का समाचार पाते, स्त्रियों और बालकों को किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देते और आप सन्नद्ध होकर ग्राम में रहते थे। दो तीन बार बाहिर वालों ने चढ़ाई की, परन्तु आपस के मेल के कारण कुछ हानि न कर सके। इस प्रकार हमारा ग्राम बाहिरी लूट मार से बचा रहा॥

६—उधर दिल्ली में अंग्रेज़ों और विद्रोहियों (बाग़ियों) से लड़ाई ठन रही थी, इधर अलीगढ़ में हिन्दू और मुसलमानों में लूट मार होने लगी। लोगों ने अपनी स्त्रियों और बच्चों को जहाँ तहाँ भेज दिया। उस समय हमारे घर पर हमारी बूआ, बहिनें, और दूसरे सम्बन्धी, उनकी ननदें, देवरानी, जेठानी आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बच्चे मिल कर चालीस पचास स्त्री पुरुष अलीगढ़ से आकर रहे। जब अंग्रेज़ों ने दिल्ली जीत ली, वहाँ से मेरठ आदि नगरों में होते हुए आगरे होकर हाथरस पहुँचे और वहाँ से अलीगढ़ पर धावा किया मुसलमानों ने अलीगढ़ से निकलकर मानसिंह के बाग़ के पास मैदान में सामना किया। कुछ देर लड़ाई हुई, कुछ अंग्रेज़ और बहुत से मुसलमान मारे गये। अंग्रेज जीत मनाकर उसी दिन हाथरस लौट गये और दूसरे दिन आकर अलीगढ़ पर अधिकार कर लिया। कुछ पकड़ मार के पीछे शान्ति हो गई। तब वे सब स्त्रियां और बालक जो हमारे घर आये थे, अपने २ घर अलीगढ़ चले गये। हम लोग अंग्रेजों की सेना का सड़क पर से आना जाना और उन के हथियारों का चमकना अपने घरों की छत से देखा करते थे॥

७–एक अमीर खां, मुसलमान सिपाही अलीगढ़ का हमारे पिता जी का मित्र था। वह वहां से दो सन्दूक़ कुछ बिसातियों के माल से भरे लाया और अपना माल बताकर और ताले लगाकर हमारे घर धर गया। भेदिये (मुख़बिर) ने अलीगढ़ के साहिब कलक्टर को हमारे घर में लूट के माल होने की सूचना दी। उन्होंने दौड़ लेकर दूसरे दिन सबेरे आप ही जाने का प्रबन्ध किया। यह समाचार पिता जी को मिल गया। उन्होंने रात में दोनों सन्दूक़ तोड़ कर सब माल विश्वासी लोगों के हाथ बहुत दूर अन्धौवे कूओं में फिकवा दिया और सन्दूकों में क़ाग़ज भर दिये। दूसरे दिन सबेरा होते ही तीन चार छकड़े और बीस पच्चीस सवार लेकर साहिब कलक्टर ने ग्राम घेर लिया। पहिले हमारे घर की तलासी ली, लूट खसोट का कुछ माल न मिला। साहिब कलक्टर तो चले गये, उनके साथ वाले सब ग्राम की तलाशी तीसरे पहर तक करते रहे और दो तीन मनुष्यों को पकड़ ले गये, जिनमें से एक को एक वर्ष की क़ैद हुई और शेष सब छूट गये॥

८–राज्य प्रबन्ध ठीक हो जाने और विद्रोह मिट जाने पर सब लोग अपने २ काम में लगे। मुझको मेरे मँझले बहनोई लाला अचलप्रसाद जी वकील अलीगढ़ ले गये और एक मकतब में फ़ारसी पढ़वाने लगे। छह सात महीने पीछे बहनोई जी का और उनसे दो तीन महीने पीछे बहिन का भी स्वर्गवास हो गया और मुझे घर लौट आना पड़ा। मैं कुछ दिनों अपने बड़े भ्राता लाला गोपालराय जी से और कुछ दिनों एक मौलवी साहिब मुहम्मदअली से घर पर फ़ारसी पढ़ता रहा। फिर मुझे बूआ जी ने अलीगढ़ बुला लिया और वहां मकतब में फारसी के बड़े-बड़े पुस्तक पढ़ कर मैं मुनशी हो गया॥

९–अब मेरी आयु १५ वर्ष की थी, मुझे अंग्रेजी पढ़ने की चांट लगी, मैंने पिता जी से चर्चा किया। उन्होंने अपने मित्रों से पूंछा। सब सहमत हो गये परन्तु एक धनाढ्य पुरुष लाला भगवानीप्रसाद जी कहने लगे कि बहुत से बड़े-बड़े लोगों के लड़कों ने अंग्रेजी आरंभ की और थोड़े ही दिनों में छोड़ दी, आप से यह काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हो सकेगा। पिता जी चुप हो गये। मैंने पिता जी से एकान्त में कहा कि आप परमेश्वर का नाम लेकर मुझे आज्ञा दें, परमात्मा बेड़ा पार लगावेगा। पिता जी ने कुछ सोच विचार कर मुझे आज्ञा दे दी। मैं अलीगढ़ जाकर बूआ जी के घर रहकर अंग्रेजी स्कूल में गया। पंडित शोभाराम हेडमास्टर ने मुझे फ़ारसी में प्रवीण देखकर तुरन्त आदर से स्कूल में प्रविष्ट कर लिया। यद्यपि मैं छोटे मास्टरों से पढ़ता था, परंतु पंडित जी मेरी विशेष सुधि रखते थे। जब मैं एन्ट्रेन्स क्लास में पढ़ता था, हेड मौलवी साहिब अपने घर पर मुझे अ़रबी कोर्स (मुल्लमुल्ल अदब आदि) पढ़ाते थे। स्कूल में हिन्दी और संस्कृत नहीं पढ़ाई जाती थी, उन्हीं दिनों में राजा जयकृष्णदास साहिब बहादुर डिपटी कलक्टर के उद्योग से एक पंडित नियत हुये। कोई विद्यार्थी नहीं मिला, मैंने पहिले हिन्दी और संस्कृत आरंभ कर दी। कुछ दिनों में बहुत विद्यार्थी हिन्दी और संस्कृत पढ़ने लगे। अन्त में एन्ट्रेन्स परीक्षा तो मैंने उर्दू के साथ दी, क्योंकि उर्दू ही मेरे लिये उस समय सरल थी। सारांश यह है कि मैंने सन् १८६४ ईस्वी में अंग्रेजी आरंभ की और पारितोषिक और छात्रवृत्ति पाते हुये सन् १८७१ ईस्वी में कलकत्ता यूनिवर्सिटी की एन्ट्रेन्स परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया और आगरे कालिज में जाकर एफ़० ए० पढ़ने लगा॥

(३) जीविका

१०-चार पांच महीने पीछे आगरे कालिज से घर आया। घर की दशा डांवाडोल देख कर अलीगढ़ हाईस्कूल में एक जगह १०) मासिक मई सन् १८७२ ई० में स्वीकार करली। वहां से मेरी बदली ७ मई १८७३ को मुरादाबाद हाई स्कूल को २५) महीने पर हुई। वहां ७ जुलाई १८८४ तक रहा। मुरादाबाद में परिश्रम करके मई १८७७ ई० में रुड़की कालिज की एकौन्टेन्ट परीक्षा मैंने उत्तीर्ण की और सन् १८७८ में छह महीने की छुट्टी आधे वेतन पर लेकर आगरे जाकर अचनेरा मथुरा रेलवे में नौकर हुआ। वहां ठीक जगह न मिलने से फिर मुरादाबाद लौट आया। सन् १८८४ में शाहजहांपुर हाई स्कूल के बदल जाने पर तारीख़ २३ जनवरी १८८५ से २२ सितंबर १८८६ तक २०) महीने की छुट्टी बिना वेतन ली। और इलाहाबाद जाकर एगज़ामिनर आफ़ एकौन्ट, इम्पीरियल स्टेट रेलवे के दफ्तर में थोड़े दिन काम करके एगज़ीक्यूटिव इनजिनियर बिलासपुर-इटावा स्टेट रेलवे के दफ्तर में २४ मार्च १८८५ से २४ मार्च १८८६ तक ४०) मासिक पर रहा। उसके पीछे ९ जनवरी १८८९ तक एक हज़ार रुपये नक़द की ज़मानत देकर एकौन्टैंट और ख़जानची, डिसट्रिक्ट इनजिनियर इन्डियन मिडलेंड के दफ़तर बांदा में ६०) से ७०) तक महीने पर नौकर रहा। वहां से अपनी बीमारी के कारण नौकरी छोड़कर अपने घर शाहपुर खेती और कुछ गुड़ आदि का व्यापार करने लगा, परन्तु अनुभव न होने से उसमें टोटा पड़ा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११–फिर तारीख़ १६ सितम्बर १८९१ से १५ मई १९०१ तक जोधपुर में दफ़तर मैनेजर साहिब जोधपुर बीकानेर रेलवे में, और १६ मई १९०१ से २१ जुलाई १९०७ तक वहां पर ही उसी रेलवे के आडिट आफ़िस में रहा। वहां से ५९ वर्ष की आयु में नौकरी छोड़ दी। उस समय मुझे ८०) मासिक वेतन मिलता था। छोड़ते समय मेरे पास पांच-छह हज़ार रुपये प्रावीडेन्ट फ़न्ड और बोनस और अपनी बचत के थे। चलते समय बाबू छोटमल रावत एसिस्टेन्ट आडिटर जोधपुर-बीकानेर रेलवे और शहर और दफ़तर के सब मित्र रेलवे स्टेशन पर पहुंचाने आये, और फूलों की मालायें पहना कर और वर्षा करके बड़े आदर और प्रेम से मुझे बिदा किया। वहां से इलाहाबाद आकर अपने पुत्र लाला विष्णुदयाल के पास रहता हूं॥

(४) गृहस्थ कर्म विवाह आदि

१२–संवत् १९२१ वि० (सन् १८६४ ई०) में जब मेरी आयु १६ वर्ष की थी, श्रीमती जानकी देवी जी (मुनशी बिहारीलाल जी की पुत्री) के साथ मेरा विवाह और तीसरे वर्ष में गौना हुआ। भादों संवत् १९२७ वि० (सन् १८७० ई०) में बड़ी पुत्री सुमित्रा देवी का जन्म हुआ और लगभग तीन तीन वर्ष के अन्तर से सब पुत्र पुत्रियां आठ बालक उत्पन्न हुये, चार छोटी आयु में मर गये। शेष चार अर्थात् पुत्र विष्णुदयाल का विवाह बाबू रामजीमल जी मुख़तार बदायूं वाले की पुत्री से, बड़ी पुत्री सुमित्रा देवी का विवाह लाला गुरुचरण जी एम० ए० (मुनशी दुर्गाचरण जी मुरादाबाद वाले के पुत्र) से, पुत्री सत्यवती देवी का विवाह बाबू चंडीप्रसाद जी (मुनशी गणेशीलाल जी अलीगढ़ वाले के पुत्र) से, और पुत्री विद्यावती देवी का विवाह मुनशी ज्वालाप्रसाद जी बी ए०, एल० एल०बी० वकील (मुनशी श्यामलाल जी वकील, रईस कानपुर के पुत्र) से हुआ॥

१३–घर का प्रबन्ध सदा उत्तम रीति से रहा। आरंभ में स्कूल के वेतन के सिवाय कुछ दूसरी जगह पढ़ाई से और कुछ पुस्तकों की बिकरी से भी प्राप्ति हो जाती थी। आय के तीन भाग समझे जाते थे, एक भाग खाने पहरने आदि चालू खर्च के लिये, दूसरा सन्तानों की शिक्षा और विवाह आदि के लिये और तीसरा, स्थिर निधि अपने बुढ़ापे आदि के लिये। जब हम दोनों अलीगढ़ में थे, मैंने पत्नी को रात्रि में हिन्दी पढ़ाना आरंभ करा दिया था। उस समय स्त्रियों के पढ़ने की रीति न थी, स्त्रियां कहती थीं कि पढ़ी स्त्रियां विधवा हो जाती हैं। परन्तु हम दोनों दृढ़ चित्त से पढ़ने पढ़ाने में लगे रहे। इसका फल यह हुआ कि हमारे सब पुत्र पुत्रियाँ हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, गणित आदि घर में ही पढ़ने लगे। विष्णुदयाल ने कुछ दिन घर में पढ़कर मुरादाबाद, करवी, अलीगढ़ स्कूल आगरा कालिज, और जोधपुर कालिज में अंग्रेज़ी बी० ए० तक पढ़ी और सन् १९०१ में इलाहाबाद एकौन्टैन्ट जनरल के दफ़तर में नौकर होकर अब सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४–जब मैं मुरादाबाद में था, मेरे पास मेरी दादी बहिन आदि मेरी पत्नी और बालकों की खबरगीरी के लिए रहती थी। मेरे छोटे भाई लाला लेखराज भतीजे लाला झुन्नीलाल, और साले लाला भूपालराय, क्रम-क्रम से स्कूल में मेरे पास पढ़ते रहे। मेरे पिता जी पर लोगों का ८००) का ऋण था, वह सन् १८८१ में रुपया देकर मैंने चुका दिया। उसके बदले में उन्होंने खेत का पट्टा १८ वर्ष के लिये मेरे नाम लिख दिया। उसका प्रबन्ध पिता जी करते रहे और उनके पीछे वह खेत अपने घराने में अब तक चला आता है, जिसके प्रबन्ध से अब मंझले भाई लाला लेखराज जी की धर्मपत्नी निर्वाह करती हैं॥

१५–जब मैं बांदे से नौकरी छोड़कर आया, शाहपुर में नया मकान बनवाया पिता जी के स्वर्गवास होने पर उनका मृतक संस्कार पहिली बार अपने ग्राम में वैदिक रीति से किया। बड़ी पुत्री का विवाह भी वैदिक रीति से किया। पुत्र विष्णुदयाल को अलीगढ़ हाई स्कूल में प्रविष्ट कराकर बोर्डिंग हौस में रख दिया, और अपने साले लाला गंगा सहाय को अलीगढ़ के तहसीली स्कूल में प्रविष्ट कराकर बोर्डिंग हौस में रक्खा, जहां पर वे मिडिल परीक्षा तक पढ़कर अपने घर चले गये। विष्णुदयाल ने अलीगढ़ से एन्ट्रेन्स परीक्षा उत्तीर्ण करके, आगरा कालिज के बोर्डिंग हौस में कुछ समय तक रहकर मेरे पास जोधपुर के जसवन्त कालिज से एफ़० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण होकर बी० ए० तक शिक्षा पाई और रुड़की कालिज में प्रविष्ट होने का प्रयत्न किया, परन्तु किसी कारण से न जा सके। उनका विवाह और गौना हो चुका था। वे लगभग दो वर्ष तक अपने घर वालों सहित कानपुर कमसरियट के दफ़्तर में काम करते रहे और स्थिर नौकरी मिलने पर सन् १९०१ से इलाहाबाद चले गये जहां मकान बनाकर अब रहते हैं॥

१६–जब मैं जोधपुर के रेलवे दफ़्तर में नौकर था मैंने माता, पत्नी और बच्चों को अपने पास बुला लिया। वहां पहिले मेरी माता जी का फिर दो महीने पीछे छह-छह महीने के दो युग्म पुत्रों का, और फिर उससे १५, २० दिन पीछे १५ नोवेंबर १८९२ को धर्मपत्नी का देहान्त होगया। घर के कामों में बड़ी गड़बड़ पड़ी। पहिले मैं योगाभ्यास करने में लगा और जोधपुर के प्रसिद्ध योगी महात्मा देवी-दीन आदि से मिला करता था। इस योगाभ्यास और सत्संग से मेरा मन संस्कृत विद्या के स्वाध्याय करने, बच्चों को शिक्षा देने और उनके विवाह आदि संस्कार करने में जम गया। उस समय मेरे तीन लड़कियां और एक पुत्र थे। लड़कियों को संस्कृत, उर्दू, गणित आदि, गृहस्थी के काम, भोजन बनाने, सीने पिरोने आदि में विशेष शिक्षा दी। बड़ी पुत्री सुमित्रा देवी को पंजाब विश्वविद्यालय की प्राज्ञपरीक्षा तक पढ़ाया। उसका विवाह तो हो चुका था, गौना जून १८९३ में हुआ। २० जनवरी १८९६ को पुत्र विष्णुदयाल का, ३ फरवरी १८९७ को पुत्री सत्यवतीदेवी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ५ मई १८९७ को पुत्री विद्यावती देवी का विवाह हुआ, और योग्य समय पर उनके गौने हो गये ॥

१७—फिर मुझे उमंग उठी कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में बाल विधवा विवाह नहीं होता, इस विपत्ति के उठाने के लिये कोई उदाहरण स्थिर करना चाहिये। यह ठानकर ३० अगस्त १८९८ ई० को एक विज्ञापन दिया कि मैं अपना सजातीय अर्थात् कायस्थ सकसेने दूसरे अच्छे घराने की बालविधवा स्त्री से विधवा विवाह करना चाहता हूँ, विद्वान् लोग पक्षपात छोड़कर सम्मति देवें। इस पर बहुत आन्दोलन हुआ, बिरादरी में नगर २ अनुकूल और प्रतिकूल सभायें हुईं, समाचार पत्रों में भी लिखा पढ़ी हुई। पंडितों की अनुकूल व्यवस्थायें, और बिरादरी के और दूसरे २ बड़े सज्जनों की अनुकूल सम्मतियाँ एकत्र करके कार्तिक सुदी ११ (देवोत्थान) संवत् १२५३ ता० २४ नोवेंबर १८९८ को मेरा विधवा विवाह सजातीय बाल विधवा श्रीमती श्यामसुन्दरी देवी के साथ उनकी माता के हाथों से बड़ी धूम धाम से हुआ। पंडित जनों, इष्ट मित्रों, और बिरादरी के सज्जनों का भोजन आदि से सत्कार किया गया। जगह-जगह से बधाई आने लगी (इस विधवा विवाह का पूरा वृत्तान्त मेरी उर्दू पुस्तक विधवा मंगल में छपा है)।

(५) धर्मनिष्ठा

१८—बचपन में मुझे कोई धर्मशिक्षा नहीं हुई थी, लोगों की देखा देखी स्नान करके शिवमूर्ति पर लोटा जल चढ़ाकर बकरे के समान मुंह बजाकर "बं बं बम और जय शिव जय शिव" कहता था। बलवे के पीछे अलीगढ़ के एक पंडित उदयराम जी हमारे ग्राम में तुलसीकृत रामायण बांचा करते थे, मैं उसे चित्त देकर सुनता था। जब वे सायंकाल को प्रसन्न होकर बैठते, मैं उनसे उसी रामायण पर कुछ प्रश्न करता जिनको वे प्रसन्न होकर समझा देते थे। मैं उनको कूए से जल लाकर पिलाता और भोजन बनाने में सहायता देता था। जब कभी ग्राम में सत्यनारायण की वा गरुड़ पुराण की कथा होती, उसे भी सुना करता था। जब मैं अलीगढ़ रहता था, प्रायः नियम से अचलेश्वर महादेव जी के दर्शन करता और दसहरे के दिनों में रामलीला देखता, और रात्रि में जब रामचन्द्र जी नगर को आते दर्शन करता था। एक समय दो चमार कमेरे (हमारे खेत के मज़दूर) आपस में विवाद कर रहे थे। वादी ने प्रतिवादी से कहा—"या को बेद न्यारो ही है"। यह वाक्य मेरे हृदय में जम गया। मैं सोचने लगा कि वेद कोई विचारने योग्य वस्तु है जिसका नाम यह अनपढ़ चमार भी जानता है। अंग्रेजी इतिहासों से भी वेद का नाम मैं जान गया था। जब मैं एन्ट्रेन्स क्लास में पढ़ता था, मेरे पास उर्दू-हिन्दी का एक मासिक पत्र आता था। उसमें संस्कृत अक्षरों में एक मन्त्र लिखा था, जिसे विवाह समय कन्या पढ़ती है। पं० कालीचरण जी हेड पंडित हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत में हितोपदेश पढ़ाया करते थे, मैंने उनसे विनती करके उस मंत्र का शब्दार्थ पूछा। वे क्रुद्ध होकर बोले—"तुम कायस्थ शूद्र हो, शूद्रों को वेदार्थ बताना निषेध है"। मैं चुप हो गया। सत्मत निरूपण आदि पादरियों की पुस्तकें भी देखा करता था, जिनमें वेद और पुराणों की निन्दा भरी थी, जिनसे बड़ा सन्देह होता था।

(६) महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती से भेंट

१९—संवत् १९३३ (सन् १८७७) में महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती मुरादाबाद पधारे। उन्होंने राजा जयकृष्णदास जी सी० आई० ई० की कोठी पर उतरकर लगातार पाँच छह दिन तक सायंकाल वैदिक धर्म पर व्याख्यान दिये। वे बैठकर व्याख्यान देते थे और अन्य वेद मन्त्रों के साथ—

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः।

नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्। ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः।) सत्यार्थ-प्रकाश का आदि मन्त्र व्याख्यान के आरम्भ में और—

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥

नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम्। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवीन्माम्। आवीद्वक्तारम्। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

सत्यार्थप्रकाश के अन्त का मंत्र व्याख्यान के अन्त में स्पष्ट शब्दों में ऊँचे मधुर स्वर से बोलते थे और व्याख्यान भी बहुत शुद्ध सरल और मधुर शब्दों में देते थे जिसको श्रोता लोग एक चित्त होकर सुनते थे। कैसी ही बात चीत वा कोलाहल हो उनके बोलते ही सब एक साथ बंद हो जाता था और शान्ति फैल जाती थी। व्याख्यान की समाप्ति पर वे लोगों की शंकाओं का समाधान करते थे। कुछ लोग रात्रि में दस ग्यारह बजे तक उनसे सत्संग करते थे। मैं भी नंगे पैरों श्रद्धा और भक्ति से दोनों समय व्याख्यान और सत्संग में जाता था और प्रातःकाल जब वे दण्डा लेकर नगर से बाहिर भ्रमण करते थे, मैं भी जाकर मार्ग में उनके दर्शन करता और **"आनन्दित रहो"** यह आशीर्वाद लेता। स्वामी जी का शरीर विशाल, पुष्ट गेहुंआ रंग था। उनकी बोल चाल में बुद्धिमत्ता गम्भीरता, वीरता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्पक्षता और परोपकारिता साक्षात् दीखती थी। उनका दण्डा लेकर भ्रमण करना मेरी आँखों के सामने घूमा करता है।

२०—उन्हीं दिनों, मैं और मुनशी कालिका प्रसाद दो कायस्थों ने, लाला चन्द्रमणि और लाला द्वारिकाप्रसाद दो वैश्यों ने स्वामी जी से यज्ञोपवीत और गायत्री मन्त्र लिया। मैंने स्वामी जी की आज्ञा से उनकी **पंचमहायज्ञ विधि** पुस्तक को मुनशी इन्द्रमणि जी से पढ़ा। मैंने एक दिन स्वामी जी से पूछा कि यदि लोग आप से यज्ञोपवीत लेने में दोष लगावें और हमारा धर्म पूछें तो क्या उत्तर दिया जावे। उन्होंने कहा कि सन्यासी से यज्ञीपवीत लेना शास्त्रोक्त है, और अपना धर्म वैदिक धर्म बतलाया करो। तभी उन्होंने बड़े प्रेम से मेरी पीठ ठोककर कहा—"ईश्वर करे तू वेदों को पढ़कर उनका प्रचार करे।" मैं स्वामी जी की पुस्तकों को बहुत रुचि से लेता और पढ़ता था। उनके मासिक पत्र वेद भाष्य के ग्राहकों में मेरा नम्बर ९ था जिसको मैं अन्त तक १७ वर्ष तक लेता रहा॥

२१—जब स्वामी जी सन् १८७७ में मुरादाबाद आये थे, एक आर्यसमाज उक्त राजा साहिब की कोठी पर खोला गया था जो आपस की अनबन से टूट गया। स्वामी जी ३ जुलाई १८७९ को फिर मुरादाबाद आये और शहर में उन्हीं राजा साहिब की कोठी पर उतरे। इन दिनों स्वामी जी संग्रहणी (दस्तों) के रोग से पीड़ित थे, तीन व्याख्यान दिये। २० जुलाई १८७९ को स्वामी जी की उपस्थिति में उन्हीं राजा साहिब की कोठी पर बड़ा हवन करने के लिये सामग्री मंगाई गयी और मोहनभोग भी बनाया गया। उस दिन वर्षा बहुत हो रही थी, एक घर में थोड़ा सा हवन किया गया। सामग्री और मोहन भोग बच गया। लगभग पाँच सौ मनुष्य उपस्थित थे, देर हो जाने के कारण राजा साहिब ने सब को भोजन कराया और वह मोहनभोग भी बंटवा दिया। उसी दिन आर्यसमाज स्थापित होकर मुनशी इन्द्रमणि प्रधान, कुंवर परमानन्द और ठाकुर शंकरसिंह मन्त्री, साहू श्यामसुन्दर कोषाध्यक्ष, लाला जगन्नाथदास पुस्तकाध्यक्ष और अड़तीस सभासद हुये जिनमें मैं भी था। इस अवसर पर धूर्तों ने गप्प उड़ाई कि स्वामी जी ने मोहनभोग में थूक दिया था, वह इन लोगों ने खाया है। बिरादरी में पंचायतें होने लगीं, कुछ लोग समाज से अलग हो गये और कुछ दृढ़ होकर कार्य करते रहे। मुझसे भी कुछ बिरादरी वालों ने खेंचातानी की, मैं पक्का होकर समाज में बना रहा। दूसरे वर्ष चिरंजीव विष्णुदयाल का यज्ञोपवीत कराया। सब भाई बन्धु, नातेदार और आर्यसमाजी भाई संस्कार में सम्मिलित हुये, मैंने उसको यज्ञोपवीत और गायत्री मन्त्र दिया। आये हुये स्त्री पुरुषों का सत्कार मिष्टान्न और भोजन आदि से किया गया और कार्य बड़ी प्रसन्नता से पूरा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२–मुसलमानों ने कुछ पुस्तक हिन्दुओं के देवताओं और महात्माओं की निन्दा में निकाले थे। मुनशी इन्द्रमणि जी मुरादाबादी ने हिन्दू धर्म के अनुसार उनके उत्तर—"हमला हिन्द, समसाम हिन्द और सौलत हिन्द"—तीन पुस्तकों में देकर हिन्दू धर्म की रक्षा की। मुसलमानों के अभियोग चलाने पर मजिस्ट्रेट मुरादाबाद ने मुनशी जी पर पांच सौ रुपया जुरमाना किये और पुस्तक फड़वा डाले। अपील करने पर हाईकोर्ट इलाहाबाद और लाट साहिब के यहां से जुरमाना माफ़ हो गया।

२३–मु० इन्द्रमणि ने पुस्तकें रच कर हिन्दू धर्म की रक्षा की थी और अब मुरादाबाद आर्यसमाज के प्रधान थे, उनकी प्रार्थना और स्वीकृति पर स्वामी जी की सम्मति से आर्य समाजों ने अपराध की सफ़ाई और जवाबदिही करने को मुनशी जी के लिये इस शर्त पर चन्दा किया कि जो चन्दा थोड़ा आवे, आर्यसमाज मेरठ ख़र्च चला कर समाजों से ले लेवे, और जो अधिक आवे तो शेष धन का उपयोग समाजों की सम्मति से किया जावे, चन्दे का धन लाला रामशरणदास जी रईस मेरठ के पास एकत्र होवे और वहां से ही खर्च किया जावे। जो चन्दा मेरठ समाज में आया था, इसमें से मुनशी जी को ख़र्च के लिये भेजा गया, और बहुत सा धन सीधा मुनशी जी के पास आया। आर्यसमाज मेरठ ने उनसे आय व्यय का हिसाब मांगा, उन्होंने और उनके शिष्य लाला जगन्नाथदास ने हिसाब न दिया और प्रकट किया कि यह धन केवल मुनशी जी के लिये आया है, सबका सब उनको मिलना चाहिये। बहुत समझाने बुझाने पर भी वे दोनों स्वामी जी और आर्यसमाजियों को दोष लगाने लगे और अलग आर्यसमाज करने लगे। तब आर्यसमाज मुरादाबाद ने श्री स्वामी जी महाराज की आज्ञा लेकर एक बहुत बड़ी सभा की। उसमें सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि मुनशी इन्द्रमणि जी और उनके शिष्य लाला जगन्नाथ दास जी न तो मुकद्मे का हिसाब देते हैं और न सफ़ाई करते हैं, और उलटे स्वामी जी और आर्य समाजों को झूठा दोष लगाते और अलग समाज करते हैं, इस लिये दोनों महाशय आर्य समाज मुरादाबाद से अलग किये गये। तब निम्नलिखित पत्र समाजों और समाचार पत्रों को भेजा गया—

महाशय, नमस्ते

विदित हो कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज की आज्ञानुसार, आर्यसमाज के नियमों से विरुद्ध आचरण के कारण मुनशी इन्द्रमणि प्रधान और लाला जगन्नाथदास पुस्तकाध्यक्ष अपने अपने पद और सभासदी से इस आर्यसमाज से २९ मई सन् १८८३ ई० से अलग किये गये और मुनशी दुर्गाचरण प्रधान नियत हुये। आगे को पत्र आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुनशी क्षेमकरणदास मन्त्री के नाम ठिकाना मकान साहू श्यामसुन्दर जी रईस मंडी बांस मुरादाबाद भेजे जावें। क्षेमकरणदास मन्त्री आर्यसमाज मुरादाबाद, ३० मई १८८३

इसके पीछे मुनशी इन्द्रमणि जी का समाज कुछ दिनों में टूट गया और पुराना समाज अधिक अधिक उन्नति करता हुआ चला आता है। मन्त्री पद के लिये मेरा निर्वाचन निरन्तर सन् १८८० से सन् १८८४ तक (जब तक मैं मुरादाबाद रहा) होता रहा। और बदली हो जाने पर शाहजहांपुर, कटनी मुड़वारा, करवी, बांदा, जोधपुर इलाहाबाद आदि समाजों में कभी सभासद्, कभी मन्त्री और कभी प्रधान होकर सेवा करता रहा।

२४–महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जन्म गुजरात देश को मौर्वी नगर में संवत् १८८१ विक्रमीय (सन् १८२४ ई०) में हुआ था, वे ब्राह्मण थे और अपने को मथुरा के महर्षि स्वामी विरजानन्द सरस्वती का शिष्य मानते और पुस्तकों में लिखते थे। इनका स्वर्गवास दिवाली के दिन सायंकाल ६ बजे कार्तिक कृष्णा अमावस संवत् १९४० वि० (ता० ३० अक्तूबर १८८३) को अजमेर नगर में हुआ। वे अपने जीवित ही फागुन वदी ५ संवत् १९३९ वि० (२७ फरवरी १८८३ ई०) को राजधानी उदयपुर में अपना स्वीकार पत्र (वसियत नामा) अपने धन सम्पत्ति की रक्षा और वृद्धि करने और वैदिक धर्म प्रचार आदि परोपकार में लगाने के लिये श्रीमती परोपकारिणी सभा के नाम रजिस्टरी करा चुके थे जिसके सभासद् इस प्रकार थे—

१—श्रीमन्महाराजाधिराज, महेन्द्र यावदार्यकुलदिवाकर महाराणा जी श्री १०८ श्री सज्जन सिंह वर्मा, धीर वीर जी० सी० ऐस० आई० उदयपुर राज मेवाड़ — सभापति

२—लाला मूलराज जी एम० ए० एक्सट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर प्रधान आर्य समाज लाहौर, (लुधियाना निवासी) — उपसभापति

३—श्रीयुत कविराज श्यामल दास जी, उदयपुर, राजमेवाड़ — मन्त्री

४—लाला रामशरण दास जी रईस, उपप्रधान आर्यसमाज मेरठ — ,,

५–पं० मोहन लाल विष्णुलाल जी, उदयपुर (मथुरा निवासी) — उप मन्त्री

६–श्रीमन्नाहराधिराज, श्री नाहरसिंह वर्मा शाहपुरा, — सभासद्

७–श्रीयुत राव तख्त सिंह जी वेदे, राज्य मेवाड़ — ,,

८–श्रीमद्राजराणा श्री फ़तह सिंह जी वर्मा देलवाड़ा — ,,

९–श्रीमत् श्री अर्जुन सिंहजी वर्मा, आसीद — ,,

१०–श्रीमत् महाराज श्री गजसिंह जी वर्मा, उदयपुर — ,,

११–श्रीमत् राव श्री बहादुर सिंहजी वर्मा, मसूदा ज़िला अजमेर — ,,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२–राय बहादुर पंडित सुन्दरलाल जी सुपरिन्टेन्डेन्ट वर्कशाप अलीगढ़ (आगरा निवासी) ,,

१३–राजा जयकृष्णदास जी सी० आई० ई० डिप्टी कलक्टर विजनौर (मुरादाबाद निवासी) ,,

१४–बाबू दुर्गाप्रसाद जी कोषाध्यक्ष आर्य समाज फ़रुखाबाद, ,,

१५–लाला जगन्नाथ प्रसाद जी फ़रूखाबाद ,,

१६–सेठ निर्भयराम जी प्रधान आर्यसमाज फ़रुखाबाद, (बिसावर राजपूताना निवासी) ,,

१७–लाला कालीचरण जी मन्त्री आर्यसमाज फ़रुखाबाद ,,

१८–बाबू छेदीलाल जी गुमाश्ते कमसरयेट छावनी मुरार (काहनपुर निवासी) ,,

१९–लाला साईंदास जी मन्त्री आर्यसमाज, लाहौर ,,

२०–बाबू माधवदास जी मन्त्री आर्यसमाज, दानापुर ,,

२१–राय बहादुर रा० रा० राजमान् राजेश्वरी पंडित गोपालराव हरि देशमुख, मेम्बर कौंसिल गवर्नर बम्बई–प्रधान आर्यसमाज, बम्बई (पूना निवासी) ,,

२२–राव बहादुर महादेव गोविन्द, रानडे, जज पूना ,,

२३–पंडित श्याम जी कृष्ण वर्मा, संस्कृत प्रोफसर ओक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी इंगलेंड (बम्बई निवासी) ,,

यह परोपकारिणी सभा अधिकारियों और सभासदों की अदला बदली से अब तक अपना कार्य कर रही है। इस की पहिली बैठक संवत् ११४१ वि० में अजमेर नगर में हुई। उसमें सब आर्यसमाजों के प्रतिनिधि आए, मैं मुरादाबाद आर्यसमाज का प्रतिनिधि था। इस बैठक में वैदिक यन्त्रालय को प्रयाग से लाकर अजमेर में रखने और स्वामी जी कृत वेदभाष्य, सत्यार्थ प्रकाश आदि पुस्तकें छपवाने और प्रचार करने आदि कार्यों के लिये निश्चय हुआ ॥

२५–दिसंबर १८८४ बड़े दिन की छुट्टी में प्रयाग नगर में हिन्दू समाज की एक बड़ी बैठक हुई जिसमें समस्त भारतवर्ष के हिन्दुओं के प्रतिनिधि आये थे, मैं शाहजहांपुर आर्यसमाज का प्रतिनिधि होकर गया था। इस हिन्दू समाज का उद्देश्य था कि भारतवर्ष के सब हिन्दू लोग एकमत का अवलंबन करें और यथाशक्ति देशीय वस्तु काम में लावें। मैंने अपने मित्रों सहित प्रयाग के चौक बाज़ार में सबको वैदिक धर्म पर चलने, विदेशीय वस्त्र आदि छोड़ने और देशीय वस्त्र आदि धारण करने पर व्याख्यान दिया और इसी विषय का समर्थन हिन्दू समाज में किया। यह हिन्दू समाज तभी एक बार जुड़ा और फिर उसका पता न चला ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२६–जब महाशय रमाकान्त जी बी० ए० के विशेष उद्योग से प्रयाग नगर में दरयाबाद के पास दयानन्द ऐंग्लो वर्नेक्यूलर स्कूल (डी०ए०वी० स्कूल) बनना आरंभ हुआ, उसकी कार्यकारिणी सभा ने रविवार वैशाखशुक्ला १२ संवत् १९७२ तारीख १४ मई १९१६ को प्रातःकाल हवन आदि वैदिक रीति से करके बड़े समारोह के साथ उस पवित्र पाठशाला दयानन्द स्कूल की आधार शिला मेरे हाथ से रखवाई। परमात्मा की कृपा से इस स्कूल में अब संवत् १९७८ (सन् १९२१) से संस्कृत फ़ारसी, अंग्रेज़ी आदि के बड़े विद्वान्, आर्यसमाज के मुख्य स्तम्भ महाशय गंगाप्रसाद जी एम० ए० हेड मास्टर हैं और वैदिक धर्म शिक्षा सहित एन्ट्रेन्स परीक्षा तक अच्छे परिणाम के साथ पढ़ाई होती है ॥

२७–मैंने १८८५ ई० में शाहजहांपुर स्कूल की नौकरी छोड़कर इन्डियन मिड्लेन्ड रेलवे में जो उस समय बन रही थी, तीन वर्ष नौकरी की, और कटनी मुड़वारा, कर्वी बांदा आदि स्थानों में सज्जनों के सम्मेलन से आर्य समाज स्थापित किये, और मुरादाबाद आदि से मंगाकर देशी कपड़े और बरतनों का प्रचार करता रहा। फिर वहां से नौकरी छोड़कर अपने माता पिता आदि के साथ अपने घर शाहपुर-मठराक में तीन वर्ष रहकर वैदिक धर्म का अंकुर जमाया, और गृहस्थी के कार्य करता रहा। इसके पीछे सन् १८९१ ई० से सन् १९०७ तक रेलवे के दफ़्तर में नौकर होकर जोधपुर आर्यसमाज में अपना कर्तव्य करता रहा। वहां से प्रयाग आकर पहिले कटरे समाज में सम्मिलित रहा, फिर वहां से लूकरगंज में आकर रहने पर प्रयाग के चौक समाज में सम्मिलित हूं ॥

(७) संस्कृत विद्या, प्राज्ञ परीक्षा और वेद परीक्षा

२८—जब जोधपुर में मेरी माता, दो छोटे पुत्र और धर्मपत्नी दो तीन महीने में स्वर्गवास कर गये, घर रीता हो गया, घर के कामों से मेरा मन हटने लगा। मेरे बड़े पुत्र आगरे कालेज में पढ़ते थे, बड़ी पुत्री का गौना होने को था, दो छोटी पुत्रियां पढ़ती थीं और कुमारी थीं। पंडित ठाकुरप्रसाद शर्मा, आचार्य ग्राम हरीपुर डाकघर हनुमानगंज, जिले इलाहाबाद के रहने वाले, जोधपुर आर्यसमाज के मुख्योपदेशक थे। वे मेरी दशा को जानते थे, उन्होंने निश्चय कराया कि घर में रहकर ही योगाभ्यास करके विद्या की वृद्धि करनी चाहिये और अनसमझ बच्चों को अपने होते हुये किसी दूसरे के आश्रय में अनाथ करके छोड़ चला जाना बड़ी ही निर्दयता है, गृहस्थ कर्म निर्वाह कर कर्तव्य करते रहना परम तप है। तब मैं अपनी शिक्षा, बच्चों की शिक्षा और गृहस्थी के काम काज में लग गया। उक्त पंडित जी ने मेरे साथ बड़ा उपकार किया। उन्होंने अवकाश निकाल कर नौ दस बजे रात्रि को मुझे संस्कृत पढ़ाकर पंजाब विश्वविद्यालय की प्राज्ञ परीक्षा में सन् १८९३ ई० में उत्तीर्ण करा दिया। मै पंडित जी से पढ़ कर वही पढ़ाई अपनी बड़ी पुत्री को पढ़ाता था उसने भी प्राज्ञपरीक्षा दी, पर अनुत्तीर्ण रही। उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे वे मुझे योगदर्शन आदि पढ़ते रहे। जोधपुर से उनके चले जाने पर मैं पंडित भवानीदत्त शर्मा शास्त्री से पंजाब की शास्त्री परीक्षा के ग्रन्थ, विशेष करके ऋग्वेद पढ़ता रहा। इसके अतिरिक्त जोधपुर में जब जब अवकाश रहता, श्रीमान् स्वामी अच्युतानन्द सरस्वती, स्वामी प्रकाशानन्द सरस्वती, प्रज्ञाचक्षु स्वामी गिरानन्द सरस्वती, बृहत्कवि विद्याभास्कर वैयाकरण केसरि, पण्डित गुरुलाल-चन्द्र शर्मा से व्याकरण, निरुक्त, वेदादि शास्त्र मैं विचारता था।

२९--जुलाई सन् १९०७ में जोधपुर से नौकरी छोड़कर प्रयाग में अपने पुत्र विष्णुदयाल के पास रहा और अब तक रहता हूँ। घर में शान्ति और भोजन आदि का सुभीता देखकर वेदों के विचार करने की उत्कण्ठा और बढ़ी। ऋग्वेद में १०,५८९ (दस सहस्र पाँच सौ नवासी), अथर्ववेद में ५,९७७ (पाँच सहस्र नव सौ सतहत्तर), यजुर्वेद में १९७५ (उन्नीस सौ पचहत्तर), और सामवेद में १८७३ (अठारह सौ तिहत्तर) मन्त्र हैं, अर्थात् सामवेद सबमें छोटा वेद है। इसलिये मैंने पण्डित तुलसी राम के और सायणाचार्य के भाष्य सहित पहिले सामवेद पढ़ा। इस समय पण्डित राम जी लाल शर्मा अध्यक्ष हिन्दी प्रेस प्रयाग बड़े प्रेम और परिश्रम से मुझे सामवेद और यजुर्वेद पढ़ाते रहे। संवत् १९६५ वि० (सन् १९०८) में बड़ौदा राजधानी जाकर श्रावण मास दक्षिणा परीक्षा देकर सामवेद भाष्य में उत्तीर्ण होकर राज्य से दक्षिणा और प्रमाण पत्र पाया। तब मैं सामवेदी कहलाया। वहाँ से आकर मैंने स्वामी दयानन्द और महीधर के भाष्यों से यजुर्वेद पढ़ा। ऋग्वेद को मैं बहुत कुछ पहिले देख चुका था, उसको स्वामी दयानन्द और सायणाचार्य के भाष्यों और अन्य ग्रन्थों से पूरा किया। अथर्ववेद पर सायण भाष्य पूरा नहीं है, उसको भी कुछ उस भाष्य से और कुछ कोशों और अंग्रेजी अनुवाद आदि की सहायता से पढ़ डाला॥

३०--दिसंबर सन् १९१० में प्रयाग की प्रदर्शनी पर महात्मा मुनशी राम जी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी से भेंट हुई। उन्होंने गुरुकुल में स्वतन्त्र रहने और स्वाध्याय करने के लिये स्थान देने का वचन दिया। तब मैं माघ संवत् १९६७ वि० (जनवरी १९११ ई०) में गुरुकुल कांगड़ी गया। वहाँ मैं आचार्य जी की आज्ञा से उनकी कुटी के पास गंगा तट पर एक पर्णकुटी में रहा, भोजन गुरुकुल भंडार में बना हुआ अपने व्यय से खाता था। पं० काशी नाथ शर्मा आचार्य गुरुकुल में वेदाचार्य थे। मैंने बड़ी नम्रता से विनती करके उनसे अपना अभिप्राय कहा। वे प्रसन्न होकर ऋग्वेद और अथर्ववेद के पदार्थ समझाने और मेरे किये हुए अर्थों के शोधन में बड़ी कृपा करते थे। और जब पण्डित शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ उस विद्यालय में आये, वे भी मुझे सहायता देते रहे। वहां से ही मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद भाष्यों में श्रावण मास दक्षिणा परीक्षा देने को प्रार्थना पत्र बड़ौदा राजधानी भेजा, और आप भी महीने आषाढ़ संवत् १९६८ में बड़ौदा पहुंचा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहां नियम ज्ञात हुआ कि एक वर्ष में दो से अधिक वेदों में परीक्षा नहीं हो सकती। तब मैंने ऋग्वेद और अथर्ववेद भाष्यों में परीक्षा दी ऋग्वेद में उत्तमा अथर्ववेद में मध्यमा कक्षा में उत्तीर्ण हुआ और प्रमाणपत्र और दक्षिणा लेकर भादों संवत् ११६८ वि० (सन् १९११ ई०) में प्रयाग लौट आया, और तीन वेदों में उत्तीर्ण होने से त्रिवेदी कहलाया। फिर मैं दूर स्थान होने और भाष्य आदि बनाने में लग जाने के कारण बड़ौदा जाकर यजुर्वेद में परीक्षा न दे सका।

(८) अथर्ववेद का भाष्य

३१—मुझे स्वाध्याय करते समय शब्दों की व्युत्पत्ति के साथ पदार्थ करने में सदा से रुचि है। उसी ढंग से मेरा पहिला पुस्तक रुद्राध्याय, यजुर्वेद अध्याय १६ (नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः·····) शब्दों की व्युत्पत्ति के साथ ब्रह्म निरूपक अर्थ सहित संस्कृत, आर्यभाषा (हिन्दी) और अंग्रेज़ी में संवत् १९६३ वि० (सन् १९०६ ई०) में छपा। दूसरा पुस्तक हवनमन्त्राः चारों वेदों के संगृहीत मन्त्र, ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण आदि (जो महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने पुस्तक "संस्कार विधि" में संस्कारों और नित्य कर्म के लिये लिखे हैं) सरल आर्य भाषा (हिन्दी) में शब्दार्थ सहित संवत् ११६८ वि० (सन् १९१२ ई०) में छपा। इन पुस्तकों की व्याख्या शैली देखकर विद्वान् मित्रों ने आग्रह करके सम्मति दी कि छोटे छोटे ग्रन्थों का लिखना बन्द करके अथर्ववेद का हिन्दी अर्थ सहित भाष्य लिखना चाहिये इस वेद का सायणाचार्यकृत संस्कृत भाष्य प्रायः अप्रामाणिक और बहुत अधूरा है। उसी का सहारा लेकर अंग्रेज़ी, जर्मनी आदि भाषाओं में अप्रामाणिक अनुवाद हुये हैं, और हमारी देश भाषा में कोई भी इसका अनुवाद नहीं है। मैं यह सुनकर बड़े सोच में पड़ गया कि मेरी आयु बहुत होगयी है, मैं बड़ा धनी और बड़ा विद्वान् भी नहीं हूं, ऐसा बड़ा ग्रन्थ कैसे पूरा कर सकूंगा। फिर मैंने स्वामी दयानन्द सरस्वती, सायणाचार्य, ग्रिफ़्फ़िथ साहिब आदि विद्वानों के रचे पुस्तकों के बड़े बड़े संग्रह पर ध्यान किया कि यह महाशय इतना इतना बड़ा काम कर सके हैं, पुरुषार्थ मुख्य है। अन्त में यह निश्चय हुआ कि मनुष्य अपने तन, मन, धन को तीर्थ यात्रा आदि कामों में लगा देते हैं, मैं भी अपनी शक्ति भर अपना तन, मन, धन इस भाष्य के करने में लगाऊं, अगाऊ धन ग्राहकों से न लिया जावे, एक एक काण्ड पूरा निकले और ग्राहक लोग उसे लेते रहें, जिससे जितना हो सके उतना तो हो जावे, शेष और कोई आगे कर लेगा। पहिला काण्ड श्रावण १९६९ (दिसंबर १९१२) में निकला। विद्वानों ने उसे अंगीकार किया और आगे भाष्य करते रहने की अनुमति दी। मैं आप ही भाष्य करता, लिखता और प्रूफ़ शोधता था। स्थायी ग्राहक थोड़े थे, मूल्य लागत से बहुत थोड़ा आता था, छपाई, काग़ज़ आदि की त्रुटि को मैं अपने पास से पूरा करता था। इस प्रकार धीरे धीरे छह काण्ड निकल गये और मेरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन भी समाप्ति पर आने लगा। पत्र व्यवहार करने पर जून १९१६ ई० से श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त ने १५) मासिक देना और परिवर्तन में भाष्य लेना स्वीकार किया। यह नियम चार वर्ष तक रहा। वैशाख संवत् १९७४ वि० (सन् १९१७ ई०) से श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने २५) मासिक देना और परिवर्तन में भाष्य लेना स्वीकार किया जो नियम बत्तीस महीने तक चला। इस स्थिर आय के होने पर एक लेखक २५) मासिक पर लगभग भाष्य की समाप्ति तक रक्खा गया जिससे भाष्य निकलने में कुछ शीघ्रता हुई। श्रीमान् बड़ौदा महाराज काण्ड १ से ३ तक बीस बीस पुस्तक और फिर शेष भागों के चार चार पुस्तक लेते रहे। इसके अतिरिक्त लगभग २०० स्थायी ग्राहक रहे और कुछ भाष्य आदि फुटकर पुस्तक बिके। इस आय में प्रत्येक काण्ड की छपाई, काग़ज़ आदि के व्यय का पूरा न पड़ता था। शेष मेरे पास से लगता था और काम चलता रहा॥

(९) विघ्न

३२—धन का वृत्तान्त ऊपर लिख चुका हूं, मेरे शरीर में ज्वर आदि साधारण रोग भी कभी कभी होते रहे, और भी बड़े बड़े विघ्न उपस्थित हुये—

(क) अपने कुटुम्बियों और सम्बन्धियों की मृत्यु।

१—मेरी बड़ी पुत्री सुमित्रा देवी एक पुत्र और पुत्री होने पर गौने से चार पांच वर्ष में विधवा हो गई थी, उसका वह पुत्र महेश चरण अपने माता और बहिन के साथ मेरे पास रहता था और एफ़० ए० क्लास में अंग्रेज़ी आदि पढ़ता था, वह होनहार लड़का चार पांच घंटे रुग्ण रहकर १८ वर्ष की आयु में अगस्त १९१२ में चल बसा।

२—शिवदयाल-मेरा मंझला पौत्र, आयु १८ वर्ष, संस्कृत और अंग्रेज़ी आदि में बड़ा चतुर अक्तूबर १९१८ में चल दिया।

३—बाबू चंडीप्रसादजी, मेरे मंझले दामाद, सन् १९१९ में स्वर्गवास कर गये।

४—लाला झुन्नीलाल मेरे बड़े भतीजे अलीगढ़ वाले, सन् १९१९ में स्वर्गवासी हुये।

५—सुमित्रा देवी मेरी बड़ी पुत्री ने ५१ वर्ष की आयु में स्वार्गवास किया। उसका जन्म भादों संवत् १९२७ वि० (सन् १८७० ई०) में हुआ था, और उसने भादों सुदी ७ संवत् १९७८ (तारीख ८ सितंबर १९२१) को शरीर छोड़ा। वह यहां पर क्रास्थवेट गर्ल्स स्कूल व कालिज में मुख्य संस्कृत अध्यापिका थी।

(ख) कुछ देशहितैषी पुरुषों की मृत्यु—

१—पं० तुलसीराम स्वामी मेरठ—सामवेद भाष्यकार और सम्पादक वेद-प्रकाश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२--पं० भीमसेन शर्मा—इटावा, सम्पादक ब्राह्मणसर्वस्व, वेद व्याख्याता कलकत्ता यूनिवर्सिटी।

३--महाशय कालिकाप्रसाद, सिल्क मर्चेन्ट बनारस।

४--ठाकुर गदाधर सिंह, मन्त्री श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त।

यह चारों महाशय अथर्ववेद के कठिन मन्त्रों पर बातचीत, भाष्य पूरा करने की प्रेरणा, और प्रचार के लिये प्रयत्न करते थे।

५—पं० ओंकारनाथ वाजपेयी-अध्यक्ष ओंकार प्रेस प्रयाग।

अथर्ववेद भाष्य आरंभ से मन्त्र सूची तक इस प्रेस में छपा, पं० ओंकारनाथ की मृत्यु के पीछे गड़बड़ पड़ गयी, काम देर से होने लगा, घर वालों के बीच परस्पर झगड़ा उठा और अन्त में वह प्रेस बन्द हो गया। अन्तिम भाग पद सूची को पंडित बद्रीप्रसाद पाण्डेय अध्यक्ष नारायण प्रेस प्रयाग ने बहुत कष्ट उठाकर छापा है, जिसके लिये उन्हें धन्यवाद है।

(ग) जर्मन महायुद्ध जो अंग्रेज़ी सरकार फ्रान्स राज्य की मित्रता में सन् १९१४ से सन् १९१९ ई० तक रहा, उसमें एक भय यह था कि यदि राज्य परिवर्तन हुआ तो भाष्य निकलने में बाधा पड़ेगी, परन्तु मित्र राज्यों की जीत हुई और कुशल रही। दूसरे इस महायुद्ध के समय से अब तक काग़ज आदि और अन्य सब वस्तुयें युद्ध से पहिली की अपेक्षा चौगुनी पचगुनी मंहगी हैं। भाष्य में आरंभ से अन्त तक सब देशी काग़ज़ लगा है, परन्तु अन्त के भागों में सामर्थ्य से अधिक मूल्य बढ़ जाने और कभी-कभी न मिलने के कारण कुछ हलका काग़ज़ लगाया गया, छपाई चलती रही।

(घ) सन् १९१७ ई० में तीन वर्ष के लिये ऐकौन्टेन्ट जनरल के दफ़्तर से पुत्र विष्णुदयाल का जाना सिकिम राज्य को हुआ और पौत्र शंकरदयाल सेठ सन् १९१९ में बी० एस० सी० परीक्षा उत्तीर्ण करके बिजुली विद्या की शिक्षा पाने को तीन वर्ष के लिये बंगलौर चले गये। इन दोनों के बाहिर जाने से घर का सब काम काज मैं ही करता था।

(ङ) कभी कभी भाष्य बहुत कठिन आ जाता था, समझ में न बैठने से जी घबराने लगता था। तब मैं परमेश्वर से लज्जा रखने की प्रार्थना करता और स्वामी दयानन्द जी का स्मरण करता, रात्रि को स्वप्न में ऐसा जान पड़ता था कि स्वामी जी उस मन्त्र का भाष्य अपने लेखक को मेरे सामने लिखा रहे हैं, मेरी कठिनाई दूर हो जाती थी। कभी-कभी विद्वानों से मिलते-मिलाते हुये, एकान्त में रात्रि को सोते हुये, प्रातःकाल शौच करते हुये, अथवा बाग़ आदि में घूमते हुये कठिन अर्थ ज्ञात हो जाते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०) धन्यवाद

३३—परमेश्वर ने वेद में कहा है कि मनुष्य इस प्रकार विचारता हुआ शुभ कर्म करके जय प्राप्त करे—

ओ३म् । कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥

अथर्ववेद ७ । ५० । ८ ।

हे परमेश्वर ! (कृतम्) कर्म (मे) मेरे (दक्षिणे) दाहिने (हस्ते) हाथ में और (जयः) जीत (मे) मेरे (सव्ये) बायें में (आहितः) स्थित हो, मैं (गोजित्) गौओं अर्थात् इन्द्रियों, भूमि और गो आदि उपकारी प्राणियों का जीतने वाला, (अश्वजित्) शीघ्रगामी घोड़े आदि का जीतने वाला, (धनंजयः) धन को जीतने वाला और (हिरण्यजित्) तेज का जीतने वाला (भूयासम्) रहूं । अर्थात् जो मनुष्य परमात्मा को ध्यान में रख कर वेदविहित कर्म करते रहते हैं, वे सब प्रकार की सिद्धि पाते हैं । किसी विद्वान् ने इस वैदिक सिद्धान्त को यों दरशाया है—

धरि लात विघ्न अनेक पै निरभय न उद्यम तें टरें ।
जे पुरुष उत्तम अन्त में ते सिद्ध सब कारज करें ॥

३४—उस सर्वशक्तिमान् परमपिता जगदीश्वर परमात्मा को सबसे पहिले मेरा बारंबार धन्यवाद है, जिसने अपनी अनन्त महिमा और कृपा से एक किसान पुत्र, मुझ तुच्छ गंवार, निपट अजान, निर्बल, निर्धन को पवित्र वैदिक उपदेश से शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक बल दिया और मुझे दृढ़चित्त रख कर मेरा संकल्प पूरा कराया । दूसरे भगवान् महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को मेरा अत्यन्त धन्यवाद है जिनके पवित्र दर्शन और सदुपदेश से वेदों की ओर मेरा ध्यान हुआ । तीसरे उन विद्वान् गुरुजन महाशयों का कृतकृत्य हूं जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मुझे स्वाध्याय कराया । चौथे उन सब महानुभवी महात्माओं का कृतज्ञ हूं जो मुझे मानसिक, वाचिक और आर्थिक सहायता देकर इस भाष्य के करने में मेरा उत्साह बढ़ाते रहे और विघ्नों से बचाते रहे । सारांश यह है कि यह अथर्ववेद भाष्य संवत् १९६९ वि० (सन् १९१२ ई०) में आरंभ हुआ और संवत् १९७८ वि० (सन् ११२१) में सब प्रकार निर्विघ्न समाप्त होकर छप गया । परमात्मा करे कि श्रीमद्गीता आदि ग्रन्थों के समान वेदों के अनेक भाष्य बनें और उसका प्रचार नित्य नित्य होता रहे जिससे संसार में प्रीति और आनन्द बढ़े ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म् । यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु ॥

यजुर्वेद ३२ । १४ ॥

(याम्) जिस (मेधाम्) धारणावती निश्चल बुद्धि को (देवगणाः) देवता, विद्वान् जन (च) और (पितराः) पालन करने हारे पितर लोग (उपासते) सेवते हैं, (तया) उस (मेधया) निश्चल बुद्धि से, (अग्ने) हे सर्वव्यापक प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर ! (माम्) मुझको (अद्य) आज अर्थात् प्रत्येक समय (मेधाविनम्) निश्चल बुद्धि वाला (कुरु) कर ॥

ओ३म् । शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ॥

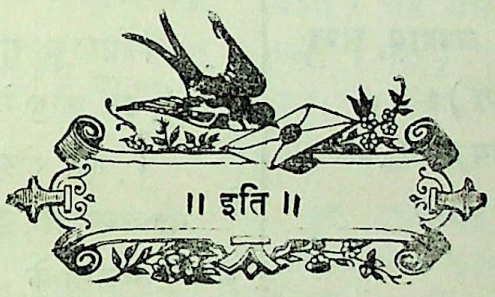

५२ लूकरगंज, प्रयाग,
पौषकृष्णा ११ संवत् १९७८ वि०,
२५ दिसंबर १९२१ ।

क्षेमकरणदास त्रिवेदी
अथर्ववेद भाष्यकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सङ्केत सूची।

सङ्केत	सङ्केत विषय
अ० अथर्व	=अथर्ववेद, काण्ड, सूक्त, मन्त्र।
अव्य०	=अव्यय।
आ० प०	=आत्मनेपदी।
उ०	=उणादिकोष, पाद, सूत्र (स्वामी दयानन्द सरस्वती संशोधित)।
ऋ०	=ऋग्वेद, मण्डल, सूक्त, मन्त्र।
क्रि०	=क्रिया।
त्रि०	=त्रिलिङ्ग (विशेषण)
न०	=नपुंसकलिङ्ग।
नि०, निरु०	=निरुक्त, अध्याय, खण्ड, (यास्कमुनि कृत)।
निघ०	=निघण्टु, अध्याय, खण्ड, (यास्क-मुनि कृत)।
प० प०	=परस्मैपदी।
पा०	=पाणिनीय व्याकरण-अष्टाध्यायी, अध्याय, पाद, सूत्र।
पु०	=पुंलिङ्ग।
पृषो०	=पृषोदरादि।
य०, यजुः	=यजुर्वेद, अध्याय, मन्त्र।
श० क० द्रु०	=शब्दकल्पद्रुमकोष, राजा राधाकान्तदेवबहादुर विरचित।
श० स्तो० म० नि०	=शब्दस्तोममहानिधि कोष, श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य सङ्कलित।
सा० वे०	=सामवेद, पूर्वार्चिक, प्रपाठक, दशति, मन्त्र। उत्तरार्चिक, प्रपाठक, अर्धप्रपाठक, सूक्त वा तृच।
( )	इस कोष्ठ में मन्त्र के शब्द हैं।
[ ]	ऐसे कोष्ठ के शब्द व्याख्या वा अध्याहार हैं।
०—...	=अन्त के भाग में पूर्व भाग मिलाकर पूरा पद करलें, जैसे अश्विना=०-नौ=अश्विनौ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

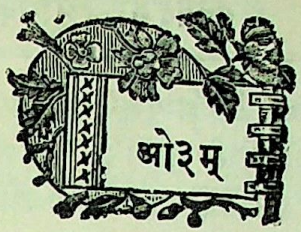

अथर्ववेदभाष्यभूमिका ॥

१-ईश्वरस्तुतिप्रार्थना ।

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्व १ र्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१॥

अथर्व० का० १० सू० ८ म० १ ॥

(यः) जो परमेश्वर (भूतम्) अतीत काल (च) और (भव्यम्) भविष्यत् काल का, (च) और (यः) जो (सर्वम्) सब संसार का (च) अवश्य (अधितिष्ठति) अधिष्ठाता है । (च) और (स्वः) सुख (यस्य) जिसका (केवलम्) केवल स्वरूप है, (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) सबसे बड़े (ब्रह्मणे) ब्रह्म जगदीश्वर को (नमः) नमस्कार है ॥

हे परमपिता, परमात्मन् ! आप भूत, भविष्यत्, वर्तमान और सब जगत् के स्वामी हैं, आप केवल आनन्द स्वरूप और अनन्त सामर्थ्य वाले हैं। हे प्रभु ! आप हमारे हृदय में सदा विराजिये, आपको हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ॥ २ ॥

अथर्व० का० ६ सू० १०८ म० ४ ॥

(अग्ने) हे सर्वव्यापक प्रकाश स्वरूप परमेश्वर ! (याम्) जिस (मेधाम्) धारणावती बुद्धि का (भूतकृतः) यथार्थ काम करने हारे, (मेधाविनः) दृढ़ बुद्धि वाले, (ऋषयः) वेद का तत्त्व जानने वाले ऋषि, (विदुः) ज्ञान रखते हैं, (तया) उस (मेधया) अचल बुद्धि से (माम्) मुझको (अद्य) आज (मेधाविनम्) अचल बुद्धि वाला (कृणु) कर ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे सर्वविद्यामय जगदीश्वर! आपके अनुग्रह से वह दृढ़ निश्चल बुद्धि हमारे हृदय में विराजमान रहे जैसी धार्मिक, विवेकी, परोपकारी ऋषि महात्माओं की होती है, जिससे हमें वेदों का यथार्थ ज्ञान हो और हम संसार भर में उसका प्रकाश करें ॥

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः। विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥ ३ ॥

अथर्व० का० १ सू० ३१ म० ४ ॥

(नः) हमारी (मात्रे) माता के लिये (उत) और (पित्रे) पिता के लिये (स्वस्ति) आनन्द (अस्तु) होवे, और (गोभ्यः) गौओं के लिये (पुरुषेभ्यः) पुरुषों के लिये और (जगते) जगत् के लिये (स्वस्ति) आनन्द होवे (विश्वम्) संपूर्ण (सुभूतम्) उत्तम ऐश्वर्य और (सुविदत्रम्) उत्तम ज्ञान वा कुल (नः) हमारे लिये (अस्तु) हो, (ज्योक्) बहुत काल तक (सूर्यम्) सूर्य को (एव) ही (दृशेम) हम देखते रहें ॥

हे परमरक्षक परमात्मन्! हमें वेद विज्ञान दीजिये जिससे हम अपने कर्तव्य को समझें और करें, अपने हितकारी माता पिता आदि सब परिवार, सब मनुष्यों, सब गौ आदि पशुओं, और सब संसार की सेवा कर सकें, और सबके आनन्द में अपना आनन्द जानें, और जैसे सूर्य के प्रकाश में सब कामों को सुख से करते हैं, वैसे ही हे प्रकाशमय, ज्ञानस्वरूप, सर्वान्तर्यामी प्रभु! आप के ध्यान में मग्न होकर हम सदा प्रसन्न चित्त रहें ॥

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ १ ॥

ऋ० १०।९०।९, यजु० ३१।७, तथा अथर्व० १९।६।१३

(तस्मात्) उस (यज्ञात्) पूजनीय और (सर्वहुतः) सबके ग्रहण करने योग्य परमेश्वर से (ऋचः) ऋग्वेद [पदार्थों की गुणप्रकाशक विद्या] के मन्त्र और (सामानि) साम वेद [मोक्ष विद्या] के मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न हुये। (तस्मात्) उससे (छन्दांसि) अथर्ववेद [आनन्ददायक विद्या] के मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न हुये, और (तस्मात्) उससे ही (यजुः) यजुर्वेद [सत्कर्मों का ज्ञान] (अजायत) उत्पन्न हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादुपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्। स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ २ ॥

अथर्व० का० १० सू० ७। म० २० ॥

(यस्मात्) जिस परमेश्वर से प्राप्त करके (ऋचः) पदार्थों के गुण प्रकाशक मन्त्रों को (अप-अतक्षन्) उन्होंने [ऋषियों ने] सूक्ष्म किया [भले प्रकार विचारा], (यस्मात्) जिस ईश्वर से प्राप्त करके (यजुः) सत्कर्मों के ज्ञान को (अप-अकषन्) उन्होंने कसा, अर्थात् कसौटी पर रक्खा (सामानि) मोक्ष विद्यायें (यस्य) जिसके (लोमानि) रोम के समान व्यापक हैं, और (अथर्व-अङ्गिरसः) अथर्व अर्थात् निश्चल जो परब्रह्म है उसके ज्ञान के मन्त्र (मुखम्) मुख के समान मुख्य हैं, (सः) वह (एव) निश्चय करके (कतमःस्वित्) कौन सा है। [इसका उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) खंभ के समान ब्रह्मांड का सहारा देने वाला ईश्वर (ब्रूहि) तू कह ॥

इससे सिद्ध है कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ईश्वरकृत हैं, और चारों वेद सामान्यता से सार्वलौकिक सिद्धान्तों से परिपूर्ण होने के कारण मनुष्य मात्र और सब संसार के लिये कल्याणकारक हैं।

उस परम पिता जगदीश्वर का अति धन्यवाद है कि उसने संसार की भलाई के लिये सृष्टि के आदि में अपने अटल नियमों को इन चारों वेदों के द्वारा प्रकाशित किया। यह चारों वेद एक तो सांसारिक व्यवहारों की शिक्षा से परमात्मा के ज्ञान का, और दूसरे परमात्मा के ज्ञान से सांसारिक व्यवहारों का उपदेश करते हैं। संसार में यही दो मुख्य पदार्थ हैं जिनकी यथार्थ प्राप्ति और अभ्यास पर मनुष्य मात्र की उन्नति निर्भर है। इन चारों वेदों को ही त्रयी विद्या [तीन विद्याओं का भण्डार] कहते हैं, जिसका अर्थ परमेश्वर के कर्म उपासना और ज्ञान से संसार के साथ उपकार करना है।

वेदों में सार्वभौम विज्ञान का उपदेश है।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १ ॥

अथर्ववेद—का० ११, सू० ५, म० १७।

(ब्रह्मचर्येण) वेदविचार और जितेन्द्रियता रूपी (तपसा) तप से (राजा) राजा (राष्ट्रम्) राज्य की (वि) अनेक प्रकार से (रक्षति) रक्षा करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आचार्यः) अंगों और उपाङ्गों सहित वेदों का अध्यापक, आचार्य (ब्रह्मचर्येण) वेद विद्या और इन्द्रियदमन के कारण (ब्रह्मचारिणम्) वेद विचारने वाले जितेन्द्रिय पुरुष से (इच्छते) प्रेम करता है, अर्थात् वेदों के यथावत् ज्ञान, अभ्यास, और इन्द्रियों के दमन से मनुष्य सांसारिक और पारमार्थिक उन्नति की परा सीमा तक पहुंच जाता है ॥

भगवान् कणादमुनि कहते हैं—

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे ॥ वैशे० द० ६ । १ । १ ॥

वेद में वाक्य रचना बुद्धि पूर्वक है [अर्थात् वेद में सब बातें बुद्धि के अनुकूल हैं] ॥

पण्डित अन्नम्भट्ट तर्कसंग्रह पुस्तक के शब्दखण्ड में लिखते हैं ।

वाक्यं द्विविधं वैदिकं लौकिकं च । वैदिकमीश्वरोक्तत्वात् सर्वमेव प्रमाणम् । लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणम् ॥

वाक्य दो प्रकार का है, वैदिक और लौकिक । वैदिक वाक्य ईश्वरोक्त होने से सब ही प्रमाण हैं । लौकिक वाक्य केवल सत्यवक्ता पुरुष का वचन प्रमाण है ॥ मनु महाराज मनुस्मृति में लिखते हैं ।

वेदमेव सदाभ्यसेत् तपस्तप्यन् द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ मनु० २।१६६ ॥

द्विजों [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों] में श्रेष्ठ पुरुष, [ब्रह्मचर्य आदि] तप तपता हुआ, वेद ही का सदा अभ्यास करे । वेदों का अभ्यास ही पण्डित पुरुष का परम तप यहां [इस जन्म में] कहा जाता है ॥ १ ॥

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति ॥ मनु० १२।९७ ॥

चार वर्ण [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र,] तीन लोक [स्वर्ग, अन्तरिक्ष, भूलोक], चार आश्रम [ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास] और भूत, वर्तमान और भविष्यत्, अलग अलग सब वेद से प्रसिद्ध होता है ॥ २ ॥

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ मनु० १२ । १०० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद शास्त्र का जानने वाला पुरुष सेनापति के अधिकार, और राज्य, और भी दण्ड देने के पद, और सब लोगों पर आधिपत्य [चक्रवर्ति राज्य] के योग्य होता है ॥ ३ ॥

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥मनु०१२।१०२॥

वेद शास्त्र के अर्थ का तत्त्व जानने वाला पुरुष चाहे किसी आश्रम में रहे, वह इस लोक [जन्म] में ही रहकर मोक्ष [परम आनन्द] पद के लिये योग्य होता है ॥ ४ ॥

इसी प्रकार सब शास्त्रों में वेदों की अपूर्व महिमा का वर्णन है।

इन दिनों प्रत्येक मनुष्य वेद वेद पुकार रहा है जर्मनी, इंग देश आदि विदेशों में वेदों की चर्चा फैल रही है। वेदों के भिन्न २ भागों के अनुवाद भी अंग्रेज़ी, लेटिन, जर्मन आदि भाषाओं में वहां के विद्वानों ने अपनी अपनी शक्ति के अनुसार किये हैं। भट्ट ग्रिफ़्फ़िथ साहिब ने चारों वेदों का अंग्रेज़ी अनुवाद वैदिक छन्दों में छन्दोबद्ध किया है। महर्षि श्रीमद्दयानन्द सरस्वती का वेद विषयक परिश्रम सुप्रसिद्ध है। उनके रचे निम्नलिखित वैदिक ग्रन्थ महा उपकारी हैं।

१—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ।
२—ऋग्वेदभाष्य [जो मण्डल ७ सूक्त ६१ मन्त्र २ तक हुआ है] ॥
३—यजुर्वेदभाष्य ।
४—सत्यार्थप्रकाश ।

अन्य भी विद्वानों श्री सायणाचार्य आदि ने वेदों की रक्षा और व्याख्या के लिये अनेक प्रयत्न किये हैं, और अब भी विद्वान् लोग परिश्रम उठा रहे हैं ॥

३—अथर्ववेद ॥

ऊपर कह आये हैं कि ईश्वरकृत चारों वेदों में से अथर्ववेद एक वेद है। उसके नाम छन्द (छन्दांसि), अथर्वाङ्गिरा (अथर्वाङ्गिरसः) और ब्रह्मवेद हैं। इन शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं। (१) अथर्ववेद, यह अथर्वा [अथर्वन्] और

(१) अथर्वाणोऽथनवन्तस्थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः—निरु० ११ । १८ । स्नामदिपद्यर्त्तिपृशकिभ्यो वनिप् (उ० ४ । ११३) इति अ+थर्व चरणे–वनिप् वकारलोपः । न थर्वति न चरतीति अथर्वा दृढस्वभावः । हलश्च (पा० ३ । ३ । १२१) इति विद ज्ञाने–घञ् । इति वेदो ज्ञानम् । अथर्वणो दृढस्वभावस्य परमेश्वरस्य वेदोऽथर्ववेदः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद इन दो शब्दों का समुदाय है। थर्व धातु का अर्थ चलना और अथर्व का अर्थ निश्चल है, और वेद का अर्थ ज्ञान है, अर्थात् अथर्व, निश्चल, जो एक रस सर्वव्यापक परब्रह्म है उसका ज्ञान अथर्ववेद है। (२) छन्द, इसका अर्थ आनन्ददायक है, अर्थात् उसमें आनन्ददायक पदार्थों का वर्णन है। (३) अथर्वाङ्गिरा, इस पद का अर्थ यह है कि उसमें अथर्व, निश्चल परब्रह्म बोधक अङ्गिरा अर्थात् ज्ञान के मन्त्र हैं। (४) ब्रह्मवेद अर्थात् जिसमें ब्रह्म जगदीश्वर का ज्ञान है, और जिसके मनन और साक्षात् करने से ब्रह्माओं [ब्राह्मणों, ब्रह्मज्ञानियों] को मोक्ष सुख प्राप्त होता है॥

अथर्ववेद संहिता भट्ट आर० रोथ साहिब और डबिल्यू० डी० व्हिटनी साहिब [Professors R. Roth and W. D. Whitney] ने जर्मनी देश के बर्लिन नगर में सन् १८५६ ईस्वी में छपवाई थी [See Page 10, Critial Notes on Atharva Samhita With the Commentary of Sayanacharya, Government Central Book Depot, Bombay; and page XIII, Griffith's English Translation of the Atharva Veda.] अथर्ववेद संहितायें तो और भी छप गयी हैं। श्री सायणाचार्यकृत[1] भाष्य केवल गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो बंबई की ओर से छपा है, वह भी असंपूर्ण [लगभग आधे वेद का भाष्य] और केवल संस्कृत में हैं और उसके चार वेष्टनों का मूल्य ४०) चालीस रुपया है। इससे बड़े २ धनी विद्वान् ही उसको देख सकते हैं, सामान्य पुरुषों को उसका मिलना और समझना कठिन है।

४—अथर्ववेद विस्तार॥

हमारे पास तीन अथर्व संहिता पुस्तक हैं, १—सायणभाष्य सहित बम्बई गवर्नमेन्ट मुद्रापित, २—पं० सेवकलाल कृष्णदास मुद्रापित, और ३—अजमेर

---

(२) चन्देरादेश्च छः (उ० ४। २१६) इति चदि आह्लादने—असुन्, चस्य छः। चन्दयति आह्लादयतीति छन्दः॥

(३) अङ्गतेरसिरिरुडागमश्च (उ० ४। २२६) इति अगि गतौ—असि, इरुट् आगमः। अङ्गति गच्छति प्राप्नोति जानाति वा परब्रह्म येनेति अङ्गिराः, वेदः। अथर्वणोऽङ्गिरसोऽथर्वाङ्गिरसः॥

(४) बृहेर्नोऽच्च (उ० ४। १४६) इति बृहि वृद्धौ—मनिन्। नकारस्य अकारः, रत्वं च। बृंहति वर्धते सर्वेभ्योऽधिको भवतीति ब्रह्म परमेश्वरः। ब्रह्मणो वेदो ब्रह्मवेदः॥

१. सायणाचार्य का भाष्य अब साधु आश्रम होशियारपुर का छपा सम्पूर्ण प्राप्य है॥ सम्पा०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक यन्त्रालय मुद्रित। हमने तीनों संहिताओं को मिलाकर अध्ययन किया है विस्तार का विवरण अजमेर पुस्तक के अनुसार अन्य पुस्तकों से मिलान करके आगे लिखा है।

अथर्ववेद (**ये त्रिषप्ताः परियन्ति....**) इस मन्त्र से लेकर [**पुनाय्यं तदश्विना कृतं वा.....**] इस मन्त्र तक है। इसमें २० बीस काण्ड ७३१ सात सौ इकतीस सूक्त, और ५,९७७ पांच सहस्र नौ सौ सतहत्तर मन्त्र हैं। यह गणना आगे भूमिका के अन्त में चक्रों में वर्णित है।

उक्त तीनों पुस्तकों को मिलाने से मन्त्र संख्या में यह भेद है।

(अ) पं० सेवकलाल के पुस्तक से मिलान।

	उक्त पुस्तक में मन्त्र		अन्य दो पुस्तकों में मन्त्र	भेद
		काण्ड ८।		
सूक्त १०। पर्याय १।	म० १ से ७=७	=	१३	−६
,, ,, ३।	म० १८ से २१=४	=	८	−४
,, ,, ४।	म० २२ से २५=४	=	१६	−१२
,, ,, ५।	म० २६ से २९=४	=	१६	−१२
	योग	१९	५३	−३४
		काण्ड ९		
सूक्त ६। पर्याय ४।	म० ४० से ४४=५	=	१०	−५
,, ,, ५।	म० ४५ से ४८=४	=	१०	−६
	योग	९	२०	−११
		काण्ड १९।		
सूक्त ३८।	म० १ से २ = २	=	३	−१
,, ४७।	म० १ से १० = १०	=	९	+१
,, ५४।	म० ५, ६ = २	=	१ (म० ५)	+१
,, ५५।	म० १ से ७ = ७	=	६	+१
,, ५७।	म० १ से ६ = ६	=	५	+१
	योग	२७	२४	+३
		काण्ड २०।		
सूक्त ९६।	म० १—२३=२३	=	२४	−१
सूक्त १३१।	म० १—२३=२३	=	२०	+३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग	४६	४४	+२
महा योग	१०१	१४१	—४०

सब मिलाकर पं० सेवकलाल कृष्णदास के पुस्तक में जो ४० मन्त्र घटते हैं, **(हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् । यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यकनस्ते विवृहामसि ।)** वस्तुतः यह एक मन्त्र अन्य दोनों पुस्तकों के का० २० सू० ६६ का मंत्र १६ उस में नहीं है। अन्य ३९ मंत्रों की न्यूनता केवल मंत्र भागों के छोटे बड़े और आगे पीछे होने से है, इनका पूरा पाठ तो मिलाकर अन्य पुस्तकों के तुल्य है। इस गणना से इस पुस्तक के समग्र मंत्र ५,९७७—४०=५,९३७ होते हैं ॥

(आ)–वैदिक यंत्रालय के पुस्तक का सायणभाष्य सहित बम्बई के पुस्तक से मिलान।

सायणभाष्य वाले पुस्तक में इतना अधिक है कि काण्ड १६ के अन्त में ७२ मंत्र का एक पर्य्याय है जो १८ मंत्र इस पुस्तक के काण्ड ११ सूत्र ४ पर्याय २ में मंत्र १ से १८ तक, और अन्य पुस्तकों के काण्ड ११ सूक्त ३ पर्याय २ में मंत्र ३२ से ४६ तक आ चुके हैं, अर्थात् इन १८ मंत्रके ७२ मंत्र होकर सायण भाष्य में एक पर्याय काण्ड १६ के अंत में अलग है। अन्य पुस्तकों में [भट्ट ग्रिफ्.फिथ के अंगरेज़ी अनुवाद सहित] यह पर्याय काण्ड १६ के अंत में नहीं है, केवल काण्ड ११ में ही आया है, यही पाठ हमने रक्खा है। यह पुनर्लेख सायण पुस्तक में उस समय की पाठ प्रणाली के अनुसार दीखता है। इस बात छोड़कर शेष मंत्र संख्या अजमेर पुस्तक के तुल्य है ॥

५—सूक्त भेद ॥

सायण भाष्य में ७५९ [सात सौ उनसठ] और अजमेर वैदिक यन्त्रालय की पुस्तक में ७३१ सूक्त हैं। यह २८ सूक्तों की अधिकता का विवरण नीचे दिखाया जाता है। मन्त्रों का वर्णन ऊपर हो चुका है।

काण्ड जिनमें भेद है	सायण भाष्य में सूक्त	वैदिक यंत्रालय की पुस्तक में सक्त	सायणभाष्य में अधिक
७	१२३	११८	५
८	१५	१०	५
९	१५	१०	५
११	१२	१०	२
१२	११	५	६
१३६	९	४	५
६ कांड	१८५	१५७	२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—अनुवाक ।

सूक्त और मंत्रों के अतिरिक्त, काण्डों का विभाग अनुवाक और सूक्तों में है । परन्तु काण्डों में सूक्तों की गणना लगातार चली गयी है, इससे अनुवाकों की गणना को यहां नहीं दिखाया, पुस्तक के भीतर अपने स्थान पर दिखाया है ।

७—सायण भाष्य असंपूर्ण है

अथर्ववेद संहिता, सायणाचार्य विरचित भाष्य सहित, गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो, बम्बई बड़े खोज से छपी दीखती है, इसके अतिरिक्त और कोई भाष्य प्रतीत नहीं होता । इस पुस्तक में केवल दस काण्डों से कुछ अधिक का भाष्य इस प्रकार है–काण्ड १, २, ३, ४, ६, ७, ८ [सूक्त ६ तक], ११, १७, १८, १९, २० [सूक्त ३७ तक] [इतना भाष्य नहीं है–काण्ड ५, ८ [सूक्त ७-७५], ९, १०, १२, १३, १४, १५, १६, २०, (सूक्त ३८-१४३)] ॥

८—अथर्ववेद पुस्तकें और अपना भाष्य ।

१–अथर्ववेद संहिता श्री सायणाचार्य विरचित भाष्य सहित,गवर्नमेन्ट बुकडिपो, बम्बई,चार वेष्टन । वेष्टन १ तथा २ सन् १९०५, वेष्टन ३ तथा ४ सन् १८९८ ईसवी ।

२—अथर्ववेद संहिता, मूल, पण्डित सेवकलाल कृष्णदास संशोधित–बम्बई, सन् १८९३ [पत्थर का छापा] ।

३—अथर्ववेद संहिता मूल वैदिक यंत्रालय, अजमेर, संवत् १९५८ विक्रमीय [सन् १९०१ ईस्वी] ।

४—अथर्ववेद संहिता, अंग्रेज़ी अनुवाद, भट्ट ग्रिफ्फिथ साहिब कृत दो वेष्टन, वेष्टन १ सन् १८९५, वेष्टन २ सन् १८९६ ई० ।

इस भाष्य के बनाने में यह सब पुस्तकें और श्री सायणाचार्य कृत ऋग्वेद और सामवेद भाष्य, श्री महीधर कृत शुक्ल यजुर्वेद भाष्य, श्रीमद्दयानन्द सरस्वती कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य, पण्डित तुलसीराम कृत सामवेद भाष्य, यास्क मुनि कृत निघण्टु और निरुक्त, और पाणिनि मुनि कृत अष्टाध्यायी व्याकरण, सर राजा राधाकांत देव बहादुर कृत शब्दकल्पद्रुम कोष, और अन्य ग्रंथ मुझे बहुत उपयोगी हुये हैं, इसलिये उन ग्रंथकर्त्ता महाशयों को मेरा हार्दिक धन्यवाद है ।

हमारे भाष्य में संहिता पाठ वैदिक यंत्रालय अजमेर के पुस्तक का है, पदपाठ इस पुस्तक और सायण भाष्य के अनुसार है । पाठान्तर टिप्पणियों में दिखाया है । स्पष्टता और संक्षेप के ध्यान से भाष्य का क्रम यह रक्खा है ।

१—देवता, छन्द, उपदेश । २—मूलमंत्र—स्वरसहित ।
३—पदपाठ—स्वरसहित । ४–सान्वय भावार्थ । ५—भाषार्थ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—आवश्यक टिप्पणी, संहिता पाठान्तर, अनुरूप विषय और वेदों में मंत्र का पता आदि विवरण।

७—शब्दार्थ व्याकरणादि प्रक्रिया—व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, पर्याय आदि।

सहज पते के लिये काण्ड काण्ड के विषय आदि और अथर्ववेद के अन्य वेदों में मंत्रों की सूची भी दी है।

९—ऋषि, देवता, छन्द।

ऋषि वह महात्मा कहलाते हैं जिन्होंने वेदों के सूक्ष्म अर्थों को प्रकाशित किया है [निरु० १। २०। तथा २। ११], देवता उसको कहते हैं जिसके गुणों का वर्णन मंत्र में प्रधानता से हो [निरु० ७। १] मिताक्षर वाक्य छन्द कहाते हैं जिस प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद में सूक्त इत्यादि के साथ ऋषि देवता और छन्द लिखे हैं, उस प्रकार अथर्ववेद संहिताओं में नहीं हैं। हमने इस भाष्य में सूक्तों के शीर्षक पर देवता, छन्द और प्रकरण दिये हैं। ऋषियों का निश्चय नहीं हो सका। [टिप्पणी—द्वितीय आवृत्ति में अथर्ववेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणिका सम्पादित पं० रामगोपाल शास्त्री लाहौर मुद्रित संवत् १९७९ वि०, सन् १९२२ ई० से ऋषि भी लिख दिये हैं—क्षे० दा० त्रिवेदी, भाद्रपद संवत् १९८२।]

१०—निवेदन।

निःसन्देह अब वह समय है कि सब स्त्री पुरुष घर घर में वेदों का अर्थ जाने और धर्मज्ञ होकर पुरुषार्थी बनें। भारतीय और अन्य देशीय विद्वान् भी वेदों का अर्थ खोजने और प्रकाशित करने में बड़ा परिश्रम उठा रहे हैं। मेरा भी संकल्प है कि अथर्ववेद का यथाशक्ति सरल, स्पष्ट, प्रामाणिक, और अल्पमूल्य भाष्य एक एक पूरे काण्ड के पुस्तक रूप में प्रस्तुत करूं, जिससे सब लोग स्वाध्याय [वेद के अर्थ समझने और विचारने] में लाभ उठावें। और यदि वैदिक जिज्ञासु वेदों के सत्यार्थ और तत्त्वज्ञान प्राप्ति में कुछ भी सहायता पावेंगे तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

५२ लूकरगंज, प्रयाग
(अलाहाबाद)।
भाद्र कृष्ण जन्माष्टमी १९६९ वि०,
५ सितम्बर १९१२।

क्षेमकरणदास त्रिवेदी।
जन्म, कार्त्तिकशुक्ला ७ संवत् १९०५ विक्रमीय,
(ता० ३ नवम्बर १८४८ ईस्वी)
जन्मस्थान, ग्राम शाहपुर मडराक,
जिला अलीगढ़।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशकीयम्

पिछले अनेक वर्षों से मेरे पितामह प्रयाग निवासी पूज्य पं० क्षेमकरण दास जी त्रिवेदी कृत अथर्ववेद भाष्य के द्वितीय तथा तृतीय काण्ड समाप्त हो गये थे। अतः ग्राहकों द्वारा मांग होने पर भी हम सम्पूर्ण भाष्य भेजने में असमर्थ थे।

१३ फरवरी १९३९ ई० को पूज्य त्रिवेदी जी का देहान्त जयपुर में अपने पुत्र श्री विष्णुदयाल जी (मेरे पूज्य पिता जी) के पास हो गया। उसके बाद पिताजी सपरिवार इलाहाबाद लौट आये। मेरी माता जी श्रीमती रूपरानी सेठ की वेदों में अपार श्रद्धा थी। वह बराबर पिताजी द्वारा वेदों को ग्राहकों के पास नियमित रूप से भिजवाती रहती थीं। ३ जून १९६३ ई० को मेरे पिता जी तथा १४ फरवरी ९६७ ई० (बसन्तपंचमी के दिन) मेरी माता जी का देहान्त हो गया। मेरे एक मात्र भ्राता डा० इन्द्रदयाल सेठ पी० एच० डी० १९६१ ई० में नाईजीरिया यूनिवर्सिटी में गणित प्राध्यापक होकर पहले ही जा चुके थे। [इस समय वह लेगौस विश्वविद्यालय में ज्येष्ठ प्राध्यापक हैं] उनके पीछे उनकी पत्नी डा० कीर्ति सेठ डी० फिल, प्राध्यापिका शिक्षाशास्त्र प्रयाग विश्वविद्यालय ३४ लूकरगंज, इलाहाबाद से बराबर पार्सल भेजती रहती थीं, परन्तु लगभग डेढ़ वर्ष से वह भी नाईजीरिया चली गयीं अतः इस कार्य में ढील आ गयी थी।

अपने प्राचार्यपद से अवकाश प्राप्त करके मैं अगस्त ६९ में अपने भाई से मिलने इलाहाबाद गयी। मैंने उनसे अथर्ववेद भाष्य के दूसरे व तीसरे काण्ड की द्वितीयावृत्ति छपवाने का अनुरोध किया। उन्होंने मेरी प्रार्थना तुरन्त स्वीकार कर ली। फलस्वरूप मैंने अपनी पुत्रीवत् डा० कु० प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्या, विद्यावारिधि, आचार्या, जिज्ञासु स्मारक कन्या पाणिनि महाविद्यालय, वाराणसी, (जिनकी विद्वत्ता से आर्य जगत् सुपरिचित है) को यह काम सौंपा। उन्होंने बड़ी तन्मयता से अनेक ग्रन्थों को देख कर बड़े यत्न से प्रैस कापी तैयार की एवं स्वयं ही प्रूफ संशोधन किया। तथा स्थान २ पर उचित टिप्पणियां भी दे दी हैं। मैं उनकी अत्यन्त ही आभारी हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त में मैं अपने सुपुत्र श्री अजयकुमार जौहरी, डिप्टी चीफ मैकेनिकल इंजीनियर, डीजल एंजिन कारखाना वाराणसी की आभारी हूँ, जिनके सतत प्रयास एवं सहयोग से ही इन दोनों काण्डों का नवीन संस्करण अपने नूतन रूप में जनता के समक्ष आ सका। परमात्मा से प्रार्थना है कि नयी पीढ़ी को ऐसे ही वेदों के प्रचार करने की शक्ति दे, ताकि ऋषियों की परम्परा विश्व में जारी रहे।

अथर्ववेद का सम्पूर्ण भाष्य पू० त्रिवेदी जी से पहले भारत की किसी भाषा में नहीं था। संस्कृत में भी सायण भाष्य पूरा नहीं है। उन्होंने इस वेद का हिन्दी और संस्कृत में प्रामाणिक भाष्य करके महान् उपकार किया है।

इस वेद के बीसों काण्डों का भावपूर्ण संक्षिप्त भाष्य स्त्री पुरुषों के समझने योग्य, अति सरल शब्दों में विषयसूची, मन्त्रसूची, पदसूची आदि सहित अल्प मूल्य में उपलब्ध है। वेदप्रेमी जन स्वाध्याय, पुस्तकालयों और पारितोषिकों के लिये भाष्य मँगवायें, और जगत्पिता परमात्मा के पारमार्थिक और सांसारिक उपदेश, ब्रह्मविद्या, वैद्यकविद्या, राजविद्यादि अनेकविद्याओं का तत्त्व जानकर आनन्द भोगें। छपाई उत्तम और कागज बढ़िया है।

पूज्य त्रिवेदी जी के समस्त ग्रन्थ जुलाई ७१ से उपलब्ध होंगे। ग्राहक शीघ्र ही आर्डर दें।

निवेदिका,

सुशीला देवी जौहरी

भू० पू० प्राचार्या

भगवानदीन आर्य कन्या महाविद्यालय

लखीमपुर खीरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीयम्

कभी कभी अज्ञात रूप से बीज रूप में डाले हुये कल्पनातीत कुछ संस्कार जब मूर्तिमान् होकर सामने आते हैं, तो हृदय आश्चर्ययुक्त मधुर-मधुर आनन्द से आप्लावित हो उठता है। मेरे जीवन के अधिकांश प्रसङ्ग ऐसे ही रहे हैं। इस अथर्ववेद भाष्य सम्पादन सम्बन्धी प्रसङ्ग ने भी उस पूर्वानुभूति में एक नई कड़ी जोड़ी है। अध्ययनावस्था में वैदिक साहित्य का परिचय देते हुये पदवाक्य प्रमाणज्ञ वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् मेरे पूज्य गुरुवर्य स्व० श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु जिस गौरव के साथ श्री पं० क्षेमकरणदास जी त्रिवेदी एवं उनके कार्य के सम्बन्ध में बताते थे, उसकी छाप मेरे अन्तस्तल में जाने अनजाने बड़ी गहराई से बैठ गई थी। जिसके फलस्वरूप ही सन् १९७० में इस कार्य के सामने आने पर विविध कार्यों में अति व्यस्त होते हुये भी मैंने पूर्ण रुचि मनोयोग एवं निष्ठा के साथ कार्य में समय लगाया।

इस कार्य को करते हुये सदैव मेरे सामने आर्यसमाज का गौरव एवं हितरूपी लक्ष्य ही सामने रहा है, स्वकीयाभिव्यक्ति नहीं। अतएव अनेकों बार धर्मसङ्कट-रूपी तरणी में डूबती उतराती हुई इस भाग को सम्पादित कर सकी हूं। पुनरपि इन सभी झञ्झावातों को मैं भगवदर्पण कर प्रतिदान में आत्मप्रसाद पाकर सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हूँ। श्री पं० त्रिवेदी जी अपने इस भागीरथ प्रयास से स्वयं अमर होते हुये पीढ़ी दर पीढ़ी को भी अपनी विमल-धवल कीर्ति-सौरभ से सुरभित कर गये हैं, इसमें रञ्च मात्र भी सन्देह नहीं, अत एव आपके भाष्य का सम्पादन करते हुये मैं भी अपना सौभाग्य समझती हूं।

श्रद्धेय पण्डित जी ने जिस समय इस कार्य को प्रारम्भ किया था उस समय इङ्गलिश में ग्रिफिथ, ह्विटने का अथर्ववेद का अनुवाद[1] एवं संस्कृत में सायण

---

१. इन महानुभावों का यह कार्य अनुवाद रूप में ही है, भाष्य रूप में नहीं, जो कि वैदिक कोष निघण्टु आदि का पूर्ण आश्रयण न करने से शब्दार्थों को ठीक ठीक न समझ कर दूषित रूप में किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का असम्पूर्ण भाष्य[1] ही उनके समक्ष था, जब कि ये दोनों ही पाश्चात्य तथा पौरस्त्य प्रकार भ्रमोत्पादक एवं अथर्ववेद को जादू-टोना तथा मारण-उच्चाटन का वेद बताने में एक दूसरे से बढ़े चढ़े थे। ऐसी अवस्था में ऋषि के मन्तव्यानुकूल पदपाठ, भाषार्थ, भावार्थ एवं विस्तृत व्याकरण प्रक्रिया सहित श्री त्रिवेदी जी का भाष्य किस आर्यम्मन्य को गौरवान्वित नहीं करेगा। उन्होंने जिस तपस्या एवं लग्न से अपनी वृद्धावस्था में इस बृहत् कार्य को पूर्ण करके वेदों के प्रति सोचने का एक नूतन किन्तु सत्य-सनातन दृष्टिकोण पाश्चात्य एवं एतद्देशीय सायणानुसारी विद्वानों के समक्ष रखा, वह अत्यन्त ही श्लाघनीय तथा उपादेय है। सायणाचार्य जी की विद्वत्ता की आज भी समाज में बड़ी धाक है, किन्तु वस्तु-स्थिति यह है कि ये प्रायः मन्त्रों में अप्रसिद्ध एवं कठिन शब्दों के आते ही व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति करनी छोड़ रूढ़ि व्यक्ति विशेषवाची पिशाच-पिशाची[2] राक्षस-राक्षसी आदि भ्रामक अर्थ करने लग जाते हैं। जबकि उन्हें ऐसे स्थलों पर अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करना चाहिये। इस दृष्टि से श्री पं० त्रिवेदी जी ने सभी शब्दों की व्युत्पत्तियों को दिखाते हुये अपने आगे आने वाले कतिपय चतुर्वेद-भाष्यकारों को भी पीछे छोड़ दिया है सायण के अतिरिक्त आज अथर्ववेद के सम्पूर्ण मन्त्रों का पदपाठ उपलब्ध नहीं होता। त्रिवेदी जी ने इस दिशा में भी न केवल एक शृङ्खला जोड़ी है अपितु अर्थ के अनुसार कतिपय स्थलों में नूतनता प्रदान की है। यही कारण है कि आज चहुं ओर आपके भाष्य की सत्कीर्त्ति एवं माँग है। मेरे पास समय समय पर जो पत्र आये हैं वे इस बात के साक्षी हैं।

---

१. उस समय तक सायण का अथर्ववेद भाष्य पूर्ण उपलब्ध नहीं था, पर अब वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर से सम्पूर्ण प्रकाशित हो चुका है।

२. द्र०—अ०/सा० भा० २। १४। २—मगुन्दी नाम काचन पिशाची। तथैव—अ०२। १४। ३ द्र०—यातुधान्यः। अ० ३। २६। ४, पञ्चापूपम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह हमारे लिये अति दुर्भाग्य का विषय रहा है कि अथर्ववेद (ब्रह्मवेद) जो कि (मुख्य रूप से) पदार्थ विद्या[1] एवं गृहस्थ आदि विषयों का वर्णन होने से अत्यन्त उपकारी एवं मुख्य है की अध्ययन-अध्यापनादि में महती उपेक्षा की गई है। आज अन्य वेदों की अपेक्षा अथर्ववेद के शाखाध्येता अतीव दुर्लभ हो गये हैं। यही कारण है कि अथर्ववेद के शाखागत पाठों के इतने अधिक भेद सामने आते हैं जिन्हें शाखागत पाठ भेद न मान कर मूल संहिता के पाठ भेद के रूप में कुछ विद्वान् दिखाते व मानते हैं, जो कि वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने से असंगत है। हमें दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि आधि-व्याधि नाशक पदार्थ विद्या सम्बन्धी अत्युपयोगी इस वेद पर हमने स्वतः तो कोई खोज विशेष की ही नहीं किन्तु ब्लूमफील्ड[2] ग्रिफिथ आदि जिन महाशयों ने अथर्ववेद के मन्त्रों को झाड़ फूँक, जादूगरी शान्तिपुष्टचीभचारार्थ मानते हुये अत्यन्त उपहास किया है, उनका ही अन्धानुकरण करते हुए हमारे यहाँ के विद्वानों ने अपनी सम्मति बनाई है[2]। इतना ही नहीं अपितु आज ऋषिकृत वैदिक सत्साहित्य का मनमाना अर्थ करने वाले पाश्चात्यों के उच्छिष्टभोजी एतादृश जनों के द्वारा 'अथर्ववेद में शान्ति-पुष्टयभिचारादि विषयों को लेकर वेद में अनुसन्धान किये वा कराये जाते हैं। बड़ी हँसी आती है ऐसे पण्डितम्मन्य जनों पर जिन्होंने सीधे साधे 'उपनिषत्-सपत्नीबाधनम्[3]" आदि जिसका अर्थ है उपनिषत् = ब्रह्मविद्या की सपत्नी नाम

---

१. इसीलिये अथर्ववेद के प्रारम्भ में ही वाणियों का स्वामी मेरे लिए "त्रिषप्ता" ३ × ७ = २१ अर्थात् द्रव्य, गुण आदि सप्त पदार्थों में वर्त्तमान जो तीन गुण सत्त्व-रज-तम (=२१) उनके सम्बन्ध में उनके बलों = पराक्रमों को दधातु=धारण करावे विदित करावे। ऐसा कहा है। पदार्थ विद्या = परा विद्या की मुख्यता के सम्बन्ध में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में स्वामी जी महाराज लिखते हैं—"विज्ञान उसको कहते हैं कि जो कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों से यथावत् उपयोग लेना, और परमेश्वर से लेकर तृण पर्यन्त पदार्थों का साक्षात् बोध का होना·····इससे यह विषय इन चारों में भी प्रधान है·····। (ऋग्वेदा० वेदविषयविचार) अत एव **'अथर्वाङ्गिरसो मुखम्'** (अ०१०।७।२०) इस मन्त्र में आलङ्कारिक रीति से अथर्ववेद को परमेश्वर के मुखवत् मुख्य कहा है।

२. देखो ब्लूमफील्डकृत—'अथर्ववेद एवं गोपथ ब्राह्मण' का डा० सूर्यकान्त जी का अनुवाद।

३. अ० ३। १८। १–६, तु० ऋ० १०। १४५। १–६। ऋग्वेद में इस सूक्त का यही देवता माना है। इसलिये यह ब्रह्मविद्या के उपदेशपरक ही सूक्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविद्या[1] का बाधन ऐसे देवताक सूक्तों का जड़ी बूटियों द्वारा सपत्नी = सौत का बाधन कैसे २ हो ? ऐसा अर्थ किया है। ऐसे लोगों की बुद्धि पर हँसे या रोयें, कुछ समझ में नहीं आता।

शब्दों के निर्वचन—निरुक्तकार यास्क मुनि का सिद्धान्त है—'**अर्थनित्यः परीक्षेत, केनचिद् वृत्तिसामान्येन। अविद्यमाने सामान्येऽप्यक्षरवर्णसामन्यात् निर्ब्रूयात् नत्वेवं न निर्ब्रूयात्**[2]' अर्थात् अर्थ को प्रधान मान कर सब शब्दों का निर्वचन करे, अक्षर या वर्ण की समानता को ही लेकर निर्वचन करे किन्तु ऐसा न हो कि निर्वचन किसी शब्द का करे ही नहीं। वस्तुतः निर्वचन विषयक यह स्थल निरुक्त का अत्यन्त ही उपयोगी है। वेदार्थ का अनुगम करने के लिये प्रत्येक शब्दों का निर्वचन करना अत्यन्त आवश्यक है। निर्वचन का आश्रयण किये बिना वेद के मनमाने विग्रहवती देवता मान कर अर्थ किये जायेंगे, जैसा कि अर्वाचीन सायण प्रभृति भाष्यकारों ने किया है। इस तत्व को न समझने के कारण सायणाचार्य अनेकों स्थलों में शब्दों के प्रचलित अनार्ष कोषों के आधार पर रुढि अर्थ करते हैं, तथा शब्दानुकृति[3] कतिपय स्थलों में मानते हैं। तद्यथा गौदेवताक सूक्त अथर्व० ४। २१। ४ में 'संस्कृतत्रम्' शब्द का निराधार "**संस्कृतं स्याद् विशसितः संस्कृतत्रं च पाचकः**" अर्थात् संस्कृतत्रम् का गौ का मांस पकाने वाला यह अर्थ है। जब कि व्युत्पत्ति के आधार पर सम् पूर्वक डुकृञ् धातु से क्त प्रत्यय करके संस्कृतम् 'विशुद्ध' का अर्थ है देववाणी। संस्कृतं त्रायते इति 'संस्कृतत्रम्' अर्थात् देववाणी = गौ का रक्षक। पाठक देखें निर्वचन का आश्रयण करने से वेद हिंसारूपी जघन्य कुकृत्य से मुक्त हो गये[4]। इसी प्रकार सायणादि भाष्यकार शब्दों की व्युत्पत्ति न करने से प्रायः शब्दों के अर्थ अति अश्लील करते हैं।

---

१. सपत्नी से अभिप्राय सपत्नी के समान दुःख देने वाली लेना चाहिए। द्र० ऋ० / भा० ३। ६। ४, १। १०५। ८॥

२. निरु० २। १॥

३. तद्यथा अथर्व० ४। १५। १२ में गर्गरा को शब्दानुकृति माना है।

४. इस विषय में वेदार्थ करते हुये '**अथाप्यस्यां तद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति**' (निरु० २। ५) इस स्थल को भी ध्यान में रखना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस निर्वचन प्रक्रिया को अति व्यापक बनाने के लिये महाभाष्य में स्पष्ट कहा है—

बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम् ।
कार्यसशेषविधेश्च तदुक्तम् नैगमरूढिभवं हि सुसाधु ॥
नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् ।
यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् ॥

[म० भा० ३ । ३ । १]

अर्थात् उणादि इत्यादि में शब्दसिद्ध्यर्थ बाहुलक से कुछ ही प्रकृति एवं प्रत्यय का बोध कराया गया है, अतः कहीं प्रकृति कही हो प्रत्यय नहीं तो प्रत्यय की ऊहा कर लेनी चाहिये। तथैव प्रत्यय को देखकर प्रकृति की ऊहा कर लेनी चाहिये। इस प्रकार हमें पता चलता है कि शब्द के निर्वचन के समय प्रकृति, प्रत्यय, अनुबन्धादि की ऊहा (कल्पना विशेष) करके उस शब्द का शिष्ट[1] परम्परानुकूल अर्थ करना चाहिये मनमानी नहीं। क्योंकि वेद के शब्दों के अनुसार व्याकरण शब्द के साधुत्व का विधान करेगा।

हमारे इस संस्करण के वैशिष्ट्य—(१) प्रथम संस्करण में सर्वत्र धातु एवं उनके अर्थ वाचस्पत्यम् तथा आप्टे आदि कोषों के आधार पर रखे हैं। हमने उन्हें व्याकरणानुसारी ठीक बनाने के लिए धातुपाठ, क्षीरतरङ्गिणी काशकृत्स्न धातुपाठ एवं माधवीय धातुवृत्ति के आधार पर बदल दिया है ताकि धातुपाठादि पर अभ्यास किये हुये लोगों को सुगमता हो सके। इस प्रकार कतिपय स्वकल्पित धातुओं को[2] अप्रामाणिक जान कर हमने हटा भी दिया है। धातु के अर्थों को व्याकरणानुसारी करते हुये कहीं भी हमने पण्डित जी द्वारा किये गये अर्थों की क्षति नहीं होने दी है। इस प्रकार हमने अष्टाध्यायी, उणादि, निरुक्त, निघण्टु

---

१. महाभाष्य ३ । ६ । १०९ में प्रश्न किया है 'के पुनः शिष्टाः' ? उत्तर दिया—'वैयाकरणाः'। इस उत्तर में इतरेतराश्रयरूपी दोष दर्शाते हुये 'एवं तर्हि निवासतश्च आचारतश्च' शिष्ट का लक्षण करके शिष्टपरिज्ञानार्थाऽष्टाध्यायी' कहा है।

२. यथा—शल गतौ पृ० ४७३। सर्व गतौ पृ० ५५५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि के सभी स्थलों का अच्छी प्रकार मिलान करके पते आदि की अनेकानेक अशुद्धियों को ठीक कर दिया है यह कार्य बहुत समयसाध्य रहा है।

इसके अतिरिक्त यथावश्यक हमें शब्दों की प्रक्रिया पर ध्यान देकर कतिपय संशोधन करने पड़े हैं।

(२) मन्त्र एवं पदपाठ के स्वरों के मिलान का कार्य हमने बड़े ही मनोयोग से कई प्रतियों को लेकर किया है, जिससे अनेकानेक अशुद्धियों का शोधन हुआ है। छपते छपते भी कहीं स्वर के चिह्न न टूट जावें इसके लिये हमने सभी मुद्रण पत्रों का अच्छी प्रकार मिलान किया है। कहना न होगा कि व्याकरण-रीत्या स्वर वैदिकी प्रक्रिया का ज्ञान न होने पर यह कार्य दुष्कर ही नहीं अपितु असम्भव है। होशियारपुर से सम्पादित सायण भाष्य भी इस विषय में पूर्ण प्रामाणिक नहीं, क्योंकि उसमें भी अनेकों अशुद्धियां विद्यमान हैं[1]।

(३) प्रथम संस्करण में विवृति के चिह्न के स्थान पर केवल डैश (—) चिह्न था एवं जात्य स्वरित का चिह्न केवल ऊपर खड़ी रेखा के रूप में ही था, जिससे अनेक स्थलों में बहुविध संशय उत्पन्न होते थे, हमने उन सबको उपलब्ध पाठों के अनुसार परिवर्त्तित कर दिया है।

(४) उदाहरण रूप में आये हुये विभिन्न वेद के मन्त्रों दर्शन आदि के सूत्रों तथा पदपाठ आदि के टाइपों को मन्त्र से भिन्न टाइप में बदल कर हमने ग्रन्थ को सुन्दर आकार प्रदान करने की चेष्टा की है।

(५) इसके अतिरिक्त स्थान स्थान पर भाषार्थ एवं संस्कृत को देख कर मन्तव्य को स्पष्ट करने हेतु उचित टिप्पणियाँ भी दी हैं तथा प्रथम संस्करण में कुछ अस्पष्ट सी रह गई भाषा को भी कहीं कहीं ठीक किया है।

पाण्डुलिपि की अवस्था—इस अथर्ववेद भाष्य के पुराने संस्करण की प्रतियाँ यद्यपि इस समय कुछ शेष बची हैं, किन्तु वह अत्यन्त जीर्ण शीर्ण एवं दीमक की स्थान २ पर खाई हुई हैं। कहना न होगा कि इसके सम्पादन में यदि कुछ और विलम्ब किया जाता तो छपने के लिये भी प्रतियाँ दुर्लभप्राय हो जातीं। इस प्रकार मुझे सम्पादन के समय २-३ काण्ड की तो केवल एक ही प्रति

---

१. स्थालीपुलाक न्याय से यहाँ देखें—अ० २। ६। ५ में 'तर' का स्वर अशुद्ध। अ० २। १०। २ जामिशंसात् पदपाठ में विवृति नहीं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त हो सकी जिसे हमने वा०सं०वि०वि० वाराणसी के सरस्वती भवन से पुस्तक को मँगाकर तथा दूसरी एक प्रति कहीं से और मँगाकर प्रेस कापी बनाई।

विघ्न-बाधायें—इस कार्य को करते हुये हमारे इस 'प्रकाशन-विभाग' के अन्तर्गत चल रहे 'जिज्ञासु स्मारक कन्या पाणिनि महाविद्यालय' के आवास निर्माण की चिन्ता से हमें अत्यन्त ही ग्रस्त रहना पड़ा। मोतीझील के अन्दर जहाँ पहले यह कन्याओं का विद्यालय चलता था वहाँ से हमें कतिपय कष्टप्रद कारणों से हटना पड़ा, और नये असुरक्षित से स्थान में सब स्थित करना पड़ा, परन्तु विद्यालयीय आवास के लिये यह कोई स्थायी मार्ग नहीं है यह सोचकर विद्यालयीय अपनी भूमि क्रय करने की योजना बनी और उधार ही १४०००) रुपये के लगभग यह भूमि ली गई, क्योंकि विद्यालय का कोष उस समय नाम मात्र को था। वर्ष के अन्दर ही यह राशि चन्दे से पूर्ण की गई, इस कार्य में 'श्री पं० ओम्प्रकाश जी वर्मा यमुना नगर' का सहयोग उल्लेखनीय एवं प्रशंसनीय रहा है। इनके अथक परिश्रम के फलस्वरूप ही भूमि में इस समय कमरे बनने का कार्य प्रारम्भ हो चुका है, जिसके सुचारू रूप से निर्माण का उत्तरदायित्व श्रद्धेय त्रिवेदी जी के ही प्रदौहित्र श्री अजय कुमार जी जौहरी, डिप्टी चीफ़ मैकेनिकल इञ्जीनियर डीज़ल इञ्जिन कारखाना वाराणसी ने सहर्ष लिया है और वे इसे तत्परता से कर रहे हैं, यह भी संयोग की ही बात है।

इस प्रकार ये वर्ष हमारे लिये घोर कठिनाइयों के रहे हैं। राजस्थान, हरियाणा आदि विभिन्न प्रान्तों से आई हुई कन्याओं का सारा प्रबन्ध स्वल्प स्थान में करना कम कठिन नहीं, जब कि इस गुरुतर मुद्रण कार्य में भी मेरा पर्याप्त समय, श्रम लगता रहा। इन परिस्थितियों में सचमुच ही मेरे साहस का मानसिक और आत्मिक परीक्षण भली प्रकार हो गया। परीक्षा में खरे उतरने न उतरने का परिणाम तो उस सर्वनियन्ता को ही विदित है मैं अपने लिये क्या कह सकती हूँ।

यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि जिस प्रकार इन ४ काण्डों का नवीन संस्करण निकाला गया है उसी प्रकार सम्पूर्ण २० सों काण्डों को पुनः प्रकाशित करने का निश्चय श्रद्धेय त्रिवेदी जी के ही पौत्र डा० इन्द्रदयाल जी सेठ (जो इस समय नाइजीरिया में ज्येष्ठ प्राध्यापक पद पर हैं) तथा उनकी ही पौत्री श्रीमती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता सुशीला देवी जी जौहरी (भू० पू० प्रिन्सिपल भगवानदीन आर्य कन्या महाविद्यालय, लखीमपुर खीरी) ने कर लिया है। जिससे आप दोनों ही महानुभाव कोटिशः बधाई के पात्र हैं। इस महार्घता के युग में जिस समय मुद्रण आदि का दूने से भी अधिक व्यय बढ़ चुका है, व्यक्तिगत रूप से इतने बृहद् कार्य को करने का निश्चय करना कम साहस का विषय नहीं। इसके अतिरिक्त आपके ही सुपुत्र श्री अजयकुमार जौहरी मैकेनिकल इंजीनियर वाराणसी इसके प्रकाशन हेतु समय २ पर मेरा सक्रिय सहयोग करते रहे हैं तदर्थ उनका हार्दिक धन्यवाद है।

इस कार्य में मैंने समय २ पर कई जटिल समस्याओं के परामर्श हेतु श्री पं० गोपालचन्द्र जी वेद विभागाध्यक्ष वाराणसेय सं० विश्वविद्यालय से उनका अमूल्य समय लिया है तदर्थ उनके प्रति हार्दिक श्रद्धा कुसुम समर्पित करती हूं। अपनी प्रिय अनुजा कु० मेधा देवी शास्त्री को धन्यवाद के बोझ से बोझिल करना उचित नहीं समझती क्योंकि मेरे सम्पूर्ण कार्यों में हम दोनों का आधा साझा है मुझे अनायास ही ऐसी कुशल सहयोगिनी उपलब्ध है, इस प्रभु की अपार अनुकम्पा को देख कर मेरा रोम २ पुलकित है।

इस अवसर पर स्वर आदि के मिलान करने का जो अपूर्व सहयोग अपनी छात्राओं चि० माधुरी रानी, सूर्या कुमारी एवं प्रियम्वदा आदि से प्राप्त हुआ है तदर्थ उनके प्रति मेरा हृदय रूपी पूर्ण पात्र सदैव स्नेह वर्षण करता रहेगा। प्रभु करे ये बच्चियाँ सदैव स्वस्थ प्रसन्न दीर्घायु पूर्ण विदुषी एवं वेदों के प्रति निष्ठावान् तथा ऋषि भक्त बनें।

अन्त में मैं तारा यन्त्रालय के सञ्चालक श्री रमाशङ्कर पाण्डेय तथा विष्णु मुद्रणालय के सञ्चालक श्री पं० कालीनाथ जी को भी हार्दिक धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने अनेकानेक कठिनाइयों के होते हुए भी इस शुभ कार्य को सम्पन्न करने में सहयोग दिया।

विनीता,
डा० प्रज्ञा देवी
'प्राचार्या'
पाणिनि कन्या महाविद्यालय
मोतीझील, वाराणसी

माघ १३ मकरसङ्क्रान्ति
सं० २०२८ वि०
दयानन्दाब्द १४७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड	
सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र
काण्ड १		२९	६	२०	५	१०	१३	५	७	३५	७
१	४	३०	४	२१	५	११	८	६	८	३६	१०
२	४	३१	४	२२	५	१२	९	७	७	३७	१२
३	९	३२	४	२३	५	१३	७	८	७	३८	७
४	४	३३	४	२४	८	१४	६	९	१०	३९	१०
५	४	३४	५	२५	५	१५	८	१०	७	४०	८
६	४	३५	४	२६	५	१६	७	११	१२		
७	७			२७	७	१७	९	१२	७	४०	३२४
८	४	३५	१५३	२८	५	१८	६	१३	७		
९	४	**काण्ड २**		२९	७	१९	८	१४	९	**काण्ड ५**	
१०	४	१	५	३०	५	२०	१०	१५	१६	१	९
११	६	२	५	३१	६	२१	१०	१६	९	२	९
१२	४	३	६	३२	६	२२	६	१७	८	३	११
१३	४	४	६	३३	७	२३	६	१८	८	४	१०
१४	४	५	७	३४	५	२४	७	१९	८	५	९
१५	४	६	५	३५	५	२५	६	२०	९	६	१४
१६	४	७	५	३६	८	२६	६	२१	७	७	१०
१७	४	८	५			२७	६	२२	७	८	९
१८	४	९	५	३६	२०७	२८	६	२३	७	९	८
१९	४	१०	८	**काण्ड ३**		२९	८	२४	७	१०	८
२०	४	११	५	१	६	३०	७	२५	७	११	११
२१	४	१२	८	२	६	३१	११	२६	७	१२	११
२२	४	१३	५	३	६			२७	७	१३	११
२३	४	१४	६	४	७	३१	२३०	२८	७	१४	१३
२४	४	१५	६	५	८			२९	७	१५	११
२५	४	१६	५	६	८	**काण्ड ४**		३०	८	१६	११
२६	४	१७	७	७	७	१	७	३१	७	१७	१८
२७	४	१८	५	८	६	२	८	३२	७	१८	१५
२८	४	१९	५	९	६	३	७	३३	८	१९	१५
						४	८	३४	८	२०	१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड	
सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र
२१	१२	१६	४	४६	३	७६	४	१०६	३	१३६	३
२२	१४	१७	४	४७	३	७७	३	१०७	४	१३७	३
२३	१३	१८	३	४८	३	७८	३	१०८	५	१३८	५
२४	१७	१९	३	४९	३	७९	३	१०९	३	१३९	५
२५	१३	२०	३	५०	३	८०	३	११०	३	१४०	३
२६	१२	२१	३	५१	३	८१	३	१११	४	१४१	३
२७	१२	२२	३	५२	३	८२	३	११२	३	१४२	३
२८	१४	२३	३	५३	३	८३	४	११३	३	१४२	४५४
२९	१५	२४	३	५४	३	८४	४	११४	३	काण्ड ७	
३०	१७	२५	३	५५	३	८५	३	११५	३	१	२
३१	१२	२६	३	५६	३	८६	३	११६	३	२	१
		२७	३	५७	३	८७	३	११७	३	३	१
३१	३७६	२८	३	५८	३	८८	३	११८	३	४	१
काण्ड ६		२९	३	५९	३	८९	३	११९	३	५	५
		३०	३	६०	३	९०	३	१२०	३	६	४
१	३	३१	३	६१	३	९१	३	१२१	४	७	१
२	३	३२	३	६२	३	९२	३	१२२	५	८	१
३	३	३३	३	६३	४	९३	३	१२३	५	९	४
४	३	३४	५	६४	३	९४	३	१२४	३	१०	१
५	३	३५	३	६५	३	९५	३	१२५	३	११	१
६	३	३६	३	६६	३	९६	३	१२६	३	१२	४
७	३	३७	३	६७	३	९७	३	१२७	३	१३	२
८	३	३८	४	६८	३	९८	३	१२८	४	१४	४
९	३	३९	३	६९	३	९९	३	१२९	३	१५	१
१०	३	४०	३	७०	३	१००	३	१३०	४	१६	१
११	३	४१	३	७१	३	१०१	३	१३१	३	१७	४
१२	३	४२	३	७२	३	१०२	३	१३२	५	१८	२
१३	३	४३	३	७३	३	१०३	३	१३३	५	१९	१
१४	३	४४	३	७४	३	१०४	३	१३४	३	२०	६
१५	३	४५	३	७५	३	१०५	३	१३५	३	२१	१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड	
सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र
२२	२	५२	२	८२	६	११६	२	(२)	१३	६	२३
२३	१	५३	७	८३	४	११७	१	(३)	९		
२४	१	५४	२	८४	३	११८	१	(४)	१०	७	२७
२५	२	५५	१	८५	१	११८	२८६	(५)	१०		
२६	८	५६	८	८६	१	**काण्ड ८**		(६)	१४	८	३४
२७	१	५७	२	८७	१			७	२६	९	२६
२८	१	५८	२	८८	१	१	२१	८	२२		
२९	२	५९	१	८९	४	२	२८	९	२२	१०	२७
३०	१	६०	७	९०	३	३	२६	१०	२८		
३१	१	६१	२	९१	१	४	२५			१०	३१३
३२	१	६२	१	९२	१	५	२२	१०	३१३	**काण्ड १२**	
३३	१	६३	१	९३	१	६	२६	**काण्ड १०**		१	६३
३४	१	६४	२	९४	१	७	२८			२	५५
३५	३	६५	३	९५	३	८	२४	१	३२	३	६०
३६	१	६६	१	९६	१	९	२६	२	३३	४	५३
३७	१	६७	१	९७	८	१०(१)	१३	३	२५	५	७३
३८	५	६८	३	९८	१	(२)	१०	४	२६		
३९	१	६९	१	९९	१	(३)	८	५	५०	५	३०४
४०	२	७०	५	१००	१	(४)	१६	६	३५	**काण्ड १३**	
४१	२	७१	१	१०१	१	(५)	१६	७	४४		
४२	२	७२	३	१०२	१	(६)	४	८	४४	१	६०
४३	१	७३	११	१०३	१	१०	२९३	९	२७	२	४६
४४	१	७४	४	१०४	१			१०	३४	३	२६
४५	२	७५	२	१०५	१	**काण्ड ९**		१०	३५०	४	५६
४६	३	७६	६	१०६	१					४	१८८
४७	२	७७	३	१०७	१	१	२४	**काण्ड ११**			
४८	२	७८	२	१०८	२	२	२५			**काण्ड १४**	
४९	२	७९	४	१०९	७	३	३१	१	३७		
५०	९	८०	४	११०	३	४	२४	२	३१	१	६४
५१	१	८१	६	१११	१	५	३८	३	५६	२	७५
				११२	२	६(१)	१७	४	२६		
				११३	२			५	२६	२	१३९
				११४	२						
				११५	४						

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड	
सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र
काण्ड १५		**काण्ड १७**		१९	११	४९	१०	३	३	३३	३
				२०	४	**५०**	७	४	३	३४	१८
१	८	१	३०	२१	१	५१	२	५	७	३५	१६
२	२८	१	३०	२२	२१	५२	५	६	९	३६	११
३	११	**काण्ड १८**		२३	३०	५३	१०	७	४	३७	११
४	१८			२४	८	५४	५	८	३	३८	६
५	१६	१	६१	२५	१	५५	६	९	४	३९	५
६	२६	२	६०	२६	४	५६	६	१०	२	४०	३
७	५	३	७३	२७	१५	५७	५	११	११	४१	३
८	३	४	८९	२८	१०	५८	६	१२	७	४२	३
९	३	४	२८३	२९	९	५९	३	१३	४	४३	३
१०	११	**काण्ड १९**		३०	५	६०	२	१४	४	४४	३
११	११					६१	१	१५	६	४५	३
१२	११	१	३	३१	१४	६२	१	१६	१२	४६	३
१३	१४	२	५	३२	१०	६३	१	१७	१२	४७	२१
१४	२४	३	४	३३	५	६४	४	१८	६	४८	६
१५	९	४	४	३४	१०	६५	१	१९	७	४९	७
१६	७	५	१	३५	५	६६	१	२०	७	५०	२
१७	१०	६	१६	३६	६	६७	८	२१	११	५१	४
१८	५	७	५	३७	४	६८	१	२२	६	५२	३
१८	२२०	८	७	३८	३	६९	४	२३	९	५३	३
काण्ड १६		९	१४	३९	१०	७०	१	२४	९	५४	३
१	१३	१०	१०	४०	४	७१	१	२५	७	५५	३
२	६	११	६	४१	१	७२	१	२६	६	५६	६
३	६	१२	१	४२	४			२७	६	५७	१६
४	७	१३	११	४३	८	७२	४५३	२८	४	५८	४
५	१०	१४	१	४४	१०			२९	५	५९	४
६	११	१५	६	४५	१०	**काण्ड २०**		३०	५	६०	६
७	१३	१६	२	४६	७			३१	५	६१	६
८	३३	१७	१०	४७	९	१	३	३२	३	६२	१०
९	४	१८	१०	४८	६	२	४				

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेद सूक्त मन्त्र चक्र

काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड	
सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र
६३	९	७७	८	९१	१२	१०५	५	१२३	२	१४१	५
६४	६	७८	३	९२	२१	१०६	३	१२४	६	१४२	६
६५	३	७९	२	९३	८	१०७	१५	१२५	७	१४३	९
६६	३	८०	२	९४	११	१०८	३	१२६	२३		
६७	७	८१	२	९५	४	१०९	३	१२७	१४		
६८	१२	८२	२	९६	२४	११०	३	१२८	१६		
६९	१२	८३	२	९७	३	१११	३	१२९	२०		
७०	२०	८४	३	९८	२	११२	३	१३०	२०		
७१	१६	८५	४	९९	४	११३	२	१३१	२०		
७२	३	८६	१	१००	३	११४	२	१३२	१६		
७३	६	८७	७	१०१	३	११५	३	१३३	६		
७४	७	८८	६	१०२	३	११६	२	१३४	६		
७५	३	८९	११	१०३	३	११७	३	१३५	१३		
७६	८	९०	३	१०४	४	११८	४	१३६	१६		
						११९	२	१३७	१४		
						१२०	२	१३८	३		
						१२१	२	१३९	५	१४३	९५८
						१२२	३	१४०	५		

योगचक्र

काण्ड	सूक्त	मंत्र	काण्ड	सूक्त	मंत्र	काण्ड	सूक्त	मंत्र	काण्ड	सूक्त	मंत्र
१	३५	१५३	६	१४२	४५४	११	१०	३१३	१६	९	१०३
२	३६	२०७	७	११८	२८६	१२	५	३०४	१७	१	३०
३	३१	२३०	८	१०	२९३	१३	४	१८८	१८	४	२८३
४	४०	३२४	९	१०	३१३	१४	२	१३९	१९	७२	४५३
५	३१	३७६	१०	१०	३५०	१५	१८	२२०	२०	१४३	९५८
५	१७३	१२९०	५	२९०	१६९६	५	३९	११६४	५	२२९	१८२७

महायोग, काण्ड २०, सूक्त ७३१ मन्त्र ५,९७७ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
१	ये त्रिषप्ताः परियन्ति	वाचस्पति	बुद्धि वृद्धि	अनुष्टुप्
२	विज्ञा शरस्य पितरं	इन्द्र	तथा	अनुष्टुप् त्रिष्टुप्
३	विज्ञा शरस्य पितरं	पर्जन्य आदि	शान्ति करण	पङ्क्ति, अनुष्टुप्
४	अम्बयो यन्त्यध्वभिर्	आपः	परोपकार	गायत्री, पङ्क्ति ।
५	आपो हिष्ठा मयोभुवस्	,,	बल प्राप्ति	गायत्री ।
६	शं नो देवीरभिष्टय	,,	आरोग्यता	गायत्री, पङ्क्ति
७	स्तुवानमग्न आ वह	इन्द्राग्नी	सेनापति	अनुष्टुप् त्रिष्टुप् ।
८	इदं हविर्यातुधानान्	अग्नि, सोम	तथा	,, ,,
९	अस्मिन् वसु वसवो	विश्वे देवा	सर्वसम्पत्ति	त्रिष्टुप्
१०	अयं देवानामसुरो	वरुण	वरुण वर्णन	त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् ।
११	वपर् ते पूषन्नस्मिन्	पूषा	सृष्टि विद्या	अनुष्टुप्, पङ्क्ति ।
१२	जरायुजः प्रथम उस्रियः	वृषा	ईश्वर आदि	त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् ।
१३	नमस्ते अस्तु विद्युते	प्रजापति	आत्म ज्ञा	अनुष्टुप्, जगती
१४	भगमस्या वर्च आदिध्य	वधूवर	विवाह	अनुष्टुप् ।
१५	सं संस्रवन्तु सिन्धवः	प्रजापति	ऐश्वर्यप्राप्ति	अनुष्टुप्, आदि
१६	योऽमावास्यां रात्रि	अग्निआदि	विघ्ननाश	अनुष्टुप् ।
१७	अमूर्या यन्ति योषितो	हिरा	नाड़ी छेदन	अनुष्टुप्, गायत्री
१८	निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं	सविता	राजधर्म	अनुष्टुप्, जगती ।
१९	मा नो विदन् वि व्याधि	इन्द्र	जय और न्याय	अनुष्टुप्, पङ्क्ति ।
२०	अदारसद् भवतु देव	सोम, म त्	शत्रुओं से रक्षा	जगती, अनुष्टुप् ।
२१	स्वस्तिदा विशां पतिर्	इन्द्र	राजनीति	अनुष्टुप्
२२	अनु सूर्यमुदयतां	सूर्य	रोग का नाश	,,
२३	नक्तं जातास्योषधे	ओषधि	रोग नाश	,,
२४	सुपर्णो जातः प्रथमस्	तथा	तथा	अनुष्टुप्, पङ्क्ति ।
२५	यदग्निरापो अदहत्	अग्नि	रोगशान्ति	त्रिष्टुप् ।
२६	आरे ऽसावस्मदस्तु	इन्द्र	युद्ध प्रकरण	गायत्री ।
२७	अमूः पारे पृदाकस्	प्रजापति	,,	पङ्क्ति, अनुष्टुप् ।
२८	उप प्रागाद्देवो अग्नी	अग्नि	,,	अनुष्टुप् ।
२९	अभी वर्तेन मणिना	ब्रह्मणस्पति	राजतिलक	,,
३०	विश्वे देवा वसवो	विश्वे देवा	,,	त्रिष्टुप् ।
३१	आशानामाशापालेभ्य	प्रजापति	पुरुषार्थ	अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् ।
३२	इदं जनासो विदथ	ब्रह्मा	ब्रह्मविचार	अनुष्टुप् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
३३	हिरण्यवर्णाः शुचयः	आपः	तन्मात्रायें	त्रिष्टुप्
३४	इयं वीरुन्मधुजाता	वीरुध् = लता	विद्याप्राप्ति	अनुष्टुप्
३५	यदाबध्नन् दाक्षायणा	हिरण्य	सुवर्ण आदि	त्रिष्टुप्

२—अथर्ववेद, काण्ड १ के मन्त्र अन्य वेदों में सम्पूर्ण वा कुछ भेद से।

संख्या	मन्त्र	अथर्ववेद सूक्त, मंत्र	ऋग्वेद, मंडल, सूक्त, मंत्र	यजुर्वेद अध्याय, मन्त्र	सामवेद, पूर्वार्चिक, उत्तरार्चिक, इत्यादि
१	अम्बयो यन्त्यध्वभिर्	४ । १	१ । २३ । १६		
२	अमूर्या उप सूर्ये	४ । २	१ । २३ । १७		
३	अपो देवीरुपह्वये	४ । ३	१ । २३ । १८		
४	अप्स्वन्तरमृत	४ । ४	१ । २३ । १९	६ । ६	
५	आपो हि ष्ठा मयो	५ । १	१० । ९ । १	११ । ५०–५२ तथा ३६ । १४–१६	उ० ९ । २ । १०
६	यो वः शिवतमो	५ । २	१० । ९ । २		
७	तस्मा अरं गमाम वो	५ । ३	१० । ९ । ३		
८	ईशाना वार्याणां	५ । ४	१० । ९ । ५		
९	शं नो देवीरभिष्टय	६ । १	१० । ९ । ४	३६ । १२	पू० १ । ३ । १३
१०	अप्सु मे सोमो	६ । २	१ । २३ । २०		
११	आपः पृणीत भेषजं	६ । ३	१० । ९ । ७		
१२	यो नः स्वो यो अरणः	१९ । ३,४	६ । ७५ । १९		उ० ९ । ३ । ८
१३	वि महच्छर्म यच्छ	२० । ३	१० । १५२ । ५		
१४	शास इत्था महां असि	२० । ४	१० । १५२ । १		
१५	स्वस्तिदा विशां पति	२१ । १	१० । १५२ । २		
१६	वि न इन्द्र मृधो जहि	२१ । २	१० । १५२ । ३		उ० ९ । ३ । ७
१७	वि रक्षो वि मृधो जहि	२१ । ३	१० । १५२ । ४		
१८	अपेन्द्र द्विषतो मनो	२१ । ४	१० । १५२ । ५		
१९	सुकेषु ते हरिमाणं	२२ । ४	१ । ५० । १२		
२०	अभी वर्तेन मणिना	२९ । १	१० । १७४ । १		
२१	अभिवृत्य सपत्नानभि	२९ । २	१० । १७४ । २		
२२	अभि त्वा देवः सविता	२९ । ३	१० । १७४ । ३		
२३	उदसौ सूर्यो अगादुदिदं	२९ । ५	१० । १५९ । १		
२४	सपत्नक्षयणो वृषा	२९ । ६	१० । १७४ । ५		
२५	यदाबध्नन् दाक्षायणा	३५ । १	—	३४ । ५२	
२६	नैनं रक्षांसि न पिशाचाः	३५ । २	—	३४ । ५१	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
१	ब्रह्म जज्ञानम्	वेनः	ब्रह्म का विचार	त्रिष्टुप्
२	य आत्मदा बलदा	प्रजापति	ब्रह्म विद्या	त्रिष्टुप् अनुष्टुप्
३	उदितस्त्रयः	इन्द्र	शत्रु नाश	पथ्यापङ्क्ति इत्यादि
४	यां त्वा गन्धर्वो	वृषा, इन्द्र	मनुष्य बल	अनुष्टुप्
५	सहस्रशृङ्गो	इन्द्र	बच्चों को सुलाना	अनुष्टुप् पथ्यापंक्ति
६	ब्राह्मणो जज्ञे	विष	विष दूर करना	अनुष्टुप् इत्यादि
७	वारिदं वारयातै	विष	विष नाश	अनुष्टुप्
८	भूतो भूतेषु	भूतानामधिपति	राजतिलक यज्ञ	त्रिष्टुप् इत्यादि
९	एहि जीवम्	आञ्जन	ब्रह्म विद्या	अनुष्टुप् इत्यादि
१०	वाताज्जातो	शङ्ख	विघ्नों को हटाना	अनुष्टुप् इत्यादि
११	अनड्वान् दाधार	अनड्वान्	ब्रह्म विद्या	त्रिष्टुप् इत्यादि
१२	रोहण्यसि रोह	धाता	दोष मिटाना	अनुष्टुप् आदि
१३	उत देवा अवहितं	आत्मा	स्वास्थ्य रक्षा	अनुष्टुप्
१४	अजोह्यग्नेर	अग्नि	ब्रह्म प्राप्ति	त्रिष्टुप् आदि
१५	ससुत्पतन्तु प्रदिशो	पर्जन्य	वृष्टि प्रार्थना	जगती इत्यादि
१६	बृहन्नेषामधिष्ठाता	वरुण	वरुण की सर्वव्यापकता	अनुष्टुप् इत्यादि
१७	ईशानां त्वा भेषजा	अपामार्ग	राजा का लक्षण	अनुष्टुप्
१८	समं ज्योतिः सूर्येण	अपामार्ग	राजधर्म	अनुष्टुप्
१९	उतो अस्यबन्धुक्ष	अपामार्ग	राजधर्म	अनुष्टुप् इत्यादि
२०	आ पश्यति प्रति	ब्रह्म	ब्रह्म की उपासना	अनुष्टुप्
२१	आ गावो अग्मन्	गावः	विद्या के गुण	त्रिष्टुप् जगती
२२	इममिन्द्र वर्धय	इन्द्र	संग्राम में जय	त्रिष्टुप्
२३	अग्नेर्मन्वे	अग्नि	कष्ट हटाना	अनुष्टुप् इत्यादि
२४	इन्द्रस्य मन्महे	इन्द्र	पूर्ण सुख	जगती अनुष्टुप्
२५	वायोः सवितुर्	पवनसवितारौ	पवन और सूर्य	अनुष्टुप् इत्यादि
२६	मन्वे वां द्यावा पृथि-	सूर्य पृथिवी	सूर्य और पृथिवी	अनुष्टुप् इत्यादि
२७	मरुतां मन्वे	मरुतः	पवन के गुण	अनुष्टुप् इत्यादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
२८	भवा शर्वौ मन्वे वाम्	भवाशर्वौ	परमेश्वर के गुण	अनुष्टुप् इत्यादि
२९	मन्वे वां मित्रा	मित्र, वरुण	पुरुषार्थ	अनुष्टुप् इत्यादि
३०	अहं रुद्रेभिः	राष्ट्री	परमेश्वर के गुण	त्रिष्टुप् जगती
३१	त्वया मन्यो सरथ	मन्यु	संग्राम में जय	त्रिष्टुप् जगती
३२	यस्ते मन्योऽवि-	मन्यु	संग्राम में जय	त्रिष्टुप्
३३	अप नः शोशुचद	अग्नि	सर्व रक्षा	गायत्री
३४	ब्रह्मास्य शीर्ष	ओदन	ब्रह्म विद्या	त्रिष्टुप्, इत्यादि
३५	यमोदनं प्रथमजा	ओदन	ब्रह्म विद्या	त्रिष्टुप्, जगती
३६	तान्त्सत्यौजाः	अग्नि	राजधर्म	अनुष्टुप्
३७	त्वया पूर्वमथर्वा	ओषधि, इत्यादि	गन्धर्व आदि	अनुष्टुप् इत्यादि
३८	उद्भिन्दतीं संजय	अप्सरा	परमेश्वर के गुण	अनुष्टुप् इत्यादि
३९	पृथिव्यामग्नये	अग्नि इत्यादि	परमेश्वर गुण	त्रिपद जगती इत्यादि
४०	ये पुरस्ताज् जुह्वति	जातवेदाः	शत्रुनाश	त्रिष्टुप् इत्यादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—अथर्ववेद, काण्ड ४ के मन्त्र अन्य वेदों में सम्पूर्ण वा कुछ भेद से।

मन्त्र संख्या	मन्त्र	अथर्ववेद (काण्ड ४) सूक्त मन्त्र	ऋग्वेद, मंडल, सूक्त मन्त्र	यजुर्वेद अध्याय, मन्त्र	सामवेद, पूर्वार्चिक, उत्तरार्चिक इत्यादि
				१३ । ३	पू० ४ । ३ । ६
१	ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं	१ । १			
२	य आत्मदा बलदा	२ । १	१० । १२१ । २,३	२५।१३,११	
३	यः प्राणतो निमिषतो	२ । २	१० । १२१ । ३,२	२५।११,१२	
४	यं क्रन्दसी अवतश्च यस्यासौ पन्था	२ । ३	१० । १२१ । ६	३२ । ७ ३२ । ६	
५	यस्य विश्वे हिमं	२ । ५	१० । १२१ । ४	२५ । १२	
६	आपो अग्रे विश्व	२ । ६	१० । १२१ । ७,८	२७।२५,२६	
७	हिरण्यगर्भः सम	२ । ७	१० । १२१ । १	१३।४;२५।१०	
८	आपो वत्सं जनयन्तीः	२ । ८	१० । १२१ । ७	२७ । २५	
९	सहस्रशृङ्गो वृषभो	५ । १	७ । ५५ । ७		
१०	प्रोष्ठेशयास्तल्पे	५ । ३	७ । ५५ । ८		
११	य आस्ते यश्चरति	५ । ५	७ । ५५ । ६		
१२	स्वप्तु माता स्वप्तु	५ । ६	७ । ५५ । ५		
१३	सनेयमश्वं गां	९ । ७	१० । ९७ । ४	१२ । ७८	
१४-१८	उत देवा अवहितं	१३ । १-५	१० । १३७ । १-५		
१९	अयं मे हस्तो भगवान्	१३ । ६	१० । ६० । १२		
२०	हस्ताभ्यां दशशाखा—	१३ । ७	१० । १३७ । ७		
२१	अजो ह्यग्नेर	१४ । १		१३ । ५१	
२२	क्रमध्वमग्निना नाक	१४ । २		१७ । ६५	
२३-२५	पृष्ठात् पृथिव्या अह—	१४ । ३-५		१७।६७-६९	
२६	अर्वाङेतेन	१५ । ११	५ । ८३ । ६		
२७	अपोनिषिञ्चन्न	१५ । १२	७ । ८३ । ६		
२८	संवत्सरं शशयाना	१५ । १३	५ । १०३ । १		
२९	महान्तं कोशमुद—	१५ । १६	५ । ८३ । ८		
३०-३६	आ गावो अग्मन्नुत	२१ । १-७	६ । २८ । १-७		
३७	मा वस्तेन	२१ । ७		१ । १	
३८	परि वो रुद्रस्य	२१ । ७		१६ । ५०	
३९-४६	अहं रुद्रेभिर्	३० । १-८	१० । १२५ । १-८		
४७-५२	त्वया मन्यो	३१ । १-७	१० । ८४ । १-७		
५३-५९	यस्ते मन्यो	३२ । १-७	१० । ८३ । १-७		
६०-६७	अप नः शोशुचदघ	३३ । १-८	१० । ९७ । १-८		
६५	विश्वानि देव	३९ । १०		४० । १६	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—सूक्त विवरण, काण्ड २ ॥

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
१	वेनस्तत् पश्यत्	ब्रह्म	ब्रह्मप्राप्ति	त्रिष्टुप्
२	दिव्यो गन्धर्वो	गंधर्वअप्सरा	ईश्वर सर्वशक्तिमान्	त्रिष्टुप् अनुष्टुप्
३	अदो यदवधावत्य	भेषज	रोग निवृत्ति	अनुष्टुप्
४	दीर्घायुत्वाय बृहते	जङ्गिड	आयुवृद्धि	त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्
५	इन्द्र जुषस्व प्र वहा	इन्द्र	उन्नति प्रयत्न	अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्
६	समास्त्वाग्न ऋतवो	अग्नि	राजनीति	त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्
७	अघद्विष्टा	ईश्वर	राजधर्म	अनुष्टुप्
८	उदगातां भगवती	ब्रह्म	पौरुष	अनुष्टुप्
९	दशवृक्ष मुञ्चेमं	ईश्वर	आत्मोन्नति	त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्
१०	क्षेत्रियात् त्वा	ब्रह्म	मुक्ति प्राप्ति	त्रिष्टुप्, जगती
११	दुष्यादूषिरसि	पुरुष	पुरुषार्थ	गायत्री
१२	द्यावापृथिवी उर्व	विश्वेदेवा:	सर्वरक्षा	त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्
१३	आयुर्दा अग्नेजरसं	ब्रह्मचारी	समावर्त्तनवस्त्र	त्रिष्टुप् अनुष्टुप्
१४	नि:सालां धृष्णुं	अलक्ष्मी	निर्धनता का नाश	अनुष्टुप्
१५	यथा द्यौश्च पृथिवी	प्राण	धर्म का पालन	गायत्री
१६	प्राणापानौ मृत्योर्मा	आत्मा	आत्मरक्षा	पङ्क्ति, गायत्री आदि
१७	ओजोऽस्योजो मे	ईश्वर	आयुवृद्धि	त्रिष्टुप्, उष्णिक्
१८	भ्रातृव्यक्षयणमसि	ईश्वर	शत्रु से रक्षा	साम्नी, बृहती
१९	अग्ने यत्ते तपस्तेन	अग्नि	कुप्रयोगत्याग	त्रिष्टुप्, जगती
२०	वायो यत्ते तपस्तेन	वायु	,, ,,	,, ,,
२१	सूर्य यत्ते तपस्तेन	सूर्य	,, ,,	,, ,,
२२	चन्द्र यत्ते तपस्तेन	चन्द्र	,, ,,	,, ,,
२३	आपो यद् वस्तपस्तेन	आप: (जल)	,, ,,	,, ,,
२४	शेरभक शेरभ	ईश्वर	कुसंस्कारादित्याग	त्रिष्टुप् आदि
२५	शं नो देवी पृश्नि	पृश्निपर्णी	शत्रुओं का नाश	अनुष्टुप्
२६	एह यन्तु पशवो	त्वष्टा सविता वा	मेल करना	त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्
२७	नेच्छत्रु: प्राशं जयाति	ओषधि, इन्द्र	बुद्धि से विवाद	अनुष्टुप्
२८	तुभ्यमेव जरिमन्	अग्नि	आयु बढ़ाना	त्रिष्टुप्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
२९	पार्थिवस्य रसे देवा	बृहस्पति इन्द्र	उन्नति करना	अनुष्टुप् त्रिष्टुप्
३०	यथेदं भूम्या अधि	अश्विनौ	गृहस्थाश्रम प्रवेश	पङ्क्ति, त्रिष्टुप्
३१	इन्द्रस्य या मही दृषत्	इन्द्र	दोष नाश	अनुष्टुप्
३२	उद्यन्नादित्यः क्रिमीन्	आदित्य	तथा शरीर रक्षा	गायत्री, अनुष्टुप्
३३	अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां	आत्मा	शरीर रक्षा	अनुष्टुप्, पङ्क्ति
३४	य ईशे पशुपतिः पशूनां	पशुपति	बन्ध से मुक्ति	त्रिष्टुप्
३५	ये भक्षयन्तो न वसू	विश्वकर्मा	पाप त्याग	त्रिष्टुप्
३६	आ नो अग्ने सुमतिं	अग्नि	विवाह संस्कार	त्रिष्टुप् आदि

२—अथर्ववेद, काण्ड २ के मन्त्र अन्य वेदों में संपूर्ण वा कुछ भेद से ॥

संख्या	मन्त्र	अथर्ववेद (काण्ड २) सूक्त, मन्त्र	ऋग्वेद मंडल, सूक्त मन्त्र	यजुर्वेद अध्याय मन्त्र	सामवेद पूर्वार्चिक उत्तरार्चिक इत्यादि
१-२	वेनस्तत् पश्यत् इत्यादि	१।१—२	—	३२।८-९	
३	स नः पिता जनिता	१।३	१०।८२।३	१७।२७	
४	परि विश्वा भुवनान्या	१।५	—	३२।१०	
५-७	इन्द्र जुषस्व प्र वहा-इत्यादि	५।१—३	—	—	उ० ३।१।२२
८-१०	इन्द्रस्य नु प्रावोचं-इत्यादि	५।५—७	१।३२।१—३	—	
११-१३	समास्त्वाग्न-इत्यादि	६।१—३	—	२७।१-३	
१४-१५	क्षत्रेणाग्ने स्वेन-इत्यादि	६।४—५	—	२७।५-६	
१६	अतीव यो मरुतो	१२।६	६।५२।२	—	
१७-१९	ओजोऽस्योजो-इत्यादि	१७।१—७	—	१९।९	
२०-२६	अक्षीभ्यां ते इत्यादि	३३।१—७	१०।१६३।१-६	—	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—सूक्त विवरण अथर्ववेद, काण्ड ३ ॥

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
१	अग्निर्नः शत्रून्	अग्नि आदि	युद्ध विद्या	त्रिष्टुप् आदि
२	अग्निर्नो दूतः	अग्नि आदि	सेनापति कर्त्तव्य	त्रिष्टप् आदि
३	अचिक्रदत् स्वपा	इन्द्र	राजा, प्रजा का धर्म	त्रिष्टुप् आदि
४	आत्वा गन् राष्ट्र	इंद्र	राज तिलक	त्रिष्टुप्
५	आयमगन्पर्ण	पर्णमणि	तेज, बल धन	त्रिष्टुप् आदि
६	पुमान्पुंसः परि	अश्वत्थ	उत्साह बढ़ाना	अनुष्टुप्
७	हरिणस्य रघुष्यदो	हरिणआदि	रोग नाश	अनुष्टुप्
८	आ यातु मित्र	प्रजापति	प्रीति उत्पन्न करना	त्रिष्टुप् आदि
९	कर्शफस्य विशफस्य	प्रजापति	विघ्न शांति	अनुष्टुप्
१०	प्रथमाह व्युवास सा	रात्रि	पुष्टि बढ़ाना	अनुष्टुप् आदि
११	मुञ्चामि त्वा हविषा	राजयक्ष्मघ्न	रोग नाश	त्रिष्टुप् आदि
१२	इहैव ध्रुवां नि मिनोमि	शाला	शाला निर्माण	त्रिष्टुप् आदि
१३	यददः सम्प्रयती	आपः	जल के गुण	अनुष्टुप् आदि
१४	सं वो गोष्ठेन	गाव	गोरक्षा	अनुष्टुप् आदि
१५	इन्द्रमहं वणिजं	इंद्र	व्यापार लाभ	त्रिष्टुप् आदि
१६	प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं	भगउषाआदि	प्रभाती गीत	त्रिष्टुप् आदि
१७	सीरा युञ्जन्ति	कृषिबल	खेती विद्या	त्रिष्टुप् आदि
१८	इमां खनाम्योषधिं	सपत्नीबाधन	अविद्या नाश	अनुष्टुप् आदि
१९	संशितं म इदं ब्रह्म	पुरोहित	युद्ध विद्या	अनुष्टुप् आदि
२०	अयं ते योनिर्	अग्निआदि	ब्रह्म विद्या	अनुष्टुप् आदि
२१	ये अग्नयो अप्स्व	अग्निआदि	परमेश्वर गुण	त्रिष्टुप् आदि
२२	हस्तिवर्चसं प्रथतां	विश्वेदेवाः	कीर्ति पाना	त्रिष्टुप् आदि
२३	येन वेहद् बभूविथ	माता	वीर संतान	अनुष्टुप् आदि
२४	पयस्वतीरोषधयः	प्रजापति	धान्य बढ़ाना	अनुष्टुप् आदि
२५	उत्तुदस्त्वोत् तुदतु	काम	अविद्या नाश	अनुष्टुप्
२६	ये ३स्यां स्थ प्राच्यां	मंत्रोक्त	मारू गीत	जगती वा त्रिष्टुप्
२७	प्राचीदिगग्निरधिपति	मंत्रोक्त	सेना का व्यूह	त्रिष्टुप् आदि
२८	एकैकयैषा सृष्टचा	यमिनी	उत्तम नियम	जगती आदि
२९	यद् राजानो विभज	अवि	परमेश्वर भक्ति	अनुष्टुप् आदि
३०	सहृदयं सांमनस्य	प्रजापति	परस्पर मेल	अनुष्टुप् आदि
३१	वि देवा जरसावृतन्	प्रजापति	आयु बढ़ाना	अनुष्टुप् आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—अथर्ववेद, काण्ड ३ के मन्त्र अन्य वेदों में सम्पूर्ण या कुछ भेदसे ॥

मन्त्र संख्या	मन्त्र	अथर्ववेद (काण्ड ३) सूक्त, मन्त्र	ऋग्वेद, मंडल, सूक्त, मन्त्र	यजुर्वेद अध्याय, मन्त्र	सामवेद, पूर्वार्चिक उत्तरार्चिक इत्यादि
१	अमीषां चित्तानि	२।५	१०।१०३।१२	१७।४४	उ० ९।३।५
२	असौ या सेना मरुतः	२।६		१७।४७	
३	सा नः पयस्वती	१० १	४।५७।७		
४	पूर्णा दर्वे परापत	१०।७		३।४९	
५-८	मुञ्चामि त्वा हविषा	११।१-४	१०।१६१।१-४		
९	इध्मेनाग्न इच्छमानो	१५।३	३ १८।३		
१०	इमामग्ने शरणिं	१५।४	१।३१।१६		
११-१७	प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं	१६।१-७	७।४१।१-७	३४।३४-४०	
१८	सीरायुञ्जन्ति	१७।१	१०।१०१।४	१२।६७	
१९	युनक्त सीरा वि	१७।२	१०।१०१।३	१२।६८	
२०	लाङ्गलं पवीरवत्	१७।३		१२।७१	
२१	इन्द्रः सीतां नि	१७।४	४।५७।७		
२२	शुनं सुफाला वि	१७।५	४।५७।८	१२।६९	
२३-२५	शुनं वाहाः शुनं नरः	१७।६-८	४।५७।४-६		
२६	घृतेन सीता मधुना	१७।९		१२।७०	
२७-३२	इमां खनाम्योषधिं	१८।१-६	१०।१४५।१-६		
३३	उद्धर्षन्तां मघवन्	१९।६	१०।१०३।१०	१७।४२	
३४	प्रेता जयता नर	१९।७	१०।१०३।१३	१७।४६	
३५	अवसृष्टा परा पत	१९।८	६।७५।१६	१७।४५	
३६	अयं ते योनिर्	२०।१	३।२९।१०	३।१४, १२।५२	
३७-३८	अग्ने अच्छा वदेह नः	२०।२-३	१०।१४१।१-२	९।२८, २९	
३९	सोमं राजानमवसे	२०।४	१०।१४१।३	९।२६	
४०	त्वं नो अग्ने अग्निभिर्	२०।५	१०।१४१।६		
४१	इन्द्रवायू उभाविह	२०।६	१०।१४१।४	३३।८६	
४२	अर्यमणं बृहस्पतिं	२०।७	१०।१४१।५	९।२७	
४३	वाजस्य नु प्रसवे	२०।८		१८।३०	
४४	क इदं कस्मा अदात्	२९।७		७।४८	
४५	त्वष्टा दुहित्रे वहतुं	३१।५	१०।१७।१		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेदः ॥

प्रथमं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १ ॥

मन्त्राः १-४ । अथर्वा ऋषिः । वाचस्पतिर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः, ८×४ अक्षराणि ॥

बुद्धिवृद्ध्युपदेशः—बुद्धि की वृद्धि के लिये उपदेश ।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ १ ॥

ये । त्रिऽसप्ताः । परिऽयन्ति । विश्वा । रूपाणि । बिभ्रतः । वाचः । पतिः । बला । तेषाम् । तन्वः । अद्य । दधातु । मे ॥ १ ॥

सान्वयभाषार्थः—(ये) जो पदार्थ (त्रि-सप्ताः) १-सबके संतारक, रक्षक परमेश्वर के सम्बन्ध में, यद्वा, २—रक्षणीय जगत् [यद्वा—तीन से सम्बद्ध ३-तीनों काल भूत, भविष्यत् और वर्तमान । ४—तीनों लोक, स्वर्ग, मध्य, और भूलोक । ५-तीनों गुण, सत्त्व, रज और तम । ६-ईश्वर, जीव,

---

१—**शब्दार्थव्याकरणादिप्रक्रिया—ये** । पदार्थाः । **त्रि-सप्ताः** । **तरतेर्ड्रिः** (उ० ५ । ६६) इति तॄ प्लवनसंतरणयोः—ड्रिः । तरति तारयति तार्यते वा त्रिः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रकृति। यद्वा, तीन और सात=दस। ७-चार दिशा, चार विदिशा, एक ऊपर की और एक नीचे की दिशा। ८-पांच ज्ञान इन्द्रियाँ, अर्थात् कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका और पांच कर्म इन्द्रियाँ, अर्थात् वाक्, हाथ, पांव, पायु, उपस्थ। यद्वा, तीन गुणित सात=इक्कीस। ९-महाभूत ५+प्राण ५+ज्ञान इन्द्रियाँ ५+कर्म इन्द्रियाँ ५+अन्तःकरण १ इत्यादि] के सम्बन्ध में [वर्त्तमान] होकर, (विश्वा=विश्वानि) सब (रूपाणि) वस्तुओं को (बिभ्रतः) धारण करते हुये (परि) सब ओर (यन्ति) व्याप्त हैं। (वाचस्पतिः) वेदरूप वाणी का स्वामी परमेश्वर (तेषाम्) उनके (तन्वः) शरीर के (बला=बलानि) बलों को (अद्य) आज (मे) मेरे लिये (दधातु) दान करे ॥ १ ॥

भावार्थः—आशय यह है कि तृण से लेकर परमेश्वर पर्यन्त जो पदार्थ संसार की स्थिति के कारण हैं, उन सबका तत्त्वज्ञान (वाचस्पतिः) वेदवाणी के स्वामी सर्वगुरु जगदीश्वर की कृपा से सब मनुष्य वेद द्वारा प्राप्त करें और

परमेश्वरो जगद्वा। संख्यावाची वा। **सप्यशूभ्यां तुट् च** (उ० १। १५७) इति षप समवाये—कनिन्, तुट् च। सपति समवैतीति सप्तन् संख्याभेदो वा। यद्वा, षप समवाये-क्तः। त्रिणा तारकेण परमेश्वरेण तारणीयेण जगता वा सह सम्बद्धाः पदार्थाः। यद्वा, त्रयश्च सप्त चेति त्रिषप्ताः दश दिशाः। यद्वा। त्रिगुणिताः सप्त एकविंशतिसंख्याकाः पदार्थाः। **डच्प्रकरणे संख्यायास्तत्पुरुषस्योपसंख्यानं कर्तव्यम्** (वा० पा० ५। ४। ७३) इति समासे डच्। विशेषव्याख्या भाषायां क्रियते। **परि-यन्ति।** इण् गतौ—लट्। परितः सर्वतो गच्छन्ति व्याप्नुवन्ति। **विश्वा। अशूप्रुषिलटिकणिखटिविशिभ्यः क्वन्** (उ० १। १५१) इति विश प्रवेशने-क्वन्। **शेश्छन्दसि बहुलम्** (पा० ६। १। ७०) इति शेर्लोपः। विश्वानि। सर्वाणि। **रूपाणि। खष्पशिल्पशष्पवाष्परूपपर्पतल्पाः** (उ० ३। २८) इति रु शब्दे—पप्रत्ययो दीर्घश्च। रूयते कीर्त्यते तद् रूपम्। यद्वा, रूप रूपक्रियायाम्—अच्। सौन्दर्याणि, चेतनाचेतनात्मकानि वस्तूनि। **बिभ्रतः।** डुभृञ् धारणपोषणयोः—लटः शतृः। जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः। **नाभ्यस्ताच्छतुः** (पा० ७। १। ७८) इति नुमः प्रतिषेधः। धारयन्तः। पोषयन्तः। **वाचः। क्विब् वचिप्रच्छिश्रि०** (उ० २। ५७) इति वच परिभाषणे—क्विप्, दीर्घश्च। वाण्याः। वेदात्मिकायाः। **पतिः। पातेर्डतिः** (उ० ४। ५७) इति पा रक्षणे—डतिः। रक्षकः। सर्वगुरुः परमेश्वरः। **वाचस्पतिः। षष्ठ्याः पतिपुत्र०** (पा० ८। ३। ५३) इति विसर्गस्य सत्वम्। **बला।** बल प्राणने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस अन्तर्यामी पर पूर्ण विश्वास करके पराक्रमी और परोपकारी होकर सदा आनन्द भोगें ॥ १ ॥

भगवान् पतञ्जलि ने योगदर्शन में कहा है—

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ यो० द० १ । २६ ॥

वह ईश्वर सब पूर्वजों का भी गुरु है क्योंकि वह काल से विभक्त नहीं होता ॥

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥ २ ॥

पुनः । आ । इहि । वाचः । पते । देवेन । मनसा । सह । वसोः । पते । नि । रमय । मयि । एव । अस्तु । मयि । श्रुतम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(वाचस्पते) हे वाणी के स्वामी परमेश्वर ! तू (पुनः) बारंबार (एहि) आ । (वसोः पते) हे श्रेष्ठ गुण के रक्षक ! (देवेन) प्रकाशमय (मनसा सह) मन के साथ (नि) निरन्तर (रमय) [मुझे] रमण करा, (मयि) मुझमें (वर्त्तमान) (श्रुतम्) वेदविज्ञान (मयि) मुझमें (एव) ही (अस्तु) रहे ॥ २॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न पूर्वक (वाचस्पति) परम गुरु परमेश्वर का ध्यान निरन्तर करता रहे और पूरे स्मरण के साथ वेद विज्ञान से अपने हृदय को शुद्ध करके सदा सुख भोगे ॥ २ ॥

च—पचाद्यच् । पूर्ववत् शेर्लोपः । बलानि । **तेषाम् ।** त्रिसप्तानां पदार्थानाम् । **तन्वः । भृमृशीङ्०** (उ० १ । ७) इति तनु विस्तारे—उप्रत्ययः । ततः स्त्रियाम् ऊङ् । **उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य** (पा० ८ । २ । ४) इति उदात्तस्य ऊकारस्य यणादेशे कृते अनुदात्तविभक्तेः स्वरितः आदेशः । तन्वाः शरीरस्य । **अद्य । सद्यः परुत्परार्यैषमः०** (पा० ५ । ३ । २२) इति इदम्शब्दस्य अश्भावः, द्यश्च प्रत्ययो दिनेऽर्थे च निपात्यते । अस्मिन् दिने, अध्ययनकाले । **दधातु ।** डुधाञ् धारणपोषणयोः —लोट् । जुहोत्यादिः । शपः श्लुः । धारयतु, स्थापयतु, ददातु । **मे ।** मह्यम्, मदर्थम् ॥

२—पुनः । पनाय्यते स्तूयत इति । पन स्तुतौ—अर्, अकारस्य उत्वं पृषोदरादित्वात् । अवधारणेन । वारंवारम् । **आ+इहि ।** आ+इण् गतौ लोट् । आगच्छ । **वाचः+पते ।** म० १ । हे वाण्याः स्वामिन्, हे ब्रह्मन् । वाचस्पतिर्वाचः पाता वा पालयिता वा—निरु० १० । १७ । **देवेन । नन्दिग्रहि-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिप्पणी—भगवान् यास्क मुनि ने 'वाचस्पति' का अर्थ "वाचःपाता वा पालयिता वा"—अर्थात् वाणी की रक्षा करने वाला वा कराने वाला किया है—निरु० १०। १७। और निरु० १०। १८। में उदाहरण रूप से इस मन्त्र का पाठ इस प्रकार है।

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते निरामय मय्येव तन्वं १ मम ॥ १ ॥

हे वाणी के स्वामी तू बारम्बार आ, हे धन वा अन्न के रक्षक! प्रकाशमय मन के साथ मुझमें ही मेरे शरीर को नियम पूर्वक रमण करा ॥

मन की उत्तम शक्तियों के बढ़ाने के लिये **'यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम्'** इत्यादि यजुर्वेद अ० ३४ म० १–६ भी हृदयस्थ करने चाहिये ॥

इहैवाभि वितनूभे आत्नीं इव ज्यया।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥ २ ॥

इह। एव। अभि। वि। तनु। उभे इति। आत्नीं इवेत्यात्नीऽइव। ज्यया। वाचः। पतिः। नि। यच्छत। मयि। एव। अस्तु। मयि। श्रुतम् ॥२॥

भाषार्थः—(इह) इसके ऊपर (एव) ही (अभि) चारों ओर से (वि तनु)

पचादिभ्यो ल्युणिन्यचः (पा० ३। १। १३४) इति दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु—पचाद्यच्। दिव्येन, द्योतकेन, प्रकाशमयेन। **मनसा। सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४। १८९) इति मन ज्ञाने असुन्। चित्तेन, अन्तःकरणेन। **वसोः। अस्वृस्निहि०** (उ० १। १०) इति वस निवासे आच्छादने—उप्रत्ययः। **श्वसो वसीयःश्रेयसः** (पा० ५। ४। ८०) अत्र वसु शब्दः प्रशस्तवाची। श्रेष्ठगुणस्य। अथवा छन्दसि, वसुनः धनस्य। **पते।** म० १। पालयितः, स्वामिन्। **वसोष्पते। षष्ठ्याः पतिपुत्र०** (पा० ८।३।५३) इति विसर्जनीयस्य सत्वम्। **आदेशप्रत्यययोः** (पा० ८। ३। ५९) इति षत्वम्। **नि।** नियमेन, नितराम्। **रमय। हेतुमति च** (पा० ३। १। २६) इति रमु क्रीडायाम्—णिच्—लोट्। णिचि वृद्धिप्राप्तौ **मितां ह्रस्वः** (पा० ६। ४। ९२) इति मित्त्वात् उपधाह्रस्वः। क्रीडय, आनन्दय माम्। **मयि।** ममात्मनि वर्त्तमानम्। **श्रुतम्।** श्रूयते स्म यदिति। श्रु श्रवणे—क्तः। अधीतम्, वेदशास्त्रम् ॥

२—**इह।** अत्र, अस्योपरि, अस्मिन् ब्रह्मचारिणि, ममोपरि। **अभि।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू अच्छे प्रकार फैल, (इव) जैसे (उभे) दोनों (आर्त्नी) धनुष कोटियें (ज्यया) जय के साधन, चिल्ला के साथ [तन जाती हैं]। (वाचस्पतिः) वाणी का स्वामी (नि यच्छतु) नियम में रक्खे, (मयि) मुझमें [वर्त्तमान] (श्रुतम्) वेद विज्ञान (मयि) मुझमें (एव) ही (अस्तु) रहे ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे संग्राम में शूरवीर धनुष की दोनों कोटियों को डोरी में चढ़ाकर बाण से रक्षा करता है उसी प्रकार आदिगुरु परमेश्वर अपने कृपायुक्त दोनों हाथों को [अर्थात् अज्ञान की हानि और विज्ञान की वृद्धि को] इस मुझ ब्रह्मचारी पर फैलाकर रक्षा करे और नियम पालन में दृढ़ करके परम सुखदायक ब्रह्मविद्या का दान करे और विज्ञान का पूरा स्मरण मुझमें रहे ॥ ३ ॥

भगवान् यास्क के अनुसार–निरुक्त ९ । १७ में 'ज्या' शब्द का अर्थ जीतने वाली यद्वा आयु घटाने वाली अथवा वाणों को छोड़ने वाली वस्तु है ॥

उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् ।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥ ४ ॥

उपऽहूतः । वाचः । पतिः । उप । अस्मान् । वाचः । पतिः ।
ह्वयताम् । सम् । श्रुतेन । गमेमहि । मा । श्रुतेन । वि । राधिषि ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(वाचस्पतिः) वाणी का स्वामी, परमेश्वर (उपहूतः) समीप बुलाया गया है, (वाचस्पतिः) वाणी का स्वामी (अस्मान्) हमको (उपह्वय-

---

अभितः सर्वतः । **वि तनु** । तनु विस्तारे–लोट् अकर्मकः । वितनुहि, वितन्यस्व विस्तृतो भव । **उभे । ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्** (पा० १ । १ । ११) इति प्रगृह्यम् । द्वये । **आर्त्नी** । आङ् + ऋ गतौ–क्तिन्, नकारोपसर्जनम् । पूर्ववत् प्रगृह्यम् । आर्त्नी, धनुष्कोटी, अटन्यौ, धनुःप्रान्ते । आर्त्नी अर्तन्यौ वारण्यौ वारिषण्यौ वा निरु० ९ । ३९ । **ज्यया** । ज्या जयतेर्वा जिनातेर्वा प्रजावयतीषूनिति वा–निरु० ९ । १७ । **अदन्याद्यश्च** (उ० ४ । ११२) इति जि जये, वा ज्या वयोहानौ णिच्–वा, जु[1] रंहसि गतौ, णिच्—यक् । निपातनात् साधुः । यद्वा । **अन्येष्वपि दृश्यते** (पा० ३ । २ । १०१) इति ज्युङ् गतौ यद्वा, ज्या वयोहानौ णिच्–डः । टाप् । धनुर्गुणेन, मौर्व्या । **वाचः + पतिः** । म० १ । वाण्याः स्वामी । **नि + यच्छतु** । नियमतु, नियमे रक्षतु । अन्यत् सुगमं व्याख्यातं च ॥

४—उप + हूतः । उप + ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च–क्तः । समीपं कृतावाहनः, कृत-

---

१. सौत्रो धातुः ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताम्) समीप बुलावे । (श्रुतेन) वेद विज्ञान से (संगमेमहि) हम मिले रहें । (श्रुतेन) वेद विज्ञान से (मा वि राधिषि) मैं अलग न हो जाऊं ॥ ४ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी लोग परमेश्वर का आवाहन करके निरन्तर अभ्यास और सत्कार से वेदाध्ययन करें जिससे प्रीति पूर्वक आचार्य की पढ़ायी ब्रह्म-विद्या उनके हृदय में स्थिर होकर यथावत् उपयोगी होवे ॥ ४ ॥

टिप्पणी—इस सूक्त का यह भी तात्पर्य है कि जिज्ञासु ब्रह्मचारी अपने शिक्षक आचार्यों का सदा आदर सत्कार करके यत्न पूर्वक विद्याभ्यास करें जिससे वह शास्त्र उनके हृदय में दृढ़भूमि होवे ॥

सूक्तम् २ ॥

१—४ ॥ अथर्वा ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ १, २, ४ । अनुष्टुप्, ८×४ । ३ त्रिपदा त्रिष्टुप्, ११×३ अक्षराणि ॥

बुद्धिवृद्ध्युपदेशः—बुद्धि की वृद्धि के लिये उपदेश ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ॥ १ ॥

विद्म । शरस्य । पितरम् । पर्जन्यम् । भूरिऽधायसम् । विद्मो इति । सु । अस्य । मातरम् । पृथिवीम् । भूरिऽवर्पसम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(शरस्य) शत्रु नाशक [बाणधारी] शूर पुरुष के (पितरम्) रक्षक, पिता, (पर्जन्यम्) सींचने वाले मेघ रूप (भूरिधायसम्) बहुत प्रकार

स्मरणः । **वाचः+पतिः** । म० १ । वाण्याः पालयिता, परमेश्वरः । **उप** । समीपे । आदरेण । **ह्वयताम्** । ह्वेञ्—लोट् । आह्वयतु, स्मरतु । **श्रुतेन** । म० २ । अधीतेन, शास्त्रविज्ञानेन । **सम्+गमेमहि** । सम् पूर्वकात् गम्लृ गतौ-आशीर्लिङि **समो गम्यृच्छिभ्याम्** (पा० १ । ३ । २९) इति आत्मनेपदम् । **व्यवहिताश्च** (पा० १ । ४ । ८२) इति समः क्रियापदेन सम्बन्धः । संगच्छेमहि, संगता भूयास्म । **मा+वि+राधिषि** । राध संसिद्धौ । वि राध वियोगे—लुङि, आत्मनेपदमेकवचनम् इडागमश्च । **माङि लुङ्** (पा० ३ । ३ । १७५) इति लुङ् । **न माङ्योगे** (पा० ६ । ४ । ७४) इति माङि अटोऽभावः । अहं वियुक्तो मा भूवम् ॥

१—विद्म । विद ज्ञाने—लट् । अदादित्वात् शपो लुक् । **दृव्यचोऽतस्तिङः**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पोषण करनेवाले [परमेश्वर] को (विद्म) हम जानते हैं। (अस्य) इस शूर की (मातरम्) माननीया माता, (पृथिवीम्) विख्यात वा विस्तीर्ण पृथिवी रूप (भूरिवर्पसम्) अनेक वस्तुओं से युक्त [ईश्वर] को (सु) भली भाँति (विद्म उ) हम जानते ही हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे मेव, जल की वर्षा करके और पृथ्वी, अन्न आदि उत्पन्न करके प्राणियों का बड़ा उपकार करते हैं, वैसे ही वह जगदीश्वर परब्रह्म सब मेघ, पृथ्वी आदि लोक लोकान्तरों का धारण और पोषण नियम पूर्वक करता है। जितेन्द्रिय शूरवीर विद्वान् पुरुष उस परब्रह्म को अपने पिता के समान रक्षक, और माता के समान माननीय और मानकर्त्ता जानकर (भूरिधायाः)

(पा० ६ । ३ । १३५) इति सांहितिको दीर्घः। वयं जानीमः। **शरस्य**। शृणाति शत्रून्। **ऋदोरप्** (पा० ३।३।५७) इति शॄ हिंसायाम्–अप्। शत्रुनाशकस्य वाणस्य। अथवा, शरो वाणः, तदस्यास्ति। **अर्श आदिभ्योऽच्** (पा० ५ । २ । १२७) इति मत्वर्थे अच्। वाणवतः शूरपुरुषस्य। **पितरम्**। **नप्तृनेष्टृत्वष्टृ०** (उ० २ । ९५) इति पा रक्षणे–तृन् वा तृच्। निपातनात् साधुः। रक्षकम्। जनकम्। पातारं पालयितारं वा–निरु० ४ । २१। **पर्जन्यम्**। पर्षति सिञ्चति वृष्टिं करोतीति पर्जन्यः। **पर्जन्यः** (उ० ३ । १०३) इति पृषु सेचने–अन्यप्रत्ययः, षस्य जकारः। पर्जन्यस्तृपेराद्यन्तविपरीतस्य तर्पयिता जन्यः। परो जेता वा। जनयिता वा प्रार्जयिता वा रसानाम्–निरु० १०। १०। सेचकम्। मेघम्। मेघवद् उपकर्त्तारम्। **भूरि-धायसम्**। **वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि** (उ० ४ । २२१) इति भूरि + डुधाञ् धारणपोषणयोः–असुन्, स च णित्। **आतो युक् चिण्कृतोः** (पा० ७ । ३ । ३३) इति युक्। बहुपदार्थधारयितारं सृष्टेः पोषयितारं परमेश्वरम्। **विद्मो इति**। विद्म–उः। वयं जानीम एव। **सु**। सुष्ठु। **अस्य**। शरस्य। **मातरम्**। मान्यते पूज्यते सा माता। **नप्तृनेष्टृत्वष्टृ०** (उ० २ । ९५) इति मान पूजायाम्–तृन् वा तृच्, निपातनम्। माननीयाम्। जननीम्। **पृथिवीम्**[1]। **प्रथिम्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च** (उ० १ । २८) इति प्रथ प्रख्याने—कुः। **वोतो गुणवचनात्** (पा० ४ । १ । ४४) इति पृथु—ङीष्=पृथ्वी। विस्तीर्णा प्रख्याता पृथिवी। अथवा, प्रथते विस्तीर्णा भवतीति पृथिवी। **प्रथेः षिवन्षवन्ष्वनः संप्रसारणं च** (उ० १ । १५०) इति प्रथ प्रख्याने—षिवन्, संप्रसारणं च। **षिद्गौरादिभ्यश्च** (पा० ४ । १ । ४१) इति ङीष्। भूमिम्। भूमिवद् गुणवन्तम्। **भूरिवपसम्**। व्रियते स्वीक्रियते तत्। वर्पो

---

१. पृथ्वी, पृथवी, पृथिवी ये तीनों पर्यायवाची शब्द हैं, अतः प्रसङ्ग से तीनों की व्युत्पत्ति दर्शा दी है। मन्त्र में तो 'पृथिवी' शब्द ही है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक प्रकार से पोषण करने वाला और (भूरिवर्पाः) अनेक वस्तुओं से युक्त होकर परोपकार में सदा प्रसन्न रहे ॥ १ ॥

ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि ।
वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥ २ ॥

ज्याके । परि । नः । नम । अश्मानम् । तन्वम् । कृधि ।
वीडुः । वरीयः । अरातीः । अप । द्वेषांसि । आ । कृधि ॥ २ ॥

भाषार्थः—[हे इन्द्र] (ज्याके) जय के लिये (नः) हमको (परि) सर्वथा (नम) तू झुका, (तन्वम्) [हमारे] शरीर को (अश्मानम्) पत्थर सा [सुदृढ़] (कृधि) बनादे । (वीडुः) तू दृढ़ होकर (अरातीः) विरोधों और (द्वेषांसि) द्वेषों को (अप = अपहृत्य) हटाकर (वरीयः) बहुत दूर (आ कृधि) करदे ॥ २ ॥

अथवा, (ज्याके) दोनों जय के साधनों [मेघ और भूमि] को (नः परि) हमारी ओर (नम) तू झुका । यह अर्थ प्रयुक्त करो ॥

भावार्थः—परमेश्वर में पूर्ण विश्वास करके मनुष्य आत्मबल और शरीर बल प्राप्त करें और सब विरोधों को मिटावें ॥ २ ॥

रुपम्—निघ० ३ । ७ । **वृङ्शीङ्भ्यां रूपस्वाङ्गयोः पुट् च** (उ० ४ । २०१) इति वृङ् सम्भक्तौ—असुन्, पुट् आगमः । भूरीणि बहूनि रूपाणि वस्तूनि यस्मिन् स भूरिवर्पाः । अनेकवस्तुयुक्तं परमेश्वरम् ॥

२—**ज्याके** । ज्या जयतेर्वा जिनातेर्वा प्रजावयतीषूनिति वा—निरु० ९ । १७ । **खजेराकः** (उ० ४ । १३) इति जि जये—आकप्रत्ययः निपात्यते । **सप्तम्यधिकरणे च** (पा० २ । ३ । ३६) अत्र **निमित्तात् कर्मसंयोगे सप्तमी वक्तव्या** इत्यनेन वार्तिकेन निमित्ते सप्तमी । जयनिमित्ते = जयार्थम् । यद्वा अ० १।१।३ । ज्या—स्वार्थे कन्, टाप् च । जयसाधने [उभे पर्जन्यपृथिव्यौ]—स्त्रियां द्वितीयाद्विवचनम् । **परि** । परितः सर्वतः । **नः** । अस्मान् । **नम** । नमय, प्रह्वीकुरु । **अश्मानम्** । **अशिशकिभ्यां छन्दसि** उ० ४।१४७) इति अशूङ् व्याप्तौ, वा अश भोजने—मनिन् । अश्मा मेघनाम—निघ० १ । १० । पाषाणम्, प्रस्तरवद् दृढम् । **तन्वम्** । अ०१।१।१ छन्दसि यण् । **उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य** (पा० ८ । २ । ४) इति स्वरितम् । तनूम्, शरीरम् । **कृधि** । डुकृञ् करणे—लोट् । कुरु । **वीडुः** । **भृमृशीङ्०** (उ० १ । ७) इति वीड संस्तम्भे—उः । वीडु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायणाचार्य ने अर्थ किया है कि (ज्याके) हे कुत्सित चिल्ला! (नः) हमको (परि) छोड़ कर (नम) झुक। हमारी समझ में यह असंगत है, सम्पूर्ण सूक्त का देवता इन्द्र है॥

वृक्षं यद् गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम्।
शरुमस्मद् यावय द्युमिन्द्र ॥ ३ ॥

वृक्षम्। यत्। गावः। परि-सस्वजानाः। अनु-स्फुरम्। शरम्। अर्चन्ति। ऋभुम्। शरुम्। अस्मत्। यवय। द्युम्। इन्द्र॥ ३॥

भाषार्थः—(यत्) जब (वृक्षम्) धनुष से (परि-सस्वजानाः) लिपटी हुई (गावः) चिल्ले की डोरियां (अनुस्फुरम्) फुरती करते हुये (ऋभुम्) विस्तीर्ण ज्योति वाले, अथवा सत्य से प्रकाशमान वा वर्त्तमान, बड़े बुद्धिमान् (शरम्) वाणधारी शूरपुरुष की (अर्चन्ति) स्तुति करें। [तब] (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर! [वा, हे वायु!] (शरुम्) वाण और (द्युम्) वज्र को (अस्मत्) हमसे (यावय) तू अलग रख॥ ३॥

बलनाम—निघ० २। ९। वीडयतिश्च व्रीडयतिश्च संस्तम्भकर्मणौ—निरु० ५।१६। वीड्वी दृढा। **वरीयः। प्रियास्थिरस्फिरोरु०** (पा० ६। ४। १५७) इति उरु—ईयसुन् वरादेशः। क्रियाविशेषणम्। उरुतरं दूरतरम्। **अरातीः।** न राति ददाति सुखं स अरातिः शत्रुः। **क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्** (पा० ३। ३। १७४) इति रा दाने—क्तिच्, नञ्समासः। **सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णा०** (पा० ७। १। ३९) इति पूर्वसवर्णः। अरातीन् शत्रून्। यद्वा क्तिन् प्रत्ययान्ते। शत्रुभावान्, विरोधान्। **अप।** अपहृत्य। **द्वेषांसि।** द्विष अप्रीतौ—भावे असुन्। द्वेषान्। **आ।** ईषदर्थे॥

३—वृक्षम्। स्नुवश्चिकृत्यृषिभ्यः कित् (उ० ३। ६६) इति ओव्रश्चू छेदने—क्सप्रत्ययः। वृक्षे वृक्षे धनुषि धनुषि वृक्षो व्रश्चनात्—निरु० २। ६। धनुर्दण्डम्। धनुः। **यत्।** यदा। **गावः। गमेर्डोः** (उ० २। ६७) इति गम्ल्ऌ गतौ-डोः। ज्यापि गौरुच्यते गव्या चेत् ताद्धितमथ चेन्न गव्या गमयतीषूनिति—निरु० २। ५। ज्याः, मौर्व्यः। **परि-सस्वजानाः।** ष्वञ्ज परिष्वङ्गे, लिटः कानच्, नकारलोपे द्विर्वचनम्। आश्लिष्य धनुष्कोटौ आरोपिताः। **अनुस्फुरम्।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जब दोनों ओर से (आध्यात्मिक वा आधिभौतिक) घोर संग्राम होता हो, बुद्धिमान् चतुर सेनापति ऐसा साहस करे कि सब योद्धा लोग उसकी बड़ाई करें, और वह परमेश्वर का सहारा लेकर और अपने प्राण वायु को साधकर शत्रुओं को निरुत्साह करदे, और जय प्राप्त करके आनन्द भोगे ॥ ३ ॥

निरुक्त अध्याय २, खंड ६ और ५ के अनुसार (वृक्ष) का अर्थ [धनुष] इसलिये है कि उससे शत्रु छेदा जाता है और (गौ) का नाम चिल्ला इसलिये है कि उससे बाणों को चलाते हैं ॥

यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम् ।
एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥ ४ ॥

यथा । द्याम् । च । पृथिवीम् । च । अन्तः । तिष्ठति । तेजनम् । एव । रोगम् । च । आऽस्रावम् । च । अन्तः । तिष्ठतु । मुञ्जः । इत् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (तेजनम्) प्रकाश (द्यां च) सूर्यलोक (च) और

स्फुर स्फुरणे सञ्चलने–घञर्थे कविधानम् । प्रतिस्फुरणम्, स्फूर्तियुक्तम् । **शरम्** । म० १ । शत्रुछेदकम् । वाणधारकं शूरम् । **अर्चन्ति** । पूजयन्ति, स्तुवन्ति । **ऋभुम्** । ऋ गतौ–क्विप् । ऋ + भा दीप्तौ भू सत्तायाम् वा-डुः । यद्वा, उरुशब्दस्य ऋतशब्दस्य वा ऋकार आदेशः । ऋभव उरु भान्तीति वा । ऋतेन भान्तीति वा । ऋतेन भवन्तीति वा–निरु० ११ । १५ । ऋभुः=मेधावी । निघ० ३ । १५ । उरुभासनम्, ऋतेन सत्येन भान्तं भवन्तं वा । मेधाविनम् । **शरुम्** । **शृस्वृस्निहि०** (उ० १ । १०) इति शृ हिंसायाम्–उप्रत्ययः । छेदकं वाणम् । **अस्मत्** । अस्मत्तः । **यवय** । यु मिश्रणामिश्रणयोः–णिच्–लोट् । पृथक् कुरु । **दिद्युम्** । **द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च** (वा पा० ३ । २ । १७८) इति द्युत दीप्तौ–क्विप् । द्योतते उज्ज्वलत्वात् । अथवा दो अवखण्डने–क्विप् । द्यति खण्डयति शत्रून् । पृषोदरादिः, तलोपश्छान्दसः । दिद्युत्, वज्रः–निघ० २ । २० । वज्रम् । **इन्द्र** । **ऋज्रेन्द्राग्रवज्र०** (उ० २ । २८) इति इदि परमैश्वर्ये—रन् । **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** (पा० ६ । १ । १९७) इति नित्त्वात् आद्युदात्तत्वे प्राप्ते आमन्त्रितत्वात् सर्वानुदात्तत्वम् । **इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा** (पा० ५ । २ । ९३) वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः—निरु० ७ । ५ । हे परमैश्वर्यवन्, वायो, हे जीव ॥

४—**यथा** । येन प्रकारेण । **द्याम्** । **गमेर्डोः** (उ० २ । ६७) इति बाहु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृथिवीम्) पृथिवी लोक के (अन्तः) बीच में (तिष्ठति) रहता है। (एव) वैसे ही (मुञ्जः) शोधने वाला परमेश्वर [वा औषध] (इत्) भी (रोगं च) शरीर भंग (च) और (आस्रावम्) रुधिर के बहाव वा घाव के (अन्तः) बीच में (तिष्ठतु) स्थित होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने बाहिरी और भीतरी क्लेशों में (मुञ्जः) हृदय संशोधक परमेश्वर का स्मरण रखते हैं वे दुःखों से पार होकर तेजस्वी होते हैं। अथवा जैसे सद्वैद्य (मुञ्ज) संशोधक औषधि से बाहिरी और भीतरी रोग का प्रतीकार करता है, वैसे ही आचार्य विद्या प्रकाश से ब्रह्मचारी के अज्ञान का नाश करता है ॥ ४ ॥

सायण भाष्य में 'तेजनम्' नपुंसक लिङ्ग को 'तेजनः' पुलिंग मानकर 'वेणुः' अर्थात् बांस अर्थ किया है वह असंगत है ॥

सूक्तम् ३ ॥

१-६ ॥ अथर्वा ऋषिः। पर्जन्यादयो देवताः। १-५ पंक्तिः ८×५, ६-९ अनुष्टुप् छन्दः, ८×४ अक्षराणि ॥

शान्तिकरणम्—शान्ति के लिये उपदेश।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं
बर्हिष्टे अस्तु बालिति ॥ १ ॥

लकात् द्युत दीप्तौ-डोप्रत्ययः। सूर्यलोकम्। **पृथिवीम्**। म० २। प्रख्यातां विस्तीर्णां वा भूमिम्। **अन्तः**। अम गत्यादिषु-अरन्, तुडागमः। **अन्तरान्तरेण युक्ते.** (पा० २। ३। ४) इति छन्दसि मध्यशब्दस्य पर्यायवाचकत्वात् अन्तर् इति शब्देन सह द्वितीया। द्वयोर्मध्ये। **तिष्ठति**। वर्तते। **तेजनम्**। नपुंसकम्। तिज निशाने-ल्युट्। तेजः प्रकाशः। **एव**। **निपातस्य च** (पा० ६। ३। १३६) इति छन्दसि दीर्घम्। एवम्, तथा। **रोगम्**। **पदरुजविशस्पृशो घञ्** (पा० ३। ३। १६) इति रुज हिंसायाम्—घञ्। रुजति शरीरम्। शरीरभङ्गम्। **आस्रावम्**। **श्याद्व्यधास्रु०** (पा० ३। १। १४१) इति आङ्+स्रु गतौ-णप्रत्ययः। **अचो ञ्णिति** (पा० ७।२।११५) इति वृद्धिः। आस्रावम्, रुधिरादिस्रवणम्। आघातम्। **मुञ्जः**। मुञ्ज्यते मृज्यते अनेन। मुजि[1] मार्जने शोधने-अच्। परमेश्वरः। संशोधकः पदार्थो वा। **इत्**। एव। अपि ॥

---

१. धातुवृत्ति आदि में मुजि शब्दार्थक धातु पढ़ा है। बाहुलकात् यहाँ मार्जन अर्थ जानें ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्म । शरस्य । पितरम् । पर्जन्यम् । शतऽवृष्ण्यम् । तेन । ते । तन्वे । शम् । करम् । पृथिव्याम् । ते । निऽसेचनम् । बहिः । ते । अस्तु । बाल् । इति ॥ १ ॥

भाषार्थः—(शरस्य) शत्रुनाशक [वा वाणधारी] शूर के (पितरम्) रक्षक पिता, (पर्जन्यम्) सींचने वाले मेघ रूप (शतवृष्ण्यम्) सैकड़ों सामर्थ्य वाले [परमेश्वर] को (विद्म) हम जानते हैं । (तेन) उस [ज्ञान] से (ते) तेरे (तन्वे) शरीर के लिये (शम्) नीरोगता (करम्) मैं करूँ, और (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (ते) तेरा (निसेचनम्) बहुत सेचन [वृद्धि] होवे, और (ते) तेरा (बाल्) बैरी (बहिः) बाहिर (अस्तु) होवे, (इति) बस यही ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे मेघ अन्न आदि उत्पन्न करता है वैसे ही मेघ के भी मेघ अनन्त शक्तिवाले परमेश्वर को साक्षात् करके जितेन्द्रिय पुरुष (शतवृष्ण्यम्) सैकड़ों सामर्थ्य वाला होकर अपने शत्रुओं का नाश करता और आत्मबल बढ़ा कर संसार में वृद्धि करता है ॥ १ ॥

इस मन्त्र के पूर्वार्ध के लिये १ । २ । १ । देखो ॥

१—**विद्म, शरस्य, पितरम्, पर्जन्यम्** । इति पदानि व्याख्यातानि अ० १ । २ । १ । **शतवृष्ण्यम्** । वर्षतीति वृषा । **कनिन् युवृषितक्षि०** (उ० १ । १५६) इति वृषु सेचने-कनिन् । **भवे छन्दसि** (पा० ४ । ४ । ११०) इति वृषन्-यत् । वृष्णि भवं वृष्ण्यं वीर्यं सामर्थ्यम् । बहुसामर्थ्योपेतं परमेश्वरम् । **तन्वे** । अ० १।१।१। तद्वत् सिद्धिः स्वरितश्च । शरीराय । **शम्** । **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** (पा० ३।२।७५) इति शमु उपशमने–विच् । शान्तिम्, स्वास्थ्यम् । सुखम्–निघ० ३।६ । **करम्** । डुकृञ् करणे–लेट् । अहं कुर्याम् । **पृथिव्याम्** । अ० १ । २ । २ । प्रख्यातायां भूमौ । **ते** । तव । **नि-सेचनम्** । नि + षिच क्षरणे–भावे ल्युट् । आर्द्रीकरणम्, वर्धनम्, वृद्धिः । **बहिः** । वह प्रापणे—इसुन् । बाह्यम् । बहिर्देशे । **बाल्** । वल बधे[1]–क्विप्, बलति हिनस्तीति बाल् । बलः, असुरः, दैत्यः, वैरी । **इति** । इण् गतौ–क्तिच् । पर्य्याप्तम् । अलम् ॥

---

१. यहाँ भी बाहुलकात् 'बधे' अर्थ जानें ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्मा शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे ३ शंकरं पृथिव्यां ते निषेचनं
बर्हिष्टे अस्तु बालिति ॥ २ ॥

विद्म । शरस्य । पितरम् । मित्रम् । शतऽवृष्ण्यम् । तेन । ते । तन्वे । शम् । करम् । पृथिव्याम् । ते । निऽसेचनम् । बर्हिः । ते । अस्तु । बाल् । इति॥२॥

भाषार्थः—(शरस्य) शत्रु नाशक शूर [वा वाणधारी] के (पितरम्) रक्षक पिता, (मित्रम्) सबके चलाने वाले [वा स्नेहवान्] वायु रूप (शतवृष्ण्यम्) सैकड़ों सामर्थ्य वाले [परमेश्वर] को (विद्म) हम जानते हैं। तेन उस [ज्ञान] से.....॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे वायु सब प्राणियों के जीवन का आधार है वैसे ही परमेश्वर वायु का भी प्राण है इत्यादि ॥ २ ॥

सायण भाष्य में "मित्र" शब्द का अर्थ दिन का अभिमानी देवता है ॥

विद्मा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे ३ शंकरं पृथिव्यां ते निषेचनं
बर्हिष्टे अस्तु बालिति ॥ ३ ॥

विद्म । शरस्य । पितरम् । वरुणम् । शतऽवृष्ण्यम् । तेन । ते । तन्वे । शम् । करम् । पृथिव्याम् । ते । निऽसेचनम् । बर्हिः । ते । अस्तु । बाल् । इति॥३॥

२—मित्रम् । अमिचिमिशसिभ्यः क्त्रः (उ० ४ । १६४) इति डुमिञ् प्रक्षेपणे—क्त्रः । मिनोति प्रेरयति वृष्टिम् अन्यपदार्थान् चेति मित्रः, यद्वा ञिमिदा स्नेहने—त्रः । सर्वप्रेरकः । स्नेहवान् । वायुः । वायुवत् उपकारकम् । मित्रशब्दो भगवता यास्केन मध्यस्थानदेवतासु पठितः—निरु० १० । २१-२२ । अहरभिमानी देवो मित्रः—इति सायणः । वायुम् । दिनकालम् । शेषं पूर्ववद् योज्यम्, म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(शरस्य) शत्रु नाशक [वा वाणधारी] शूर के (पितरम्) रक्षक, पिता, (वरुणम्) लोकों के ढकने वाले आकाश रूप विस्तीर्ण (शतवृष्ण्यम्) सैकड़ों सामर्थ्य वाले [परमेश्वर] को (विद्म) हम जानते हैं। (तेन) उस [ज्ञान] से.....॥ ३ ॥

भावार्थः—आकाश में सूर्य भूमि आदि लोक स्थित हैं और परमेश्वर के आधीन आकाश भी है—इत्यादि ॥ ३ ॥

'वरुण' मध्यस्थान देवता—निरु० १०। ३ में है। इससे वृष्टिजल का अर्थ प्रतीत होता है, परन्तु 'पर्जन्य' शब्द म० १ में आ चुका है, इससे यहां पर वृष्टि का आधार और सबका ढकने वाला आकाश अर्थ है। सायण भाष्य में रात्रि का अभिमानी देवता अर्थ है ॥

विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं
बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ ४ ॥

विद्म । शरस्य । पितरम् । चन्द्रम् । शतऽवृष्ण्यम् । तेन । ते । तन्वे । शम् । करम् । पृथिव्याम् । ते । निऽसेचनम् । बहिः । ते । अस्तु । बाल् । इति॥४॥

भाषार्थः—(शरस्य) शत्रुनाशक [वा वाणधारी] शूर के (पितरम्) रक्षक, पिता (चन्द्रम्) आनन्द देने वाले, चन्द्रमा रूप उपकारी (शतवृष्ण्यम्) सैकड़ों सामर्थ्य वाले [परमेश्वर को] (विद्म) हम जानते हैं। (तेन) उस [ज्ञान] से .....॥ ४ ॥

३—**वरुणम्। कृवृदारिभ्य उनन्** (उ० ३। ५३) इति वृञ् वरणे—उनन्। आवृणोति लोकान्। मध्यस्थानदेवतासु—वरुणो वृणोतीति सतः—निरु० १०। ३। लोकानामावरकम् अन्तरिक्षम् आकाशं वा। वरुणो रात्र्यभिमानी देवः—इति सायणः। शेषं पूर्ववद् व्याख्येयम् म० १ ॥

४—**चन्द्रम्। स्फायितञ्चि०** (उ० २। १३) इति चदि आह्लादने दीप्तौ च—रक्। चन्द्रश्चन्दतेः कान्तिकर्मणः—निरु० ११। ५। आह्लादकं देवं, हिमांशुम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(चन्द्र) आनन्द देनेवाला अर्थात् अपनी किरणों से अन्न आदि औषधों को पुष्ट करके प्राणियों को बल देता है। उस चन्द्रमा का भी आह्लादक वह परमेश्वर है, ऐसे ही मनुष्य को आनन्द देने वाला होना चाहिये ॥ ४ ॥

विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे ३ शंकरं पृथिव्यां ते निषेचनं
बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ ५ ॥

विद्म । शरस्य । पितरम् । सूर्यम् । शतऽवृष्ण्यम् । तेन । ते । तन्वे । शम् । करम् । पृथिव्याम् । ते । निऽसेचनम् । बहिः । ते । अस्तु । बाल् । इति ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(शरस्य) शत्रुनाशक [वाणधारी] शूर के (पितरम्) रक्षक, पिता (सूर्यम्) चलनेवाले वा चलानेवाले सूर्य समान [उपकारी] (शतवृष्ण्यम्) सैकड़ों सामर्थ्य वाले [परमेश्वर] को (विद्म) हम जानते हैं। (तेन) उस [ज्ञान] से (ते) तेरे (तन्वे) शरीर के लिये (शम्) नीरोगता (करम्) मैं करूं और (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (ते) तेरा (निसेचनम्) बहुत सेचन [वृद्धि] होवे और (ते) तेरा (बाल्) बैरी (बहिः) बाहिर (अस्तु) होवे, (इति) बस यही ॥ ५ ॥

भावार्थः—'सूर्य' आकाश में वायु से चलता है और लोकों को चलाता तथा वृष्टि आदि उपकार करता एवं बड़ा तेजस्वी है। वह परब्रह्म उस सूर्य का भी सूर्य है। उसके उपकारों को जान कर तेजस्वी मनुष्य परस्पर उन्नति करते हैं ॥ ५ ॥

इन्दुम्। तद्वत् उपकारकम्। अन्यत्—यथा म० १।

५—**सूर्यम्**। **राजसूयसूर्य०** (पा० ३ । १ । ११४) इति सृ गतौ क्यप्। निपातनात् ऋकारस्य ऊत्वम्। सरत्याकाशे स सूर्यः। यद्वा, षू प्रेरणे, तुदादिः—रुट् आगमः। सुवति प्रेरयति लोकान् कर्मणि स सूर्यः। यद्वा सु + ईर गतौ कर्मणि क्यपि निपात्यते। वायुना सुष्ठु ईर्यते प्रेर्यते स सूर्यः। सूर्यः सर्त्तेर्वा सुवतेर्वा स्वीर्यतेर्वा। निरु० १२ । १४। आदित्यम्, सूर्यवत् उपकारकम्। शेषम्—व्याख्यातम् म० १॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद् वस्तावधि संश्रुतम् ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ६ ॥

यत् । आन्त्रेषु । गवीन्योः । यत् । वस्तौ । अधि । सम्ऽश्रुतम् ।
एव । ते । मूत्रम् । मुच्यताम् । बहिः । बाल् । इति । सर्वकम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यत्) जैसे (यत्) कि (आन्त्रेषु) आंतों में और (गवीन्योः) दोनों पार्श्वस्थ नाड़ियों में और (वस्तौ अधि) मूत्राशय के भीतर (संश्रुतम्) एकत्र हुआ [मूत्र छूटता है] । (एव) वैसे ही (ते मूत्रम्) तेरा मूत्र रूप (बाल्) बैरी (बहिः) बाहिर (मुच्यताम्) निकाल दिया जावे (इति सर्वकम्) यही बस है ॥ ६ ॥

भावार्थः—जैसे शरीर में रुका हुआ सारहीन मल विशेष, मूत्र अर्थात् प्रस्राव क्लेश देता है और उसके निकाल देने से चैन मिलता है वैसे ही मनुष्य आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक शत्रुओं के निकाल देने से सुख पाता है ॥ ६ ॥

टिप्पणी—सायण भाष्य में 'संश्रुतम्' के स्थान में 'संश्रितम्' मानकर "समवस्थितम्" [ठहरा हुआ] अर्थ किया है ॥

६—**यत्** । यथा । **आन्त्रेषु** । अमत्यनेन, अम गत्यादिषु—क्त्रः । अति बन्धने—करणे ष्ट्रन्, उपधादीर्घः । अन्त्रेषु, उदरनाडीविशेषेषु । **गवीन्योः** । **द्रुदक्षिभ्यामिनन्** (उ० २ । ५०) इनि गुङ् अव्यक्ते शब्दे च—इनन् । ङीष् । छान्दसो दीर्घः । पार्श्वद्वयस्थे नाड्यौ गवीन्यौ इत्युच्यते, तयोः—इति सायणः । **वस्तौ** । **वसेस्तिः** (उ० ४ । १८०) इति वस आच्छादने—ति—प्रत्ययः । वसति मूत्रादिकम् । मूत्राशये । **अधि** । उपरि, मध्ये । **सम्श्रुतम्** । श्रु श्रवणे—क्तः । सम्यक् श्रुतम् । संगतम् । **एव** । एवम्, तथा । **मूत्रम्** । मूत्र प्रस्रवणे—घञ् । यद्वा, **सिवि मुच्योष्टेरू च** (उ० ४ । १६३) इति मुच प्रमोचने—ष्ट्रन् ऊत्वं च । मुच्यते त्यज्यते इति । प्रस्रावः, मेननम् । सारहीनः मलद्रवः । **मुच्यताम्** । मुच—कर्मणि लोट् । त्यज्यताम्, निर्गच्छतु । **सर्वकम्** । **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः** (पा० ५ । ३ । ७१) इति अकच् । सर्वम् । अन्यद् व्याख्यातं म० १ ॥

CC-0: In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ७ ॥

प्र । ते । भिनद्मि । मेहनम् । वर्त्रम् । वेशन्त्याःऽइव । एव । ते । मूत्रम् । मुच्यताम् । बहिः । बाल् । इति । सर्वकम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (मेहनम्) मूत्र द्वार को (प्रभिनद्मि) मैं खोले देता हूं, (इव) जैसे (वेशन्त्याः) झील का पानी (वर्त्रम्) बन्ध को [खोल देता है] (एव), वैसे ही····· ···· म० ६ ॥ ७ ॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य लौह शलाका से रोगी के रुके हुये मूत्र को झील के पानी के समान खोलकर निकाल देता है वैसे ही मनुष्य अपने शत्रु को निकाल देवे ॥ ७ ॥

विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदुधेरिव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ८ ॥

विऽसितम् । ते । वस्तिऽबिलम् । समुद्रस्य । उदुधेःऽइव । एव । ते । मूत्रम् । मुच्यताम् । बहिः । बाल् । इति । सर्वकम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(ते) तेरा (वस्तिबिलम्) मूत्र मार्ग (विषितम्) खोल दिया

७—**प्र + भिनद्मि** । भिदिर् विदारणे–लट् । **व्यवहिताश्च** (पा० १।४।८२) इति उपसर्गस्य व्यवधानम् । विवृणोमि, विवृतं करोमि । **मेहनम्** । मिह सेचने-करणे ल्युट् । मेहति सिञ्चति मूत्रम् । मूत्रमार्गम् । **वर्त्रम्** । **सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्** (उ० ४।१५९) इति वृतु वर्तने–ष्ट्रन् । बन्धम् । **वेशन्त्याः** । **जृविशिभ्यां झच्** (उ० ३ । १२६) इति विश प्रवेशने—झच् । **झोऽन्तः** (पा० ७।१।३) इति झस्य अन्तादेशः । वेशन्तः, जलाशयः । **भवे छन्दसि** (पा० ४ । ४ । ११०) इति यत् । वेशन्ते सरोवरे भवा आपः । अन्यत् पूर्ववत् म० ६ ॥

८—**वि-सितम्** । वि + षो अन्तकर्मणि--क्तः। यद्वा षिञ् बन्धने-क्तः । विमुक्तम् । **वस्ति-बिलम्** । म० १ । वस्ति + बिल भेदने-कः । मूत्रस्य छिद्रं मार्गम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है, (इव) जैसे (उदधेः) जल से भरे (समुद्रस्य) समुद्र का [मार्ग] (एव) वैसे ही.....। म० ६ ॥ ८ ॥

भावार्थः—मन्त्र ७ देखो ॥

यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ९ ॥

यथा । इषुका । पराऽअपतत् । अवऽसृष्टा । अधि । धन्वनः । एव । ते । मूत्रम् । मुच्यताम् । बहिः । बाल् । इति । सर्वकम् ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (धन्वनः अधि) धनुष् से (अवसृष्टा) छुटा हुआ (इषुका) बाण (परा-अपतत्) शीघ्र चला गया हो। (एव) वैसे ही (ते) तेरा (मूत्रम्) मूत्र रूप (बाल्) वैरी (बहिः) बाहिर (मुच्यताम्) निकाल दिया जावे (इति सर्वकम्) यही बस है ॥ ९ ॥

भावार्थः—सरल है, ऊपर के मन्त्र देखो ॥ ९ ॥

समुद्रस्य । स्फायितञ्चिवञ्चि० (उ० २ । १३) इति सम्+उन्दी क्लेदने–रक् सम्यक् उनत्ति क्लेदयति जलेन जगत् इति समुद्रः। समुद्रः कस्मात् समुद्द्रवन्त्यस्मादापः समभिद्रवन्त्येनमापः सम्मोदन्तेऽस्मिन् भूतानि समुद्रको भवति समुनत्तीति वा–निरु० २ । १० । समुद्रः=अन्तरिक्षम्–निघ० १ । ३ । सागरस्य । **उदधेः । कर्मण्यधिकरणे च** (पा० ३ । ३ । ९३) इति उद+डुधाञ् धारणपोषणयोः–किः । उदकपूर्णस्य । अन्यत् पूर्ववत् म० ६ ॥

९—इषुका । इषुरिषतेर्गतिकर्मणो वधकर्मणो वा निरु० ९ । १८ । इति ईष गतिहिंसादर्शनेषु–उप्रत्ययः । स्वार्थे–कन्, टाप् । इषुः, बाणः । **परा-अपतत् ।** पत गतौ—लङ् । शीघ्रं दूरे अगच्छत् । **अवसृष्टा ।** सृज विसर्गे—क्तः । विमुक्ता । **अधि ।** पञ्चम्यर्थानुवादी । **धन्वनः । कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः** (उ० १ । १५६) इति धन्व गतौ[1]—कनिन् । धनुषः सकाशात्, चापात् । शेषं पूर्ववत् म० ६ ॥

---

१. इदितो नुम्धातोः (७ । १ । ५८) से नुम् होकर धन्व बना है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ४ ॥

१—४ । सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः १---३ गायत्री, ४ पङ्क्तिः, ८×५ अक्षराणि ॥

परस्परोपकारोपदेशः—परस्पर उपकार के लिये उपदेश ॥

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् ।
पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥ १ ॥

अम्बयः । यन्ति । अध्वभिः । जामयः । अध्वरियताम् । पृञ्चतीः । मधुना । पयः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अम्बयः) पाने योग्य मातायें और (जामयः) मिलकर भोजन करनेहारी, बहिनें [वा कुलस्त्रियां] (मधुना) मधु के साथ (पयः) दूध को (पृञ्चतीः) मिलाती हुई (अध्वरीयताम्) हिंसा न करने हारे यजमानों के (अध्वभिः) सन्मार्गों से (यन्ति) चलती हैं ॥ १ ॥

१--**अम्बयः । सर्वधातुभ्य इन्** (उ०४।११८) इतिअम्ब[1]गतौ-इन् । प्रापणीया मातरः । मातृभूता आपः । अम्बाशब्दवद् अम्बिशब्दो वेदे मातृवाची । यथा 'अम्बितमे नदीतमे' (ऋ० २ । ४१ । १६) 'अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके' (य० ३४ । १८) **यन्ति** । इण् गतौ—लट् । गच्छन्ति । **अध्वभिः** । अत्ति, गमनेन बलं नाशयति स अध्वा । **अदेर्धश्च** (उ० ४ । ११६) इति अद भक्षणे-क्वनिप्, धश्चान्तादेशः । यद्वा । अत सातत्यगमने—क्वनिप्, तकारस्य धः[2] । सन्मार्गैः । **जामयः । वसिवपियजिराजि०** (उ० ४ । १२५) जमु अदने–इञ् । जमन्ति संगत्य भोजनं कुर्वन्ति ताः । कुलस्त्रियः । भगिन्यः । भगिनीवत् सहायभूताः स्त्रियः । **अध्वरि-यताम्** । अध्वानं सत्पथं रातीति । अध्वन्+रा दाने–कः । यद्वा न ध्वरति कुटिलीकरोति हिनस्तीति वा । न+ध्वृ हूर्छने —अच् । अध्वर इति यज्ञनाम ध्वरतिर्हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः—निरु० १ । ८ । **सुप आत्मनः क्यच्** (पा० ३ । १ । ८) इति अध्वर+क्यच् । शतृः । **क्यचि च** (पा० ७।४।३३) इति अकारस्य ईत्वम् । सन्मार्गदातारं कौटिल्यरहितं वा यज्ञमिच्छतां यजमानानाम् । **पृञ्चतीः** । पृची सम्पर्के-शतृः । ङीप् । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति पूर्वसवर्णदीर्घः । पृञ्चत्यः । संयोज--

---

१. द्र० सं० धा० को० ॥ सम्पा० ॥

२. इस पक्ष में 'अतेर्धश्च' यह पाठ जो नारायण एवं श्वेतवनवासी की उणादि का है सङ्गत हो जायेगा ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो पुरुष, पुत्रों के लिये माताओं के समान, और भाइयों के लिये बहिनों के समान, हितकारी होते हैं, वे सन्मार्गों से आप चलते और सबको चलाते हैं ॥ १ ॥

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ २ ॥

अमूः । याः । उप । सूर्ये । याभिः । वा । सूर्यः । सह । ताः । नः । हिन्वन्तु अध्वरम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अमूः) वह (याः) जो [मातायें और बहिनें] (उप = उपेत्य) समीप होकर (सूर्ये) सूर्य के प्रकाश में रहती हैं, (वा) और (याभिः सह) जिन [माताओं और बहिनों] के साथ (सूर्यः) सूर्य का प्रकाश है । (ताः) वह (नः) हमारे (अध्वरम्) उत्तम मार्ग देने हारे वा हिंसा रहित कर्म को (हिन्वन्तु) सिद्ध करें वा बढ़ावें ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो बातों का वर्णन है एक यह कि किसी में उत्तम गुणों का होना, दूसरे यह कि उन उत्तम गुणों को फैलाना ॥ २ ॥

१--जो नररत्न माता और भगिनियों के समान परिश्रमी और उपकारी होकर सूर्य रूप विद्या के प्रकाश में विराजते हैं और जिनके सत्य अभ्यास से सूर्यवत् विद्या का प्रकाश संसार में फैलता है, वे तपस्वी पुण्यात्मा संसार में सुख की वृद्धि करते हैं ॥

यन्त्यः । **मधुना । फलिपाटिनमिमनिजनां गुक्पटिनाकिधतश्च** (उ० १ । १८) इति मन ज्ञाने–उः । धश्चान्तादेशः । रसभेदेन । मधुरगुणेन । **पयः । सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति पीङ् पाने–असुन् । दुग्धम् । रसम् ॥

२–अमूः । अदस्-स्त्रियां जस् । ताः परिदृश्यमानाः । **याः ।** अम्बयो जामयश्च । म० १ । यद्वा । आपः, म० ३ । **उप ।** समीपे, उपेत्य । आधिक्येन । आदरेण । **सूर्ये ।** अ० १।३।५ । आदित्यलोके । सूर्यवद्ज्ञानप्रकाशे । सूर्यप्रकाशे । **याभिः ।** अम्बिजामिभिः । अद्भिः । **वा ।** समुच्चये । विकल्पे । **सूर्यः ।** अ० १।३।५ । सवितृलोकः । तद्वद् ज्ञानप्रकाशः । सवितृप्रकाशः । **सह ।** षह मर्षणे–अच् । साहित्ये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२–जो 'अमूः' इत्यादि स्त्रीलिंग शब्दों का संबन्ध मन्त्र ३ के 'आपः' शब्द से माना जावे तो यह भावार्थ है कि पहिले जब मूर्त्तिमान् पदार्थों से किरणों द्वारा सूर्यमंडल में जहां तक सूर्य का प्रकाश है जाता है, फिर वही जल सूर्य की किरणों से छिन्न भिन्न होने के कारण दिव्य बनकर भूमि आदि पदार्थों के आकर्षण से बरसता और महा उपकारी होता है। इस जल के समान, विद्वान् पुरुष ब्रह्मचर्य आदि तप करके संसार का उपकार करते हैं ॥

अ॒पो दे॒वीरुप॑ ह्वये॒ यत्र॒ गावः॒ पिब॑न्ति नः ।
सिन्धु॑भ्यः॒ कर्त्वं॑ ह॒विः ॥ ३ ॥

100370

अ॒पः । दे॒वीः । उप॑ । ह्व॒ये॒ । यत्र॑ । गावः॑ । पिब॑न्ति । नः॒ । सिन्धु॑ऽभ्यः । कर्त्व॑म् । ह॒विः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(यत्र) जिस जल में से (गावः) सूर्य की किरणें [वा गौयें आदि जीव वा भूमि प्रदेश] (नः) हमारे लिये (हविः) देने वा लेने योग्य अन्न वा जल (कर्त्वम्) उत्पन्न करने को (सिन्धुभ्यः) बहने वाले समुद्रों से (पिबन्ति) पान करती हैं। (देवीः) उस उत्तम गुण वाले (अपः) जल को (उप) आदर से (ह्वये) मै बुलाता हूं ॥ ३ ॥

नः । अस्माकम् । **हिन्वन्तु** । हिवि प्रीणने, लोट् । **इदितो नुम् धातोः** (पा०७।१।५८) इति इदित्त्वात् नुम् । अथवा हि गतौ वृद्धौ च स्वादिः—लोट् । प्रीणयन्तु, साधयन्तु । वर्धयन्तु । **अध्वरम्** । म० १ । सन्मार्गदातृ हिंसारहितं वा कर्म । यज्ञम् ॥

३—अपः । आप्नोतेर्ह्रस्वश्च (उ० २ । ५८) इति आप्लृ व्याप्तौ—क्विप् । अप्शब्दो नित्यस्त्रीलिङ्गो बहुवचनान्तश्च । व्यापयित्रीः, जलधाराः । जलवत् उपकारिणः पुरुषान् । **देवीः** । **नन्दिग्रहिपचादिभ्यः०** (पा० ३ । १ । १३४) इति दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु—पचाद्यच् । ङीप् । देवो दानाद्वा दीपनाद्वा····· निरु० ७ । १५ । दिव्याः, द्योतमानाः । **ह्वये** । अहमाह्वयामि । **यत्र** । यासु अप्सु । **गावः** । अ०१।२ ३ । धेनवः । उपलक्षणमेतत् । सर्वे जीवा इत्यर्थः । सूर्यकिरणाः । भूलोकाः । **पिबन्ति । पाघ्रा०** (पा० ७ । ३ । ७८) इति पा पाने–शपि पिबादेशः । पानं कुर्वन्ति । **नः** । अस्मदर्थम् । **सिन्धुभ्यः । स्यन्देः सम्प्रसारणं धश्च** (उ०१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जल को सूर्य की किरणें समुद्र आदि से खींचती हैं वह जल फिर बरस कर हमारे लिये अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न करके सुख देता है। अथवा गौ आदि सब प्राणी जल द्वारा उत्पन्न पदार्थों से सुखी होकर सब को सुखी करते हैं, वैसे ही हमको परस्पर सहायक और उपकारी होना चाहिये ॥ ३ ॥

अप्स्व १ न्तरमृतमप्सु भेषजम् ।
अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो
गावो भवथ वाजिनीः ॥ ४ ॥

अप्सु । अन्तः । अमृतम् । अप्सु । भेषजम् । अपाम् । उत । प्रशस्तिऽभिः ।
अश्वाः । भवथ । वाजिनः । गावः । भवथ । वाजिनीः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अप्सु अन्तः) जल के बीच में (अमृतम्) रोग निवारक अमृत रस है और (अप्सु) जल में (भेषजम्) भय जीतने वाला औषध है, (उत) और (अपाम्) जल के (प्रशस्तिभिः) उत्तम गुणों से (अश्वाः) हे घोड़ो तुम, (वाजिनः) वेग वाले (भवथ) होते हो, (गावः) हे गौओं, तुम (वाजिनीः = ०—न्यः) वेग वाली (भवथ) होती हो ॥ ४ ॥

---

११) इति स्यन्दू प्रस्रवणे—उप्रत्ययः, दस्य धः सम्प्रसारणं च। स्यन्दनशीलेभ्यः समुद्रेभ्यः सकाशात्। **कर्त्वम्** । डुकृञ् करणे—तुम्। छान्दसं रूपम्। कर्तुम्। **हविः** । **अर्चिशुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्य इसिः** (उ० २ । १०८) इति हु दानादनयोः—इसिः। यद्वा ह्वेञ् स्पर्धायाम् शब्दे च—इसिः। हूयते दीयते गृह्यते वा तद् हविः। हव्यम्। अन्नम्। आवाहनम्। उदकम्—निघ० १ । १२ ॥

४—अप्सु । म० ३ । जलधारासु । **अन्तः** । मध्ये । **अमृतम्** । रोगनिवारकं रसम्। **भेषजम्** । भिषजो वैद्यस्येदम् । भिषज्—अण्, निपातनात् एत्वम्। यद्वा भेषं भयं रोगं जयतीति, जि जये—डः। ओषधिम्। **अपाम्** । म० ३ । जलधाराणाम्। **उत** । अपि च। **प्रशस्तिभिः** । प्र+शन्सु स्तुतौ—क्तिन्। उत्तमगुणैः। **अश्वाः** । हे तुरगाः। **भवथ** । भू—लट्। यूयं वर्तध्वे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जल से रोग निवारक और पुष्टि वर्धक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। जैसे जल से उत्पन्न हुये घास आदि से गौऐं और घोड़े बलवान् होकर उपकारी होते हैं, उसी प्रकार सब मनुष्य अन्न आदि के सेवन से पुष्ट रह कर और ईश्वर की महिमा जान कर सदा परस्पर उपकारी बनें ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १ । २३ । १९ में है ॥

भगवान् मनु ने कहा है—

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ मनु० १ । ८ ॥

उस [परमात्मा] ने ध्यान करके अपने शरीर [प्रकृति] से अनेक प्रजाओं के उत्पन्न करने की इच्छा करते हुये पहिले (अपः) जल को ही उत्पन्न किया और उस में बीज को छोड़ दिया ॥

सूक्तम् ५ ॥

१–४ । सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः ॥

बलप्राप्त्युपदेशः—बल की प्राप्ति के लिये उपदेश ॥

आपो॒ हि ष्ठा म॑यो॒भुव॒स्ता न॑ ऊ॒र्जे द॑धातन ।
म॒हे रणा॑य॒ चक्ष॑से ॥ १ ॥

आपः॑ । हि । स्थ । म॒यः॒ऽभुवः॑ । ताः । नः॒ । ऊ॒र्जे । द॒धा॒त॒न॒ । म॒हे । रणा॑य । चक्ष॑से ॥ १ ॥

भाषार्थः—(आपः) हे जलो ! [जल के समान उपकारी पुरुषो] (हि)

वाजिनः । अत इनिठनौ (पा०५।२।११५) इति वाज–भूम्नि मत्वर्थीय इनिप्रत्ययः । वेगवन्तः,बलयुक्ताः । वाजी । वेजनवान्–निरु० २ । २८ । **गावः** । अ० १ । २ । ३ हे धेनवः । **अश्वाः । गावः** । सर्वे प्राणिनः इत्यर्थः । **वाजिनीः । ऋन्नेभ्यो ङीप्** (पा० ४ । १ । ५) इति वाजिन्–ङीप् । **वा छन्दसि** (पा० ६।१।१०६) इति जसि पूर्वसवर्णदीर्घः । वाजिन्यः, वेगवत्यः, बलवत्यः ॥

१—आपः । अ० १।४।३ । हे व्यापयित्र्यः । जलधाराः । जलवत् उपकारिणः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय करके (मयोभुवः) सुखकारक (स्थ) होते हो, (ताः) सो तुम (नः) हमको (ऊर्जे) पराक्रम वा अन्न के लिये, (महे) बड़े बड़े (रणाय) संग्राम वा रमण के लिये और (चक्षसे) [ईश्वर के] दर्शन के लिये (दधातन) पुष्ट करो ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे जल खान, पान, खेती, बाड़ी, कला, यन्त्र, आदि में उपकारी होता है, वैसे मनुष्यों को अन्न, बल, और विद्या की वृद्धि से परस्पर वृद्धि करनी चाहिये ॥ १ ॥

मन्त्र १—३ ऋग्वेद १० । ९ । १—३ ॥ यजुर्वेद ११ । ५०—५२, तथा ३६ । १४–१६ सामवेद उत्तरार्चिक प्रपा० ९ अर्धप्र० २ सू० १० ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥

यः । वः । शिवऽतमः । रसः । तस्य । भाजयत । इह । नः । उशतीःऽइव । मातरः ॥ २ ॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (यः) जो (वः) तुम्हारा (शिवतमः) अत्यन्त सुखकारी (रसः) रस है, (इह) यहां [संसार में] (नः) हमको (तस्य) उस-

---

पुरुषाः । **हि** । निश्चयेन । **स्थ** । अस सत्तायाम्–लट् । भवथ । **मयः--भुवः** । मयः + भू सत्तायाम्-क्विप् । मिञ् हिंसायाम्-असुन् । मिनोति हिनस्ति दुःखम् । मयः सुखम्-निघ० ३।६। सुखस्य भावयित्र्यः कर्त्र्यः । **तः** । आपो यूयम् । **नः** । अस्मान् । **ऊर्जे** । **क्विप् च** (पा० ३।२।७६) इति ऊर्ज बलप्राणनयोः–क्विप् । बलार्थम्, अन्नार्थं वा । **दधातन** । **तप्तनप्तनथनाश्च** (पा० ७ । १ । ४५) इति डुधाञ् धारणपोषणयोः-लोट्, तकारस्य तनप् आदेशः । धत्त, पोषयत । **महे** । मह पूजायां–क्विप् । महते विशालाय । **रणाय** । रण शब्दे—घञर्थे कः । युद्धाय । यद्वा । रमतेर्भावे—ल्युट् मकारलोपश्छान्दसः । रमणाय । क्रीडनाय । रणाय रमणीयाय–निरु० ९ । २७ । इत्यत्रायं मन्त्रो भगवता यास्केन व्याख्यातः । **चक्षसे** । **चक्षेर्बहुलं शिच्च** (उ० ४ । २३३) इति चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि दर्शने च–भावे असुन् । दर्शनाय ॥

२—शिवतमः । **अतिशायने तमबिष्ठनौ** (पा० ५ । ३ । ५५) इति तमप् । अतिशयेन कल्याणकरः । **रसः** । रस आस्वादनस्नेहनयोः—अच् । सारः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का (भाजयत) भागी करो, (इव) जैसे (उशतीः) प्रीति करती हुई (मातरः) मातायें ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे मातायें प्रीति के साथ सन्तानों को सुख देती हैं और जैसे जल संसार में उपकारी पदार्थ है, वैसे ही सब मनुष्य परस्पर उपकारी बन कर लाभ उठावें और आनन्द भोगें ॥ २ ॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥

तस्मै । अरम् । गमाम । वः । यस्य । क्षयाय । जिन्वथ । आपः । जनयथ । च । नः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे पुरुषार्थी मनुष्यो !] (तस्मै) उस पुरुष के लिये (वः) तुम-को (अरम्) शीघ्र वा पूर्ण रीति से (गमाम) हम पहुचावें, (यस्य) जिस पुरुष के (क्षयाय) ऐश्वर्य के लिये (जिन्वथ) तुम अनुग्रह करते हो । (आपः) हे जलो [जल समान उपकारी लोगो] (नः) हमको (च) अवश्य (जनयथ) तुम उत्पन्न करते हो ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे जल, अन्न आदि को उत्पन्न करके शरीर के पुष्ट करने और नौका, विमान आदि के चलाने में उपयोगी होता है इसी प्रकार जल के समान उपकारी पुरुष सब लोगों को लाभ और कीर्त्ति के साथ पुनर्जन्म देते हैं ॥ ३ ॥

भाजयत । हेतुमति च (पा० ३ । १ । २६) इति भज सेवायाम्—णिच्—लोट् । भागिनः कुरुत । सेवयत । **उशतीः** । वश कान्तौ = अभिलाषे—शतृः । **उगितश्च** (पा० ४ । १ । ६) इति ङीप् । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति जसि पूर्व-सवर्णदीर्घः । उशत्यः, कामयमानाः, प्रीतियुक्ताः । **मातरः** । अ० १।२।१। जनन्यः ॥

३—अरम् । ऋ गतौ—अच् । शीघ्रम्। यद्वा,अल भूषणपर्याप्तिवारणेषु इति बाहुल-कात् अम् । लस्य रत्वम् । अलम्, पर्य्याप्तं पूर्णतया । **गमाम** । गम्लृ गतौ णिच्—छान्दसो लोट् । वयं गमयाम, प्रापयाम । **क्षयाय । एरच्** (पा० ३।३।५६) इति क्षि निवासगत्योः—अच् । निवासाय । ऐश्वर्यप्राप्तये । **जिन्वथ** । जिवि प्रीणने लट् । यूयं तर्पयथ । वर्धयथ । अनुगृह्णीध्वम् । **आपः** । अ० १ । ४ । ३ । हे जल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् ।
अपो याचामि भेषजम् ॥ ४ ॥

ईशानाः । वार्याणाम् । क्षयन्तीः । चर्षणीनाम् ।
अपः । याचामि । भेषजम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(वार्याणाम्) चाहने योग्य जनों की (ईशानाः) ईश्वरी और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों की (क्षयन्तीः) स्वामिनी (अपः) जल धाराओं [जल के समान उपकारी प्रजाओं] से मैं, (भेषजम्) भय जीतने वाले औषध को (याचामि) मांगता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थः—जल से अन्न आदि औषध उत्पन्न होता है अतः मनुष्य के धन और बल का कारण है, सो जल के समान गुणी महात्माओं से सहाय लेकर मनुष्यों को आनन्दित रहना चाहिये ॥ ४ ॥

यह मन्त्र ऋ० १० । ९ । ५ में है ॥

धाराः । **जनयथ । हेतुमति च** (पा० ३ । १ । २६) इति जनी प्रादुर्भावे–णिच्–लट्, सांहितिको दीर्घः । यूयं प्रादुर्भावयथ, उत्पादयथ, प्रजया यशसा वा वर्धयथ । **च** । अवधारणे, अवश्यम् । समुच्चये ॥

४—**ईशानाः** । ईश ऐश्वर्ये–शानच् । ईश्वरीः, नियन्त्रीः । **वार्याणाम् । ऋहलोर्ण्यत्** (पा० ३ । १ । १२४) इति वृङ् संभक्तौ–ण्यत् । **अधीगर्थदयेशां कर्मणि** (पा०२।३।५२) इति कर्मणि षष्ठी । वरणीयानां, धनानाम् । **क्षयन्तीः** । क्षि निवास-गत्योः–लटः शतृः । **उगितश्च** (पा० ४ । १ । ६) इति ङीप् । ईश्वरीः, स्वामिनीः । **चर्षणीनाम् । कृषेरादेश्च चः**[1] (उ० २।१०४) इति कृष विलेखने–अनिः, चादेशश्च । आकर्षन्ति वशीकुर्वन्ति इत्यर्थः । चर्षण्यः=मनुष्याः—निघ० २ । ३ । पूर्ववत् कर्मणि षष्ठी । मनुष्याणाम् । **अपः । अकथितं च** (पा० १ । ४ । ५१) इति द्वितीया । जलधाराः । जलधारासकाशात् । जलवत् उपकारिभ्यो मनुष्येभ्यः । **याचामि** । टुयाचृ याच्ञायाम्—लट् । द्विकर्मकः । अहं याचे प्रार्थये । **भेषजम्** । अ० १ । ४ । ४ रोगनिवर्तकम्, औषधम् ॥

---

१. यह पाठ दशपादी उणादिवृत्ति का है । पञ्चपादी में तो 'कृषेरादेश्च धः' पाठ है, जो कि अशुद्ध है, क्योंकि घर्षणिः की सिद्धि के लिये आदि को धकार मानने पर 'धृषेः' इतना ही सूत्र बनाना पर्याप्त था, पुनः 'कृषेः' पाठ से प्रतीत होता है कि 'चर्षणीः' की सिद्धि के लिये आदि को चकार करना यहाँ इष्ट है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ६ ॥

१-४ ॥ सिन्धुद्वीपोऽथर्वाकृतिर्ऋषिः । आपो देवताः । १-३ गायत्री, ४ पंक्तिः, ८×५ अक्षराणि ॥

आरोग्यतोपदेशः—आरोग्यता के लिये उपदेश ॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः ॥ १ ॥

शम् । नः । देवीः । अभिष्टये । आपः । भवन्तु । पीतये ।
शम् । योः । अभि । स्त्रवन्तु । नः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(देवीः) दिव्य गुण वाले (आपः) जल [जल के समान उपकारी पुरुष] (नः) हमारे (अभिष्टये) अभीष्ट सिद्धि के लिये और (पीतये) पान वा रक्षा के लिये (शम्) सुखदायक (भवन्तु) होवें । और (नः) हमारे (शम्) रोग की शान्ति के लिये, और (योः) भय दूर करने के लिये (अभि) सब ओर से (स्त्रवन्तु) वर्षा करें ॥ १ ॥

भावार्थः—वृष्टि से जल के समान उपकारी पुरुष सब के दुःख की निवृत्ति और सुख की प्रवृत्ति में प्रयत्न करते रहें ॥ १ ॥

१—**शम्** । अ० १ । ३ । १ । सुखं, सुखकारिण्यः । **देवीः** । अ० १ । ४ । ३ । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति जसि पूर्वसवर्णदीर्घः । देव्यः । दिव्याः । **अभिष्टये** । अभि इष इच्छायाम्—क्तिन् । **शकन्ध्वादिषु पररूपं वक्तव्यम्** (वा० पा० ६ । १ । ९४) इति पररूपम् । अभीष्टसिद्धये । **आपः** । अ० १ । ४ । ३ । जलानि, जलवद् गुणिनः पुरुषाः । **पीतये** । **घुमास्थागापाजहातिसां हलि** (पा० ६ । ४ । ६६) इति पा पाने—क्तिनि प्रत्यये ईत्वम् । यद्वा । पा रक्षणे, ओप्यायी, प्यैङ् वृद्धौ वा—क्तिन्, क्तिच् वा । यद्वा, **पः किच्च** (उ० १ । ७१) इति पा—तुः प्रत्ययः । पिबति पाति वा स पीतुः । कित्वात् ईकारः । पानाय रक्षणाय, वृद्धये । **शम्** । अ० १ । ३ । १ रोगशमनाय । **योः** । **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** (पा० ३ । २ । ७५) इति यु मिश्रणामिश्रणयोः—विच्, सकारश्छान्दसः । यद्वा । यु—डोस् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र १, य० ३६ । १२ मन्त्र १—ऋ० १० । ९ । ४, ६, ७ ।
तथा मन्त्र २, ३ ऋ० १ । २३ । २०, २१ में हैं ॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदुन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशंभुवम् ॥ २ ॥

अप्सु । मे । सोमः । अब्रवीत् । अन्तः । विश्वानि । भेषजा । अग्निम् । च । विश्वऽशंभुवम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(सोमः) बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर ने [चन्द्रमा वा सोमलता ने] (मे) मुझे (अप्सु अन्तः) व्यापनशील जलों में (विश्वानि) सब (भेषजा = ०-नि) ओषधों को, (च) और (विश्वशम्भुवम्) संसार के सुखदायक (अग्निम्) अग्नि [बिजुली वा पाचनशक्ति] को (अब्रवीत्) बताया है ॥ २ ॥

भावार्थः—परमेश्वर सब विद्याओं का प्रकाशक है, चन्द्रमा औषधियों को पुष्ट करता है, और सोमलता मुख्य ओषधि है । यह सब पदार्थ जैसे जल द्वारा औषधों, अन्न आदि और शरीरों के बढ़ाने, बिजुली और पाचन शक्ति पहुंचाने और तेजस्वी करने में मुख्य कारण होते हैं वैसे ही मनुष्यों को परस्पर सामर्थ्य बढ़ाकर उपकार करना चाहिये ॥ २ ॥

शंयोः····· शमनं च रोगाणां यावनं च भयानाम्, इति निरु० ४ । २१ । भयपृथक्करणाय । **अभि** । सर्वतः । **स्रवन्तु** । स्रु प्रस्रवणे । वर्षन्तु ॥

२—**अप्सु** । अ० १ । ४ । ३ । व्यापयितृषु, जलेषु जलवद् गुणिषु मनुष्येषु—इत्यर्थः । **सोमः** । **अर्त्तिस्तुसुहु०** (उ० १ । १४०) इति षु प्रसवैश्वर्ययोः—मन्—सवति ऐश्वर्यहेतुर्भवतीति सोमः । परमेश्वरः । चन्द्रमाः । सोमलता । सोमो व्याख्यातः—निरु० १४ । १२ । **अब्रवीत्** । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि—लङ् । उपदिष्टवान् । अकथयत् । **अन्तः** । मध्ये । **विश्वानि** । सर्वाणि । **भेषजा** । अ० १ । ४ । ४ । **शेश्छन्दसि बहुलम्** (पा० ६ । १ । ७०) इति शेर्लोपः । भेषजानि । भयनिवारणानि औषधानि । **अग्निम्** । **अङ्गेर्नलोपश्च** (उ० ४ । ५०) इति अगि गतौ—निश्च, नलोपः । तेजः । वैश्वानरम् । वह्निम् । पाचनशक्तिम् । **विश्वशंभुवम्** । **क्विप् च** (पा० ३ । २ । ७६) इति विश्व + शम् + भू सत्तायां—क्विप्, उवङ्, आदेशः । विश्वस्य जगतः सुखस्य भावयितारं कर्तारम्, सर्वसुखकरम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे ३ मम ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ३ ॥

आपः । पृणीत । भेषजम् । वरूथम् । तन्वे । मम ।
ज्योक् । च । सूर्यम् । दृशे ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(आपः) हे व्यापन शील जलो [जल समान उपकारी पुरुषो] (मम) मेरे (तन्वे) शरीर के लिये (च) और (ज्योक्) बहुत काल तक (सूर्यम्) चलने वा चलाने वाले सूर्य को (दृशे) देखने के लिये (वरूथम्) कवचरूप (भेषजम्) भय निवारक औषध को (पृणीत) पूर्ण करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे युद्ध में योद्धा की रक्षा झिलम से होती है वैसे ही जल समान उपकारी पुरुष परस्पर सहायक होकर सबका जीवन आनन्द से बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥

शं न आपो धन्वन्या ३ः शमु सन्त्वनूप्याः ।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः
शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥ ४ ॥

शम् । नः । आपः । धन्वन्याः । शम् । ऊँ इति । सन्तु ।
अनूप्याः । शम् । नः । खनित्रिमाः । आपः । शम् । ऊँ इति ।

३—**आपः** । हे व्यापयितृणि जलानि [जलसमानोपकारिणः पुरुषाः] । **पृणीत** । पॄ पालनपूरणयोः—लोट् । पालयत, पूरयत । **भेषजम्** । अ० १ । ४ । ४ । भयनिवारकम् । ओषधिम् । **वरूथम्** । **जॄवृञ्भ्यामूथन्** (उ० २ । ६) इति वृञ् वरणे—ऊथन्, व्रियते शरीरमनेन । तनुत्राणम्, कवचम् । **तन्वे** । अ० १ । १ । १ । तद्वत् पदसिद्धिः स्वरितश्च । तन्यते विस्तीर्यते तनूः । शरीराय । **मम** । मदीयाय । **ज्योक्** । ज्या वयोहानौ—डोकिः । चिरवनम् । **सूर्यम्** । अ० १ । ३ । ५ । जगतः । प्रेरकम्, आदित्यम् । **दृशे** । **दृशे विख्ये च** (पा०३।४।११) इति दृशिर् प्रेक्षणे—तुमर्थे केप्रत्ययान्तो निपात्यते । द्रष्टुम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याः । कुम्भे । आऽभृताः । शिवाः । नः । सन्तु । वार्षिकीः । ४ ॥

भाषार्थः—(नः) हमारे लिये (धन्वन्याः) निर्जल देश के (आपः) जल (शम्) सुखदायक, (उ) और (अनूप्याः) जलवाले देश के [जल] (शम्) सुखदायक (सन्तु) होवें। (नः)हमारे लिये (खनित्रिमाः) खनती वा फावड़े से निकाले गये (आपः) जल (शम्) सुखदायक होवें, (उ) और (याः) जो (कुम्भे) घड़े में (आभृताः) लाये गये वह भी (शम्) सुखदायी होवें, (वार्षिकीः) वर्षा के जल (नः) हमको (शिवाः) सुखदायी (सन्तु) होवें ॥ ४ ॥

भावार्थः—जैसे जल सब स्थानों में उपकारी होता है, वैसे ही जल समान उपकारी मनुष्यों को प्रत्येक कार्य और प्रत्येक स्थान में परस्पर लाभ पहुंचाकर सुखी होना चाहिये ॥ ४ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

४—शम् । अ० १ । ३ । १ सुखकारिण्यः । **नः** । अस्मभ्यम् । **आपः** । जलानि, जलवद् गुणिनः पुरुषाः । **धन्वन्याः** । **कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्वि-द्युप्रतिदिवः** (उ० १ । १५६) इति धवि गतौ—कनिन् । इदित्त्वात् नुम् इति धन्वन् । **भवे छन्दसि** (पा० ४ । ४ । ११०) इति यत् । **तित् स्वरितम्** (पा० ६ । १ । १८५) इति स्वरितः । धन्वनि मरुभूमौ भवा आपः । **ऊँ इति** । **अनूप्याः** । अनुगता आपो यत्रेति अनूपो देशः । **ऋक्पूरब्धूः०** (पा० ५ । ४ । ७४) इति अनु+अप्—अकारः समासान्तः । **ऊदनोर्देशे** (पा० ६ । ३ । ९८) इति अप्शब्दस्य अकारस्य ऊकारः । पूर्ववद् यत् प्रत्ययः स्वरितश्च । अनूपे जलप्राये देशे भवा आपः । **खनित्रिमाः** । खनु अवदारणे—अस्माच्छान्दसः क्त्रिप्रत्ययः । **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** (पा०७ । २ । ३५) इति इडागमः । **कूत्रे-र्मन्नित्यम्** (पा०४।४।२०) इति मप् । खनित्रेण अस्त्रविशेषेण निर्वृत्ताः कूपोद्भवाः । **कुम्भे** । कुं भूमिं उम्भति जलेन । उन्भ पूरणे—अच् । शकन्ध्वादित्वात् साधुः । घटे, कलशे । **आभृताः** । हृञ् हरणे-क्तः । **हृग्रहोर्भः०** (वा० पा० ८ । २ । ३५) इति भत्वम् । आहृताः, आनीताः । **शिवाः** । सुखदात्र्यः । **वार्षिकीः** । **छन्दसि ठञ्** (पा० ४ । ३ । १९) इति वर्षा+ठञ् । ङीप् । जसि पूर्वसवर्णदीर्घः । वार्षिक्यः, वर्षासु भवाः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ द्वितीयोऽनुवाकः

सूक्तम् ७ ॥

१—७ ॥ चातन ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । १-४, ६, ७ अनुष्टुप् ८×४, ५ त्रिष्टुप् ११×४ अक्षराणि ।

सेनापतेःलक्षणानि—सेनापति के लक्षण ॥

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् ।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥ १ ॥

स्तुवानम् । अग्ने । आ । वह । यातुऽधानम् । किमीदिनम् । त्वम् । हि । देव । वन्दितः । हन्ता । दस्योः । बभूविथ ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्ने ! [अग्नि समान प्रतापी] (स्तुवानम्) [तेरी] स्तुति करते हुये (यातुधानम्) पीडा देने हारे (किमीदिनम्) यह क्या है, वा यह क्या हो रहा है ऐसा कहने वाले लुतरे को (आवह) ले आ । (हि) क्योंकि (देव) हे राजन् (त्वम्) तू (वन्दितः) स्तुति को प्राप्त करके (दस्योः) चोर वा डाकू का (हन्ता) हनन कर्ता (बभूविथ) हुआ था ॥ १ ॥

१—**स्तुवानम्** । ष्टुञ् स्तुतौ—लटः शानच् । **अचि श्नुधातुभ्रुवां०** (पा० ६ । ४ । ७७) इति उवङ् । त्वां प्रशंसन्तं स्तुवन्तम् । **अग्ने** । अ० १ । ६ । २ । अग्निशब्दो यास्केन बहुविधो व्याख्यातः—निरु० ७ । १४ । हे वहने, हे पावक, हे अग्निवत् तेजस्विन् सेनापते ! **आवह** । आनय । **यातुधानम्** । **कृवापाजिमि०** (उ० १ । १) इति यत ताडने—[1]उण् । यातुं पीडां दधाति ददाति । डुधाञ् धारणपोषणयोः—युच् । पीडाप्रदं राक्षसम् । **किमीदिनम्** । किम्+इदानीम् वा किम्+इदम्—इनिः । किमीदिने किमिदानीमिति चरते किमिदं

---

१. बाहुलक से ताडनार्थक यत की यहाँ कल्पना की है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जब अग्नि के समान तेजस्वी और यशस्वी राजा दुःखदायी लुतरों [चुगलखोरों] और डाकुओं और चोरों को आधीन करता है तो शत्रु लोग उसके बल और प्रताप की प्रशंसा करते हैं और राज्य में शान्ति फैलती है॥१॥

(किमीदिन्) शब्द का अर्थ यास्क मुनि ने अब क्या हो रहा है वा यह क्या है, वा यह क्या हो रहा है ऐसा कहते हुये छली, सूचक = चुगलखोर किया है—निरु० ६ । ११ ॥

आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदुस्तनूं वशिन् ।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥ २ ॥

आज्यस्य । परऽमेस्थिन् । जातऽवेदः । तनूऽवशिन् ।
अग्ने । तौलस्य । प्र । अशान । यातुऽधानान् । वि । लापय ॥२॥

भाषार्थः—(परमेष्ठिन्) हे बड़े ऊंचे पदवाले ! (जातवेदः) हे ज्ञान वा धन के देने वाले ! (तनूवशिन्) शरीरों को वश में रखने हारे ! (अग्ने) अग्नि, राजन् ! तू (तौलस्य) तोल से पाये हुये (आज्यस्य) घृत का (प्र अशान) भोजन कर और (यातुधानान्) दुखदायी राक्षसों से (वि लापय) विलाप करा ॥ २ ॥

किमिदमिति वा पिशुनाय चरते–निरु० ६ । ११ । इति यास्कवचनात् किमिदानीं वर्तते किमिदं वर्तते–इति एवमन्वेषमाणः किमिदी, पिशुनः । साधुजनवैरिणं, सदा विरुद्धबुद्धिं, पिशुनम् । **हि** । यस्मात् । अवश्यम् । **देव** । अ० १ । ४ । ३ । हे द्योतमान ! राजन् ! । **वन्दितः** । वदि स्तुत्यभिवादनयोः—क्तः । स्तुतः । नमस्कृतः । **हन्ता** । हन—तृच् । हननकर्ता, घातयिता । **दस्योः** । **यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच्** (उ० ३ । २०) इति दसु उपक्षये—युच् । दस्यति परान् नाशयतीति । चौरस्य । शत्रोः । **बभूविथ** । भू सत्तायां प्राप्तौ च—लिट् मध्यमैकवचनम् । त्वं भवसि स्म ॥

२—आज्यस्य । आङ् + अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु–क्यप्, नलोपः कर्मणि षष्ठी, आ अज्यते शरीरेण । आज्यं, घृतम् । **परमे-स्थिन्** । **परमे कित्** (उ० ४ । १०) इति परमे + ष्ठा गतिनिवृत्तौ–इनिः, स च कित् । **हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे अग्नि स्रुवादि के तौल वा परिमाण से दिये हुये घृतादि हवन सामग्री को पाकर प्रज्वलित होता है वैसे ही प्रतापी राजा प्रजा का दिया हुआ कर लेकर दुष्टों को दण्ड देता है, उससे प्रजा सदा आनन्द युक्त रहती है ॥ २ ॥

वि लपन्तु यातुधाना अत्रिणो ये किमीदिनः ।
अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥ ३ ॥

वि । लपन्तु । यातुऽधानाः । अत्रिणः । ये । किमीदिनः । अथ । इदम् । अग्ने । नः । हविः । इन्द्रः । च । प्रति । हर्यतम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(ये) जो (यातुधानाः) पीडा देने हारे, (अत्रिणः) पेट भरने वाले (किमीदिनः) यह क्या यह क्या, ऐसा करनेवाले लुतरे [हैं], [वे] (वि लपन्तु)

(पा० ६ । ३ । ९) इत्यलुक् । **स्थास्थिन्स्थूणाम्०** (वा०पा० ८ । ३ । ९७) इति षत्वम् । परमे उत्तमे पदे तिष्ठतीति परमेष्ठी । हे उच्चपदस्थ राजन् । **जातवेदः । गतिकारकोपपदयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च** (उ० ४ । २२७) इति जात+विद ज्ञाने, विदृ लाभे वा–असुन् । जातं प्रादुर्भूतं वेदो ज्ञानं धनं वा यस्मात् स जातवेदः । जातवेदाः कस्माज् जातानि वेद जातानि वैनं विदुर्जाते जाते विद्यत इति वा जातवित्तो वा जातधनः । जातविद्यो वा जातप्रज्ञानः—इति निरु० ७ । १९ । हे जातधन, हे जातप्रज्ञान । **तनू-वशिन्** । वशोऽस्त्यस्य—इनिः । हे तनूनां अस्माकं शरीराणां वशयितः । **अग्ने** । म० १ । हे अग्निवत् तेजस्विन् । **तौलस्य** । तुल उन्माने—घञ् । तोल्यते उन्मीयते स्रुवादिना इति तोलम् । तोल–अण् । कर्मणि षष्ठी । तौलम् । तोलेन परिमाणेन कृतम् । **प्र+अशान** । अश भोजने–लोट् । **हलः श्नः शानज् झौ** (पा० ३ । १ । ८३) इति श्नाप्रत्ययस्य शानच् । झौ परतः । **अतो हेः** (पा० ६ । ४ । १०५) इति हेर्लुक् । त्वं भोजनं कुरु । भक्षय । **यातु-धानान्** । म० १ । पीडाप्रदान् राक्षसान् । **वि+लापय** । **हेतुमति च** (पा० ३ । १ । २६) इति णिच् । लप व्यक्तायां वाचि–णिच्–लोट् । विलापेन दुःखवचनेन युक्तान् कुरु ॥

३—**विलपन्तु** । लप व्यक्तायां वाचि–लोट् । विकृतं लपनं परिवेदनं कुर्वन्तु ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलाप करें। (अथ) और (अग्ने) हे अग्नि (च) और (इन्द्रः) हे वायु, तुम दोनों (इदम्) इस (हविः) होम सामग्री को (प्रति हर्यतम्) अङ्गीकार करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे अग्नि, वायु के साथ हवन सामग्री से प्रचंड होकर दुर्गन्धादि दोषों का नाश करती है वैसे ही अग्नि के समान तेजस्वी और वायु के समान वेगवान् महाप्रतापी राजा से दुःखदायी, स्वार्थी, बतबने लोग अपने किये का दंड पाकर विलाप करते हैं तब उसके राज्य में शान्ति होती है ॥ ३ ॥

अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान्।
ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य ॥ ४ ॥

अग्निः। पूर्वः। आ। रभताम्। प्र। इन्द्रः। नुदतु। बाहुऽमान्। ब्रवीतु। सर्वः। यातुऽमान्। अयम्। अस्मि। इति। आऽइत्य ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(पूर्वः) मुखिया (अग्निः) अग्नि रूप राजा (आरभताम्) [शत्रुओं] को पकड़ लेवे, (बाहुमान्) प्रबल भुजा वाला (इन्द्रः) वायु रूप सेनापति (प्रनुदतु) निकाल देवे। (सर्वः) एक एक (यातुमान्) दुःखदायी राक्षस (एत्य) आकर (अयम् अस्मि) यह मैं हूं—(इति) ऐसा (ब्रवीतु) कहें ॥४॥

यातुधानाः। म० १। पीडाप्रदाः राक्षसाः। **अत्त्रिणः।** **अदेस्त्रिनिश्च** (उ० ४। ६८) इति अद भक्षणे-त्रिनिः। अदनशीलाः, उदरपोषकाः। **किमीदिनः।** म० १। विरुद्धबुद्धयः, पिशुनाः। **अथ।** अनन्तरम्। अपि च। **इदम्।** प्रस्तुतमुपस्थितम्। **अग्ने।** म० १। अग्निवत् तेजस्विन् राजन्। **हविः।** अ० १। ४। ३। दानम्। हव्यं द्रव्यम्। आह्वानम्। **इन्द्रः।** अ० १।२।३। परमैश्वर्यवान्। **वायुः।** वायुवद् वेगवान् राजा। **प्रति+हर्यतम्।** हर्य गतिकान्त्योः-लोट्। युवां कामयेथां, स्वीकुरुतम् ॥

४—अग्निः। म० १। अग्निवत् तेजस्वी राजा। **पूर्वः।** पूर्व निकेतने-अच्। पुरोगामी, मुख्यः। **आरभताम्।** रभ राभस्ये=उपक्रमे। आङ् पूर्वकात् रभ स्पर्शे—लोट्। स्पृशतु। निगृह्णातु। **इन्द्रः।** अ० १। २। ३। वायुः, वायुवद् वेगवान् राजा। **प्र+नुदतु।** णुद प्रेरणे तुदादित्वात् शः। प्रेरयतु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जब अग्नि के समान तेजस्वी और वायु के समान वेगवान् महा-प्रतापी राजा उपद्रवियों को पकड़ता और देश से निकालता है तब उपद्रवी लोग अपना अपना नाम लेकर उस राजा के शरणागत होते हैं ॥ ४ ॥

पश्यांम ते वीर्यं जातवेदुः प्र णो ब्रूहि यातधानान् नृचक्षः । त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात् त आयन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ॥ ५ ॥

पश्यांम । ते । वीर्यम् । जातऽवेदुः । प्र । नः । ब्रूहि । यातुऽधानान् । नृऽचक्षुः । त्वया । सर्वे । परिऽतप्ताः । पुरस्तात् । ते । आ । यन्तु । प्रऽब्रुवाणाः । उप । इदम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञान देने हारे वा बहुत धन वाले राजा ! (ते) तेरे (वीर्यम्) पराक्रम को (पश्याम) हम देखें, (नृचक्षः) हे मनुष्यों के देखने हारे ! (नः) हमें (यातुधानान्) दुःखदायी राक्षसों को (प्रब्रूहि) बता दे । (त्वया) तुझ-से (परितप्ताः) जलाये हुये (ते सर्वे) वह सब (प्रब्रुवाणाः) जय बोलते हुये (पुर-स्तात् [तेरे] आगे (इदम्) इस स्थान में (उप आ यन्तु) चले आवें ॥ ५ ॥

अपसारयतु । **बाहुमान् । तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** (पा० ५ । २ । ९४) "भूमि-निन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने । संसर्गेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबा-दयः" म०भा० कारिका ॥ इति बाहुशब्दात् प्रशंसायां मतुप् । प्रबलभुजः । महा-बली । **ब्रवीतु** । ब्रूञ्—लोट् । कथयतु । **सर्वः** । निखिलः । **यातुमान् । कृवापा०** (उ० १ । १) इति यत ताडने-उण् । ततो मतुप् पूर्ववत् निन्दायाम् । यातवो यातना विद्यन्तेऽस्मिन् स यातुमान् पीडावान्, महापीडाकारी । **अयम्** । एतन्नामकोऽहम् । **इति** । एवम् । **आ-इत्य । समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्** (पा० ७।१।३७) इति आङ् + इण् गतौ-इत्यनेन क्त्वाप्रत्ययस्य ल्यबा-देशः । **ह्रस्वस्य पिति कृति०** (पा० ६ । १ । ७१) इति तुक् आगमः । आगत्य ॥

५—**पश्याम** । दृशिर् प्रेक्षणे-लोट् । **पाघ्राध्मास्था०** (पा० ७ । ३ । ७८) इति शपि पश्यादेशः । अवलोकयाम । **वीर्यम्** । वीरस्य भावः, वीर-यत् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा को योग्य है कि अपने राज्य में विद्या प्रचार करे, सब प्रजा पर दृष्टि रक्खे और उपद्रवियों को अपने आधीन सर्वथा रक्खे कि वह लोग उसकी आज्ञा को सर्वदा मानते रहें ॥ ५ ॥

आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे ।
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥ ६ ॥

आ । रभस्व । जातऽवेदः । अस्माक । अर्थाय । जज्ञिषे । दूतः ।
नः । अग्ने । भूत्वा । यातुऽधानान् । वि । लापय ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञान वा धन देने वाले राजन् ! (आ रभस्व) [बैरियों को] पकड़ ले, (अस्माक) हमारे (अर्थाय) प्रयोजन के लिये (जज्ञिषे) तू उत्पन्न हुआ है । (अग्ने) हे अग्ने [सेनापते] (नः) हमारा (दूतः) दूत (भूत्वा) होकर (यातुधानान्) दुःखदायियों से (वि लापय) विलाप करा ॥ ६ ॥

यद्वा, वीरे साधुः । **तत्र साधुः** (पा० ४ । ४ । ९८) इति यत् । **तित् स्वरितम्** (पा० ६ । १ । १८५) इति स्वरितः । पराक्रमम्, सामर्थ्यम् । **जातवेदः** । म० २ । हे जातप्रज्ञान । **नः** । **अकथितं च** (पा० १।४।५१) इति कर्मत्वम् । अस्मान् प्रति । **प्र+ब्रूहि** । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि लोट्, द्विकर्मकः । प्रकथय । **यातुधानान्** । म० १ । पीडाप्रदान् राक्षसान् । **नृचक्षः** । चष्टे पश्यतिकर्मा—निघ० ३ । ११ । चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि–असुन्, नॄन् मनुष्यान् चष्टे पश्यतीति नृचक्षाः । हे मनुष्याणां द्रष्टः, अथवा उपदेशक । **त्वया** । अग्निना, अग्निवत् तेजस्विना । **परितप्ताः** । सम्यग् दग्धाः । **पुरस्तात्** । अग्रे । **ते** । प्रसिद्धाः । **आ+यन्तु** । आगच्छन्तु । **प्रब्रुवाणाः** । ब्रूञ्–शानच् । प्रकथयन्तः, जयं प्रलपन्तः । **इदम्** । दृश्यमानम् स्थानम् ॥

६—आ+रभस्व । म० ४ । आङ्+रभ स्पर्शे-लोट् । निगृह्याण । **जातवेदः** । म० २ । जातप्रज्ञान ! । **अस्माक** । अन्त्यलोपश्छान्दसः । अस्माकम् । **अर्थाय** । अर्थ याचने । प्रयोजनाय, धनाय । **जज्ञिषे** । जनी प्रादुर्भावे लिट्, त्वं ज्ञातवानसि । **दूतः** । **दुतनिभ्यां दीर्घश्च** (उ० ३ । ९०) इति दु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(दूत) का अर्थ शीघ्रगामी और सन्तापकारी है, जैसे दूत शीघ्र चल कर सन्देश पहुंचाता है वैसे ही बिजुली रूप अग्नि शरीरों में प्रविष्ट होकर वेग उत्पन्न करता है अथवा काष्ठ आदि को जलाता है, इसी प्रकार अग्नि के समान तेजस्वी और प्रतापी राजा अपनी प्रजा की दशा को जानकर यथोचित न्याय करता और दुष्टों को दण्ड देता है ॥ ६ ॥

त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाँ इहा वह ।
अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥ ७ ॥

त्वम् । अग्ने । यातुऽधानान् । उपऽबद्धान् । इह । आ । वह ।
अथ । एषाम् । इन्द्रः । वज्रेण । अपि । शीर्षाणि । वृश्चतु ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि ! (त्वम्) तू (उपबद्धान्) दृढ़ बांधे हुये (यातुधानान्) दुःखदायी राक्षसों को (इह) यहां पर (आ वह) ले आ । (अथ) और (इन्द्रः) वायु (वज्रेण) कुल्हाड़े से (एषाम्) इनके (शीर्षाणि) मस्तकों को (अपि) भी (वृश्चतु) काट डाले ॥ ७ ॥

भावार्थः—अग्नि के समान प्रतापी और (इन्द्र) वायु के समान वेगवान् राजा उत्पातियों को कारागार में डाल दे और उनके सिर उड़ा दे ॥ ७ ॥

इसी प्रकार सब मनुष्य अध्यात्म विषय में आत्मा को सेनानी, और लोभ,

---

गतौ–क्तः[1] । यद्वा टुदु उपतापे–क्तः दीर्घश्च । दवति गच्छति दुनोत्युपतापयतीति दूतः[2] । वार्त्ताहरः, सन्देशहरः । सन्तापकः । अग्निः । **अग्ने** । अग्निवत् तेजस्विन् राजन् । **यातुधानान्** । म० १ । पीडाप्रदान् । **विलापय** । म० २ । विलापयुक्तान् कुरु, रोदय ॥

७—यातु-धानान् । म०१ । पीडाप्रदान् । **उप-बद्धान्** । बन्ध बन्धने–क्तः दृढ-बन्धनयुक्तान् । **इह** । अत्र । **अथ** । च । तदनन्तरम् । **एषाम्** । यातुधानानाम् । **इन्द्रः** । अ०१।२।३। वायुः । वायुवद् वेगवान् । परमैश्वर्यवान् । **वज्रेण** । **ऋज्रेन्द्राग्रवज्रप्रवि०** (उ० २ । २८) इति वज गतौ–रन् । कुलिशेन, कुठारेण । **अपि** । एव, अवश्यम् । **शीर्षाणि** । **शीर्षश्छन्दसि** (पा० ६ । १ । ६०) इति शिरः शब्दस्य शीर्षन्

---

१. गत्यर्थाकर्मक० (३ । ४ । ७२) से कर्त्ता में क्त हुआ है ॥ सम्पा० ॥
२. दूतो जवतेर्वा वारयतेर्वा (निरु० ५ । १) ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोह आदि को शत्रु, तथा गृहस्थिति में गृहपति को सेनापति एवं विघ्नों को बैरी मान कर योग्य व्यवहार करें ॥

सूक्तम् ८ ॥

१-४ ॥ चातन ऋषिः । अग्निः सोमश्च देवते । १-३ अनुष्टुप्८×४, त्रिष्टुप् ११×४ अक्षराणि ॥

सेनापतिलक्षणानि—सेनापति के लक्षण ॥

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत् ।
य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः ॥ १ ॥

इदम् । हविः । यातुऽधानान् । नदी । फेनम्ऽइव । आ । वहत् । यः । इदम् । स्त्री । पुमान् । अकः । इह । सः । स्तु_ताम् । जनः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (हविः) [हमारी] भक्ति (यातुधानान्) राक्षसों को (आ वहत्) ले आवे, (इव) जैसे (नदी) नदी (फेनम्) फेन को। (यः) जिस किसी (पुमान्) मनुष्य ने अथवा (स्त्री) स्त्री ने (इदम्) इस [पापकर्म] को (अकः) किया है (सः जनः) वह पुरुष (इह) यहां (स्तुवताम्) [तेरी] स्तुति करे ॥ १ ॥

भावार्थः—प्रजा की पुकार सुनकर जब राजा दुष्टों को पकड़ते हैं, अपराधी स्त्री और पुरुष अपने अपराध को अङ्गीकार कर लेते और उस प्रतापी राजा की स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

आदेशः । शिरांसि, मस्तकानि । **वृश्चतु** । ओव्रश्चू छेदने, तुदादित्वात् शः । छिनत्तु ॥

१—इदम् । प्रस्तुतं, क्रियमाणम् । **हविः** । अ० १।४।३ दानम् । भक्तिः । आवाहनम् । **यातु-धानान्** । अ० १।७।१ । पीडाप्रदान् राक्षसान् । **नदी** । **नन्दि-ग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** (पा०३।१।१३४) इति णद अव्यक्ते शब्दे—पचाद्यच् । गणे नदट् इति पाठात् टित्त्वात्—ङीप् । नदति प्रवाहवेगेन शब्दायति इति । नद्यः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स्त्री' शब्द का अर्थ संग्रह करने हारी वा स्तुति योग्य, और 'पुमान्' का अर्थ रक्षक वा पुरुषार्थी है ॥

अयं स्तुवान आगमद्दिमं स्म प्रति हर्यत ।
बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम् ॥ २ ॥

अयम् । स्तुवानः । आ । अगमत् । इमम् । स्म । प्रति । हर्यत । बृहस्पते । वशे । लब्ध्वा । अग्नीषोमा । वि । विध्यतम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अयम्) यह [शत्रु] (स्तुवानः) स्तुति करता हुआ (आ अगमत्) आया है, (इमम्) इसका (स्म) अवश्य (प्रति हर्यत) तुम सब स्वागत करो। (बृहस्पते) हे बड़े बड़ों के रक्षक राजन्! [दूसरे वैरी को] (वशे) वश में (लब्ध्वा) लाकर [वर्त्तमान हो,] (अग्नीषोमा = ०–मौ) हे अग्नि और चन्द्रमा! तुम दोनों [अन्य बैरियों को] (वि) अनेक भांति से (विध्यतम्) तोड़ो ॥ २ ॥

कस्मात् नदना इमा भवन्ति शब्दवत्यः–निरु०२।२४। नदनशीला, सरित्, तरङ्गिणी। **फेनम्। फेनमीनौ** (उ० ३। ३) इति स्फायी वृद्धौ–नक्, फेशब्दादेशः। स्फायते वर्धते स फेनः। हिण्डीरम्, समुद्रफेनम्। **आ+वहत्।** वह प्रापणे—लेट्। आनयेत्। **स्त्री। स्त्यायतेर्ड्रट्** (उ० ४। १६६) इति स्त्यै शब्दसंघातयोः—ड्रट्। ङीप्। स्त्यायति शब्दयति गृह्णाति वा गुणान् सा यद्वा, ष्टुञ् स्तुतौ–ड्रट्। ङीप्। स्तौति गुणान् वा स्तूयते सा स्त्री। नारी। **पुमान्। पातेर्डुमसुन्** (उ०४। १७८) इति पा रक्षणे डुमसुन्। डित्वात् टिलोपः। पातीति पुमस्[1]=पुमान्, मनुष्यः, पुरुषः। **अकः**। डुकृञ् करणे-लुङ्। **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०** (पा० ६। १। ६८) इति तिपः तकारलोपः। अकार्षीत्। **स्तुवताम्।** ष्टुञ् स्तुतौ–लोट्। छन्दसि शः। स्तुतिं करोतु। **जनः।** जनी प्रादुर्भावे, जन जनने वा–अच्। जायते जनयति वा स जनः। लोकः ॥

२—**अयम्**। शत्रुः। **स्तुवानः**। ष्टुञ् स्तुतौ—शानच्। युष्मान् स्तुवन्। **आ+अगमत्।** गम्लृ गतौ–लुङ्। आगतवान्। **इमम्**। शत्रुम्। **स्म**। अवश्यम्, प्रीत्या। **प्रति+हर्यत।** हर्य गतिकान्त्योः—लोट्। यूयं प्रतिकामयध्वम्, स्वकीयत्वेन परिगृह्णीत। **बृहस्पते। तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः**

---

१. पुंसोऽसुङ् (७।१।८९) से यहाँ असुङ् आदेश अन्त्य अल् को होगा ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो शत्रु राजा का प्रभुत्व मानकर शरणागत हो, राजा और कर्मचारी उसका स्वागत करें। प्रतापी राजा दूसरे वैरी को शम दम आदि से अपने आधीन रक्खे। और अन्य बैरियों को (अग्नीषोमा) दंड देने में अग्नि सा प्रचंड और न्याय करने में (सोम) चन्द्रमा सा शान्त स्वभाव रहे ॥ २ ॥

यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च ।
नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ॥ ३ ॥

यातुऽधानस्य । सोमऽप । जहि । प्रऽजाम् । नयस्व । च ।
निः । स्तुवानस्य । पातय । परम् । अक्षि । उत । अवरम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(सोमप) हे अमृत पीने हारे [राजन्] तू (यातुधानस्य) पीडा देने हारे पुरुष के (प्रजाम्) मनुष्यों को (जहि) मार, (च) और (नयस्व) ले आ। (निःस्तुवानस्य) अपस्तुति [निन्दा] करते हुये [शत्रु का] (परम्) उत्तम हृदय

सुट् तलोपश्च (वा० पा० ६ । १ । १५७) इति बृहत्+पतिः, सुट् आगमः, तकारलोपश्च। हे बृहतां महतां विदुषां पालयितः, विद्वन् राजन् ! । **वशे** । **वशिरण्योरुपसंख्यानम्** (वा० पा० ३ । ३ । ५८) इति वश कान्तौ—अप्। अधीनत्वे, आयत्ततायाम्। **लब्ध्वा** । डुलभष् प्राप्तौ-क्त्वा । आनीय। प्राप्य । [अन्य—शत्रुं, तिष्ठ इति शेषः] **अग्नीषोमा** । अग्निश्च सोमश्चेति द्वन्द्वे । **ईद्ग्नेः सोमवरुणयोः** (पा० ६ । ३ । २७) इति ईत्त्वम् । **अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः** (पा० ८ । ३ । ८२.) इति षत्वम् । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) इति पूर्वसवर्ण-दीर्घः । **अर्त्तिस्तुसुहुसृधृक्षि०** (उ० १ । १४०) इति षु प्रसवैश्वर्ययोः—मन्। सवति ऐश्वर्यहेतुर्भवतीति, यद्वा सवति सौति अमृतमुत्पादयतीति सोमः । वायुः । चन्द्रः । बलवर्धकौषधिविशेषः । अमृतम् । अग्निः । अग्निवत् तेजः । वायुः वायुवद् वेगः, अथवा चन्द्रवत् प्रजायै शान्तिप्रदगुणः । अनेन सेनापति-गुणद्वयवर्णनम् । **वि** । विविधम् । **विध्यतम्** । व्यध ताडने-लोट्। युवां ताडयतम् अन्यं पापात्मानम् ॥

३—यातु-धानस्य । अ० १ । ७ । १ । पीडाप्रदस्य । **सोमप** । **आतोऽनुप-सर्गे कः** (पा० ३।२।३) इति सोम+पा पाने—कः । हे अमृतस्य पातः ! । **जहि** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की] (उत) और (अवरम्) नीची [शिर की] (अक्षि) आंख को (पातय) निकाल दे ॥ ३ ॥

भावार्थः—(सोमप) अमृत पीने हारा अर्थात् शान्त स्वभाव यशस्वी राजा दुष्टों का नाश करे और पकड़ लावे । निन्दा फैलाने हारे मिथ्याचारी शत्रु को नष्ट भ्रष्ट कर दे कि वह पापी अपने मन के भीतरी कुविचार और बाहरी कुचेष्टा और पाप कर्म छोड़ दे ॥ ३ ॥

यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्रिणां जातवेदः । तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने ॥ ४ ॥

यत्र । एषाम् । अग्ने । जनिमानि । वेत्थ । गुहा । सताम् । अत्रिणाम् । जातऽवेदः । तान् । त्वम् । ब्रह्मणा । वावृधानः । जहि । एषाम् । शतऽतर्हम् । अग्ने ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे अनेक विद्या वाले वा धन वाले ! (अग्ने) अग्नि [अग्निस्वरूप राजन्] (यत्र) जहां पर (गुहा) गुफा में (सताम्) वर्त्तमान (एषाम्) इन (अत्रिणाम्) उदर पोषकों के (जनिमानि) जन्मों को (वेत्थ) तू जानता

हन हिंसागत्योः—लोट् । नाशय । **प्र-जाम्** । जनम् । मनुष्यान् । **नयस्व** । आनय । **निः** । क्षेपेण, अपवादेन । निषेधेन । **स्तुवानस्य** । म०२ । स्तुवतः शत्रोः । **पातय** । पत गतौ—णिच् लोट् । अधोगमय, च्यावय । **परम्** । **ऋदोरप्** (पा० ३ । ३ । ५७) इति पॄ पालनपूरणयोः—अप् । श्रेष्ठम् । उच्चम् । **अक्षि** । **अशेर्नित्** (उ०३ । १५६) इति अशूङ् व्याप्तौ सङ्घाते च—क्सिः । यद्वा । अक्षू व्याप्तौ-इन् । चक्षुः, नेत्रम् । **अवरम्** । **ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च** (पा० ३ । ३ । ५८) इति न+वृञ् वरणे-अप् । न व्रियत इति । निकृष्टम्, नीचम् ॥

४—**अग्ने** । अग्निवत् तेजस्विन् राजन् । **जनिमानि** । **जनिमृङ्भ्यामिमनिन्** (उ० ४ । १४९) इति जनी प्रादुर्भावे—इमनिन् । जन्मानि, उत्पत्तिकारणानि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। (अग्ने) हे अग्निरूप राजन्! (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान [वा अन्न वा धन] से (वावृधानः) बढ़ता हुआ (त्वम्) तू (तान्) उनकी और (एषाम्) इनकी (शततर्हम्) सैकड़ों प्रकार की हिंसा को (जहि) नाश कर ॥ ४ ॥

भावार्थः—अग्नि के समान तेजस्वी महाबली राजा गुप्त उपद्रवियों की खोज करे और उनको यथानीति कड़े कड़े दण्ड देकर प्रजा में शान्ति रक्खे ॥ ४ ॥

सूक्तम् ९ ॥

१-४ ॥ अथर्वा ऋषिः । १, २ विश्वे देवा देवताः, ३, ४ अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ११×४ अक्षराणि ॥

सर्वसम्पत्तिप्रयत्नोपदेशः—सब सम्पत्तियों के लिये प्रयत्न का उपदेश ॥

अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः । इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु ॥ १ ॥

अस्मिन् । वसु । वसवः । धारयन्तु । इन्द्रः । पूषा । वरुणः । मित्रः । अग्निः । इमम् । आदित्याः । उत । विश्वे । च । देवाः । उत्ऽतरस्मिन् । ज्योतिषि । धारयन्तु ॥ १ ॥

वेत्थ । विद ज्ञाने–लट्। त्वं जानासि । **गुहा** । इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः (पा० ३। १।१३५) इति गुहू संवरणे–कः टाप् च । गूहति रक्षतीति । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७। १। ३९) इति विभक्तिलोपः । गुहायाम्, गर्त्ते, गह्वरे, गुप्तस्थाने । **सताम्** । अस सत्तायाम्–शतृः । विद्यमानानाम् । निवसताम् । **अत्रिणाम्** । अ० १। ७। ३। अदनशीलानां, उदरपोषकाणाम् । **जात-वेदः** । अ० १। ७। २। हे जातविद्य! **ब्रह्मणा** । **बृंहेर्नोऽच्च** (उ० ४। १४६) इति बृहि वृद्धौ–मनिन्, नकारस्य अकारः, रत्वं च । ब्रह्म अन्नम्–निघ० २। ७। तथा, धनम्–निघ० २। १०। वेदेन । वेदज्ञानेन । परमेश्वरेण । **वावृधानः** । वृधु वृद्धौ–लिट् कानच्, छन्दसि दीर्घः । प्रवृद्धः । **जहि** । म० ३। मारय । **शत-तर्हम्** । शतं बहुनाम–निघ० ३। १ तृह हिंसायाम्–घञ्। बहुविधहिंसनम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः— (वसवः) प्राणियों के बसाने वाले वा प्रकाशमान, श्रेष्ठ देवता [अर्थात्] (इन्द्रः) परमेश्वर वा सूर्य, (पूषा) पुष्टि करने वाली पृथिवी, (वरुणः) मेघ, (मित्रः) वायु, और (अग्निः) आग, (अस्मिन्) इस पुरुष में [मुझमें] (वसु) धन को (धारयन्तु) धारण करें। (आदित्याः) प्रकाशवाले [बड़े विद्वान् शूरवीर पुरुष] (उत च) और भी (विश्वे) सब (देवाः) व्यवहार जाननेहारे महात्मा (इमम्) इसको [मुझको] (उत्तरस्मिन्) अति उत्तम (ज्योतिषि) ज्योति में (धारयन्तु) स्थापित करें ॥ १ ॥

भावार्थः—चतुर पुरुषार्थी मनुष्य के लिये परमेश्वर और संसार के सब पदार्थ उपकारी होते हैं। अथवा जो सूर्य, भूमि, मेघ, वायु और अग्नि के

१—**अस्मिन्**। उपासके, मयि, इत्यर्थः। म० ४। **वसु**। **शॄस्वृस्निहित्रप्यसि०** (उ० १। १०) इति वस आच्छादने, निवासे च—उप्रत्ययः। निवासयितृ प्रकाशमानं वा धनम्। **वसवः**। पूर्ववत्, वस—उः। **श्वसोवसीयः श्रेयसः** (पा० ५। ४। ८०) अत्र वसुशब्दः प्रशस्तवाची। प्राणिनां वासयितारः, प्रकाशमानाः। प्रशस्ताः देवाः, इन्द्रादयो मन्त्रोक्ताः। **धारयन्तु**। धृञ् धारणे—चुरादिः। स्थापयन्तु। **इन्द्रः**। अ० १। २। ३। परमेश्वरः। सूर्यः। **पूषा**। **श्वनुक्षन्पूषन्०** (उ० १। १५९) इति पुष पुष्टौ, पूष वृद्धौ—कनिन्प्रत्ययान्तो निपात्यते। पुष्यति पूषति वा वर्धते धान्यादिभिः, पोषयति वान्नैः प्रजाः। पूषा पृथिवीनाम—निघ० १।१। **वरुणः**। अ० १। ३। ३। वृणोति व्रियते वाऽसौ वरुणः। वृष्टिजलम्। मेघः। **मित्रः**। अ० १। ३। २। डुमिञ् प्रक्षेपणे—क्तः। वायुः। अहरभिमानी देवः—इति सायणः। **अग्निः**। अ० १।६।२। और्वजाठरवैद्युतादिरूपः प्रकाशः। वह्निः। **इमम्**। उपासकम्। **आदित्याः**। **अद्भ्यादयश्च** (उ०४।११२) इति आङ्+डुदाञ् दाने, दीपी दीप्तौ वा इत्यनेन—यक्। निपातितः। यद्वा। **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** (पा० ४। १। ८५) इति अदिति—ण्य—प्रत्ययः, अपत्यार्थे। अदितिः = पृथिवी—निघ० १। १। वाक्—निघ० १। ११। अदितिरदीना देवमाता—निरु० ४। २२। अथास्य [आदित्यस्य] कर्म रसदानं रश्मिभिश्च रसधारणं यच्च किंचित्, प्रवह्लितमादित्यकर्मैव तच्चन्द्रमसा वायुना संवत्सरेणेति संस्तवः—निरु० ७। ११। आदातारः, ग्रहीतारो गुणानाम्। प्रकाशमानाः। भूमिपुत्राः, देशहितैषिणः। सरस्वतीपुत्राः, विद्वांसः। सूर्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान उत्तम गुण वाले और दूसरे शूरवीर विद्वान् लोग (आदित्याः) जो विद्या के लिये और धरती अर्थात् सब जीवों के लिये पुत्र समान सेवा करते हैं और जो सूर्य के समान उत्तम गुणों से प्रकाशमान हैं, वे सब नरभूषण पुरुषार्थी मनुष्य के सदा सहायक और शुभचिन्तक रहते हैं ॥ १ ॥

अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम् । सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ २ ॥

अस्य । देवाः । प्रऽदिशि । ज्योतिः । अस्तु । सूर्यः । अग्निः । उत । वा । हिरण्यम् । सऽपत्नाः । अस्मत् । अधरे । भवन्तु । उत्ऽतमम् । नाकम् । अधि । रोहय । इमम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(देवाः) हे व्यवहार जानने हारे महात्माओ ! (अस्य) इसके [मेरे] (प्रदिशि) शासन में (ज्योतिः) तेज, [अर्थात्] (सूर्यः) सूर्य, (अग्निः) अग्नि, (उत वा) और भी (हिरण्यम्) सुवर्ण (अस्तु) होवे । (सपत्नाः) सब बैरी (अस्मत्) हमसे (अधरे) नीचे (भवन्तु) रहें । (उत्तमम्) अति ऊंचे (नाकम्) सुख में (एनम्) इसको [मुझको] (अधि) ऊपर (रोहय = ०–यत) तुम चढ़ाओ ॥ २ ॥

वत् तेजस्विनः । **देवाः** । अ० १ । ४ । ३ । दिवु व्यवहारे–अच् । व्यवहारिणः । प्रकाशमानाः । **उत्-तरस्मिन्** । उत्कृष्टे । **ज्योतिषि** । **द्युतेरिसिन्नादेश्च जः** (उ० २ । ११०) इति द्युत दीप्तौ–इसिन्, दस्य जः, तेजसि, प्रकाशे । **धारयन्तु** ॥

२—अस्य । उपासकस्य । **देवाः** । म०१ । हे प्रकाशमया व्यवहारिणो वा । **प्रदिशि** । **सम्पदादिभ्यः क्विप्** (वा० पा० ३ । ३ । ९४) प्रपूर्वात् दिश दाने, आज्ञापने—क्विप् । प्रदेशने, शासने, आज्ञायाम् । **ज्योतिः** । म० १ । तेजः, प्रकाशः । **सूर्यः** । अ० १ । ३ । ५ । सरणशीलः, प्रेरकः । ग्रहविशेषः । **अग्निः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—प्रकाश वाले, सूर्य, अग्नि की और सुवर्ण आदि की विद्यायें, अथवा सूर्य, अग्नि और सुवर्ण के समान प्रकाश वाले लोग, पुरुषार्थी मनुष्य के अधिकार में रहें और वह यथायोग्य शासन करके सर्वोत्तम सुख भोगें ॥ २ ॥

येनेन्द्राय समभरः पयाँस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम् ॥ ३ ॥

येन । इन्द्राय । सम्ऽअभरः । पयाँसि । उत्ऽततमेन । ब्रह्मणा । जातऽवेदः । तेन । त्वम् । अग्ने । इह । वर्धय । इमम् । सऽजातानाम् । श्रैष्ठ्ये । आ । धेहि । एनम् ॥ ३ ॥

म० १ । दावानलजाठरवैद्युतादिरूपः । पावकः । **हिरण्यम्** । हर्यति कान्तिकर्मा–निघ० २ । ६ । **हर्यतेः कन्यन् हिर् च** (उ० ५ । ४४) इति हर्य्य गतिकान्त्योः-कन्यन्, हिरादेशः । हर्यते काम्यते तत् । यद्वा, हृञ् हरणे–कन्यन् हिरादेश । ह्रियते जनाज्जनं व्यवहारार्थम्, अथवा द्रव्यस्वभावत्वात् नैकत्रास्य स्थितिः । हिरण्य–नाम–निघ० १ । २ । हर्यतेर्वा स्यात् प्रेप्साकर्मणः–निरु० २ । १० । सुवर्णम् । तेजः । **सपत्नाः** । सह+पत गतौ ऐश्वर्ये च–नप्रत्ययः, सहस्य सः । सह पतन्ति यतन्ते एकार्थे, यद्वा, सह पत्यन्ते ईश्वरा भवन्ति । सह मतित्ववन्तः । शत्रवः । **अधरे** । न+धृञ्–अच्, नञ्समासः, न ध्रियतेऽसौ । नीचाः, हीनाः, अपकृष्टाः । **उत्-तमम्** । उत्+तमप्, अतिशयेन उत्कृष्टम् । यद्वा, उत्+तमु काङ्क्षायाम्–अच् । भद्रम्, उत्कृष्टम् । **नाकम्** । कं सुखम् अकं दुःखम्, तन्नास्त्यत्रेति नाकः । **नभ्राण्नपान्नवेदानासत्या०** (पा० ६ । ३ । ७५) इति नञः प्रकृतिभावः । अथवा । **पिनाकादयश्च** (उ० ४।१५) इति णीञ् प्रापणे-आक-प्रत्ययः, टिलोपः । नाक आदित्यो भवति नेता रसानां, नेता भासां ज्योतिषां प्रणयोऽथ द्यौः कमिति सुखनाम तत्प्रतिषिद्धं प्रतिषिध्येत—निरु० २ । १४ । स्वर्गम् । सुखम् । आकाशम् । आदित्यलोकम् । **अधि** । उपरि । **रोहय** । रुह बीज-जन्मनि, प्रादुर्भावे च–णिच्–लोट् । एकवचनं बहुवचने । उन्नयत यूयम् । **इमम्** । उपासकम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(जातवेदः) हे विज्ञानयुक्त, परमेश्वर ! तूने (येन उत्तमेन ब्रह्मणा) जिस उत्तम वेद विज्ञान से (इन्द्राय) पुरुषार्थी जीव के लिये (पयांसि) दुग्धादि रसों को (समभरः) भर रक्खा है। (तेन) उसी से (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (त्वम्) तू (इह) यहां पर (इमम्) इसे [मुझे] (वर्धय) वृद्धि युक्त कर, (सजातानाम्) तुल्य जन्म वाले पुरुषों में (श्रैष्ठ्ये) श्रेष्ठ पद पर (एनम्) इसको [मुझको] (आ) यथा विधि (धेहि) स्थापित कर ॥ ३ ॥

भावार्थः—परमेश्वर पुरुषार्थियों को सदा पुष्ट और आनन्दित करता है। मनुष्य को प्रयत्न करके अपनी श्रेष्ठता और प्रतिष्ठा बढ़ानी चाहिये ॥ ३ ॥

'अग्नि' शब्द ईश्वरवाची है, इसमें यह प्रमाण है—

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।

इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ मनु० १२ । १२३ ॥

इसको कोई अग्नि, दूसरे मनु, और प्रजापति, कोई इन्द्र, दूसरे प्राण और नित्य ब्रह्म कहते हैं ॥

३—**येन** । ब्रह्मणा । **इन्द्राय** । अ० १। २। ३। जीवाय, पुरुषार्थिने जीवाय । **सम्-अभरः** । डुभृञ् भरणे, पोषणे—लङि सिप् । सम्यग् भृतवानसि पोषितवानसि । **पयांसि** । अ० १ । ४ । १ । दुग्धानि, दुग्धघृतादिपदार्थान् । **उत्-तमेन** । म०२ । अतिश्रेष्ठेन । **ब्रह्मणा** । अ० १। ८। ४। वेदज्ञानेन । **जातवेदः** । अ० १।७। २ । हे जातप्रज्ञान, परमेश्वर । **तेन** । ब्रह्मणा । **अग्ने** । हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! **इह** । अत्र, अस्मिन् जन्मनि । **वर्धय** । वृधु-णिच् । समर्धय । **इमम्** । उपासकम्, माम् । **सजातानाम्** । समान+जनी प्रादुर्भावे-क्तः । **जनसनखनां सञ्झलोः** (पा० ६ । ४ । ४२) इति आत्त्वम् । **समानस्य छन्दस्यमूर्ध०** (पा० ६ । ३ । ८४) इति समानस्य सभावः । समानजन्मनां स्वकुटुम्बिनां मध्ये । **श्रैष्ठ्ये** । **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** (पा० ५ । १ । १२४) इति श्रेष्ठ–ष्यञ् । श्रेष्ठत्वे, प्रधानत्वे । **आ** । समन्तात्–यथाविधि । **धेहि** । डुधाञ् धारणपोषणयोः—लोट् । धारय, स्थापय । **एनम्** । उपासकम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्ता-
न्यग्ने । सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि
रोहयेमम् ॥ ४ ॥

आ । एषाम् । यज्ञम् । उत । वर्चः । ददे । अहम् । रायः । पोषम् । उत । चित्तानि । अग्ने । सऽपत्नाः । अस्मत् । अधरे । भवन्तु । उत्ऽतमम् । नाकम् । अधि । रोहय । इमम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे परमेश्वर ! (एषाम्) इनके [अपने लोगों के] दिये (यज्ञम्) सत्कार, (उत) और (वर्चः) तेज, (रायः) धन की (पोषम्) बढ़ती (उत) और (चित्तानि) मानसिक बलों को (अहम्) मैं (आ ददे) ग्रहण करता हूं। (सपत्नाः) वैरी लोग (अस्मत्) हमसे (अधरे) नीचे (भवन्तु) होवें, (उत्तमम्) अति ऊँचे (नाकम्) सुख में (एनम्) इसको [मुझे] (अधि) ऊपर (रोहय) चढ़ा ॥ ४ ॥

भावार्थः—बुद्धिमान् नीति निपुण पुरुष अपने पक्ष वालों के किये हुये उपकार, और सत्कार को सधन्यवाद स्वीकार करे और विपक्षियों को नीचा दिखा कर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ावे ॥ ४ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्ध मन्त्र २ का उत्तरार्ध है ॥

४—एषाम् । स्वपुरुषाणाम् । **यज्ञम्** । **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्** (पा० ३ । ३ । ९०) इति यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु—नङ्। पूजाम्, कीर्त्तिम् । **वर्चः** । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति वर्च दीप्तौ—असुन्। नित्त्वात् आद्युदात्तः । वर्चः, अन्ननाम—निघ० २ । ७ । रूपम् । तेजः । **आ-ददे** । आङ् पूर्वात् डुदाञ् ग्रहणे—लट् । अहं गृह्णामि, स्वीकरोमि । **रायः** । **रातेर्डैः** (उ० २ । ६६) इति रा दाने—डैः प्रत्ययः, रैः । धनस्य । **पोषम्** । पुष पुष्टौ—घञ्। पोषणं वर्धनं समृद्धिम् । **रायस्पोषम्** । **षष्ठ्याः पतिपुत्र०** (पा० ८ । ३ । ५३) इति विसर्जनीयस्य सः । **चित्तानि** । चित संचेतने—क्तः । मनांसि, मानसबलानि । **अग्ने** । म० ३ । हे परमेश्वर । **सपत्नाः**..... **इमम्** । व्याख्यातं म० २ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १० ॥

१–४ ॥ अथर्वा ऋषिः वरुणो देवता । १,२ त्रिष्टुप्, ३, ४ अनुष्टुप् ॥

वरुणस्य क्रोधः प्रचण्डः—वरुण का क्रोध प्रचण्ड है ॥

अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः । ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥ १ ॥

अयम् । देवानाम् । असुरः । वि । राजति । वशा । हि । सत्या । वरुणस्य । राज्ञः । ततः । परि । ब्रह्मणा । शाशदानः । उग्रस्य । मन्योः । उत् । इमम् । नयामि ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (देवानाम्) विजयी महात्माओं का (असुरः) प्राणदाता [वा प्रज्ञावान् वा प्राणवान्] परमेश्वर (वि राजति) बड़ा राजा है, (वरुणस्य) वरुण अर्थात् अति श्रेष्ठ (राज्ञः) राजा परमेश्वर की (वशा) इच्छा (सत्या) सत्य (हि) ही है। (ततः) इसलिये (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान से (परि) सर्वथा (शाशदानः) तीक्ष्ण होता हुआ मैं (उग्रस्य) प्रचंड परमेश्वर के (मन्योः) क्रोध से (इमम्) इसको [अपने को] (उत् नयामि) छुड़ाता हूं ॥ १ ॥

१—**अयम्** । पुरोवर्ती । **देवानाम्** । १ । ४ । ३ । दिव्यगुणवतां विदुषाम् । **असुरः** । **असेरुरन्** (उ० १ । ४२) इति असु क्षेपणे--उरन् । **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** (पा० ६ । १ । १९७) इति नित्त्वाद् आद्युदात्तः । अस्यति शत्रून् । यद्वा, अस गति-दीप्त्यादानेषु–उरन् । असति गच्छति व्याप्नोति सर्वत्र, दीप्यते स्वयम्, आदत्ते वा साधून् । यद्वा । असुं प्राणं राति ददातीति, असु+रा दानादानयोः–कः । मेघनाम–निघ०१।१०। असुरत्वमेकं प्रज्ञावत्वं वानवत्वं वापि वासुरिति प्रज्ञानामास्यत्यनर्थानस्ताश्चास्यामर्थाः असुरत्वमादिलुप्तम्–निरु० १० । ३४ । क्षेप्ता । शूरः । व्यापकः । दीप्यमानः ग्रहीता । प्राणदाता । प्रज्ञावान् । यद्वा, मेघवद् उदारः । वरुणविशेषणमेतत् । **वि** । विशेषेण । **राजति** । राजृ दीप्तौ । **वशा** । वश स्पृहायाम्–अप्, टाप् । इच्छा, स्पृहा । **हि** । अवश्यम् । यस्मात् । **सत्या** । **तस्मै हितम्**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के क्रोध से डर कर मनुष्य पाप न करें और सदा उसे प्रसन्न रक्खें ॥ १ ॥

नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम्। सहस्रमन्यान् प्रसुवामि साकं शतं जीवाति शरदुस्तवायम् ॥ २ ॥

नमः। ते। राजन्। वरुण। अस्तु। मन्यवे। विश्वम्। हि। उग्र। नि-ऽचिकेषि। द्रुग्धम्। सहस्रम्। अन्यान्। प्र। सुवामि। साकम्। शतम्। जीवाति। शरदः। तव। अयम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(वरुण) हे अतिश्रेष्ठ (राजन्) बड़े ऐश्वर्य वाले राजा! (ते) तुझ (मन्यवे) क्रोधरूप को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (उग्र) हे प्रचंड! तू (विश्वम्) सम्पूर्ण (हि) ही (द्रुग्धम्) द्रोह को (नि-चिकेषि) सदा जानता है। [मैं] (सहस्रम्) सहस्र (अन्यान्) दूसरे जीवों को (साकम्)

हि। अवश्यम्। यस्मात्। **सत्या। तस्मै हितम्** (पा० ५। १। ५) इति सत्+यत् टाप्। सद्भ्यो हिता, अवितथा। **वरुणस्य**। अ० १। ३। ३। व्रियते स्वीक्रियते स वरुणः। अतिश्रेष्ठस्य। परमेश्वरस्य। **राज्ञः**। राजति, ऐश्वर्यकर्मा-निघ० २। २१। **कनिन् युवृषितक्षिराजि०** (उ० १। १५६) इति राजृ दीप्तौ ऐश्वर्ये च-कनिन्। स्वामिनः, अधिपतेः, ईश्वरस्य। **ब्रह्मणा**। अ० १। ८। ४। वेदज्ञानेन। **शाशदानः**। शदॢ शातने यङ्लुगन्ताद् छन्दसि शानच्। शाशद्यमानः—निरु० ६। १६। अत्यर्थं तीक्ष्णः। विजयी। **उग्रस्य**। **ऋजेन्द्राग्रवज्र०** (उ० २। २८) इति उच समवाये-रक्। उच्यति क्रुधा सम्बध्यते। उत्कटस्य, प्रचण्डस्य। **मन्योः**। **यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच्** (उ० ३। २०) इति मन ज्ञाने स्तम्भे च-भावे कर्तरि वा-युच्। मन्युर्मन्यतेर्दीप्ति-कर्मणः क्रोधकर्मणो वधकर्मणो वा-निरु० १०। २९। क्रोधात्। **उत्+नयामि**। उपसर्गस्य व्यवधानम्। ऊर्ध्वं गमयामि, मोचयामीत्यर्थः॥

२—**राजन्**। म० १। हे ऐश्वर्यवन्। **वरुण**। म० १। हे परमेश्वर! **मन्यवे**। म० १। क्रोधाय, क्रोधरूपाय। **नि-चिकेषि**। कि ज्ञाने—लट्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक साथ (प्रसुवामि) आगे बढ़ाता हूं, (ते) तेरा (अयम्) यह [सेवक] (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं तक (जीवाति) जीता रहे ॥ २ ॥

भावार्थः—सर्वज्ञ परमेश्वर के महा क्रोध से भय मान कर मनुष्य पातकों से बचें और सबके साथ उपकार करके जीवन भर आनन्द भोगें ॥ २ ॥

यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु ।
राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ॥ ३ ॥

यत् । उवक्थ । अनृतम् । जिह्वया । वृजिनम् । बहु ।
राज्ञः । त्वा । सत्यऽधर्मणः । मुञ्चामि । वरुणात् । अहम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे आत्मा !] (यत्) जो (बहु) बहुत सा (अनृतम्) असत्य और (वृजिनम्) पाप (जिह्वया) जिह्वा से (उवक्थ) तू बोला है । (अहम्) मैं (त्वा) तुझको (सत्यधर्मणः) सच्चे धर्मात्मा वा न्यायी, (वरुणात्) सबमें श्रेष्ठ परमेश्वर (राज्ञः) राजा से (मुञ्चामि) छुड़ाता हूं ॥ ३ ॥

जुहोत्यादिः, शपः श्लुः । त्वं नितरां जानासि । **द्रुग्धम्** । द्रुह जिघांसायाम्—भावे-क्तः । द्रोहम्, अपराधम् । **सहस्रम्** । सहो बलमस्त्यस्मिन्, सहस्+रप्रत्ययो मत्वर्थे । बहुनाम—निघ० ३ । १ । बहून्, अनेकान् । **अन्यान्**[1] । **माछापसिभ्यो यः** (उ० ४ । १०९) इति अन प्राणने, यप्रत्ययः । अनिति जीवतीति अन्यः । जीवान्, प्राणिनः । इतरान् वा । **प्र+सुवामि** । षू प्रेरणे, तुदादिः, ङित्वाद् गुणप्रतिषेधे उवङ् । प्रकर्षेण प्रेरयामि, ऊर्ध्वं नयामि, उपकरोमि । **साकम्** । **इण्भीकापा०** (उ० ३ । ४३) इति षो अन्तकर्मणि-कन् । सह, समम् । **शतम्** । बहुनाम, निघ० ३ । १ । बह्वीः । **जीवाति** । जीव प्राणधारणे—लेट् । **लेटोऽडाटौ** (पा० ३ । ४ । ९४) इति आडागमः । जीवेत् । **शरदः** । **शॄदृभसोऽदिः** (उ० १ । १३०) इति शॄ हिंसायाम्—अदिः । **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** (पा० २ । ३ । ५) इति द्वितीया । आश्विनकार्तिकमास-युक्तान् ऋतुविशेषान् संवत्सरान् ॥

३—**यत्** । वचनम् । **उवक्थ** । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि—लिट्, त्वम् उक्त-वानसि । **अनृतम्** । न ऋतम् । असत्यम् । मिथ्याभाषणम् । **जिह्वया** ।

---

१. अन्यो नानेयः (निरु० १ । ७) अर्थात् विशिष्ट पुरुषों में 'न आनेयः' गणना के योग्य नहीं, साधारण पुरुष । यास्काचार्य इस प्रकार भी व्युत्पत्ति करते हैं ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य मिथ्यावादी दुराचारी भी होकर उस प्रभु की शरण लेते और सत्कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, वे लोग उस जगदीश्वर की न्याय व्यवस्था के अनुसार दुःख पाश से छूटकर आनन्द भोगते हैं ॥ ३ ॥

मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान्महतस्परि ।
सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चापं चिकीहि नः ॥ ४ ॥

मुञ्चामि । त्वा । वैश्वानरात् । अर्णवात् । महतः । परि ।
सऽजातान् । उग्र । इह । आ । वद । ब्रह्म । च । अप ।
चिकीहि । नः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—[हे आत्मा !] (महतः) विशाल (अर्णवात्) समुद्र के समान गंभीर (वैश्वानरात्) सब नरों के हितकारक वा सबके नायक परमेश्वर से (त्वा) तुझको (परि मुञ्चामि) मैं छुड़ाता हूं। (उग्र हे प्रचण्ड स्वभाव [परमेश्वर !] (सजातान्) [मेरे] तुल्य जन्म वालों को (इह) इस विषय में (आ वद) उपदेश कर (च) और (नः) हमारे (ब्रह्म) वैदिक ज्ञान को (अप) आनन्द से (चिकीहि) तू जान ॥ ४ ॥

शेवायह्वजिह्वाग्रीवाऽष्वामीवाः (उ० १ । १५४) इति जि जये[1]—वन्, हुक् आगमो निपातितः। जयति रसमनया। रसनया। **वृजिनम्**। **वृजेः किच्च** (उ०२।४७) इति वृजी वर्जने–इनच्,स च कित्। पापम्। **बहु**। अधिकम्। **राज्ञः**। म०१। अध्यक्षात्। **त्वा**। त्वाम्। सेवकम्, आत्मानम्। **सत्यधर्मणः**। **धर्मादनिच् केवलात्** (पा० ५ । ४ । १२४) इति सत्य + धर्म—अनिच्, बहुव्रीहौ। यथार्थन्यायस्वभावात्। **मुञ्चामि**। मुच्ल मोक्षणे–लट्। मोचयामि, वियोजयामि। **वरुणात्**। म० १। श्रेष्ठात् परमेश्वरात्। **अहम्**। उपासकः॥

४—परिमुञ्चामि। म० ३। सर्वथा मोचयामि। **वैश्वानरात्**। नृ नये–अच्। नृणातीति नरः पुरुषः। विश्वश्चासौ नरश्चेति। **नरे संज्ञायाम्** (पा० ६।३।१२९) इति विश्वस्य दीर्घः। विश्वानर एव वैश्वानरः। स्वार्थे अण्। यद्वा। **तस्येदम्** (पा० ४ । ३ । १२०) यद्वा। **तस्मै हितम्** (पा० ५ । १ । ५) इति

---

१. 'लिहन्त्यनया रसानिति जिह्वा' लिह आस्वादने धातु से गुणाभाव एवं जत्व निपातन करके भी जिह्वा शब्द निष्पन्न हो सकता है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य पापकर्म छोड़ने से सर्व हितकारी परमेश्वर के कोप से मुक्त होते हैं। परमात्मा सब प्राणियों को उपदेश करता और सबकी सत्य भक्ति को स्वीकार कर यथार्थ आनन्द देता है ॥ ४ ॥

सूक्तम् ११ ॥

१–६ ॥ अथर्वा ऋषिः। पूषा देवता। १ विराट् स्थाना त्रिष्टुप् ९+१०+९+११=३९, २, ३ अनुष्टुप् ८×४, ४-६ पंक्तिः ८×५ ॥

सृष्टिविद्यावर्णनम्—सृष्टि विद्या का वर्णन ॥

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः। सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ ॥ १ ॥

वषट्। ते। पूषन्। अस्मिन्। सूतौ। अर्यमा। होता। कृणोतु। धाः। सिस्रताम्। नारीः। ऋतऽप्रजाता। वि। पर्वाणि। जिहताम्। सूतवै। ऊँ इति ॥ १ ॥

अण्। वैश्वानरः कस्माद् विश्वान् नरान् नयति विश्व एनं नरा नयन्तीति वापि वा विश्वानर एव स्यात् प्रत्यृतः सर्वाणि भूतानि तस्य वैश्वानरः–निरु० ७। २१। सर्वनायकात्। सर्वोपास्यात्। सर्वनरहितात् परमेश्वरात्। **अर्णवात्।** **केशाद् वोऽन्यतरस्याम्** (पा० ५। २। १०९) अत्र **अर्णसो लोपश्च** इति वार्तिकम्। अर्णस्+वः, सलोपः। अर्णांसि जलानि सन्त्यस्मिन्। समुद्रात्, समुद्रवद् गम्भीरस्वभावात्। **महतः।** **वर्तमाने पृषद् बृहन्महज्जगच्छतृवच्च** (उ० २।८४) इति मह पूजायाम्–अतिः। वड्रात्। विशालात्। **सजातान्।** समानजन्मनः पुरुषान्। **उग्र।** म० १। हे प्रचण्ड, महाक्रोधिन् वरुण!। **आ+वद।** समन्तात् कथय, उपदिश। **ब्रह्म।** अ० १। ८। ४। वेदविज्ञानम्। **अप।** आनन्दे—इति शब्दस्तोममहानिधौ। **चिकिहि।** म० २। कि ज्ञाने—लोट्। जानीहि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(पूषन्) हे सर्वपोषक, परमेश्वर ! (ते) तेरे लिये (वषट्) यह आहुति [भक्ति] है। (अस्मिन्) इस समय पर (सूतवै) सन्तान के जन्म को (अर्यमा) न्यायकारी, (होता) दाता, (वेधाः) सबका रचने वाला ईश्वर (कृणोतु) करे। (ऋतप्रजाता) पूरे गर्भवाली (नारी) नर का हित करने हारी स्त्री (सिस्रताम्) सावधान रहे, (पर्वाणि) इसके सब अङ्ग (उ) भी (सूतवै) सन्तान उत्पन्न करने के लिये (विजिहाताम्) कोमल हो जावें ॥ १ ॥

भावार्थः—प्रसव समय होने पर पति आदि विद्वान् लोग परमेश्वर की भक्ति के साथ हवनादि कर्म प्रसूता स्त्री की प्रसन्नता के लिये करें और वह स्त्री सावधान होकर श्वास प्रश्वास आदि द्वारा अपने अंगों को कोमल रक्खे जिससे बालक सुख पूर्वक उत्पन्न होवे ॥ १ ॥

१—वषट् । वह प्रापणे-डषटिः । इति शब्दस्तोममहानिधौ। आहुतिः,हविर्दानम्। भक्तिः। स्वाहा। **पूषन्** । अ० १।९।१। पुष्णातीति पूषा । हे सर्वपोषक, परमेश्वर। **अस्मिन्** । अस्मिन् काले, इदानीम् । **सूतौ** । षूङ् प्राणिप्रसवेक्तिन् । **सुपां सुपो भवन्तीति वक्तव्यम्** (वा० पा० ७। १। ३९) इति द्वितीयार्थे सप्तमी । प्रसवकर्म, जन्म। **अर्यमा** । ऋ गतौ–यत्। अर्यः श्रेष्ठः। **शनुक्षन्पूषन्०** (उ० १। १५९) इति अर्य+मा माने–कनिन्। अर्य्यान् श्रेष्ठान् मिमीते मानयतीति। अर्यमादित्योऽरीन् नियच्छति–निरु० ११ । २३। यथार्थज्ञाता, न्यायकारी। **होता** । **नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृ०** (उ० २। ९५) इति हु दानादनयोः। यद्वा ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च–तृन्। नित्त्वाद् आद्युदात्तः। दाता होमकर्त्ता,ऋत्विक्, आह्वाता। **कृणोतु** । कृवि हिंसाकरणयोश्च–लोट् । भगवान् पूषा उपकरोतु। **वेधाः** । **विधाञो वेध च** (उ० ४। २२५) इति वि+डुधाञ् धारणपोषणयोः—असिः, वेधादेशः। यद्वा विध विधाने–असुन्। विशेषेण दधातीति । ब्रह्मा, चतुर्वेदवेत्ता । मेधावी--निघ० ३। १५। विधाता, रचयिता। **सिस्रताम्** । सृ गतौ—लोट्, आत्मनेपदम् जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः। अभ्यासस्य इत्त्वम् पुनरपि विकरणः शः। गच्छतु सावधाना सुखप्रसूता वा भवतु। **नारी** । **नन्दिग्रहिपचा०** (पा० ३।१।१३४) इति नृ नये--अच्। नृणाति नयतीति नरः। **नराच्चेति वक्तव्यम्** (वा०पा०४।४।४९) नर–अञ्। **शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्** (पा० ४। १। ७३) इति ङीन्। नुर्नरस्य वा धर्म्या नरधर्माचार--युक्ता। स्त्री, वधूः। **ऋत-प्रजाता** । **अर्शआदिभ्योऽच्** (पा० ५। २। १२७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिप्पणी—इस सूक्त में माता से सन्तान उत्पन्न होने का उदाहरण देकर बताया गया है कि मनुष्य सृष्टि विद्या के ज्ञान से ईश्वर की अनन्त महिमा का विचार करके परस्पर उपकारी बनें ॥

चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत ।
देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे ॥ २ ॥

चतस्रः । दिवः । प्रऽदिशः । चतस्रः । भूम्याः । उत । देवाः ।
गर्भम् । सम् । ऐरयन् । तम् । वि । ऊर्णुवन्तु । सूतवे ॥ २ ॥

भाषार्थः—(दिवः) आकाश की (चतस्रः) चारों (उत) और (भूम्याः) भूमि की (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) दिशाओं ने और (देवाः) दिव्य गुण वाले [अग्नि वायु आदि] देवताओं ने (गर्भम्) गर्भ को (समैरयन्) संगत किया है, वे सब (तम्) उस गर्भ को (सूतवे) उत्पन्न होने के लिये (व्यूर्णुवन्तु) प्रस्तुत करें ॥ २ ॥

भावार्थः—अग्नि आदि दिव्य पदार्थों के यथार्थ संयोग से ईश्वरीय नियम के अनुसार यह गर्भ स्थिर हुआ है, मनुष्य उन तत्त्वों की अनुकूलता को माता और गर्भ में स्थिर रखने के लिये सदा प्रयत्न करते रहें जिससे बालक बलवान् और नीरोग होकर पूरे समय पर उत्पन्न होवे ॥ २ ॥

इति ऋत+प्रजात–अच्, टाप् । ऋतं सत्यं प्रजातं प्रजननमस्त्यस्याः । सत्यप्रसवा, उचितसमयप्रसूता, जीवदपत्या । **पर्वाणि** । पर्व गतौ-कनिन् । यद्वा । **स्नामदिपद्यर्त्तिपृशकिभ्यो वनिप्** (उ० ४ । ११३) इति पॄ पालनपूरणयोः—वनिप् । शरीरग्रन्थयः, देहसन्धयः । **वि+जिहताम्** । ओहाङ् गतौ--लोट् बहुवचनम्, जुहोत्यादिः । विशेषेण गच्छन्तु कोमलानि सुखप्रसवयोग्यानि भवन्तु । **सूतवै । तुमर्थे सेसेन०** (पा० ३ । ४ । ९) इति षूङ् प्राणिगर्भविमोचने तवैप्रत्ययः । प्रसवार्थम् ॥

२—चतस्रः । त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ (पा० ७ । २ । ९९) इति चतुर्शब्दस्य जसि चतस्रादेशः । **अचि र ऋतः** (पा० ७ । २ । १००) इति रेफादेशः । चतुः संख्याकाः । **दिवः** । अ० १।११।२ । आकाशस्य । **प्र+दिशः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिप्पणी--देव वा देवता का अर्थ दिव्य वा अच्छे गुण वाला है। यजुर्वेद १४। २० में यह देवता कहे हैं—

अग्निर्देवता। वातो देवता। सूर्यो देवता। चन्द्रमा देवता। वसवो देवता। रुद्रो देवता। आदित्या देवता। मरुतो देवता। विश्वे देवा देवता। बृहस्पतिर्देवता। इन्द्रो देवता। वरुणो देवता॥

अग्नि १, वायु २, सूर्य ३, चन्द्रमा ४, सबके बसाने वाले अन्नादि पदार्थ ५, दुःख दूर करने वाले जीव वा पदार्थ ६, प्रकाश करने वाले पदार्थ अथवा अदिति, विद्या वा पृथिवी के पुत्र के समान सेवा करने वाले पुरुष ७, दुष्टों के मारने वाले शूरवीर पुरुष ८, सब अच्छे गुण वाले विद्वान् ९, बड़े वेद वचनों वा ब्रह्माण्डों का रक्षक परमेश्वर १०, ऐश्वर्य वा धन ११, और जल १२, यह सब देवता उत्तम गुण वाले हैं॥

सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि।
श्रथयं सूषणे त्वमव त्वं बिष्कले सृज॥ ३॥

सूषा। वि। ऊर्णोतु। वि। योनिम्। हापयामसि।
श्रथयं। सूषणे। त्वम्। अव। त्वम्। बिष्कले। सृज॥ ३॥

अ० १। ९। २। प्रकृष्टाः दिशः। प्राच्याद्याः प्रधानदिशः। **भूम्याः। भुवः कित्** (उ० ४। ४५) इति भू सत्तायाम्-मिः। **कृदिकारादक्तिनः** (वा०पा० ४।१।४५) इति पक्षे ङीष्। पृथिव्याः, भूलोकस्य। **देवाः।** अ० १।४।३। दिव्यपदार्था अग्न्यादयः। विद्वांसश्च। **गर्भम्। अर्त्तिगृभ्यां भन्** (उ० ३।१५२) इति गृ शब्दे निगरणे च भन्। गीर्यते जीवसंचितकर्मफलदात्रा ईश्वरेण प्रकृतिबलात् जठरगह्वरे स्थाप्यते पुरुषशुक्रयोगेन स गर्भः। भ्रूणम्, उदरस्थसन्तानम्। **सम्।** सम्यक्, यथाविधि। **ऐरयन्।** ईर गतौ कम्पने च-लङ्। संगतमकुर्वन्। **वि+ऊर्णुवन्तु।** ऊर्णुञ् आच्छादने-लोट्। विवृतं प्रस्तुतं कुर्वन्तु। **सूतवे। तुमर्थे सेसेनसे०** (पा० ३। ४। ९) इति षूङ् प्राणिगर्भविमोचने-तवेन्। नित्त्वात् आद्युदात्तः। प्रसवितुम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सूषा) सन्तान उत्पन्न करने वाली माता (व्यूर्णोतु) अङ्गों को कोमल करे (योनिम्) प्रसूतिका गृह को (विहापयामसि) हम प्रस्तुत करते हैं। (सूषणे) हे जन्म देने हारी माता ! (त्वम्) तू (श्रथय) प्रसन्न हो। (बिष्कले) हे वीर स्त्री ! (त्वम्) तू (अव सृज) [बालक को] उत्पन्न कर ॥३॥

भावार्थः—गर्भ के पूरे दिनों में गर्भिणी की शारीरिक और मानसिक अवस्था को विशेष ध्यान से स्वस्थ रक्खें। माता के प्रसन्न और सुखी रहने से बालक भी प्रसन्न और सुखी होता है। प्रसूतिका गृह भी पहिले से देश, काल विचार कर प्रस्तुत रक्खें कि प्रसूता स्त्री और बालक भले प्रकार स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट रहें ॥ ३ ॥

नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम्।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुनै जरायवत्तवेऽवं जरायुं पद्यताम् ॥४॥

नऽइव। मांसे। न। पीवसि। नऽइव। मज्जऽसु। आऽहतम्। अव। एतु। पृश्निं। शेवलम्। शुनै। जरायुं। अत्तवे। अव। जरायुं। पद्यताम् ॥ ४ ॥

३—**सूषा**। सूषति प्रसवतीति। षूष,[1] सूष[2] वा प्रसवे-अच्, टाप्। सवित्री जननी, माता। **वि+ऊर्णोतु**। म० १। अङ्गानि प्रस्तुतानि करोतु। **योनिम्**। **वहिश्रिश्रुयुद्रुग्लाहात्वरिभ्यो नित्** (उ० ४। ५१) इति यु मिश्रणामिश्रणयोः-निः। योनिर्गृहनाम-निघ० ३। ४। गृहम्। प्रसूतिकागृहम्। **वि+हापयामसि**। ओहाङ् गतौ—णिच्। **अत्तिह्री०** (पा० ७। ३। ३६) इति पुगागमः। **इदन्तो मसि** (पा० ७।१।४६) इति इकारः। विहापयामः। विशेषेण गमयामः। प्रस्तुतं कुर्मः। **श्रथय**। श्रथ प्रयत्ने चुरादिः। यतस्व। हृष्टा भव। **सूषणे**। **संपदादिभ्यः क्विप्** (वा०पा०३।३।९४) इति षूङ् प्राणिप्रसवे—क्विप्। सूः सवनम्, उत्पत्तिः। **छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्** (पा० ३। २। २७) इति सू+षणु दाने—इन्। सुवं सनोति ददातीति सूषणिः। तत्सम्बोधनम्। हे प्रसवस्य दातृ-कारिणि ! **बिष्कले**। **कलस्तृपश्च** (उ० १। १०४) इति विष्क हिंसायां दर्शने च कलप्रत्ययः। टाप्। हे वीरे, शूरे। दर्शनीये। **अव+सृज**। उपसर्गस्य व्यवधानम्। सृज विसर्गे। गर्भस्थबालकम् उत्पादय ॥

१. द्र० क्षीर० भ्वा० ४५२ ॥
२. द्र० सं० धा० को० पृ० ११२ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[वह जरायु] (नेव) न तो (मांसे) मांस में (न) न (पीवसि) शरीर की मुटाई में (नेव) और न (मज्जसु) हड्डियों की मींग में (आहतम्) बंधी हुयी है। (पृश्नि) पतली (शेवलम्) सेवार घास के समान (जरायु) जेली वा झिल्ली (शुने) कुत्ते के लिये (अत्तवे) खाने को (अव) नीचे (एतु) आवे, (जरायु) जरायु (अव) नीचे (पद्यताम्) गिर जावे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जरायु एक झिल्ली होती है जिसे जेली वा जेरी कहते हैं और जिसमें बालक गर्भ के भीतर लिपटा रहता है, कुछ उसमें से बालक के साथ निकल आती है और कुछ पीछे। यह जरायु बालक उत्पन्न होने पर नाभि आदि के बन्धन से छुट जाती है और सार रहित होकर माता के उदर में ऐसे फिरती है जैसे सेवार नामक घास जलाशय में। शरीर में उसके रह जाने से रोग हो जाता है। इससे उस जरायु का उदर से निकल जाना आवश्यक है जिससे प्रसूता नीरोग होकर सुखी रहे ॥ ४ ॥

४—**न-इव**। इव अवधाने। नैव। **मांसे**। **मनेर्दीर्घश्च** (उ० ३। ६४) इति मन ज्ञाने स्तम्भे च सप्रत्ययः, दीर्घश्च। रक्तजधातुविशेषे। **न**। निषेधे। **पीवसि**। **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४।१८९) इति पीव स्थौल्ये–असुन्। **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** (पा० ६।१।१९७) इति नित्वाद् आद्युदात्तः। स्थूलत्वे–असुन्। **मज्जसु**। **श्वनुक्षन्पूषन्०** (उ० १। १५९) इति टुमस्जो शुद्धौ—कनिन् निपात्यते। अस्थिमध्यस्थस्नेहेषु। **आ-हतम्**। आङ्+हन हिंसागत्योः—क्तः। संबद्धम्। **अव**। अवाक्, अधस्तात्। **एतु**। गच्छतु, पततु। **पृश्नि**। **घृणिपृश्नि०** (उ० ४। ५२) इति स्पृश संस्पर्शने–निः, सलोपः। स्वल्पम्। **शेवलम्**। **शीङो धुक्लक्वलज्वालनः** (उ० ४। ३८) इति शीङ् स्वप्ने–वालन्, ह्रस्वो वा, नित्त्वाद् आद्युदात्तः। जलस्योपरिस्थतृणविशेषः, शेवालं शैवलं वा। तद्वत् जननीजठरे स्थितं जरायु। **शुने**। **श्वनुक्षन्पूषन्०** (उ० १। १५९) इति टुओश्वि गतौ–कनिन्। कुक्कुराय। **जरायु**। **किंजरयोः श्रिणः** (उ० १। ४) इति जरा+इण् गतौ–ञुण्। गर्भवेष्टनचर्म। उल्वम्। मांसपिण्डश्च यः प्रजननानन्तरं निःसरति। **अत्तवे**। **तुमर्थे सेसेन०** (पा० ३। ४। ९) इति अद भक्षणे–तवेन्-प्रत्ययः। भक्षितुम्। **पद्यताम्**। पद गतौ–दिवादित्वात् श्यन्। नित्वात् आद्युदात्तत्वे प्राप्ते **तिङ्ङतिङः** (पा० ८। १। २८) इति निघातः। गच्छतु, पततु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके ।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ॥५॥

वि । ते । भिनद्मि । मेहनम् । वि । योनिम् । वि । गवीनिके इति । वि । मातरम् । च । पुत्रम् । च । वि । कुमारम् । जरायुणा । अव । जरायु । पद्यताम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (मेहनम्) गर्भ मार्ग को (वि) विशेष करके और (योनिम्) गर्भाशय को (वि) विशेष करके और (गवीनिके) पार्श्वस्थ दोनों नाड़ियों को (वि) विशेष करके (भिनद्मि) [मलसे] अलग करती हूं (च) और (मातरम्) माता को (च) और (कुमारम्) क्रीड़ा करने वाले (पुत्रम्) पुत्र को (जरायुणा) जरायु से (वि वि) अलग अलग [करती हूं], (जरायु) जरायु (अव) नीचे (पद्यताम्) गिर जावे ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में धात्री [धायी] अपने कर्म का वर्णन करके प्रसूता को उत्साहित करती है, अर्थात् धायी बड़ी सावधानी से प्रसव समय प्रसूता के अंगों को आवश्यकतानुसार कोमल मर्दन करे और उत्पन्न होने पर माता और

५—**वि+भिनद्मि** । भिदिर् विदारणे । मलात् पृथक् करोमि, विश्लेषयामि । **मेहनम्** । अ० १ । ३ । ७ । गर्भमार्गम् । वि=विभिनद्मि । एवम् । **वि** । इतिशब्देन सह सर्वत्र योजनीयम् । **योनिम्** । म० ३ । गर्भाशयम् । **गवीनिके** । अ० १ । ३ । ६ । पार्श्ववर्तिन्यौ नाड्यौ । **मातरम्** । अ०१।२।१। मान्यते पूज्यते सा माता । जननीम् । **पुत्रम्** । **पुवो ह्रस्वश्च** (उ० ४ । १६५) इति पूङ् पवने-क्त्रः, ह्रस्वश्च धातोः । पुनाति पित्रादीनिति पुत्रः । पुत्रः पुरु त्रायते निपरणाद्वा पुं नरकं ततस्त्रायत इति वा-इति यास्कः, निरु० २ । ११ । पुरु+त्रैङ् पालने-डः । यद्वा, पुत् त्रैङ्-डः । यथा च रामायणे-"पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः । तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन् यः पाति सर्वतः" । (२ । १०७ । १२) अपत्यम् । सन्तानम् । **कुमारम्** । कुमार क्रीडायाम्-अच् । क्रीडा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तान की यथायोग्य शुद्धि करके सुधि रक्खे और ऐसा यत्न करे कि जरायु अपने आप गिर जावे जिससे दोनों माता और सन्तान सुखी रहें ॥ ५ ॥

यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः ।
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पतावं जरायु पद्यताम् ॥ ६ ॥

यथा । वातः । यथा । मनः । यथा । पतन्ति । पक्षिणः । एव । त्वम् । दशऽमास्य । साकम् । जरायुणा । पत । अव । जरायु । पद्यताम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (वातः) पवन और (यथा) जैसे (मनः) मन और (यथा) जैसे (पक्षिणः) पक्षी (पतन्ति) चलते हैं। (एव) वैसे ही (दशमास्य) हे दश महीने वाले [गर्भ के बालक !] (त्वम्) तू (जरायुणा साकम्) जरायु के साथ (पत) नीचे आ, (जरायु) जरायु (अव) नीचे (पद्यताम्) गिर जावे ॥ ६ ॥

भावार्थः—(दशमास्य) दशवें अथवा ग्यारहवें महीने में बालक माता के गर्भ में बहुत शीघ्र चेष्टा करता है तब वह उत्पन्न होता है और जरायु वा जेली कुछ उसके साथ और कुछ उसके पीछे निकलती है ॥ ६ ॥

शीलम् । शिशुम् । **जरायुणा** । म० ४ । गर्भवेष्टनचर्मणा । अन्यत् गतम्--म०४ ॥

६--यथा । येन प्रकारेण । **वातः** । **हसिमृग्रिण्०** (उ० ३ । ८६) इति वा गतिगन्धनयोः—तन् । नित्त्वाद् आद्युदात्तः । वायुः, पवनः । **मनः** । अ० १ । १ । २ । ज्ञानसाधकम् अन्तःकरणम् । **पतन्ति** । शीघ्रं गच्छन्ति । उड्डीयन्ते । **पक्षिणः** । **अत इनिठनौ** (पा० ५ । २ । ११५) इति पक्ष—इनिः । विहगाः । **एव** । **निपातस्य च** (पा० ६ । ३ । १३६) इति दीर्घः । एवम्, तथा । **दशमास्य** । **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** (पा० २ । १ । ५१) इति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद में यह मन्त्र इस प्रकार है—

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥ ऋ० ५ । ७८ । ८ ॥

जैसे वायु, जैसे वृक्ष और जैसे समुद्र हिलता है, ऐसे ही तू हे दस महीने वाले [गर्भ के बालक !] जरायु के साथ नीचे आ ।

शब्दकल्पद्रुम कोश में लिखा है—

अष्टमे मासि याते च अग्नियोगः प्रवर्तते ।
मासे तु नवमे प्राप्ते जायते तस्य चेष्टितम् ॥ १ ॥

जायते तस्य वैराग्यं गर्भवासस्य कारणात् ।
दशमे च प्रसूयेत तथैकादशमासि वा ॥ २ ॥

आठवां महीना आने पर अग्नि योग होता है और नवम महीने में उस- [गर्भ] में चेष्टा होती है ॥ १ ॥ गर्भ में वास करने के कारण उसको वैराग्य (उच्चाटन) होता है, तब दसवें अथवा ग्यारहवें महीने में वह उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

तद्धितार्थे विषयभूते समासः । **संख्यापूर्वो द्विगुः** (पा० २ । १ । ५२) इति द्विगुसंज्ञा । **द्विगोर्यप्** (पा० ५ । १ । ८२) इति भरणार्थे यप् । हे दशसु मासेषु मात्रा पोषित शिशो । **साकम्** । सह । **सहयुक्तेऽप्रधाने** (पा० २ । ३ । १९) इति सहार्थेन साकं शब्देन योगे जरायुणा इति अप्राधान्ये तृतीया । **पत** । अधो गच्छ । **अव** । इत्यादि गतं म० ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १२ ॥

१–४ ॥ भृग्वंगिरा ऋषिः । वृषा देवता । १, २ ईश्वरगुणाः, ३, ४, रोगनिवृत्तिः । १–३ त्रिष्टुप् ११×४, ४ अनुष्टुप् ॥

१, २ ईश्वरगुणः, ३, ४ रोगनिवृत्तिः—१, २ ईश्वर के गुण और ३, ४ रोग निवृत्ति का उपदेश ॥

जरायुजः प्रथम उस्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या । स नो मृडाति तन्व ऋजुगो रुजन् य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे ॥१॥

जरायुऽजः । प्रथमः । उस्रियः । वृषा । वातऽभ्रजाः । स्तनयन् । एति । वृष्ट्या । सः । नः । मृडाति । तन्वे । ऋजुऽगः । रुजन् । यः । एकम् । ओजः । त्रेधा । विऽचक्रमे ॥ १ ॥

भाषार्थः—(जरायुजः) झिल्ली से [जरायुरूप प्रकृति से] उत्पन्न करने वाला, (प्रथमः) पहले से वर्तमान, (उस्रियः) प्रकाशवान् [हिरण्यगर्भनाम], (वातभ्रजाः) पवन के साथ पाकशक्ति वा तेज देने वाला, (वृषा) मेघरूप परमेश्वर (स्तनयन्) गरजता हुआ (वृष्ट्या) बरसा के साथ (एति) चलता रहता है । (सः) वह (ऋजुगः) सरलगामी (रुजन्) [दोषों को]

१—**जरायुजः । पञ्चम्यामजातौ** (पा० ३ । २ । ९८) इति जरायु + जन जनने—डः । जरायोः प्रकृतिरूपाद् गर्भाशयाज्जनयति उत्पादयति सः । जरायुरूपायाः प्रकृतेः सृष्टिजनयिता । **प्रथमः । प्रथेरमच्** (उ० ५ । ६८) इति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिटाता हुआ, (नः) हमारे (तन्वे) शरीर के लिये (मृडाति) सुख देवे, (यः) जिस (एकम्) अकेले (ओजः) सामर्थ्य ने (त्रेधा) तीन प्रकार से (विचक्रमे) सब ओर को पद बढ़ाया था ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे माता के गर्भ से जरायु में लिपटा हुआ बालक उत्पन्न होता है वैसे ही 'उस्रियः' प्रकाशवान् हिरण्यगर्भ और मेघरूप परमेश्वर 'वातभ्रजाः' सृष्टि में प्राण डालकर पाचन शक्ति और तेज देता हुआ सब संसार को प्रलय के पीछे प्रकृति, स्वभाव वा सामर्थ्य से उत्पन्न करता है, वही त्रिकालज्ञ और त्रिलोकीनाथ आदि कारण जगदीश्वर हमें सदा आनन्द देवे ॥ १ ॥

प्रथ प्रख्याने—अमच्। आदिमः, जगतः पूर्वं वर्तमानः। **उस्रियः। स्फायितञ्चि०** (उ० २। १३) इति वस निवासे—रक्। वसत्येषु सूर्यादिपरतेजः, वसन्त्येषु रसाः इति उस्राः किरणाः, ततो पृषोदरादित्वात् घः। रश्मिवान्, हिरण्यगर्भः। परमेश्वरः। **वृषा। कनिन् युवृषितक्षि०** (उ० १। १५६) इति वृषु सेचने—कनिन्। नित्वाद् आद्युदात्तः। वर्षकः। ऐश्वर्यवान्। इन्द्रः, सूर्यः, मेघः। तद्वद् वर्तमानः। **वातभ्रजाः।** वात + भ्रस्ज पाके वा भ्राजृ दीप्तौ—असुन्। वातेन सह पाकः, दीप्तिस्तेजो वा यस्य स वातभ्रजाः। **स्तनयन्।** स्तन देवशब्दे, चुरादिः,—शतृः। गर्जयन्। **एति।** गच्छति। **वृष्ट्या।** वृषु सेचने—क्तिन्। वर्षणेन। **मृडाति।** मृड सुखने—लेट्, आडागमः। सुखयेत्। **तन्वे।** अ० १। १। १। स्वरितश्च। शरीराय। **ऋजुगः।** ऋजु + गम्लृ—डः। सरलगामी। **रुजन्।** रुजो भङ्गे, तुदादिः—शतृः। भञ्जन्, दोषान् निवारयन्। **एकम्। इण्भीकापा०** (उ० ३। ४३) इति इण् गतौ—कन्। एति सर्वं व्याप्नोतीति एकः। मुख्यम्, केवलम्। **ओजः। उब्जेर्बले बलोपश्च** (उ० ४। १९२) इति उब्ज आर्जवे—असुन्। बलम्, तेजः। **त्रेधा। संख्याया विधार्थे धा** (पा० ५। ३। ४२) त्रिप्रकारेण, भूतवर्तमानभविष्यति वर्तमानत्वेन, त्रिलोक्यां व्यापनेन। **वि-चक्रमे।** क्रमु पादविक्षेपे—लिट्। **वेः पादविहरणे** (पा० १। ३। ४१) इति आत्मनेपदम्। विविधम् आक्रान्तवान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद में इस प्रकार वर्णन है—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ य० १३ । ४ ॥

'हिरण्यगर्भ' तेजों का आधार परमेश्वर पहिले ही पहिले नियम पूर्वक वर्तमान था, वह संसार का प्रसिद्ध एक स्वामी था। उसने इस पृथिवी और प्रकाश को धारण किया था, हम सब उस प्रकाशमय प्रजापति परमेश्वर की भक्ति से सेवा किया करें ॥

और भी देखो—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पांसुरे ॥ ऋ० १ । २२ । १७ ॥

(विष्णु) व्यापक परमेश्वर ने इस [जगत्] में अनेक अनेक प्रकार से पग को बढ़ाया, उसने अपने विचारने योग्य पद को तीन प्रकार से परमाणुओं से युक्त [संसार] में जमाया ॥

सायणभाष्य में (वातश्रजाः) के स्थान में (वातव्रजाः) शब्द है, और अर्थ "वायु समान शीघ्रगामी" है ॥

अङ्गे अङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम ।
अङ्कान्त्समङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत् पर्वास्या ग्रभीता॥२॥

अङ्गेऽअङ्गे । शोचिषा । शिश्रियाणम् । नमस्यन्तः । त्वा । हविषा । विधेम । अङ्कान् । सम्ऽअङ्कान् । हविषा । विधेम । यः । अग्रभीत् । पर्व । अस्य । ग्रभीता ॥ २ ॥

भाषार्थः—(शोचिषा) अपने प्रकाश से (अङ्गे-अङ्गे) अङ्ग अङ्ग में

२—अङ्गे-अङ्गे । अङ्ग पदे लक्षणे च—अच् । नित्यवीप्सयोः (पा० ८।१।४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शिश्रियाणम्) ठहरे हुये (त्वा) तुझको (नमस्यन्तः) नमस्कार करते हुये हम (हविषा) भक्ति से (विधेम) सेवा करते रहें। [उसके] (अङ्कान्) पृथक् पृथक् चिह्नों को और (समङ्कान्) मिले हुये चिह्नों को (हविषा) भक्ति से (विधेम) हम आराधें, (यः) जिस (ग्रभीता) ग्रहण करने हारे परमेश्वर ने (अस्य) इस [सेवक वा जगत्] के (पर्व) अवयव अवयव को (अग्रभीत्) ग्रहण किया है ॥ २ ॥

भावार्थः—वह (वृषा–म० १) परमात्मा हमारे और सब व्यष्टि और समष्टि रूप जगत् के रोम रोम में परिपूर्ण है उस प्रकाश स्वरूप के गुणों को यथावत् जानकर हम लोग उस पर पूरी श्रद्धा से आत्म समर्पण करें। वह हमारे शरीर और आत्मा को बल देकर सहाय और आनन्द देता है ॥ २ ॥

इति द्विर्वचनम्। **अङ्ग इत्यादौ च** (पा० ६ । १ । ११९) इति प्रकृतिभावः। सर्वेष्वङ्गेषु अवयवेषु। **शोचिषा। अर्चिशुचिहुसृपि०** (उ० २ । १०८) इति शुच दीप्तौ[1]=शुद्धौ–इसिः। दीप्त्या, प्रकाशेन। **शिश्रियाणम्। लिटः कानज्वा** (पा० ३ । २ । १०६ इति श्रिञ् सेवायाम्–कानच्। **अचि श्नुधातु०** (पा० ६ । ४ । ७७) इतीयङादेशः। **चितः** (पा० ६ । १ । १६३) इति अन्तोदात्तत्वम्। आश्रितम्, परिपूर्णम्। **नमस्यन्तः। नमोवरिवश्चित्रङः क्यच्** (पा० ३ । १ । १९) इति नमस्—क्यच् पूजायाम्। लटः शतृः। पूजयन्तः। **त्वा**। त्वां वृषाणम्। **हविषा**। अ० १ । ४ । ३। दानेन, आत्मसमर्पणेन भक्त्या। **विधेम**। विध विधाने, तुदादिः, विधिलिङ्। परिचरणकर्मा–निघ० ५ । ५। परिचरेम, सेवेमहि। **अङ्कान्। हलश्च** (पा० ३ । ३ । १२१) इति अञ्चु गतिपूजनयोः—कर्तरि घञ्। **चजोः कु घिण्ण्यतोः** (पा० ७ । ३ । ५२) इति कुत्वम्। अञ्चनशीलान् गमनशीलान्, व्यष्टिरूपेण पृथक् पृथग् व्याप्तान् गुणान्। **सम् अङ्कान्।** सम्भूय गमनशीलान्। समष्टिरूपेण संगतान् गुणान्। **अग्रभीत्**। ग्रह उपादाने—लुङ्, हस्य भकारः। अग्रहीत्। **पर्व**। **स्नामदिपद्यर्त्तिपृशकिभ्यो वनिप्** (उ० ४ । ११३) इति पॄ पालनपूरणयोः—वनिप्। प्रत्येकावयवम्। **ग्रभीता**। ग्रह उपादाने–तृच्। हस्य भः। ग्रहीता, धारकः ॥

---

१. शुचिः शोचतेर्ज्वलतिकर्मणः (निरु० ६ । १) ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य । यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च ॥ ३ ॥

मुञ्च । शीर्षक्त्याः । उत । कासः । एनम् । परुःऽपरुः । आऽविवेश । यः । अस्य । यः । अभ्रऽजाः । वातऽजाः । यः । च । शुष्मः । वनस्पतीन् । सचताम् । पर्वतान् । च ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(एनम्) इस पुरुष को (शीर्षक्त्याः) शिर की पीडा से (उत) और [उस खांसी से] (मुञ्च) छुड़ा (यः कासः) जिस खांसी ने (अस्य) इस पुरुष के (परुःपरुः) जोड़ जोड़ में (आविवेश) घर कर लिया है। (यः) जो खांसी (अभ्रजाः) मेघ से उत्पन्न, (वातजाः) वायु से उत्पन्न (च) और (यः) जो (शुष्मः) सूखी [होवे और जो] (वनस्पतीन्) वृक्षों से (च) और (पर्वतान्) पहाड़ों से (सचताम्) संबन्ध वाली होवे ॥ ३ ॥

भावार्थः—खाँसी सब रोगों की माता है जैसा कि प्रसिद्ध है "लड़ाई का घर हांसी और रोग का घर खांसी"। जैसे सद्वैद्य मन्त्र में कहे अनुसार मस्तक

---

३ **मुञ्च**। मुच्ल मोक्षणे। मोचय। **शीर्षक्त्याः**। शीर्ष+अञ्चु गतिपूजनयोः-क्तिन्। शीर्षं शिरः अञ्चति गच्छति व्याप्नोतीति शीर्षक्तिः, तस्याः शिरःपीडायाः सकाशात्। **उत**। अपि च। **कासः**। **हलश्च** (पा० ३।३।१२१) इति कासृ शब्दकुत्सायाम्—घञ्। रोगविशेषः। कासी वा खांसी इति भाषा। क्षयथुः। **परुःपरुः**। **अर्त्तिपॄवपियजि०** (उ० २।११७) इति पॄ पालनपूरणयोः—उसिः। सर्वान् शरीरसन्धीन्। **आविवेश**। विश प्रवेशने—लिट्। छान्दसो दीर्घः। प्रविष्टवान्। **अभ्रजाः**। अप्+भृ-कः। अपो बिभर्त्तीति अभ्रं मेघः। **जनसनखनक्रमगमो विट्** (पा०३।२।६७) इति अभ्र+जनी प्रादुर्भावे-विट्। **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** (पा० ६।४।४१) इति आत्वम्। मेघस्य सम्बन्धाज्जातः। **वातजाः**। पूर्ववत्। वात+जनी-विट्। वायोर्जातः उत्पन्नः कासः। **शुष्मः**। **अविसिविसिशुषिभ्यः कित्** (उ० १।१४४) इति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पीड़ा और खांसी आदि बाहिरी और भीतरी रोगों का निदान जानकर रोगी को स्वस्थ करता है इसी प्रकार परमेश्वर वेद ज्ञान से मनुष्य को दोषों से छुड़ा कर और ब्रह्म ज्ञान देकर अत्यन्त सुखी करता है। इसी प्रकार राजप्रबन्ध और गृहप्रबन्ध आदि व्यवहार में विचारना चाहिये ॥ ३ ॥

शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे।
शं मे चतुर्भ्यो अङ्गेभ्यः शमस्तु तन्वे ३ मम ॥४॥

शम्। मे। परस्मै। गात्राय। शम्। अस्तु। अवराय। मे।
शम्। मे। चतुःऽभ्यः। अङ्गेभ्यः। शम्। अस्तु। तन्वे। मम ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(मे) मेरे (परस्मै) ऊपर के (गात्राय) शरीर के लिये (शम्) सुख और (मे) मेरे (अवराय) नीचे के [शरीर के] लिये (शम्) सुख (अस्तु) होवे। (मे) मेरे (चतुर्भ्यः) चारों (अङ्गेभ्यः) अंगों के लिये (शम्) सुख और (मम) मेरे (तन्वे) सब शरीर के लिये (शम्) सुख (अस्तु) होवे ॥ ४ ॥

शुष शोषणे–मन् स च कित्। शोषकः, पित्तविकारादिजनितः कासः। **वनस्पतीन्**। अ० १। ३५। ३। वनानां पतिः पाता वा वनस्पतिः। वनति सेवते अथवा वन्यते सेव्यते इति वनम्। वन संभक्तौ–अच्। **पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्** (पा० ६। १। १५७) इति सुडागमः। सर्ववृक्षान्। **सचताम्**। षच समवाये–लोट्। सचन्ताम् = संसेव्यन्ताम्–निरु० ९।३३। समवैतु, सम्बध्नातु। **पर्वतान्। भृमृदृशियजिपर्विपचि०** (उ० ३। ११०) इति पर्व पूरणे–अतच्। शैलान् ॥

४—परस्मै। अ० १। ८। ३। श्रेष्ठाय, उपरिवर्तमानाय। **गात्राय। गमेरा च** (उ० ४। १६९) इति गम्ल्–त्रन्, मस्य आकारः। गच्छति चेष्टतेऽनेन। अङ्गाय, शरीराय। **अवराय**। अ० १।८।३। निकृष्टाय, अवरस्माद् वर्तमानाय। **चतुः–भ्यः**। चतुःसंख्येभ्यः। द्वौ हस्तौ, द्वौ पादौ–इति चत्वारि, तेभ्यः। **अङ्गेभ्यः**। अङ्ग पदे लक्षणे च–अच्। अङ्गयति चेष्टतेऽनेन। अवयवेभ्यः, गात्रेभ्यः। **तन्वे**। म० १। सर्वस्मै शरीराय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—चारों अंग दो हाथ और दो पद हैं। मनुष्य को योग्य है कि परमेश्वर की प्रार्थना पूर्वक अपने सब अमूल्य शरीर को प्रयत्न से सर्वथा स्वस्थ रक्खे और मानसिक बल बढ़ा कर संसार में उपकारी हो और सदा सुख भोगे ॥ ४ ॥

सूक्तम् १३ ॥

१–४ ॥ भृग्वंगिरा ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। १, २ अनुष्टुप्, ३, ४ जगती। १२×४ ॥

आत्मरक्षोपदेशः—आत्मरक्षा के लिये उपदेश ॥

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥ १ ॥

नमः। ते। अस्तु। विऽद्युते। नमः। ते। स्तनयित्नवे।
नमः। ते। अस्तु। अश्मने। येन। दुःऽदाशे। अस्यसि ॥ १ ॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (ते) तुझ (विद्युते) कौंधा लेती हुयी, बिजुली समान को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (ते) तुझ (स्तनयित्नवे) गड़-गड़ाते हुये, बादल समान को (नमः) नमस्कार होवे। (ते) तुझ (अश्मने) पाषाण समान को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (येन) जिस [पत्थर] से (दूडाशे) दुःखदायी पुरुष को (अस्यसि) तू ढा देता है ॥ १ ॥

१—**विद्युते। भ्राजभासधुर्विद्युतो०** (पा० ३ । २ । १७७) इति वि+द्युत दीप्तौ—क्विप्। विशेषेण दीप्यमानाय तडिते, सौदामिन्यै, तडिप्रपाय। **स्तनयित्नवे। स्तनिहृषिषुषिगदिमदिभ्यो णेरित्नुच्** (उ० ३। २९) इति स्तन देवशब्दे–इत्नुच्। चुरादित्वात् णिच्। अदन्तत्वाद् उपधावृद्ध्यभावः। **अयामन्ताल्वाय्येत्नि्ष्णुषु** (पा० ६। ४। ५५) इति णेः अयादेशः। गर्जनशीलाय मेघाय, तद्रूपाय। **अश्मने। अशिशकिभ्यां छन्दसि** (उ० ४। १४७) इति अशूङ् व्याप्तौ संघाते च–मनिन्। व्यापनशीलाय। पाषाणाय, तद्रूपाय। **दुःदाशे।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—न्यायकारी परमात्मा दुःखदायी अधर्मी पापियों को आधिदैविक आदि दंड देकर असह्य विपत्तियों में डालता है, इसलिये सब मनुष्य उसके कोप से डर कर उसकी आज्ञा का पालन करें और सदा आनन्द भोगें ॥१॥

नमस्ते प्रवतो नपाद् यतस्तपः समूहसि ।
मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥ २ ॥

नमः । ते । प्रऽवतः । नपात् । यतः । तपः । सम्ऽऊहसि ।
मृडय । नः । तनूभ्यः । मयः । तोकेभ्यः । कृधि ॥ २ ॥

भाषार्थः—हे (प्रवतः) अपने भक्त के (नपात्) न गिराने हारे ! (ते) तुझको (नमः) नमस्कार है, (यतः) क्योंकि तू [दुष्टों पर] (तपः) संताप को (समूहसि) संयुक्त करता है। (नः) हमें (तनूभ्यः) हमारे शरीरों के लिये (मृडय) सुख दे और (तोकेभ्यः) हमारे सन्तानों के लिये (मयः) सुख (कृधि) प्रदान कर ॥ २ ॥

दुर्+दाशृ दाने–घञ् खल् वा। **पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्** (पा० ६। ३। १०९) अत्र **दुरो दाशनाशदभध्येषूत्वमुत्तरपदादेः ष्टुत्वं च** इति वार्त्तिकेन ऊत्वं डत्वं च। दुर् दुःखं दाशति ददातीति दूडाशः। **सुपां सुपो भवन्ति** (वा० पा० ७। १। ३९) इति द्वितीयायां सप्तमी। दुःखदायिनम् अधार्मिकं पुरुषम्। **अस्यसि** । असु क्षेपणे–श्यन्। क्षिपसि नाशयसि ॥

२—प्र-वतः । प्रपूर्वकात् वन संभक्तौ=सेवने, याचने च–क्विप्। **गमः क्वौ** (पा० ६। ४। ४०) अत्र **गमादीनामिति वक्तव्यम्** इति वार्तिकेन नकारलोपः। **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** (पा० ६। १। ७१) इति तुक् आगमः। भक्तस्य सेवकस्य याचकस्य अथवा भक्तान् द्वितीयार्थे। **नपात्** । नञ्पूर्वकात् पत गतौ, णिच्—क्विप्। **नभ्राण्नपात्०** (पा० ६। ३। ७५) इति नञः प्रकृतिभावः। न पातयतीति नपात् हे न पातयितः, न पातनशील ! धारयितः। नपात्। य० १२। १०८। न विद्यते पातो धर्मात् पतनं यस्य सः—इति श्रीमद्दयानन्दः। **यतः** । यस्मात् कारणात्। **तपः** । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४। १८९) इति तप सन्तापे—असुन्। सन्तापम्। **सम्+ऊहसि** । ऊह वितर्के।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर भक्तों को आनन्द और पापियों को कष्ट देता है। सब मनुष्य नित्य धर्म में प्रवृत्त रहें और संसार भर में सुख की वृद्धि करें ॥ २ ॥

प्रवतो नपान् नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः। विद्म ते धाम परमं गुहा यत् समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥ ३ ॥

प्रऽवतः । नपात् । नमः । एव । अस्तु । तुभ्यम् । नमः । ते । हेतये । तपुषे । च । कृण्मः । विद्म । ते । धाम । परमम् । गुहा । यत् । समुद्रे । अन्तः । निऽहिता । असि । नाभिः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—हे (प्रवतः) अपने भक्त के (नपात्) न गिराने वाले ! (तुभ्यम्) तुझको (एव) अवश्य (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (ते) तुझ (हेतये) वज्र समान को (च) और (तपुषे) तपाने वाले तोप आदि अस्त्र समान को (नमः) नमस्कार (कृण्मः) हम करते हैं। (यत्) क्योंकि (ते) तेरे (परमम्) बड़े ऊंचे (धाम) अधाम [निवास] को (गुहा=गुहायाम्) गुफा में [अपने हृदय और प्रत्येक गम्य स्थान में] (विद्म) हम जानते हैं। (समुद्रे अन्तः) आकाश के बीच में

उपसर्गवशात् संधीकरणे। संहतं करोषि, संयोजयसि। **मृडय**। मृड सुखने। तोषय, अनुगृहाण। **तनूभ्यः**। अ० १। १। १ शरीरेभ्यः। तेषां हिताय। **मयः**। मीञ् हिंसायाम्-असुन्। मिनोति दुःखम्। सुखम्। निघ० ३। ६। **तोकेभ्यः**। **कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः** (उ०३।४०) इति तु गतिवृद्धिहिंसासु-कप्रत्ययः। तौति पूरयति गृहमिति तोकम्। अपत्यनाम-निघ० २। २। अपत्येभ्यः। **कृधि**। कुरु। देहि। **तोकेभ्यस्कृधि। कः करत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः** (पा० ८। ३। ५०) इति विसर्गस्य सत्वम् ॥

३—**प्र-वतः नपात्**। म० २। हे स्वभक्तस्य न पातयितः। **हेतये**। **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च** (पा० ३। ३। ९७) इति हन हिंसागत्योः-क्तिन्। एत्वम् उदात्तत्वं च निपात्येते। यद्वा हि गतौ वृद्धौ च—क्तिन् निपतिा तश्च। हन्यन्तेऽनया शत्रवः। गम्यतेऽनया जयः, वर्द्धते वैश्वर्यम्। हेतिः, वज्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नाभिः) बन्ध में रखने वाली नाभि के समान तू (निहिता) ठहरा हुआ (असि) है ॥ ३ ॥

भावार्थः—उस भक्त रक्षक, दुष्टनाशक परमात्मा का (परम धाम) महत्व सबके हृदयों में और सब अगम्य स्थानों में वर्तमान है । जैसे (नाभि) सब नाड़ियों को बन्धन में रखकर शरीर के भार को समान तोल कर रखती है, वैसे ही परमेश्वर (समुद्र) अन्तरिक्ष वा आकाश में स्थित मनुष्य आदि प्राणियों और सब पृथिवी, सूर्य्य आदि लोकों का धारण करने वाला केन्द्र है । विद्वान् लोग उसको माथा टेकते और उसकी महिमा को जानकर संसार में उन्नति करते हैं ॥ ३ ॥

यां त्वा देवा अस्रंजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम् । सा नो मृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥ ४ ॥

नाम-निघ० २ । २० । वज्राय, वज्ररूपाय । **तपुषे** । **अर्त्तिपॄवपियजितनिधानितपिभ्यो नित्** (उ० २ । ११७) इति तप ऐश्वर्यसंतापदाहेषु-उसिः । दाहकाय अस्त्राय, तद्रूपाय । **कृण्मः** । कृवि हिंसाकरणयोश्च-लट् । वयं कुर्मः । **विद्म । विदो लटो वा** (पा० ३ । ४ । ८३) इति विद ज्ञाने, मसो मादेशः । विद्मः वयं जानीमः । **धाम** । **सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उ० ४ । १४५) इति धा-मनिन् । स्थानम्, गृहम् । प्रभावम् । **परमम्** । **आतोऽनुपसर्गे कः** (पा० ३ । २ । ३) इति पर + मा माने—कः । उत्कृष्टम् । **गुहा** । अ० १ । ८ । ४ । सप्तम्या लुक् । गुहायाम्, गर्ते हृदये । गुहावद् अगम्ये प्रदेशे । **यत्** । यस्मात् कारणात् । **समुद्रे** । अ० १ । ३ । ८ । **अन्येष्वपि दृश्यते** (पा० ३ । २ । १०१) इति सम् + उत् + द्रु गतौ-डप्रत्ययः, यद्वा, **स्फायितञ्चिवञ्चि०** (उ० २ । १३) सम् + मुद हर्षे—अधिकरणे रक् । यद्वा, सम् + उन्दी क्लेदने-रक् । सागरे, उदधौ, अन्तरिक्षे--निघ० १ । ३ । **अन्तः** । मध्ये । **नि-हिता** । **दधातेर्हिः** (पा० ७ । ४ । ४२) इति नि पूर्वात् धात्रः—क्तः, हिरादेशः । स्थापिता । **नाभिः** । **नहो भश्च** (उ० ४ । १२६) इति णह बन्धने--इञ् प्रत्ययः । **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** (पा० ६ । १ । १९७) इति आद्युदात्तः । नह्यति बध्नाति इति नाडी । स्त्रीलिंगता । तुन्दकूपी । नाभिचक्रवत् मध्यस्थः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याम् । त्वा । देवाः । असृजन्त । विश्वे । इषुम् । कृण्वानाः । असनाय । धृष्णुम् । सा । नः । मृड । विदथे । गृणाना । तस्यै । ते । नमः । अस्तु । देवि ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(विश्वे) सब (देवाः) विद्वानों ने (याम् त्वा) जिस तुझ [परमेश्वर] को (असनाय) नाश के लिये (धृष्णुम्) बहुत दृढ (इषुम्) शक्ति अर्थात् बरछी (कृण्वानाः) बनाकर (असृजन्त) माना है। (सा) सो तू (विदथे) यज्ञ में (गृणाना) उपदेश करती हुयी (नः) हमको (मृड) सुख दे, (देवि) हे देवि [दिव्य बरछी] (तस्यै ते) उस तेरे लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोग परमेश्वर के क्रोध को सब संसार के दोषों के नाश के लिये बरछी रूप समझ कर सदा सुधार और उपकार करते हैं तब संसार में प्रतिष्ठा और मान पाकर सुख भोगते और परमात्मा के क्रोध का धन्यवाद देते हैं ॥ ४ ॥

यजुर्वेद में लिखा है—

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंऽसीः पुरुषं जगत् ॥ य० १६ । ३ ॥

४—त्वा । प्रवतो नपातम्, म० ३ । **देवाः** । विद्वांसः । **असृजन्त** । सृज विसर्गे—लङ् । सृष्टवन्तः, त्यक्तवन्तः । मनसा कल्पितवन्तः । **इषुम्** । **ईषेः क्कित्च** (उ० १ । १३) इति ईष गतिहिंसादर्शनेषु–उः, ह्रस्वश्च । अथवा । इष गतौ–उः । वाणम् । शक्तिनामायुधम् । **कृण्वानाः** । कृवि हिंसाकरणयोश्च—शानच् । कुर्वाणाः । **असनाय** । असु क्षेपणे–भावे ल्युट् । क्षेपणाय । नाशनाय । **धृष्णुम्** । **त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः** (पा० ३ । २ । १४०) इति ञिधृषा प्रागल्भ्ये–क्नुः । प्रगल्भाम्, निर्भयाम्, सुदृढाम् । **मृड** । मृडय, सुखय । **विदथे** । **रुविदिभ्यां ङित्** (उ० ३ । ११५) इति विद ज्ञाने विद्लृ लाभे विद विचारणे, विद सत्तायाम्–अथ–प्रत्ययः । स च ङित् । विदथः, यज्ञनाम–निघ० ३ । १७ । ज्ञायते हि यज्ञः, लभते हि दक्षिणादित्र, विचार्यते हि विद्वद्भिः, भावयत्यनेन फलम्—इति तत्र टीकायां देवराजयज्वा । यज्ञे । वेदितव्ये कर्मणि । **गृणाना** । गॄ शब्दे–शानच् । शब्दायमाना, उपदिशन्ती । **देवि** । हे द्योतमाने, हे दिव्यगुणयुक्ते ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे वेद द्वारा शान्ति फैलाने वाले ! जिस बरछी वा बाण को चलाने के लिये अपने हाथों में तू धारण करता है। हे वेद द्वारा रक्षा करने वाले ! उसको मंगलकारी कर, पुरुषार्थी लोगों को तू मत मार ॥

सूक्तम् १४ ॥

१–४ ॥ भृग्वंगिरा ऋषिः । वधूवरौ देवते । अनुष्टुप् ८×४ ॥

विवाहसंस्कारोपदेशः—विवाह संस्कार का उपदेश ॥

भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम् ।
महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम् ॥ १ ॥

भगम् । अस्याः । वर्चः । आ । अदिषि । अधि । वृक्षात्ऽइव ।
स्रजम् । महाबुध्नः ऽइव । पर्वतः । ज्योक् । पितृषु । आस्ताम् ॥१॥

भाषार्थः—(अस्याः) इस [वधू] से (भगम्) [अपने] ऐश्वर्य को और (वर्चः) तेज को (आ अदिषि) मैंने माना है, (इव) जैसे (वृक्षात् अधि) वृक्ष से (स्रजम्) फूलों की माला को (महाबुध्नः) विशाल जड़वाले (पर्वतः इव) पर्वत के समान [यह वधू] (पितृषु) [मेरे] माता पिता आदि बान्धवों में (ज्योक्) बहुत काल तक (आस्ताम्) रहे ॥ १ ॥

भावार्थः—यह नर का वचन है। विद्वान् पुरुष खोज कर अपने समान गुणवती स्त्री से विवाह करके संसार में ऐश्वर्य और शोभा पाता है जैसे वृक्ष के सुन्दर फूलों से शोभा होती है। वधू अपने सास ससुर आदि माननीयों की

१—**भगम् । पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** (पा०३।३।११८) इति भज सेवायाम्—घप्रत्ययः । **चजोः कु घिण्ण्यतोः** (पा० ७ । ३ । ५२) इति घत्वम् । भगः, धननाम निघ० २ । १० । श्रियम्, ऐश्वर्यम्, कीर्त्तिम् । **अस्याः** । नवोढायाः स्त्रियाः सकाशात् । **वर्चः** । अ० १।९।४ । रूपम् । तेजः । **आ+अदिषि** । आङ् पूर्वकात् डुदाञ् आदाने—लुङ् । **आङो दोऽनास्यविहरणे** (पा० १ । ३ । २०) इति आत्मनेपदम् । अहं गृहीतवान् प्राप्तवानस्मि । **अधि** । पञ्चम्यर्थानुवादी । उपरि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा और शिक्षा से दृढ़चित्त होकर घर के कामों का सुप्रबन्ध करके गृहलक्ष्मी की पक्की नेव जमावे और पति पुत्र आदि कुटुम्बियों में बड़ी आयु भोग कर आनन्द करे ॥ १ ॥

मन्त्राः २—४ । वधूपक्षोक्तिः ॥

एषा ते राजन् कन्या वधूर्नि धूयतां यम ।
सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः ॥ २ ॥

एषा । ते । राजन् । कन्या । वधूः । नि । धूयताम् । यम । सा । मातुः । बध्यताम् । गृहे । अथो इति । भ्रातुः । अथो इति । पितुः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यम) हे नियम में चलाने वाले, वर (राजन्) राजा ! (एषा) यह (कन्या) कामना योग्य कन्या (ते) तेरी (वधूः) वधू (नि) नियम से (धूयताम्) व्यवहार करे । (सा) वह (मातुः) [तेरी] माता के, (अथो) और भी (पितुः) पिता के (अथो) और (भ्रातुः) भ्राता के साथ (गृहे) घर में (बध्यताम्) नियम से बंधी रहे ॥ २ ॥

वृक्षात् इव । अ० १।२।३ । **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** (पा० ३ । १ । १३५) इति वृक्ष वरणे—कः । वृक्ष्यते व्रियते सेव्यते छायाफलार्थम् । विटपात् यथा । **स्रजम् । ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिक्०** (पा० ३ । २ । ५९) इति सृज विसर्गे-क्विन् । सृजति ददाति शोभामिति स्रक् । पुष्पमालाम् । **महाबुध्नः । बन्धे-र्बधिबुधी च** (उ० ३ । ५) इति बन्ध बन्धने—नक्, बुधादेशश्च । विशालमूलः । दृढमूलः । **पर्वतः** । अ० १।१२।३ । शैलः । भूधरः । **ज्योक्** । अ० १।६।३ । चिर-कालम् । **पितृषु** । अ० १ । २ । १ । रक्षकेषु । जनकवत् मान्येषु, मातापित्रादिषु बन्धुषु । **आस्ताम्** । आस उपवेशने—लोट् । तिष्ठतु । निवसतु ॥

२—**राजन्** । अ० १ । १० । १ । हे ऐश्वर्यवन् जामातः । **कन्या । अघन्या-दयश्च** (उ० ४ । ११२) इति कनी दीप्तिकान्तिगतिषु,—यक्, टाप् च । कन्यते काम्यते दीप्यते गच्छति वा सा । कमनीया । पुत्री । **वधूः** । **वहेर्धश्च** (उ० १ । ८३) वह प्रापणे—ऊप्रत्ययः, धश्च । वहति प्रापयति सुखानीति । यद्वा । बन्ध—ऊ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मन्त्र २—४ वधू पक्ष के वचन हैं। वधू के माता पिता आदि वर से कहें कि यह सुशिक्षिता गुणवती कन्या आपको सौंपी जाती है यह आपके माता, पिता और भ्राता आदि सब कुटुम्बियों में रहकर अपने सुप्रबन्ध से सबको प्रसन्न रक्खे और सुख भोगे ॥ २ ॥

मनु महाराज ने कहा है—

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् ।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥मनु० २।२४०॥

स्तुति योग्य स्त्रियाँ, रत्न, विद्या, धर्म, शुद्धता, और मीठी बोली, और अनेक प्रकार की हस्त क्रियायें सबसे यत्नपूर्वक लेनी चाहियें ॥

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ।
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किंचित् कार्यं गृहेष्वपि[1] ॥मनु०५।१४७॥

चाहे स्त्री बालक वा युवती वा बूढ़ी हो, वह स्वतन्त्रता से कोई काम घरों में भी न करे ॥

नलोपः । बध्नाति प्रेम्णा या नवोढा स्त्री, भार्या । **नि** । नितराम्, नियमेन । **धूयताम्** । धूञ् कम्पने—कर्मणि लोट् । चेष्टताम्, गृहकार्येषु प्रवर्तताम् । **यम** । यम नियमने—अच् । यमयति नियमयति गृहकार्याणीति । यमो यच्छतीति सतः, मध्यस्थानदेवतासु—निरु० १०।१९। द्युस्थानः—निरु० १२। १०, ११। वायुः, सूर्यः । हे नियामक वर ! । **मातुः** । अ०१।२।१। तव जनन्याः । **बध्यताम्** । बन्ध बन्धने कर्मणि लोट् । प्रेमबद्धा भवतु । **गृहे** । **गेहे कः** (पा० ३।१। १४४) इति ग्रह उपादाने—कः । वासस्थाने, भवने, मन्दिरे । **अथो** । अथ + उ । अपि च । **भ्रातुः** । **नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृ०** (उ० २। ९५) इति भ्राजृ दीप्तौ—तृन् । सहोदरस्य । **पितुः** । म० १ । जनकस्य ॥

---

१. दम्पति परस्पर सम्मति करके गृह में कार्य करें, तभी प्रीति सम्भव है स्त्रियाँ स्वभावतः भावुक होती हैं, अतः भावुकता में कोई अनिष्ट कार्य न हो इसलिये ऐसा कहा है। इसमें स्त्रियों की हीनता या अपमान द्योतित नहीं होता क्योंकि स्वयं मनु महाराज ३। ५५, ३। ५६ आदि श्लोकों में स्त्रियों के अत्यन्त सम्मान एवं प्रतिष्ठा को वर्णित करते हैं ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परि दद्मसि ।
ज्योक् पितृष्वासाता आशीर्ष्णः समोप्यात् ॥ ३ ॥

एषा । ते । कुलऽपाः । राजन् । ताम् । ऊँ इति । ते । परि । दद्मसि । ज्योक् । पितृषु । आसातै । आ । शीर्ष्णः । सम्ऽओप्यात् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(राजन्) हे वर राजा (एषा) यह कन्या (ते) तेरे (कुलपाः) कुल की रक्षा करने हारी है, (ताम्) उसको (उ) ही (ते) तेरे लिये (परि) आदर से (दद्मसि) हम दान करते हैं । यह (ज्योक्) बहुत काल तक (पितृषु) तेरे माता पिता आदिकों में (आसातै) निवास करे, और (आ शीर्ष्णः) अपने मस्तक तक [जीवन पर्यन्त वा बुद्धि की पहुंच तक] (समोप्यात्) ठीक ठीक बढ़ती का बीज बोवे ॥ ३ ॥

भावार्थः—फिर वधूपक्ष वाले माता पिता आदि इस मन्त्र से जामाता की विनती करते और स्त्री धर्म का उपदेश करते हुये कन्या दान करके गृहाश्रम में प्रविष्ट कराते हैं ॥ ३ ॥

३—कुलपाः । कुल+पा रक्षणे–कर्मण्युपपदे विच्प्रत्ययः । पातिव्रत्येन कुलस्य पालयित्री रक्षयित्री । **राजन्** । हे ऐश्वर्यवन् जामातः । **ऊँ इति** । अवश्यम् । **परि+दद्मसि** । **इदन्तो मसि** (पा० ७ । १ । ४६) इति मस इदन्तत्वम् । रक्षणार्थं दानं परिदानम् । रक्षणार्थं दद्मः, समर्पयामः । **ज्योक्** । म० १ । दीर्घकालम् । **पितृषु** । म० १ । मातापित्रादिबन्धुषु । **आसातै** । आस उपवेशने—लेटि आडागमः । टेः एत्वे **वैतोऽन्यत्र** (पा० ३ । ४ । ९६) इति ऐकारः । आस्ताम्, निवसतु । **आ-शीर्ष्णः** । अ० १ । ७ । ७ । **आङ् मर्यादावचने** (पा० १ । ४ । ८९) इति आङः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा । **पञ्चम्यपाङ्परिभिः** (पा० २ । ३ । १०) इति पञ्चमी । **शीर्षश्छन्दसि** (पा० ६ । १ । ६०) इति शिरः शब्दस्य शीर्षन् आदेशः । मस्तकस्थितिपर्यन्तं, जीवनपर्य्यन्तम् । **सम्-ओप्यात्** । सम्+आ+उप्यात् । डुवप बीजसन्ताने छेदने च–आशीर्लिङ् । यथामर्यादं बीजवपनं वर्धनं कुर्य्यात् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul-Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च ।
अन्तः कोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम् ॥ ४ ॥

असितस्य । ते । ब्रह्मणा । कश्यपस्य । गयस्य । च ।
अन्तःकोशम्ऽइव । जामयः । अपि । नह्यामि । ते । भगम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(असितस्य) जो तू बन्धन रहित, (कश्यपस्य) [सोम] रस पीने हारा, (च) और (गयस्य) कीर्तन के योग्य है उस (ते) तेरे (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान के कारण (ते) तेरे लिये (भगम्) ऐश्वर्य को (अपि) अवश्य (नह्यामि) मैं बांधता हूं। (इव) जैसे (जामयः) कुल स्त्रियां [वा बहिनें] (अन्तःकोशम्) मञ्जूषा वा पिटारे को [बांधती] हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र के अनुसार वधू पक्ष वाले पुरुष और स्त्रियां विनती करके श्रेष्ठ वर और कन्या को धन, भूषण, और वस्त्र आदि से सत्कार के साथ बिदा करें ॥ ४ ॥

सूक्तम् १५ ॥

१—४ ॥ अथर्वा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । १ पूर्वार्धोऽनुष्टुप्, द्वितीयार्धस्त्रिष्टुप्, २ पूर्वार्धो जगती द्वितीयोऽनुष्टुप्, ३, ४ अनुष्टुप् छन्दः ॥

४—असितस्य । अश्विवृसिभ्यः क्तः (उ०३।८९) इति षिञ् बन्धने–क्तः । नञ्समासः । अबद्धस्य मुक्तस्य । **ब्रह्मणा** । अ० १ । ८ । ४ । वेदज्ञानकारणेन । **कश्यपस्य** । कश गतिशासनयोः–बाहुलकात् करणे–यत् । कशति अनेनेति कश्यं सुख-करो रसः । कश्य+पा पाने—कः । कश्यं सोमरसं पिबतीति कश्यपः । सोमपानशीलस्य । **गयस्य** । गै शब्दे—घञ्, पृषोदरादित्वात् ह्रस्वः । गेयस्य कीर्तनीयस्य । **अन्तःकोशम्** । अन्तः+कुश श्लेषणे–अधिकरणे घञ् । वस्त्रादि-धारणाय आवरणम्, मञ्जूषाम् । **जामयः** । अ० १ । ४ । १ । कुलस्त्रियः, माता-भगिन्यादयः । **अपि** । अवधारणे, अवश्यम् । **नह्यामि** । णह बन्धने श्यन् । बध्नामि । **भगम्** । म० १ । ऐश्वर्यम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपदेश ॥

सं सं स्रवन्तु सिन्धवः सं वाताः सं पतत्रिणः । इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१॥

सम् । सम् । स्रवन्तु । सिन्धवः । सम् । वाताः । सम् । पतत्रिणः । इमम् । यज्ञम् । प्रऽदिवः । मे । जुषन्ताम् । सम्ऽस्राव्येण । हविषा । जुहोमि ॥ १ ॥

भाषार्थः—(सिन्धवः) सब समुद्र (सम् सम्) अत्यन्त अनुकूल (स्रवन्तु) बहें, (वाताः) विविध प्रकार के पवन और (पतत्रिणः) पक्षी (सम् सम्) बहुत अनुकूल [बहें] (प्रदिवः) बड़े तेजस्वी विद्वान् लोग (इमम्) इस (मे) मेरे (यज्ञम्) सत्कार को (जुषन्ताम्) स्वीकार करें, (संस्राव्येण) बहुत आर्द्रभाव [कोमलता] से भरी हुयी (हविषा) भक्ति के साथ [उनको] (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि नौका आदि से समुद्र यात्रा को, विमान आदि से वायुमण्डल में जाने आने के मार्ग को, और यथायोग्य व्यवहार से

१—**सम् सम्** । अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते—निरु० १० । ४२ । अत्यन्त-सम्यक्, अत्यनुकूलाः । **स्रवन्तु** । स्रु गतौ—लोट् । गच्छन्तु, प्रवहन्तु । **सिन्धवः** । अ० १ । ४ । ३ । स्यन्दनशीलाः । समुद्राः । स्त्रियाम्, नद्यः । **सम्=संस्रवन्तु** । उपसर्गवशात् स्रवन्तु इति सर्वत्र अनुषज्यते । अनुकूलाः प्रवर्तन्ताम् । **वाताः** । अ० १ । ११ । ६ । विविधपवनाः । **सम्** । सम्यग् अनुकूलाश्चरन्तु । **पतत्रिणः** । पतत्रं पक्षः । **अत इनिठनौ** (पा० ५ । २ । ११५) इति पतत्र-इनिः मत्वर्थे । पक्षिणः । **इमम्** । प्रवर्त्तमानम् । **यज्ञम्** । अ० १ । ९ । ४ । यागं विदुषां पूजनम् । **प्र-दिवः** । प्र+दिवु द्युतिस्तुतिगत्यादिषु-क्विप् । प्रकृष्टप्रकाशाः, देवाः, विद्वांसः । **जुषन्ताम्** । जुषी प्रीतिसेवनयोः—लोट् । सेवन्ताम्, स्वीकुर्वन्तु । **सम्-स्राव्येण** । स्रु गतौ—णः । **तस्येदम्** (पा० ४ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षी आदि सब जीवों को अनुकूल रक्खें, और विज्ञान पूर्वक सब पदार्थों से उपकार लेवें। और विद्वानों में पूर्ण प्रीति और श्रद्धा रक्खें जिससे वह भी उत्साह पूर्वक बर्ताव करें ॥ १ ॥

इहैव हवमा यात म इह संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः।
इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः ॥ २ ॥

इह। एव। हवम्। आ। यात। मे। इह। सम्ऽस्रावणाः। उत। इमम्। वर्धयत। गिरः। इह। आ। एतु। सर्वः। यः। पशुः। अस्मिन्। तिष्ठतु। या। रयिः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(संस्रावणाः) हे बहुत आर्द्रभाव वाले [बड़े कोमल स्वभाव वाले] (गिरः) स्तुति योग्य विद्वानों! (इह) यहाँ पर (इह) यहाँ पर (एव) ही (मे) मेरे (हवम्) आवाहन को (आ यात) तुम पहुंचो, (उत) और (इमम्) इस पुरुष को (वर्धयत) बढ़ाओ। (यः सर्वः पशुः) जो प्रत्येक जीव है [वह] (इह) यहां (एतु) आवे और (या रयिः) जो लक्ष्मी है [वह भी सब] (अस्मिन्) इस [पुरुष] में (तिष्ठतु) ठहरी रहे ॥ २ ॥

३। १२०) इति संस्राव–यत्। यद्वा। **अचो यत्** (पा० ३। १। ९७) इति सम्+स्रु–णिच्—यत्। संस्रावेण सम्यक् स्रवणेन आर्द्रभावेन युक्तेन। **हविषा**। अ० १। ४। ३। आत्मदानेन, भक्त्या। **जुहोमि**। हु दानादनयोः—लट्। अहम् आददे, स्वीकरोमि तान् प्रदिवः ॥

२—हवम्। **भावेऽनुपसर्गस्य** (पा० ३। ३। ७५) इति ह्वेञ् स्पर्धायाम्, शब्दे च—अप्। आह्वानम्, आवाहनम्। **आ+यात**। या प्रापणे–लोट्। आगच्छत। **इह**। **नित्यवीप्सयोः** (पा० ८। १। ४) इति वीप्सायां इह शब्दस्य द्विर्वचनम्। अस्मिन्नेव यज्ञे। **सम्-स्रावणाः**। स्रु स्रवणे गतौ—णिचि—ल्युट्। **युवोरनाकौ** (पा० ७। १। १) इति अन आदेशः। **अर्शआदिभ्योऽच्** (पा० ५। २। १२७) इति मत्वर्थे अच्। हे संस्रावेण सम्यक् स्रवणेन, अत्यार्द्रभावेन युक्ताः। **इमम्**। उपस्थितं माम्। **वर्धयत**। वृधु वृद्धौ णिचि लोट्, छन्दसि दीर्घः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—विद्वान् लोग विद्या के बल से संसार की उन्नति करते हैं, इससे मनुष्य विद्वानों का सत्संग पाकर सदा अपनी वृद्धि करें और उपकारी जीवों और धन का उपार्जन पूर्ण शक्ति से करते रहें ॥२॥

टिप्पणी—पशु शब्द जीव वाची है, यथा अथर्ववेद में आया है—

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ॥ अ०२।३४।१॥

जो (पशुपतिः) जीवों का स्वामी चौपाये और जो दोपाये (पशूनाम्) जीवों का (ईशे = ईष्टे) राजा है ॥ १ ॥

ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः ।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥ ३ ॥

ये । नदीनाम् । सम्ऽस्रवन्ति । उत्सासः । सदम् । अक्षिताः । तेभिः । मे । सर्वैः । सम्ऽस्रावैः । धनम् । सम् । स्रावयामसि ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(नदीनाम्) नाद करनेवाली नदियों के (ये) जो (अक्षिताः) अक्षय (उत्सासः) स्रोते (सदम्) सर्वदा (संस्रवन्ति) मिलकर बहते हैं। (तेभिः सर्वैः) उन सब (संस्रावैः) जल प्रवाहों के साथ (मे) अपने (धनम्) धन को (सम्) उत्तम रीति से (स्रावयामसि) हम व्यय करें ॥ ३ ॥

समर्धयत । **गिरः** । गृणातिः स्तुतिकर्मा–निरु० ३ । ५ । अर्चतिकर्मा–निघ० ३ । १४ । गृ शब्दे—कर्मणि क्विप् । गीर्यन्ते स्तूयन्त इति गिरः । हे अर्चनीयाः, स्तुत्याः पुरुषाः । **आ+एतु** । आगच्छतु । **पशुः** । **अर्जिदृशिकम्यमि०** (उ० १ । २७) इति दृशिर् प्रेक्षणे–कुः–पश्यादेशः । पशुः पश्यतेः—निरु० ३ । १६ । प्राणिमात्रम्, जीवः । अथवा । गवाश्वगजादिरूपः । **अस्मिन्** । मयि, मदीये आत्मनि । **तिष्ठतु** । निवसतु । **रयिः** । **अच इः** (उ० ४ । १३९) इति रीङ् स्रवणे–इप्रत्ययः, गुणः । यद्वा । रा दानादनयोः–इप्रत्ययः, युगागमो धातोर्ह्रस्वश्च । धनम् ॥

३—नदीनाम् । अ० १ । ८ । १ । नदनशीलानां सरिताम्, सरस्वतीनाम् । **सम्-स्रवन्ति** । सम्भूय प्रवहन्ति । **उत्सासः** । **उन्दिगुधिकुषिभ्यश्च** (उ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे पर्वतों पर जल के सोते मिलने से वेगवती और उपकारिणी नदियें बनती हैं जो ग्रीष्म ऋतु में भी नहीं सूखतीं, इसी प्रकार हम सब मिलकर विज्ञान और उत्साह पूर्वक तडित्, अग्नि, वायु, सूर्य, जल, पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार लेकर अक्षय धन बढ़ावें। और उसे उत्तम कर्मों में व्यय करें ॥ ३ ॥

ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च ।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥ ३ ॥

ये । सर्पिषः । सम्ऽस्रवन्ति । क्षीरस्य । च । उदकस्य । च ।
तेभिः । मे । सर्वैः । सम्ऽस्रावैः । धनम् । सम् । स्रावयामसि ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(सर्पिषः) घृत की (च) और (क्षीरस्य) दूध की (च) और (उदकस्य) जल की (ये) जो धारायें (संस्रवन्ति) मिलकर बह चलती हैं। (तैः सर्वैः) उन सब (संस्रावैः) धाराओं के साथ (मे) अपने (धनम्) धन को (सम्) उत्तम रीति से (स्रावयामसि) हम व्यय करें ॥ ४ ॥

---

३ । ६८) इति उन्दी क्लेदने—सप्रत्ययः । **आज्जसेरसुक्** (पा० ७ । १ । ५०) इति जसि असुक् आगमः । उत्सः कूपनाम—निघ० ३ । २३ । अलस्रवणस्थानानि, स्रोतांसि । **सदम्** । सर्वदा, ग्रीष्मादावपि । **अक्षिताः** । क्षि क्षये—क्तः । अक्षीणाः । **तेभिः** । **बहुलं छन्दसि** (पा० ७ । १ । १०) इति भिस ऐसाभावः । तैः । **मे** । मम = अस्माकम् । एकवचनं बहुवचने । **सम्-स्रावैः** । **श्याद्व्यधास्रुसंस्रवतीण०** (पा० ३ । १ । १४१) इति सम् + स्रु स्रवणे—णप्रत्ययः । **अचोञ्णिति** (पा० ७ । २ । ११५) इति वृद्धिः । प्रवाहैः । **धनम्** । धन धान्ये—अच् यद्वा, **कृपॄवृजिमन्दिनिधाञः क्युः** (उ० २ । ८१) इति डुधाञ् धारणपोषणयोः क्युः । वित्तम्, सम्पदम् । **स्रावयामसि** । स्रु गतौ—णिचि लट्, । **इदन्तो मसि** (पा० ७ । १ । ४६) इति मस इदन्तता । स्रावयामः, प्रवाहयामः, व्ययं कुर्मः ॥

४—ये । संस्रावाः । **सर्पिषः** । **अर्चिशुचिहुसृपि०** (उ० २ । १०८) इति सृप्लृ गतौ = सर्पणे—इसिः । सर्पणशीलस्य द्रवणस्वभावस्य घृतस्य । **क्षीरस्य** । **घसेः क्विच्च** (उ० ४ । ३४) इति घस = अद भक्षणे—ईरन्, उपधालोपे कत्वं षत्वम् । दुग्धस्य । **उदकस्य** । **उदकञ्च** (उ० २ । ३९) इति उन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे घी, दूध और जल की बूंद बूंद मिलकर धारें बंध जाती और उपकारी होती हैं इसी प्रकार हम लोग उद्योग करके थोड़ा थोड़ा संचय करने से बहुत सा विद्या धन और सुवर्ण आदि धन प्राप्त करके उत्तम कामों में व्यय करें ॥ ४ ॥

सूक्तम् १६ ॥

१–४ ॥ चातन ऋषिः । १ अग्निः, २ वरुणाग्नीन्द्राः, ३–४ सीसं देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

विघ्ननाशनोपदेशः—विघ्न के नाश का उपदेश ॥

ये मावास्यां ३ रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्रिणः ।
अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत् ॥ १ ॥

ये । अमाऽवास्याम् । रात्रिम् । उत्ऽअस्थुः । व्राजम् । अत्रिणः । अग्निः । तुरीयः । यातुऽहा । सः । अस्मभ्यम् । अधि । ब्रवत् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ये) वे जो (अत्रिणः) उदर पोषक [खाऊ लोग] (अमावास्याम्) अमावसी की (रात्रिम्) विश्राम देने हारी रात्रि को (व्राजम्) गोशालाओं पर [अथवा समूह के समूह] (उदस्थुः) चढ़ आये हैं । (सः) वह (तुरीयः) वेगवान् (यातुहा) राक्षसों का नाश करने हारा (अग्निः) अग्नि [अग्नि सदृश तेजस्वी राजा] (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिए (अधि) [उन पर] अधिकार जमा कर (ब्रवत्) घोषणा करे ॥ १ ॥

क्लेदने–क्वुन् । **युवोरनाकौ** (पा० ७ । १ । १) इति अकादेशः । जलस्य । अन्यद् व्याख्यातं म० ३ ॥

१—अमावास्याम् । अमा + वस निवासे–ण्यत् । अमा साहित्येन चन्द्रार्कयोर्वासो यत्र । **अमावस्यदन्यतरस्याम्** (पा०३।१।१२२) इति निपातनात् ण्यत्,वृद्धिः । अमावास्यायाः रात्रौ,महान्धकारे । **रात्रिम् । राशदिभ्यां त्रिप्** (उ० ४।६७) इति रा दानादनयोः–त्रिप्, ददाति विश्रामं, गृह्णाति श्रमं च । **कालाध्वनोरत्यन्त-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो दुष्ट जन अन्धेरी रातों में गोशाला आदि पर धावा करके प्रजा को सतावें तो प्रतापी राजा ऐसे राक्षसों से रक्षा करके राज्य भर में शान्ति फैलावे ॥ १ ॥

सीसायाध्याहु वरुणः सीसायाग्निरुपावति ।
सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत् तदङ्ग यातुचातनम् ॥ २ ॥

सीसाय । अधि । आहु । वरुणः । सीसाय । अग्निः । उप । अवति । सीसम् । मे । इन्द्रः । प्र । अयच्छत् । तत् । अङ्ग । यातुऽचातनम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(वरुणः) चाहने योग्य, समुद्रादि का जल (सीसाय) बन्धन काटने वाले सामर्थ्य [ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति] के लिये (अधि) अधिकार पूर्वक (आह) कहता है, (अग्निः) व्यापक, सूर्य, बिजुली आदि अग्नि (सीसाय) बन्धन काटने वाले सामर्थ्य [ब्रह्मज्ञान] के लिये (उप) समीप रह कर (अवति) रक्षा करता है। (इन्द्रः) महा प्रतापी परमेश्वर ने (सीसम्) बन्धन काटने वाला सामर्थ्य [ब्रह्मज्ञान] (मे) मुझको (प्र—अयच्छत्) दिया है, (अङ्ग) हे भाई (तत्) वह सामर्थ्य (यातुचातनम्) पीडानाशक है ॥२॥

संयोगे (पा० २ । ३ । ५) इति द्वितीया । रजनीम् । निशाकाले । **उत्-अस्थुः** । ष्ठा गतिनिवृत्तौ—लुङ् । उत्थितवन्तः, संचरणं कृतवन्तः । **व्राजम्** । **तस्य समूहः** (पा० ४ । २ । ३७) इति व्रज—अण्, समूहे, नपुंसकत्वम् । गोष्ठसमूहम् । अथवा । क्रियाविशेषणम् व्रजः=समूहः—अण् । अतिसमूहेन । **अत्रिणः** । अ० १ । ७ । ३ । अदनशीलाः, स्वार्थिनः, उदरपोषकाः । **अग्निः** । अ० १।६।२ । अग्निवत् तेजस्वी राजा । **तुरीयः** । तुरो वेगः । **घच्छौ च** (पा० ४ । ४ । ११७) इति तुर—छः प्रत्ययः, तत्र भवः इत्यर्थे । वेगवान् । **यातुहा** । **कृवापाजिमि०** (उ० १ । १) इति यत ताडने—उण् । यातयतीति यातुः, राक्षसः । **बहुलं छन्दसि** (पा० ३ । २ । ८८) इति यातूपपदे हन हिंसागत्योः—क्विप् । राक्षसघातकः । दुष्टनाशकः । **अधि** । अधिकृत्य, स्वामित्वेन । **ब्रवत्** । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि—लेट् । ब्रूयात् ॥

२—सीसाय । षिञ् बन्धने-क्विप्+षो अन्तकर्मणि-कः । पृषोदरादित्वात् तुक्-लोपे दीर्घः । सीं सितं बन्धं प्रतिबन्धं स्यति नाशयतीति सीसम् । प्रतिबन्धस्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जल, अग्नि, वायु, आदि पदार्थ ईश्वर की आज्ञा से परस्पर मिलकर हमारे लिये बाहिर और भीतर से उपकारी होते हैं, वह ब्रह्मज्ञान प्रत्येक मनुष्य आदि प्राणी को परमेश्वर ने दिया है उस ज्ञान को साक्षात् करके प्राणी दुःखों से छूट कर शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक आनन्द पाते हैं ॥ २ ॥

टिप्पणी—'सीस' शब्द का धात्वर्थ–षिञ् बांधना—क्विप्+षो नाश करना–कप्रत्यय बन्धन का काटने वाला है। लोक में वस्तु विशेष, सीसा को कहते हैं। सायण भाष्य में 'सीस' का अर्थ "नदी के फेन आदि रूप द्रव्य" और ग्रिफ्फिथ साहिब ने lead सीसा धातु विशेष किया है ॥

इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्त्रिणः ।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥ ३ ॥

इदम् । विऽस्कन्धम् । सहते । इदम् । बाधते । अत्त्रिणः ।
अनेन । विश्वा । ससहे । या । जातानि । पिशाच्याः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(इदम्) यह [सामर्थ्य] (विष्कन्धम्) विघ्न को (सहते) जीतता है और (इदम्) यह (अत्त्रिणः) उदर पोषक खाउओं को (बाधते) हटाता है। (अनेन) इससे (विश्वा = विश्वानि) उन सब दुःखों को (ससहे) मैं

विघ्नस्य नाशकसामर्थ्याय। ब्रह्मज्ञानप्राप्तये । **अधि** । अधिकारेण । **आह** । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि–लट्। ब्रवीति । **वरुणः** । अ० १।३।३ । वरणीयं समुद्रादि-जलम् । **अग्निः** । अ० १ । ६ । २ । व्यापकः । सूर्यविद्युदादिरूपोऽग्निः । **उप** । उपेत्य । **अवति** । रक्षति । व्याप्नोति । **इन्द्रः** । अ० १ । २ । ३ । महाप्रतापी परमेश्वरः । **प्र-अयच्छत्** । **पाघ्राध्मास्थाम्नादा०** (पा० ७ । ३ । ७८) इति दाण् दाने—यच्छादेशः—लङ् । प्रादात् । **तत्** । निर्दिष्टं सीसम् । **अङ्ग** । सम्बोधने । हे सखे । **यातु-चातनम्** । **कृवापाजिमि०** (उ० १ । १) यत ताडने–उण् । चातयतिर्नाशने–निरु० ६ । ३० । पीडानाशकम् । राक्षसनाशकम् ॥

३—**इदम्** । सीसम् । **विष्कन्धम्** । वि विकारे+स्कन्दिर् गतिशोषणयोः–अच् दस्य धः । **वेः स्कन्देरनिष्ठायाम्** (पा० ८ । ३ । ७३) इति षत्वम् यद्वा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीतता हूं (या=यानि) जो (पिशाच्याः) मांस खाने हारी [कुवासना] से (जातानि) उत्पन्न हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—दूरदर्शी पुरुषार्थी मनुष्य उत्तम ज्ञान के सामर्थ्य से अपने क्लेशों के कारण को जानते और कुवासनाओं के कुसंस्कारों को अपने हृदय में नहीं जमने देते ॥ ३ ॥

भगवान् पतञ्जलि जी ने कहा है—

हेयं दुःखमनागतम् ॥ यो० द० २ । १६ ॥

न आया हुआ [परन्तु आने वाला] दुःख हटाना चाहिये ॥

यदि॑ नो॒ गां हंसि॒ यद्यश्वं॒ यदि॒ पूरु॑षम् ।
तं त्वा॒ सीसे॑न विध्यामो॒ यथा॒ नोऽसो॒ अवी॑रहा ॥ ४ ॥

यदि॑ । नः॒ । गाम् । हंसि॑ । यदि॑ । अश्व॑म् । यदि॑ । पुरु॑षम् । तम् । त्वा॒ । सीसे॑न । वि॒ध्या॒मः॒ । यथा॑ । नः॒ । अस॑ः । अवी॑रऽहा ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(यदि) जो (नः) हमारी (गाम्) गाय को, (यदि) जो (अश्वम्)

विष्क हिंसायाम्—कः+डुधाञ्—डः । हिंसां दधातीति विशेषेण शोषकम् । विघ्नम् । **सहते** । षह मर्षणे । अभिभवति जयति । **बाधते** । बाधृ विलोडने प्रतिरोधे—लट् । प्रतिबध्नाति, निवारयति । **अत्त्रिणः** । म० १ । अदनस्वभावान् राक्षसान् । **अनेन** । सीसेन । **ससहे** । **बहुलं छन्दसि** (पा० २ । ४ । ७६) इति षह मर्षणे लटि शपः श्लुः । अहम् अभिभवामि । **जातानि** । जनी प्रादुर्भावे—कर्त्तरि क्तः । उत्पन्नानि । अपत्यरूपाणि दुष्टाचरणानि । **पिशाच्याः** । **कर्मण्यण्** (पा० ३ । २ । १) इति पिशित+अश भोजने—अण् । **पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्** (पा० ६ । ३ । १०९) इति रूपसिद्धिः । पिशितं मांसमश्नातीति पिशाचः । अथवा । **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** (पा० ३ । १ । १३५) इति पिश अवयवे—कः । पिशः पिशितम् । पुनः पिश+आङ्+चमु भक्षणे—डप्रत्ययः । पिशं पिशितं मांसम् आचमति सम्यग् भक्षयतीति पिशाचः । प्राणिनां मांसभक्षी पिशिताशी । ततो ङीष् । मांसभक्षिण्याः । राक्षसीरूपायाः कुवासनायाः ॥

४—**यदि** । संभावनायाम् । चेत् । **गाम्** । अ० १।२।३ । गोजातिम् । **हंसि** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोड़े को और (यदि) जो (पुरुषम्) पुरुष को (हंसि) तू मारता है (तम् त्वा) उस तुझको (सीसेन) बन्धन काटने हारे सामर्थ्य [ब्रह्मज्ञान] से (विध्यामः) हम वेधते हैं (यथा) जिससे तू (नः) हमारे (अवीरहा असः) वीरों का नाश करने हारा न होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य वर्तमान क्लेशों को देखकर आने वाले क्लेशों को यत्न पूर्वक रोककर आनन्द भोगें ॥ ४ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

हन हिंसागत्योः—लट् । मारयसि । नाशयसि । **अश्वम् । अशूप्रुषिलटि०** (उ० १।१५१) इति अशूङ् व्याप्तौ-संघाते च क्वन् । यद्वा,अश भोजने-क्वन् । अश्वःकस्माद-श्नुतेऽध्वानं महाशनो भवतीति वा—निरु० २ । २७ । जातावेकवचनम् । घोटम् । तुरङ्गम् । **पूरुषम् । पुरः कुषन्** (उ० ४ । ७४) पुर अग्रगमने—कुषन् । **अन्येषा-मपि दृश्यते** (पा० ६ । ३ । १३७) इति निपातनाद् दीर्घः । पुरति अग्रे गच्छतीति पुरुषः । नरं, जनम् । **तम्** । तथाविधम् । **त्वा** । त्वां हिंसकम् । **सीसेन** । म० २ । विघ्ननाशकसामर्थ्येन, ब्रह्मज्ञानेन । **विध्यामः** । व्यध ताडने—दिवादित्वात् श्यन् । **ग्रहिज्यावयिव्यधि०** (पा० ६ । १ । १६) इति संप्रसारणम् । छिनद्मः । ताडयामः, मारयामः । **यथा** । येन प्रकारेण । **असः** । अस भुवि—लेटि अडागमः । त्वम् भूयाः । **अवीरहा** । वीरय-तीति वीरः, वीर विक्रान्तौ—अच् । वीरान् हन्तीति वीरहा, वीर+हन्—क्विप् । न वीरहा अवीरहा । अशूरहन्ता ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ चतुर्थोऽनुवाकः

सूक्तम् १७ ॥

१–४ ॥ ब्रह्मा ऋषिः । हिरा देवता । १–३ अनुष्टुप् ४ गायत्री छन्दः

नाडीछेदनदृष्टान्तेन कुवासनानाशः—नाडीछेदन [फस्द खोलने] के दृष्टान्त से दुर्वासनाओं के नाश का उपदेश ॥

अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः ।
अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः ॥ १ ॥

अमूः । याः । यन्ति । योषितः । हिराः । लोहितवाससः ।
अभ्रातरःइव । जामयः । तिष्ठन्तु । हतवर्चसः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अमूः) वे (याः) जो (योषितः) सेवा योग्य वा सेवा करने हारी [अथवा स्त्रियों के समान हितकारी] (लोहितवाससः) लोहू में ढकी हुयी (हिराः) नाडियां (यन्ति) चलती हैं, वे, (अभ्रातरः) बिना भाइयों की (जामयः इव) बहिनों के समान, (हतवर्चसः) निस्तेज होकर (तिष्ठन्तु) ठहर जायें॥१॥

१—**अमूः** । अ० १।४।२। ताः परिदृश्यमानाः । **यन्ति** । गच्छन्ति । **योषितः** । **हसृरुहियुषिभ्य इतिः** (उ० १ । ९७) युष सेवने—इति, अयं सौत्रो धातुः । योषति सेवते युष्यते सेव्यते वा सा योषित् । सेवयित्र्यः । सेव्याः । स्त्रियः ।, **हिराः** । **स्फायितञ्चिवञ्चिशकि०** (उ० २ । १३) इति हि गतौ वृद्धौ च—रक् टाप् । हिनोति वर्धयति गच्छति व्याप्नोति वा शरीररुधिरादिकमिति हिरा, नाडी । सिराः, नाड्यः । **लोहितवाससः** । **वसेर्णित्** (उ० ४ । २१८) इति लोहित + वस आच्छादने, असुन् । णिद्वद्भावात् उपधावृद्धिः । रुधिरस्य आच्छा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—इस सूक्त में सिरा छेदन, अर्थात् नाड़ी [फ़स्द] खोलने का वर्णन है। मन्त्र का अभिप्राय यह है कि नाड़ियां रुधिर संचार का मार्ग होने से शरीर की (योषितः) सेवा करने हारी और सेवा योग्य हैं। जब किसी रोग के कारण वैद्यराज नाड़ी छेदन करे और रुधिर निकालने से रोग बढ़ाने में नाड़ियां ऐसी असमर्थ हो जायें जैसे माता पिता और भाइयों के बिना कन्यायें असहाय हो जाती हैं, तब नाड़ियों को रुधिर बहने से रोक दे।

२—मनुष्य के सब कार्य कुकामनाओं को रोक कर मर्यादापूर्वक करने से सफल होते हैं ॥ १ ॥

तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे ।
कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद् धमनिर्मही ॥ २ ॥

तिष्ठ । अवरे । तिष्ठ । परे । उत । त्वम् । तिष्ठ । मध्यमे । कनिष्ठिका । च । तिष्ठति । तिष्ठात् । इत् । धमनिः । मही ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अवरे) हे नीचे की [नाड़ी] (तिष्ठ) तू ठहर, (परे) हे ऊपर वाली (तिष्ठ) तू ठहर, (उत) और (मध्यमे) हे बीच वाली (त्वम्) तू (तिष्ठ)

दनभूताः। रक्तवर्णवस्त्राः। **अभ्रातरः। नप्तृनेष्टृत्वष्टृ०** (उ० २। ९५) इति भ्राजृ दीप्तौ—तृन्, निपात्यते। अभ्रातृकाः, सहोदररहिताः, असहाया इत्यर्थः। **जामयः**। अ० १। ४। १। भगिन्यः। **तिष्ठन्तु**। स्थिताः निवृत्तगतयो भवन्तु। **हतवर्चसः। सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४। १८९) इति वर्च दीप्तौ—असुन्। हततेजस्काः, नष्टवीर्याः। रोगोत्पादने असमर्थाः॥

२—तिष्ठ। निवृत्तगतिर्भव। **अवरे**। अ०१।८।३। अवर-टाप्। हे निकृष्टे। अधोभागस्थिते हिरे। **परे**। अ० १। ८। ३। हे श्रेष्ठे, ऊर्ध्वाङ्गवर्तिनि! **त्वम्**। हिरे, सिरे। **मध्यमे। मध्यान्मः** (पा० ४।३।८) मध्यशब्दात् मप्रत्ययो भवार्थे। हे शरीरमध्यवर्तिनि। **कनिष्ठिका। युवाल्पयोः कन् अन्यतरस्याम्** (पा०५।३।६४) इति अल्प—इष्ठनि कन् आदेशः। स्वार्थे कप्रत्ययः। **प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** (पा० ७। ३। ४४) इति इत्वं टापि परतः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठहर, (च) और (कनिष्ठिका) अति छोटी नाड़ी (तिष्ठति) ठहरती है, (मही) बड़ी (धमनिः) नाड़ी (इत्) भी (तिष्ठात्) ठहर जावे ॥ २ ॥

भावार्थः—१—चिकित्सक सावधानी से सब नाड़ियों को अधिक रुधिर बहने से रोक देवे ॥

२—मनुष्य अपने चित्त की वृत्तियों को ध्यान देकर कुमार्ग से हटावे, और हड़बड़ी करके अपने कर्तव्य को न बिगड़ने दे किन्तु यत्न पूर्वक सिद्ध करे ॥ २ ॥

शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् ।
अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ॥ ३ ॥

शतस्य । धमनीनाम् । सहस्रस्य । हिराणाम् । अस्थुः ।
इत् । मध्यमाः । इमाः । साकम् । अन्ताः । अरंसत ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(शतस्य धमनीनाम्) सौ प्रधान नाड़ियों में से और (सहस्रस्य हिराणाम्) सहस्र शाखा नाड़ियों में से (इमाः) ये सब (मध्यमाः) बीच वाली (इत्) भी (अस्थुः) ठहर गयीं, (अन्ताः) अन्त की [अवशिष्ट नाड़ियां] (साकम्) एक साथ (अरंसत) क्रीडा करने लगी हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—सिरा छेदन से असंख्य धमनी और सिरा नाड़ियों का रुधिर यथाविधि चिकित्सक निकाल कर बन्ध कर देवे कि नाड़ियां पहिले के समान चेष्टा करने लगें ॥ ३ ॥

अल्पतमा, सूक्ष्मतरा नाडी । **तिष्ठात्** । ष्ठा गतिनिवृत्तौ–लेट् । **लेटोऽडाटौ** (पा० ३ । ४ । ९४) इति आडागमः । अवतिष्ठताम् । **धमनिः** । **अर्त्तिसृधृधमि०** (उ० २ । १०२) इति धम[1]ध्माने, ध्वाने च—अनिः । सिरा, नाडी । **मही** । मह पूजायाम्–अच् । **षिद्गौरादिभ्यश्च** (पा० ४ । १ । ४१) इति ङीप् । महती, बृहती स्थूला ॥

३—शतस्य । शतसंख्यानां अपरिमितानाम् । **धमनीनाम्** । म० २ । हृदयगतानां प्रधाननाडीनाम् । **सहस्रस्य** । अपरिमितानाम् । **हिराणाम्** । म० १ सिराणाम् । सूक्ष्मशाखानाडीनाम् । **अस्थुः** । अ०१।१६।१। स्थिता अभूवन् ।

---

१. यह सौत्र धातु है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—मनुष्य अपनी अनन्त चित्त वृत्तियों को कुमार्ग से रोक कर सुमार्ग में चलावें ॥ ३ ॥

परि॑ वः सिक॑तावती॒ धनू॑र्बृ॒हत्य॒क्रमीत् ।
तिष्ठ॑ते॒लय॑ता सु कं॑म् ॥ ४ ॥

परि॑ । वः । सिक॑ताऽवती । धनूः । बृ॒हती । अक्रमीत् ।
तिष्ठ॑त । इ॒लय॑त । सु । कम् ॥४॥

भाषार्थः—(सिकतावती) सेचन स्वभाव [कोमल रखने वाली] बालू आदि से भरी हुई (बृहती) बड़ी (धनूः) पट्टी ने (वः) तुम [नाड़ियों] को (परि अक्रमीत्) लपेट लिया है। (तिष्ठत) ठहर जाओ, (सु) अच्छे प्रकार (कम्) सुख से (इलयत) चलो ॥ ४ ॥

भावार्थः १—(धनूः) अर्थात् धनु चार हाथ परिमाण को कहते हैं। इसी प्रकार की पट्टी से जो सूक्ष्म चूर्ण बालू से वा बालू के समान राल आदि ओषध से युक्त होवे, चिकित्सक घाव को बांध देवे कि रक्त बहने से ठहर जाये और घाव पुरकर सब नाड़ियां यथा नियम चलने लगें, मन प्रसन्न और शरीर पुष्ट हो ॥

मध्यमाः । म० २। मध्यभवाः। **साकम्** । युगपत्। **अन्ताः** । अम गत्यादिषु-तन्। अन्तिमाः, अवशिष्टाः सर्वाः नाड्यः। **अरंसत** । रमु क्रीडायाम्—लुङ्। यथापूर्वं रमन्ते स्म, चेष्टां कृतवत्यः ॥

४—वः । युष्मान्, नाडीः । **सिकतावती । पृषिरञ्जिभ्यां कित्** (उ० ३। १११) इति सिच सेचने-अतच् टाप्। सेचनवती, कोमलस्वभावयुक्ता। बालुयुक्ता। **धनूः । कृषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः स्त्रियाम्** (उ० १। ८०) इति धन धान्ये-ऊः । धनूः[1] = चतुर्हस्तपरिमाणम् । तत्परिमाणवस्त्र-पट्टी। **बृहती । वर्त्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच्च** (उ० २। ८४) इति बृह वृद्धौ-अतिः। ङीष्। महती। **अक्रमीत्** । क्रमु पादविक्षेपे-लुङ्। क्रा-

---

१. दधन्ति धनमर्जयन्ति स धनूः शस्त्रं वा ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२–मनुष्य कुमार्गगामिनी मनोवृत्तियों को रोक कर यत्न पूर्वक हानि पूरी करे, और लाभ के साथ अपनी वृद्धि करे और आनन्द भोगे ॥ ४ ॥

सूक्तम् १८ ॥

१–४ ॥ द्रविणोदा ऋषिः ॥ सविता देवता । १, ४ ॥ अनुष्टुप्, २, ३ जगती ।

राजधर्मोपदेशः—राजा के लिये धर्म का उपदेश ॥

निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं १ निररातिं सुवामसि ।
अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि ॥ १ ॥

निः । लक्ष्म्यम् । ललाम्यम् । निः । अरातिम् । सुवामसि ।
अथ । या । भद्रा । तानि । नः । प्रऽजायै । अरातिम् । नयामसि ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ललाम्यम् = ०—मीम्) [धर्म से] रुचि हटाने वाली (निर्लक्ष्म्यम् = ०क्ष्मीम्) अलक्ष्मी [निर्धनता] और (अरातिम्) शत्रुता को (निःसुवामसि = ०—मः) हम निकाल देवें । (अथ) और (या = यानि) जो (भद्रा = भद्राणि) मंगल हैं (तानि) उनको (नः) अपनी (प्रजायै) प्रजाके लिये (अरातिम्) सुख न देने हारे शत्रु से (नयामसि = ०—मः) हम लावें ॥ १ ॥

न्तवती, व्याप्तवती । **तिष्ठत** । निवृत्तगतयो भवत । **इलयत** । इल स्वप्नक्षेपणयोः-प्रेरणे च गच्छत, चेष्टध्वम् । **कम्** । सुखेन ॥

१—**निः + लक्ष्म्यम्** । निर्—नॄ नये–क्विप् । **ऋत इद्धातोः** (पा० ७ । १ । १००) इति धातोरङ्गस्य इत् । **लक्षेर्मुट् च** (उ०३ । १६०) इति लक्ष दर्शनाङ्कनयोः–ईप्रत्ययो मुडागमः । लक्ष्यते दृश्यते सा लक्ष्मीः । **वा छन्दसि** (पा० ६।१। १०६) इति अमि पूर्वरूपाभावे **इको यणचि** (पा० ६।१।७७) इति यण् आदेशः । **उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य** (पा०८।२।४) इति यणः परतोऽनुदात्तस्य स्वरितत्वम् । निर्लक्ष्मीम्, अलक्ष्मीम्, निर्धनताम्, दुर्भाग्यताम् । **ललाम्यम्** । लल ईप्सायाम्–अच् । ततः **अवितॄस्तृतन्त्रिभ्य ईः** (उ० ३।१५८) इति बाहुलकात्, अम रोगे–ईप्रत्ययः । ललम् इच्छां शुभरुचिं आमयति नाशय–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा अपने और प्रजा की निर्धनता आदि दुर्लक्षणों को मिटावे और शत्रु को दण्ड देकर प्रजा में आनन्द फैलावे ॥ १ ॥

सायण भाष्य में 'लक्ष्म्यम्' के स्थान में 'लक्ष्मम्' पाठ है ॥ १ ॥

निररणिं सविता साविषत् पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा।
निरस्मभ्यमनुमतिी रराणा प्रेमां देवा असाविषुः सौभगाय ॥२॥

निः। अरणिम्। सविता। साविषत्। पदोः। निः। हस्तयोः। वरुणः। मित्रः। अर्यमा। निः। अस्मभ्यम्। अनुऽमतिः। रराणा। प्र। इमाम्। देवाः। असाविषुः। सौभगाय ॥ २ ॥

भाषार्थः—(सविता) [सबका चलाने हारा] सूर्य [सूर्य रूप तेजस्वी] (वरुणः) सबके चाहने योग्य जल [जल समान शान्त स्वभाव] (मित्रः) चेष्टा

तीति ललामीः। पूर्ववत् यण् स्वरितत्वं च। ललामीम्, शुभरुचिनाशिनीम्। **निर्।** नॄ नये–क्विप्, दीर्घाभावः। **ऋत इद्धातोः** (पा० ७। १। १००) इति इकारः। बहिर्भावे। निश्चये। **अरातिम्। क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्** (पा० ३। ३। १७४) इति रा दाने–क्तिच्। यद्वा, रा–क्तिन्। न राति ददाति सुखम्, नञ्–समासः। सुखस्य अदातारम् शत्रुम्। शत्रुताम्, दुष्टताम्। **नि+सुवामसि।** षू प्रेरणे, तुदादिः–लट्। मस इदन्तत्वम्। **व्यवहिताश्च** (पा० १। ४। ८२) इति उपसर्गस्य व्यवधानम्। निःसुवामः, निःसारयामः। **अथ।** अनन्तरम्। **भद्रा। ऋज्रेन्द्राग्रवज्र०** (उ० २। २८) इति भदि कल्याणे सुखे च–रन्। निपात्यते च। भद्राणि, मङ्गलानि। **तानि।** उदीरितानि भद्राणि। **नः।** अस्माकम्, स्वकीयायै। **प्रजायै। उपसर्गे च संज्ञायाम्** (पा० ३। २। ९९) इति जनी प्रादुर्भावे–डप्रत्ययः। जनाय। **अरातिम्।** शत्रुम्। शत्रुसकाशात्। **नयामसि।** णीञ् प्रापणे, द्विकर्मकः। मस इदन्तत्वम्। प्रापयामः ॥

२—**निर्।** म० १। निश्चयेन। नितराम्। बहिर्भावे। **अरणिम्। अर्त्तिसृधृ०** (उ० २। १०२) ऋ हिंसायाम्–अनिः। आर्त्तिम्, पीडाम्। **सविता।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने हारा वायु [वायु समान वेगवान् उपकारी], (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने हारा न्यायकारी राजा (अरणिम्) पीड़ा को (पदोः) दोनों पदों और (हस्तयोः) दोनों हाथों से (निः) निरन्तर (निः साविषत्) निकाल देवे । (रराणा) दान-शीला (अनुमतिः) अनुकूल बुद्धि (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (निः = निः साविषत्) [पीड़ा को] निकाल देवे, (देवाः) उदार चित्त वाले महात्माओं ने (इमाम्) इस [अनुकूल बुद्धि] को (सौभगाय) बड़े ऐश्वर्य के लिये (प्र असाविषुः) भेजा है ॥२॥

भावार्थः—मन्त्रोक्त शुभ लक्षणों वाला राजा और प्रजा परस्पर हितबुद्धि से और शुभचिन्तक महात्माओं के सहाय से क्लेशों का नाश करके सबका ऐश्वर्य बढ़ावें ॥ २ ॥

टिप्पणी—सायण भाष्य में 'अरणिम्' के स्थान में 'अरणीम्' है और बंबई गवर्नमेन्ट के पुस्तक में लिखे 'साविषक्' के स्थान में सायण भाष्य में और अन्य दोनों पुस्तकों में 'साविषत्' पद है, वही पाठ हमने रक्खा है। गवर्नमेन्ट पुस्तक में टिप्पणी है कि 'साविषक्' शब्द शोधकर लिखा है, परन्तु यह अशुद्ध है क्योंकि अथर्व० ६ । १ । ३ में, ७ । ७७ । ७ में और ९ । १५ । ४ में 'सविता साविषत्' पाठ है वही 'सविता साविषत्' यहाँ भी शुद्ध है ॥

षूङ् प्राणिप्रसवे-तृच् । सविता सर्वस्य प्रसविता = उत्पादकः । निरु० १० । ३१ सर्वप्रेरकः सूर्यः । **निः + साविषत्** । षूञ् प्रेरणे—लेट् । निःसुवतु, निःसारयतु । **पदोः** । **पद्दन्नोमास्०** (पा० ६ । १ । ६३) इति पादशब्दस्य पद् आदेशः । पादयोः सकाशात् । **हस्तयोः** । **हसिमृग्रिण्वामि०** (उ० ३ । ८६) इति हस हसने-तन् । करयोः सकाशात् । **वरुणः** । अ० १।३।३ । वरणीयं जलम् । **मित्रः** । अ० १ । ३ । २ । सर्वप्रेरको वायुः । **अर्यमा** । अ० १ । ११ । १ । अर्यान् श्रेष्ठान् मिमीते मानयतीति । न्यायकारी राजा । **अनुमतिः** । अनु+मन ज्ञाने—क्तिन् । सम्मतिः । अनुकूला, सहायिका बुद्धिः । **रराणा** । रा दाने—कानच् । दानशीला । **देवाः** । पूज्याः, दातारः । **प्र + असाविषुः** । षूञ् प्रेरणे-लुङ् । प्रेरितवन्तः, दत्तवन्तः । **सौभगाय** । **प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्** (पा० ५ । १ । १२९) इति सुभग-भावे अञ् । **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** (पा० ६ । १ । १९७) इति आद्युदात्तः । सुभगत्वाय, शोभनैश्वर्याय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्ते आत्मनि तन्वां घोरमस्ति यद्वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा। सर्वं तद् वाचापं हन्मो वयं देवस्त्वा सविता सूदयतु ॥ ३ ॥

यत्। ते। आत्मनि। तन्वाम्। घोरम्। अस्ति। यत्। वा। केशेषु। प्रतिऽचक्षणे। वा। सर्वम्। तत्। वाचा। अप। हन्मः। वयम्। देवः। त्वा। सविता। सूदयतु ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य]! (यत्) जो कुछ (ते) तेरे (आत्मनि) आत्मा में और (तन्वाम्) शरीर में (वा) अथवा (यत्) जो कुछ (केशेषु) केशों में (वा) अथवा (प्रतिचक्षणे) दृष्टि में (घोरम्) भयानक (अस्ति) है। (वयम्) हम (तत् सर्वम्) उस सबको (वाचा) वाणी से [विद्याबल से] (अप) हटाकर (हन्मः) मिटाये देते हैं। (देवः) दिव्य स्वरूप (सविता) सर्वप्रेरक परमेश्वर (त्वा) तुझको (सूदयतु) अंगीकार करे ॥ ३ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य अपने आत्मिक और शारीरिक दुर्गुणों और दुर्लक्षणों को विद्वानों के उपदेश और सत्सङ्ग से छोड़ देता है, परमेश्वर उसे अपना करके अनेक सामर्थ्य देता और आनन्दित करता है ॥ ३ ॥

३—**आत्मनि। सातिभ्यां मनिन्मनिणौ** (उ० ४। १५३) इति अत सातत्यगमने—मनिण्। अतति निरन्तरं कर्मफलानि प्राप्नोतीति आत्मा। स्वभावे, मनसि, जीवे। **तन्वाम्**। अ० १। १। १। शरीरे, देहे। **घोरम्। हन्तेरच् घुर् च** (उ०५।६४) इति हन हिंसागत्योः-अच्, घुरादेशः। हन्ति। विनाशयतीति। भयंकरं दुर्लक्षणम्। **केशेषु**। के मस्तके शेते। शीङ् स्वप्ने—अच्। अलुक्-समासः। अथवा। **क्लिशेरन् लो लोपश्च** (उ० ५। ३३) इति क्लिश उपतापे-अन्, ललोपः। वालेषु शिरोरुहेषु। **प्रतिचक्षणे**। चष्टे, पश्यतिकर्मा—निघ० ३। ११। चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि-करणे ल्युट्। दर्शनसाधने चक्षुषि। **वाचा**। अ० १। १। १। वाण्या। सरस्वतीद्वारा। विद्याद्वारा। **अप**। वर्जयित्वा। **हन्मः**। नाशयामः। **वयम्**। उपासकाः। **त्वा**। त्वाम् आत्मानम्। **सविता**। सर्वप्रेरकः। सर्वपिता परमात्मा। **सूदयतु**। षूद क्षरणे—लोट्, आश्रुतिरङ्गीकारः। आश्रृणोतु, अङ्गीकरोतु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत ।
विलीढ्यं ललाम्यं १ ता अस्मन्नाशयामसि ॥ ४ ॥

रिश्यऽपदीम् । वृषऽदतीम् । गोऽसेधाम् । विऽधमाम् । उत ।
विऽलीढ्यम् । ललाम्यम् । ताः । अस्मत् । नाशयामसि ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(रिश्यपदीम्) हरिण के समान [बिना जमाये शीघ्र] पद की चेष्टा, (वृषदतीम्) बैल के समान दांत चबाना, (गोषेधाम्) बैल की सी चाल, (उत) और (विधमाम्) बिगड़ी भाथी [धोंकनी] के समान श्वास क्रिया, (ललाम्यम् = ०–मीम्) रुचि नाश करने हारी (विलीढ्यम् = ०–ढिम्) चाटने की बुरी प्रकृति, (ताः) इन सब [कुचेष्टाओं] को (अस्मत्) अपने से (नाशयामसि = ०–मः) हम नाश करें ॥ ४ ॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष मनुष्यस्वभाव से विरुद्ध कुचेष्टाओं को छोड़ कर विद्वानों के सत्सङ्ग से सुन्दर स्वभाव बनावें और मनुष्य जन्म को सुफल करके आनन्द भोगें ॥ ४ ॥

टिप्पणी—सायणभाष्य में 'रिश्यपदीम्' के स्थान में 'ऋष्यपदीम्' पाठ है। और जो 'विलीढ्यम्, ललाम्यम्' पदों का नपुंसक लिङ्ग माना है वह

४—रिश्यपदीम् । रिश हिंसायाम्–क्यप् । रिश्यते हिंस्यते—इति रिश्यः, मृगः । **पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः** (पा०५ । ४ । १३८) इति पादस्य अन्त्यलोपः । **पादोऽन्यतरस्याम्** (पा० ४ । १ । ८) इति ङीप्, भसंज्ञायाम् **पादः पत्** (पा० ६ । ४ । १३०) इति पद्भावः । हरिणपदवत् गतिं कुचेष्टाम् । **वृष-दतीम्** । **अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च** (पा० ५ । ४ । १४५) इति दन्तशब्दस्य दतृ-आदेशः । **उगितश्च** (पा० ४ । १ । ६) इति ङीप् । वृषदन्तवत् क्रियायुक्तां कुचेष्टाम् । **गोसेधाम्** । षिधु गत्याम्–पचाद्यच् । टाप् । वृषभवद् गतिं चेष्टाम् । **वि-धमाम्** । वि विकृतौ + ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः धम[1] दीर्घश्वासहेतुके शब्दभेदे वा-अच् । टाप् । विधमावद् विकृतभस्त्रावत् श्वासक्रियाम् । **विलीढ्यम्** । वि विकृतौ + लिह आस्वादने + क्तिन् **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति अमि पूर्वरूपाभावे **इको यणचि** (पा० ६ । १ । ७७) इति यण् आदेशः । **उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य** (पा० ८ । २ । ४) इति यणः परतोऽनुदात्तस्य स्वरितः ।

---

१. यह सौत्र धातु है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशुद्ध है क्योंकि मन्त्र में 'ताः' स्त्रीलिङ्ग सर्वनाम होने से ऊपर के सब छह पद स्त्रीलिङ्ग हैं ॥

सूक्तम् १९ ॥

१–४ ॥ ब्रह्मा ऋषिः । देवता जयन्यायौ । १, २, ४ अनुष्टुप्, ३ पंक्तिः ॥

जयन्यायोपदेशः—जय और न्याय का उपदेश ॥

मा नो विदन् विव्याधिनो मो अभिव्याधिनो विदन् ।
आराच्छरव्या अस्मद् विषूचीरिन्द्र पातय ॥ १ ॥

मा । नः । विदन् । विऽव्याधिनः । मो इति । अभिऽव्याधिनः । विदन् । आरात् । शरव्याः । अस्मत् । विषूचीः । इन्द्र । पातय ॥ १ ॥

भाषार्थः—(विव्याधिनः) अत्यन्त वेधने हारे शत्रु (नः) हम तक (मा विदन्) न पहुँचे, और (अभिव्याधिनः) चारों ओर से मारने हारे (मो विदन्) कभी न पहुँचें । (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले राजन् (विषूचीः) सब ओर फैले हुए (शरव्याः) बाण समूहों को (अस्मत्) हमसे (आरात्) दूर (पातय) गिरा ॥ १ ॥

विलीढिम्, विकृतास्वादनचेष्टाम् । **ललाम्यम्** । म० १ । ललामीम्, रुचिनाशिनीम् । **ताः** । पूर्वोक्ताः कुचेष्टाः । **नाशयामसि** । णश अदर्शने—णिच् । मस इदन्तत्वम् । नाशयामः, दूरीकुर्मः ॥

१– **नः** । अस्मान् । **मा + विदन्** । विदॢ लाभे, माङि लुङि । **न माङ्योगे** (पा० ६ । ४ । ७४) इति अडभावः । मा लभन्ताम् । **विव्याधिनः** । **सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये** (पा० ३ । २ । ७८) इति वि + व्यध ताडने–णिनिः । विशेषेण छेदकाः, धनुर्धराः । **मो** । मा + उः । मैव । **अभि–व्याधिनः** । पूर्ववद् णिनिः । आघातकाः, सर्वतो हननकर्तारः । **मो विदन्** । मैव प्राप्नुवन्तु स्पृशन्तु । **आरात्** । दूरदेशे । **शरव्याः** । **शॄस्वृस्निहित्रप्यसि०** (उ० १ । १०) इति शॄ हिंसायाम्–उप्रत्ययः । **उगवादिभ्यो यत्** (पा० ५ । १ । २) इति शरु–यत् समूहार्थे । **ओर्गुणः** (पा० ६ । ४ । १४६) इति गुणः । **वान्तो यि प्रत्यये**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सर्वरक्षक जगदीश्वर पर पूर्ण श्रद्धा करके चतुर सेनापति अपनी सेना को रणक्षेत्र में इस प्रकार खड़ा करे कि शत्रु लोग पास न आ सकें और न उनके अस्त्र शस्त्रों के प्रहार अपने किसी के लगें ॥ १ ॥

विष्वञ्चो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः ।
दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत ॥ २ ॥

विष्वञ्चः । अस्मत् । शरवः । पतन्तु । ये । अस्ताः । ये । च । आस्याः ।
दैवीः । मनुष्यऽइषवः । मम । अमित्रान् । वि । विध्यत ॥ २ ॥

भाषार्थः—(ये) जो बाण (अस्ताः) छोड़े गये हैं (च) और (ये) जो (आस्याः) छोड़े जायेंगे, (विष्वञ्चः) [वे] सब ओर फैले हुये (शरवः) बाण (अस्मत्) हमसे [दूर] (पतन्तु) गिरें। (दैवीः मनुष्येषवः) हे [हमारे] मनुष्यों के दिव्य बाणो ! [बाण चलाने वाले तुम,] (मम) मेरे (अमित्रान्) पीड़ा देने हारे शत्रुओं को (वि विध्यत) छेद डालो ॥ २ ॥

(पा० ६ । १ । ७९) इति अव् आदेशः । **तित् स्वरितम्** (पा० ६ । १ । १८५) इति स्वरितः । शरुसमूहान् शरसंहतीः । **अस्मत्** । **अन्यारादितरर्ते०** (पा० २ । ३ । २९) इति आरात् योगे पञ्चमी । अस्मत्तः । **विषूचीः** । **ऋत्विग्दधृक्स्रग्दि-गुष्णिगञ्चु०** (पा० ३ । २ । ५९) इति विषु+अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन् । **अनिदिताम्०** (पा० ६ । ४ । २४) इति नलोपः । **अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्** (वा० पा० ४ । १ । ६) इति ङीप् । **अचः** (पा० ६ । ४ । १३८) इति अकारलोपः । **चौ** (पा० ६ । ३ । १३८) इति दीर्घः । विष्वक् नानामुखम् अञ्चनशीलाः । सर्वत्रव्यापिनीः । **इन्द्र** । हे परमेश्वर । **पातय** । पत–णिच् । प्रक्षिप ॥

२—विष्वञ्चः । म० १ । विषु+अञ्चु–क्विन् । विविधगमनाः । **शरवः** । म० १ । **शॄस्वृस्निहि०** (उ० १ । १०) इति शॄ हिंसायाम्–उः । बाणाः । अस्त्रशस्त्राणि । **पतन्तु** । निपतन्तु, अधोगच्छन्तु । **अस्ताः** । असु क्षेपणे—क्तः । क्षिप्ताः, विनिर्मुक्ताः । **आस्याः** । **ऋहलोर्ण्यत्** (पा० ३ । १ । १२४) इति असु क्षेपणे—ण्यत् । क्षेपणीयाः । **दैवीः** । **देवाद् यञञौ** (पा० वा०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सेनापति इस प्रकार अपनी सेना का व्यूह करे कि शत्रुओं के अस्त्र शस्त्र जो चल चुके हैं अथवा चलें वे सेना के न लगें और उस निपुण सेनापति के योद्धाओं के (दैवीः) दिव्य अर्थात् आग्नेय [अग्निबाण] और वारुणेय [जलबाण जो बन्दूक आदि जल में वा जल से छोड़े जावें] अस्त्र शत्रुओं को निरन्तर छेद डालें ॥ २ ॥

इस मन्त्र में वर्तमान काल का अभाव है क्योंकि वह अति सूक्ष्म और वेगवान् है और मनुष्यों को अगम्य है ॥

यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्माँ अभिदासति । रुद्रः शरव्या३ एतान् ममामित्रान् वि विध्यतु ॥ ३ ॥

यः । नः । स्वः । यः । अरणः । सऽजातः । उत । निष्ट्यः । यः । अस्मान् । अभिऽदासति । रुद्रः । शरव्या३ । एतान् । मम । अमित्रान् । वि । विध्यतु ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(यः) जो (नः) हमारी (स्वः) जाति वाला अथवा (यः) जो (अरणः) न बोलने योग्य शत्रु वा विदेशी, अथवा (सजातः) कुटुम्बी (उत) अथवा

---

४ । १ । ८५) इति देव-अञ्, देवस्य इयमित्यर्थे । टिड्ढाणञ्० (पा० ४ । १ । १५) इति ङीप् । वा छन्दसि (पा० ६।१।१०६) इति जसि पूर्वसवर्णदीर्घः । ञ्नित्यादिर्नित्यम् (पा० ६ । १ । १९७) इति आद्युदात्तः । दिव्याः । आग्नेय-वारुणादयो बाणाः । मनुष्यइषवः । मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च (पा० ४ । १ । १६१) इति मनु-यत् अपत्यार्थे, षुगागमश्च । मनोरपत्यम् मनुष्यः मनुजः, मानवः । इष गतौ-उः । इषुः, बाणः । मनुष्याणाम् अस्मदीयानाम् इषवः, बाणाः, अस्त्रशस्त्राणि । मम । मदीयान् । अमित्रान् । अमेर्द्विषति चित् (उ० ४ । १७४) इति अम रोगे, इत्रच् । पीडकान् शत्रून् । वि । विविधम् । विध्यत । व्यध ताडने-लोट् । छिन्त, भिन्त ॥

३—स्वः । स्वन शब्दे-डः । ज्ञातिः । अरणः । वशिरण्योरुपसंख्यानम् । (वा० पा० ३ । ३ । ५८) इति रणि शब्दे—कर्मणि अप्, नञ्तत्पुरुषः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यः) जो (निष्टयः) वर्णसङ्कर नीच (अस्मान्) हम पर (अभिदासति) चढ़ाई करे (रुद्रः) शत्रुओं को रुलाने वाला महा शूर वीर सेनापति (शरव्यया) बाणों के समूह से (मम) मेरे (एतान्) इन (अमित्रान्) पीड़ा देने हारे वैरियों को (वि विध्यतु) छेद डाले ॥ ३ ॥

भावार्थः—राजा को अपने और पराये का पक्षपात छोड़ कर दुष्टों को यथोचित दण्ड देकर राज्य में शान्ति रखनी चाहिये ॥ ३ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध ऋ० ६ । ७५ । १९ में कुछ भेद से है ॥

यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषन् छपाति नः ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥ ४ ॥

यः । सऽपत्नः । यः । असपत्नः । यः । च । द्विषन् । शपाति । नः । देवाः । तम् । सर्वे । धूर्वन्तु । ब्रह्म । वर्म । मम । अन्तरम् ॥ ४ ॥

अरणीयः, असंभाव्यः । विदेशी जनः । शत्रुः । **सजातः** । अ० १ । ९ । ३ । समानजन्मा, स्वकुटुम्बी । **निष्ट्यः । अव्ययात् त्यप्** (पा० ४ । २ । १०४) अत्र **निसो गते** इति वार्तिकेन निस्–त्यप् गतार्थे । **हस्वात् तादौ तद्धिते** (पा० ८।३। १०१) इति षत्वम् । निर्गतो वर्णाश्रमेभ्यो यः । चाण्डालः, म्लेच्छः । **अस्मान् ।** आज्ञाकारिणो धार्मिकान् । **अभिदासति ।** दसु उपक्षये, लेट् । उत्क्षिपेत् । **अस्माँ अभिदासति । दीर्घादटि समानपादे** (पा० ८ । ३ । ९) इति संहितायां नकारस्य रुत्वम् । **आतोऽटि नित्यम्** (पा० ८ । ३ । ३) इति आकारस्य अनुनासिकः । **रुद्रः । रोदेर्णिलुक् च** (उ० २ । २२) इति रुदिर् अश्रुविमोचने ण्यन्तात् रक् प्रत्ययः, णिलुक् च । रोदयति शत्रूनिति । महाशूरः सेनापतिः । **शरव्यया** । म० १ । **पाशादिभ्यो यः** (पा० ४ । २ । ४९) इति शरु–यप्रत्ययः समूहार्थे । **ओर्गुणः** (पा० ६ । ४ । १४६) इति गुणः । **वान्तो यि प्रत्यये** (पा० ६ । १ । ७९) इति अव् आदेशः टाप् च । शरव्या तया शरसंहत्या । **अमित्रान् ।** म० २ । हिंसकान् शत्रून् । **विविध्यतु** । म० २ । विशेषेण छिनत्तु भिनत्तु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (सपत्नः) प्रतिपक्षी और (यः) जो (असपत्नः) प्रकट प्रतिपक्षी नहीं है (च) और (यः) जो (द्विषन्) द्वेष करता हुआ (नः) हमको (शपाति) कोसे [क्रोशे]। (सर्वे) सब (देवाः) विजयी महात्मा (तम्) उसको (धूर्वन्तु) नाश करें, (ब्रह्म) परमेश्वर, (वर्म) कवचरूप (मम) मेरे (अन्तरम्) भीतर है ॥ ४ ॥

भावार्थः—छान बीन करके प्रकट और अप्रकट प्रतिपक्षियों और अनिष्ट-चिन्तकों को (देवाः) शूरवीर विद्वान् महात्मा नाश कर डालें। वह परब्रह्म सर्वरक्षक, कवच रूप होकर, धर्मात्माओं के रोम रोम में भर रहा है वही आत्मबल देकर युद्ध क्षेत्र में सदा उनकी रक्षा करता है ॥ ४ ॥

मन्त्र का उत्तरार्ध ऋ० ६। ७५। १९ में है ॥

सूक्तम् २० ॥

१–४ ॥ अथर्वा ऋषिः। सोमो मरुतश्च देवताः। १ जगती, २–४ अनुष्टुप् ॥

शत्रुभ्यो रक्षणोपदेशः—शत्रुओं से रक्षा का उपदेश ॥

अदा॑रसृद् भवतु देव सोमा॒स्मिन् य॒ज्ञे म॑रुतो मृ॒डता॑ नः।
मा नो॑ विद॒भि॒भा मो अ॑शा॒स्ति॒मा नो॑ विदद् वृजि॒ना द्वे॒ष्या॒ या ॥१॥

अदा॑रऽसृत्। भ॒व॒तु॒। दे॒व॒। सो॒म॒। अ॒स्मिन्। य॒ज्ञे। म॒रु॒तः॒। मृ॒डत॑। नः॒। मा। नः॒। वि॒दु॒त्। अ॒भि॒ऽभाः। मो इति॑। अ॒शा॒स्तिः। मा। नः॒। वि॒दु॒त्। वृ॒जि॒ना। द्वे॒ष्या॑। या ॥ १ ॥

४—**सपत्नः**। अ० १। ९। २। प्रतियोगी, शत्रुः। **असपत्नः**। अशत्रुः, अप्रकटशत्रुः। **द्विषन्**। द्विष अप्रीतौ–शतृः। द्वेषं कुर्वन्। **शपाति**। शप आक्रोशे–लेट्। शपेत्। **देवाः**। दीप्यमानाः। विजयिनः। शूराः। **धूर्वन्तु**। धुर्वी हिंसायाम्—हिंसन्तु नाशयन्तु। **ब्रह्म**। अ० १। १०। ४। परमेश्वरः। **वर्म**। **सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उ० ४। १४५) इति वृञ्–मनिन्। वृणोति आच्छादयति शरीरमिति। तनुत्रम्, सर्वथा रक्षकम्। **अन्तरम्**। यदन्ते समीपे रमते। अन्त + रम–डः। अन्तरात्मा। आभ्यन्तरं मध्ये भवम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(देव) हे प्रकाशमय, (सोम) उत्पन्न करने वाले परमेश्वर ! [वह शत्रु] (अदारसृत्) डर का न पहुँचाने वाला अथवा अपने स्त्री आदि के पास न पहुँचने वाला (भवतु) होवे, (मरुतः) हे [शत्रुओं के] मारने वाले देवताओ ! (अस्मिन्) इस (यज्ञे) पूजनीय काम में (नः) हम पर (मृडत) अनुग्रह करो। (अभिभाः) सन्मुख चमकती हुई, आपत्ति (नः) हम पर (मा विदत्) न आ पड़े, और (मो - मा उ) न कभी (अशस्तिः) अपकीर्ति और (या) जो (द्वेष्या) द्वेषयुक्त (वृजिना) पाप बुद्धि है [वह भी] (नः) हम पर (मा विदत्) न आ पड़े ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्य परमेश्वर के सहाय से शत्रुओं को निर्बल कर दें अथवा घर वालों से अलग रक्खें और विद्वान् शूरवीरों से भी सम्मति लेवें, जिससे प्रत्येक विपत्ति, अपकीर्त्ति और कुमति हट जाय और निर्विघ्न अभीष्ट सिद्ध होवे ॥ १ ॥

मरुत् देवताओं के बिजुली आदि के विमान हैं, इस पर वैज्ञानिकों को विशेष ध्यान देना चाहिये—ऋग्वेद में वर्णन है—

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कैः रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ बर्हिष्या न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥ ऋ० १ । ८८ । १ ॥

(मरुतः) हे शूर महात्माओ ! (विद्युन्मद्भिः) बिजुली वाले, (स्वर्कैः)

१—अदारसृत् । दारजारौ कर्तरि णिलुक् च (वा० पा० ३ । ३ । २०) इति दृ विदारणे—णिच्—घञ् । णिलुक् च । सृ गतौ—णिचि क्विप् । दारं दरं भयं सारयतीति दारसृत् । न दारसृत् अदारसृत् अभयप्रापकः, अहानिकरः । अथवा दारयन्ति दुःखानि विदारयन्ति यास्ताः स्त्रियः । स्त्र्यादिगृहस्थाः । दार + सृ—क्विप् । अगृहगामी । देव । हे दीप्यमान ! सोम । अ० १ । ६ । २ । हे सर्वोत्पादक परमेश्वर ! यज्ञे । अ० १ । ९ । ४ । पूज्यकर्मणि यागे, अध्वरे । मरुतः । मृग्रोरुतिः (उ० १ । ९४) इति मृङ् प्राणत्यागे—उतिः । मारयन्ति नाशयन्ति दुष्टान् दुर्गन्धादिदुर्गुणान् वा ते मरुतः, देवाः । वायुः । मरुत् हिरण्यनाम निघ० १ । २ । हे शूरवीरा देवाः । मृडत । मृड सुखने—लोट् मृडयत, सुखयत । नः । अस्मान् [त्रिवारं वर्तते] । मा विदत् । अ० १ । १९ । १ । विदृ लृ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी ज्वाला वाले [वा अच्छे विचारों से बनाये गये], (ऋष्टिमद्भिः) दोधारा तलवारों वाले [आगे-पीछे, दायें-बायें, ऊपर-नीचे चलाने की कलाओं वाले] (रथेभिः) रथों से (आ यात) तुम आओ, और (सुमायाः) हे उत्तम बुद्धि वाले ! (नः) हमारे लिये (वर्षिष्ठया) अति उत्तम (इषा) अन्न के साथ (वयः नः) पक्षियों के समान (आ पप्तत) उड़ कर चले आओ ॥

यो अद्य सेन्यो वधो घायूनामुदीरते ।
युवं तं मित्रावरुणावस्मद् यावयतं परि ॥ २ ॥

यः । अद्य । सेन्यः । वधः । अघऽयूनाम् । उत्ऽईरते ।
युवम् । तम् । मित्रावरुणौ । अस्मत् । यवयतम् । परि ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अद्य) आज (अघायूनाम्) बुरा चीतने वाले शत्रुओं की (सेन्यः) सेना का चलाया हुआ (यः) जो (वधः) शस्त्र प्रहार (उदीरते) उठ रहा है। (मित्रावरुणौ) हे [हमारे] प्राण और अपान (युवम्) तुम दोनों (तम्) उस [शस्त्र प्रहार] को (अस्मत्) हम लोगों से (परि) सर्वथा (यावयतम्) अलग रक्खो ॥ २ ॥

लाभे लुङ् । मा लभताम्, मा प्राप्नोतु । **अभि-भाः** । अभि, धर्षणे, आभिमुख्ये वा + भा दीप्तौ-क्विप् । अभिभूय भाति दीप्यते । अभिभाः=अभिभूतिः-निरु० ९ । ४ । परोपद्रवः । आपत्तिः । **मो** । मा-उ । मैव । **अशस्तिः** । शंसु स्तुतौ-क्तिन् । अपकीर्त्तिः । **वृजिना** । **वृजेः किच्च** (उ० २ । ४७) इति वृजी वर्जने-इनच् स च कित्, टाप् । यद्वा । **अर्श आदिभ्योऽच्** (पा० ५ । २ । १२७) इति वृजन-अस्त्यर्थे अच् टाप् च । वृजनं पापमस्यास्तीति वृजना । वक्रा, कुटिला, पाप-बुद्धिः । **द्वेष्या** । **ऋहलोर्ण्यत्** (पा० ३ । १ । १२४) इति द्विष अप्रीतौ-कर्मणि ण्यत् । द्वेषणीया, अप्रीता ॥

२—**अद्य** । अ०१।१।१ । वर्तमाने दिने । **सेन्यः** । **भवे छन्दसि** (पा० ४ । ४ । ११०) इति सेना-यत् । सेनायां भवः । **वधः** । **हनश्च वधः** (पा० ३ । ३ । ७६) इति हन हिंसागत्योः—अप्, वधादेशः । हननसाधनः, शस्त्रप्रहारः । **अघा-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—'मित्रावरुणौ' का अर्थ महर्षि दयानन्द सरस्वती ने [य० २ । ३] प्राण और अपान किया है। जो वायु शरीर के भीतर जाता है वह प्राण और जो बाहिर निकलता है वह अपान कहाता है। जिस समय युद्ध में शत्रु सेना आ दबावे उस समय अपने प्राण और अपान वायु को यथायोग्य सम रखकर और सचेत होकर शरीर में बल बढ़ाकर सैन्यक लोग युद्ध करें, तो शत्रुओं पर शीघ्र जीत पावें ॥

२—श्वास के साधने से मनुष्य स्वस्थ और बलवान् होते हैं ॥

३—प्राण और अपान के समान उपकारी और बलवान् होकर योद्धा लोग परस्पर रक्षा करें ॥ २ ॥

इतश्च॒ यदमु॒तश्च॒ यद् व॒धं व॑रुण यावय ।
वि म॒हच्छर्म॑ यच्छ॒ वरी॑यो यावया व॒धम् ॥ ३ ॥

इ॒तः । च॒ । यत् । अ॒मु॒तः । च॒ । यत् । व॒धम् । व॒रु॒ण॒ । य॒व॒य॒ ।
वि । म॒हत् । शर्म॑ । य॒च्छ॒ । वरी॑यः । य॒व॒य॒ । व॒धम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(वरुण) हे सबमें श्रेष्ठ, परमेश्वर! (इतः च) इस दिशा से (च) और (अमुतः) उस दिशा से (यत् यत्) प्रत्येक (वधम्) शत्रु

यूनाम् । अघ पापकरणे–अच् । अघम्, पापम् । **सुप आत्मनः क्यच्** (पा० ३ । १ । ८) इत्यत्र **छन्दसि परेच्छायामिति वक्तव्यम्** इत्यनेन वार्त्तिकेन अघ–क्यच् । **क्याच् छन्दसि** (पा० ३ । २ । १७०) इति उप्रत्ययः । **अश्वाघस्यात्** (पा० ७।४। ३७) इति आत्वम् । पापेच्छूनाम् । दुराचारिणाम् । **उत्-ईरते** । ईर गतौ उद्गच्छति, उत्तिष्ठति । **युवम्** । युवाम् । **मित्रावरुणौ** । अ० १ । ३ । २, ३ । मित्रश्च वरुणश्च । **देवताद्वन्द्वे च** (पा० ६ । ३ । २६) इति पूर्वपदस्य आनङ्-आदेशः । प्राणापानौ । **यावयतम्** । यु मिश्रणामिश्रणयोः–ण्यन्तात् लोट् । वियोजयतम्, पृथक् कुरुतम् ॥

३—इतः । **पञ्चम्यास्तसिल्** (पा० ५ । ३ । ७) इति इदम्—तसिल् । अस्मात् स्थानात् । **अमुतः** । अदस्—तसिल् पूर्ववत् । तस्माद् देशात् । **यत्-यत्** । इति अव्ययद्वयम् । प्रत्येकं वधं यः कश्चिद् भवेत् इत्यर्थे । **वधम्** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रहार को (यावय) हटा दे। (महत्) [अपनी] बड़ी (शर्म) शरण को (वि) अनेक प्रकार से (यच्छ) [हमें] दान कर, और (वधम्) [शत्रुओं के] प्रहार को (वरीयः) बहुत दूर (यावय) फैंक दे ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो सेनापति ईश्वर पर विश्वास करके अपनी सेना को प्रयत्न पूर्वक शत्रु के प्रहार से बचाता और उनमें बैरी को जीतने का उत्साह बढ़ाता है वह शूरवीर जीत पाकर आनन्द पाता है ॥ ३ ॥

मन्त्र का पिछला आधा ऋ० १०। १५२। ५ का दूसरा आधा है, वहां 'महत्' के स्थान में 'मन्योः' शब्द है ॥

शासं इत्था महाँ अंस्यमित्रसाहो अंस्तृतः।
न यस्यं हन्यते सखा न जीयतें कदा चन ॥ ४ ॥

शासः । इत्था । महान् । असि । अमित्रऽसहः । अस्तृतः । न । यस्य । हन्यते । सखा । न । जीयते । कदा । चन ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(इत्था) सत्य सत्य (महान्) बड़ा (शासः) शासनकर्ता (अमित्रसहः) शत्रुओं को हराने हारा और (अस्तृतः) कभी न हारने हारा (असि) तू है। (यस्य) जिसका (सखा) मित्र (कदा चन) कभी भी (न) न (हन्यते) मारा जाता है और (न) न (जीयते) जीता जाता है ॥ ४ ॥

म० २। शस्त्रप्रहारम्। **वरुण**। अ० १। ३। ३। हे वरणीय, परमेश्वर! **यावय**। म० २। वियोजय। **महत्**। अ० १। १०। ४। विपुलं विस्तीर्णम्। **शर्म**। **सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उ० ४। १४५) इति शॄ हिंसायाम्-मनिन्। स्वशरणम्, सुखम्। **वि**। विशेषेण। **यच्छ**। **पाघ्राध्मास्थाम्ना०** (पा० ७। ३। ७८) इति दाण्—दाने-यच्छादेशः। देहि। **वरीयः**। अ० १।२।२। उरुतरम् विस्तीर्णतरम्, दूरतरम् ॥

४—शासः। **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** (पा० ३। १। १३४) इति शासु अनुशिष्टौ-पचाद्यच्। **चितः** (पा० ६। १। १६३) इति अन्तोदात्तः। शासकः, नियन्ता, वरुणः। **इत्था**। सत्यनाम-निघ० ३। १०। सत्यम्। **महान्**। अ० १। १०। ४। सर्वोत्कृष्टः। **महाँ असि**। इत्यत्र संहितायाम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—वह परमात्मा (वरुण) सर्वशक्तिमान् शत्रुनाशक है इस प्रकार श्रद्धा करके जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक, आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक बल बढ़ाते रहते हैं वह ईश्वर के भक्त दृढ़ विश्वासी अपने शत्रुओं पर सदा जय प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १० । १५२ । १ में है ॥

सूक्तम् २१ ॥

१—४ ॥ अथर्वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ८×४ अक्षराणि ॥

राजनीतिस्वस्तिस्थापनोपदेशः—राजनीति और शान्ति स्थापन का उपदेश ॥

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ॥ १ ॥

स्वस्तिऽदाः । विशाम् । पतिः । वृत्रऽहा । विऽमृधः । वशी । वृषा । इन्द्रः । पुरः । एतु । नः । सोमऽपाः । अभयम्ऽकरः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(स्वस्तिदाः) मंगल का देने हारा, (विशाम्) प्रजाओं का (पतिः) पालने हारा (वृत्रहा) अन्धकार मिटाने हारा (विमृधः) शत्रुओं

दीर्घादटि समानपादे (पा०८। ३ । ९) इति नकारस्य रुत्वम् । आतोऽटि नित्यम् (पा० ८ । ३ । ३) इति आकारस्य अनुनासिकः । अमित्र-सहः । अमेर्हिंसति चित् (उ० ४ । १७४) इति अम रोगे—इत्रच् । षह मर्षणे—पचाद्यच् । चितः (पा० ६ । १ । १६३) इति अन्तोदात्तः । अमित्राणां शत्रूणां सोढा, अभिभविता । अस्तृतः । स्तृञ् आच्छादने—कर्मणि क्तः । अहिंसितः । न । निषेधे । यस्य । वरुणस्य । हन्यते । सार्वधातुके यक् (पा० ३ । १ । ६७) इति कर्मणि यक् । हिंस्यते । अभिभूयते । सखा । समाने ख्यः स चोदात्तः (उ० ४ । १३७) इति समान+ख्याञ् प्रकथने—इन् । टिलोपयलोपौ समानस्य सभावश्च । अनङ् सौ (पा० ७ । १ । ९३) इति अनङ् । मित्रम्, सुहृद् । जीयते । जि जये—पूर्ववद् यक् । अभिभूयते । कदा । कस्मिन् काले । चन । अपि ॥

१—स्वस्तिदाः । मावसेः (उ० ४ । १८१) इति सु+अस भुवि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (वशी) वश में करने हारा (वृषा) महा बलवान् (सोमपाः) अमृत रस का पीने हारा (अभयंकरः) अभय दान करने हारा (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला राजा (नः) हमारे (पुरः) आगे आगे (एतु) चले ॥ १ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य मन्त्रोक्त गुणों से युक्त राजा को अपना अगुआ बनाते हैं, वे अपने सब कामों में विजय पाते हैं ॥

२ वह जगदीश्वर सब राजा महाराजाओं का लोकाधिपति है उसको अपना अगुआ समझकर सब मनुष्य जितेन्द्रिय हों ॥ १ ॥

इस सूक्त में ऋग्वेद १० । १५२ मन्त्र २—५ कुछ भेद के साथ हैं ॥

तिप्रत्ययः । ततः **क्विप् च** (पा० ३ । २ । ७६) इति डुदाञ् दाने—क्विप् । **समासस्य** (पा० ६ । १ । २२३) इति अन्तोदात्तः । क्षेमप्रदः । **विशाम्** । विश प्रवेशने—क्विप् । विशः, मनुष्याः—निघ० २ । ३ । प्रजानाम् मनुष्याणाम् । **पतिः** । अ० १ । १ । १ । पालकः, स्वामी । **वृत्रहा** । **स्फायितञ्चिवञ्चि०** (उ० २ । १३) इति वृतु वर्तने—रक् । वृत्रः, अन्धकारः । शत्रुः । **ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्** (पा० ३ । २ । ८७) इति हन हिंसागत्योः—क्विप् । शत्रुनाशकः । अन्धकार-निवारकः । **विमृधः** । वि + मृधु रुन्धे—क्विप् । विशेषेण हिंसकान् । शत्रून् । **अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः** (पा० २।३।७०) इति वशी इतीत्यन्तेन शब्देन सह द्वितीया, यथा । **मां कामिन्यसः** । अ० १ । ३४ । ५ । **वशी** । वशोऽस्त्यस्य । **अत इनिठनौ** (पा० ५ । २ । ११५) इति वश कान्तौ—इनिः । वश-यिता । **वृषा** । अ० १ । १२ । १ । सुखस्य वर्षयिता, महाबली । **इन्द्रः** । अ० १।७। ३ । परमेश्वरः । राजा । जीवः । **पुरः** । पुरस्तात्, अग्रे । **एतु** । इण् गतौ । गच्छतु, अग्रगामी भवतु । **सोमपाः** । **आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च** (पा०३।२।७४) सोम + पा पाने—विच् । सोमस्य अमृतरसस्य पानशीलाः । **अभयम्-करः** । **मेघर्तिभयेषु कृञः** (पा० ३ । २ । ४३) इत्यत्र **उपपदविधौ भयादिग्रहणं तदन्तविधिं प्रयोजयति** इति वचनेन अभयशब्दोपपदे-अभय + कृञ्-खच् । **अरुर्द्वि-षदजन्तस्य मुम्** (पा० ६ । ३ । ६७) इति मुम् आगमः । अभयस्य रक्षणस्य जयस्य कर्ता ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि नं इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥ २ ॥

वि । नः । इन्द्र । मृधः । जहि । नीचा । यच्छ । पृतन्यतः ।
अधमम् । गमय । तमः । यः । अस्मान् । अभिऽदासति ॥ २ ॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् ! (नः) हमारे (मृधः) शत्रुओं को (वि जहि) मार डाल, (पृतन्यतः) और सेना चढ़ाकर लानेहारों को (नीचा) नीचे करके (यच्छ) रोक दे । (यः) जो (अस्मान्) हमको (अभिदासति) हानि पहुंचावे उसको (अधमम्) नीचे (तमः) अन्धकार में (गमय) पहुंचा दे ॥ २ ॥

भावार्थः—१, न्यायशील, प्रतापी राजा अन्यायी दुराचारियों को परमेश्वर के दिये हुये बल से सब प्रकार परास्त करके दृढ़ बन्दीगृह में डाल दे ॥

२—महा बली परमेश्वर को हृदयस्थ समझ कर सब मनुष्य अपनी कुवृत्तियों का दमन करें ॥ २ ॥

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥ ३ ॥

वि । रक्षः । वि । मृधः । जहि । वि । वृत्रस्य । हनू इति । रुज ।
वि । मन्युम् । इन्द्र । वृत्रऽहन् । अमित्रस्य । अभिऽदासतः ॥ ३ ॥

२—**वि** । विविधम् । **मृधः** । म० १ । मृधु रुन्धे, उन्दने च—क्विप् । मर्धयितॄन्, हिंसकान्, शत्रून् । **जहि** । अ० १ । ८ । ३ । नाशय । **नीचा** । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) नीचैःशब्दात् सुपो डाप्रत्ययः, डित्त्वात् टिलोपः । नीचैः । **यच्छ** । अ० १ । १ । ३ । नियमय, न्यग्भूतान् कुरु । **पृतन्यतः** । **सुप आत्मनः क्यच्** (पा० ३ । १ । ८) इति पृतना—क्यच् । **कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः** (पा० ७ । ४ । ३९) इति आकारलोपः । तदन्तस्य धातुसंज्ञायां लटः शतृः । युद्धार्थं पृतनां सेनाम् आत्मन इच्छतः शत्रून् । **अधमम्** । अधस् + मप्रत्ययः, अन्त्यलोपः । अतिनीचम् । निकृष्टम् । **गमय** । गम्लृ णिचि—लोट् द्विकर्मकः । प्रापय तं शत्रुम् । **तमः** । तमु काङ्क्षायाम्—असुन् । अन्धकारम् । **अस्मान्, अभिदासति** । व्याख्यातम् अ० १ । १९ । ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(रक्षः=रक्षांसि) राक्षसों और (मृधः) हिंसकों को (वि वि) सर्वथा (जहि) तू मार डाल, (वृत्रस्य) शत्रु के (हनू) दोनों जाबड़ों को (विरुज) तोड़ दे, (वृत्रहन्) हे अन्धकार मिटाने हारे (इन्द्र) बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् ! (अभिदासतः) चढ़ाई करने हारे (अमित्रस्य) पीडाप्रद शत्रु के (मन्युम्) कोप को (वि=वि रुज) भंग कर दे ॥ ३ ॥

भावार्थः—१, राजा को पुरुषार्थी हो कर शत्रुओं का नाश करके और प्रजा में शान्ति फैलाकर आनन्द भोगना चाहिये ॥

२—सर्वरक्षक परमेश्वर के प्रताप से मनुष्य अपने बाहिरी और भीतरी शत्रुओं को निर्बल करें ॥ ३ ॥

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥ ४ ॥

अप । इन्द्र । द्विषतः । मनः । अप । जिज्यासतः । वधम् ।
वि । महत् । शर्म । यच्छ । वरीयः । यवय । वधम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् (द्विषतः) बैरी के (मनः) मन को (अप=अपकृत्य) तोड़कर, और (जिज्यासतः) [हमारी] आयु की हानि

३—रक्ष । रक्ष पालने—असुन् । रक्षो रक्षितव्यमस्मात्—निरु० ४ । १८ । जातावेकवचनम् । राक्षसम् । शत्रुम् । **वि** । विशेषेण, सर्वथा । **मृधः** । म० २ । मर्धयितॄन्, हिंसकान् । **जहि** । म० २ । नाशय । **वृत्रस्य** । म० १ । शत्रोः । **हनू** । **शॄस्वृस्निहि०** (उ० १ । १०) इति हन हिंसागत्योः—उप्रत्ययः । हन्ति कठोरद्रव्यादिकमिति हनुः । कपोलद्वयोपरिमुखभागौ । **रुज** । रुजो भङ्गे—तुदादिः । भङ्ग्धि । विदारय । **वि** । विरुज । **मन्युम्** । अ० १ । १० । १—क्रोधं, कोपम् । **वृत्रहन्** । म० १ । हे अन्धकारनाशक ! । **अमित्रस्य** । अ० १ । १९ । २ । पीडकस्य, शत्रोः । **अभिदासतः** । दसु उपक्षये—शतृः । उपक्षपयतः, उत्क्षेपणशीलस्य ॥

४—अप । अपकृत्य, तिरस्कृत्य । **द्विषतः** । द्विष अप्रीतौ—शतृः । अप्रीति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहने हारे शत्रु के (वधम्) प्रहार को (अप=अपवृत्य) छिन्न भिन्न करके (महत् शर्म) [अपना] विस्तीर्ण शरण (वि यच्छ) [हमें] दान कर, और (वधम्) [शत्रु के] प्रहार को (वरीयः) बहुत दूर (यावय) फेंक दे ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर के विश्वास से मनुष्य अपने पुरुषार्थ और बुद्धि बल से शत्रु को निरुत्साही करके विजयी होवें ॥ ४ ॥

टिप्पणी—पिछले आधे मन्त्र के लिये १ । २० । २ देखो ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

करस्य शत्रोः । मनः । अ० १ । १ । २ । अन्तःकरणं हृदयम् आत्मबलम् । जिजीवासतः । धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा (पा० ३ । १ । ७) इति ज्या वयोहानौ—सन् प्रत्ययः । सन्यङोः (पा० ६ । १ । ९) इति द्विर्वचने हलादिः शेषे ह्रस्वे च कृते सन्यतः (पा० ७ । ४ । ७९) इति अभ्यासस्याकारस्य इत्वम् । सन्नन्तस्य धातुसंज्ञायां लटः शतृः । वयोहानिमिच्छतः, अस्मान् जेतुमिच्छतः पुरुषस्य । वधम् । अ० १ । २० । २ । प्रहारम् । अन्यद व्याख्यातम् । अ० १ । २० । ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २२ ॥

१–४ ॥ ब्रह्मा ऋषिः । सूर्यो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

रोगनाशोपदेशः—रोग नाश के लिये उपदेश ॥

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते ।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥ १ ॥

अनु । सूर्यम् । उत् । अयताम् । हृत्-द्योतः । हरिमा । च । ते । गोः । रोहितस्य । वर्णेन । तेन । त्वा । परि । दध्मसि ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (हृद्-द्योतः) हृदय की सन्ताप [चमक] (च) और (हरिमा) शरीर का पीलापन (सूर्यम् अनु) सूर्य के साथ साथ (उद् अयताम्) उड़ जावे । (रोहितस्य) निकलते हुये लाल रंग वाले (गोः) सूर्य के (तेन) प्रसिद्ध (वर्णेन) रंग से (त्वा) तुझको (परि) सब प्रकार से (दध्मसि) हम पुष्ट करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—प्रातः और सायं काल सूर्य की किरणें तिरछी पड़ने से रक्त वर्ण दीखती हैं, और वायु शीतल, मन्द, सुगन्ध चलता है । उस समय मानसिक और शारीरिक रोगी को सद्वैद्य वायु सेवन और ओषधि सेवन करावें,

---

१—**अनु** । **अनुर्लक्षणे** (पा० १ । ४ । ८४) लक्षणेऽर्थे अनोः कर्मप्रवचनीयत्वम् । **कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया** (पा० २ । ३ । ८) इति सूर्यशब्दस्य द्वितीया । लक्षीकृत्य । **सूर्यम्** । अ० १ । ३ । ५ । लोकप्रेरकम् । आदित्यम् । **उत्+**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे वह स्वस्थ हो जाये और रुधिर के संचार से उसका रंग रक्त सूर्य के समान लाल चमकीला हो जाये ॥ १ ॥

१—(गौः) सूर्य है वह रसों को ले जाता [और पहुँचाता] है, और अन्तरिक्ष में चलता है—निरु० २ । १४ ॥

२—मनु महाराज ने भी दो सन्ध्याओं का विधान [स्वस्थता के लिये] किया है—

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात् ।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥ मनु० २ । १०१ ॥

प्रातःकाल की संध्या में गायत्री को जपता हुआ सूर्य दर्शन होने तक स्थित रहे और सायंकाल की सन्ध्या में तारों के चमकने तक बैठा हुआ ठीक ठीक जप करे ॥

परि॑ त्वा रोहि॒तैर्वर्णै॒र्दीर्घायु॒त्वाय॑ दध्मसि ।
यथा॒यम॑र॒पा अस॒दथो॒ अहा॑रितो॒ भुव॑त् ॥ २ ॥

परि॑ । त्वा । रोहि॒तैः । वर्णैः॑ । दी॒र्घायु॑ऽत्वाय । दध्मसि॒ । यथा॑ । अ॒यम् । अ॒र॒पाः । अस॑त् । अथो॒ इति॑ । अहा॑रितः । भुव॑त् ॥ २ ॥

अयताम् । अय गतौ । अनुदात्तेत्त्वाद् आत्मनेपदम् । उद्गच्छतु, विनश्यतु, इति यावत् । **हृद्द्योतः ।** द्युतौ दीप्तौ—भावे घञ् । हृदयस्य सन्तापः । **हरिमा । वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च** (पा० ५ । १ । १२३) इति हरित्—भावे इमनिच् । **यचि भम्** (पा० १ । ४ । १८) इति भसंज्ञायाम् **टेः** (पा० ६ । ४ । १४३) इति टिलोपः । **चितः** (पा० ६ । १ । १६३) इति अन्तोदात्तः । कामिलादि-रोगजनितः शारीरो हरिद्वर्णः । **गोः ।** पुंल्लिङ्गम् । **गमेर्डोः** (उ० २ । ६७) गम्लृ गतौ—डोः । गौरादित्यो भवति गमयति रसान् गच्छत्यन्तरिक्षे—इति भगवान् यास्कः—निरु० २ । १४ । आदित्यस्य, सूर्यस्य । **रोहितस्य । रुहेरश्च लो वा** (उ० ३ । ९४) इति रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च—इतन् । प्रादुर्भूतस्य, उदितस्य । प्रभातकाले रक्तवर्णस्य । **वर्णेन ।** वर्ण वर्णक्रियाविस्तारगुणवचनेषु—घञ् । रागेण, रञ्जनेन । रूपेण । **दध्मसि ।** दध्मः पोषयामः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(रोहितैः) लाल (वर्णैः) रंगों के साथ (त्वा) तुझको (दीर्घायुत्वाय) चिर काल जीवन के लिये (परि) सब प्रकार से (दध्मसि) हम पुष्ट करते हैं। (यथा) जिससे (अयम्) यह (अरपाः) नीरोग (असत्) हो जाये, (अथो) और (अहरितः) पीले वर्ण रहित (भुवत्) रहे ॥ २ ॥

भावार्थः—सद्वैद्य और कुटुम्बी लोग रोगी को प्रातः सायम् वायु सेवन और औषधि सेवन कराकर स्वस्थ करें कि रुधिर संचार से उसका शरीर रक्त वर्ण हो जाय और ज्वर, पीलिया आदि रोग का पीलापन शरीर से जाता रहे ॥ २ ॥

या रोहिणीर्देवत्या३ गावो या उत रोहिणीः ।
रूपंरूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परि दध्मसि ॥ ३ ॥

याः । रोहिणीः । देवत्याः । गावः । याः । उत । रोहिणीः । रूपम्ऽरूपम् । वयःऽवयः । ताभिः । त्वा । परि । दध्मसि ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(याः) जो (देवत्याः) दिव्य गुण युक्त (रोहिणीः) स्वास्थ्य उत्पन्न करने वाली ओषधें (उत) और (याः) जो (रोहिणीः) लाल वर्ण वाली (गावः) दिशायें हैं। (ताभिः) उन सबके साथ (त्वा) तुझको (रूपम्-

---

२—**त्वा**। त्वां रोगिणम्। **रोहितैः**। म० १। लोहितैः, रक्तैः। **वर्णैः**। म० १। रङ्गैः। रञ्जनैः। **दीर्घायुत्वाय**। दीर्घ-आयुत्वाय। **छन्दसीणः** (उ० १।२) दीर्घ+इण् गतौ-उण्, भावे त्वप्रत्ययः। चिरकालजीवनाय। **परि दध्मसि**। म० १। सर्वतः पोषयामः। **अरपाः**। **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४। १८९) इति रप लप व्यक्तायां वाचि-असुन्। रपो रिप्रमिति पापनामनी भवतः—निरु०४।२१। अपापः, नीरुजः, नीरोगः। **असत्**। अस भुवि-लेट्। भवेत्। **अथो**। अथ—उ। तदनन्तरम् एव। **अहरितः**। **हृश्याभ्यामितन्** (उ० ३। ९३) इति न+हृञ् हरणे—इतन्। पीतवर्णरहितः। **भुवत्**। भू सत्तायाम्-लेट्। भवेत्॥

३—**रोहिणीः**। **रुहेश्च** (उ० २। ५५) इति रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च—इनन्। **षिद्गौरादिभ्यश्च** (पा०४।१।४१) इति गौरादित्वात् ङीष्। **वा छन्दसि**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपम्) सब प्रकार की सुन्दरता और (वयःवयः) सब प्रकार के बल के लिये (परि दध्मसि) हम सर्वथा पुष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—जब सूर्य की किरणों से दिशायें रक्त वर्ण दिखायी देती हैं तब प्रातः सायं दोनों समय सद्वैद्य रोगी को सुपरीक्षित औषधों और यथायोग्य वायु सेवन से स्वस्थ करके सब प्रकार से हृष्ट पुष्ट और बलवान् करें ॥ ३ ॥

सुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥४॥

सुकेषु । ते । हरिमाणम् । रोपणाकासु । दध्मसि ।
अथो इति । हारिद्रवेषु । ते । हरिमाणम् । नि । दध्मसि ॥ ४ ॥

भावार्थः—(सुकेषु) उत्तम उत्तम उपदेशों में और (रोपणाकासु) लेप आदि क्रियाओं में (ते) तेरे (हरिमाणम्) सुख हरने वाले शरीर रोग को (दध्मसि) हम रखते हैं। (अथो) और भी (हारिद्रवेषु) रुचि रसों में (ते) तेरे (हरिमाणम्) चित्त विकार को (नि) निरन्तर (दध्मसि) हम रखते हैं ॥ ४ ॥

(पा० ६ । १ । १०६) जसि पूर्वसवर्णदीर्घः । रोहयन्ति जनयन्ति स्वास्थ्यं ताः रोहिण्यः, ओषधयः, । देवत्याः । **भवे छन्दसि** (पा० ४ । ४ । ११०) इति देवता-यत् । दिव्यगुणयुक्ताः । **गावः** । स्त्रीलिङ्गम् । दिशः । **रोहिणीः** । **वर्णादनुदात्तात् तोपधात् तो नः** (पा० ४ । १ । ३९) इति रोहित-ङीप्, तकारस्य नकारः । जसि पूर्वसवर्णदीर्घः, रोहिण्यः, लोहितवर्णाः प्रातः सायंकालभवाः । **रूपं-रूपम्** । **नित्यवीप्सयोः** (पा० ८ । १ । ४) इति द्विर्वचनम् । सर्वसौन्दर्येण । सर्वसौन्दर्याय । **वयः-वयः** । वय गतौ-असुन् । वीप्सायां द्विर्वचनम् । कृत्स्नेन यौवनेन, सर्वेण सामर्थ्येन । सर्वसामर्थ्याय । **ताभिः** । गोभिश्च रोहिणीभिश्च ॥

४—**सुकेषु** । **अन्येष्वपि दृश्यते** (पा० ३ । २ । १०१) इति सु + कै + शब्दे, यद्वा, कचि दीप्तौ-डः । उत्तमेषु शब्देषु । उपायकथनेषु । **हरिमाणम्** । म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः— सद्वैद्य बाहिरी शारीरिक रोगों को यथायोग्य ओषधि और लेप आदि से, तथा भीतरी मानसिक रोगों को उत्तम उत्तम ओषधि रसों से नाश करके रोगी को स्वस्थ करें ॥ ४ ॥

यह मन्त्र ऋ० १ । ५० । १२ में कुछ भेद से है वहाँ (सुकेषु) के स्थान में [शुकेषु] है । और सायण भाष्य में भी [शुकेषु] माना है । परन्तु तीनों अथर्व-संहिताओं में (सुकेषु) पाठ है वही हमने लिया है । सायणाचार्य ने [शुक] का अर्थ तोता पक्षी और रोपणाका का [काष्ठशुक] नाम हरिद्वर्ण पक्षी अथर्ववेद में और [शारिका पक्षी विशेष] अर्थात् मैना ऋग्वेद में, और (हारिद्रव) का अर्थ [गोपीतनक नाम हरिद्वर्ण पक्षी] अथर्ववेद में, और [हरिताल का वृक्ष] ऋग्वेद में किया है इस अर्थ का यह आशय जान पड़ता है कि रोग विशेषों में पक्षी विशेषों को रोगी के पास रखने से भी रोग की निवृत्ति होती है ॥

सूक्तम् २३ ॥

१–४ ॥ अथर्वा ऋषिः । ओषधिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

महारोगनाशोपदेशः—महारोग के नाश के लिये उपदेश ॥

नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च ।
इदं रंजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥ १ ॥

रोगजनितं हरिद्वर्णम्, सुखहरणशीलं रोगं शारीरिकं हार्दिकं वा । **रोपणाकासु** । रोपण–आकासु । रुह प्रादुर्भावे, णिच्–ल्युट्, हस्य पः । व्रणरोगे मांसाङ्कुरजननार्थक्रियादिकं इति रोपणम्, ततः, आ + कमु कान्तौ–डः । "रोपणं समन्तात् कामयन्ति तासु क्रियासु लिप्तास्वोषधीषु"—इति श्रीमद्दयानन्द-भाष्यम् ऋ० १ । ५० । १२ । **दध्मसि** । म० १ । वयं धारयामः, स्थापयामः । **हारिद्रवेषु** । **वसिवपियजि०** (उ० ४ । १२५) इति हृञ् हरणे—इन् । हरति रोगमिति हारिः, रुचिरः, मनोहरः । **ऋदोरप्** (पा० ३ । ३ । ५७) इति द्रु गतौ–अप्=द्रवः, रसः । रुचिररसेषु । **नि** । नियमेन ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक्तम्जाता । असि । ओषधे । रामे । कृष्णे । असिक्नि । च । इदम् । रजनि । रजय । किलासम् । पलितम् । च । यत् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ओषधे) हे उष्णता रखने हारी, ओषधि तू (नक्तंजाता) रात्रि में उत्पन्न हुई (असि) है, जो तू (रामे) रमण कराने हारी (कृष्णे) चित्त को खींचने हारी, (च) और (असिक्नी) निर्बन्ध [पूर्ण सार वाली] है। (रजनि) हे उत्तम रंग करने हारी ! तू (इदम्) यह (यत्) जो (किलासम्) रूप का बिगाड़ने हारा कुष्ट आदि (च) और (पलितम्) शरीर का श्वेतपन रोग है [उसको] (रजय) रंग दे ॥ १ ॥

भावार्थः—सद्वैद्य उत्तम परीक्षित औषधों से रोगों की निवृत्ति करे ॥ १ ॥

१—रात में उत्पन्न हुई ओषधि से यह आशय है कि ओषधें,[1] गेहूं, जौ, चावल आदि अन्न, और कमल आदि रोगनिवर्त्तक पदार्थ, चन्द्रमा की किरणों से पुष्ट होकर उत्पन्न होते हैं ॥

१—नक्तम्जाता । नजी[2] व्रीडायाम्—क्तः । नजते लज्जां प्राप्नोति अस्याम् । यद्वा नक्क नाशने-क्तः । नक्कयति नाशयति प्रकाशम् इति नक्तं रात्रिः । जनी प्रादुर्भावे—क्तः । रात्रौ जाता उत्पन्ना । अज्ञातजन्मा । **ओषधे ।** ओषः पाको धीयतेऽस्याम्, ओष+डुधाञ् धारणपोषणयोः—**कर्मण्यधिकरणे च** (पा० ३ । ३ । ९३) इति किप्रत्ययः । ओषधय ओषद् धयन्तीति, ओषत्येना धयन्तीति वा दोषं धयन्तीति वा—निरु० ९।२७। अस्यार्थः—ओषत् शरीरे दहद् रोगजातं धयन्ति पिबन्ति नाशयन्ति । ओषति दाहके ज्वरादौ एना धयन्ति पिबन्ति रोगिणो दाहोपशमनाय । पक्षद्वये, ओषत्+धेट् पाने—किः । अथवा दोषं वातपित्तादिकं धयन्तीति वा । दोष+धेट् किः । पृषोदरादित्वाद् दलोपः । हे रोगनाशकद्रव्य ! । **रामे ।** रमु क्रीडायाम् णिच् वा—घञ् । टाप् । रमते रमयति वेति रामा, हे रमणशीले रमणकारिणि, सुखप्रदे । **कृष्णे । कृषेर्वर्णे** (उ० ३ । ४) इति बाहुलकात् वर्णं विनापि कृष विलेखने—नक् । टाप् । कर्षति आनन्दयति चित्तानि स्वमनोहरगुणेन । यद्वा, कर्षति वशीकरोति रोगान् सा कृष्णा । हे आकर्षणशीले । **असिक्नि । अश्विघृसिभ्यः क्तः** (उ० ३ । ८९) इति षिञ् बन्धने—क्तः । अथवा षो अन्तकर्मणि—क्तः नञ्समासः । **छन्दसि वनमित्येके** (वा० पा० ४ । १ । ३९) इति असित—

---

१. ओषध्यः फलपाकान्ताः, इति काशिका (काशि० ८ । ४ । ६) ॥ सम्पा० ॥

२. द्र. सं. धा. को. पृ. ५९, क्षीर. तुदा. १२ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—इसी प्रकार मनुष्यों को गर्भाधान क्रिया रात्रि में करनी चाहिये ॥

३—ओषधि आदि मूर्त्तिमान् पदार्थ पांच तत्त्वों से बने हैं तो भी उनके भिन्न २ आकार और भिन्न २ गुण हैं, यह मूल संयोग वियोग क्रिया ईश्वर के अधीन है, वस्तुतः मनुष्य के लिये यह कर्म रात्रि अर्थात् अंधकार वा अज्ञान में है ॥

४—प्रलय रूपी रात्रि के पीछे, पहिले अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं फिर मनुष्य आदि की सृष्टि होती है ॥ १ ॥

किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत् ।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ॥ २ ॥

किलासम् । च । पलितम् । च । निः । इतः । नाशय । पृषत् ।
आ । त्वा । स्वः । विशताम् । वर्णः । परा । शुक्लानि । पातय ॥ २ ॥

भाषार्थः—[हे ओषधि !] (इतः) इस [पुरुष] से (किलासम्) रूप बिगाड़ने वाले कुष्ठ आदि रोग को (च) और (पलितम्) शरीर के श्वेतपन (च) और (पृषत्) विकृत चिह्न को (निर्णाशय) निरन्तर नाश कर दे । (स्वः वर्णः) [रोग

ङीप्, तकारस्य कनः । असिता असिक्नी । हे अबद्धशक्ते, अखंडवीर्ये, पूर्णसार-युक्ते । **रजनि । रञ्जेः क्युन्** (उ० २ । ७९) इति रञ्ज रागे–क्युन्, स्त्रियां ङीष् । रञ्जयतीति रजनी । हे सुरञ्जनशीले ! **रजय** । रञ्ज रागे, नकारलोपः । रञ्जय, स्वाभाविकरागयुक्तं कुरु । **किलासम्** । क्लीबलिंगम् । किल श्वैत्य-क्रीडनयोः–कः । **कर्मण्यण्** (पा० ३ । २ । १) किल+असु क्षेपणे–अण् । किलं वर्णं अस्यति क्षिपति विकृतं करोतीति तत् किलासम् । वर्णदूषकम् सिध्मम् । कुष्ट-रोगादिकम् । **पलितम् । फलेरितजादेश्च पः** (उ० ५ । ३४) इति फल निष्पत्तौ–इतच्, फस्य पत्वम् । फलति निष्पन्नं पक्वमिव भवतीति पलितम् । अथवा पल गतौ रक्षणे च—इतच् । शरीरश्वेततारोगः । **यत्** । यत् किञ्चित् ॥

२—**किलासम्** । म० १ । वर्णविकारकरं कुष्ठादिरोगम् । **पलितम्** । म० १ । शरीरश्वेततारोगम् । **निर्** । निरन्तरम् । **इतः** । अस्मात् पुरुषात् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का] अपना रंग (त्वाम्) तुझमें [ओषधि में] (आ विशताम्) प्रविष्ट हो जाय और (शुक्लानि) [उसके] श्वेत चिह्नों को (परा पातय) दूर गिरा दे ॥ २ ॥

भावार्थः—सद्वैद्य की उत्तम ओषधि से रोगी के शरीर का बिगड़ा हुआ रूप फिर यथापूर्वक सुन्दर रुचिर और मनोहर हो जाता है ॥ २ ॥

असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव ।
असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत् ॥ ३ ॥

असितम् । ते । प्रऽलयनम् । आऽस्थानम् । असितम् । तव ।
असिक्नी । असि । ओषधे । निः । इतः । नाशय । पृषत् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(ओषधे) हे ओषधि (ते) तेरा (प्रलयनम्) लाभ (असितम्) निर्बन्ध वा अखंड है, और (तव) तेरा (आस्थानम्) विश्राम स्थान (असितम्) निर्बन्ध है, (असिक्नी असि) और तू निर्बन्ध [सारवाली] है, (इतः) इस [पुरुष] से (पृषत्) [विकृत] चिह्न को (निर्णाशय) सर्वथा नाश करदे ॥ ३ ॥

भावार्थः—सद्वैद्य विचार करे कि यह ओषधि पूर्ण लाभयुक्त है यथायोग्य

नाशय । णश अदर्शने—णिच् । विनष्टं कुरु, घातय । **पृषत्** । वर्तमाने पृषद्बृहन्महत्० (उ० २ । ८४) पृषु सेचने हिंसने च-अतिः । विकृतचिह्नम् । **त्वा** । त्वाम् । ओषधिम् । **स्वः** । स्वन शब्दे—डः । स्वकीयः, आत्मीयः । **आ+विशताम्** । प्रविशतां, व्याप्नोतु । **वर्णः** । अ० १।२२।१ । रूपम् । **शुक्लानि** । ऋज्रेन्द्राग्रवज्र० (उ० २ । २८) इति शुच शौचे—रन् । रस्य लः । श्वेतानि श्येतानि सितानि चिह्नानि । **परा+पातय** । पत, णिच् । दूरं प्रेरय ॥

३—**असितम्** । अञ्चिघृसिभ्यः क्तः (उ० ३ । ८९) इति षिञ् बन्धने—क्तः । अथवा । षो अन्तकर्मणि = नाशने—क्तः । नञ्समासः । अबद्धम् अखण्डितम् । कृष्णवर्णम्—इति सायणः । **प्र-लयनम्** । प्र+लीङ् श्लेषणे, प्राप्तौ—ल्युट् । प्रापणं, प्राप्तिः, लाभः । **आ-स्थानम्** । आङ्+ष्ठा गतिनिवृत्तौ—ल्युट् । विश्राम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान में उत्पन्न हुई है और सब अंशों में सारयुक्त है, ऐसी ओषधि के प्रयोग से रोग निवृत्ति होती है ॥ ३ ॥

अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत् त्वचि ।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ॥ ४ ॥

अस्थिऽजस्य । किलासस्य । तनूऽजस्य । च । यत् । त्वचि ।
दूष्या । कृतस्य । ब्रह्मणा । लक्ष्म । श्वेतम् । अनीनशम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—"दूष्या कृतस्य अस्थिजस्य तनूजस्य च किलासस्य यत् श्वेतम् लक्ष्म त्वचि अस्ति तत् ब्रह्मणा (अहम्) अनीनशम्–इत्यन्वयः" । (दूष्या) दुष्ट क्रिया से (कृतस्य) उत्पन्न हुये, (अस्थिजस्य) हड्डी से उत्पन्न हुये (च) और (तनूजस्य) शरीर से निकले हुये (किलासस्य) रूप बिगाड़ने हारे, कुष्ट आदि रोग का (यत्) जो (श्वेतम्) श्वेत (लक्ष्म) चिह्न (त्वचि) त्वचा पर है [उसको] (ब्रह्मणा) वेद विज्ञान से (अनीनशम्) मैंने नाश कर दिया है ॥ ४ ॥

भावार्थः—भारी रोग दो प्रकार के होते हैं एक (अस्थिज) हड्डी से उत्पन्न होने वाले अर्थात् भीतरी रोग जो ब्रह्मचर्य के खंडन और कुपथ्य भोजन आदि के कारण मज्जा और वीर्य के विकार से हो जाते हैं, और दूसरे (तनुज)

स्थानम् । **तव** । त्वदीयम् । **असिक्नी** । म० १ । अबद्धा, सारवती । **ओषधे** । म० १ । हे रोगनाशकद्रव्य ! । अन्यत् सुगमं व्याख्यातं च ॥

४—अस्थिजस्य । असिसञ्जिभ्यां क्थिन् (उ० ३ । १५४) इति असु क्षेपणे–क्थिन् । अस्यते क्षिप्यते शरीरे तत् अस्थि, शरीरस्य सप्तधातुमध्ये धातुविशेषः, कीकसम् । ततः **पञ्चम्यामजातौ** (पा० ३ । २ । ९८) इति जनी प्रादुर्भावे–डप्रत्ययः । अस्थ्नो जातस्य मज्जाधातोः । **किलासस्य** । म० १ । वर्णनाशकस्य कुष्ठरोगादिकस्य । **तनूजस्य** । तन्वाः शरीरात् जायते, पूर्ववत् तनू + जनी–डः । शरीरजातस्य । **यत्** । लक्ष्म । **त्वचि** । **तनोतेरनश्च वः** (उ० २ । ६३) इति तनु विस्तारे-क्विक्प्रत्ययः, अनुभागस्य वकारश्च । तन्यते विस्ती-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर से उत्पन्न हुये बाहिरी रोग जो मलिन वायु, मलिन घर, आदि के कारण होते हैं, इस प्रकार (ब्रह्मणा) वैदिक ज्ञान से रोगों का निदान करके उत्तम परीक्षित ओषधियों से रोगियों को स्वस्थ करे ॥ ४ ॥

इस सूक्त का आशय यह है कि जिस प्रकार सद्वैद्य रोगों का आदि कारण जानकर ओषधि करके रोग निवृत्ति करता है, उसी प्रकार नीतिज्ञ राजा नियम पूर्वक दुष्टों का दमन करता है, सेनापति शत्रु के प्रहार से अपनी सेना की रक्षा करके जीत पाता है, और ब्रह्मज्ञानी और वैज्ञानिक लोग बाह्य और आभ्यन्तर विघ्नों को हटाकर अपना कार्य सिद्ध करते हैं ॥

सूक्तम् २४ ॥

१-४ ॥ ब्रह्मा ऋषिः । ओषधिर्देवता ॥ १, ३, ४, अनुष्टुप्, २ पंक्तिः, ८×५ अक्षराणि ॥

महारोगनाशोपदेशः—महारोग के नाश के लिए उपदेश ॥

सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ ।
तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन्[1] ॥ १ ॥

सुऽपर्णः । जातः । प्रथमः । तस्य । त्वम् । पित्तम् । आसिथ ।
तत् । आसुरी । युधा । जिता । रूपम् । चक्रे । वनस्पतीन् ॥ १ ॥

र्यते सा त्वक् । यद्वा । त्वच संवरणे—क्विप् । त्वचति संवृणोति मेदः शोणितादिकम् सा । शरीरावरणे, चर्मणि । **दूष्या । सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४ । ११८) इति दुष वैकृत्ये—इन् । दूषयति प्राणिनं हिनस्तीति दूषिः, तया दुष्टक्रियया ब्रह्मचर्यखंडनमद्यादिकुपथ्यसेवनरूपया । **कृतस्य** । उत्पादितस्य । **ब्रह्मणा** । अ० १ । ८ । ४ । वेदविज्ञानेन । **लक्ष्म । सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उ० ४ । १४५) इति लक्ष दर्शनाङ्कनयोः—मनिन् । चिह्नम् । **श्वेतम्** । श्विता वर्णे—अच् घञ् वा । शुक्लवर्णयुक्तम् । **अनीनशम्** । णश अदर्शने—णिचि लुङि रूपम् । अहं नाशितवानस्मि ॥

---

१. उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् (६ । १ । १४०) इस सूत्र से पूर्व तथा उत्तर दोनों पदों को एक साथ आद्युदात्त हो जाता है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सुपर्णः) उत्तम रीति से पालन करने हारा, वा अति पूर्ण परमेश्वर (प्रथमः) सबका आदि (जातः) प्रसिद्ध है। (तस्य) उस [परमेश्वर] के (पित्तम्) पित्त [बल] को, [हे औषधि !] (त्वम्) तूने (आसिथ) पाया था। (तत्) उस (युधा) संग्राम से (जिता) जीती हुयी (आसुरी) असुर [प्रकाशमय परमेश्वर] की माया [प्रज्ञा वा बुद्धि] ने (वनस्पतीन्) सेवा करने वालों के रक्षा करने हारे वृक्षों को (रूपम्) रूपवान् (चक्रे) किया था ॥ १ ॥

भावार्थः—सृष्टि से पहिले वर्त्तमान परमेश्वर की नित्य शक्ति से ओषधि अन्न आदि में पोषण सामर्थ्य रहता है। वह (आसुरी) परमेश्वर की शक्ति (युधा जिता) युद्ध अर्थात् प्रलय के अन्धकार के उपरान्त प्रकाशित होती है, जैसे अन्न, और घास पात आदि का बीज शीत और ग्रीष्म ऋतुओं में भूमि के भीतर पड़ा रहता और वृष्टि का जल पाकर हरा हो जाता है ॥ १ ॥

१—सुपर्णः। **धापृवस्यज्यतिभ्यो नः** (उ० ३ । ६) इति सु+पॄ पालनपूरणयोः—नः। शोभनपालनः, शोभनपूरणः परमेश्वरः। **जातः**। प्रादुर्भूतः। प्रसिद्धः। **प्रथमः**। अ० १ । १२ । १ । आद्यः, अग्रिमः, उत्तमः। **पित्तम्**। अपि+देङ् रक्षणे, दो अवखण्डने वा—क्तः। **अच उपसर्गात् तः** (पा० ७ । ४ । ४७) इति तादेशः, अपेरल्लोपः। अपि अवश्यं दयते पालयति सुगुणान्, अथवा द्यति नाशयति दुर्गुणान् तत् पित्तम्। वीर्यम् अथवा शरीरस्थधातुविशेषः। तत्पर्यायः तेजः, उष्मा, अग्निः। तस्य कर्माणि—"पाचकं पचते भुक्तं शेषाग्निबलवर्धनम्। रसमूत्रपुरीषाणि विरेचयति नित्यशः" इति शब्दकल्पद्रुमे। **आसिथ**। अस गतिदीप्त्यादानेषु—लिट्। त्वं गृहीतवती प्राप्तवती। **तत्**। तदा। **आसुरी**। अ० १ । १० । १ । असुरस्य इयम्। **मायायामण्** (पा० ४ । ४ । १२४) इति असुर—अण्। **टिड्ढाणञ्द्वयसज्०** (पा० ४।१।१५) इति ङीप्। माया=प्रज्ञा—निघ० ३ । ९ । असुरस्य दीप्यमानस्य परमेश्वरस्य माया प्रज्ञा। **युधा**। युध संप्रहारे—क्विप्। युद्धेन संग्रामेण विघ्ननिवारणेन। **जिता**। प्राप्तपराजया। वशीकृता। **रूपम्**। अ० १ । १ । १ । आकारम्। सौन्दर्य्यम्। **चक्रे**।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिप्पणी—(असुर) शब्द के लिये अ० १ । १० । १ और (आसुरी) के लिये अ० ७ । ३९ । १ । देखो । हे ओषधि ! तू रात्रि में उत्पन्न हुई है, ऐसा अ० १।२३।१ में आया है । ऋग्वेद में कहा है—

तम॑ आसी॒त् तम॑सा गू॒ढमग्रे॒ऽप्रके॑तं स॒लिलं॒ सर्व॑मा इ॒दम् ॥ ऋ० १०।१२९।३॥

पहिले [प्रलय काल में] अन्धकार था । और यह सब अन्धकार से ढका हुआ चिह्नरहित समुद्र था ।

आ॒सु॒री च॑क्रे प्रथ॒मेदं कि॑लासभेष॒जमि॒दं कि॑लास॒नाश॑नम् ।
अ॒नी॒नश॒त् कि॒लास॒ꣳ सरू॑पामकर॒त् त्वच॑म् ॥ २ ॥

आ॒सु॒री । च॒क्रे॒ । प्र॒थ॒मा । इ॒दम् । कि॒ला॒स॒ऽभे॒ष॒जम् । इ॒दम् । कि॒ला॒स॒ऽनाश॑नम् । अनीनशत् । कि॒लास॑म् । सऽरू॑पाम् । अ॒क॒र॒त् । त्वच॑म् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(प्रथमा) प्रथम प्रकट हुई (आसुरी) प्रकाशमय परमेश्वर की माया [बुद्धि वा ज्ञान] ने (इदम्) इस [वस्तु] को (किलासभेषजम्) रूपनाशक महा रोग की ओषधि और (इदम्) इस [वस्तु] को ही (किलासनाशनम्) रूप बिगाड़ने वाले महारोग की नाश करने हारी (चक्रे) बनाया । [उसने] [ईश्वर माया ने] (किलासम्) रूप बिगाड़ने वाले महारोग को (अनीनशत्) नाश किया और (त्वचम्) त्वचा को (सरूपाम्) सुन्दर रूप वाली (अकरत्) बना दिया ॥ २ ॥

डुकृञ् करणे–लिट् । कृतवती, दत्तवती । **वनस्पतीन्** । अ० १ । १२ । ३ । वनानां सेवकानां पालकान् । वृक्षान् सृष्टिपदार्थान् इत्यर्थः ॥

२—**आसुरी** । म० १ । प्रकाशमयपरमेश्वरस्य माया प्रज्ञा । **चक्रे** । म० १ । कृतवती । **प्रथमा** । म० १ । आदिभूता । **इदम्** । प्रसिद्धम् । उपस्थितम् । **किलासभेषजम्** । किलासम् । अ० १।२३।१ । किल + असु क्षेपणे–अण् । भिषजो वैद्यस्येदमिति अण् निपातनात् एत्वम् यद्वा, भेषं भयं रोगं जयतीति जि–डः । रूपनाशकस्य महारोगस्य औषधम् । **किलासनाशनम्** । कृत्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(आसुरी) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की शक्ति से प्रलय के पश्चात् अनेक विघ्नों के हटाने पर मनुष्य के सुखदायक पदार्थ उत्पन्न हुये जिससे पृथिवी पर समृद्धि और क्षुधा आदि रोगों की निवृत्ति हुई ॥ २ ॥

सरू॑पा॒ नाम॑ ते मा॒ता सरू॑पो॒ नाम॑ ते पि॒ता।
सरू॑पकृत् त्वमो॑षधे॒ सा सरू॑पमि॒दं कृ॑धि ॥ ३ ॥

सऽरू॑पा। नाम॑। ते॒। मा॒ता। सऽरू॑पः। नाम॑। ते॒। पि॒ता। सरू॑पऽकृत्। त्वम्। ओ॒ष॒धे॒। सा। सऽरू॑पम्। इ॒दम्। कृ॒धि॒ ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(ओषधे) हे उष्णता रखने हारे अन्न आदि ओषधि (सरूपा) समान गुण वा स्वभाव वाली (नाम) नाम (ते) तेरी (माता) माता है, (सरूपः) समान गुण वा स्वभाव वाला (नाम) नाम (ते) तेरा (पिता) पिता है। (त्वम्) तू (सरूपकृत्) सुन्दर वा समान गुण करने हारी है, (सा=सा त्वम्) सो तू (इदम्) इस [अंग] को (सरूपम्) सुन्दर रूपयुक्त (कृधि) कर ॥३॥

ल्युटो बहुलम् (पा० ३ । ३ । ११३) इति किलास + णश अदर्शने-कर्त्तरि ल्युट्। किलासस्य रूपनाशकस्य महारोगस्य कुष्टादिकस्य निवर्तकम्। **अनीनशत्**। णश अदर्शने-णिच्, लुङ्। नाशयति स्म। **किलासम्**। अ०१। २३। १। वर्ण-नाशकं महारोगम्। **सरूपाम्**। **ज्योतिर्जनपद०** (पा० ६ । ३ । ८५) इति समानस्य सभावः। समानरूपाम्। साधुरूपाम्। **अकरत्**। डुकृञ् करणे-लुङ्। कृतवती। **त्वचम्**। अ० १ । २३ । ४ । त्वचाम्, शरीरावरणं चर्म ॥

३—**सरूपा**। म० २। समानं रूपं स्वभावो गुणो यस्याः सा। समान-स्वभावा। **नाम**। अव्ययम्। **नामन्सीमन्व्योमन्०** (उ० ४ । १५१) इति म्ना अभ्यासे—मनिन्। निपातनात् साधुः। म्नायते अभ्यस्यते यत्। प्रसिद्धा। प्रसिद्धम्। **माता**। अ० १ । २ । १ । माननीया जननी भूमिः प्रकृतिर्वा। **सरूपः**। समानरूपः। समानस्वभावः, समानगुणः। **पिता**। अ० १।२।१। पालको जनकः। परमेश्वरः, मेघः सूर्यो वा। **सरूपकृत्**। डुकृञ् करणे—क्विप्। **ह्रस्वस्य**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(औषधि) क्षुधा रोगादि निवर्तक वस्तु को कहते हैं जिससे शरीर में उष्णता रहती है, उसकी (माता) प्रकृति वा पृथिवी और (पिता) परमेश्वर वा मेघ वा सूर्य्य है जिनके गुण वा स्वभाव सब प्राणियों के लिये समान हैं। ईश्वर से प्रेरित प्रकृति से अथवा भूमि और मेघ वा सूर्य्य के संयोग से सब पुष्टिदायक और रोगनाशक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। विद्वान् लोग पदार्थों के गुणों को यथार्थ जानकर नियम पूर्वक उचित भोजन आदि के सेवन और यथोचित उपकार लेने से अपने को और अपने सन्तानों को रूपवान् और वीर्य्यवान् बनावें ॥ ३ ॥

श्यामा सरूपं करणी पृथिव्या अध्युद्भृता ।
इदमूषु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ॥ ४ ॥

श्यामा । सरूपमूऽकरणी । पृथिव्याः । अधि । उत्ऽभृता । इदम् ।
ऊँ इति । सु । प्र । साधय । पुनः । रूपाणि । कल्पय ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(श्यामा) व्यापनशीला वा सुखप्रदा, (सरूपंकरणी) सुन्दरता करने हारी तू (पृथिव्याः अधि) विख्यात वा विस्तीर्ण पृथिवी में से (उद्भृता) उखाड़ी गई है। (इदम् उ) इस [कर्म्म] को (सु) भली भाँति से (प्र साधय) सिद्ध कर, (पुनः) और (रूपाणि) [इस पुरुष] की सुन्दरताओं को (कल्पय) पूर्ण कर ॥ ४ ॥

पिति कृति तुक् (पा० ६ । १ । ७१) इति तुक् आगमः। शोभनरूपकारिणी। समानगुणकारिणी। **त्वम् ओषधे** । अ० १ । २३ । १ । रोगनाशकद्रव्य त्वम्। **सुरूपम्** । सुन्दररूपयुक्तम्। **इदम्** । रोगदूषितम् अङ्गम्। **कृधि** । **श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसि** (पा० ६ । ४ । १०२) इति हेर्धिरादेशः। कुरु ॥

४—श्यामा । इषियुधीन्धिदसिश्यधूसूभ्यो मक् (उ० १ । १४५) इति श्यैङ् गतौ-मक्, टाप्। श्यायति गच्छति सुखं प्राप्नोति सा श्यामा व्यापनशीला। सुखप्रदा । ओषधिः। **सरूपम्-करणी** । सरूपं क्रियते अनयेति। **करणाधिकरणयोश्च** (पा० ३ । ३ । ११७) इति डुकृञ् करणे-ल्युट्। पूर्वपदे सुपो लुगभावश्छान्दसः। **टिड्ढाणञ्द्वयसज्०** (पा० ४ । १ । १५) इति ङीप्। सुन्दररूप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे उत्तम वैद्य उत्तम औषधों से रोग को निवृत्त कर रोगी को सर्वाङ्ग पुष्ट करके आनन्दयुक्त करते हैं, इसी प्रकार दूरदर्शी पुरुष सब विघ्नों को हटाकर कार्य्य सिद्धि कर आनन्द भोगते हैं ॥ ४ ॥

सूक्तम् २५ ॥

१–४ ॥ भृग्वंगिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः, ११×३ अक्षराणि ॥

ज्वरादिरोगशान्त्युपदेशः—ज्वर आदि रोग की शान्ति के लिये उपदेश ॥

यदग्निरापो अदहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि । तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥ १ ॥

यत् । अग्निः । आ । अपः[1] । अदहत् । प्रऽविश्य । यत्र । अकृण्वन् । धर्मऽधृतः । नमांसि । तत्र । ते । आहुः । परमम् । जनित्रम् । सः । नः । सम्ऽविद्वान् । परि । वृङ्ग्धि । तक्मन् ॥ १ ॥

कर्त्री । **पृथिव्याः** । अ० १।२।१ । प्रख्यातायाः विस्तीर्णाया वाः भूमेः सकाशात् । **अधि** । पंचम्यर्थानुवादी । **उत्-भृता** । उत् + भृञ्–क्तः । उत्खाता । उत्पादिता । **ऊँ इति** । पादपूरणः । पदपूरणास्ते मिताक्षरेष्वनर्थकाः, कमीमिद्विति—निरु० १ । ९ । **प्र + साधय** । प्र + साध संसिद्धौ, णिच् । सिद्धं कुरु, प्रवर्धय । **पुनः** । अनन्तरम् । **पुना रूपाणि । रो रि** (पा० ८ । ३ । १४) इति रेफस्य लोपे कृते **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** (पा० ६ । ३ । १११) इति दीर्घः । **रूपाणि** । सौन्दर्याणि, स्वास्थ्यलक्षणानि । **कल्पय** । कृपू सामर्थ्ये, णिच् । **कृपो रो लः** (पा० ८ । २ । १८) इति लत्वम् । संपादय, पूरय ॥

---

१. सायणाचार्य ने यहाँ 'आपः' ही पदपाठ मानकर व्यत्यय से शस् के स्थान में जस् माना है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्) जिस [सामर्थ्य] से (अग्निः) व्यापक अग्नि [ताप] ने (प्रविश्य) प्रवेश करके (अपः) व्यापनशील जल को (आ अदहत्) तपा दिया है और (यत्र) जिस [सामर्थ्य] के आगे (धर्मधृतः) मर्यादा के रखने वाले पुरुषों ने (नमांसि) अनेक प्रकार से नमस्कार (अकृण्वन्) किया है। (तत्र) उस [सामर्थ्य] में (ते) तेरे (परमम्) सबसे ऊंचे (जनित्रम्) जन्म स्थान को (आहुः) वह [मर्यादापुरुष] बताते हैं, (सः=स त्वम्) सो तू, (तक्मन्) हे जीवन को कष्ट देने वाले ज्वर ! [ज्वर समान पीड़ा देने वाले ईश्वर !] (संविद्वान्) [यह बात] जानता हुआ (नः) हमको (परिवृङ्धि) छोड़ दे ॥ १ ॥

भावार्थः—जो परमेश्वर उष्ण स्वभाव अग्नि द्वारा शीतल स्वभाव जल को तपाता है अर्थात् विरुद्ध स्वभाव वालों को संयोग वियोग से अनुकूल करके सृष्टि को धारण कराता है, जिस परमेश्वर से बढ़ कर कोई मर्यादा पालक नहीं है जो स्वयंभू सबका अधिपति है, और ज्वर आदि रोगों से पापियों को दण्ड

१—यत्। यस्मात् सामर्थ्यात्। **अग्निः।** अ० १।६।२। तेजः पदार्थ-विशेषः। औष्ण्यम्। **आ।** समन्तात्। **अपः।** अ० १।४।३। आप्नुवन्ति शरीर-मित्यापः। अस्य नित्यं बहुवचनत्वम् स्त्रीत्वं च। जलानि। प्राणान्। "आपः" य० १७। २९। प्राणाः इति दयानन्द सरस्वती। **अदहत्।** दह भस्मीकरणे=सन्तापे लङ्। अतपत्। **प्रविश्य।** अन्तर्विगाह्य। **यत्र।** सामर्थ्ये। **अकृण्वन्।** कृवि हिंसाकरणयोश्च-लङ्। अकुर्वन्। **धर्मधृतः। अर्त्तिस्तुसुहुसृधृ०** (उ० १। १४०) इति धृञ् धारणे-मन्। धरति लोकान् ध्रियते पुण्यात्मभिर्वा स धर्मः, न्यायः, मर्यादा। ततः धृञ्-क्विप्, तुक् आगमः। धर्मधारकाः। मर्य्यादा-पालकाः पुरुषाः। **नमांसि।** णम प्रह्वत्वे शब्दे च-असुन्, आद्युदात्तः। नम्रभावान्। **तत्र।** सामर्थ्ये। **आहुः।** ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि-लट्। ब्रुवन्ति, कथयन्ति। **परमम्। आतोऽनुपसर्गे कः** (पा० ३। २। ३) इति पर+मा माने-कः। प्रधा-नम्। **जनित्रम्। अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ** (उ० ४। १७३) इति जन जनने, जनी प्रादुर्भावे-इत्रप्रत्ययः। जन्मस्थानम्। **सः।** स त्वम्। **संविद्वान्। विदेः शतु-र्वसुः** (पा० ७। १। ३६) इति विद ज्ञाने-शतुर्वसुरादेशः। सम्यग् जानन्। ज्ञान-वान्। **परि वृङ्धि।** वृजी वर्जने—रुधादित्वात् श्नम्। परिवर्जय, परित्यज।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देता है उस न्यायी जगदीश्वर का स्मरण करते हुये हम पापों से बच कर सदा आनन्द भोगें, सब विद्वान् लोग उस ईश्वर के आगे सिर झुकाते हैं ॥ १ ॥

यद्यर्चिर्यदि वासि शोचिः शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम् । ह्वूर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥ २ ॥

यदि । अर्चिः । यदि । वा । असि । शोचिः । शकल्यऽइषि[1] । यदि । वा । ते । जनित्रम् । ह्वूर्नाम । असि । हरितस्य । देव । सः । नः । सम्ऽविद्वान् । परि । वृङ्ग्धि । तक्मन् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यदि) चाहे तू (अर्चिः) ज्वाला रूप (यदि वा) अथवा (शोचिः) ताप रूप (असि) है (यदि वा) अथवा (ते) तेरा (जनित्रम्) जन्म स्थान (शकल्येषि) अंग अंग की गति में है । (हरितस्य) हे पीले रंग के (देव) देने वाले ! (ह्वूर्नाम) दबाने की कल (नाम असि) तेरा नाम है, (सः) सो तू (तक्मन्) जीवन को कष्ट देने वाले ज्वर ! [ज्वर समान पीड़ा देने वाले ईश्वर] (संविद्वान्) [यह बात] जानता हुआ (नः) हमको (परि वृङ्धि) छोड़ दे ॥ २ ॥

भावार्थः—वह परब्रह्म ज्वर आदि रोग से दुष्कर्मियों की नाड़ी नाड़ी को दुःख से दबा डालता है जैसे कोई किसी को दबाने की कल में दबावे ।

तक्मन् । सर्वधातुभ्यो मनिन् (उ० ४ । १४५) इति तकि कृच्छ्रजीवने = दुःखेन जीवने–मनिन् । हे कृच्छ्रजीवनकारिन्, ज्वर ॥

२—यदि । संभावनायाम्, चेत् । **अर्चिः । अर्चिशुचिहुसृ०** (उ० २ । १०८) इति अर्च पूजायाम्—इसिः । अर्चिः, शोचिः, ज्वलतो नामधेयेषु—निघ० १ । १७ । ज्वलनकरः । **शोचिः** । शुच शोके—पूर्ववत् इसिः । शोचति ज्वलतिकर्मा, निघ० १ । १७ । तापकरः । **शकल्य–इषि । शकिशम्पोर्नित्** (उ० १ । ११२) इति शक्लृ शक्तौ–कलप्रत्ययः । शकलः खण्डः । पुनः समूहार्थे—यप्रत्ययः, ततः **क्विप् च** (पा० ३।२।७६) इति इष गतौ–क्विप् । शकल्यं अंग-

---

१. सायणाचार्य ने यहाँ 'शकल्यऽएषि' पदपाठ दिखाया है । तदनुसार वृद्धिरेचि (६ । १ । ८८) का छान्दस अभाव मानना होगा ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस न्यायी जगदीश्वर का स्मरण करते हुये पापों से बच कर सदा आनन्द भोगें ॥ २ ॥

सायण भाष्य में 'हूडुः' के स्थान में 'रूढुः' पढ़ कर 'रोहकः' उत्पन्न करने वाला अर्थ किया है।

यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः। हूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥ ३ ॥

यदि। शोकः। यदि। वा। अभिऽशोकः। यदि। वा। राज्ञः। वरुणस्य। असि। पुत्रः। हूडुः। नाम। असि। हरितस्य। देव। सः। नः। सम्ऽविद्वान्। परि। वृङ्ग्धि। तक्मन् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(यदि) चाहे तू (शोकः) हृदयपीड़क (यदि वा) चाहे (अभिशोकः) सर्वशरीर पीड़क है, (यदि वा) अथवा तू (राज्ञः) तेज वाले (वरुणस्य) सूर्य वा जल का (पुत्रः) पुत्र रूप (असि) है। (हरितस्य) हे पीले रंग के (देव) देने वाले ! (हूडुः) दबाने की कल (नाम असि) तेरा नाम है (सः) सो तू, (तक्मन्) हे जीवन को कष्ट देने वाले ज्वर ! [ज्वर समान पीड़ा देने हारे !] (संविद्वान्) [यह बात] जानता हुआ (नः) हमको (परि वृङ्ग्धि) छोड़ दे ॥ ३ ॥

भावार्थः—मानसिक और शारीरिक पीड़ा, सूर्य्य की ताप वा जल से उत्पन्न ज्वर, और पीलिया आदि रोग, पाप अर्थात् ईश्वरीय नियम से विरुद्ध

समूहम् इष्यतीति शकल्येट्। अंगानां गतौ। **जनित्रम्**। म० १। जन्मस्थानम्। **हूडुः**। **ईषेः किच्च** (उ० १। १३) इति हूड संघाते[1] अत्र पीडने-कुः। पीडायन्त्रम्। **नाम**। १। २। ३। प्रसिद्धः। **हरितस्य**। हृञ् हरणे—इतन्। रोगजनितस्य पीतवर्णस्य। **देव**। हे द्योतक, दातः। अन्यद् व्याख्यातम्, म० १ ॥

३—शोकः। शुच शोके—कर्तरि घञ्। **चजोः कु घिण्ण्यतोः** (पा०७।३। ५२) इति कुत्वम्। मनःपीडकः। **अभि-शोकः**। सर्वशरीरपीडकः।

---

१. द्र० सं० धा० को० ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचरण का फल है, इसलिये मनुष्य पुरुषार्थ पूर्वक परमेश्वर के नियमों का पालन करें, और दुष्ट आचरण छोड़कर सुखी रहें ॥ ३ ॥

नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि । यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने ॥ ४ ॥

नमः । शीताय । तक्मने । नमः । रूराय । शोचिषे । कृणोमि । यः । अन्येद्युः । उभयद्युः । अभिऽएति । तृतीयकाय । नमः । अस्तु । तक्मने ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(शीताय) शीत (तक्मने) जीवन को कष्ट देने हारे ज्वर [ज्वर रूप परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार, और (रूराय) क्रूर (शोचिषे) ताप के ज्वर को [ज्वर रूप परमेश्वर को] (नमः) नमस्कार (कृणोमि) मैं करता हूँ । (यः) जो (अन्येद्युः) एकान्तरा ज्वर और (उभयद्युः) दो अन्तरा ज्वर (अभि एति) चढ़ता है, [तस्मै] [उस ज्वर रूप को और] (तृतीयकाय) तिजारी (तक्मने) ज्वर [ज्वर रूप परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥४॥

राज्ञः । अ० १ । १० । १ । दीप्यमानस्य, तेजस्विनः । **वरुणस्य** । अ० १।३।३ । सूर्यतापस्य जलस्य वा । **पुत्रः** । अ० १ । ११ । ५ । शोधकः । सुतः, तनूजः पुत्रवत् उत्पन्नः । अन्यद् व्याख्यातम्–म० २ ॥

४—शीताय । श्यैङ् गतौ–क्तः । **द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्यः** (पा० ६ । १ । २४) इति सम्प्रसारणम् । **हलः** (पा० ६।४।२) इति दीर्घः । शीतलाय । शीतस्पर्शवते । **तक्मने** । म०१ । कृच्छ्रजीवनकारिणे रोगाय, ज्वराय ज्वरसमानाय परमेश्वराय । **रूराय** । **स्फायितञ्चिवञ्चिशकि०** (उ० २ । १३) इति रुङ् गतिरेषणयोः–रक्, दीर्घश्च । घातकाय, पीडकाय, क्रूराय । **शोचिषे** । म० २ । तापकराय । **कृणोमि** । कृवि हिंसाकरणयोश्च । करोमि । **यः** । तक्मा, ज्वरः । **अन्येद्युः** । अव्ययम् । अन्यस्मिन् दिने, परदिने । **उभयद्युः** । अव्ययम् । अत्र एत्वाभावश्छान्दसः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर अनेक प्रकार के ज्वर आदि रोगों से पापियों को कष्ट देता है, उसके क्रोध से भय मान कर हम खोटे कामों से बचकर सदा शान्त चित्त और आनन्द में मग्न रहें ॥ ४ ॥

सूक्तम् २६ ॥

१–४ ॥ ब्रह्मा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

युद्धप्रकरणम्—युद्ध का प्रकरण ॥

आरे ३ऽसावस्मदस्तु हेतिर्देवासो असत् ।
आरे अश्मा यमस्यथ ॥ १ ॥

आरे । असौ । अस्मत् । अस्तु । हेतिः । देवासः । असत् ।
आरे । अश्मा । यम् । अस्यथ ॥ १ ॥

भाषार्थः—(देवासः) हे विजयी शूरवीरो ! (असौ) वह (हेतिः) सांग वा बरछी (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (अस्तु) रहे, और (अश्मा) वह पत्थर (आरे) दूर (असत्) रहे (यम्) जिसे (अस्यथ) तुम फैंकते हो ॥ १ ॥

भावार्थः—युद्ध कुशल सेनापति लोग चक्रव्यूह, पद्मव्यूह, मकरव्यूह, क्रौञ्चव्यूह, सूचीव्यूह, आदि से अपनी सेना का विन्यास इस प्रकार करें कि शत्रु के अस्त्र शस्त्र का प्रहार अपने प्रजा और सेना के न लगें, और न अपने अस्त्र शस्त्र उलट कर अपने ही लगें, किन्तु शत्रुओं का विध्वंस करें ॥ १ ॥

उभयस्मिन् द्वितीयेऽहनि । **अभि-एति** । आगच्छति । **तृतीयकाय । त्रेः सम्प्रसारणं च** (पा० ५।२ । ५५) इति त्रि–तीयः पूरणे, संप्रसारणं च । स्वार्थे कन् । तृतीयदिने आगच्छते ॥

१—आरे । दूरे । **असौ** । सा शत्रुप्रयुक्ता । **हेतिः** । अ०१।१३।३ । खड्गाद्यायुधं शक्तिनामास्त्रम् । **देवासः** । अ० १ । ७ । १ । **आज्ञसेरसुक्** (पा०७।१।५०) इति असुक् । हे विजयिनो महात्मानः सेनापतयः । **असत्** । अ०१।२२।२ । भवेत् । **अश्मा** । अ० १।२।२ मेघः, आयुधवृष्टिः । पाषाणः । **यम्** । अश्मानम् । **अस्यथ** । असु क्षेपणे–लट्, दिवादित्वात् श्यन् । यूयं क्षिपथ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः ।
सविता चित्रराधाः ॥ २ ॥

सखा । असौ । अस्मभ्यम् । अस्तु । रातिः । सखा । इन्द्रः । भगः । सविता । चित्रऽराधाः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(असौ) वह (रातिः) दानशील राजा (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सखा) मित्र (अस्तु) होवे, (भगः) सबका सेवनीय, (सविता) लोकों को चलाने वाले सूर्य के समान प्रतापी, (चित्रराधाः) अद्भुत धन युक्त (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला (सखा) मित्र होवे ॥ २ ॥

भावार्थः—राजा अपनी प्रजा, सेना, और कर्मचारियों पर सदा उदारचित्त रहे और सूर्य के समान महाप्रतापी और ऐश्वर्यशाली और महाधनी होकर सबका हितकारी बने और सबकी उन्नति से अपनी उन्नति करे ॥ २ ॥

यूयं नः प्रवतो नपान् मरुतः सूर्यत्वचसः ।
शर्म यच्छाथ सप्रथः ॥ ३ ॥

यूयम् । नः । प्रऽवतः । नपात् । मरुतः । सूर्यऽत्वचसः । शर्म । यच्छाथ । सुऽप्रथः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(प्रवतः) हे [अपने] भक्त के (नपात्) न गिराने हारे राजन् ! और (सूर्यत्वचसः) हे सूर्य समान प्रताप वाले (मरुतः) शत्रुओं के मारने हारे

२—**सखा** । अ० १ । २० । ४ । सुहृत्, मित्रम् । **रातिः** । **क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्** (पा० ३ । ३ । १७४) इति रा दाने–क्तिच् । **चितः** (पा० ६ । १ । १६३) इति अन्तोदात्तः । उदारः, दाता राजा । **इन्द्रः** । अ० १।२।३ । परमैश्वर्यवान् । **भगः** । अ० १ । १४ । १ । भज सेवायाम्–घः । घत्वम् । सर्वैर्भजनीयः, सर्वैः सेवनीयः । **सविता** । अ० १ । १८ । २ । सर्वप्रेरकः । सर्ववशी, सूर्यवत् प्रतापी । **चित्रराधाः** । चित्र + राध संसिद्धौ–असुन् । राध इति धननाम राध्नुवन्त्यनेनेति यास्कः–निरु० ४ । ४ । विचित्रधनयुक्तः, अद्भुतधनः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूरवीर महात्माओ ! (यूयम्) तुम सब (नः) हमारे लिये (सप्रथः) बहुत विस्तीर्ण (शर्म) सुख वा शरण (यच्छाथ) दान करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—अपने भक्तों की रक्षा करने हारा राजा और महाप्रतापी धर्म-धुरंधर शूरवीर मन्त्री आदि मिल कर प्रजा की सर्वथा रक्षा करके अपने शरण में रक्खें ॥ ३ ॥

टिप्पणी—अजमेर वैदिक यन्त्रालय और बंबई गवर्नमेन्ट के पुस्तक के संहिता पाठ में 'सप्रथाः' पाठ अशुद्ध दीखता है, सायण भाष्य और बंबई के सेवकलाल कृष्णदास शोधित पुस्तक का 'सप्रथः' पाठ शुद्ध जान कर हमने यहां पर लिया है ॥

सुषूदत मृडत मृडया नस्तनूभ्यो
मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥ ४ ॥

सुसूदत । मृडत । मृडय । नः । तनूभ्यः । मयः । तोकेभ्यः ।
कृधि ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(सुषूदत) तुम सब [हमें] अंगीकार करो, और (मृडत) सुखी करो, [हे राजन् !] तू (नः) हमारे (तनूभ्यः) शरीरों को (मृडय)

३—यूयम् । प्रवतो नपात् मरुतश्च । **प्र-वतः** । अ० १।१३।२ । भक्तस्य, सेवकस्य । भक्तान् । द्वितीयायां बहुवचनं वा । **नपात्** । अ० १।१३।२ । न पातयतीति । हे अपातनशील राजन् ! । **मरुतः** । अ० १ । २० । १ । मारयन्ति शत्रून् ते । हे शूरवीराः पुरुषाः । **सूर्य-त्वचसः** । त्वच संवरणे–असुन् । सूर्यस्य त्वक् संवरणमिव संवरणं येषां ते । सूर्यसमानतेजस्काः । **शर्म** । अ०१।२०।३ । सुखम्, शरणम् । **यच्छाथ** । दाण् दाने–लेट् । प्रयच्छत, दत्त । **स-प्रथः** । सह+प्रथ प्रख्याने असुन् । प्रथसा सहितं, सविस्तारम् ॥

४—सुषूदत । षूद आश्रुतिहत्योः,[1] निरासे च । आश्रुतिरङ्गीकारः इति शब्दकल्पद्रुमः । अङ्गीकुरुत । **मृडत** । मृड सुखने । सुखयत । **मृडय** ।

---

१ इस अर्थ में यह धातु कहीं नहीं उपलब्ध हुई । 'षूद क्षरणे' पठित है । तदनुसार ही भाष्य में अर्थ होने से हमने इसका अर्थ नहीं बदला । वस्तुतः 'सुषूदत' का धातुवृत्ति आदि के अनुसार 'दूर करो' [आयुधों को अन्यत्र ले जाओ] ऐसा अर्थ करने में कोई हानि नहीं है । भाष्यकार का अर्थ अन्वेष्टव्य है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख दे और (तोकेभ्यः) बालकों को (मयः) आनन्द (कृधि) कर ॥ ४ ॥

भावार्थः—महाप्रतापी राजा और सुयोग्य कर्मचारी मिल कर सब प्रजा और उनकी सन्तानों की उत्तम शिक्षा आदि से उन्नति करें और सुख पहुंचाते रहें ॥ ४ ॥

सूक्तम् २७ ॥

१—४ ॥ स्वस्त्ययनकामोऽथर्वा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । १ पंक्तिः ८×५, २—४ अनुष्टुप् ॥

युद्धप्रकरणम्—युद्ध का प्रकरण ॥

अमूः पारे पृदाक्वस्त्रिषप्ता निर्जरायवः ।
तासां जरायुभिर्वयमक्ष्या ३ वपि व्ययामस्य-
घायोः परिपन्थिनः ॥ १ ॥

अमूः । पारे । पृदाक्वः । त्रिऽसप्ताः । निःऽजरायवः । तासाम् । जरायुऽभिः । वयम् । अक्ष्यौ । अपि । व्ययामसि । अघऽयोः । परिऽपन्थिनः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अमूः) वह (त्रिषप्ताः) तीन [ऊंचे, मध्यम और नीचे] स्थान में खड़ी हुई, (निर्जरायवः) जरायु [गर्भ की झिल्ली] से निकली हुई (पृदाक्वः) सर्पिणी [वा बाघिनी] रूप शत्रु सेनायें (पारे) उस पार [वर्तमान] हैं। (तासाम्) उनकी (जरायुभिः) जरायु रूप गुप्त चेष्टाओं सहित [वर्तमान] (अघायोः)बुरा चीतने वाले, (परिपन्थिनः) उलटे आचरण वाले शत्रु की (अक्ष्यौ) दोनों आंखों को (वयम्) हम (अपि व्ययामसि) ढके देते हैं ॥ १ ॥

सुखय । **तनूभ्यः** । अ० १।१।१ । शरीरेभ्यः । **मयः** । अ० १ । १३ । २ । सुखम् । **तोकेभ्यः** । अ० १ । १३ । २ अपत्येभ्यः ॥

१—अमूः । परिदृश्यमानाः, ताः । **पारे** । पार कर्मसमाप्तौ–पचाद्यच्, अथवा पॄ पूरणे–घञ् । पारतीरे । प्रान्तभागे, सीमाप्रदेशे । **पृदाक्वः** । **पर्दे-र्नित् सम्प्रसारणमलोपश्च** (उ० ३ । ८०) इति पर्द कुत्सिते शब्दे—काकुः रेफस्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जब शत्रु की सेना अपने पड़ावों से निकल कर घात स्थानों पर ऐसी खड़ी होवे, जैसे सर्पिणी वा बाघिनी माता के गर्भ से निकल कर बहुत से उपद्रव फैलाती है, तब युद्ध कुशल सेनापति शत्रु सेना की गुप्त कपट चेष्टाओं का मर्म समझ कर ऐसी हलचल मचा दे कि शत्रु की दोनों आंखें हृदय की और मस्तक की मुंद जावें और वह घबराकर हार मान लेवे ॥ १ ॥

सायणभाष्य में 'निर्जरायवः' के स्थान में 'निर्जरा इव' शब्द है ॥

विषूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती ।
विष्वक् पुनर्भुवा मनोऽसंमृद्धा अघायवः ॥ २ ॥

सम्प्रसारणमकारलोपश्च । स्त्रियाम् ऊङ् ।] **उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य** (पा० ८ । २ । ४) इति स्वरितः । पर्दते कुत्सितं शब्दयति सा पृदाकूः सर्पिणी व्याघ्री वा । सर्पिण्यो व्याघ्र्य इव वा दुष्टस्वभावाः शत्रुसेनाः । **त्रिसप्ताः** । अ० १ । १ । १ । त्रि + षप समवाये—क्तः । त्रिषु उच्चमध्यमनीचस्थानेषु सम्बद्धाः, स्थिताः । **निः जरायवः** । निर् + जरायवः । अ० १।११।४ । **षिद्भिदादिभ्योऽङ्** (पा० ३ । ३ । १०४) इति जॄष् वयोहानौ—अङ्, टाप् । **ऋदृशोऽङि गुणः** (पा० ७ । ४ । १६) इति गुणः । जरा, वार्द्धक्यम्, शरीरनिर्बलत्वम् । **किंजरयोः श्रिणः** (उ० १ । ४) इति जरा + इण् गतौ—ञुण् । जरां जीर्णताम् एति जरायुः, गर्भवेष्टनचर्म । निर्गता जरायोः, गर्भवेष्टनात् याः । निर्गतगर्भवेष्टनाः । घातस्थानात् प्रादुर्भूताः । **तासाम्** । पृदाकूरूपाणां शत्रुसेनानाम् । **जरायुभिः** । पूर्ववत्, जरा + इण्—ञुण् । गर्भवेष्टनैः । गुप्तकपटचेष्टाभिः—इति यावत् । **वयम्** । योद्धारः पुरुषाः । **अक्ष्यौ** । अ० १।८।३ । अशूङ् व्याप्तौ—क्सिः । यद्वा, अक्षू व्याप्तौ—इन्, ततो ङीप् । छान्दसं रूपम् । पूर्ववत् स्वरितः । अक्षिणी, उभे मानसिकमास्तिकनेत्रे । **अपि व्ययामसि** । व्येञ् संवरणे—**इदन्तो मसि** (पा० ७ । १ । ४६) इति मसः इदन्तता । अपिव्ययामः, आच्छादयामः, स्वबुद्धिबलैः प्रमोहयामः । **अघायोः** । अ० १ । २० । २ अघं परहिंसनमिच्छतीति अघायुः । अनिष्टचारिणः । पापात्मनः । **परि-पन्थिनः** । **छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि** (पा० ५ । २ । ८९) इति परि + पथि गतौ—णिनिः । निपातितः । युद्धे प्रत्यवस्थातुः, प्रतिकूलाचारिणः, शत्रोः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषूची । एतु । कुन्तती । पिनाकमिव । बिभ्रती ।
विष्वक् । पुनःसुवाः । मनः । असमृद्धाः । अघायवः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(पिनाकम् इव) त्रिशूल सा (बिभ्रती) उठाये हुये (कृन्तती) काटती हुयी [हमारी सेना] (विषूची) सब ओर फैल कर (एतु) चले। और (पुनर्भुवाः) फिर जुड़ कर आयी हुयी [शत्रु सेना] का (मनः) मन (विष्वक्) इधर उधर उड़ाऊ [हो जावे] (अघायवः) बुरा चीतने वाले शत्रु लोग (असमृद्धाः) निर्धन हो जावें ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे चतुर सेनापति अस्त्र शस्त्र वाली अपनी साहसी सेना के अनेक विभाग करके शत्रुओं पर झपट कर धावा मारता और उन्हें व्याकुल करके भगा देता है जिससे वह लोग फिर न तो एकत्र हो सकते और न धन जोड़ सकते हैं, ऐसे ही बुद्धिमान् मनुष्य कुमार्गगामिनी इन्द्रियों को वश में करके सुमार्ग में चलावें और आनन्द भोगें ॥ २ ॥

सायण भाष्य में 'पुनर्भुवाः' के स्थान में [पुनर्भवाः] है ॥

न बहवः समशकन् नार्भका अभि दाधृषुः ।
वेणोरदृगा इवाभितोऽसमृद्धा अघायवः ॥ ३ ॥

२—**विषूची** । अ० १ । १९ । १ । नानाविधं गच्छन्ती, नानामुखी । **एतु** । गच्छतु । **कृन्तती** । कृती छेदने–शतृः । तुदादित्वात् शः । **शे मुचादीनाम्** (पा० ७ । १ । ५९) इति नुम्, ततो ङीप् । छिन्दती, भिन्दती शत्रुसेना । **पिनाकम्** । **पिनाकादयश्च** (उ० ४ । १५) पा रक्षणे पिष्ल सञ्चूर्णने वा–आकप्रत्ययेन निपात्यते[1] । त्रिशूलम् । **बिभ्रती** । अ० १ । १ । १ । डुभृञ् धारणपोषणयोः–शतृः । **उगितश्च** (पा० ४ । १ । ६) इति ङीप् । धारयन्ती । **विष्वक्** । अ० १।१९।१ । नानामुखम्, अनवस्थितम् । **पुनः-भुवाः** । पुनः+भू सत्तायाम्—क्विप् । पुनः संधीभूतायाः पृदाक्वाः, शत्रुसेनायाः—इत्यर्थः । **मनः** । चित्तम् । **असम्-ऋद्धाः** । ऋधु वृद्धौ–क्तः । असम्पन्नाः, निर्धनाः । **अघायवः** । म० १ । अनिष्ट-चिन्तकाः शत्रवः ॥

---

१. पाति रक्षतीति पिनाकः । पिनष्ट्यनेन शत्रून् वेति पिनाकः । निपातन से यहाँ अन्य कार्यों की सिद्धि जानें ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न । बहवः । सम् । अशकन् । न । अर्भकाः । अभि । दधृषुः । वेणोः । अद्गाःऽइव । अभितः । असमृद्धाः । अघऽयवः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(न) न तो (बहवः) बहुत से शत्रु (समशकन्) समर्थ हुये (न) और न (अर्भकाः) वह निर्बल हो जाने पर (अभिदाधृषुः) कुछ साहस कर सके, (वेणोः) बांस के (अद्गाः) मालपुओं के (इव) समान (अघायवः) बुरा चीतने वाले शत्रु (असमृद्धाः) निर्धन [होवें] ॥ ३ ॥

भावार्थः—राजा दुराचारी दुष्टों को ऐसा वश में करे कि वे एकत्र न हो सकें और न सता सकें, जैसे नीरस सूखे बांस आदि तृण का भोजन पुष्टि-दायक नहीं होता, इसी प्रकार सर्वथा निर्बल कर दिये जावें। इसी प्रकार मनुष्य आत्म शिक्षा करें ॥ ३ ॥

सायणभाष्य में (दाधृषुः) के स्थान में [दादृशुः] और (अद्गाः) के स्थान में [उद्गाः] है ॥

प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पृणतो गृहान् ।
इन्द्राग्नेऽतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः ॥ ४ ॥

३—**बहवः** । **लङ्बिबंह्योर्नलोपश्च** (उ० १ । २९) इति बहि वृद्धौ-कुः, नस्य लोपः । विपुलाः, हस्त्यश्वरथपदातियुक्ताः शत्रवः । **सम्** । सम्यक्, अल्पमपीत्यर्थः । **अशकन्** । शक्लृ शक्तौ—लुङ् । जेतुं शक्ता अभूवन् । **अर्भकाः** । **अर्त्तिगृभ्यां भन्** (उ० ३ । १५२) इति ऋ गतौ-भन्, स्वार्थे-कन् । दभ्रमभ्रकमित्यल्पस्य । इति निघ० ३ । २ । अल्पाः, निर्बलाः । **अभि** । आभिमुख्येन । **दधृषुः** । ञिधृषा प्रागल्भ्ये—लिट्, दीर्घः । धृष्टाः प्रगल्भा बभूवुः । **वेणोः** । **अजिवृरीभ्यो निच्च** (उ० ३ । ३८) इति अज गतिक्षेपणयोः—णुः । वीभावो गुणश्च । वंशकाण्डस्य नीरसतृणस्य इत्यर्थः । **अद्गाः** । **गन्-गम्यद्योः** (उ० १ । १२३) इति अद भक्षणे—गन् । अद्यते भक्ष्यते स अद्गः पुरोडाशाः । **अभितः** । सर्वतः । अन्यद् व्याख्यातम् । म० २ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र । इतम् । पादौ । प्र । स्फुरतम् । वहतम् । पृणतः । गृहान् । इन्द्राणी । एतु । प्रथमा । अजीता । अमुषिता । पुरः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(पादौ) हे हमारे दोनों पांव (प्रेतम्) आगे बढ़ो, (प्रस्फुरतम्) फुरती करे जाओ, (पृणतः) तृप्त करने वाले (गृहान्) कुटुम्बियों के पास [हमें] (वहतम्) पहुँचाओ। (प्रथमा) अपूर्व वा विख्यात (अजीता=अजिता) बिना जीती और (अमुषिता) बिना लूटी हुई (इन्द्राणी) इन्द्र की शक्ति, महा सम्पत्ति (पुरः) [हमारे] आगे आगे (एतु) चले ॥ ४ ॥

भावार्थः—१, महा प्रतापी शूरवीर पुरुषार्थी राजा विजय करके और बहुत धन प्राप्त करके सावधान होकर अपने घर को लौटे, और अपने मित्रों में अनेक प्रकार से उन्नति करके सुख भोग करे ॥

२—जितेन्द्रिय पुरुष आत्मस्थ परमेश्वर के दर्शन से परोपकार करके सुख प्राप्त करे ॥

इहेन्द्राणीमुपह्वये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ऋ० १ । २२ । १२ ॥

इस मन्त्र में (इन्द्राणी) इन्द्र सूर्य वा वायु की शक्ति और (वरुणानी) वरुण जल की शक्ति ऐसा अर्थ श्रीमद्दयानन्द भाष्य में है ॥ ४ ॥

४—**प्र+इतम्** । इण् गतौ—लोट् । युवां प्रकर्षेण गच्छतम् । **पादौ** । हे मम पादौ । **स्फुरतम्** । स्फुर स्फुरणे सञ्चलने च—लोट्, शीघ्रं चलतम् । **वहतम्** । वह प्रापणे—लोट्, द्विकर्मकः । अस्मान् प्रापयतम् । **पृणतः** । पृण प्रीणने, तुदादिः—शतृः । तर्पयितॄन् सुखयितॄन् पुरुषान् । **गृहान्** । पुंल्लिङ्गम् । **गेहे कः** (पा० ३ । १ । १४४) इति ग्रह उपदाने-कः । दारान् दारादीन् गृहस्थान् प्रति । **इन्द्राणी** । इन्द्राणीन्द्रस्य पत्नी-निरु० ११ । ३७ । इन्द्रस्य विभूतिः—इति दुर्गाचार्यस्तद्वृत्तौ । **इन्द्रवरुणभवशर्व०** (पा० ४ । १ । ४९) इति इन्द्र—ङीष् आनुक् च । इन्द्रस्य ऐश्वर्यशालिनः पत्नी पालयित्री शक्तिः । महासमृद्धिः महालक्ष्मीः । **एतु** । इण् गतौ । गच्छतु । **प्रथमा** । अ० १ । १२ । १ अपूर्वा । प्रख्याता, उत्कृष्टा । **अजीता** । जि—क्तः । सांहितिको दीर्घः । अनिर्जिता, अपराभूता । **अमुषिता** । मुष स्तेये—क्तः । अनपहृता । **पुरः** । पुरस्तात् । अस्माकम् अग्रे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् २८ ॥

१—४ । चातन ऋषिः । अग्निर्देवता । १—३ अनुष्टुप्, ४ पङ्क्तिः ।

युद्धप्रकरणम्—युद्ध का प्रकरण ॥

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः ।
दहन्नप द्ययाविनो यातुधानान् किमीदिनः ॥ १ ॥

उप । प्र । अगात् । देवः । अग्निः । रक्षःऽहा । अमीवऽचातनः ।
दहन् । अप । द्ययाविनः । यातुऽधानान् । किमीदिनः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(रक्षोहा) राक्षसों का मार डालने वाला (अमीवचातनः) दुःख मिटाने वाला (देवः) विजयी (अग्निः) अग्नि रूप सेनापति (द्ययाविनः) दुमुखे कपटी, (यातुधानान्) पीड़ा देने वाले (किमीदिनः) यह क्या है यह क्या है ऐसा करने वाले छली सूचकों वा लंपटों को (अप दहम्) मिटाकर भस्म करता हुआ (उप) हमारे समीप (प्र—अगात्) आ पहुँचा है ॥ १ ॥

भावार्थः—जब सेनापति अग्नि रूप होकर शतघ्नि [तोप] भुशुण्डी [बन्दूक], धनुष बाण तरवार आदि अस्त्र शस्त्रों से शत्रुओं का नाश करता है तब राज्य में शान्ति रहती है ॥ १ ॥

१—**अगात्** । इण् गतौ—लुङ् । अगमत् । **देवः** । अ० १ । ७ । १ विजयी । **अग्निः** । अग्निवत् तेजस्वी सेनापतिः । **रक्षः—हा** । रक्ष पालने—अपादाने असुन् । रक्षो रक्षितव्यमस्मात् । निरु० ४ । १८ । **बहुलं छन्दसि** (पा० ३ । २ । ८८) इति रक्षः+हन—क्विप् । हिंसकानां हन्ता । **अमीव-चातनः** । **इण्शीभ्यां वन्** (उ० १ । १५२) इति बाहुलकात् अम रोगे—वन्, ईडागमः । अमीवं दुःखम् । चातयतिर्नाशने—निरु० ६ । ३० । दुःखिनां नाशयिता । **अप+दहन्** । दह—शतृः । संतापयन् । भस्मसात् कुर्वन् । **द्ययाविनः** । द्वयं वाचिकं माधुर्यं मानसिकं हिंसनं च येषामस्तीति । **बहुलं छन्दसि** (पा० ५ । २ । १२२) इति द्वय—विनिप्रत्ययः । दीर्घश्च । मायाविनः । **यातु—धानान्** । अ० १ । ७ । १ । पीडाप्रदान् । **किमीदिनः** । अ० १ । ७ । १ पिशुनान्, कपटिनः, सूचकान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः ।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने संदह यातुधान्यः ॥ २ ॥

प्रति । दह । यातुऽधानान् । प्रति । देव । किमीदिनः ।
प्रतीचीः । कृष्णऽवर्तने । सम् । दह । यातुऽधान्यः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(देव) हे विजयी सेनापति (यातुधानान्) दुःखदायी राक्षसों और (किमीदिनः) क्या क्या करने हारे छली सूचकों को (प्रति) एक एक करके (प्रति दह) जला दे । (कृष्णवर्तने) हे धूँआं धाड़ मार्ग वाले अग्नि रूप सेनापति (प्रतीचीः) सन्मुख धावा करती हुयी (यातुधान्यः=०—नीः) दुःखदायिनी शत्रु सेनाओं को (सम् दह) चारों ओर से भस्म करदे ॥ २ ॥

भावार्थः—युद्धकुशल सेनापति अपने घातस्थानों से तोप तुपक आदि द्वारा अग्नि के समान धुआं धाड़ करता हुआ शत्रुओं के मुखियाओं और सेनादलों को व्याकुल करके भस्म कर देवे ॥ २ ॥

सायण भाष्य में 'कृष्णवर्तने' के स्थान में 'कृष्णवर्त्मने' पद और उसका अर्थ 'हे कृष्णवर्त्मन्' है ॥

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥ ३ ॥

२—**प्रति** । प्रतिमुखम् । प्रत्येकम् । **दह** । भस्मीकुरु । **यातुधानान्** । म० १ । पीडादातॄन् । राक्षसान् । **देव** । म० १ हे विजयशील ! । **किमीदिनः** । म० १ । पिशुनान् । **प्रतीचीः** । **ऋत्विग्दधृक्०** (पा० ३ । २ । ५९) इति प्रति+अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन् नलोपः, ङीप् । यथा विषूचीः शब्दः अ० १ । १९ । १ । प्रतिकूलं गच्छन्तीः । **कृष्णवर्तने** । **वृतेश्च** (उ० २ । १०६) इति वृतु वर्तने—अनिः । कृष्णा कृष्णवर्णा शतघ्नीभुशुण्ड्यादिप्रसारितधूमेन वर्तनिः वर्तिः पन्थाः यस्य सः, अग्निर्वा । हे कृष्णमार्ग, अग्निरूपसेनापते । **सम्** । सम्यक्, सर्वथा । **यातुधान्यः** । **पुंयोगादाख्यायाम्** (पा० ४ । १ । ४८) इति यातुधान—ङीष्, शसः स्थाने छन्दसि जस् । यणि कृते स्वरितः । यातुधानीः पीडादायिनीः शत्रुसेनाः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या । शशाप । शपनेन । या । अघम् । मूरम् । आदधे । या । रसस्य । हरणाय । जातम् । आरेभे । तोकम् । अत्तु । सा ॥३॥

भाषार्थः—(या) जिस [शत्रुसेना] ने (शपनेन) शाप [कुवचन] से (शशाप) कोसा है और (या) जिसने (अघम्) दुःख की (मूरम्) मूल को (आदधे) आकर जमाया है। और (या) जिसने (रसस्य) रस [बलादि] के (हरणाय) हरण के लिये (जातम्) [हमारे] समूह को (आरेभे) हाथ लगाया है, (सा) वह [शत्रुसेना] (तोकम्) अपनी बढ़ती वा सन्तान को (अत्तु) खा लेवे ॥ ३ ॥

भावार्थः—रण क्षेत्र में जब शत्रु सेना कोलाहल मचाती, धावा मारती और लूट खसोट करती आगे बढ़ती आवे, तो युद्धकुशल सेनापति शत्रुओं में भेद डाल दे कि वह लोग आपस में लड़ मरें और अपने सन्तान अर्थात् हितकारियों का ही नाश करदें ॥ २ ॥

सायण भाष्य में 'आदधे' के स्थान में 'आददे' पाठ है ॥

३—या । यातुधानी शत्रसेना। **शशाप ।** शप आक्रोशे—लिट्। शापं अनिष्टकथनं कृतवती । **शपनेन ।** शप आक्रोशे—करणे ल्युट् । आक्रोशेन, कुवचेन । **अघम् ।** अघ पापकरणे—णिच् । पापं, दुःखम् । दुःखकरम् । **मूरम् । क्विप् च** (पा० ३ । २ । ७६) इति मुर्छा मोहसमुच्छ्राययोः-क्विप्। **रालोपः** (पा० ६ । ४ । २१) इति छकारलोपः । मूर्छाकरम् । यद्वा । मूल प्रतिष्ठायाम्, रोहणे–कुः, लस्य रकारः[1] । मूलम् । प्रतिष्ठाम् । **अघं मूरम् ।** दुःखकरं मूलं शरणम् । **आ-दधे ।** आङ्+डुधाञ् धारणपोषणयोः—लिट्। परिजग्राह । **रसस्य ।** रस आस्वादने–पचाद्यच् । सारस्य, बलस्य, धनस्य, आनन्दस्य। **हरणाय ।** अपहरणाय, नाशनाय । **जातम् ।** जनी प्रादुर्भावे—क्तः। अस्माकं समूहम्। **आ-रेभे ।** आङ् पूर्वात् लभ आलम्भे=स्पर्शे–लिट्, लस्य रकारः। आलेभे, स्पृष्टवती । **तोकम् ।** अ० १ । १३ । २ । वृद्धिकरम् । सन्तानम् । **अत्तु ।** भक्षयतु नाशयतु । **सा ।** शत्रुसेना ।

---

१. बालमूललघ्व० (वा० पा० ८ । २ । १८) से रत्व हुआ है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम् ।
अधामिथो विकेश्यो ३ ' वि घ्नंतां यातुधान्यो ३ '
वि तृह्यन्तामराय्यः ॥ ४ ॥

पुत्रम् । अत्तु । यातुऽधानीः । स्वसारम् । उत । नप्त्यम् । अध । मिथः । विऽकेश्यः । वि । घ्नताम् । यातुऽधान्यः वि । तृह्यन्ताम् । अराय्यः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(यातुधानीः = ०—नी) दुःखदायिनी [शत्रुसेना] (पुत्रम्) [अपने] पुत्र को, (स्वसारम्) भली भांति काम पूरा करने हारी बहिन को (उत) और (नप्त्यम् = नप्त्रीम्) नातिनी वा धेवती को (अत्तु) खालेवे अर्थात् नष्ट करे। (अध) और (विकेश्यः) केश बिखेरे हुये वह सब [सेनायें] (मिथः) आपस में (विघ्नताम्) मर मिटें और (अराय्यः) दान अर्थात् कर न देने हारी (यातुधान्यः) दुःख पहुंचाने हारी [शत्रु प्रजायें] (वितृह्यन्ताम्) विविध प्रकार के दुःख उठावें ॥ ४ ॥

भावार्थः—चतुर सेनापति राजा अपनी बुद्धि बल से दुष्ट शत्रु सेना में हलचल मचादे कि वह सब घबराकर आपस में कट मर कर एक दूसरे को सताने लगें और जो प्रजा गण हठ दुराग्रह करके कर आदि न देवें उनको दण्ड देकर वश में कर लेवे ॥ ४ ॥

४—**पुत्रम्** । अ० १।११।५ । स्वसुतम् । **यातु-धानीः** । म० २ । प्रथमैकवचनं छन्दसि यथा श्रीः । यातुधानी, दुःखप्रदा, शत्रुसेना । **स्वसारम्** । **सावसेर्ऋन्** (उ० २ । ९६) इति सु+असु क्षेपणे—ऋन् । सुष्ठु अस्यति समाप्नोति कार्याणि सा स्वसा । भगिनीम् । **उत** । अपि च । **नप्त्यम्** । **नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृ०** (उ० २ । ९५) इति न+पत गतौ—तृच् । न पतति वंशो यस्मात् स नप्ता । **ऋन्नेभ्यो ङीप्** (पा० ४ । १ । ५) इति नप्तृशब्दात् ङीप् । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति पूर्वरूपस्य विकल्पाद् यणादेशः । नप्त्रीम्, पौत्रीं दौहित्रीं वा । **अध** । थस्य धः । अथ, अनन्तरम् । **मिथः** । मिथ मेधाहिंसनयोः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायण भाष्य में 'यातुधानी' विसर्जनीय रहित व्याख्यात है ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २९ ॥

१—६ ॥ वसिष्ठ ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

राजसूययज्ञोपदेशः—राजतिलक यज्ञ के लिये उपदेश ॥

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे ।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥ १ ॥

अभिऽवर्तेन । मणिना । येन । इन्द्रः । अभिऽववृधे ।
तेन । अस्मान् । ब्रह्मणः । पते । अभि । राष्ट्राय । वर्धय ॥ १ ॥

भाषार्थः—(येन) जिस (अभिवर्तेन) विजय करने वाले (मणिना) मणि से [प्रशंसनीय सामर्थ्य वा धन से] (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला पुरुष

असुन्, पृषोदरादित्वात् ह्रस्वः । अन्योऽन्यम् । परस्परम् । **वि-केश्यः । स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसं०** (पा० ४ । १ । ५४) इति विकेश—ङीष् । विकीर्णकेशयुक्ताः परस्परताडनेन । **वि** । विविधम् । **घनताम्** । हन हिंसागत्योः—लोटि बहुवचने । हन्यन्ताम् । म्रियन्ताम् । **यातुधान्यः** । म० १ । पीडाप्रदाः शत्रुसेनाः । **तृह्यन्ताम्** । तृह हिंसायाम्—कर्मणि लोट् । हिंस्यन्ताम् । **अराय्यः** । रा दाने—घञ् युक् आगमः ङीष् । अदानशीलाः प्रजाः ॥

१—**अभि-वर्तेन । अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** (पा० ३ । ३ । १९) इति अभि+वृतु वर्तने—घञ् । छान्दसो दीर्घः । अभिवर्तते अभिभवति शत्रून्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अभि) सर्वथा (ववृधे) बढ़ा था। (तेन) उसी से, (ब्रह्मणस्पते) हे वेद वा ब्रह्म [वेदवेत्ता] के रक्षक परमेश्वर ! (अस्मान्) हम लोगों को (राष्ट्राय) राज्य भोगने के लिये (अभि) सब ओर से (वर्धय) तू बढ़ा ॥ १ ॥

भावार्थः—जिस प्रकार हमसे पहिले मनुष्य उत्तम सामर्थ्य और धन को पाकर महा प्रतापी हुये हैं, वैसे ही उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के अनन्त सामर्थ्य और उपकार का विचार करके हम लोग पूर्ण पुरुषार्थ के साथ (मणि) विद्याधन और सुवर्ण आदि धन की प्राप्ति से सर्वदा उन्नति करके राज्य का पालन करें ॥ १ ॥

मन्त्र १-३, ६ ऋग्वेद, मंडल १० सूक्त १७४ म० १-३ और ५ कुछ भेद से हैं। जैसे 'मणिना' के स्थान में 'हविषा' पद है, इत्यादि ॥

अभिवृत्यं सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥ २ ॥

अभिऽवृत्यं । सऽपत्नान् । अभि । याः । नः । अरातयः ।
अभि । पृतन्यन्तम् । तिष्ठ । अभि । यः । नः । दुरस्यति ॥ २ ॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्मणस्पते] (सपत्नान्) [हमारे] प्रतिपक्षियों को, और (याः) जो हमारी (अरातयः) कर न देने हारी प्रजायें हैं,

---

स अभिवर्त्तः । अभिभवनशीलेन, जयशीलेन । **मणिना** । **सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४ । ११८) मण शब्दे—इन् । रत्ने, प्रशंसनीयसामर्थ्येन धनेन, वा राजचिह्नेन । **इन्द्रः** । अ० १ । २ । ३ । परमैश्वर्यवान् पुरुषो जीवः । **अभि-ववृधे** । वृधु वृद्धौ—लिट् । **तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य** (पा० ६ । १ । ७) इति दीर्घः । अभितः सर्वतः प्रवृद्धो बभूव । **तेन** । मणिना । **ब्रह्मणः+पते** । अ० १ । ८ । ४ । अ० १ । १ । १ । **षष्ठ्याः पतिपुत्र०** (पा० ८ । ३ । ५३) इति विसर्जनीयस्य सत्वम् । हे ब्रह्मणो वेदस्य विप्रस्य वा पालक परमेश्वर ! । **राष्ट्राय** । **सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्** (उ० ४ । १५९) इति राजृ दीप्तौ—ष्ट्रन् । राजति ऐश्वर्यकर्मा—निघ० २ । २१ । **व्रश्चभ्रस्जसृज०** (पा० ८ । २ । ३६) इति षः । राज्यवर्धनाय । **वर्धय** । वृधु वृद्धौ—णिच् लोट् । समर्धय, समृद्धान् कुरु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[उनको] (अभि) सर्वथा (अभिवृत्य) जीतकर (पृतन्यन्तम्) सेना चढ़ा कर लाने वाले शत्रु को [और उस पुरुष को] (यः) जो (नः) हमसे (दुरस्यति) दुष्ट आचरण करे, (अभि) सर्वथा (अभि तिष्ठ) तू दबा ले ॥२॥

भावार्थः—राजा परमेश्वर पर श्रद्धा करके अपने स्वदेशी और विदेशी दोनों प्रकार के शत्रुओं को यथा योग्य दंड देकर वश में रक्खे ॥ २ ॥

टिप्पणी—'अरातयः' शब्द का अर्थ ऋ० १०। १७४। २। में सायणाचार्य ने भी अदानशील प्रजा किया है ॥

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत् ।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥ ३ ॥

अभि । त्वा । देवः । सविता । अभि । सोमः । अवीवृधत् ।
अभि । त्वा । विश्वा । भूतानि । अभिऽवर्तः । यथा । अससि ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (देवः) प्रकाशमय (सविता) लोकों के चलाने हारे, सूर्य्य और (सोमः) अमृत देने वाले, चन्द्रमा ने (त्वा) तेरी

२—अभि-वृत्य । अभि+वृतु—ल्यप् । अभिभूय, पराजित्य । **सपत्नान्** । प्रतियोगिनः स्वदेशिनः शत्रून् । **अभि** । अभितः । सर्वथा । **याः** । ताः याः । **अरातयः** । अ० १। २। २। अदानशीलाः प्रजाः इति सायणोऽपि ऋ० १०। १७४। २। **अभि+तिष्ठ** । अभिभव, पराजय, त्वं ब्रह्मणस्पते । **पृतन्यन्तम्** । **सुप आत्मनः क्यच्** (पा० ३। १। ८) इति पृतना क्यच्—शतृः । पृतनाः सेनाः आत्मानमिच्छन्तं युयुत्सुम् । **यः** । = तम् यः । **नः** । अस्मान् । **दुरस्यति** । **दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति** (पा० ७। ४। ३६) इति क्यचि दुष्टशब्दस्य दुरस्भावो निपात्यते । दुष्टीयति दुष्टम् । अनिष्टं कर्तुमिच्छति ॥

३—अभि । अभितः सर्वतः । **त्वा** । त्वाम् ब्रह्मणस्पतिम् । **देवः** । प्रकाशमयः । **सविता** । अ० १। १८। २। सूर्यः । **सोमः** । अ० १।६।२। सवति अमृ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अभि अभि) सब प्रकार से (अवीवृधत्) बड़ाई की है। और (विश्वा) सब (भूतानि) सृष्टि के पदार्थों ने (त्वा) तेरी (अभि) सब प्रकार [बड़ाई की है] (यथा) क्योंकि तू (अभिवर्तः) [शत्रुओं का] दबाने वाला (असि) है ॥३॥

भावार्थः—सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल पदार्थों की रचना और उपकार से उस परमेश्वर की महिमा दीख पड़ती है, उसी अन्तर्यामी के दिये हुये आत्मबल से शूरवीर पुरुष रणभमि में राक्षसों को जीत कर राज्य में शान्ति फैलाते हैं ॥ ३ ॥

अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः ।
राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥ ४ ॥

अभिऽवर्तः । अभिऽभवः । सपत्नऽक्षयणः । मणिः । राष्ट्राय । मह्यम् । बध्यताम् । सऽपत्नेभ्यः । पराऽभुवे ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अभिवर्तः) शत्रुओं का जीतने वाला, और (अभिभवः) हराने वाला, और (सपत्नक्षयणः) प्रतिपक्षियों का नाश करने वाला (मणिः) मणि [प्रशंसनीय सामर्थ्य], रत्न आदि राज्य चिह्न (मह्यम्) मुझ पर (राष्ट्राय)

तम् । चन्द्रः । **अवीवृधत्** । वृधु वृद्धौ, णिच्-लुङ् । वर्धितवान्, अस्तावीत् । **अभि** । =अभि अवीवृधन् अस्तुवन् । **विश्वा** । शेर्लुक् । विश्वानि सर्वाणि । **भूतानि** । प्राणिजातानि, चराचरात्मकानि वस्तूनि, तत्त्वानि । **अभिवर्तः** । म० १ । वृतु-घञ् । अभिभविता, शत्रुजेता । **यथा** । यस्मात् कारणात् । **असि** । अस भुवि-लट् । **बहुलं छन्दसि** (पा० २ । ४ । ७३) इति शपोऽलुक् । असि भवसि ॥

४—अभिवर्तः । म० १ । जयशीलः । **अभिभवः** । अभि + भू-अप् । अभिभविता । **सपत्नक्षयणः** । **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** (पा० ३ । १ । १३४) इति सपत्नपूर्वात् क्षि क्षये-कर्तरि ल्युः । शत्रूणां क्षयकरः । **मणिः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य की वृद्धि के लिये और (सपत्नेभ्यः) बैरियों को (पराभुवे) दबाने के लिये (बध्यताम्) बांधा जावे ॥ ४ ॥

भावार्थः—राज्यलक्ष्मी का प्रभाव जताने के लिये राजा मणि रत्न आदि को धारण करके अपना सामर्थ्य बढ़ावे और राजसभा में राजसिंहासन पर विराजे कि जिससे शत्रु दल भयभीत होकर आज्ञाकारी बने रहें और राज्य में ऐश्वर्य की सदा वृद्धि होवे ॥ ४ ॥

उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः ।
यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥ ५ ॥

उत् । असौ । सूर्यः । अगात् । उत् । इदम् । मामकम् । वचः ।
यथा । अहम् । शत्रुऽहः । असानि । असपत्नः । सपत्नऽहा ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(असौ) वह (सूर्यः) लोकों का चलाने हारा सूर्य (उत् अगात्) उदय हुआ है और (इदम्) यह (मामकम्) मेरा (वचः) वचन (उत् = उत् अगात्) उदय हुआ है (यथा) जिससे कि (अहम्) मैं (शत्रुहः) शत्रुओं का

म० १ । रत्नम् । प्रशस्तं सामर्थ्यम् । **राष्ट्राय** । म० १ राज्यवर्धनाय । **मह्यम्** । मदर्थम् । **बध्यताम्** । बन्ध बन्धने, कर्मणि लोट् । धार्यताम् । **सपत्नेभ्यः** । शत्रुभ्यः । **पराभुवे** । पर + भू–भावे–क्विप् । पराभवनाय ॥

५—**उत् + अगात्** । अ० १ । २८ । १ उदितवान् । **सूर्यः** । अ० १ । ३ । ५ । लोकानां प्रेरकः । आदित्यः, राज्यलक्ष्मीरूपः । **उत्** । उत् अगात् । **इदम्** । वक्ष्यमाणं वचनम् । **मामकम्** । **तस्येदम्** (पा० ४ । ३ । १२०) इति अस्मद् अण् । **तवकममकावेकवचने** (पा० ४ । ३ । ३) इति ममकादेशः । मदीयम् । **वचः** । वच परिभाषणे–असुन् । वाक्यम् । वचनम् । **यथा** । येन कारणेन । **अहम्** । राजा । **शत्रु--हः** । **आशिषि हनः** (पा० ३ । २ । ४९) इति शत्रु + हन हिंसागत्योः–डप्रत्ययः । शत्रूणां हन्ता । **असानि** । अस भुवि लोट् । अहं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारने वाला, और (सपत्नहा) रिपु दल का नाश करने वाला होकर (असपत्नः) शत्रु रहित (असानि) रहूं ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजा राज सिंहासन पर विराजकर राजघोषणा करे कि जिस प्रकार पृथिवी पर सूर्य प्रकाशित है उसी प्रकार से यह राज घोषणा [ढंढोरा] प्रकाशित की जाती है कि राज्य में कोई उपद्रव न मचावे, और न अराजकता फैलावे ॥ ५ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध ऋ० १० । १५९ । १ का पूर्वार्ध है वहां 'वचः' के स्थान में 'भगः' है ॥

सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥ ६ ॥

सपत्नऽक्षयणः । वृषा । अभिऽराष्ट्रः । विऽससहिः ।
यथा । अहम् । एषाम् । वीराणाम् । विऽराजानि । जनस्य । च ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यथा) जिससे कि (सपत्नक्षयणः) शत्रुओं का नाश करने वाला (वृषा) ऐश्वर्य वाला (विषासहिः) सदा विजय वाला (अहम्) मैं (अभिराष्ट्रः) राज्य पाकर (एषाम्) इन (वीराणाम्) वीर पुरुषों का (च) और (जनस्य) लोकों का (विराजानि) राजा रहूं ॥ ६ ॥

भवानि । **असपत्नः** । म० २ । शत्रुरहितः । **सपत्नहा** । **क्विप् च** (पा० ३ । २ । ७६) इति सपत्न + हन्–क्विप् । रिपुहन्ता ॥

६—**सपत्नक्षयणः** । म० ४ । शत्रुनाशकः । **वृषा** । अ० १ । १२ । १ । वृषु सेचने–कनिन् । ऐश्वर्यवान् । सुखवर्षकः । इन्द्रः । महाबली । **अभि-राष्ट्रः** । म० १ । अभिगतराज्यः । प्राप्तराज्यः । **विषासहिः** । **सहिवहिचलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ** (वा०पा०३।२।१७१) इति यङन्तात् षह मर्षणे–किः । अतोलोपयलोपौ । विविधं पुनः पुनः परेषां सोढा, अभिभविता । **एषाम्** । उपस्थितानाम् । **वीराणाम्** । वीर विक्रान्तौ–पचाद्यच् । विक्रान्तानां, शूराणाम्, भटानाम् । **वि-राजानि** । राजति = ईष्टे—निघ० २ । २१ । ईश्वरः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा सिंहासन पर विराजकर राजघोषणा करते हुये शूरवीर योद्धाओं और विद्वान् जनों का सत्कार और मान करके शासन करे ॥ ६ ॥

सूक्तम् ३० ॥

१-४ ॥ आयुष्कामोऽथर्वा ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राजसूययज्ञोपदेशः—राज तिलक यज्ञ का उपदेश ॥

विश्वे॑ देवा॒ वस॑वो रक्ष॒तेम॒मुता॑दित्या जागृत॒ यूय॒मस्मिन्। मे॒मं सना॑भिरु॒त वा॒न्यना॑भि॒र्मे॒मं प्रा॑प॒त् पौरु॑षेयो॒ व॒धो यः ॥ १ ॥

विश्वे॑ । दे॒वाः॑ । वस॑वः । रक्ष॑त । इ॒मम् । उ॒त । आ॒दि॒त्याः॑ । जा॒गृ॒त । यू॒यम् । अ॒स्मिन् । मा । इ॒मम् । सऽना॑भिः । उ॒त । वा॒ । अ॒न्यऽना॑भिः । मा । इ॒मम् । प्र । आ॒प॒त् । पौरु॑षेयः । व॒धः । यः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(वसवः) हे श्रेष्ठ (विश्वे) सब (देवाः) प्रकाशमान महात्माओ ! (इमम्) इस पुरुष की (रक्षत) रक्षा करो, (उत) और (आदित्याः) हे सूर्य समान तेज वाले विद्वानो ! (यूयम्) तुम (अस्मिन्) इस राजा के विषय में (जागृत) जागते रहो । (सनाभिः) अपने बन्धु का (उत वा)

शासिता भवानि । **जनस्य** । जनी प्रादुर्भावे–अच् । **अधीगर्थदयेषां कर्मणि** (पा० २ । ३ । ५२) इति षष्ठी । लोकस्य, प्राणिजातस्य ॥

१—देवाः । अ० १ । ७ । १ । विजयिनः पुरुषाः । **वसवः** । अ० १ । ९ । १ । निवासयितारः । प्रशस्ताः श्रेष्ठाः । **रक्षत** । पालयत । **इमम्** । माम् राजानम् । **आदित्याः** । अ० १ । ९ । १ । विद्यादिशुभगुणानां रसस्य आदातारो ग्रहीतारः । अथवा आदित्यवत् तेजस्विनः महाविद्वांसः । **जागृत** । जागृ निद्राक्षये—लोट् । प्रबुद्धाः रक्षार्थम् अवहिताः संनद्धा भवत । **मा** । निषेधे । **सनाभिः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा (अन्यनाभिः) अबन्धु का, अथवा (पौरुषेयः) किसी और पुरुष का किया हुआ, (यः) जो (वधः) वध का यत्न है [वह] (इमम्) इस (इमम्) इस पुरुष को (मा मा) कभी न (प्रापत्) पहुंच सके ॥ १ ॥

भावार्थः—राजा अपने सुपरीक्षित न्याय मन्त्री और युद्ध मन्त्री आदि कर्मचारी शूरवीरों को राज्य की रक्षा के लिये सदा चैतन्य करता रहे कि कोई सजाती वा स्वदेशी वा विदेशी पुरुष प्रजा में अराजकता न फैलावे ॥ ३ ॥

ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम्।
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं स्वस्त्येनं जरसे वहाथ ॥ २ ॥

ये । वः । देवाः । पितरः । ये । च । पुत्राः । सञ्चेतसः । मे । शृणुत । इदम् । उक्तम् । सर्वेभ्यः । वः । परि । ददामि । एतम् । स्वस्ति । एनम् । जरसे । वहाथ ॥ २ ॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विजयी देवताओ ! और (ये) जो (वः) तुम्हारे (पितरः) पितृगण (च) और (ये) जो (पुत्राः) पुत्रगण हैं, वह तुम सब (सचेतसः) सावधान होकर (मे) मेरे (इदम्) इस (उक्तम्) वचन को

नहो भश्च (उ० ४ । १२६) इति णह बन्धने-कर्मणि इञ् समानस्य सः । समानेन स्वकीयेन संबद्धः । स्वजातिकृतो वधः । **अन्य-नाभिः** । अन्येन संबद्धः । अज्ञातिकृतो वधः । **प्र+आपत्** । आप्ल व्याप्तौ—लुङि । प्राप्नोतु । **पौरुषेयः** । **सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ** (पा० ५ । १ । १०) इत्यत्र **पुरुषाद् वधविकारसमूहतेनकृतेषु** इति वार्तिकम् । पुरुष-ढञ् । पुरुषकृतः । **वधः** । अ० १ । २० । २ । हननम् । हिंसनप्रयोगः ॥

२—**पितरः** । अ० १ । १ । १ । पालकाः, उत्पादकाः । **पुत्राः** । अ० १ । ११ । ५ । आत्मजाः । **स-चेतसः** । समान+चिती संज्ञाने—असुन् । **समानस्य छन्दस्य०** (पा० ६ । ३ । ८४) इति सभावः । समानचित्ताः, एकमनस्काः । **शृणुत** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शृणुत) सुनो (सर्वेभ्यः वः) तुम सब को मैं (एतम्) इसे [अपने को] (परि ददामि) सौंपता हूं, (एनम्) इस पुरुष के लिये [मेरे लिये] (स्वस्ति) कल्याण और मङ्गल (जरसे) स्तुति के अर्थ (वहाथ) तुम पहुंचाओ ॥ २ ॥

भावार्थः—जो बुद्धिमान् मनुष्य शास्त्रवित् विजयशील वृद्ध, युवा और ब्रह्मचारियों की सेवा में आत्मसमर्पण करता है वह पुरुष उन महात्माओं के सत्संग, उपदेश और सत्कर्मों से लाभ उठाकर संसार में अपनी स्तुति फैलाता है ॥ २ ॥

टिप्पणी—१ 'जरसे' शब्द का अर्थ "स्तुति के लिये" निघंटु ३ । १४ निरु० १० । ८ और सायणभाष्य ऋग्वेद १ । २ । २ के प्रमाण से किया है। यहां पर सायणभाष्य में "जरायै, जराप्राप्तिपर्यन्तम् । बुढ़ापे के लिये, बुढ़ापे के आने तक" जो अर्थ है वह असंगत है, वेद में जीवन को स्वस्थ और स्तुति-योग्य रखने का उपदेश है । देखो—अथर्ववेद, का० ६ सू० १२० म० ३ ॥

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
अश्लोणा अङ्गैरहुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥

जहां पर पुण्यात्मा मित्र अपने शरीर का रोग छोड़ कर आनन्द भोगते हैं,

---

श्रु श्रवणे-लोट् आकर्णयत । **इदम्** । वक्ष्यमाणम् । **उक्तम्** । वच परिभाषणे--क्तः । **वचिस्वपियजादीनां** (पा० ६ । १ । १५) इति संप्रसारणम् । वचनम् । **वः** । युष्मभ्यम् । **परि ददामि** । रक्षणार्थं दानं परिदानं समर्पणम् । रक्षितुं प्रयच्छामि, समर्पयामि । **एतम्** । आत्मानम् । **स्वस्ति** । **सावसेः** (उ० ४ । १८१) सु+अस भुवि—तिः । आशीर्वादम्, क्षेमम् । **एनम्** । माम् प्रति । **जरसे** । जरते स्तौतीत्यर्चतिकर्माणौ—निघ० ३ । १४ जरा स्तुतिर्जरते—स्तुतिकर्मणः । निरु० १० । ८ यथा—**'वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः'** (ऋ० १ । २ । २) जरन्ते = स्तुवन्ति, जरितारः = स्तोतारः, इति सायणस्तद्भाष्ये । जॄ स्तुतौ, नैरुक्तधातुः । यद्वा । गॄ शब्दे = स्तुतौ—असुन्, गकारस्य जकारः । स्तुत्यर्थम् । प्रशंसाप्राप्त्यर्थम् । **वहाथ** । वह प्रापणे-लेट् । द्विकर्मकः । यूयं प्रापयत ॥

---

१. इस विषय में अथ० का० २ । सू० १० । १, पृ० १४३ की सम्पादकीय टिप्पणी देखें ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहां पर स्वर्ग में बिना लंगड़े हुये और अंगों से बिना टेढ़े हुये हम माता पिता और पुत्रों को देखते रहें।

और देखो यजुर्वेद २५। २१ तथा ऋग्वेद १। ८९। ८

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

हे विद्वान् जनो! कानों से हम शुभ सुनते रहें, हे पूज्य महात्माओ! आंखों से हम शुभ देखते रहें। दृढ़ अङ्गों और शरीरों से स्तुति करते हुये हम लोग वह जीवन पावें जो विद्वानों का हितकारक है॥

ये देवा दिवि ष्ठ ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्व १न्तः। ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान् परि वृणक्तु मृत्यून्॥ ३॥

ये। देवाः। दिवि। स्थ। ये। पृथिव्याम्। ये। अन्तरिक्षे। ओषधीषु। पशुषु। अप्सु। अन्तः। ते। कृणुत। जरसम्। आयुः। अस्मै। शतम्। अन्यान्। परि। वृणक्तु। मृत्यून्॥ ३॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वान् महात्माओ! (ये) जो तुम (दिवि) सूर्य लोक में, (ये) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में (ये) जो (अन्तरिक्षे) आकाश वा मध्यलोक में (ओषधीषु) ओषधियों में, (पशुषु) सब जीवों में और (अप्सु) व्यापक सूक्ष्म तन्मात्राओं वा जल में (अन्तः) भीतर (स्थ) वर्तमान हो, (ते) वह तुम (अस्मै) इस पुरुष के लिये (जरसम्) कीर्तियुक्त

३—**देवाः**। हे दिव्यगुणाः। दिव्यगुणयुक्ताः विद्वांसः। **दिवि**। दिवु क्रीडा-विजिगीषाकान्तिगत्यादिषु-क्विप्। प्रकाशे सूर्यसमानलोके। **स्थ**। अस भुवि लट्। भवथ, वर्त्तध्वे। **पृथिव्याम्**। अ० १। २। १ विस्तृतायां प्रख्यातायां वा भूमौ। **अन्तरिक्षे**। अन्तः सूर्यपृथिव्योर्मध्ये ईक्ष्यते। अन्तर्+ईक्ष दर्शने-कर्मणि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आयुः) जीवन (कृणुत) करो, [यह पुरुष] (अन्यान्) दूसरे प्रकार के (शतम्) सौ (मृत्यून्) मृत्युओं को (परि वृणक्तु) हटावे ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् सूर्य विद्या, भूमि विद्या, वायुविद्या, ओषधि अर्थात् अन्न, वृक्ष, जड़ी, बूटी आदि की विद्या, पशु अर्थात् सब जीवों की पालन विद्या और जल विद्या वा सूक्ष्म तन्मात्राओं की विद्या में निपुण हैं उनके सत्संग और उनके कर्मों के विचार से शिक्षा ग्रहण करके और पदार्थों के गुण, उपकार और सेवन को यथार्थ समझ कर मनुष्य अपना सब जीवन शुभ कर्मों में व्यतीत करें, और दुराचरणों में अपने जन्म को न गवाँकर सुफल करें ॥ ३ ॥

टिप्पणी—'पशु' शब्द जीववाची है, देखो अथर्व० २ । ३४ । १ ।

घञ् । यद्वा । अन्तर्मध्ये ऋक्षाणि नक्षत्राणि यस्य तत् अन्तरिक्षम् । पृषोदरादित्वात् ईकारस्य ह्रस्वः, ऋकारस्य इकारः । अन्तरिक्षं कस्मादन्तरा क्षान्तं भवत्यन्तरेमे इति वा शरीरेष्वन्तरक्षयमिति वा—इति भगवान् यास्कः, निरु० २ । १० सर्वमध्ये दृश्यमाने । आकाशे । **ओषधीषु** । अ० १।२३।१ । ओषधि—ङीप् ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः (मनुः १ । ४६) इति कदलीव्रीहियवफलधान्यादिषु । **पशुषु** । **अर्ज्जिदृशिकम्यमिपासि०** (उ० १ । २७) इति दृशिर् प्रेक्षणे—कुः पशि आदेशः । पश्यन्ति दृश्यन्ते वा ते पशवः । प्राणिमात्रेषु, सर्वजीवेषु । **अप्सु** । अ० १ । ४ । ३ । आप्लृ—क्विप् । व्यापिकासु सूक्ष्मतन्मात्रासु । यथा श्रीमद्दयानन्दभाष्ये यजु० २७ । २५, २६ । जलेषु वा । **अन्तः** । मध्ये । **ते** । सर्वे देवा यूयम् । **कृणुत** । कुरुत । **जरसम्** । म० २ । जरस् स्तुतिः । **अर्श-आदिभ्योऽच्** (पा० ५ । २ । १२७) इति मत्वर्थे अच् । स्तुतियुक्तम् । प्रशंसनीयम् । **आयुः** । **ऐतेर्णिच्च** (उ० २ । ११८) इति इण् गतौ—उसिः ईयते प्राप्यते यत्तत् आयुः । जीवनम्, जीवितकालः । **अस्मै** । आत्मने, मह्यम् । **शतम्** । अपरिमितान् । **अन्यान्** । स्तुत्यजीवनाद् भिन्नान् मृत्यून् । **परि+वृणक्तु** । वृजी वर्जने—लोट् । अयम् उपासकः परिवर्जयतु । **मृत्यून्** । **भुजिमृङ्भ्यां युक्त्युकौ** (उ० ३ । २१) इति मृङ् प्राणत्यागे—त्युक् । प्राणवियोगान्, मरणानि । अत्र पश्यत अ० २ । २८ । १ तथा अ० ८ । २ । २७ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ।

जो पशुपति चौपाये और दोपाये पशुओं [अर्थात् जीवों] का राजा है। 'अप्सु' व्यापक सूक्ष्म तन्मात्राओं में । देखो श्रीमद्दयानन्द भाष्य, यजुर्वेद २७ । २५ और २६ ॥

येषां प्रयाजा उत वानुयाजा हुतभागा अहुतादश्च देवाः । येषां वः पञ्च प्रदिशो विभक्तास्तान् वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि ॥ ४ ॥

येषाम् । प्रऽयाजाः । उत । वा । अनुऽयाजाः । हुतऽभागाः । अहुतऽअदः । च । देवाः । येषाम् । वः । पञ्च । प्रऽदिशः । विऽभक्ताः । तान् । वः । अस्मै । सत्रऽसदः । कृणोमि ॥ ४ ॥

भावार्थः— (येषाम्) जिन [तुम्हारे] (प्रयाजाः) उत्तम पूजनीय कर्म (उत वा) और (अनुयाजाः) अनुकूल पूजनीय कर्म, और (हुतभागाः) देने लेने के विभाग (च) और (अहुतादः) यज्ञ वा दान से बचे पदार्थों के आहार (देवाः) विजय करने हारे [वा प्रकाश वाले] हैं । और (येषाम् वः) जिन तुम्हारे (पञ्च) विस्तीर्ण [वा पांच] (प्रदिशः) उत्तम दान क्रियायें [वा प्रधान दिशायें] (विभक्ताः) अनेक प्रकार बटी हुयी हैं (तान् वः) उन तुम को (अस्मै) इस [पुरुष] के हित के लिये [अपने लिये] (सत्रसदः) सभासद् (कृणोमि) बनाता हूं ॥ ४ ॥

४—**प्रयाजाः** । **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** (पा०३।३।१९) इति प्र+यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु–घञ् । **प्रयाजानुयाजौ यज्ञाङ्गे** (पा० ७ । ३ । ६२) इति कुत्वप्रतिषेधो निपात्यते । प्रकृष्टपूजनीयकर्माणि । **वा** । समुच्चये, पादपूरणे वा । **अनुयाजाः** । अनु+यज–घञ् पूर्ववत् । अनुकूलानि पूजनीयकर्माणि **हुतभागाः** । हु दानादनयोः,क्तः । भज सेवाविश्राणनयोः–भावे घञ् । हुतस्य,दत्तस्य, दानस्य गृहीतस्य वा विभागाः । **अहुतअदः** । **संपदादिभ्यः क्विप्** (वा० पा० ३ । ३ । ९४) अहुत+अद भक्षणे–भावे क्विप् । अदानस्य दानशेषस्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो धर्मात्मा विद्वान् पुरुष स्वार्थ छोड़कर दान करते हों और सब संसार के हित में दत्तचित्त हों, राजा उन महात्माओं को चुनकर अपनी राज सभा का सभासद् बनावे ॥ ४ ॥

यज्ञशेष के भोजन के विषय में भगवान् श्री कृष्ण महाराज ने भगवद्गीता में कहा है :—

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ गीता. ४ । ३१ ॥

यज्ञ [दान वा देवपूजा] से बचे अमृत का भोजन करने वाले पुरुष सनातन ब्रह्मको पाते हैं । यज्ञ न करने वाले का यह लोक नहीं है, हे कौरवों में श्रेष्ठ ! फिर उस का परलोक कहां से हो ॥

सूक्तम् ३१ ॥

१--४ । ब्रह्म ऋषिः । प्रजापतिर्देवता १, २ अनुष्टुप् ३, ४ त्रिष्टुप् उपरिष्टाज् ज्योतिः, ११ × ३ + ८ = ४१ ॥

पुरुषार्थानन्दोपदेशः—पुरुषार्थ और आनन्द के लिये उपदेश ॥

अशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः ।
इदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् ॥ १ ॥

भोजनानि । धनधान्यादीनि । **देवाः** । अ०१।७।१। विजयिनः । प्रकाशमयाः । **पञ्च । सप्यशूभ्यां तुट् च** (उ० १ । १५७) इति बाहुलकात् पचि व्यक्तीकरणे विस्तारवचने च–कनिन् । विस्तीर्णाः, व्यक्ताः प्रसिद्धाः । संख्यावाची वा । **प्र-दिशः** । प्र + दिश दाने आज्ञापने च-क्विप् । प्रकृष्टा दानक्रियाः । प्राच्याद्याः सर्वा दिशाः । **वि-भक्ताः** । वि + भज-क्तः । प्राप्तविभागाः । **अस्मै** । आत्मने, मदर्थम् । **सत्र-सदः** । **गुधृवी-पचिवचियमिसदिक्षदिभ्यस्त्रः** (उ० ४ । १६७) इति षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु–त्रप्रत्ययः । सीदन्ति यत्रेति सत्रं सदनं यज्ञः । सभास्थानम् पुनः । **सत्सूद्विषद्रुह०** (पा० ३ । २ । ६१) इति सत्रोपपदे तस्मादेव धातोः–कर्तरि क्विप् । सभासदः, सभ्यान् । **कृणोमि** । कृवि हिंसाकरणयोश्च लट् । करोमि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशानाम् । आशापालेभ्यः । चतुःऽभ्यः । अमृतेभ्यः ।
इदम् । भूतस्य । अधिऽअक्षेभ्यः । विधेम । हविषा । वयम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(इदम्) इस समय (वयम्) हम (आशानाम्) सब दिशाओं के मध्य (आशापालेभ्यः) आशाओं के पालने हारे, (चतुर्भ्यः) प्रार्थना के योग्य पुरुषों [अथवा, चार धर्म अर्थ काम और मोक्ष पदार्थों] के लिये (अमृतेभ्यः) अमर रूप वाले, (भूतस्य) संसार के (अध्यक्षेभ्यः) प्रधानों की (हविषा) भक्ति से (विधेम) सेवा करें ॥ १ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को उत्तम गुण वाले पुरुषों अथवा चतुर्वर्ग, धर्म, अर्थ, काम [ईश्वर में प्रेम] और मोक्ष की, प्राप्ति के लिये सदा पूर्ण पुरुषार्थ करना चाहिये । इनके ही पाने से मनुष्य की सब आशायें वा कामनायें पूर्ण होती हैं ॥ १ ॥

य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थन देवाः ।
ते नो निर्ऋत्या पाशेभ्यो मुञ्चतांहसोअंहसः ॥ २ ॥

१—**आशानाम्** । आङ् + अशूङ् व्याप्तौ–पचाद्यच्, टाप् । दिशानां मध्ये । **आशा-पालेभ्यः** । **कर्मण्यण्** (पा० ३ । २ । १) इति आशा + पल गतौ वा पाल, रक्षणे–अण् । दिशानाम् आकांक्षानां वा पालकेभ्यः । लोकपालेभ्यः । **चतुःभ्यः** । **चतेरुरन्** (उ० ५ । ५८) इति चते याचने–उरन् । याचनीयेभ्यः, कमनीयेभ्यः । अथवा चतुःसंख्याकेभ्यः, धर्मार्थकाममोक्षेभ्यः । **अमृतेभ्यः** । मृतं मरणम् । मरणरहितेभ्यः, अमरेभ्यः, महायशस्विभ्यः । **इदम्** । इदानीम् । **भूतस्य** । लोकस्य । **अधि-अक्षेभ्यः** । अध्यक्षणोति समन्ताद् व्याप्नोति । अधि + अक्षू व्याप्तौ संहतौ–अच् । व्यापकेभ्यः । अधिपतिभ्यः । **विधेम** । अ० १ । १२ । २ । परिचरेम । **विधेम** । इत्यस्य प्रयोगे बहुधा कर्मणि चतुर्थी दृश्यते, यथा– **कस्मै देवाय हविषा विधेम** (य० १३ । ४) **हविषा** । अ० १ । १२ । २ । आत्मदानेन, भक्त्या ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये । आशानाम् । आशापालाः । चत्वारः । स्थन । देवाः ।
ते । नः । निःऽऋत्याः । पाशेभ्यः । मुञ्चत । अंहसःऽअंहसः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(देवाः) हे प्रकाशमय देवताओ ! (ये) जो तुम (आशानाम्) सब दिशाओं के मध्य (चत्वारः) प्रार्थना के योग्य [अथवा चार] (आशापालाः) आशाओं के रक्षक (स्थन) वर्तमान हो, (ते) वे तुम (नः) हमें (निर्ऋत्याः) अलक्ष्मी वा महामारी के (पाशेभ्यः) फंदों से और (अंहसो-अंहसः) प्रत्येक पाप से (मुञ्चत) छुड़ाओ ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को प्रयत्न पूर्वक सब उत्तम पदार्थों [अथवा चारों पदार्थ, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष] को प्राप्त करके सब क्लेशों का नाश करना चाहिये ॥ २ ॥

अस्त्रामस्त्वा हविषा यजाम्यश्ळोणस्त्वा घृतेन जुहोमि । य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः स नः सुभूतमेह वक्षत् ॥ ३ ॥

२—आशानाम् । म० १ । दिशानां मध्ये । **आशापालाः ।** म० १ । आकांक्षानाम् पालकाः, लोकपालाः । **चत्वारः ।** म० १ । याचनीयाः प्रार्थनीयाः । चतुःसंख्याका धर्मार्थिकाममोक्षा वा । **स्थन । तप्तनप्तनथनाश्च ।** (पा० ७ । १ । ४५) इति अस भुवि लोटि मध्यमपुरुषबहुवचने थनादेशः । यूयं स्त भवत । **देवाः ।** हे दिव्यगुणाः पुरुषाः । **निःऋत्याः ।** निः + ऋ हिंसायाम्—क्तिन् । नितराम् ऋतिर्घृणा अशुभं वा यस्याः सा निर्ऋतिः, तस्याः । अलक्ष्म्याः । उपद्रवस्य । **पाशेभ्यः ।** पश बन्धने—घञ् । बन्धनेभ्यः । **मुञ्चत ।** मुच्लृ मोचने । मोचयत । **अंहसः-अंहसः । अमेर्हुक् च** (उ० ४ । २१३) इति अम रोगे, —असुन्, हुक् आगमः । **नित्यवीप्सयोः,** (पा० ८ । १ । ४) इति द्विर्वचनम् । सर्वस्माद् दुःखात्, पापात् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्रामः । त्वा । हविषा । यजामि । अश्लोणः । त्वा । घृतेन जुहोमि । यः । आशानाम् । आशापालः । तुरीयः । देवः । सः । नः । सुभूतम् । आ । इह । वक्षत् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (अस्रामः) श्रम रहित मैं (त्वा) तुझ को (हविषा) भक्ति से (यजामि) पूजता हूं, (अश्लोणः) लंगड़ा न होता हुआ मैं (त्वा) तुझको (घृतेन) [ज्ञान के] प्रकाश से [अथवा घृत से] (जुहोमि) स्वीकार करता हूं । (यः) जो (आशानाम्) सब दिशाओं में (आशापालः) आशाओं का पालन करने वाला, (तुरीयः) बड़ा वेगवान् परमेश्वर [अथवा, चौथा मोक्ष] (देवः) प्रकाशमय है, (सः) वह (नः) हमारे लिये (इह) यहां पर (सुभूतम्) उत्तम ऐश्वर्य (आ+वक्षत्) पहुंचावे ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य निरालस्य होकर परमेश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं अथवा जो घृत से अग्नि के समान प्रतापी होते हैं वे शीघ्र ही जगदीश्वर का दर्शन करके [अथवा, धर्म, अर्थ, और काम की सिद्धि से पाये हुये चौथे मोक्ष के लाभ से] महासमर्थ हो जाते हैं ॥ ३ ॥

३— **अस्रामः** । श्रमु तपसि खेदे च-घञ् । शस्य सकारः । श्रमरहितः, खेदरहितः । **त्वा** । त्वाम् परमेश्वरम् । **हविषा** । म० १ । भक्त्या । **यजामि** । पूजयामि । **अश्लोणः** । श्रोणृ संघाते=राशीकरणे—अच् । रस्य लः । अश्रोणः, अपङ्गुः । **घृतेन** । **अश्विघृसिभ्यः क्तः** (उ० ३ । ८९) इति घृ क्षरणदीप्त्योः—भावे क्तः । दीप्त्या, स्वज्ञानप्रकाशेन । आज्येन । **जुहोमि** । अ० १ । १५ । १ । अहम् आददे,स्वीकरोमि । **यः** । आशापालः । **आशानाम्** । म० १ । दिशानाम् । **आशापालः** । म० १ । इच्छापालकः । **तुरीयः** । तुरो वेगः, अस्त्यर्थे छप्रत्ययः । तुरावान् वेगवान् परमेश्वरः अथवा, **चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च** (वा० पा० ५ । २ । ५१) इति चतुर्—छः चकारलोपश्च । चतुर्थः । चतुर्णां पूरको मोक्षः—इति । **सु-भूतम्** । सु=भू सत्तायां—भावे क्तः । सुभूतिम् । सु सुष्ठु प्रभूतं धनम् । **आ** । समन्तात् । **इह** । अत्र ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायणभाष्य में 'अस्रामः' के स्थान में 'अश्रामः' और 'अश्लोणः' के स्थान में 'अश्रोणः' पाठ हैं ॥

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः । विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥ ४ ॥

स्वस्ति । मात्रे । उत । पित्रे । नः । अस्तु । स्वस्ति । गोभ्यः । जगते । पुरुषेभ्यः । विश्वम् । सुऽभूतम् । सुऽविदत्रम् । नः । अस्तु । ज्योक् । एव । दृशेम । सूर्यम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(नः) हमारी (मात्रे) माता के लिये (उत) और (पित्रे) पिता के लिये (स्वस्ति) आनन्द (अस्तु) होवे, और (गोभ्यः) गौओं के लिये (पुरुषेभ्यः) पुरुषों के लिये और (जगते) जगत् के लिये (स्वस्ति) आनन्द [होवे] । (विश्वम्) संपूर्ण (सुभूतम्) उत्तम ऐश्वर्य और (सुविदत्रम्)

वक्षत् । वह प्रापणे–लेटि अडागमः, द्विकर्मकः । आवहेत्, प्रापयेत्, आहृत्य दद्यात् ॥

४—स्वस्ति । अ०१ । ३० । २ । क्षेमम्, मङ्गलम् । **मात्रे** । अ०१।२।१ । माननीयायै जनन्यै । **पित्रे** । अ० १।२।१ । पालकाय, जनकाय । **गोभ्यः** । अ०१।२।३ । गन्तव्याभ्यः प्रापणीयाभ्यः धेनुभ्यः, गवादिपशुभ्यः । **जगते । वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच्च** (उ० २ । ८४) इति गम्लृ–अतिः । निपातितश्च । गतिशीलाय संसाराय । **पुरुषेभ्यः । पुरः कुषन्** (उ० ४ । ७४) पुर अग्रगमने–कुषन् । पुरति अग्रे गच्छतीति । पुत्रभृत्यादिमनुष्येभ्यः । **विश्वम्** । सर्वम् । **सुभूतम्** । म० ३ । प्रभूतमैश्वर्यम् । **सुविदत्रम् । सुविदेः कत्रन्** (उ० ३ । १०८) इति सु+विद ज्ञाने, विदॢ लाभे वा–कत्रन् । यास्कस्तु द्वेधा व्युत्पादयामास । सुविदत्रं धनं भवति विन्दतेर्वैकोपसर्गात् ददातेर्वा स्याद्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम ज्ञान वा कुल (नः) हमारे लिये (अस्तु) हो, (ज्योक्) बहुत काल तक (सूर्यम्) सूर्य को (एव) ही (दृशेम) हम देखते रहें ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य माता पिता आदि अपने कुटुम्बियों और अन्य माननीय पुरुषों और गौ आदि पशुओं से लेकर सब जीवों और संसार के साथ उपकार करते हैं, वे पुरुषार्थी सब प्रकार का उत्तम धन, उत्तम ज्ञान और उत्तम कुल पाते और वही सूर्य जैसे प्रकाशमान होकर दीर्घ आयु अर्थात् बड़े नाम को भोगते हैं ॥ ४ ॥

सूक्तम् ३२ ॥

१–४ ॥ ब्रह्मा ऋषिः । ब्रह्म देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मविचारोपदेशः—ब्रह्म विचार का उपदेश ॥

इदं जनासो विदथं महद् ब्रह्म वदिष्यति ।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥ १ ॥

इदम् । जनासः । विदथं । महत् । ब्रह्म । वदिष्यति । न ।
तत् । पृथिव्याम् । नो इति । दिवि । येन । प्राणन्ति । वीरुधः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(जनासः) हे मनुष्यो ! (इदम्) इस बात को (विदथ) तुम जानते हो, वह [ब्रह्मज्ञानी] (महत्) पूजनीय (ब्रह्म) परब्रह्म का (वदिष्यति) कथन करेगा । (तत्) वह ब्रह्म (न) न तो (पृथिव्याम्) पृथिवी में (नो) और न

द्व्युपसर्गात्–निरु० ७ । ९ । तथा । सुविदत्रः कल्याणविद्यः–निरु० ६ । १४ । शोभनं ज्ञानं कुटुम्बं वा । **ज्योक्** । अ० १ । ६ । ३ । चिरकालम् । **दृशेम** । दृशिर् प्रेक्षणे–आशीर्लिङ् । वयं पश्येम । **सूर्यम्** । अ० १ । ३ । ५ । आदित्यम् । भानुप्रकाशम् ॥

१—इदम् । वक्ष्यमाणम् । **जनासः** । **आज्जसेरसुक्** (पा० ७ । १ । ५०) इति जसि असुक् । हे जनाः, विद्वांसः । **विदथ** । विद ज्ञाने अदादिः—लट् मध्यमबहुवचनं छन्दसि शः । यूयं वित्थ, जानीथ । **महत्** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दिवि) सूर्य लोक में है (येन) जिसके सहारे से (वीरुधः) यह उगती हुयी जड़ी बूटी [लता रूप सृष्टि के पदार्थ] (प्राणन्ति) श्वास लेती हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—यद्यपि वह सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् परब्रह्म भूमि वा सूर्य्य आदि किसी विशेष स्थान में वर्तमान नहीं है तो भी वह अपनी सत्ता मात्र से ओषधि अन्न आदि सब सृष्टि का नियम पूर्वक प्राणदाता है। ब्रह्मज्ञानी लोग उस ब्रह्म का उपदेश करते हैं ॥ १ ॥

केनोपनिषद् में वर्णन है—

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि । इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद् व्याचचक्षिरे ॥ केन० उ० १ । ३ ॥

न वहाँ आँख जाती है, न वाणी जाती है, न मन, हम न जानते हैं, न पहिचानते हैं, कैसे वह इस जगत् का अनुशासन करता है। वह जाने हुये से भिन्न है और न जाने हुये से ऊपर है। ऐसा हमने पूर्वजों से सुना है, जिन्होंने हमें उसकी शिक्षा दी थी ॥

अ० १ । १० । ४ । पूजनीयम् । **ब्रह्म** । अ० १ । ८ । ४ । परब्रह्म, परमात्मानम्, परमकारणम् । **वदिष्यति** । वद वक्तायां वाचि—लृट् । कथयिष्यति । **न** । निषेधे । **तत्** । ब्रह्म । **पृथिव्याम्** । अ० १।२।१ । प्रख्यातायां भूमौ । **नो इति** । न—उः । नैव । **दिवि** । अ० १ । ३० । ३ । द्युलोके, सूर्यमण्डले । **येन** । ब्रह्मणा । **प्राणन्ति** । प्र+अन प्राणने, अदादिः । जीवन्ति, श्वसन्ति । **वीरुधः** । विशेषेण रुणद्धि वृक्षानन्यान् वा सा वीरुत् । वि+रुधिर् आवरणे–क्विप्, दीर्घश्च । अथवा । वि+रुह प्रादुर्भावे–क्विप् । **न्यङ्क्वादीनां च** (पा० ७ । ३ । ५३) इति हस्य धः । विरोहणशीलाः । विस्तृता लतादयः । लतादिवद् विरोहिताः सृष्टिपदार्थाः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भी केनोपनिषत् का वचन है

यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ केन उ० १ । ८ ॥

जो प्राण द्वारा नहीं श्वास लेता है। जिस करके प्राण चलाया जाता है। उसको ही तू ब्रह्म जान, यह वह नहीं है जिसके पास वे बैठते हैं ॥

अन्तरिक्ष आसां स्थाम श्रान्तसदामिव ।
आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद् वेधसो न वा ॥ २ ॥

अन्तरिक्षे । आसाम् । स्थाम । श्रान्तसदाम्ऽइव । आऽस्थानम् । अस्य । भूतस्य । विदुः । तत् । वेधसः । न । वा ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अन्तरिक्षे) सब के भीतर दिखाई देने हारे आकाश रूप परमेश्वर में (आसाम्) इनका [लतारूप सृष्टियों का] (स्थाम) ठहराव है (श्रान्तसदाम् इव) जैसे थक कर बैठे हुये यात्रियों का पड़ाव । (वेधसः) बुद्धिमान् लोग (तत्) उस ब्रह्म को (अस्य भूतस्य) इस संसार का (आस्थानम्) आश्रय (विदुः) जानते हैं, (वा) अथवा (न) नहीं [जानते हैं] ॥ २ ॥

भावार्थः—सूर्य आदि असंख्य लोक उसी परमब्रह्म में ठहरे हैं, वही समस्त जगत् का केन्द्र है। इस बात को विद्वान् लोग विधि और निषेध रूप

२—**अन्तरिक्षे** । अ० १ । ३० । ३ । सर्वमध्ये दृश्यमाने परमेश्वरे । **आसाम्** । वीरुधाम् । म० १ विरोहणशीलानां पदार्थानाम् । **स्थाम** । **सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उ० ४ । १४५) ष्ठा गतिनिवृत्तौ—मनिन् । स्थानम् स्थितिः । **श्रान्तसदाम्** । श्रमु तपसि खेदे च-भावे क्तः+षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु-क्विप् । श्रमेण मार्गखेदेन स्थितानाम् । **आ-स्थानम्** । आ=ष्ठा—ल्युट् । स्थानम् । आश्रयम् । **अस्य** । परिदृश्यमानस्य । **भूतस्य** । लोकस्य, जगतः । **विदुः** । विद ज्ञाने—लट् । विदन्ति जानन्ति । **तत्** । कारणभूतं ब्रह्म । **वेधसः** । अ० १ । ११ । १ मेधाविनः, विद्वांसः । **न** । निषेधे । **वा** । अथवा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार से निश्चित करते हैं जैसे ब्रह्म जड़ नहीं है किन्तु चैतन्य है, इत्यादि, अथवा जितना अधिक ब्रह्मज्ञान होता जाता है उतना ही वह ब्रह्म अत्यधिक अनन्त और अगम्य जान पड़ता है इससे वह ब्रह्मज्ञानी अपने को अज्ञानी समझते हैं ॥ २ ॥

यद् रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम् ।
आर्द्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः ॥ ३ ॥

यत् । रोदसी इति । रेजमाने इति । भूमिः । च । निःऽअतक्षतम् । आर्द्रम् । तत् । अद्य । सर्वदा । समुद्रस्यऽइव । स्रोत्याः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(रोदसी = सि) हे सूर्य (च) और (भूमिः) भूमि ! (रेजमाने) काँपते हुये तुम दोनों ने (यत्) जिस [रस] को (निरतक्षतम्) उत्पन्न किया है, (तत्) वह (आर्द्रम्) रस (अद्य) आज (सर्वदा) सदा से (समुद्रस्य) सींचने वाले समुद्र के (स्रोत्याः) प्रवाहों के (इव) समान वर्त्तमान है ॥ ३ ॥

भावार्थः—जिस रस वा उत्पादन शक्ति को, परमेश्वर ने सूर्य और भूमि को (कंपमान) वश में रखके, सृष्टि के आदि में उत्पन्न किया था वह शक्ति

३—**यत्** । आर्द्रम् । **रोदसी** । एकवचनं स्त्री । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति रुधिर् आवरणे–असुन् । **षिद्गौरादिभ्यश्च** (पा० ४ । १ । ४१) इति ङीष् । द्युलोको भूमिर्वा । सम्बोधने दीर्घश्छान्दसः । हे रोदसि । सूर्यलोक । **रेजमाने** । रेजृ दीप्तौ–शानच् । भ्यसते रेजत इति भयवेपनयोः–निरु० ३ । २१ । उभे कम्पमाने । **भूमिः** । अ० १।११।२ । भवन्ति पदार्था अस्यामिति । पृथिवी । **निःअतक्षतम्** । तक्षू तनूकरणे–लङ् । युवामुदपादयतम् । **आर्द्रम् । अर्देर्दीर्घश्च** (उ० २ । १८) इति अर्द हिंसायाम्, गतौ–रक्, दीर्घश्च । क्लेदनं रसत्वम् उत्पादनसामर्थ्यम् । **तत्** । प्रसिद्धम् । **अद्य** । अ० १ । १ । १ । वर्त्तमाने दिने । **समुद्रस्य** । अ० १ । ३ । ८ । समुन्दनशीलस्य सागरस्य, अर्णवस्य । **स्रोत्याः** । पुंलि० । **स्रोतसो विभाषा ड्यड्ड्यौ** (पा० ४ । ४ । ११३) इति स्रोतस्–ड्य । ङित्त्वात् टिलोपः । स्रोतसि भवाः जलप्रवाहाः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेघ आदि रस रूप से सदा संसार में सृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति का कारण है ॥ ३ ॥

टिप्पणी—सायणभाष्य में (रोदसी इति) यह पदपाठ और उसका अर्थ [हे द्यावापृथिव्यौ] हे सूर्य और भूमि अशुद्ध है। यहाँ (रोदसी) एक-वचन और केवल सूर्यवाची है क्योंकि (भूमिः च) [और भूमि] यह पद मन्त्र में वर्तमान है। फिर (भूमिः च) का भी अर्थ [भूमि और द्युलोक] उक्त भाष्य में है ॥

विश्वंमन्यामभीवार तदन्यस्यामधि श्रितम् ।
दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥ ४ ॥

विश्वम् । अन्याम् । अभिऽवारं । तत् । अन्यस्याम् । अधि । श्रितम् । दिवे । च । विश्वऽवेदसे । पृथिव्यै । च । अकरम् । नमः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(विश्वम्) उस सर्वव्यापक [रस ने] (अन्याम्) एक [सूर्य्य वा भूमि] को (अभि) चारों ओर से (वार=ववार) घेर लिया, (तत्) वही [रस] (अन्यस्याम्) दूसरी में (अधि श्रितम्) आश्रित हुआ। (च) और (दिवे) सूर्य रूप वा आकाश रूप (च) और (पृथिव्यै) पृथिवी रूप (विश्ववेदसे) सबके जानने वाले [वा सब धनों के रखने वाले, वा सबमें विद्यमान ब्रह्म] को (नमः) नमस्कार (अकरम्) मैंने किया है ॥ ४ ॥

भावार्थः—सृष्टि का कारण रस अर्थात् जल, सूर्य की किरणों से आकाश

४—**विश्वम्** । अ० १ । १० । २ । सर्वं व्याप्तं आर्द्रम् । म० ३ । **अन्याम्** । एकाम् द्यां भूमिं वा । **अभि वार** । वृञ् वरणे—लिट् । वकारलोपश्छान्दसः । सर्वतो ववार, आच्छादितं चकार । **तत्** । आर्द्रम् । **अन्यस्याम्** । अपरस्याम् । **अधि + श्रितम्** । आश्रितम् । **दिवे** । अ० १ । ३० । ३ । आकाशाय । तद्रूपाय । **विश्व-वेदसे** । विदॢ लाभे, वा विद ज्ञाने सत्तायां च—असुन् । सर्वधनयुक्तायै, सर्वाधारभूतायै । **पृथिव्यै** । अ० १ । २ । १ । विस्तीर्णायै भूम्यै, तद्रूपाय परमेश्वराय । **अकरम्** । डुकृञ् करणे—लुङ् । अहं कृतवानस्मि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जाकर फिर पृथिवी में प्रविष्ट होता, वही फिर पृथिवी से आकाश में जाता और पृथिवी पर आता है। इस प्रकार उन दोनों का परस्पर आकर्षण, जगत् को उपकारी होता है। विद्वान् लोग इसी प्रकार जगदीश्वर की अनन्त शक्तियों को विचार कर सत्कार पूर्वक उपकार लेकर आनन्द भोगते हैं ॥ ४ ॥

यजुर्वेद में इस प्रकार वर्णन है—

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ॥ यजु० ३ । ५ ॥

सबका आधार, सबमें व्यापक, सुखस्वरूप परमेश्वर बहुत्व के कारण [सब लोकों के धारण करने से] आकाश के समान और अपने फैलाव से पृथिवी के समान है ॥

सूक्तम् ३३ ॥

१–४ ॥ शंतातिर्ऋषिः । आपो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

सूक्ष्मतन्मात्राविचारः—सूक्ष्म तन्मात्राओं का विचार ॥

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः । या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥ १ ॥

हिरण्यऽवर्णाः । शुचयः । पावकाः । यासु । जातः । सविता । यासु । अग्निः । याः । अग्निम् । गर्भम् । दधिरे । सुऽवर्णाः । ताः । नः । आपः । शम् । स्योनाः । भवन्तु ॥ १ ॥

भाषार्थः—[जो] (हिरण्यवर्णाः) व्यापनशील वा कमनीय रूप वाली (शुचयः) निर्मल स्वभाव वाली और (पावकाः) शुद्धि की जताने वाली

१—**हिरण्य–वर्णाः । हर्यतेः कन्यन् हिर् च** (उ० ५ । ४४) इति हर्य गति–कान्त्योः–कन्यन्, हिर् आदेशश्च, नित्त्वाद् आद्युदात्तः । **कृवृजॄसिद्रुपन्यनिस्वपिभ्यो नित्** (उ० ३ । १०) इति वृञ् वरणे–नः, स च नित् । **बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्व-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, (यासु) जिनमें (सविता) चलाने हारा वा उत्पन्न करने हारा सूर्य और (यासु) जिनमें (अग्निः) [पार्थिव] अग्नि (जातः) उत्पन्न हुई। (याः) जिन (सुवर्णाः) सुन्दर रूप वाली (आपः) तन्मात्राओं ने (अग्निम्) [बिजुली रूप] अग्नि को (गर्भम्) गर्भ के समान (दधिरे) धारण किया था, (ताः) वे [तन्मात्रायें] (नः) हमारे लिये (शम्) शुभ करने हारी और (स्योनाः) सुख देने वाली (भवन्तु) होवें ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे परमात्मा ने कामना के और खोजने के योग्य तन्मात्राओं के संयोग वियोग से अग्नि, सूर्य, और विजुली, इन तीन तेजधारी पदार्थ आदि सब संसार को उत्पन्न किया है, उसी प्रकार मनुष्यों को शुभ गुणों के ग्रहण और दुर्गुणों के त्याग से आपस में उपकारी होना चाहिये ॥ १ ॥

१—(आपः) = व्यापक तन्मात्रायें–श्रीमद्दयानन्द भाष्य, यजुर्वेद २७। २५ ॥

२—(आपः) के विषय में सूक्त ४, ५ तथा ६ एवं सूक्त ४ में मनु महाराज का श्लोक भी देखें ॥

पदम् (पा० ६ । २ । १) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेन आद्युदात्तः। कमनीयरूप–युक्ताः, गतिशीलरूपयुक्ताः । प्रकाशस्वरूपाः। **शुचयः। इगुपधात् कित्** (उ० ४ । १२०) इति ईशुचिर् शौचे = शुद्धौ–इन्, स च कित् शुद्धस्वभावाः। **पावकाः** । पूञ् पवने–घञ्। **आतोऽनुपसर्गे कः** (पा० ३ । २ । ३) इति कै शब्दे-कः। **उपपदमतिङ्** (पा० २ । २ । १९) इति समासः। टाप्। यद्वा। पूञ्–ण्वुल्। टाप्। **पावकादीनां छन्दसि** (वा०पा० ७ । ३ । ४५) इति इत्वं निषिद्धम्। पावस्य शुद्धव्यवहारस्य शब्दयित्र्यः, ज्ञापयित्र्यः । पावयित्र्यः, शोधयित्र्यः। **यासु।** अप्सु। **जातः।** जनी प्रादुर्भावे–क्तः। प्रादुर्भूतः, उत्पन्नः। **सविता।** अ० १।१८।२। सूर्यः। **अग्निः।** अ० १ । ६ । २ पार्थिवाग्निः। **अग्निम्।** वैद्युताग्निम्। **गर्भम्।** अ० १ । ११ । २ पदार्थेषु गर्भवत् स्थितम्। **दधिरे।** डुधाञ् धारण-पोषणयोः–लिट्। दधुः, स्थापयामासुः। **सु-वर्णाः।** वृञ्–नः। शोभनरूपाः। **नः।** अस्मभ्यम्। **आपः।** अ० १ । ५ । १ व्यापिकास्तन्मात्राः–इति श्रीमद्दया-नन्दभाष्ये, यजु० २७ । २५। **शम्।** अ० १ । ३ । १ । शुभकारिण्यः। **स्योनाः। सिवेष्टेर्यू च** (उ० ३ । ९) इति षिवु तन्तुसन्ताने—नप्रत्ययः टिभागस्य यू इत्यादेशः। स्योनं सुखनाम–निघ० ३ । ६। **अर्शआदिभ्योऽच्** (पा० ५ । २ । १२७) इति मत्वर्थे अच्। सुखवत्यः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्। या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥ २ ॥

यासाम्। राजा। वरुणः। याति। मध्ये। सत्यानृते इति सत्यऽअनृते। अवऽपश्यन्। जनानाम्। याः। अग्निम्। गर्भम्। दधिरे। सुऽवर्णाः। ताः। नः। आपः। शम्। स्योनाः। भवन्तु ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यासाम्) जिन तन्मात्राओं के (मध्ये) बीच में (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ (राजा) राजा परमेश्वर (जनानाम्) सब जन्म वाले जीवों के (सत्यानृते) सत्य और असत्य को (अवपश्यन्) देखता हुआ (याति) चलता है। (याः) जिन (सुवर्णाः) सुन्दर रूप वाली (आपः) तन्मात्राओं ने (अग्निम्) [बिजुली रूप] अग्नि को (गर्भम्) गर्भ के समान (दधिरे) धारण किया था, (ताः) वे [तन्मात्रायें] (नः) हमारे लिये (शम्) शुभ करने हारी और (स्योनाः) सुख देने वाली (भवन्तु) होवें ॥ २ ॥

भावार्थः—इन तन्मात्राओं का नियन्ता अर्थात् संयोजक और वियोजक (वरुण राजा) परमेश्वर है, वही सब जीवों के पुण्य पाप को देखकर यथावत् फल देता है। इन गुणों से उपकार लेकर मनुष्यों को सुख भोगना चाहिये ॥ २ ॥

२—**यासाम्**। अपाम् तन्मात्राणाम्। **राजा**। अ० १। १०। १। ईश्वरः। नियन्ता। **वरुणः**। अ० १। ३। ३। वृणोति सर्वं, व्रियते अन्यैरिति वरुणः। सर्ववरणीयः परमेश्वरः। **याति**। गच्छति। व्याप्नोति। **मध्ये**। **अद्न्यादयश्च** (उ० ४। ११२) इति मन ज्ञाने–यक्, नस्य धः। अन्तर्वर्त्तिनि भागे। **सत्य-अनृते**। सद्भ्यो हितम्। सत्–यत्। सत्यं, यथार्थं, तथ्यम्। न ऋतम्। अनृतम्, असत्यम्, मिथ्याकरणम्। सत्यं च असत्यं च उभे कर्मणी। **अव-पश्यन्**। दृशिर्–शतृः। अवलोकयन् विजानन्। **जनानाम्**। अ० १। ८। १। जन्मवतां लोकानाम्। अन्यद् गतम्–म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यासां॑ दे॒वा दि॒वि कृ॒ण्वन्ति॑ भ॒क्षं या अ॒न्तरि॑क्षे ब॒हुधा॑ भव॑न्ति । या अ॒ग्निं गर्भं॑ द॒धि॒रे सु॒व॒र्णास्ता न॒ आपः॒ शं स्यो॒ना भ॑वन्तु ॥ ३ ॥

यासा॑म् । दे॒वाः । दि॒वि । कृ॒ण्वन्ति॑ । भ॒क्षम् । याः । अ॒न्तरि॑क्षे । ब॒हुऽधा॑ । भव॑न्ति । याः । अ॒ग्निम् । गर्भ॑म् । द॒धि॒रे । सु॒ऽव॒र्णाः । ताः । न॒ः । आपः॑ । शम् । स्यो॒नाः । भ॒व॒न्तु॒ ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(देवाः) सब प्रकाशमय पदार्थ (दिवि) व्यवहार के योग्य आकाश में (यासाम्) जिनका (भक्षम्) भोजन (कृण्वन्ति) करते हैं और (याः) जो [तन्मात्रायें] (अन्तरिक्षे) सबके मध्यवर्ती आकर्षण में (बहुधा) अनेक रूपों से (भवन्ति) वर्त्तमान हैं। और (याः) जिन (सुवर्णाः) सुन्दर रूप वाली (आपः) तन्मात्राओं ने (अग्निम्) [बिजुली रूप] अग्नि को (गर्भम्) गर्भ के समान (दधिरे) धारण किया था, (ताः) वे [तन्मात्रायें] (नः) हमारे लिये (शम्) शुभ करने हारी और (स्योनाः) सुख देने वाली (भवन्तु) होवें ॥ ३ ॥

भावार्थः—अपरिमित तन्मात्रायें ईश्वरकृत परस्पर आकर्षण से संसार के (देवाः) सूर्य, अग्नि, वायु आदि सब पदार्थों के धारण और पोषण का कारण हैं। (देवाः) विद्वान् लोग इनके सूक्ष्म विचार से संसार में अनेक उपकार करके सुख पाते हैं ॥ ३ ॥

३—**यासाम्** । अपाम् । **देवाः** । अ० १ । ७ । १ व्यावहारिकपदार्थाः । प्रकाशमयाः किरणाः । **दिवि** । अ० १ । ३० । ३ व्यवहारयोग्ये आकाशे । जगति । **कृण्वन्ति** । कृवि हिंसाकरणयोश्च । कुर्वन्ति । **भक्षम्** । भक्ष अदने-कर्मणि घञ् । भक्ष्यम्, अन्नम्, पोषणम् । **याः** । आपः । **अन्तरिक्षे** । अ० १।३०।३ मध्ये दृश्यमाने आकर्षणसामर्थ्ये । **बहु-धा** । **विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले** (पा० ५ । ४ । २०) इति बहु । धा । बहुप्रकारेण, अविप्रकृष्टकाले । **भवन्ति** । वर्तन्ते । अन्यद् व्याख्यातम्—म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे । घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥ ४ ॥

शिवेन । मा । चक्षुषा । पश्यत । आपः । शिवया । तन्वा । उप । स्पृशत । त्वचम् । मे । घृतऽश्चुतः । शुचयः । याः । पावकाः । ताः । नः । आपः । शम् । स्योनाः । भवन्तु ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(आपः) हे तन्मात्राओ ! (शिवेन) सुखप्रद (चक्षुषा) नेत्र से (मा) मुझको (पश्यत) तुम देखो, (शिवया) अपने सुखप्रद (तन्वा) रूप से (मे) मेरे (त्वचम्) शरीर को (उप स्पृशत) तुम पास से छूओ । (याः) जो (आपः) तन्मात्रायें (घृतश्चुतः) अमृत बरसाने वाली, (शुचयः) निर्मल स्वभाव और (पावकाः) शुद्धि जताने वाली हैं, (ताः) वह [तन्मात्रायें] (नः) हमारे लिये (शम्) शुभ करने हारी और (स्योनाः) सुख देने वाली (भवन्तु) होवें ॥ ४ ॥

४—शिवेन । सर्वनिघृष्वरिष्व० (उ० १ । १५३) इति शीङ् स्वप्ने यद्वा, शो तनूकरणे–वन् । शेरते विद्यन्ते शुभगुणा यत्र, वा श्यति अशुभानीति । सुखकरेण । **मा** । माम् । **चक्षुषा** । **चक्षेः शिच्च** (उ० २ । ११९) इति चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि-उसिः । स च शित् । शित्वात् ख्याञादेशाभावः । लोचनेन, नयनेन । **पश्यत** । अवलोकयत । **आपः** । म० १ । हे सूक्ष्मतन्मात्राः । **शिवया** । कल्याण्या, इष्टप्राप्तिहेतुभूतया । **तन्वा** । अ० १ । १ । १ रूपेण । **उप+स्पृशत** । संस्पृशत । **त्वचम्** । अ० १ । २४ । २ शरीरम् । **घृतश्चुतः** । घृ क्षरणदीप्त्योः सेचने च–क्तः । घृतं सारः, अमृतम् । श्चुतिर् क्षरणे–क्विप् । अमृतस्राविण्यः अन्यद् व्याख्यातम्–म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(आपः) तन्मात्रायें मुझे नेत्र से देखें, अर्थात् पूर्ण ज्ञान हमें प्राप्त हो और उससे हमारे शरीर और आत्मा स्वस्थ रहें। अथवा, (आपः) शब्द से तन्मात्राओं के ज्ञाता और वशयिता परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष का ग्रहण है। जो मनुष्य सृष्टि के विज्ञान से शरीर का स्वास्थ्य और आत्मा की उन्नति करके उपकारी होते हैं उनके लिये परमेश्वर की कृपा से सदा अमृत अर्थात् स्थिर सुख बरसता है ॥ ४ ॥

सूक्तम् ३४ ॥

१—५ ॥ अथर्वा ऋषिः । वीरुद् [लता] देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

विद्याप्राप्त्युपदेशः—विद्या की प्राप्ति का उपदेश ॥

इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि ।
मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि ॥ १ ॥

इयम् । वीरुत् । मधुऽजाता । मधुना । त्वा । खनामसि । मधोः । अधि । प्रऽजाता । असि । सा । नः । मधुऽमतः । कृधि ॥ १ ॥

भाषार्थः—(इयम्) यह तू (वीरुत्) बढ़ती हुई [विद्या] (मधुजाता) ज्ञान से उत्पन्न हुई है, (मधुना) ज्ञान के साथ (त्वा) तुझको (खनामसि) हम खोदते हैं। (मधोः अधि) विद्या से (प्रजाता असि) तू जन्मी है (सा)

१—इयम् । पुरोवर्तिनी त्वम् । **वीरुत्** । अ० १ । ३२ । १ विरोहणशीला विस्तृता लतारूपा विद्या । **मधु जाता** । अ० १ । ४ । १ मन ज्ञाने—उः, धश्चान्तादेशः । जनी—क्तः । मधुनो ज्ञानात् क्षौद्राद् वा यथा उत्पन्ना । **मधुना** । अ० १ । ४ । १ ज्ञानेन, क्षौद्ररसेन यथा वा । **त्वा** । त्वाम् वीरुधम् । **खनामसि** । खनु अवदारणे—लट्, मस् । **इदन्तो मसि** (पा०७।१।४६) इत्यनेन इत्वम् । खनामः, अवदारयामः, अन्वेषणेन प्राप्नुमः । **मधोः** । पुंलिंगे । वसन्तर्तुसकाशात् । स्त्रियाम् । विद्यायाः सकाशात् । **अधि** । पञ्चम्यर्थानुवादी । **प्र-जाता** । प्रादुर्भूता । **असि** । वर्त्तसे । **सा** । सा त्वम् । **नः** । अस्मान् । **मधु-मतः** । तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो तू (नः) हमको (मधुमतः) उत्तम विद्या वाले (कृधि) कर ॥ १ ॥

भावार्थः—मधु शब्द [मन जानना—उ, न=ध] का अर्थ ज्ञान है। धात्वर्थ के अनुसार यह आशय है कि शिक्षा के ग्रहण, अभ्यास, अन्वेषण और परीक्षण से मनुष्य को उत्तम सुखदायक विद्या मिलती है ॥ १ ॥

दूसरा अर्थ ॥

(इयम् वीरुत्) यह तू फैलती हुई बेल (मधुजाता) मधु [शहद] से उत्पन्न हुई है, (मधुना) मधु के साथ (त्वा) तुझको (खनामसि) हम खोदते हैं। (मधोः अधि) वसन्त ऋतु से (प्रजाता असि) तू जन्मी है, (सा) सो तू (नः) हमको (मधुमतः) मधु रस वाले (कृधि) कर ॥ १ ॥

भावार्थः—मधु शब्द उसी धातु [मन जानना] से सिद्ध होकर [शहद] के रस का वाचक है। इस अर्थ में विद्या को मधुलता अर्थात् शहद की बेल वा प्रेमलता माना है। (मधु) शहद वसन्त ऋतु में अनेक पुष्पों के रस से मधुमक्षिकाओं द्वारा मिलता है, इसी प्रकार (मधुना) प्रेम रस के साथ [खोदने] अर्थात् अन्वेषण और परीक्षण से विद्वान् लोग अनेक विद्वानों से विद्यारूप मधु को पाकर (मधु) आनन्द रस का भोग करते हैं ॥ १ ॥

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलंकम् ।
ममेदहु क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ २ ॥

जिह्वायाः । अग्रे । मधु । मे । जिह्वाऽमूले । मधूलंकम् । मम । इत् । अह । क्रतौ । असः । मम । चित्तम् । उपऽआयसि ॥ २ ॥

भाषार्थः—(मे) मेरी (जिह्वायाः) रस जीतने वाली, जिह्वा के (अग्रे) सिरे पर (मधु) ज्ञान [वा मधु का रस] होवे और (जिह्वामूले) जिह्वा की

(पा० ५ । २ । ९४) इति प्रशंसायां मतुप् । प्रशस्तज्ञानयुक्तान्, क्षौद्ररसोपेतान् वा यथा । **कृधि** । कुरु ॥

२—जिह्वायाः । अ० १ । १० । ३ जयति रसमनया । रसनायाः । **अग्रे** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल में (मधूलकम्) ज्ञान का लाभ [वा मधु का स्वादु] होवे । (मम) मेरे (क्रतौ) कर्म वा बुद्धि में (इत्) ही (अह) अवश्य (असः) तू रह, (मम चित्तम्) मेरे चित्त में (उपायसि) तू पहुँच करती है ॥ २ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य विद्या को रटन, मनन और परीक्षण से प्रेमपूर्वक प्राप्त करते हैं, तब विद्या उनके हृदय में घर करके सुख का वरदान देती है ॥ २ ॥

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ॥ ३ ॥

मधुऽमत् । मे । निऽक्रमणम् । मधुऽमत् । मे । पराऽअयनम् ।
वाचा । वदामि । मधुऽमत् । भूयासम् । मधुऽसंदृशः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(मे) मेरा (निक्रमणम्) पास आना (मधुमत्) बहुत ज्ञान-वाला वा रस में भरा हुआ और (मे) मेरा (परायणम्) बाहिर जाना (मधुमत्)

ऋज्रेन्द्राग्रवज्रविप्र० (उ० २ । २८) इति अगि गतौ–रन् । उपरिभागे । **मधु** । म० १ । ज्ञानं क्षौद्ररसो वा । **जिह्वा-मूले । मूशक्यमिभ्यः क्लः** (उ० ४।१०८) इति मुङ् बन्धने–क्लः । मवते बध्नाति वृक्षादिकं मूलम् । जिह्वाया रसनाया मूलभागे । **मधूलकम्** । मधु + उर[1] गतौ–कः, रस्य लत्वम्, स्वार्थे कन् । यद्वा मधु + लक आस्वादने–अच्, दीर्घत्वम् । मधुनो ज्ञानस्य प्राप्तिः । मधुनः क्षौद्रस्य स्वादः । **मम** । मदीये । **इत्** । एव । **अह** । अवश्यम् । **क्रतौ** । **कृजः कतुः** (उ० १ । ७६) इति कृञ्–कतुः । क्रतुः, कर्म–निघ० २ । १ । प्रज्ञा–निघ० ३ । ९ । कर्मणि बुद्धौ वा । **असः** । अ० १ । १६ । ४ । त्वं भूयाः । **चित्तम्** । चिती संज्ञाने–क्तः । अन्तःकरणम् । **उप-आयसि** । उप + आङ् + अय गतौ–लट् । उपआगच्छसि, आदरेण सर्वतः प्राप्नोषि ॥

३—**मधु-मत्** । म० १ । अतिविज्ञानयुक्तम् । मधुररसोपेतम् । **नि-क्रमणम्** । नि + क्रमु पादविक्षेपे—ल्युट् । निकटगमनम्, आगमनम् । **परा-अयनम्** ।

---

१. सं० धा० को०, पृ० १४ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत ज्ञान वाला वा रस में भरा हुआ होवे। (वाचा) वाणी से मैं (मधुमत्) बहुत ज्ञान वाला रसयुक्त (वदामि) बोलूं और मैं (मधुसन्दृशः) ज्ञान रूप वाला वा मधुर रूप वाला (भूयासम्) रहूँ ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य घर, सभा, राजद्वार, देश, परदेश आदि में आने, जाने, निरीक्षण, परीक्षण, अभ्यास आदि समस्त चेष्टाओं और वाणी से बोलने अर्थात् शुभ गुणों के ग्रहण और उपदेश करने में (मधुमान्) ज्ञानवान् वा रस से भरे अर्थात् प्रेम में मग्न होते हैं, वही महात्मा (मधुसन्दृशः) रसीले रूप वाले अर्थात् संसार भर में शुभ कर्मी होकर उपकार करते हैं ॥ ३ ॥

मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः।
मामित् किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ॥ ४ ॥

मधोः। अस्मि। मधुऽतरः। मदुघात्। मधुमत्ऽतरः।
माम्। इत्। किल। त्वम्। वनाः। शाखाम्। मधुमतीम्ऽइव ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(मधोः) मधुर रस से, मैं (मधुतरः) अधिक मधुर (अस्मि) होऊँ, (मदुघात्) लड्डू [वा मुलहटी ओषधि] से भी (मधुमत्तरः) अधिक मधुर रस वाला होऊँ। (त्वम्) तू (माम् इत्) मुझसे ही (किल) निश्चय

परा+अय गतौ ल्युट्। दूरगमनम्, प्रस्थानम्। **वाचा**। अ० १। १। १। वाण्या। **वदामि**। वद व्यक्तायां वाचि–लिङर्थे लेट्। कथ्यासम्, उच्यासम्। **भूयासम्**। भू सत्तायाम्—आशिषि लिङ्। अहं स्याम्। **मधु-सन्दृशः। इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** (पा० ३। १। १३५) इति मधु+सम्+दृशिर् प्रेक्षणे=चाक्षुषज्ञाने–कः। ज्ञान-रसरूपः, मधुरदर्शनः ॥

४––मधोः। म० १। मधुररसात्, क्षौद्ररसात्। **अस्मि**। अहं भवानि। **मधु-तरः। द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** (पा० ५। ३। ५७) इति मधु+तरप्। अधिकमाधुर्योपेतः। **मदुघात्**। मुद हर्षे–ण्वुल्। छान्दसं रूपम्। मोदकात्। मिष्टखाद्यविशेषात्। यद्वा। **मधुकात्**। मधु+कै–कः। मधु मधुरं कायति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके (वनाः) प्रेम कर, (इव) जैसे (मधुमतीम्) मधुर रसवाली (शाखाम्) शाखा से [अनुराग करते हैं] ॥ ४ ॥

भावार्थः—विद्या का रस सांसारिक स्वादिष्ट मिष्टान्न आदि रोचक पदार्थों से बहुत ही रसीला अर्थात् अधिक लाभदायक और उपकारी होता है। जैसे जैसे ब्रह्मचारी यत्नपूर्वक विद्या की लालसा करता है वैसे ही वैसे विद्या देवी भी उससे अनुराग करती है ॥ ४ ॥

मनु महाराज ने कहा है—

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥ मनु० ४ । २० ॥

जैसे जैसे ही पुरुष शास्त्र को पढ़ता जाता है, वैसे ही वैसे वह अधिक विद्वान् होता जाता है, और विज्ञान में उसकी रुचि होती है ॥

परि॑ त्वा परित॒त्नुने॒क्षुणा॑गा॒मवि॑द्विषे ।
यथा॒ मां का॒मिन्यसो॒ यथा॒ मन्नाप॑गा॒ अस॑ः ॥ ५ ॥

परि । त्वा॒ । प॒रि॒ऽत॒त्नुना॑ । इ॒क्षुणा॑ । अ॒गा॒म् । अवि॑ऽद्विषे । यथा॑ । माम् । का॒मिनी॑ । अस॑ः । यथा॑ । मत् । न । अप॑ऽगाः । अस॑ः ॥५ ॥

शब्दयति विज्ञापयतीति मधुकम् । यष्टिमधुकायाः, ओषधिविशेषात् । सायणभाष्ये तु **मदुघात्** =मधुदुघात्, मधु+दुह प्रपूरणे–कप्, घत्वं च, मधुशब्दे धुलोपश्छान्दसः, मधुस्राविणः पदार्थविशेषात्–इति वर्तते । **मधुमत्-तरः** । मधु+मतुप्+तरप् पूर्ववत् (पा० ५ । ३ । ५७) अधिकतरमधुमान्, उपकारितरः । **माम्** । विद्यार्थिनं ब्रह्मचारिणम् । **किल** । प्रसिद्धौ, निश्चयेन । **त्वम्** । विद्ये । **वनाः** । वन संभक्तौ—लेट् । **लेटोऽडाटौ** (पा० ३ । ४ । ९४) इति आडागमः । त्वं संभजेः, सेवस्व, कामयेथाः । **शाखाम्** । शाखृ व्याप्तौ-अच्, टाप् । वृक्षाङ्गविशेषम् । **मधुमतीम्** । म० १ । मधु+मतुप्—ङीप् । मधुररसयुक्ताम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(परितत्नुना) बहुत फैली हुई (इक्षुणा) लालसा के साथ [अथवा, ऊख जैसी मधुरता के साथ] (अविद्विषे) बैर छोड़ने के लिये (त्वा) तुझको (परि) सब ओर से (अगाम्) मैंने पाया है। (यथा) जिससे तू (माम् कामिनी) मेरी कामना करने वाली (असः) होवे, और (यथा) जिससे तू (मत्) मुझसे (अपगाः) बिछुड़ने वाली (न) न (असः) होवे ॥ ५ ॥

भावार्थः—जब ब्रह्मचारी पूर्ण अभिलाषा से विद्या के लिए प्रयत्न करता है तो कठिन से कठिन भी विद्या उसको अवश्य मिलती और अभीष्ट आनन्द देती है ॥ ५ ॥

इस मन्त्र का दूसरा आधा २ । ३० । १ और ६ । ८ । १—३ में भी है ॥

सूक्तम् ३५ ॥

१—४ ॥ अथर्वा ऋषिः । हिरण्यं देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

सुवर्णादिधनलाभोपदेशः—सुवर्ण आदि धन प्राप्ति के लिये उपदेश ॥

यदाबंध्नन् दाक्षायणा हिरंण्यं शतानीकाय सुमन-स्यमानाः । तत् तें बध्नाम्यायुंषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वायं शतशारदाय ॥ १ ॥

५—**परि** । सर्वतो भावेन । **त्वा** । त्वाम् मधुलतां विद्याम् । **परितत्नुना** । **दाभाभ्यां नुः** (उ० ३ । ३२) इति बाहुलकात् तनु विस्तारे—नुप्रत्ययः । सर्वत्रव्याप्तेन । **इक्षुणा** । **इषेः क्सुः** (उ० ३ । १५७) इति इषु इच्छायाम्—क्सुः । अभिलाषेण, यद्वा । गुडतृणेन प्रेमरूपेण । **अगाम्** । इण् गतौ—लुङ् । प्राप्तवानस्मि । **अवि-द्विषे** । न+वि+द्विष अप्रीतौ—क्विप् । वैर—त्यागार्थम् । **यथा** । येन प्रकारेण । **माम्** । ब्रह्मचारिणम् । **कामिनी** । **अत इनिठनौ** (पा० ५ । २ । ११५) इति काम—इनिः । ङीप् । **अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः** (पा० २ । ३ । ७०) इति द्वितीया । माम् कामयमाना । **असः** । अ० १ । १६ । ४ । त्वम् भवेः, भूयाः । **मत्** । मत्तः । **न** । निषेधे । **अप-गाः** । **आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च** (पा० ३ । २ । ७४) इति अप+गाङ् गतौ—विच् । अपयानशीला, प्रस्थानशीला, वियोगिनी ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत् । आऽअबध्नन् । दाक्षायणाः (= दक्ष-अयनाः) । हिरण्यम् । शतऽअनीकाय । सुऽमनस्यमानाः । तत् । ते । बध्नामि । आयुषे । वर्चसे । बलाय । दीर्घायुऽत्वाय । शतऽशारदाय ॥ १ ॥

भाषार्थः—(यत्) जिस (हिरण्यम्) कामनायोग्य विज्ञान वा सुवर्णादि को (दाक्षायणाः) बल की गति रखने वाले, परम उत्साही (सुमनस्यमानाः) शुभचिन्तकों ने (शतानीकाय) सौ सेनाओं के लिये (अबध्नन्) बांधा है। (तत्) उसको (आयुषे) लाभ के लिये, (वर्चसे) यश के लिये, (बलाय) बल के लिये और (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले (दीर्घायुत्वाय) चिरकाल जीवन के लिये (ते) तेरे (बध्नामि) मैं बांधता हूं ॥ १ ॥

भावार्थः—जिस प्रकार कामना योग्य उत्तम विज्ञान और धन आदि से

१—यत् । हिरण्यम् । **आ** । समन्तात् । **अबध्नन्** । बन्ध बन्धने—लङ् । अधारयन्, अस्थापयन् । **दाक्षायणाः** । दक्ष—अयनाः । दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे च—अच् । दक्षते प्रवृद्धये समर्थो भवतीति । दक्षः, बलम् निघ० २ । ९ अय गतौ—ल्युट् । अयनं गतिः । पूर्वपददीर्घत्वं छान्दसम् । दक्षस्य बलस्य अयनं गतिर्येषां ते दक्षायणाः । परमोत्साहिनः शूरवीरा विद्वांसो वा । **हिरण्यम्** । अ० १।९।२ । कमनीयं विज्ञानम् । सुवर्णादिकं धनम् । **शत-अनीकाय** । **दिक्संख्ये संज्ञायाम्** (पा० २ ।१। ५०) इति तत्पुरुषः समासः । शतसेनाप्राप्तये । **सु-मनस्यमानाः** । **कर्तुः क्यङ् सलोपश्च** (पा० ३ । १ । ११) इति मनस्—क्यङ्, विकल्पादत्र सकारभावः ततो लटः शानच् । शोभनं मनः कुर्वते सुमनस्यन्ते सुमनायन्ते वा ते सुमनस्यमानाः, शोभनं ध्यायन्तः शुभचिन्तकाः सज्जनाः । **बध्नामि** । बन्ध बन्धने—क्र्यादिः । धारयामि । **आयुषे** । अ० १।३०। ३ ईयते प्राप्यते यत्तद् आयुः । आयाय,लाभाय । **वर्चसे** । अ० १ । ९ । ४ । तेजसे, यशसे । **बलाय** । अ० १। १। १ । पराक्रमाय । **दीर्घायु-त्वाय** । दॄ विदारणे—घञ् । **छन्दसीणः** (उ० १ । २) इति इण् गतौ—उण्—आयुः, भावे त्वप्रत्ययः । लम्बमानजीवनाय, चिरकालजीवनाय । **शत-शारदाय** । **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** (पा० ४ । ३ । १६) इति शरद्—अण् । शरद्वतोः संबन्धी कालः संवत्सरः । शतसंवत्सरयुक्ताय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूरदर्शी, शुभचिन्तक, शूरवीर विद्वान् लोग बहुत सेना लेकर रक्षा करते हैं, उसी प्रकार सब मनुष्य विज्ञान और धन की प्राप्ति से संसार में कीर्त्ति और सामर्थ्य बढ़ावें और अपना जीवन सुफल करें ॥ २ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद अ० ३४ म० ५२ में है ॥

नैनं॒ रक्षां॑सि॒ न पि॑शा॒चाः स॑हन्ते दे॒वाना॒मोजः॑ प्रथम॒जं ह्ये॒३॒॑ तत् । यो बिभ॑र्ति दाक्षाय॒णं हिर॑ण्यं॒ स जी॒वेषु॑ कृणुते दी॒र्घमायुः॑ ॥ २ ॥

न । ए॒न॒म् । रक्षां॑सि । न । पि॒शा॒चाः । स॒ह॒न्ते॒ । दे॒वाना॑म् । ओजः॑ । प्र॒थ॒म॒ऽजम् । हि । ए॒तत् । यः । बिभ॑र्ति । दा॒क्षा॒य॒णम् (=द॒क्ष॒–अ॒य॒नम्) । हिर॑ण्यम् । सः । जी॒वेषु॑ । कृ॒णु॒ते॒ । दी॒र्घम् । आयुः॑ ॥२॥

भाषार्थः—(न) न तो (रक्षांसि) हिंसा करने हारे राक्षस और (न) न (पिशाचाः) मांसाहारी पिशाच (एनम्) इस पुरुष को (सहन्ते) दबा सकते हैं, (हि) क्योंकि (एतत्) यह [विज्ञान वा सुवर्ण] (देवानाम्) विद्वानों का (प्रथमजम्) प्रथम उत्पन्न (ओजः) सामर्थ्य है। (यः) जो पुरुष (दाक्षायणम्)

२—**न** । निषेधे । **एनम्** । हिरण्यधारिणं पुरुषम् । **रक्षांसि** । अ० १ । २१।३ । राक्षसाः, नष्टबुद्धयः स्वार्थिनः । **पिशाचाः** । अ० १।१६।३ । मांसभक्षिणः पिशिताशिनो महादुःखदायिनः । **सहन्ते** । अभिभवन्ति, बाधन्ते । **देवानाम्** । विदुषाम् । **ओजः** । अ० १ । १२ । १ । पराक्रमः । **प्रथम-जम्** । **प्रथेरमच्** (उ० ५ । ६८) इति प्रथ प्रख्याने–अमच् + जनी–डः । प्रथमतो मातापितृगुरुकारिताभ्यासत उत्पन्नम् । **हि** । खलु, यस्मात् कारणात् । **एतत्** । हिरण्यम् । **यः** । पुरुषः । **बिभर्ति** । डुभृञ् धारणपोषणयोः—जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः । दधाति । **दाक्षायणम्** । म० १ । बलस्य गतियुक्तम् परमोत्साहवर्धकम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल की गति बढ़ाने वाले (हिरण्यम्) कमनीय तेजः स्वरूप विज्ञान वा सुवर्ण को (बिभर्त्ति) धारण करता है, (सः) वह (जीवेषु) सब जीवों में (आयुः) अपनी आयु को (दीर्घम्) दीर्घ (कृणुते) करता है ॥ २ ॥

भावार्थः—जो पुरुष (प्रथमजम्) प्रथम अवस्था में गुणी माता पिता और आचार्य से ब्रह्मचर्य सेवन करके शिक्षा पाते हैं, वह उत्साही जन सब विघ्नों को हटाकर दुष्ट हिंसकों के फंदे में नहीं फंसते हैं, और वही सत्कर्मी पुरुष विज्ञान और सुवर्ण आदि धन को प्राप्त करके संसार में यश पाते हैं, इसी का नाम दीर्घ आयु करना है ॥ २ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद अ० ३४ म० ५१ में है ॥

अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि । इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन् तद् दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम् ॥ ३ ॥

अपाम् । तेजः । ज्योतिः । ओजः । बलम् । च । वनस्पतीनाम् । उत । वीर्याणि । इन्द्रेऽइव । इन्द्रियाणि । अधि । धारयामः । अस्मिन् । तत् । दक्षमाणः । बिभरत् । हिरण्यम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अपाम्) प्राणों वा प्रजाओं के (तेजः) तेज, (ज्योतिः) कान्ति, (ओजः) पराक्रम (च) और (बलम्) बल को (उत) और भी

हिरण्यम् । म० १ कमनीयं विज्ञानं सुवर्णादिकं वा । **जीवेषु । इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** (पा० ३ । १ । १३५) इति जीव प्राणधारणे–कः । प्राणिषु । **कृणुते ।** कृञ् हिंसायाम्, स्वादिः । करोति । **दीर्घम् ।** म० १ । दृ विदारणे–घञ् । लम्बमानम् । **आयुः ।** म० १ । इण्-उसिः । जीवनम् ॥

३–अपाम् । आप्नोतेर्ह्रस्वश्च (उ० २ । ५८) इति आप्लृ व्याप्तौ-क्विप् । आप्नुवन्ति शरीरमिति आपः । प्राणानाम् । आप्तानां प्रजानां वा । यथा श्रीमद्दयानन्दभाष्ये । आपः = प्राणाः जलानि वा । यजु० ४ । ७ । पुनः आप्ताः प्रजाः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वनस्पतीनाम्) सेवनीय गुणों के रक्षक विद्वानों की (वीर्याणि) शक्तियों को (अस्मिन् अधि) इस [पुरुष] में (धारयामः) हम धारण करते हैं, (इव) जैसे (इन्द्रे) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष में (इन्द्रियाणि) इन्द्र के चिह्न, [बड़े ऐश्वर्य वाले] होते हैं। [इसलिये] (दक्षमाणः) वृद्धि करता हुआ यह पुरुष (तत्) उस (हिरण्यम्) कमनीय विज्ञान वा सुवर्ण आदि को (बिभरत्) धारण करे ॥ ३ ॥

भावार्थः—विद्वानों के सत्संग से महा प्रतापी, विक्रमी, तेजस्वी, गुणी पुरुष वृद्धि करके विज्ञान और धन संचय करे और सामर्थ्य बढ़ावे ॥ ३ ॥

समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥४॥

समानाम् । मासाम् । ऋतुऽभिः । त्वा । वयम् । सम्ऽवत्सरस्य । पयसा । पिपर्मि । इन्द्राग्नी इति । विश्वे । देवाः । ते । अनु । मन्यन्ताम् । अहृणीयमानाः ॥ ४ ॥

य० ६ । २७ । **तेजः** । तिज निशाने-असुन् । दीप्तिः, कान्तिः । रेतः, सारः । **ज्योतिः** । अ० १ । ९ । १ । प्रकाशः, कान्तिः । **ओजः** । म० २ । पराक्रमः । **बलम्** । म० १ सामर्थ्यम् । शौर्य्यम् । **वनस्पतीनाम्** । अ० १ । १२ । ३ । वन + पतिः, सुट् च । वृक्षाणाम् । अथवा । सेवनीयगुणपालकानां सज्जनानां पालकानाम् । यथा श्रीमद्दयानन्दभाष्ये यजु० २७ । २१ । वनस्पते=वनस्य संभजनीयस्य शास्त्रस्य पालक । **वीर्याणि** । अ० १ । ७ । ५ । सामर्थ्यानि । रेतांसि । **इन्द्रे** । अ० १ । २ । ३ । परमैश्वर्यवति पुरुषे । **इन्द्रियाणि** । **इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा** (पा० ५ । २ । ९३) इन्द्र–घच् इन्द्रस्य लिङ्गानि चिह्नानि । परमैश्वर्याणि, धनादीनि । **अधि** । उपरि । **धारयामः** । स्थापयामः । **अस्मिन्** । पुरुषे । **तत्** । तस्मात् कारणात् । **दक्षमाणः** । दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे च–शानच् । वर्धमानः । पुरुषः । **बिभरत्** । डुभृञ् धारणपोषणयोः–लेट् । धारयेत्, बिभर्तु । **हिरण्यम्** । म० १ । कमनीयं धनम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वयम्) हम लोग (त्वा) तुझको [आत्मा को] (समानाम्) अनुकूल (मासाम्) महीनों की (ऋतुभिः) ऋतुओं से और (संवत्सरस्य) वर्ष के (पयसा) दुग्ध वा रस से (पिपर्मि = पिपर्मः) पूर्ण करते हैं। (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि [वायु और अग्नि के समान गुण वाले] (ते) वह (विश्वे देवाः) सब दिव्य गुणयुक्त पुरुष (अहृणीयमानाः) संकोच न करते हुये (अनु मन्यन्ताम्) [हम पर] अनुकूल रहें ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य महीनों, ऋतुओं और वर्ष का अनुकूल विभाग करते हैं, वह वर्ष भर की उपज, अन्न, दूध, फल पुष्प आदि से पुष्ट रहते हैं,

---

४—समानाम्। षम वैकल्ये–पचाद्यच्। अविषमानाम्। पूर्णानाम्। साधूनाम्, अनुकूलानाम्। **मासाम्। सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४। १८९) इति माङ् माने–असुन्। मासानाम्। **ऋतुभिः। अर्त्तेश्च तुः** (उ० १। ७२) इति ऋ गतौ–तुः, स च कित्। वसन्तादिकालविशेषैः। **त्वा।** त्वाम्, पुरुषम्। **सम्-वत्सरस्य। संपूर्वाच्चित्** (उ० ३। ७२) इति सम् + वस निवासे–सरन्, सस्य तकारः संवसन्ति ऋतवो यत्र। वर्षस्य, द्वादशमासात्मकस्य कालस्य। **पयसा।** पय गतौ वा पीङ् पाने–असुन्। दुग्धेन सारेण वा, धान्यफलादिना, इत्यर्थः। **पिपर्मि।** पॄ पालनपूरणयोः, जुहोत्यादिः। एकवचनं बहुवचने। वयं पिपर्मः पालयामः, पूरयामः। **इन्द्राग्नी।** वाय्वग्नी। यथा श्रीमद्दयानन्दभाष्ये, य० २१। २० इन्द्राग्नी = इन्द्रश्चाग्निश्च तौ वाय्वाग्नी। तद्वद् गुणवन्तः। **विश्वे।** सर्वे। **देवाः।** दिव्यगुणाः पुरुषाः। **अनु मन्यन्ताम्।** अनु + मनु अवबोधने–लोट्। अनुजानन्तु, स्वीकुर्वन्तु, अनुकूलं कुर्वन्तु। **अहृणीयमानाः। कण्ड्वादिभ्यो यक्** (पा० ३। १। २७) इति हृणीङ् रोषणे लज्जायां यक्। ङित्वाद् आत्मनेपदम्। ततः शानच्। हृणीयते क्रुध्यति, निघ० २। १२ अक्रुध्यन्तः, असङ्कुचन्तः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा वायु के समान वेग वाले, एवं अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् महात्मा उस पुरुषार्थी मनुष्य के सदा शुभचिन्तक होते हैं ॥ ४ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

इति प्रथमं काण्डम् ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिमश्रीसयाजीरावगायकवाड़ा-
धिष्ठितबड़ोदेपुरीगतश्रावणमासदक्षिणापरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेद-
भाष्येषु लब्धदक्षिणेन श्रीपण्डितक्षेमकरणदासत्रिवेदिना
कृते अथर्ववेदभाष्ये प्रथमं काण्डं
समाप्तम् ॥

इदं काण्डं प्रयागनगरे श्रावणमासे रक्षाबन्धनतिथौ १९६९ तमे
विक्रमीये संवत्सरे सुसमाप्तिमगात् ॥

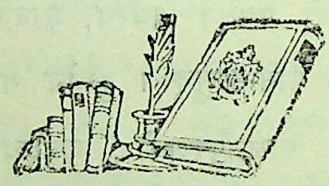

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेदः ॥

द्वितीयं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ।

सूक्तम् १ ।

मन्त्राः १—५ । ब्रह्म देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मप्राप्त्युपदेशः—ब्रह्म के मिलने का उपदेश ।

वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यद् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥१॥

वेनः । तत् । पश्यत् । परमम् । गुहा । यत् । यत्र । विश्वम् । भवति । एकऽरूपम् । इदम् । पृश्निः । अदुहत् । जायमानाः । स्वःऽविदः । अभि । अनूषत । व्राः ॥ १ ॥

सान्वयभाषार्थः—(वेनः) बुद्धिमान् पुरुष (तत्) उस (परमम्) अति श्रेष्ठ परब्रह्म को (पश्यत् = ०—ति) देखता है, (यत्) जो ब्रह्म (गुहा = गुहायाम्) गुफा के भीतर [वर्त्तमान है], और (यत्र) जिसमें (विश्वम्) सब जगत्

१—शब्दार्थव्याकरणादिप्रक्रिया—वेनः । धापृवस्यज्यतिभ्यो नः (उ० ३ । ६) इति अज गतिक्षेपणयोः—नप्रत्ययः, वीभावः । यद्वा, वेनति कान्ति

---

१. प्रथम संस्करण में जात्य स्वरित में भी ऊपर खड़ी रेखा का ही चिह्न था । हमने उसे उपलब्ध पाठों के अनुसार उपरिनिर्दिष्ट चिह्न के रूप में परिवर्त्तित कर दिया है ॥ सम्पा०

२. सर्वत्र पदपाठ में वर्त्तमान '–' इस चिह्न के स्थान में पदपाठ की परिपाट्यनुसार हमने 'ऽ' ये विवृति का चिह्न रखा है ॥ सम्पा०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एकरूपम्) एक रूप [निरन्तर व्याप्त] (भवति) वर्त्तमान है। (इदम्) इस परम ऐश्वर्य के कारण [ब्रह्मज्ञान] को (पृश्निः) [ईश्वर से] स्पर्श रखने वाले मनुष्य ने (जायमानाः) उत्पन्न होती हुई अनेक रचनाओं से (अदुहत्) दुहा है, और (स्वर्विदः) सुखस्वरूप वा आदित्यवर्ण ब्रह्म के जानने वाले (व्राः) वरणीय विद्वानों ने [उस ब्रह्म की] (अभि) विविध प्रकार से (अनूषत) स्तुति की है ॥ १ ॥

भावार्थः—वह परम ब्रह्म सूक्ष्म तो ऐसा है कि वह (गुहा) हृदय आदि प्रत्येक सूक्ष्म स्थान का अन्तर्यामी है, और स्थूल भी ऐसा है कि संपूर्ण ब्रह्मांड उसके भीतर समा रहा है। धीर ध्यानी महात्मा उस जगदीश्वर की अनन्त रचनाओं से विज्ञान और उपकार प्राप्त करके मुक्त कण्ठ से आत्मसमर्पण करते हुये उसकी स्तुति करते और ब्रह्मानन्द में मग्न रहते हैं ॥ १ ॥

देखिये—यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ८।

वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा सद् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदꣳ सं च वि चैति सर्वꣳ स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ १ ॥

(वेनः) पण्डित जन (तत्) उस (गुहा) बुद्धि वा गुप्त कारण में (निहितम्) वर्त्तमान (सत्) नित्यस्वरूप ब्रह्म को पश्यत्=०—ति) देखता है, (यत्र) जिस ब्रह्म में (विश्वम्) सब जगत् (एकनीडम्) एक आश्रय वाला (भवति) होता है (च) और (तस्मिन्) उसमें (इदम्) यह (सर्वम्) सब जगत् (सम्)

कर्मा—निघ० २। ६। ततः **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** (पा० ३। ३। ११८) इति घप्रत्यय। वेनो वेनतेः कान्तिकर्मणः—इति यास्कः, निरु० १०। ३८) गतिमान्। दीप्यमानः। मेधावी—निघ० २। १५। **पश्यत्**। इकारलोपः पश्यति, साक्षात्करोति। **परमम्** द्र० अ० १। १३। ३। पर+मा माने—क। उत्कृष्टम्। **गुहा** द्र० अ० १। ८। ४। गुहायाम्। गुप्तस्थाने। **यत्र**। यस्मिन् सर्वाधिष्ठाने ब्रह्मणि। **विश्वम्** द्र० अ० १। १। १। सर्वं जगत्। **एकरूपम्**। **इण् भीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन्** (उ० ३। ४३) इति इण् गतौ—कन्। एति प्राप्नोतीत्येकम्। रूयते कीर्त्यते तद्रूपम्। अ० १। १। १। सर्वथा, निरन्तरं व्याप्तम्। **इदम्**। **इन्देः कमिन्नलोपश्च** (उ० ४। १५७) इति इदि परमैश्वर्ये—कमिन्। नकारलोपः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलकर (च) और (वि) अलग अलग होकर (एति) चेष्टा करता है, (सः) वह (विभूः) सर्वव्यापक परमात्मा (प्रजासु) प्रजाओं में [वस्त्र में सूत के समान] (ओतः) ताना किये हुये (च) और (प्रोतः) बाना किये है ॥

प्र तद् वोचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत् । त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥ २ ॥

प्र । तत् । वोचेत् । अमृतस्य । विद्वान् । गन्धर्वः । धाम । परमम् । गुहा । यत् । त्रीणि । पदानि । निऽहिता । गुहा । अस्य । यः । तानि । वेद । सः । पितुः । पिता । असत् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(विद्वान्) विद्वान् (गन्धर्वः) विद्या का धारण करने वाला

इन्दति परमैश्वर्यहेतुर्भवतीति इदम् । प्रत्यक्षज्ञानम् । **पृश्निः** । **घृणिपृश्नि-पार्ष्णि०** (उ० ४ । ५२) इति स्पृश स्पर्शे-निप्रत्ययः, सलोपः । स्पृशति, योगेन ब्रह्मप्राप्नोतीति पृश्निः । समाधिस्थयोगी पुरुषः । पृश्निरादित्यो भवति प्राश्नुत एनं वर्ण इति नैरुक्ताः, संस्प्रष्टा रसान् संस्प्रष्टा भासं ज्योतिषां संस्पृष्टो भासेति वा (निरु० २ । १४) इति यास्कवचनाद् योगैश्वर्येण सूर्यवत् प्रकाशमानः पुरुषः । **अदुहत्** । दुह प्रपूरणे-लुङ्, छान्दसो अङ् । आकृष्टवान्, प्राप्तवान् । द्विकर्मकत्वात् (इदम्) इति (जायमानाः) इति शब्दस्य च कर्मकत्वम् । **जायमानाः** । जनी जनने, प्रादुर्भावे-शानच् । उत्पद्यमानाः प्रजाः । **स्वर्विदः** । **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** (पा० ३ । २ । ७५) इति स्वृ शब्दोपतापयोः-विच् । यद्वा सु + ऋ गतौ, ईर गतौ वा-विच् । स्वरादित्यो भवति सु अरणः सु ईरणः स्वृतो रसान् स्वृतो भासं ज्योतिषाम् स्वृतो भासेति वा (निरु० २ । १४) ततो विद ज्ञाने-क्विप् । स्वः शब्दाभिधेयं सुखस्वरूपम् आदित्यवर्णं वा परब्रह्म विदन्ति जानन्तीति स्वर्विदः परब्रह्मज्ञातारः । **अभि** । आभिमुख्येन, सर्वतः । **अनूषत** । णू स्तवने-लुङ्, छान्दसम् आत्मनेपदम् । स्तुतवन्तः । **व्राः** । **गेहे कः** (पा० ३ । १ । १४४) इति वृञ् वरणे-बाहुलकात् कः, यणादेशः, जस् । स्वशोभनगुणैर्व्रियमाणाः संभज्यमानाः स्वीक्रियमाणाः पुरुषाः । यद्वा । ब्रह्मणो वरितारो अन्वेष्टारः ॥

२—वोचेत् । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि आशीर्लिङि वच्यादेशे **लिङ्याशिष्यङ्**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष (अमृतस्य) अविनाशी ब्रह्म के (तत्) उस (परमम्) सब से ऊंचे (धाम) पद का (प्रवोचद्) उपदेश करे (यत्) जो पद (गुहा=गुहायाम्) गुफा [प्रत्येक अगम्य पदार्थ हृदय आदि] के भीतर है। (अस्य) इस [ब्रह्म] की (गुहा) गुफा [अगम्य शक्ति] में (त्रीणि) तीनों (पदानि) पद (निहिता=०–तानि) ठहरे हुये हैं, (यः) जो [विद्वान् पुरुष] (तानि) उनको (वेद) जान लेता है, (सः) वह (पितुः) पिता का (पिता) पिता (असत्) हो जाता है।

भावार्थः—विद्वान् महात्मा पुरुष उस परब्रह्म की महिमा का सदा उपदेश करते रहते हैं। वह ब्रह्म सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है। उसके ही वश में तीन पद, अर्थात् संसार की सृष्टि, स्थिति और नाश यह तीनों अव-

---

(पा० ३ । १ । ८६) इति अङ्प्रत्ययः, **वच उम्** (पा० ७ । ४ । २०) इति उम् आगमः। उच्यात्=उपदिशेत्। **व्यवहिताश्च** (पा० १ । ४ । ८१) इति (प्र) उपसर्गस्य क्रियया संबन्धः। **अमृतस्य । तनिमृङ्भ्यां किच्च** (उ० ३ । ८८) इति अ+मृङ् प्राणत्यागे–तन्, स च कित्। मरणरहितस्य। अविनाशिनः परब्रह्मणः। **विद्वान्** । वेत्तीति। विद ज्ञाने-शतृ। **विदेः शतुर्वसुः** (पा० ७ । १ । ३६) इति शतुर्वसु आदेशः। आत्मवित्। प्राज्ञः। पण्डितः। **गन्धर्वः** । गां वाणीं पृथिवीं गतिं वा धरति धारयति वा सः। **कृगृशदृभ्यो वः** (उ० १ । १५५) इति गो+ धृञ् धारणे–वप्रत्ययः, पृषोदरादिना गोशब्दस्य गमादेशः। वेदवाणीधारकः। वेदवेत्ता। स्वर्गगायकः। सूर्यः। घोटकः। **धाम** द्र० अ० १ । १३ । ३। स्थानम्। प्रभावम्। **त्रीणि । तरतेड्रिः** (उ० ५ । ६६) सृष्टिस्थितिप्रलयादिरूपाणि। **पदानि** । पद्यन्ते गम्यन्ते प्राणिभिः। पद गतौ–अच्। कर्माणि। वस्तूनि। **निहिता । दधातेर्हिः** (पा० ७ । ४ । ४२) इति नि+डुधाञ् धारणपोषणयोः–क्त। हिरादेशः **शेश्छन्दसि बहुलम्** (पा० ६ । १ । ६८) इति शिलोपः। निहितानि=स्थापितानि, स्थितानि। **वेद** । विद ज्ञाने। **विदो लटो वा** (पा० ३ । ४ । ८३) इति तिपो णल्आदेशः। वेत्ति। जानाति। साक्षात्करोति। **पितुः पिता । नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृ०** (उ० २ । ९५) इति पा रक्षणे तृच्। निपातनात् साधुः। ज्ञानप्रदानेन स्वरक्षकस्यापि रक्षकः। महाविद्वान्। **असत्** । अस सत्तायां[2]–लेट्, अडागमः। भूयात् ॥

---

१. इस सूत्र में धृञ् का पाठ न होने से बाहुलक का आश्रयण कर के ही सिद्धि मानी है, ऐसा जानना चाहिये। सा. भा. में तो 'गवि गन् धृञो वः' यह नारायण उणादिवृत्ति का सूत्र उद्धृत किया गया है ॥ सम्पा.

२. धातुपाठ में जो 'अस भुवि' पाठ है, उसीसे यहाँ तात्पर्य जानना चाहिये। सम्पा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थायें, अथवा भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान, तीनों काल, अथवा सत्त्व, रज और तम, तीनों गुण वर्त्तमान हैं। जिस महापुरुष योगी को इन अवस्थाओं का विज्ञान व्यष्टि और समष्टि रूप से होता है। वह पिता का पिता अर्थात् महाविज्ञानियों में महाविज्ञानी होता है ॥ २ ॥

१—यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—

२—मनु महाराज ने कहा है -

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥ मनु० २।१५३॥

अज्ञानी ही बालक होता है, वेदोपदेष्टा पिता होता है। [मुनि लोग] अज्ञानी को ही बालक, और वेदोपदेष्टा को ही पिता कहते हैं ॥ १ ॥

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामध एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥३॥

सः । नः । पिता । जनिता । सः । उत । बन्धुः । धामानि । वेद । भुवनानि । विश्वा । यः । देवानाम् । नामधः । एकः । एव । तम् । सम्ऽ प्रश्नम् । भुवना । यन्ति । सर्वा ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(सः) वही [ईश्वर] (नः) हमारा (पिता) पालक और (जनिता) जनक, (उत) और (सः) वही (बन्धु) बान्धव है, वह (विश्वा=विश्वानि) सब (धामानि) पदों [अवस्थाओं] और (भुवनानि) लोकों को (वेद) जानता है (यः)

३—**पिता** द्र० म० २ पालयिता। **जनिता**। जनी जनने-णिचि तृच्। **जनिता मन्त्रे** (पा० ६। ४। ५३) इति तृचि णिलोपो निपात्यते। जनयिता। उत्पादकः। **बन्धुः**। **शॄस्वृस्निहि०** (उ० १। १०) इति बन्ध बन्धने उप्रत्ययः स च नित्। **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** (पा० ६। १। १९१) इति नित्त्वाद् आद्युदात्तः, प्रेम्णा बध्नातीति। बान्धवः। **धामानि**। द्र० म० २। धामानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानि जन्मानीति (निरु० ९।२८) जन्मस्थाननामानि। **वेद**। द्र० म० १। वेत्ति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो [परमेश्वर] (एकः) अकेला (एव) ही (देवानाम्) दिव्य गुण वाले पदार्थों का (नामधः) नाम रखने वाला है (संप्रश्नम्) यथाविधि पूछने योग्य (तम्) उसको (सर्वा=सर्वाणि) सब (भुवना=०—नानि) प्राणी (यन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ :—परमेश्वर संसार का माता, पिता, बन्धु और सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी है. वही पिता के समान सृष्टि के पदार्थों का नामकरण संस्कार करता है, जैसे, सूर्य, पृथिवी, मनुष्य, गौ, घोड़ा आदि। विद्वान् लोग सत्संग करके उस जगदीश्वर को पाते और आनन्द भोगते हैं ॥ ३ ॥

नामधः के स्थान पर सायणभाष्य, ऋग्वेद और यजुर्वेद में [नामधाः] है।

२—यह मन्त्र ऋ० १०। ८२। ३। तथा य० १७। २१। में कुछ भेद से है।

परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वे३ षो अग्निः ॥ ४ ॥

परि। द्यावापृथिवी इति। सद्यः। आयम्। उप। आऽतिष्ठे। प्रथमऽजाम्। ऋतस्य। वाचम्ऽइव। वक्तरि। भुवनेऽस्थाः। धास्युः। एषः। ननु। एषः। अग्निः ॥ ४ ॥

भाषार्थ :— (सद्यः) अभी (द्यावापृथिवी=०—व्यौ) सूर्य और पृथिवीलोक में (परि=परीत्य) घूमता हुआ (आयम्) मैं [प्राणी] आया हूं (ऋतस्य) सत्य

भुवनानि। भूसूधूभ्रस्जिभ्यश्छन्दसि (उ० २। ८०) इति भू सत्तायाम्—क्युन्। सर्वपदार्थाधिकरणानि। लोकान्। **देवानाम्।** दिवु पचाद्यच पृथिव्यादिदिव्यपदार्थानाम्। **नामधः।** नाम+धाञ् धारणे—क। नामकरणकर्ता, नामधारकः। **एकः।** इण्गतौ-कन्। अद्वितीयः। असहायः। **सम्प्रश्नम्।** सम्यक् पृच्छन्ति यस्मिँस्तम्। परमात्मानम्। यथाविधि प्रश्नीयम्। अन्वेषणीयम्। **भुवना।** भुवनानि। लोकाः। **यन्ति।** इण् गतौ-लट्। गच्छन्ति, प्राप्नुवन्ति। लभन्ते ॥

४—द्यावापृथिवी। दिवो द्यावा (पा० ६। ३। २९) इति दिव्शब्दस्य द्यावा इत्यादेशो देवताद्वन्द्वे। **वा छन्दसि** (पा० ६। १। १०२) इति पूर्वसवर्णदीर्घः। **देवताद्वन्द्वे च** (पा० ६। २। १४०) इत्युभयपदप्रकृतिस्वरत्वम्। द्यौश्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम के (प्रथमजाम्) पहिले से उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] को (उप+आतिष्ठे) मैं प्राप्त होता हूँ, (इव) जैसे [श्रोतागण] (वक्तरि) वक्ता में वर्त्तमान] (वाचम्) वाणी को [प्राप्त होते हैं]। (भुवनेष्ठाः) सम्पूर्ण जगत् में स्थित (एषः) यह परमेश्वर (धास्युः) पोषण करने वाला और (ननु) अवश्य करके (एषः) यह (अग्निः) अग्नि [सदृश उपकारी वा व्यापक परमात्मा] है ॥ ४ ॥

भावार्थ :—तत्त्ववेत्ता पुरुष सूर्य और पृथिवी आदि प्रत्येक कार्य रूप पदार्थ के आकर्षण, धारणादि का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा को साक्षात् करता है, जैसे श्रोता लोग वक्ता के बोलने पर उसकी वाणी के अभिप्राय को अपने आत्मा में ग्रहण करते हैं। वही ईश्वर वेद रूप सत्य नियम की सृष्टि के पहिले प्रकट करता और सब जगत् का धारण और पोषण करता रहता है, जैसे सूर्य का ताप अन्न आदि को परिपक्व करके, और जाठर अग्नि भोजन को पचा कर और उससे रुधिर आदि को उत्पन्न करके शरीर को पुष्ट करता है ॥ ४ ॥

पातंजल योगदर्शन में वर्णन है—

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ पाद ३ सूत्र २५ ॥

सूर्य में संयम से लोकों का ज्ञान [योगी को] होता है। अर्थात् वह सूर्य को केन्द्र मान कर सूर्य से लोकों का सम्बन्ध, और परमेश्वर से सूर्य का सम्बन्ध अपनी विद्या द्वारा जान लेता है ॥

पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ। सूर्यभूमी। तदुपलक्षितं कृत्स्नं जगत्। **सद्यः**। **सद्यः परुत्परार्यैषमः०** (पा० ५। ३। २२) इति समान-द्यस् प्रत्ययो दिनार्थे, समानस्य सभावः। समानेऽहनि। सपदि। तत्क्षणे। तत्त्वज्ञानसमकालमेव। **आयम्**। इण् गतौ-लङ् उत्तमैकवचने गुणायादेशयोः आडागमः। अहं प्राप्नवानस्मि। **उपातिष्ठे**। उप+आ-तिष्ठे। उपेत्य स्थितोऽस्मि। नमस्करोमि। **प्रथमजाम्**। **जनसनखनक्रमगमो विट्** (पा० ३। २। ६७) इति जनी प्रादुर्भावजननयोः-विट्। **विड्वनोरनुनासिकस्यात्**। (पा० ६। ४। ४१) इति आत्वम्। प्रथमं जनयतीति प्रथमजाः। सृष्टेः पूर्वं जनयितारम्, उत्पादकम्। **ऋतस्य**। ऋ गतौ-क्त। सत्यस्य। यथार्थज्ञानस्य। वेदविज्ञानस्य। **वाचम्**। **क्विब् वचिप्रच्छिश्रिस्रुद्रुप्रुज्वां दीर्घोऽसंप्रसारणं च** (उ० २। ५७) इति वच क्विप्। दीर्घोऽसम्प्रसारणं च। वाणीम्=वाक्यम्। **वक्तरि**। वच कथने[२] तृच्। उपदेशके। प्रयोक्तरि वर्त्तमानां वाचं श्रोतारो यथा प्रयोगसमकाले

---

१. जुहोत्यादिगण में 'जन जनने' तथा दिवादिगण में जनी प्रादुर्भावे धातु पठित है। उन दोनों से ही यहाँ तात्पर्य है ॥ सम्पा०

२. धातुपाठ में पठित 'वच परिभाषणे' से यहाँ तात्पर्य है ॥ सम्पा०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परि॒ विश्वा॒ भुव॑नान्यायमृ॒तस्य॒ तन्तुं॑ वित॒तं दृ॒शे कम्॑ ।
यत्र॑ दे॒वा अ॒मृत॑मानशा॒नाः सम॒माने योना॒वध्यैर॑यन्त ॥ ५ ॥

परि॒ । विश्वा॑ । भुव॑नानि । आ॒य॒म् । ऋ॒तस्य॑ । तन्तु॑म् । वि॒ऽत॑तम् । दृ॒शे । कम् । यत्र॑ । दे॒वाः । अ॒मृत॑म् । आन॑शा॒नाः । सम॒माने । योनौ॑ । अधि॑ । ऐर॑यन्त ॥ ५ ॥

भाषार्थ :—(विश्वा = विश्वानि) सब (भुवनानि) लोकों में (परि = परीत्य) घूम कर (ऋतस्य) सत्य नियम के (विततम्) सब ओर फैले हुये (तन्तुम्) फैलने वाले [अथवा वस्त्र में सूत के समान सर्वव्यापक] (कम्) प्रजापति परमेश्वर को (दृशे) देखने के लिये (आयम्) मैं [प्राणी] आया हूं। (यत्र) जिस [परमात्मा] में (देवाः) तेजस्वी महात्मा (अमृतम्) अमृत [अमरण अर्थात् जीवन की सफलता वा अनश्वर आनन्द] को (आनशानाः) भोगते हुए (समाने) साधारण (योनौ) आदि कारण ब्रह्म में [प्रविष्ट होकर] (अधि) ऊपर (ऐरयन्त) पहुँचे हैं ॥ ५ ॥

जानन्ति। **भुवनेष्ठाः** । **भूसूधूभ्रस्जिभ्यश्छन्दसि** (उ० २ । ८०) इति भू-क्युन्। भवन्त्यस्मिन् भूतानीति भुवनं जगत्। **आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च** (पा० ३ । २ । ७४) इति भुवन + ष्ठा गतिनिवृत्तौ-विच्। **तत्पुरुषे कृति बहुलम्** (पा० ६ । ३ । १३) इति सप्तम्या अलुक्। सर्वलोके परिपूर्णः परमात्मा। **धास्युः** । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति डुधाञ् धारणपोषणयोः-असुन्। **छन्दसि परेच्छायामिति** (वा० पा० ३ । १ । ८) इति धास् क्यच्। **क्याच् छन्दसि** (पा० ३ । २ । १७०) इति उप्रत्ययः। धाः धारणं पोषणं जगत इच्छतीति धास्युः सर्वपोषणेच्छुः। **अग्निः** । अ० १ । ६ । २ । सर्वव्यापकः सर्वज्ञः परमेश्वरः। अग्निवत् पोषकः ॥

५—**तन्तुम्** । **सितनिगमिमसि०** (उ० १ । ६९) इति तनु विस्तारे—तुन्। तनोति विस्तृणोति तन्यते विस्तीर्यते वा स तन्तुः। विस्तारकम्। विस्तीर्णं सूत्रम्। पटस्य सूत्रवत् जगतः कारणभूतम्। **विततम्** । वि + तनु विस्तारे क्त। विस्तृतम्। व्याप्तम्। **दृशे** । **दृशे विख्ये च** (पा० ३ । ४ । ११) इति दृशिर् प्रेक्षणे-तुमर्थे के प्रत्ययः। द्रष्टुम्। **कम्** । **अन्येष्वपि दृश्यते** (पा० ३ । २ । १०१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—ध्यानी धीर वीर पुरुष सामान्यतः समष्टि रूप से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की परीक्षा करके सब स्थान में व्यापक जगदीश्वर को साक्षात् करके आनन्द भोगते हैं, और यह अनुभव करते हैं कि सब महात्मा अपने को उस परम पिता में लय करके आत्मा की परम उन्नति करते हैं, अर्थात् जो स्वार्थ छोड़ कर आत्मसमर्पण करते हैं वही परोपकारी सज्जन परम आनन्द की सिद्धि [मुक्ति] को सदा हस्तगत करते हैं ॥ ५ ॥

यजुर्वेद अ० ३२ म० १० इस प्रकार है ।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ १ ॥

वही हमारा बन्धु और उत्पन्न करने हारा है, और वही पोषण करने हारा परमेश्वर सब (धामानि) अवस्थाओं और (भुवनानि) लोकों को जानता है जिस तीसरे लोक परब्रह्म [प्राणियों और सब भुवनों के स्वामी] में तेजस्वी जन अमृत को भोगते हुये ऊपर पहुँचे हैं ॥

इति कमेः क्रमेर्वा–डप्रत्ययः । क्रमतेः रेफलोपः । कः कमनो वा क्रमणो वा सुखो वा (निरु० १० । २२) प्रजापतिम् । विष्णुम् । ब्रह्म । सूर्यं, सूर्यवत् प्रकाशकम् । सुखस्वरूपम् । **यत्र** । यस्मिन् के परब्रह्मणि । **देवाः** । दिव्यगुणवन्तो महात्मानः । **अमृतम्** । म० २ । अमरणम् । जीवनसाफल्यम् । मोक्षम् । **आनशानाः** । **लिटः कानज्वा** (पा० ३ । २ । १०६) इति अशू व्याप्तौ—कानच् । **अश्नोतेश्च** (पा० ७ । ४ । ७२) नुडागमः । **चितः** (पा० ६ । १ । १५७) इति अन्तोदात्तः । अश्नुवानाः । प्राप्नुवन्तः । **समाने** । सम्यक् अनिति नीयते वा । सम्+अन जीवने–घञ्, यद्वा, सम्+आङ्+णीञ् प्रापणे–अच् । एकस्मिन्नेव । **योनौ** । **वहिश्रिश्रुयुद्रु०** (उ० ४ । ५१) इति यु मिश्रणामिश्रणयोः—निः । आदिकारणे । ब्रह्मणि । **अध्यैरयन्त** । ईर गतौ । ऊर्ध्वं गतवन्तः । अन्यत् व्याख्यातं सुगमं च ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् २ ॥

१ ५ ॥ गन्धर्वाप्सरा देवताः १—३ त्रिष्टुप्, ४ त्रिपदा त्रिष्टुप्, ५ अनुष्टुप् छन्दः ॥

परमेश्वरः सर्वशक्तिमान्नित्युपदिश्यते-परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है इसका उपदेश ।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विश्वीड्यः । तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ॥ १ ॥

दिव्यः । गन्धर्वः । भुवनस्य । यः । पतिः । एकः । एव । नमस्यः । विक्षु । ईड्यः । तम् । त्वा । यौमि । ब्रह्मणा । दिव्य । देव । नमः । ते । अस्तु । दिवि । ते । सधऽस्थम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(यः) जो तू (दिव्यः) दिव्य [अद्भुत स्वभाव] (गन्धर्वः) गन्धर्व [भूमि, सूर्य, वेदवाणी वा गति का धारण करने वाला] (भुवनस्य) सब ब्रह्मांड का (एकः) एक एव) ही (पतिः) स्वामी, (विक्षु) सब प्रजाओं [वा मनुष्यों] में (नमस्यः) नमस्कार योग्य और (ईड्यः) स्तुति योग्य है । (तम्) उस (त्वा) तुझ से, (दिव्य) हे अद्भुत स्वभाव (देव) जयशील परमेश्वर ! (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (यौमि) मैं मिलता हूं, (ते) तेरे लिए (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो, (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (ते) तेरा (सधस्थानम्) सहवास है ॥ १ ॥

भावार्थः—धीर, वीर, ऋषि, मुनि पुरुष उस परम पिता जगदीश्वर की सत्ता को अपने में और प्रत्येक पदार्थ में वैदिक ज्ञान की प्राप्ति से साक्षात् करके अभिमान छोड़ कर आत्मबल बढ़ाते हुए आनन्द भोगते हैं ॥ १ ॥

१—(गन्धर्व) परमेश्वर का नाम है, देखिये—ऋग्वेद मं० ९ सू० ८३ म० ४ ।

गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः । गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥ १ ॥

१—दिव्यः । छन्दसि च (पा० ५ । १ । ६६) इति दिव्-यः । दिवं प्रकाशं स्वर्गं वार्हतीति । द्योतनात्मकः । स्वर्गीयः । मनोज्ञः । **गन्धर्वः** । द्र० अ० २ । १ । २ । गो + धृ—व । वाग्भूमिसूर्यस्वर्गाणां धारकः परमेश्वरः । **भुवनस्य** । द्र० अ० २ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गन्धर्वः) पृथिवी आदि का धारण करने वाला, गन्धर्व, (इत्था) सत्यपन से (अस्य) इस जगत् की (पदम्) स्थिति की (रक्षति) रक्षा करता है और वह (अद्भुतः) आश्चर्यस्वरूप (देवानाम्) दिव्य गुणवालों के (जनिमानि) जन्मों अर्थात् कुलों की (पाति) चौकसी रखता है। (निधापतिः) पाश [बन्धन] का स्वामी (निधया) पाश से (रिपुम्) वैरी को (गृभ्णाति) पकड़ता है, (सुकृत्तमाः) बड़े बड़े सुकृती पुण्यात्मा लोगों ने (मधुनः) मधुर रस के (भक्षम्) भोग को (आशत) भोगा है ॥

दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वगवयाता हरसो दैव्यस्य ।
मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवाः ॥२॥

दिवि । स्पृष्टः । यजतः । सूर्यत्वक् । अवऽयाता । हरसः । दैव्यस्य । मृडात् । गन्धर्वः । भुवनस्य । यः । पतिः । एकः । एव । नमस्यः । सुऽशेवाः ॥२॥

भाषार्थः—(दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (स्पृष्टः) स्पर्श किये हुये, (यजतः)

---

१ । ३ । जगतः । **नमस्यः** । **तदर्हति** (पा० ५ १ । ६२) इति नमस्-यत् । **तित् स्वरितम्** (पा० ६ । १ । १७९) इति स्वरितत्वम् । नमस्कारयोग्यः । **विक्षु** । विश प्रवेशने-क्विप् । विश.=मनुष्याः-(निघ० २ । ३) प्रजासु । मनुष्येषु । **ईड्यः** । **ऋहलोर्ण्यत्** (पा० ३ । १ । १२४) इति ईड स्तुतौ-ण्यत् । स्तुत्यः । **यौमि** । **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** (पा० ७ । ३ । ८९) इति यु मिश्रणे-वृद्धिः । संयोजयामि । **ब्रह्मणा** (द्र० अ० १ । ८ । ४) वेदज्ञानेन । **ते** । तुभ्यम् । **नमःस्वस्तिस्वाहा०** (पा० २ । ३ । १६) इति चतुर्थी । **अनुदात्तं सर्वमपादादौ** (पा० ८ । १ । १८) इत्यनुदात्तः । **दिवि** । दिवु क्रीडाविजिगीषा-व्यवहारद्युतिस्तुति०-क्विप् । स्वर्गे । प्रकाशे । व्यवहारे । **सधस्थम्** । सह तिष्ठन्त्यत्रेति । सह + ष्ठा गतिनिवृत्तौ-अधिकरणे कप्रत्ययः । **सध मादस्थयोश्छन्दसि** (पा० ६ । ३ । ९५) इति सहस्य सधादेशः । सहस्थानम् । निवासस्थानम् । अन्यत् सुगमं व्याख्यातं च ॥

२—**दिवि** । म० १ । प्रत्येकव्यवहारे । **स्पृष्टः** । स्पृश सम्पर्के-क्तः । स्पर्शयुक्तः । स्थितः । **यजतः** । **भृमृदृशियजि०** (उ० ३ । ११०) इति यज देवपूजा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजनीय, (सूर्यत्वक्) को त्वचा अर्थात् रूप देने वाला, (दैव्यस्य) मदशील [प्रमत्त] मनुष्य के, अथवा आधिदैविक (हरसः) क्रोध का (अवयाता) हटाने वाला वह परमेश्वर (मृडात्) [सब को] आनन्द देवे, (यः) जो (गन्धर्वः) गन्धर्व, [म० १। भूमि, सूर्य, वेदवाणी वा गति का धारण करने वाला] (भुवनस्य) सब जगत् का (एकः) एक (एव) ही (पतिः) स्वामी (नमस्यः) नमस्कार योग्य और (सुशेवाः) अत्यन्त सेवा योग्य है ।। २ ।।

भावार्थ :—वह सर्वव्यापी, सूर्यादि प्रकाशक जगत्पिता परमेश्वर हमें सामर्थ्य देकर हमारे कुक्रोध और आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक क्लेश का नाश करता है। उस अद्वितीय, सर्व सेवनीय परमेश्वर की उपासना से सबको आनन्द मिलता है ।। २ ।।

१—परमेश्वर आदित्यवर्ण रूप है, य० अ० ३१ । १८ ।।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।१।।

सङ्गतिकरणदानेषु—अतच् । चित्त्वाद् अन्तोदात्तः । यष्टव्यः । पूजनीयः । **सूर्यत्वक्** । सूर्यः, व्याख्यातः—अ० १ । ३ । ५ । । सुवति सरति वा स सूर्यः । त्वच संवरणे—क्विप् । यद्वा । **तनोतेरनश्च वः** (उ० २ । ६३) इति तनु विस्तारे-चिक्, अन् इत्यस्य वः । त्वचति संवृणोति, यद्वा, तनोति विस्तारयतीति त्वक् । सूर्यस्य त्वग् रूपं यस्मात् सः । सूर्यस्रष्टा । **अवयाता** । या गतौ, अन्तर्भावितणिच्-तृच् । अवयापयिता, अवगमयिता । **हरसः** । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति हृञ् हरणे—असुन् । क्रोधस्य—निघ० २ । १३ । **दैव्यस्य** । द्र० अ० २ । १२ । ४ **देवाद् यजौ** (वा० पा० ४ । १ । ८५) इति देव+यञ् । देवसम्बद्धस्य । आधिदैविकस्य । यद्वा मदशीलस्य, प्रमत्तस्य पुरुषस्य । **मृडात्** । मृड सुखने-लेटि आडागमः । **इतश्च लोपः परस्मैपदेषु** (पा० ३ । ४ । ९७) इति इकारलोपः । मृडयतु । सुखयतु । **सुशेवाः** । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति सु+शेवृ सेवने—असुन् । शोभनं शेवः शेवनं यस्येति । अनायासेन सेवनीयः । अन्यद् गतं मन्त्रे ।। १ ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अहम्) मैं (तमसः) अन्धकार वा अज्ञान से (परस्तात्) परे होकर, (एतम्) इस (महान्तम्) पूजनीय वा सबसे बड़े (आदित्यवर्णम्) सूर्य को रूप देने वाले (पुरुषम्) अग्रगामी परमात्मा को (वेद) जानता हूं। (तम्) उस को (एव) ही (विदित्वा) जान कर [जीव] (मृत्युम्) मृत्यु को (अत्येति) लांघ जाता है, (अन्यः) दूसरा (पन्थाः) मार्ग (अयनाय) चलने के लिये (न) नहीं (विद्यते) विद्यमान है ॥

२—परमेश्वर ने सूर्य और चन्द्र बनाया है। ऋग्वेद म० १०। सू० १९०। ३

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

(धाता) विधाता ने (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्र को (यथापूर्वम्) पहिले के समान (अकल्पयत्) बनाया है।

अनवद्याभिः समु जग्म आभिरप्सरास्वपि गन्धर्व आसीत् ।
समुद्र आसां सदनं म आहुर्यतः सद्य आ च परा च यन्ति ॥३॥

अनवद्याभिः । सम् । ऊं इति । जग्मे । आभिः । अप्सरासु । अपि । गन्धर्वः । आसीत् । समुद्रे । आसाम् । सदनम् । मे । आहुः । यतः । सद्यः । आ । च । परा । च । यन्ति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(गन्धर्वः) गन्धर्व [म० १] (आभिः) इन (अनवद्याभिः) निर्दोष [अप्सराओं] के साथ (उ) अवश्य (संजग्मे) संगति वाला था, और (अप्सरासु) अप्सराओं में [सब प्राणियों, वा अन्तरिक्ष वा बीज रूप जल में व्यापक, वा उत्तम रूप वाली अपनी शक्तियों में] (अपि) निः सन्देह (आसीत्) वर्त्तमान था। (आसाम्) इन [अप्सराओं] का (सदनम्) घर (समुद्रे) अन्तरिक्ष में [वा समुद्र रूप गंभीर स्थान में] (मे) मुझको (आहुः) वे बताते हैं, (यतः) जिस

३—**अनवद्याभिः** । **अवद्यपण्यवर्यागर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु** (पा० ३। १। १०१) इति अन्+अ+वद यत्प्रत्ययान्तो निपातः। अगर्ह्याभिः। प्रशस्तगुणाभिः। **सम्-जग्मे** । सम्+गम्लृ-लिट्। **समो गम्यृच्छि०** (पा० १। ३। २९) इति सम्पूर्वाद् अकर्मकाद् गमेरात्मनेपदम्। **गमहन०** (पा० ६। ४। ९८) इत्युपधालोपः। संगतवान्। **अप्सरासु**। **आप्नोतेर्ह्रस्वश्च** (उ० २।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान से वे (च) अवश्य (आ यन्ति) आती (च) और (परा=परायन्ति) दूर चली जाती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—(गन्धर्व) भूमि आदि लोकों और वेदवाणी का धारक (अप्सराओं) अर्थात् सब प्राणियों और जल आदि सृष्टि के उपादान कारण पदार्थों में वर्त्तमान अपनी शक्तियों के साथ विराजमान रहता है, यह अद्भुत शक्तियाँ अति विस्तीर्ण आकाश में वर्त्तमान रहती, और मनुष्य आदि के शरीरों में परमाणुओं की संयोग दशा में दृश्य, और उनकी वियोग दशा में अदृश्य हो जाती हैं ॥ ३ ॥

टिप्पणी—(गन्धर्वः) और (अप्सरसः) शब्दों के लिये यजुर्वेद अ० १८ म० ३८–४३, छह मन्त्र देखें। वहाँ (अप्सरसः) शब्द है जो (अप्सराः) शब्द का पर्य्यायवाची है।

ऋतावाड्ऋतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयो ऽप्सरसो मुदो नाम।
स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ १ ॥

---

५८) इति आप्लृ व्याप्तौ–क्विप्। आपः, अन्तरिक्षनाम निघ० १। ३। उदक नाम–निघ० १। १२। दयानन्दभाष्ये प्राणा जलानि वा—य० ४। ७। आप्ताः प्रजाः—६। २७। व्यापिकास्तन्मात्राः—२७। २५। **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** (पा० ३। १। १३४) इति सृ गतौ–पचाद्यच्। यद्वा। **वृतृवदिवचिवसिहनिकमिकषिभ्यः सः** (उ० ३। ६२) इति आप्लृ व्याप्तौ—सप्रत्ययः। उपधाह्रस्वः। अप्सः=रूपम् निघ० ३। ७। रो मत्वर्थीयः। अथवा, रा दानादानयोः—अच। टाप्। अप्सरा अप्सारिण्यपि वाऽप्स इति रूपनाम, अप्सातेरप्सानीयं भवति, आदर्शनीयं व्यापनीयं वेति, तद्रा भवति रूपवती तदनयात्तमिति वा तदस्यै दत्तमिति वा (निरु० ५। १३) अप्सु आकाशे जलेषु प्राणेषु प्रजासु वा सरणशीलाः, अथवा रूपवत्यः परमेश्वरशक्तयः। **समुद्रे**। द्र०अ० १। ३। ८। अन्तरिक्षे–निघ० १। ३। **सदनम्**। सीदन्त्यत्रेति। षदॢ गतौ–ल्युट्। गृहम्। **आहुः**। ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि–लट्। ब्रुवन्तिकथयन्ति ब्रह्मवादिनः। **आ+यान्ति**। इण् गतौ। आगच्छन्ति, आविर्भवन्ति सृष्टिकाले। **परा+यन्ति**। दूरे गच्छन्ति तिरोभवन्ति प्रलयकाले ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ऋताषाट्) सत्य नियम का सहने वाला, (ऋतधामा) सत्य प्रभाव वाला, (अग्निः) सर्व व्यापक, वा अग्नि समान रक्षक, परमेश्वर (गन्धर्वः) सूर्य, पृथिवी, और वेद वाणी आदि का धारण करने वाला है। (तस्य) उसकी [गन्धर्व की बनायी] (मुदः) आनन्द देने वाली (ओषधयः) ओषधियाँ [अन्नादि वस्तुयें] (नाम) प्रसिद्ध रूप से (अप्सरसः) अप्सरायें अर्थात् आकाश वा प्राणों, वा जल में चलने वाली वा उत्तम रूप वाली सामग्री हैं। (सः) वह परमेश्वर (नः) हमारे लिये (इदम्) इस (ब्रह्म) ब्राह्मण कुल और (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल की (पातु) रक्षा करे। (तस्मै) उस परमेश्वर को (स्वाहा) सुन्दर वाणी और (वाट्) आवाहन, और (ताभ्यः) उन सामग्रियों के लिये (स्वाहा) सुन्दर स्तुति है ॥

यह मन्त्र ३८ वां है। इसी प्रकार अन्य पांच मन्त्रों में (गन्धर्वः) शब्द (सूर्यः चन्द्रमाः, वातः, यज्ञः, मनः) शब्दों के साथ, और (अप्सरसः) शब्द (मरीचयः, नक्षत्राणि, आपः, दक्षिणाः, ऋक्सामानि) शब्दों के साथ क्रम से आये हैं।

अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत् कृणोमि ॥ ४ ॥

अभ्रिये। दिद्युत्। नक्षत्रिये। याः। विश्वऽवसुम्। गन्धर्वम्।
सचध्वे। ताभ्यः। वः। देवीः। नमः। इत्। कृणोमि ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अभ्रिये) अभ्र [मेघ] में [रहने वाली], (दिद्युत् = ०-ति) बिजुली में [वर्तमान] और (नक्षत्रिये) नक्षत्रों में [रहने वाली] (याः) जो तुम सब (विश्वावसुम्) सब प्रकार के धनों के वा सब निवासस्थानों लोकों] के

४—**अभ्रिये**—नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः (पा० ३। १। १३४) इति अभ्रगतौ-पचाद्यच्। अथवा। अपो बिभर्तीति। अप्+भृ-क। अभ्रम् = मेघः-(निघ० १। १०) **समुद्राभ्राद् घः** (पा० ४। ४। ११८) इति अभ्र-भवार्थे घप्रत्ययः। घस्य इय् आदेशः। मेघेषु भवे स्थाने मेघस्य मण्डले वर्त्तमानाः। **दिद्युत्। द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च** (वा० पा० ३।२।१७८) इति द्युत दीप्तौ-क्विप्। द्वित्वं च। **द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्** (पा० ७। ४। ६७) इत्यभ्यासस्य सम्प्रसारणम्। अथवा दो अवखण्डने-क्विप्। पृषोदरादिरूपम्। द्यति पदार्थान्। **सुपां सुलुक्०** (पा०७।१।३९) इति सप्तम्या : लुक्। द्योतमाने विद्युन्मण्डले। **नक्षत्रिये।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी (गन्धर्वम्) गन्धर्व [पृथिवी, सूर्य वा वेदवाणी के धारण करने वाले परमेश्वर] की (सचध्वे) सेवा करती हो। (देवीः=हे देव्यः !) हे देवियो ! [दिव्य अर्थात् अद्भुत गुण वालियो !] (ता) उन (वः) तुमको (नमः) नमस्कार (इत्) अवश्य (कृणोमि) मैं करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थः—यहां शक्तियों से शक्तिमान् परमेश्वर का ग्रहण है। संसार के प्रत्येक पदार्थ के अवलोकन से देखा जाता है कि यह अप्सरायें [परमेश्वर की अनन्त और अद्भुत शक्तियां] परमेश्वर के वशीभूत होकर सब सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त का कारण हैं। उन शक्तियों अर्थात् उनके स्वामी जगदीश्वर को बड़े छोटे प्राणी नम्रता से स्वीकार करते और उपकारों को विचार कर उपकारी बन कर आनन्द भोगते हैं ॥ ४ ॥

याः क्लन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमुहः ।
ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥ ५ ॥

याः । क्लन्दाः । तमिषीचयः । अक्षऽकामाः । मनःऽमुहः ।
ताभ्यः । गन्धर्वऽपत्नीभ्यः । अप्सराभ्यः । अकरम् । नमः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(याः) जो (क्लन्दाः) आवाहन करने हारी (तमिषीचयः) इच्छा को सींचने [पूरा करने] हारी, (अक्षकामाः) अवहारों में कामना करानेवाली, (मनोमुहः) मन को आश्चर्य में करने वाली हैं। (ताभ्यः) उन (गन्धर्वपत्नीभ्यः) गन्धर्व की

नक्षत्राद्घः (पा० ४ । ४ । १४१) इति नक्षत्र-घ प्रत्ययः। नक्षत्रेषुभवे लोके वर्त्तमानाः। **याः** । अप्सराः, यूयम् । **विश्वावसुम्** । **विश्वस्य वसुराटोः** (पा० ६ । ३ । १२७) इति पूर्वपदस्य दीर्घः। **बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम्** (पा० ६ । २ । १०६) इतिपूर्वपदस्य विश्वशब्दस्य अन्तोदात्तत्वम्। विश्वानि वसूनि यस्मिन् सः। सर्वधनसम्पन्नम् । यद्वा । सर्वे वसवो निवासा लोका यस्मिन् सः। सर्वाश्रयम् । **सचध्वे** । षच सेचने सेवने च, आत्मनेपदम् । सेवध्वे । **देवीः** । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०२) इति पूर्वसवर्णदीर्घः। देव्यो द्योतमानाः। **कृणोमि** । **धिन्विकृण्व्योर च** (पा० ३ । १ । ८०) इति कृवि हिंसाकरणयोः—उप्रत्ययः, अकारश्चान्तादेशः : करोमि । अन्यत् सुगमम् ॥

५—क्लन्दाः । क्लदि आह्वाने रोदने च-पचाद्यच् । टाप् । आवाहनशीलाः। **तमिषीचयः** । तमि-षिचयः। **सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४ । ११८) इति तमु इच्छायां खेदे च-इन् । **इगुपधात् कित्** (उ० ४ । १२०) इति षिच् सेचने-इन्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी [परमेश्वर की रक्षा में रहने वाली] (अप्सराभ्यः) अप्सराओं [प्राणियों में रहने वाली ईश्वर शक्तियों] को मैंने (नमः) नमस्कार (अकरम्) किया है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में भी अप्सराओं अर्थात् शक्तियों से उनके स्वामी परमेश्वर का ग्रहण है। वह परमेश्वर दुष्टों पर गरजता और शिष्टों का आवाहन करता, अनन्त बलवान्, उत्तम कर्मों में प्रीति कराने वाला और मनोहर स्वभाव है, सब जड़ और चेतन नमस्कार करके उस सर्वशक्तिमान् की आज्ञा मानते, और आनन्दित होते हैं ॥ ५ ॥

सूक्तम् ॥ ३ ॥

१—६ ॥ भेषजं देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

शारीरिकमानसिकरोगनाशोपदेशः—शारीरिक और मानसिक रोग की निवृत्ति के लिये उपदेश।

अदो यदवधावत्यवत्कमधि पर्वतात् ।
तत् ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि ॥ १ ॥

अदः । यत् । अवऽधावति । अवत्ऽकम् । अधि । पर्वतात् ।
तत् । ते । कृणोमि । भेषजम् । सुऽभेषजम् । यथा । असासि ॥१॥

भाषार्थः—(अदः) वह (यत्) जो सगति योग्य ब्रह्म (अवत्कम्) नित्य

किति ह्रस्वः । छान्दसो दीर्घः । तमिम् इच्छां सिञ्चन्ति तास्तमिसिचयः । इच्छापूरयित्र्यः । **अक्षकामाः** । अक्षू व्याप्तौ, संहतौ–पचाद्यच् । यद्वा । **अशेर्देवने** (उ० ३ । ६५) इति अशू व्याप्तौ–सप्रत्ययः । अक्षो व्यवहारः । यथा, अक्षदर्शकः, अक्षदृक् = व्यवहारनिर्णेता, न्यायकर्त्ता । काम्यतेऽसौ । कमु स्पृहायाम्–कर्मणि घञ् । अक्षेषु व्यवहारेषु सत्कर्मसु कामोऽभिलाषो याभ्यस्तास्तथाभूताः । व्यवहारोत्साहिन्यः । **मनोमुहः** । मनस् + मुह वैचित्ये–क्विप् । मनसः, चित्तस्य मोहयित्र्यः, आश्चर्ये विस्मये कर्त्र्यः । **गन्धर्वपत्नीभ्यः** । **विभाषा सपूर्वस्य** (पा० ४ । १ । ३४) इति गन्धर्व + पति–नकारङीपौ । गन्धर्वः पूर्वोक्तः परमात्मा पतिः, रक्षकः, स्वामी यासां ताभ्यः । गन्धर्वेण परमेश्वरेण रक्षिताभ्यः । **अप्सराभ्यः** । मन्त्र ३ । आकाशप्राणादिषु वर्त्तमानाभ्यः । **अकरम्** । डुकृञ् करणे–लुङ् । **कृमृदरुहिभ्यश्छन्दसि** (पा० ३ । १ । ५९) इति च्लेः अङ् आदेशः । **ऋदृशोऽङि गुणः** (पा० ७।४।१६) इति गुणः । अहं कृतवान् । नमः । सत्कारम् ॥

१—अदः । न दस्यते उत्क्षिप्यतेऽङ्गुलिर्यत्र इदन्तया । न + दसु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलने वाला जल प्रवाह [के समान] (पर्वतात् अधि) पर्वत के ऊपर से (अव-धावति) नीचे को दौड़ता आता है। [हे औषध !] (तत्) उस [ब्रह्म] को (ते) तेरे लिये (भेषजम्) औषध (कृणोमि) मैं बनाता हूं, (यथा) जिससे कि (सुभेषजम्) उत्तम औषध (ससि) तू हो जावे ॥ १ ॥

भावार्थः—हिम वाले पर्वतों से नदियाँ ग्रीष्म ऋतु में भी बहती रहती और अन्न आदि औषधों को हरा भरा करके अनेक विधि से जगत् का पोषण करती हैं, इसी प्रकार औषध का औषध, वह ब्रह्म सब के हृदय में व्यापक हो रहा है। सब मनुष्य ब्रह्मचर्य सेवन और सुविद्या ग्रहण से शारीरिक और मानसिक रोगों की निवृत्ति करके सदा उपकारी बनें और आनन्द भोगें ॥ २ ॥

आद्ङ्ग कुविद्ङ्ग शतं या भेषजानि ते ।
तेषामसि त्वमुत्तममनास्रावमरोगणम् ॥ २ ॥

आत् । अङ्ग । कुवित् । अङ्ग । शतम् । या । भेषजानि । ते । तेषाम् । असि । त्वम् । उत्ऽतमम् । अनास्रावम् । अरोगणम् ॥ २ ॥

उत्क्षेपे—क्विप्। अमुत्क्षेपणीयम्। पुरोवर्त्ति। विप्रकृष्टम्। **यत्। त्यजितनियजिभ्यो डित्** (उ० १। १३२) इति यज—अदिः, स च डित्। यजति सर्वैः पदार्थैः सह सङ्गतं भवतीति। यजनीयं संगन्तव्यम्। प्रसिद्धम्। ब्रह्मणो नाम इति दयानन्दः—उणादिकोषव्याख्यायाम्। **अवधावति। पाघ्राध्मास्थाम्ना०** (पा० ७। ३। ७८) इति सृधातोः धौ इत्यादेशः शीघ्रगमने। अवरुह्य शीघ्रं सरति गच्छति। **अवत्कम्।** अव—अत्कम्। **इण्भीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन्** (उ० ३। ४३) इति अव+अत सातत्यगमने—कम्। **शकन्ध्वादिषु पररूपं वक्तव्यम्** (वा० पा० ६। १। ९४) इति पररूपम्। अवाततं खन्यमानमधोगच्छति। जलप्रवाहः। अवतः कूपनाम—निघ० ३। २३। **पर्वतात्।** द्र० अ० १। १२। ३। शैलात्। **तत्। त्यजितनियजिभ्यो डित्** (उ० १। १३२) इति तनु उपकृतौ विस्तृतौ[1] च—अदिः, डित्। तनोति सर्वं, यद्वा, तन्यते सर्वत्र। ब्रह्मणो नामविशेषः। विस्तीर्णम्। ब्रह्म। **भेषजम्।** द्र० अ० १। ४। ४। औषधम्। **सुभेषजम्। सुः पूजायाम्** (पा० १। ४। ९४) उत्कृष्टमौषधम्। अतिशयितवीर्य-

---

१. दिवादि गण में 'तनु विस्तारे' तथा चुरादिगण में 'तनु श्रद्धोपकरणयोः' ऐसा पठित है। उन दोनों से ही यहां तात्पर्य है॥ सम्पा०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अङ्ग) हे ! (अङ्ग) हे [ब्रह्म !] (आत्) फिर (कुवित्) अनेक प्रकार से (या=यानि) जो (ते) तेरी [बनायी] (शतम्) सौ [असंख्य] (भेषजानि) भय निवर्त्तक औषधें हैं, (तेषाम्) उनमें से (त्वम्) तू आप (उत्तमम्) उत्तम गुण वाला, (अनास्रावम्) बड़े क्लेश का हटाने वाला और (अरोगम्) रोग दूर करने वाला (असि) है ॥ ३ ॥

भावार्थः—संसार की सब ओषधियों में क्लेशनाशक और रोगनिवर्त्तक शक्ति का देने वाला वही ओषधियों का ओषधि परब्रह्म है ॥ २ ॥

नीचैः खनन्त्यसुरा अरुस्राणमिदं महत् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥ ३ ॥

नीचैः । खनन्ति । असुराः । अरुःऽस्राणम् । इदम् । महत् । तत् ।
आऽस्रावस्य । भेषजम् । तत् । ऊँ इति । रोगम् । अनीनशत् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(असुराः) बुद्धिमान् पुरुष (इदम) इस (अरुस्राणम्) व्रण [स्फोर=फोड़े] को पका कर भर देने वाली, (महत्) उत्तम औषध को (नीचैः) नीचे नीचे (खनन्ति) खोदते जाते हैं। (तत्) वही विस्तृत ब्रह्म

युक्तम् । **यथा** । येन प्रकारेण । **अससि । बहुलं छन्दसि** (पा० २ । ४ । ७३) इति शपोऽलुक् । असि । भवेः ॥

२—**आत्** । अव्ययम् । पुनः । अनन्तरम् । **अङ्ग** । अव्ययम् । **निपातस्य च** (पा० ६ । ३ । १३६) इति सांहितिक उभयत्र दीर्घः । संबोधने हे । **कुवित्** । निपातोऽयम् । बहुनाम—निघ० ३ । १ । बहुधा बहुप्रकारेण । **शतम्** । दश दशत. परिमाणमस्येति । **षड्क्तिंविंशतित्रिंशच्च०** (पा० ५।१।५९) इति तः । दशानां शभावश्च निपात्यते । दशगुणिता दश सङ्ख्या । शतं दशदशतः, (निरु० ३ । १०) बहुनाम–निघ० ३ । १ । अपरिमितानि । असङ्ख्यातानि । **भेषजानि** । द्र० अ० १ । ४ । ४ । भिषज् अण् । यद्वा । भेष+जि–ड । औषधानि । **उत्तमम्** । द्र० अ० १ । ९ । २ । उत्—तमप् । उत्कृष्टतमम् । **अनास्रावम्** । द्र० अ० १ । २ । ४ । अन्+आङ्+स्रु+ण । क्लेशरहितम् । **अरोगणम्** । रुजो भङ्गे-भावे ल्युट्, छान्दसं कुत्वम् । अरोजनम् । रोगनिवर्त्तकम् ॥

३—**नीचैः** । **नौ दीर्घश्च** (उ० ५ । १३) इति नि+चिञ् चयने-डैसि, नेर्दीर्घत्वं[1] च । अधोऽधः । अन्तरन्तः । **खनन्ति** । खनु अवदारणे । अवदारयन्ति, उन्मूलयन्ति । अन्वेषणेन प्राप्नुवन्ति । **असुराः** । द्र० अ० १० । १ । १ । **असेरुरन्** (उ०

---

१. द्र. उ. ५ । १३ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आस्रावस्य) बड़े क्लेश की (भेषजम्) औषध है, (तत्) उसने (उ) ही (रोगम्) रोग को (अनीनशत्) नाश कर दिया है ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य बड़े बड़े परिश्रम और परीक्षा करके उत्तम औषधों को लाकर रोगों की निवृत्ति करके प्राणियों को स्वस्थ करते हैं, वैसे ही विज्ञानियों ने निर्णय किया है कि उस परमेश्वर ने आदि सृष्टि में ही मानसिक और शारीरिक रोगों की औषधि उत्पन्न कर दी है ॥ ३ ॥

टिप्पणी—सायणभाष्य में (अनीनशत्) के स्थान में [अशीशमत्] पाठ है ॥

उपजीका उद्भरन्ति समुद्रादधि भेषजम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत् ॥ ४ ॥

उपजीकाः । उत् । भरन्ति । समुद्रात् । अधि । भेषजम् । तत् । आऽस्रावस्य । भेषजम् । तत् । ऊँ इति । रोगम् । अशीशमत् ॥

भाषार्थः—(उपजीकाः) [परमेश्वर के] आश्रित पुरुष (समुद्रात् अधि) आकाश [समस्त जगत्] में से (भेषजम्) भयनिवारक ब्रह्म को, (उद्भरन्ति) ऊपर निकालते हैं। (तत्) वही [ब्रह्म] (आस्रावस्य) बड़े क्लेश का (भेषजम्)

---

१ । ४२) इति असु क्षेपणे, यद्वा, अस गतिदीप्त्यादानेषु-उरन् । यद्वा, असुः, प्राणः, रो मत्वर्थीयः । ज्ञानवन्तः । दीप्यमानाः । प्रज्ञावन्तः—निरु० १० । ३४ । प्राणवन्तः पुरुषाः । **अरुस्राणम्** । अरुः-स्राणम् । **अर्त्तिपॄवपियजि०** (उ० २ । ११७) इति ऋ गतौ, हिंसायां वा—उसि । इति अरुः, व्रणः । स्रै पाके—ल्युट् । अरुषो व्रणस्य पाककरम् । **महत्** । द्र० अ० १ । १० । ४ । बड़म् । विपुलम् । **आस्रावस्य** । द्र० अ० १ । २ । ४ । महाक्लेशस्य । **रोगम्** । **पदरुजविशस्पृशो घञ्** (पा० ३ । ३ । १६) इति रुजो भङ्गे—घञ् । व्याधिम् । उपतापम् । **अनीनशत्** । इति णश अदर्शने, नाशे च—ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् । नाशयति स्म ॥

४—उपजीकाः—कपिदूषिभ्यामीकन् (उ० ४ । १६) इति बाहुलकात्, उप + जीव प्राणधारणे-ईकन्, स च डित् । उपजीविनः । परमेश्वराश्रिताः । प्राणिनः । वल्मीकनिष्पादिकाः वम्रयः—इति सायणः । **उद्भरन्ति** । उत्-भृञ् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औषध है, (तत्) उसने (उ) ही (रोगम्) रोग को (अशीशमत्) शान्त कर दिया है ॥ ४ ॥

भावार्थः—परमेश्वर का सहारा रखने वाले पुरुष संसार के प्रत्येक पदार्थ में ईश्वर को पाते हैं। और उस आदिकारण की महिमा को साक्षात् करके अपने सब क्लेशों का नाश करके आनन्द भोगते हैं ॥ ४ ॥

अरुस्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥ ५ ॥

अरुःऽस्राणम् । इदम् । महत् । पृथिव्याः । अधि । उत्ऽभृतम् । तत् । आऽस्रावस्य । भेषजम् । तत् । ऊँ इति । रोगम् । अनीनशत् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (अरुस्राणम्) फोड़े को पका कर भरने वाला (महत्) उत्तम [औषध] (पृथिव्याः) पृथिवी से (अधि) ऊपर (उद्भृतम्) निकाल कर लाया गया है। (तत्) वही [ज्ञान] (आस्रावस्य) बड़े क्लेश का (भेषजम्) औषध है, (तत्) उसने (उ) ही (रोगम्) रोग को (अनीनशत्) नाश कर दिया है ॥ ५ ॥

भावार्थः—महाक्लेश नाशक ब्रह्म ज्ञान रूप औषध पृथिवी आदि लोकों के प्रत्येक पदार्थ में वर्त्तमान है, मनुष्य उसको प्रयत्न पूर्वक प्राप्त करे, और रोगों की निवृत्ति करके स्वस्थ चित्त होकर आनन्दित रहे ॥ ५ ॥

उद्धरन्ति । ऊर्ध्वं हरन्ति । **समुद्रात्** । द्र० अ० १ । ३ । ८ । अन्तरिक्षात् । सर्व-संसारात् । **भेषजम्** । भयनिवारकं परब्रह्म । उदकम्–निघ० १ । १२ । सुखम् निघ० ३ । ६ । **आस्रावस्य** । द्र० म० ४ । महाक्लेशस्य । **अशीशमत्** । शमु उपशमे, ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् । उपशाम्यति नाशयति स्म ॥

५—अरुस्राणम् । म० ३ । अरुषः पाचयितृ । **पृथिव्याः** । अ० १ । २ । १ विस्तीर्णाद् भूलोकात् । **उद्भृतम्** । उत्-भृञ्-क्त । उद्धृतम् । उन्मूलितम् । सर्वथा ज्ञानेन प्राप्तम् । अन्यद् व्याख्यातं म० ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शं नो भवन्त्वाप ओषधयः शिवाः । इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु रक्षस आराद् विसृष्टा इषवः पतन्तु रक्षसाम् ॥६॥

शम् । नः । भवन्तु । आपः । ओषधयः । शिवाः । इन्द्रस्य । वज्रः । अप । हन्तु । रक्षसः । आरात् । विऽसृष्टाः । इषवः । पतन्तु । रक्षसाम् ॥६॥

भाषार्थः—(आपः) जल और (ओषधयः) उष्णता धारण करने वाली वा ताप नाश करने वाली अन्नादि ओषधियें (नः) हमारे लिये (शम्) शान्ति कारक और (शिवाः) मंगल दायक (भवन्तु) होवें । (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य वाले पुरुष का (वज्रः) वज्र (रक्षसः) राक्षस का (अपहन्तु) हनन कर डाले (रक्षसाम्) राक्षसों के (विसृष्टाः) छोड़े हुये (इषवः) बाण (आरात्) दूर (पतन्तु) गिरें ॥ ६ ॥

भावार्थः—परमेश्वर के अनुग्रह से हम पुरुषार्थ करते रहें, जिससे जल, अन्न आदि सब पदार्थ शुद्ध रह कर प्रजा में आरोग्यता बढ़ावें, और जैसे राजा चोर, डाकू आदि दुष्टों को दण्ड देता है कि प्रजा गण कष्ट न पावें और सदा आनन्द भोगें, ऐसे ही हम अपने दोषों का नाश करके आनन्द भोगें ।

टिप्पणी—अजमेर के पुस्तक और सायणभाष्य की संहिता में 'अपः' पाठ है । और सायणभाष्य और पं० सेवकलाल मुद्रापित पुस्तक में 'आपः' पाठ है । हमने भी 'आपः' ही लिया है ॥

६----**शम्** । अ० १ । ३ । १ । शमनाय । शान्तिप्रदाः । **आपः** । द्र० अ० १ । ५ । ३ । जलानि । **ओषधयः** । द्र०अ० १ । २३ । १ । ओष+डुधाञ् धारणपोषणयोः-किः (पा० ३।३।९३) । अन्नादिबलप्रदपदार्थाः । **शिवाः** । अ० १। ६।४। **सर्वनिघृष्व०** । उ० १ । १५३ । इति शीङ् शयने=वन् । शीङो ह्रस्वत्वम् । शिवम्=सुखम्—निघ० ३ । ६ । ततो अर्श आद्यच् । सुखकारिण्यः । **इन्द्रस्य** । द्र० अ० १ । २ । ३ । परमैश्वर्यवतः पुरुषस्य । **वज्रः** । द्र० अ० १ । ७ । ७ । कुलिशः । कुठारः । **अपहन्तु** । अपहननं विनाशं करोतु । **रक्षसः** । **सर्वधातुभ्यो-ऽसुन्** । (उ० ४ । १८९) इति रक्ष पालने—अपादाने असुन् । रक्षो रक्षितव्यमस्मात्—निरु० ४ । १८ । कर्मणि षष्ठी । रक्षस्य । दुष्टस्य । **आरात्** । दूरदेशे । **विसृष्टाः** । वि+सृज त्यागे—क्त । त्यक्ताः, प्रेषिताः, प्रयुक्ताः । **इषवः** । अ० १ । १३ । ५ । शत्रुहिंसकाः बाणाः । **पतन्तु** । अधोगच्छन्तु । **रक्षसाम्** । दुराचारिणां पुरुषरागाणाम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥ ४ ॥

१—६ ॥ जङ्गिडो देवता । १—पूर्वार्धौ द्विपदा त्रिष्टुप् ११×२=२२, उत्तरार्धौ द्विपदाऽनुष्टुप् ८×२=१६, २—६ अनुष्टुप्छन्दः ॥

मनुष्यः परमेश्वरभक्त्याऽऽयुः वर्धयेत्-मनुष्य परमेश्वर की भक्ति से आयु बढ़ावें ।

दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव ।
मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं बिभृमो वयम् ॥१॥

दीर्घायुऽत्वाय । बृहते । रणाय । अरिष्यन्तः । दक्षमाणाः । सदा । एव । मणिम् । विस्कन्धऽदूषणम् । जङ्गिडम् । बिभृमः । वयम् ॥१॥

भाषार्थः—(दीर्घायुत्वाय) बड़ी आयु के लिये और (बृहते) बड़े (रणाय) रण में [जीत] वा रमण के लिये (अरिष्यन्तः) [किसी को] न सताते हुए और (सदा एव) सदा ही, (दक्षमाणाः) वृद्धि करते हुए (वयम्) हम लोग (विष्कन्धदूषणम्) विघ्न निवारक और (मणिम्) प्रशंसनीय (जङ्गिडम्) शरीर भक्षक रोग वा पाप के निगलने वाले [औषध वा परमेश्वर] को (बिभृमः) हम धारण करें ॥१॥

भावार्थः—जगत् में कीर्त्तिमान् होना ही आयु का बढ़ाना है । मनुष्यों को परमेश्वर के ज्ञान और पथ्य पदार्थों के सेवन से पुरुषार्थ पूर्वक पाप और

१—**दीर्घायुत्वाय** । **छन्दसीणः** (उ० १ । २) इति दीर्घः, इण गतौ-उण्, ततो भावे त्वप्रत्ययः । चिरकालजीवनाय । **रणाय** । रमणाय मकार-लोपे यद्वा, संग्रामाय । **अरिष्यन्तः** । रिष हिंसायाम् शतृ, नञ्समासः । अहिंसन्तः । **दक्षमाणाः** । दक्ष वृद्धिशैघ्र्ययोः—शानच् । वर्धमानाः । **मणिम्** । **सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४ । ११८) इति मण शब्दे—इन् । मण्यते स्तूयते स मणिः । बहुमूल्यः पाषाणो वा रत्नम् । प्रशस्तम् । **विष्कन्ध-दूषणम्** । वि+स्कन्दिर् शोषणे गत्यां —घञ्, धश्चान्तादेशः । दुष वैकृत्ये ण्यन्तात् करणे ल्युट् । **दोषो णौ** (पा० ६ । ४ । ९०) इति ऊत्वम् । विशेषेण शोषकस्य विघ्नस्य विकर्तारं निवारकम् । **जङ्गिडम्** । जमति भक्षयतीति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोग रूप विघ्नों को हटा कर सत्पुरुषों की वृद्धि में अपनी और संसार की उन्नति समझ कर सदा सुख भोगना चाहिये ॥ १ ॥

१—सायणभाष्य में (दक्षमाणाः) के स्थान में [रक्षमाणाः] पद है।

२—सायणाचार्य ने (जङ्गिड) वृक्ष विशेष वाराणसी में प्रसिद्ध बताया है ॥

जङ्गिडो जम्भाद्विशराद् विष्कन्धादभिशोचनात् ।
मणिः सहस्रवीर्यः परिणः पातु विश्वतः ॥ २ ॥

जङ्गिडः । जम्भात् । विऽशरात् । विऽस्कन्धात् । अभिऽशोचनात् ।
मणिः । सहस्रऽवीर्यः । परि । नः । पातु । विश्वतः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(सहस्रवीर्यः) सहस्रों सामर्थ्य वाला, (जङ्गिडः) शरीर भक्षक रोगों का निगलने वाला (मणिः) मणिरूप अति श्रेष्ठ औषध वा परमेश्वर (नः) हमको (जम्भात्) नाश से, (विशरात्) हिंसा से, (विष्कन्धात्) विघ्न से और (अभिशोचनात्) महा शोक से, (विश्वतः) सब प्रजा और (परि) सब ओर (पातु) बचावे ॥ २ ॥

अन्येष्वपि दृश्यते (पा० ३ । २ । १०१) इति जम भक्षे—ड । गिरतीति गिरः । **मेघर्तिभयेषु कृञः** (पा० ३ । २ । ४३) इति बाहुलकात्, गॄ निगरणे—खच् । **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्** (पा० ६ । ३ । ६७) इति अजन्तस्य मुम् । रकारस्य उत्वम् । आत्मभक्षकस्य रोगस्य पापस्य वा निगरणशीलं भक्षकम् औषधं परमात्मानं वा । **बिभृमः** । डुभृञ् धारणपोषणयोः—श्लौ लट् । धारयामः ॥

२----**जङ्गिडः** । म० १ । आत्मभक्षकस्य रोगस्य पापस्य वा भक्षको नाशकः । **जम्भात्** । जभि नष्टीकरणे, जृम्भे वा-पचाद्यच् । **रधिजभोरचि** (पा० ७ । १ । ६१) इति नुम् । नाशनात् । हानिसकाशात् क्रूरकर्मत्वात् । **विशरात्** । **ऋदोरप्** (पा ३ । ३ । ५७) इति वि+शॄ हिंसायाम्—अप् । विशरणात् । वधात् । मारणात् । **विष्कन्धात्** । म० १ । शोषकात् । विघ्नात् । **अभिशोचनात्** । अभि+शुच् शोके—ल्युट् । मनसः पीडायाः अतिशोकात् । **मणिः** । म० १ । प्रशंसनीयः । **सहस्रवीर्यः** । **तत्र साधुः** (पा० ४ । ४ । ९८) इति वीर—यत् । अथवा, भावे यत्प्रत्ययः । सहस्राणि वीर्याणि सामर्थ्यानि यस्मिन् सः । अपरि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य सर्व रक्षक और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर में श्रद्धालु होकर पथ्य पदार्थों का सेवन करता हुआ पुरुषार्थ करे कि आलस्य आदि दुर्व्यसन और हिंसक राक्षस आदि रोग न सतावें, किन्तु सुरक्षित होकर आनन्द प्राप्त करें ॥ २ ॥

अयं विष्कन्धं सहतेऽयं बाधते अत्रिणः ।
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः पात्वंहसः ॥ ३ ॥

अयम् । विऽस्कन्धम् । सहते । अयम् । बाधते । अत्रिणः ।
अयम् । नः । विश्वऽभेषजः । जङ्गिडः । पातु । अंहसः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (विश्वभेषजः) सर्वौषध (जङ्गिडः) पापों वा रोगों का भक्षक [परमेश्वर वा औषध] (विष्कन्ध) विघ्न को (सहते) दबाता है, (अयम्) यही (अत्रिणः) खाउओं[1] वा रोगों को (बाधते) रोकता है (अयम्) यही (नः) हमको (अंहसः) पाप से (पातु) बचावे ॥ ३ ॥

भावार्थः—उत्साही विचारवान् पुरुष परमेश्वर में विश्वास और पथ्य पदार्थों का सेवन करके अपनी दूरदर्शिता से मानसिक और शारीरिक बाधाओं को हटाकर अटल सुख भोगते हैं ॥ ३ ॥

मितपराक्रमः । **परि** । परितः सर्वतः । **नः** । अस्मान् । **उपसर्गाद् बहुलम्** । (पा० ८ । ४ । २८) इति नसो णत्वम् । **विश्वतः** । **पञ्चम्यास्तसिल्** (पा० ५ । ३ । ७) इति विश्व-तसिल् **लिति** (पा० ६ । १ । १९३) इति प्रत्ययात् पूर्वस्य उदात्तत्वम् । विश्वस्मात् सर्वस्मात् खेदात् ॥

३—**विष्कन्धम्** । म० १ । विघ्नम् । **सहते** । षह अभिभवे । अभिभवति । **बाधते** । बाधृ विलोडने । निवारयति नाशयति । **अत्रिणः** । द्र० अ० १ । ७ । ३ । अद भक्षणे-त्रिनि[2] । अत्तॄन्, भक्षकान् पुरुषान् रोगान् वा । **विश्वभेषजः** । सर्वेषां रोगादीनां जेता निवर्तकः । सर्वौषधः । **अंहसः** । **अमेर्हुक् च** (उ० ४ । २१३) इति अम रोगे, गतौ च-असुन् हुक् च । रोगात् । पापात् ॥

---

१. खाउओं अर्थात् खा जाने वाले ॥ सम्पा० ॥
२. अदेस्त्रिनिश्च (उ० ४ । ६८) इस सूत्र से 'त्रिन्' हुआ है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा ।
विष्कन्धं सर्वा रक्षाँसि व्यायामे सहामहे ॥ ४ ॥

देवैः । दत्तेन । मणिना । जङ्गिडेन । मयःऽभुवा ।
विऽस्कन्धम् । सर्वा । रक्षांसि । विऽआयामे । सहामहै ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(देवैः) विद्वानों के (दत्तेन) दिये हुये [उपदेश किये हुये] (मणिना) मणि [अति श्रेष्ठ] (मयोभुवा) आनन्द के देने हारे (जङ्गिडेन) रोगों के भक्षक [परमेश्वर वा औषध] द्वारा (विष्कन्धम्) विघ्न और (सर्वा = सर्वाणि) सब (रक्षांसि) राक्षसों को (व्यायामे) संग्राम में (सहामहे) हम दबावें ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्वानों के सत्संग से दुःख नाशक परमेश्वर के उपकारों पर दृष्टि करके पुरुषार्थ के साथ पथ्य द्रव्यों का सेवन करके विघ्नकारी दुष्ट जीवों पापों और रोगों को हटाकर सदा आनन्द में रहें ॥ ४ ॥

शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धाद्भि रक्षताम् ।
अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः ॥ ५ ॥

शणः । च । मा । जङ्गिडः । च । विऽस्कन्धात् । अभि । रक्षताम् ।
अरण्यात् । अन्यः । आऽभृतः । कृष्याः । अन्यः । रसेभ्यः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(च) निश्चय करके (शणः) आत्मदान वा उद्योग (च) और (जङ्गिडः) रोग भक्षक परमेश्वर वा औषध दोनों, (मा) मुझको (विष्क-

---

४----**देवैः** । विद्वद्भिः । **दत्तेन** । दीयते इति । दा–क्त । कृतदानेन । उपदिष्टेन । **मयोभुवा** । द्र० अ० १ । ५ । १ । सुखस्य भावयित्रा, उत्पादकेन । **व्यायामे** । वि+आङ्+यम परिवेषणे–घञ् । मल्लक्रीडाप्रदेशे । संग्रामे । **सहामहे** । अभिभवामः । अन्यद् व्याख्यातम्, म० १ ॥

५----**शणः** । शण दाने, गतौ–पचाद्यच् । दानम् । आत्मसमर्पणम् । गतिः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्धात्) विघ्न से (अभि) सर्वथा (रक्षताम्) बचावें । (अन्यः) एक (अरण्यात्) तप के साधन वा विद्याभ्यास से और (अन्यः) दूसरा (कृष्याः) कर्षण अर्थात् खोजने से (रसेभ्यः) रसों अर्थात् पराक्रमों वा आनन्दों के लिये (आभृतः) लाया जाता है ॥ ५ ॥

भावार्थ :—आत्मदानी, उद्योगी, पथसेवी और परमेश्वर के विश्वासी पुरुष अपनी और सबकी रक्षा कर सकते हैं । वही योगी जन तपश्चर्या, विद्याभ्यास, और खोज करने से आत्मदान [ध्यानशक्ति] और परमेश्वर में श्रद्धा प्राप्त करके अनेक सामर्थ्य और आनन्द का अनुभव करते हैं ॥ ५ ॥

कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः ।
अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्राण आयूंषि तारिषत् ॥ ६ ॥

कृत्याऽदूषिः । अयम् । मणिः । अथो इति । अरातिऽदूषिः । अथो इति । सहस्वान् । जङ्गिडः । प्र । नः । आयूंषि । तारिषत् ॥ ६ ॥

भाषार्थ :—(अयम्) यह (मणिः) प्रशंसनीय पदार्थ (कृत्यादूषिः) पीड़ा देने हारी विरुद्ध क्रियाओं में दोष लगाने वाला, (अथो) और भी (अरातिदूषिः)

उद्योगः । **जङ्गिडः** म० १ । पापभक्षकः परमेश्वरः । औषधम् । **अभि** । अभितः, सर्वतः । **रक्षताम्** । उभौ पालयताम् । **अरण्यात्** । **अर्त्तेर्निच्च** । (उ० ३ । १०२) इति ऋ गतौ-अन्यप्रत्ययः । ऋच्छन्ति गच्छन्ति तपस्विनो यत्र । यद्वा **अघ्न्यादयश्च** (उ० ४ । ११२) इति नञ्+रम-यत् । अरमणं शरीरश्रमो यत्र । तपः साधनात् विद्याभ्यासात् **अन्यः** । **माछाषसिभ्यो यः** (उ० ४ । १०९) इति अन[1] जीवने-यः एकतरः । **आभृतः** । अ० १ । ६ । ४ । हस्य भः । आहृतः । आनीतः । **कृष्याः** । **इगुपधात् कित्** (उ० ४ । १२०) इति कृष वि खने-इन्, स च कित् । कर्षणात् । अनुसन्धानात् । अन्वेषणात् । **रसेभ्यः** । **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** (पा० ३ । ३ । ११८) इति रस आस्वादे, स्नेहे-घ । रस्यते अनुभूयत इति रसः । रसानां वीर्याणां प्राप्तये । अथवा । आनन्दानामनुभवाय ॥

६----**कृत्यादूषिः** । **विभाषा कृवृषोः** (पा ३ । १ । १२०) इति कृञ्

---

१. बाहुलक का आश्रयण करके यहाँ भी 'अन' धातु से य प्रत्यय जानना चाहिये ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदानशीलों [कंजूसों] में दोष लगाने वाला है। (अथो) और भी (सहस्वान्) वही महाबली (जङ्गिडः) रोग भक्षक परमेश्वर वा औषध (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्र तारिषत्) बढ़ती वाला करे ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो कुचाली मनुष्य विरुद्ध मार्ग में चलते और सत्य पुरुषार्थों में आत्मदान अर्थात् ध्यान नहीं करते, वे ईश्वरीय नियम से महा दुःख उठाते हैं। सत्य पराक्रमी और पथ्य सेवी पुरुष उस महाबली परमेश्वर के गुणों के अनुभव से अपने जीवन को बढ़ाते हैं, अर्थात् संसार में अनेक प्रकार से उन्नति करके आनन्द भोगते और अपना जन्म सफल करते हैं ॥ ६ ॥

सूक्तम् ॥ ५ ॥

१—७ ॥ इन्द्रो देवता। १—३ अनुष्टुप्, ४—७ त्रिष्टुप्छन्दः ॥

मनुष्यःसदैवोन्नतिप्रयत्नं कुर्यात्—मनुष्य सदैव उन्नति का उपाय करता रहे ॥

इन्द्र जुषस्व प्रवहा याहि शूर हरिभ्याम् ।
पिबा सुतस्य मतेरिह मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥ १ ॥

इन्द्र । जुषस्व । प्र । वह । आ । याहि । शूर । हरिऽभ्याम् ।
पिब । सुतस्य । मतेः । इह । मधोः । चकानः । चारुः । मदाय ॥१॥

भाषार्थ :—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवाले राजन् ! (जुषस्व) तू प्रसन्न हो,

---

हिंसायाम्—क्यप् तुक् च, टाप् च **अच इः** (उ० ४ । १३९) दुष वैकृत्ये-ण्यन्तात् इप्रत्ययः। कृत्यायाः। हिंसाया दूषको निवारकः। **अथो। ओत्** (पा० १ । १ । १५) इति प्रगृह्यत्वात् सन्धिनिषेधः। अपि च। **अरातिदूषिः**। अरातिः। अ० १ । २ । २ । न+रा दाने-क्तिच्। आरातयोऽदानकर्माणो वादानप्रज्ञा वा—निरु० ३ । ११ । दूषिः। इति गतम्। अदातॄणां कृपणानां शत्रूणां दूषको नाशकः। **आयूंषि**। अ० १ । ३० । ३ । जीवनानि। **प्र+तारिषत्**। प्र पूर्वस्तरतिर्वृद्धचर्थः। लेट्। **सिब् बहुलं लेटि** (पा० ३ । १ । ३४ ।) इति सिप्। सिपो णिद्वद्भावाद् वृद्धिः। **लेटोऽडाटौ** (पा० ३ । ४ । ९४) आडागमः। **इतश्च लोपः परस्मैपदेषु** (पा० ३ । ४ । ९७) इकारलोपः। प्रवर्धयेत् ॥

१----**इन्द्र**। अ० १ । २ । ३ । इदि परमैश्वर्ये-रन् हे परमैश्वर्यवन् राजन् ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्र वह) आगे बढ़, (शूर) हे शूर ! (हरिभ्याम्) हरणशील दिन और रात अथवा प्राण और अपान के हित के लिये (आ याहि) तू आ। (चारुः) मनोहर स्वभाव वाला (मदाय) हर्ष के लिये (चकानः) तृप्त होता हुआ तू, (इह) यहाँ पर (मतेः) बुद्धिमान् पुरुष के (सुतस्य) निचोड़ के (मधोः) मधुर रस का (पिब) पानकर ॥१॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि सदा प्रसन्न रहकर उन्नति करे और करावे, और सब के (हरिभ्याम्) दिन और रात अर्थात् समय को यद्वा प्राण और अपान वायु अर्थात् जीवन को परोपकार में लगावे और बुद्धिमानों के ज्ञान के सारांश [निचोड़] के रस का ग्रहण करके आनन्द भोगे ॥१॥

म० १—३, सामवेद उत्तरार्चिक प्रपाठक ३, अर्धप्रपाठक १ तृच २२ में कुछ भेद से हैं ॥

इन्द्र जठरं नव्यो न पृणस्व मधोर्दिवो न ।
अस्य सुतस्य स्व१र्णोप त्वा मदाः सुवाचो अगुः ॥२॥

इन्द्र । जठरं । नव्यः । न । पृणस्व । मधोः । दिवः । न । अस्य । सुतस्य । स्वः । न । उप । त्वा । मदाः । सुऽवाचः । अगुः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (नव्यः) नवीन [बहुत तृषित] के (न)

मनुष्य । **जुषस्व** । जुषी प्रीतिसेवनयोः—लोट् । प्रीयस्व । हृष्टो भव । **प्रवह** । प्रगच्छ । **शूर** । **शुसिचिमीनां दीर्घश्च** (उ० २ । २५) इति शु गतौ-क्रन् । शवति वीर्यं प्राप्नोतीति । यद्वा, शूर विक्रमे उद्यमे-अच् । हे वीर । **हरिभ्याम्** । **हृषिषिरुहिवृति०** (उ० । ४ : ११६) इति हृञ् हरणे-इन् । हरणं प्रापणं स्वीकारः स्तेयं नाशनं च । हरतीति हरिः सूर्यः चन्द्रः वायुः, इति कोषे । द्विवचनत्वात् सूर्यचन्द्राभ्याम् तयोरुपलक्षितदिनरात्रिहिताय । अथवा, वायुभ्याम् प्राणापानाभ्यां तयोरुपलक्षितजीवनहिताय । हरिभ्यां हरणसाधनाभ्यामहोरात्राभ्यां कृष्णशुक्लपक्षाभ्याम्—इति श्रीमद्दयानन्दभाष्ये, ऋ० १ । ३५ । ३ । **सुतस्य** । षुञ् अभिषवे, यद्वा षु प्रसवैश्वर्ययोः—क्त । अभिषवस्य, सारस्य ऐश्वर्यस्य । **मतेः** । **क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्** (पा० ३।३।१७४) इति मन् बोधे-क्तिच् । मतयः मेधाविनामसु—निघ० ३ । १५ । मेधाविनः पुरुषस्य । **मधोः** । मधुररसस्य । **चकानः** । चक तृप्तौ—शानच् । तृप्तिकामः । **चारुः** । **दृसनिजनिचरिचटिरहिभ्यो जुण्** (उ० १ । ३) इति चर गतौ—जुण् । शोभनस्वभावः, मनोज्ञः ॥

२----**जठरम्** । जायते गर्भो मलं वा अस्मिन्निति जठरम् । **जनेररष्ठ च** (उ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान, (दिवः) स्वर्ग के (न) सदृश (मधोः) मधुर रस से (जठरम्) अपने उदर को (पृणस्व) तृप्त कर। (अस्य) इस (सुतस्य) निचोड़ [तत्त्व] के (सुवाचः) सुन्दर वाणियों से युक्त (मदाः) आनन्द (स्वर्) स्वर्ग ये (न) जैसे [वर्त्तमान] (त्वा) तुझको (उप अगुः) उपस्थित हुये हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः----राजा विद्वानों के साथ संभाषण करके बड़ी प्रीति से नीति का सारांश ग्रहण करके आनन्द प्राप्त करे ॥ २ ॥

इस मन्त्र में तीनों 'न' सदृशता वाची हैं और मन्त्र ३ में दोनों 'न' हैं।

इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न।
बिभेद वलं भृगुर्न ससहे शत्रून् मदे सोमस्य ॥ ३ ॥

इन्द्रः। तुराषाट्। मित्रः। वृत्रम्। यः। जघान। यतीः। न।
बिभेद। वलम्। भृगुः। न। ससहे। शत्रून्। मदे। सोमस्य ॥ ३ ॥

भाषार्थः----(यतीः) यति [यत्नशील] पुरुष के (न) समान (यः)

---

५ । ३८) इति जन जननप्रादुर्भावयोः[२]—अर, नस्य ठः। अथवा, जटति एकत्रीभवति अन्नादिकमत्र। जट संहतौ—अर, टस्य ठः। उदरम्। **नव्यः**। नूयते स्तूयत इति। **अचो यत्** (पा० ३ । १ । ९७) इति णु स्तुतौ—यत्। यद्वा, नव एव। स्वार्थे यत्। नूतनः। स्तुत्यः। **न**। उपमार्थे। अग्निर्न ये भ्राजसा, अग्निरिव (निरु० ३ । १५) इव यथा। **पृणस्व**। पृण तृप्तीकरणे। तर्पय। पूरय। **मधोः**। तृतीयार्थे षष्ठी। मधुररसेन। **दिवः**। स्वर्गस्य। अत्यानन्दस्य। **सुतस्य**। म० १। तत्त्वस्य। **स्वर्**। अव्ययं व्याहृतिविशेषश्च। **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते**। (पा० ३ । २ । ७५) इति सु+ऋ गतौ—विच्। यद्वा। स्वृ शब्दोपतापयोः—विच्। स्वरादित्यो भवति सु अरणः सु ईरणः स्वृतो रसान् स्वृतो भासं ज्योतिषा स्वृतो भासेति वा—(निरु० २ । १४) स्वर्गे आनन्दविशेषे वर्त्तमानम्। **मदाः**। मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु—अच्। आमोदाः। हर्षाः। **सुवाचः**। शोभना वाचा येषां ते। शोभनस्तुतियुक्ताः। **अगुः**। इण् गतौ—लुङ्। **इणो गा लुङि** (पा० २ । ४ । ४५) गतवन्तः। प्राप्तवन्तः ॥

३----तुराषात्। तुतोर्त्ति वेगेन गच्छतीति तुरः, वेगवान्। तुर वेगे—क।

---

१. औन्ध से छपे अथर्ववेद की मूल प्रति में 'वल' एवं 'बल' दो पाठान्तर दिखाये हैं। 'बल' पाठ मानकर ही यहाँ व्याकरणप्रक्रिया लिखी है ॥ सम्पा० ॥

२. पृ० १८२ की टिप्पणी सं० २ देखें ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस (तुराषाट्) शीघ्र जीतने वाले, (मित्रः) सब के प्रेरक (इन्द्रः) प्रतापी राजा ने (वृत्रम्) अन्धकार वा डाकू को (जघान) नाश किया था। (भृगुः) ज्ञान में परिपक्व ऋषि के (न) सदृश उस ने (वलम्) हिंसक दैत्य को (बिभेद) तोड़ फोड़ डाला और (सोमस्य) अपने ऐश्वर्य [ठाट] के (मदे) मद में (शत्रून्) शत्रुओं को (ससहे) हराया था ॥ ३ ॥

भावार्थ :—महा प्रतापी राजा बड़े बड़े यत्न वाले और बुद्धिनिपुण वीरों का अनुकरण करके विरोधी शत्रुओं और अज्ञान का नाश करके प्रजा को आनन्द देते और आप आनन्द पाते हैं ॥ ३ ॥

यतीः पद के स्थान में सामवेद में उपरोक्त स्थल पर 'यतिः' पद है ॥

अथवा, घञर्थे भावे कः। वेगः। तुरं वेगवन्तं शत्रुं वेगेन सहते अभिभवतीति तुराषाट्। तुर+षह अभिभवे, णिच्—क्विप्। **सहेः साडः सः** (पा० ८।३।५६) इति षत्वम्। **अन्येषामपि दृश्यते** (पा० ६ । ३ । १३७) इति पूर्वपदस्य दीर्घः। शीघ्रं शत्रूणामभिभविता। **मित्रः** । अ० १ । ३ । २ । स्नेहवान्। अन्धकारस्य क्षेपको नाशकः। **वृत्रम्** । अ० १ । २१ । १ । वृतु वर्त्तने—रक्। यद्वा, वृञ्—क्त (उ० ४ । १६४) तत् को वृत्रो मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः—निरु० २ । १६ । त्वाष्ट्रः=त्वष्टुः सूर्याज्जातः। अन्धकारम्। शत्रुम्। **जघान** । हतवान्। **यतीः** । **अवितॄस्तृतन्त्रिभ्य ईः** (उ० ३ । १५८) इति यती प्रयत्ने—ईप्रत्ययः। प्रयत्नवान्। तापसः। यतिः। **बिभेद** । भिन्नवान्। **वलम्** । **वल दाने बधे जीवने च--अच्** । हिंसकं दैत्यम्। **भृगुः** । तपसा भृज्यते। **प्रथिम्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च** (उ० १ । २८) इति भ्रस्ज पाके—कु न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वं च। परिपक्वः। ज्ञानपरिपक्वः ऋषिः। मुनिः। **ससहे** । षह अभिभवे—लिट्। अभिभूतवान् जितवान् **शत्रून्** । **रुशातिभ्यां क्रुन्** (उ० ४ । १०३) इति शातिः क्रुन्। शति सौत्रो धातुर्हिंसार्थः—इति सायणः, ऋ० १ । ५ । ४ इति शत शाते=पतने पातने—क्रुन्। नित्त्वादाद्युदात्तः। शातकान्, निपातकान्। रिपून्। **सोमस्य** । **अर्त्तिस्तुसुहुसृधृ०** (उ० १ । १४०) इति प्रसवैश्वर्ययोः—मन्। सवति ऐश्वर्यहेतुर्भवतीति सोमः। ऐश्वर्यस्य ॥

---

१. धातुपाठ में 'बल दाने बधे जीवने च' ऐसा कहीं नहीं पढ़ा है। धातुओं के अर्थों में धातुपाठनिर्दिष्ट अर्थों के अनुसार जो इस ग्रन्थ में प्रायेण विभेद सा दीखता है, उससे पता चलता है कि भाष्यकार ने धातुओं के अर्थ केवल धातुपाठ के अनुसार ही नहीं किन्तु विभिन्न कोशों एवं आर्षग्रन्थों के आधार पर भी दिये हैं। प्रकृत में बल का अर्थ आप्टे कोष के आधार पर है। निरुक्त में 'बल' (निरु० ६ । २) शब्द वृञ् वरणे से बनाया है, जिसका अर्थ है मेघ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्वा विशन्तु सुतासं इन्द्र पृणस्व कुक्षी विड्ढि शक्र धियेह्या नः।
श्रुधी हवं गिरो मे जुषस्वेन्द्र स्वयुग्भिर्मत्स्वेह महे रणाय ॥४॥

आ । त्वा । विशन्तु । सुतासः । इन्द्र । पृणस्व । कुक्षी इति । विड्ढि । शक्र । धिया । इहि । आ । नः । श्रुधि । हवम् । गिरः । मे । जुषस्व । आ । इन्द्र । स्वयुक्ऽभिः । मत्स्व । इह । महे । रणाय ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (सुतासः) यह निचोड़े हुये रस (त्वा) तुझमें (आ) यथाविधि (विशन्तु) प्रवेश करें, (कुक्षी) दोनों कुक्षियों को (पृणस्व) तू भर, और (विड्ढि = विध) शासन कर, (शक) हे शक्तिमान् (धिया) [अपनी अनुग्रह] बुद्धि से (नः) हमारे पास (आ+इहि = एहि) आ। (हवम्) पुकार (श्रुधि) सुन, (इन्द्र) हे राजन् ! (मे) मेरी (गिरः) वाणियों को (जुषस्व) स्वीकार कर, और (स्वयुग्भिः) अपनी युक्तियों से (इह) यहां पर (महे) बड़े (रणाय) रण [जीतने] के लिये (आ) यथा-नियम (मत्स्व) हर्षित हो ॥ ४ ॥

४—**आ + विशन्तु** । प्रविशन्तु । **सुतासः** । षुञ् अभिषवे—क्त । **आज्जसेरसुक्** (पा० ७ । १ । ५०) अभिषुताः सोमाः । **पृणस्व** । म० २ । तर्पय । **कुक्षी** । **प्लुषिकुषिशुषिभ्यः क्सिः** (उ० ३ । १५५) इति कुष निष्कर्षे—क्सिः । दक्षिणोत्तरकुक्षिद्वयम् । आत्मानमित्यर्थः **विड्ढि** । विध विधाने = शासने तुदादिः । लोटि छान्दसः शविकरणस्य लुक् । हेर्ध्यादेशे ढत्वष्टुत्वजश्त्वानि । त्वं विध विधानं शासनं कुरु । **शक्र** । **स्फायितञ्चिवञ्चिशक्लि०** (उ० २ । १३) इति शक्लृ शक्तौ—रक् । शक्नोतीति । हे शक्तिमन् । हे समर्थ । **धिया** । ध्यै चिन्तने—क्विप् । सम्प्रसारणं च । धीः, कर्मनाम निघ० २ । १ । प्रज्ञानाम—निघ० ३ । ९ । प्रज्ञया । बुद्ध्या । **श्रुधि** । श्रु श्रवणे । विकरणस्य लुक् । **श्रुशृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि** (पा० ६ । ४ । १०२) इतिहेर्धिरादेशः । **अन्येषामपि दृश्यते** (पा० ६ । ३ । १३७) इति सांहितिको दीर्घः । शृणु । **हवम्** । अ० १ । १५ । २ । ह्वेञ्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा अनेक श्रेष्ठ विद्याओं के रस से अपने आत्मा को सन्तुष्ट करे, और न्याय पूर्वक प्रजा की रक्षा करता हुआ शत्रुओं को जीतकर आनन्द भोगे ॥ ४ ॥

सायणभाष्य में 'विड्ढि' के स्थान में ('वृड्ढि' वर्धय) है ॥

इन्द्रस्य नु प्रा वोचं वीर्याणि यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ ५ ॥

इन्द्रस्य । नु । प्र । वोचम् । वीर्याणि । यानि । चकार । प्रथमानि । वज्री । अहन् । अहिम् । अनु । अपः । ततर्द । प्र । वक्षणाः । अभिनत् । पर्वतानाम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य वाले पुरुष के (वीर्याणि) पराक्रमों को (नु) शीघ्र (प्र) अच्छे प्रकार (वोचम्) मैं कहूं (यानि) जिन (प्रथमानि) प्रसिद्ध, अथवा प्रथम श्रेणी के अति श्रेष्ठ कर्मों को (वज्री) उस वज्रधारी पुरुष ने (चकार) किया था, [अर्थात्] (अहिम्) सर्प के समान [हनन करने वाले], अथवा,

---

आह्वाने-अप् । आह्वानम्, आवाहनम् । **गिरः** । गृ शब्दे-क्विप् । गृणाति = अर्चति निघ० ३ । १४ । **वाचः** । वाक्यानि । **जुषस्व** । सेवस्व, स्वीकुरु । **स्वयुग्भिः** । स्व + युजिर् समाधौ, यद्वा, युज संयमने-क्विप् । युज्यते समाधत्ते, यद्वा, योजयति नियमयतीति युक् । स्वयुक्तिभिः । आत्मीयैः समाधिमद्भिः संयोगवद्भिर्वा मित्रैः । **मत्स्व** । मदी हर्षे । छान्दसम् आत्मनेपदम् । **हृष्टो भव । महे** । मह पूजायां-क्विप् । महते । **रणाय** । रमणाय । आनन्दाय । यद्वा । युद्धजयाय ॥

५—इन्द्रस्य । ऐश्वर्यवतः पुरुषस्य । **नु** । क्षिप्रम्-निघ० २ । १५ । **प्रा** । **निपातस्य च** (पा० ६ । ३ । १३६) इति दीर्घः । ऋग्वेदे[1] तु (प्र) इति पाठः । प्रकर्षेण । **वोचम्** । वच्, यद्वा ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि । आशीर्लिङि छान्दसं रूपम् । अहम् उच्यासम् । **वीर्याणि** । अ० १ । ७ । ५ । वीरकर्माणि । पराक्रमान् । **प्रथमानि** । द्र० अ० १ । १२ । १ । प्रथितानि, प्रख्यातानि, सुप्रसिद्धानि, अन्यैः पूर्वकृतानि । **वज्री** । **ऋज्रेन्द्राग्रवज्र०** (उ० २ । २८) इति वज गतौ-रन् प्रत्ययान्तो निपात्यते । **अत इनिठनौ** (पा० ५ । २ । ११५) इति वज्र-इनि । वज्रविशिष्टः । कुलिशयुक्तः ।

१, ऋ० १ । ३२ । १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादल के समान [प्रकाश रोकने वाले] हिंसक जन को (अहन्) उसने मार डाला, (अनु) अनुक्रम से (अपः) [उस दुष्ट के] कर्म का (ततर्द) अपमान किया, और (पर्वतानाम्) मेघों के समान [अन्धकार से छाये हुए] अथवा पहाड़ों के समान [दृढ़ स्वभाव वाले] दुराचारियों की, अथवा पहाड़ों में गुप्त (वक्षणाः) रुष्ट वा क्रुद्ध सेनाओं को (प्र) सर्वथा (अभिनत्) छिन्न भिन्न कर दिया ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्व कालीन (इन्द्र) प्रतापी और (वज्री) तेजस्वी नीति कुशल पुरुषों का यश कीर्तन इतिहास द्वारा करें, और उनका अनुकरण करके कुरीतियों के त्याग और सुरीतियों के प्रचार से आनन्द भोगें ॥ ५ ॥

मन्त्र ५ एवं ७ क्रमशः ऋग्वेद मं० १ सू० ३२ म० १–३ में आये हैं ॥

यहाँ 'प्रा' के स्थान पर ऋग्वेद में 'प्र' है ।

ईसाइयों की नवीन धर्म पुस्तक "New Testament" मत्ती पर्व १२ वाक्य ३४ में "सांप"—बुरे पुरुष के लिये आया है । "हे साँपों के वंश ! तुम बुरे हो के अच्छी बातें क्योंकर कह सकते हो क्योंकि जो मन में भरा है उसी को मुंह से बोलता है" ॥

दण्डवान् । **अहन्** । हन हिंसागत्योः—लङ् । हतवान् । **अहिम्** । **आङि-श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च** (उ० ४ । १३८) इति आङ् + हन हिंसागत्योः—इण्, स च डित् । आङो ह्रस्वत्वम् । धार्मिकाणाम् आहन्तारम् । सर्पम् । सर्पवत् क्लेश-प्रदम् । अहिः, मेघनाम—निघ० १ । १० । मेघवत् प्रकाशनिरोधकं पुरुषम् । **अनु** । अनुक्रमेण । **अपः** । **आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा** (उ० ४ । २०८) इति आप्ल् व्याप्तौ—असुन् । कर्मनाम—निघ० २ । १ । तस्य अहेर्दुष्टकर्म, इत्यर्थः । **ततर्द** । उतृदिर् हिंसानादरयोः—लिट् । जिहिंस । अनादृतवान् । तिरस्कृतवान् । **वक्षणाः** । **क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च** (पा० ३ । २ । १५१) इति वक्ष रोषे-युच् । चित्स्वरं बाधित्वा प्रत्ययस्वरः । रुष्टाः क्रुद्धाः सेनाः । **प्र अभिनत्** । भिदिर् विदारणे—लङ् । भिन्नवान् । विदारितवान् । **पर्वतानाम्** । **भृमृदृशियजिपर्वि०** (उ० । ३ । ११०) इति पर्व पूरणे—अतच् । पर्वति पूरयतीति पर्वतः । यद्वा, **स्नामदिपद्यर्त्तिपृशकिभ्यो वनिप्** (उ० ४ । ११३) इति पॄ पालन-पूरणयोः—वनिप् । पृणन्ति पालयन्ति अवयविनमिति पर्वाणि ।[1] **तन् पर्वमरु-**

---

१. वार्त्तिकस्थ 'तत्' के नित् पाठ को नागेश ने अपपाठ माना है । (द्र. बृहच्छ. पृ. १४८५) वस्तुतः 'तप्' पाठ ही यहाँ उचित है । तप् करने पर "नव्विषयस्यानि०" (फिट् १ । २६) से आद्युदात्त पर्वत शब्द हो ही जायेगा ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ ६ ॥

अहन् । अहिम् । पर्वते । शिश्रियाणम् । त्वष्टा । अस्मै । वज्रम् । स्वर्यम् । ततक्ष । वाश्राःइव । धेनवः । स्यन्दमानाः । अञ्जः । समुद्रम् । अव । जग्मुः । आपः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(त्वष्टा) सूक्ष्म करने वाले [सूक्ष्मदर्शी] पुरुष ने (पर्वते) बादल [के समान प्रकाश रोकने वाले जन समूह] में, अथवा पहाड़ पर (शिश्रियाणम्) ठहरे हुये (अहिम्) सर्परूप वा मेघरूप [हिंसक वा प्रकाश रोकने वाले] को (अहन्) वध किया, (अस्मै) इस [प्रयोजन] के लिये (स्वर्यम्) ताप वा पीड़ा देने वाला (वज्रम्) वज्र (ततक्ष) उसने तीक्ष्ण किया। (वाश्राः) रंभाती हुयी (धेनवः इव) गौओं के समान, (स्यन्दमानाः) वेग से बहते हुये (अञ्जः) प्रकट (आपः) जल [जलरूप प्रजा गण] (समुद्रम्) समुद्र में [राजा के पास] (अव) उतर कर (जग्मुः) पहुंच गये ॥ ६ ॥

दृश्यां वक्तव्यः (वा० पा० ५ । २ । १२२) इति पर्व–तन् मत्वर्थे। पर्वतः, मेघनाम निघ० १ । १० । मेघवद् अन्धकारस्य वर्धकानाम् । यद्वा । शैलवद् दृढ़स्वभावान् । यद्वा । शैलानां मध्ये स्थितानाम् ।

६—**अहन्** । म० ५ । हतवान् । **अहिम्** । म० ५ । सर्वतो हननशीलम्, सर्पवत् हिंसकम्, मेघवत् प्रकाशनिरोधक पुरुषम् । **पर्वते** । म० ५ । जातावेकवचनम् । पर्वतेषु । मेघसमानान्धकारवर्धकेषु पुरुषेषु । यद्वा, शैलप्रदेशे स्थितम् । **शिश्रियाणम्** । श्रिञ् सेवायां–लिटः कानच् । चित्त्वाद् अन्तोदात्तः । आश्रितम् । **त्वष्टा** । त्वष्टा तूर्णमश्नुत इति नैरुक्तास्त्विषेर्वास्याद् दीप्तिकर्मणस्त्वक्षतेर्वा स्याद् करोतिकर्मणः–निरु० ८ । १४ । **नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृपोतृ०** (उ० २ । ९५) इति त्वक्षू तनूकरणे–तृन् । नित्त्वाद् आद्युदात्तः । व्यवहाराणां तनूकर्त्ता, सूक्ष्मदर्शी, विश्वकर्मा, इन्द्रः पुरुषः । **अस्मै** । अस्मै प्रयोजनाय । अहेर्हननायेत्यर्थः । **वज्रम्** । म० ५ । कुलिशम् । **स्वर्यम्** । **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** (पा० ३ । ३ । ११८) इति, स्वृ शब्दोपतापयोः—घ । यद्वा **नन्दिग्रहिपचादि०** (पा० ३ । १ । १३४) इति स्वर आक्षेपे–अच् । ततः । **तत्र साधुः** (पा० ४ । ४ । ९८) इति यत् । स्वरे उपतापे पीडने यद्वा, शत्रूणाम् आक्षेपे । तिरस्करणे साधुं योग्यम् । **ततक्ष** । तक्षू तनूकरणे–लिट् । तनूकृतवान् । तीक्ष्णं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—पूर्वज विवेकी राजाओं ने दण्ड व्यवस्था स्थापन करके अपने प्रकट और गुप्त शत्रुओं को मारा, तब प्रजा गण प्रसन्न होकर उस हितकारी राजा को अभिनन्दन देने गये, जैसे रंभाती हुयी गौयें बछड़ों के पास, अथवा वृष्टि के जल एकत्र होकर समुद्र में दौड़ कर जाते हैं। इसी प्रकार सब राजा और प्रजा गण परस्पर रहकर आनन्द मनाते रहें ॥ ६ ॥

मनु महाराज ने भी कहा है—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥७।१८॥

दण्ड ही सब प्रजा पर शासन रखता, दण्ड ही सब ओर से रक्षा करता, दण्ड ही सोते हुओं में जागता है, विद्वान् लोग दण्ड को धर्म जानते हैं ॥

वृषायमाणो अवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥७॥

वृषऽयमानः । अवृणीत । सोमम् । त्रिऽकद्रुकेषु । अपिबत् । सुतस्य । आ । सायकम् । मघऽवा । अदत्त । वज्रम् । अहन् । एनम् । प्रथमऽजाम् । अहीनाम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(वृषायमाणः) ऐश्वर्यवाले के समान आचरण करते हुये पुरुष

चकार। **वाश्राः** । **स्फायितञ्जिवञ्चिशकि०** (उ० २ । १३) इति वाशृ शब्दे–रक् । शब्दायमानाः । वत्सान् प्रति हंभारवयुक्ताः । **धेनवः** । **धेट इच्च** (उ० ३ । ३४) इति धेट् पाने–नु । नवप्रसूता गावः । **स्यन्दमानाः** । स्यन्दू प्रस्रवणे–लटः शानच् । प्रस्रवन्त्यः प्रवहन्त्यः । **अञ्जः** । अञ्जू व्यक्तिगति-म्रक्षणेषु–क्विप् । व्यक्ताः । गमनशीलाः । **समुद्रम्** । द्र० अ० १ । १३ । ३ । इति सम्+उन्दी क्लेदने–रक् । जलाधारम् । सागरम् । अन्तरिक्षम् । **अव** । नीचैः । अधस्तात् । अनायासेन । **जग्मुः** । गम्लृ–लिट् । प्रापुः । **आपः** । द्र० अ० १ । ५ । १ । जलानि ॥

७—वृषायमाणः । **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** (पा० ३ । १ । १३५) इति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने (सुतस्य) उत्पन्न संसार के (त्रिकद्रुकेषु) तीन आवाहनों [उत्पत्ति, स्थिति और विनाश अथवा, शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के विधानों] के निमित्तों में (सोमम्) ऐश्वर्य वा अमृत रस [कीर्त्ति] को (अवृणीत) अङ्गीकार किया और (अपिबत्) पान किया [आत्मा में दृढ़ किया]। (मघवा) उस पूजनीय पुरुष ने (सायकम्) काटने वाले बाण वा खड्ग और (वज्रम्) वज्र हथियार को (आ अदत्त) लिया और (अहीनाम्) बड़े घातकों [प्रकाश नाशक] मेघ वा सर्प रूप असुरों के बीच (प्रथमजाम्) प्रधानता से प्रसिद्ध अर्थात् अग्रगामी (एनम्) इस [समीपस्थ अर्थात् आत्मा में स्थित दुष्ट] को (अहन्) मार डाला ॥

भावार्थः—इस सूक्त के ५–७ तीन मन्त्रों में (इन्द्र) का (अहि) को मार कर उन्नति करने का वर्णन है और मन्त्र ७ में (त्रिकद्रुकेषु) पद तीन आवाहनों का द्योतक है। इसका प्रयोजन यह है कि जैसे तपस्वी, धैर्यवान्, शूर वीर पुरुषों ने जितेन्द्रिय वशिष्ठ होकर अपने आत्मिक, कायिक और सामाजिक शत्रु कुक्रोध आदि को मारा, उन्होंने ही संसार की वृद्धि, पालन और नाश के कारण को खोजा, और तीन प्रकार की आत्मिक, शारीरिक और

वृषु सेचनप्रजननैश्वर्येषु-कः। **कर्तुः क्यङ् सलोपश्च** (पा० ३ । १ । ११) इति आचारे क्यङ्। **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** (पा० ७ । ४ । २५) इति दीर्घः। ततः शानच्। वृष इव ऐश्वर्यवानिवाचरन् पुरुषः। **अवृणीत**। वृञ् संभक्तौ लुङ्। वृतवान्, स्वीकृतवान्। **सोमम्**। अ० १। ६ । २ । षु प्रसवैश्वर्ययोः–मन्। ऐश्वर्यम्। अमृतम्। कीर्त्तिम्। **त्रिकद्रुकेषु**। **रुशातिभ्यां क्रुन्** (उ० ४। १०३) इति त्रि+कदि आह्वाने–क्रुन्। समासान्तः कप् च। त्रयाणां संसारोत्पत्ति-स्थितिविनाशानाम्, अथवा, शारीरिकात्मिकसामाजिकवृद्धीणां कद्रुकेषु आह्वानेषु विधानेषु निमित्तेषु। **अपिबत्**। पीतवान्। अनुभूतवान्। **सुतस्य**। षु प्रसवैश्वर्ययोः–क्त। उत्पन्नस्य संसारस्य। **सायकम्**। स्यति नाशयतीति सायकः। **ण्वुल्तृचौ** (पा० ३ । १ । १३३) इति षो अन्तकर्मणि–ण्वुल्, युक् आगमः। शत्रूणां घातकं बाणं खड्गं वा। **मघवा**। मह्यते पूज्यतेऽसौ। **इवन्मक्षन्पूषन्०** (उ० १ । १५६) इति मह पूजायाम्–कनिन्। निपातनात् हस्य घः, अवुक् आगमश्च। पूज्यः पुरुषः। **आ-अदत्त**। लङि-रूपम्। **आङो दोऽनास्यविहरणे** (पा० १ । ३ । २०) इत्यात्मनेपदम्। अगृह्णात्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक उन्नति करके अमर अर्थात् महाकीर्त्तिमान् हुये, इसी प्रकार सब स्त्री पुरुष जितेन्द्रिय होकर संसार में उन्नति करके कीर्त्ति पाकर अमर हों और आनन्द भोगें ॥

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः

सूक्तम् ६ ॥

१—५ ॥ अग्निर्देवता ॥ १—४, ५ परार्धत्रिष्टुप्, ५ पूर्वार्धोऽनुष्टुप् ॥

राजधर्मेण मनुष्यः प्रतापी तेजस्वी च भूयात्—राजनीति से मनुष्य प्रतापी और तेजस्वी होवे ॥

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१॥

समाः । त्वा । अग्ने । ऋतवः । वर्धयन्तु । सम्ऽवत्सराः । ऋषयः । यानि । सत्या । सम् । दिव्येन । दीदिहि । रोचनेन । विश्वाः । आ । भाहि । प्रऽदिशः । चतस्रः ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् ! (समाः) अनुकूल (ऋतवः) ऋतुयें (संवत्सराः) वर्ष, (ऋषयः) ऋषि लोग और (यानि) जो (सत्या = सत्यानि तानि) सत्य कर्म हैं [वे सब] (त्वा) तुझ को (वर्धयन्तु) बढ़ावें । (दिव्येन) अपनी दिव्य वा मनोहर (रोचनेन) झलक

स्वीकृतवान् । **एनम्** । समीपवर्त्तिनम् आत्मनि स्थितम् । **प्रथमजाम्** । अ० २ । १ । ४ । जन—विट्, आत्वं च । प्रथमेन प्रधानतया जातं प्रसिद्धम् । **अहीनाम्** । म० ५ । आहन्तॄणाम् असुराणां मध्ये । अन्यद् गतमस्मिन्नेव सूक्ते ॥

१—समाः । षम वैक्लव्ये—पचाद्यच् । अविषमाः । साधवः । अनुकूलाः । **अग्ने !** हे ज्ञानिन् । अग्निवत्तेजस्विन् । कार्येषु व्यापनशीलो वा । **ऋतवः** । **अर्त्तेश्च तुः** (उ० १ । ७२) इति ऋ गतौ—तुः किच्च । वसन्तादिकालाः । **वर्धयन्तु** । समर्धयन्तु । **संवत्सराः** । सम्यग्वसन्ति भूतानि यत्र । **संपूर्वाच्चित्** (उ० ३ । ७२) इति सम्+वस निवासे—सरन् । चित्त्वादन्तोदात्तः । द्वादशमा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (सम्) भले प्रकार (दीदिहि) प्रकाशमान हो, और (विश्वाः) सब (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) महादिशाओं को (आभाहि) प्रकाशमान कर ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्य बड़े प्रयत्न से अपने समय को यथावत् उपयोग से अनुकूल बनावें, ऋषि आप्त पुरुषों से मिल कर उत्तम शिक्षा प्राप्त करें, और सत्यसंकल्पी, सत्यवादी और सत्यकर्मी सदा रहें। इस प्रकार संसार में उन्नति करें और कीर्त्तिमान् होकर प्रसन्नचित्त रहें ॥ १ ॥

१ से ५ तक के मन्त्र यजु० अ० २७ मन्त्र १, ३ ५, ६ में आये हैं। और वहाँ इनके ऋषि अग्नि माने हैं ॥

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेममुच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥२॥

सम् । च । इध्यस्व । अग्ने । प्र । च । वर्धय । इमम् । उत् । च । तिष्ठ । महते । सौभगाय । मा । ते । रिषन् । उपऽसत्तारः । अग्ने । ब्रह्माणः । ते । यशसः । सन्तु । मा । अन्ये ॥ २ ॥

भाषार्थः—(च) और (अग्ने) हे अग्निवत् तेजस्वी विद्वान्! (सम्) भले

सात्मकाः कालाः। वर्षाः। **ऋषयः। इगुपधात् कित्** (उ० ४। १२०) इति ऋषी गतौ दर्शने[1] च–इन् किच्च। ऋषति प्राप्नोति सर्वान् मन्त्रान् ज्ञानेन पश्यति संसारं परमात्मानं वा स ऋषिः। साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः (निरु० १। २०) ऋषिर्दर्शनात्–(निरु० २। ११) साक्षात्कृतधर्माणः। आप्ताः। सन्मार्गदर्शकाः। **सत्या**। शेर्लोपः। सत्यानि। सत्यकर्माणि। **दिव्येन**। द्र० अ० २। १। २। **छन्दसि च**। (पा० ५। १। ६७) इति दिव् यप्रत्ययः। मनोज्ञेन। **दीदिहि**। **बहुलं छन्दसि** (पा० २।४।७६) दिवु दीप्तौ–शपः श्लुः। **तुजादीनां दीर्घो०** (पा० ६। १। ७) इत्यभ्यासस्य दीर्घः। दीव्य। दीप्यस्व। **रोचनेन**। रुच दीप्तौ भावे ल्युट्। दीप्त्या। प्रकाशेन। **भाहि**। भा दीप्तौ अन्तर्भावितण्यर्थः। भापय। दीपय। **प्रदिशः**। प्रकृष्टाः प्राच्याद्या महादिशाः ॥

२–इध्यस्व। इन्धी दीप्तौ कर्मकर्तरि यकि। **अनिदिताम्०** (पा० ६। ४। २४)

---

१. धातुपाठ में 'ऋषी दर्शने' धातु नहीं है। भाष्यकर्त्ता के इस अर्थ का आधार 'ऋषिर्दर्शनात्' (निरु० २। ११) है। द्र० टिप्पणी पृ० २०६ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार (इध्यस्व) प्रकाशमान हो, (च) और (इमम्) [इस समाज] को (प्र+वर्धय) समृद्ध कर, (च) और (महते) बहुत (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (उत्+तिष्ठ) उठकर खड़ा हो। (अग्ने) हे विद्वान् (ते) तेरे (उपसत्तारः) पास बैठने हारे [उपासक] (मा रिषन्) कभी दुःख न पावें, (ते) तेरे [समीपवर्त्ती] (ब्रह्माणः) वेद जानने वाले ब्राह्मण (यशसः=यशसाः) यशस्वी (सन्तु) होवें, और (अन्ये) दूसरे (मा=मा सन्तु) न होवें ॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि ब्रह्मचर्य से आत्मरक्षा, प्रजारक्षा, शिल्पविद्या, युद्धविद्या आदि सामान्य और विशेष विद्याओं में निपुण होकर अपने सभासदों को निपुण करे, और विद्वानों का सत्कार तथा अविद्वानों का तिरस्कार करता हुआ सदा आनन्दयुक्त रहे ॥ २ ॥

यजुर्वेद में (वर्धय, इमम्) के स्थान में [बोधय एनम्] और (ते, रिषन्, उपसत्तारः) के स्थान में [च, रिषत उपसत्ता] पाठ है ॥

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः ।
सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥

त्वाम् । अग्ने । वृणते । ब्राह्मणाः । इमे । शिवः । अग्ने । सम्ऽवरणे । भव । नः । सपत्नऽहा । अग्ने । अभिमातिऽजित् । भव । स्वे । गये । जागृहि । अप्रऽयुच्छन् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्निवत् तेजस्वी राजन्! (इमे) ये (ब्राह्मणाः) वेदवेत्ता

इति नलोपः । इन्त्स्व । दीप्यस्व । **वर्धय** । समर्धय । **इमम्** । समीपस्थं जनम् । **उत्-तिष्ठ** । उत्साहवान् सन्नद्धो भव । **महते** । मह वृद्धौ, दीप्तौ-अति[1] । विपुलाय । **सौभगाय** । भगः=धनम्-निघ० २ । १० । सु+भग-भावे अण् । सौभगत्वाय । उत्तमैश्वर्याय । **मा रिषन्** । रिष हिंसायाम् । कर्मण्यर्थे । मा दुखिता भवन्तु । **उपसत्तारः** । **ण्वुल्तृचौ** (पा० ३ । १ । १३३) इति उप+षदॢ विशरणगत्यवसादनेषु-तृच् । उपसदनशीलाः, उपासकाः । सेवकाः **ब्रह्माणः** । **बृंहेर्नोऽच्च** (उ० ४ । १४६) इति बृंहि वृद्धौ-मनिन् । नस्य अकारः । वेदवेत्तारः । ब्राह्मणाः । **यशसः** । **अर्शआदिभ्योऽच्** (पा० ५ । २ । १२७) इति यशस्-अच् मत्वर्थे । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) इत्येकवचनं बहुवचने यशसाः । यशस्विनः ।

३—वृणते । वृञ् संभक्तौ । संभजन्ते । स्वीकुर्वन्ति । **ब्राह्मणाः** ।

---

१. वर्त्तमाने पृषद्० (उ० २ । ८४) से अति प्रत्यय हुआ है । सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् लोग (त्वा) तुझ को (वृणते) चुनते हैं, (अग्ने) हे तेजस्वी राजन्। (नः) हमारे (संवरणे) चुनाव में (शिवः) मंगलकारी (भव) हो। (अग्ने) हे तेजस्वी राजन् ! (सपत्नहा) वैरियों का नाश करने वाला और (अभिमाति-जित्) अभिमानियों का जीतने वाला (भव) हो, और (स्वे) अपने (गये) सन्तान पर 'वा धन पर' वा घर अर्थात् अधिकार में (अप्रयुच्छन्) चूक न करता हुआ, (जागृहि) जागता रह ॥ ३ ॥

भावार्थः---वेदवेत्ता चतुर सभासद् ऐसे पुरुषार्थी विद्वान् को अपना राजा वा प्रधान बनावें कि जो सब दोषों और दुष्टों को मिटाकर अपने अधिकार को सावधान होकर चलावे, जिसमें सब राजा और प्रजा आनन्द युक्त रहें ॥ ३ ॥

यजुर्वेद में (अग्ने अभिमातिजित् भव) के स्थान में [नः अभिमातिजित् च] पाठ है ॥ ३ ॥

क्षत्रेणाग्ने स्वेन सं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व ।
सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥४॥

क्षत्रेण । अग्ने । स्वेन । सम् । रभस्व । मित्रेण । अग्ने । मित्रऽधाः । यतस्व । सऽजातानाम् । मध्यमे ऽस्थाः । राज्ञाम् । अग्ने । विऽहव्यः । दीदिहि । इह ॥ ४ ॥

भाषार्थः----(अग्ने) हे तेजस्वी राजन् (स्वेन) अपने (क्षत्रेण) क्षत्रिय

ब्रह्म वेदः परमेश्वरो वा। ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः। **तदधीते तद्वेद** (पा० ४। २। ५९) इति ब्रह्म-अण्। वेदविदः, ब्रह्मज्ञानिनः। **शिवः। सर्वनिघृष्वरिष्वलष्व-शिव०** (उ० १। १५३) इति शीङ् शयने, अथवा शिञ् छेदने-वन्। निपातनात् साधुः। शेरते शुभगुणा यत्र, यद्वा, शिनोति छिनत्ति दुःखानि यः। मङ्गलकारी। **संवरणे।** सहवरणे। सम्यक् स्वीकरणे। **भव।** भव। **द्व्यचोऽतस्तिङः** (पा० ६। ३। १३५) इति दीर्घः। **सपत्नहा।** अ० १। २९। ५। शत्रुहन्ता। **अभि-मातिजित्।** अभि+मा माने कर्त्तरि क्तिच्+जि क्विप् तुक्। अभिमानिनां जेता। **गये। अघ्न्यादयश्च** (उ० ४। ११२) इति गमॢ गतौ गाङ् गतौ वा गै शब्दे-यक्। गच्छति पितृवंश गीयते वा। गयः=अपत्यम्—निघ० २। २। धनम्-निघ० २। १०। गृहम्-निघ० ३। ४। अपत्ये। धने। गृहे, पदे, अधिकारे। **जागृहि।** प्रबुद्धो भव। **अप्रयुच्छन्।** युच्छ प्रमादे--शतृ। अप्रमाद्यन्। सावधानो भवन्॥

४-क्षत्रेण। गुधृवीपचिवचियमिसदिक्षदिभ्यःस्त्रः (उ० ४। १६७) इति क्षद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म वा धन के साथ (संरभस्व) उत्साह कर, (अग्ने) हे तेजस्वी राजन्! (मित्रेण) मित्र वर्ग के साथ (मित्रधाः) मित्रों का पुष्ट करने वाला होकर (यतस्व) प्रयत्न कर। और (अग्ने) हे तेजस्वी राजन्! (सजातानाम्) तुल्य जन्म वालों के बीच (मध्यमेष्ठाः) पंचों में बैठने वाला, और (राज्ञाम्) क्षत्रियों के बीच में (विहव्यः) विशेष करके आवाहन योग्य होकर (इह) यहां पर (दीदिहि) प्रकाशमान हो ॥ ४ ॥

भावार्थः—नीति कुशल राजा धर्म कार्यों में स्फूर्ति रखे, और हितकारियों के साथ हित करे और सदैव न्याययुक्त व्यवहार रखे, जिससे सब छोटे और बड़ों में प्रेम के साथ उसकी कीर्ति बढ़े ॥ ४ ॥

यजुर्वेद अध्याय २७ म० ५ में ऐसा पाठ है—

क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सꣳरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व ।
सजातानां मध्यमस्था ऽएधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥ यजु० २७।५॥

(अग्ने) हे अग्नि के तुल्य तेजस्विन् विद्वन्! (क्षत्रेण) राज्य वा धन के साथ (स्वायुः=सु-आयुः) सुन्दर जीवन (सम् रभस्व) अच्छे प्रकार आरम्भ कर। (अग्ने) हे तेजस्विन्! (मित्रेण) मित्र वर्ग के साथ (मित्रधेये) मित्रों के धारण करने में (यतस्व) यत्न कर। (सजातानाम्) समान अवस्था वालों में (मध्यमस्थाः) मध्यस्थ (एधि) हो, अग्ने) हे न्याय प्रकाशक! (राज्ञाम्) राजाओं के बीच (विहव्यः+सन्) विशेषकर बुलाने योग्य होकर (इह) यहां पर (दीदिहि) प्रकाशित हो ॥

गतिहिंसनयोः, रक्षणे च-त्रप्रत्ययः। बलेन, क्षत्रियत्वेन, धनेन-निघ० २। १०। **अग्ने**। तेजस्विन् विद्वन्। **सम्-रभस्व**। रभ राभस्ये=उत्सुकीभावे। संरम्भम् उत्साहं कुरु। **मित्रेण**। सुहृद्गणेन। **मित्रधाः**। मित्र+धाञ्-विच्, मित्राणां पोषकः सन्। **यतस्व**। यती प्रयत्ने। प्रयत्नं कुरु। **सजातानाम्**। समानजन्मनाम्। तुल्यावस्थानाम्। **मध्यमेष्ठाः**। मध्ये भवो मध्यमः। **मध्यान्मः**(पा०४। ३।८) इति मध्य-म। ष्ठा गतिनिवृत्तौ-विच्, यद्वा क्विप्। **तत्पुरुषे कृति बहुलम्** (पा०६। ३। १४) इत्यलुक्। **सुषामादिषु च** (पा० ८। ३। ९८) इति षत्वम्। मध्यभवेषु न्यायकारिषु प्रधानेषु स्थितः। **राज्ञाम्**। ईश्वराणां क्षत्रियाणां मध्ये। **विहव्यः**। **ह्वः सम्प्रसारणं च न्यभ्युपविषु** (पा० ३। ३। ७२) इति ह्वेञ् आह्वाने अप् संप्रसारणं च। ततः। **भवे छन्दसि** (पा० ४। ४। ११०) इति यत् विविधमाह्वातव्यः। **दीदिहि**। म० १। दीप्यस्व। **इह**। अत्र ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति निहो अति सृधोऽत्यचित्तीरति द्विषः ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५॥

अति । निहः । अति । सृधः । अति । अचित्तीः । अति । द्विषः । विश्वा । हि । अग्ने । दुःऽइता । तर । त्वम् । अथ । अस्मभ्यम् । सहऽवीरम् । रयिम् । दाः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे तेजस्वी राजन् ! [(अति) अत्यन्त (निहः) शत्रु-नाशक शूर होकर । अथवा] (निहः) नीच गति वालों को (अति = अतीत्व) लांघकर, (सृधः) हिंसकों को (अति) लांघकर, (अचित्तीः) पापबुद्धि प्रजाओं को (अति) लांघ कर, और (द्विषः) द्वेष करने वालों का (अति) तिरस्कार करके, (त्वम्) तू (हि) ही (विश्वा = विश्वानि) सब (दुरिता = ०--तानि) संकटों को (तर) पारकर, (अथ) और (अस्मभ्यम्) हमें (सहवीरम्) वीर पुरुषों के सहित (रयिम) धन (दाः) दे ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजा सावधानी से प्रजा के सब क्लेशों को हरे, और ऐसा प्रयत्न करे कि प्रजा के सब पुरुष उत्साही, शूर, वीर और धनाढ्य हों ॥ ५ ॥

इस मन्त्र का पाठ यजुर्वेद २७ । ६ । में ऐसा है ।

अति निहो अतिस्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथास्मभ्यꣳसहवीराꣳरयिं दाः । यजु० २७।६ ॥

(अग्ने) हे तेजस्विन् राजन् ! (अति निहः) अत्यन्त शूर होकर (स्रिधः) दुष्टों को (अति) हटाकर (अचित्तिम्) अज्ञान को (अति) हटाकर, (अरातिम्)

५—**अति** । अतिशयेन । **निहः** । निहन्तीति निहः । नि+हन—ड । शत्रुहन्ता । शूरः सन् । अग्नेर्विशेषणम् । अथवा । **अति** । अतीत्य । अतिक्रम्य **निहः** । नि+ओहाङ् गतौ-क्विप् । **आतो धातोः** (पा० ६ । ४ । १४०) इति शसि आकारलोपः । निकृष्टगतीन् दुष्टान् । **सृधः** । सृधु[1] स्रध वा शोषणे कुत्सितकर्मणि वा-क्विप् । छान्दसो धातुः । देहशोषकान् । कुत्सिताचारान् । **अचित्तीः** । अ+चित्त संचेतने-क्तिन् । अशोभनबुद्धीः । शत्रुसेनाः ।

---

१. यह धातु धातुपाठ में नहीं है । इसका अर्थ भी भाष्यकार ने द० भा० के आधार पर ही लिखा है, ऐसा प्रतीत होता है । (द्र० यजु० द० भा० २७ । ६) । सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंजूसपन को (अति) हटाकर (विश्वा दुरितानि) सब विघ्नों को (सहस्व) दबा दे, (अथ) और (अस्मभ्यम्) हमें (सहवीराम्) वीरों से युक्त सेना और (रयिम्) धन (दाः) दे ॥

१—(सृधः) के स्थान पर सायण भाष्य में (स्रधः) पद है ॥

सूक्तम् ७॥

१-५॥ ईश्वरो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी ।
आपो मलमिव प्राणैक्षीत् सर्वान् मच्छपथाँ अधि ॥१॥

अघऽद्विष्टा । देवऽजाता । वीरुत् । शपथऽयोपनी । आपः ।
मलम्ऽइव । प्र । अनैक्षीत् । सर्वान् । मत् । शपथान् । अधि ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अघद्विष्टा) पाप में द्वेष [अप्रीति] करने वाली (देवजाता) विद्वानों में प्रसिद्ध (वीरुत्) ओषधि [ओषधि के समान फैली हुयी ईश्वर शक्ति] (शपथयोपनी) शाप [क्रोध वचन को] हटाने वाली है।

अज्ञानानि । **द्विषः** । द्विष–क्विप् । अप्रीतिकरान् । द्वेष्टॄन् । **विश्वा** । विश्वानि सर्वाणि । **दुरिता** । दुर् दुष्टमितं गमनमनेन । दुर्+इण् गतौ–भावे क्त । पापानि । संकटानि । **तर** । तॄ तरणे, अभिभवे । अभिभव । **सहवीरम्** । **तेन सहेति तुल्ययोगे** (पा० २ । २ । २८) इति तुल्यक्रियायोगे बहुव्रीहिः । **वोपसर्जनस्य** (पा० ६ । ३ । ८२) इति सहस्य सभावो विकल्पत्वात् न प्रवर्त्तते । वीरैः सहितम् । **रयिम्** । द्र० अ० १ । १५ । २ । रीङ् गतौ–इप्रत्ययः । धनम्–नि० । २ । १० । **दाः** । डुदाञ् विधिलिङि छान्दसं रूपम् । त्वं दद्याः ॥

१—**अघद्विष्टा** । अघ+द्विष अप्रीतौ–क्त । अघं पापं द्विष्टं तिरस्कृतं यया सा । पापद्वेषिणी **देवजाता** । देवेषु विद्वत्सु प्रसिद्धा **वीरुत्** । द्र०अ० १ । ३२ । १ । वीरुध ओषधयो भवन्ति विरोहणात् (निरु० ६।३) विरोहणशीला । ओषधिः । लता । **शपथयोपनी** । **शीङ्शपिरुगमि०** (उ० । ३ । ११ः) इति शप आक्रोशे–अथ । युप विमोहने–करणे ल्युट् । शापस्य क्रोधवचनस्य फलस्य विमोहनी निवारयित्री । **आपः** । जलानि । **मलम्** । मृज्यते शुध्यते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने (मत् अधि) मुझ से (सर्वान्) सब (शपथान्) शापों [कुवचनों] को (प्र+अनैक्षीत्) धो डाला है, (इव) जैसे (आपः) जल (मलम्) मल को ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे उत्तम ओषधि से शरीर के रोग मिट जाते, और जल से मलिन वस्त्र आदि शुद्ध होते हैं, वैसे ही पापी कुक्रोधी मनुष्य भी ब्रह्मज्ञान द्वारा पापों से छूट कर शुद्धात्मा हो जाते और ईश्वर के उपकारों को विचार कर उपकारी बनते और सदा आनन्द भोगते हैं ॥ १ ॥

यश्च सापत्नः शपथो जाम्याः शपथश्च यः ।
ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात् सर्वं तन्नो अधस्पदम् ॥ २ ॥

यः । च । सापत्नः । शपथः । जाम्याः । शपथः । च । यः । ब्रह्मा । यत् । मन्युतः । शपात् । सर्वम् । तत् । नः । अधःऽपदम् ॥२॥

भाषार्थः—(च) और (यः) जो (सापत्नः) वैरियों का किया हुआ (शपथः) शाप [क्रोधवचन], (च) और (यः) जो (जाम्याः) कुल स्त्री का (शपथः) शाप है, और (ब्रह्मा) वेदवेत्ता ब्राह्मण (मन्युतः) क्रोध से

यत् । **मृजेष्टिलोपश्च** (उ० १ । ११०) इति मृजूष् शुद्धौ–अलच् टिलोपश्च । ङीप् । किट्टम् । स्वेदपङ्कादिकम् । पापम् । **प्र+अनैक्षीत्** । णिजिर् शौचपोषणयोः—छान्दसे लुङि रूपम् । प्रकर्षेण अक्षालीत् ।[1] **मत्** । मत्तः ॥

२—**सापत्नः** । **धापृवस्यज्यतिभ्यो नः** (उ० ३ । ६) इति सह+पत गतौ, ऐश्वर्ये च–न प्रत्ययः, सहस्य सः । ततः सम्बन्धे–अण् । सपत्नसम्बन्धी । शात्रवः । **शपथः** । म० १ । आक्रोशः । क्रोधवचनम् । **जाम्याः** । **नियो[3] मिः** (उ० ४ । ४३) इति या गतौ–मिप्रत्ययः, यकारस्य जकारः । याति कार्याणि सा जामिः स्वसा कुलस्त्री वा । अथवा । **वसिवपियजि०** (उ० ४ । १२५) इति जमु भक्षणे गतौ च–इञ्, अथवा जन–इञ् । जामिरन्येऽस्यां जनयन्ति जामपत्यं जमतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः (निरु० ३ । ६) जाम्यतिरेकनाम बालिशस्य वा । असमानजाती-

---

१. मन्त्रस्थ 'सर्वान्' शब्द उणादि १ । १५३ से वन् प्रत्ययान्त सिद्ध होता है ॥

२. यहाँ भी बाहुलक का आश्रयण करना चाहिये । सा० भा० में 'सापत्न' शब्द इवार्थ में निपातन करके सिद्ध किया है, जैसा कि काशिका (काशि० ४।१।१४५) में भी माना है ।

३. यहाँ भी बाहुलक जानना चाहिये । सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यत्) जो कुछ (शापात्) शाप दे, [क्रोध वचन कहे] (तत्) वह (सर्वम्) सब (नः) हमारे (अधस्पदम्) उद्योग के नीचे रहे ॥ २ ॥

भावार्थः—यदि हम से कोई वेद विरुद्ध खोटा कर्म हो जावे, जिस से हमारे शत्रु, हमारी स्त्रियाँ, हमारे ब्राह्मणादि विद्वान् लोग क्रुद्ध हों, तब हम पूरा पूरा प्रयत्न करें कि हमारे शिष्टाचार और वैदिक कर्म से शापमोचन हो जावे, अर्थात् वे सब हम से पूर्ववत् फिर प्रीति करने लगें ॥ २ ॥

दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम् ।
तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः ॥ ३ ॥

दिवः । मूलम् । अवऽततम् । पृथिव्याः । अधि । उत्ऽततम् ।
तेन । सहस्रऽकाण्डेन । परि । नः । पाहि । विश्वतः ॥ ३ ॥

भाषार्थः----जो (मूलम्) मूल [तत्वज्ञान] (दिवः) सूर्यलोक से (अवततम्) नीचे को फैला हुआ है, और जो (पृथिव्याः अधि) पृथिवी पर से (उत्ततम्) ऊपर को फैला है । [हे ईश्वर !] (तेन) उस (सहस्रकाण्डेन) सहस्रों शाखा वाले [तत्त्वज्ञान] के द्वारा (विश्वतः) सब प्रकार से (नः) हमारी (परि) सब ओर (पाहि) रक्षा कर ॥ ३ ॥

भावार्थः---सूर्य द्वारा वृष्टि, प्रकाश आदि भूमि पर आते, और भूमि से जल सूर्यलोक वा मेघमण्डल में जाता, और सब छोटे बड़े लोक परस्पर आकर्षण

यस्य वोपजनः (निरु० ४ । २०) बालिशस्य मूर्खस्य, अथवा असमानजातीयस्य असपिण्डस्य । **ब्रह्मा** । द्र० अ० २ । ६ । २ । वेदवेत्ता । ब्राह्मणः । **मन्युतः** । **पञ्चम्यास्तसिल्** (पा० ५ । ३ । ७) इति तसिल् । क्रोधात् । **नः** । अस्माकम् । **अधस्पदम्** । **अधःशिरसी पदे** (पा० ८ । ३ । ४७) इति विसर्जनीयस्य सत्वम् । **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** (पा० ३ । १ । १३४) इति पद स्थैर्ये, गत्यां च—अच् । पदम् = व्यवसायः, पादः, चिह्नम्—इति शब्दकल्पद्रुमे । पदस्य व्यवसायस्य उद्योगस्य अधस्तात् अधोभागे, असमर्थं भवतु ॥

३----**दिवः** । द्युलोकात् । सूर्यमण्डलात् । **मूलम्** । मवते बध्नातीति । **मूशक्य-विभ्यः क्कः** (उ० ४ । १०८) इति मूङ् बन्धने—क्क । अथवा । मूल प्रतिष्ठायां रोहणे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और धारण रखते हैं। इसी प्रकार ईश्वरीय अनन्त नियमों को देख कर सब प्रजागण राज नियमों में चल कर परस्पर उपकार करें ॥

परि मां परि मे प्रजां परि णः पाहि यद् धनम् ।
अरातिनो मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातयः ॥ ४ ॥

परि । माम् । परि । मे । प्रऽजाम् । परि । नः । पाहि । यत् । धनम् । अरातिः । नः । मा । तारीत् । मा । नः । तारिषुः । अभिऽमातयः ॥४॥

भाषार्थः—(माम्) मेरी (परि=परितः) सब प्रकार, (मे) मेरी (प्रजाम्) प्रजा [पुत्र, पौत्र भृत्य आदि] की (परि) सब प्रकार और (नः) हमारा (यत्) जो (धनम्) धन है [उसकी] भी (परि) सब प्रकार (पाहि) तू रक्षा कर। (अरातिः) कोई अदानी, कंजूस, पुरुष (नः) हमें (मा तारीत्) न दबावे, और (अभिमातयः) अभिमानी लोग भी (नः) हमें (मा तारिषुः) न दबावें ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य आत्मरक्षा, प्रजारक्षा, और धनरक्षा करके दुष्टों को न्याय-युक्त दण्ड देकर सदा आनन्द से रहें ॥ ४ ॥

वा–क। आदिकारणम्। तत्त्वज्ञानम्। **अवततम्**। अव+तनु विस्तारे–क्त। अधोमुखं प्रसृतम्। **अधि**। उपरि। **उत्तमम्**। उत्+तनु–क्त। ऊर्ध्वम् उन्नतं विस्तृतम्। **सहस्रकाण्डेन**। **क्वादिभ्यः कित्** (उ० १। १५) इति कण शब्दे गतौ च–डः, स च कित्। **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** (पा० ६।४।१५) इति दीर्घः। अपरिमितपर्वयुक्तेन। **विश्वतः**। **भीत्रार्थानां भयहेतुः** (पा० १। ४। २५) इत्यपादानसंज्ञायाम् **पञ्चम्यास्तसिल्** (पा० ५। ३। ७) इति तसिल्। सर्वस्मात् कष्टात् ॥

४—प्रजाम्। प्रजायते सा प्रजा। **उपसर्गे च संज्ञायाम्** (पा० ३। २। ९९) प्र+जन जनने–ड। पुत्रपौत्रभृत्यादिसन्ततिम्। जनम्। **अरातिः**। द्र० अ० १। १८। १। अदानशीलम्। कृपणम्। शत्रुम्। नः। अस्मान्। **मा तारीत्**। तॄ तरणे, अभिभवे–लुङ्। **न माङ्योगे** (पा० ६। ४। ७४।) इत्यडभावः। माभिभवतु। मातिक्रामतु। **मा तारिषुः**। लुङि पूर्ववद् अडभावः। मा हिंसन्तु। **अभिमातयः**। द्र० अ० २। ६। ३। अभिमानिनो जनाः। शत्रवः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त् तेन नः सह ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि श्रृणीमसि ॥ ५ ॥

शप्तारम् । एतु । शपथः । यः । सुऽहार्त् । तेन । नः । सह ।
चक्षुःऽमन्त्रस्य । दुःऽहार्दः । पृष्टीः । अपि । शृणीमसि ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(शपथः) [हमारा] क्रोधवचन (शप्तारम्) कुवचन बोलने वाले को (एतु) प्राप्त हो और (यः) जो (सुहार्त्) अनुकूल हृदय वाला [शुभचिन्तक] है (तेन) उस [मित्र] के साथ (नः) हमारा (सह = सहवासः) सहवास हो । (चक्षुर्मन्त्रस्य) आंख से गुप्त बात करने वाले, (दुर्हार्दः) दुष्टहृदय वाले पुरुष की (पृष्टीः) पसलियों को (अपि) ही (श्रृणीमसि = ०–मः) हम तोड़ डालें ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजा को उचित है कि निन्दकों पर क्रोध और शुभचिन्तक सत्पुरुषों का आदर करे, और जो अनिष्टचिन्तक कपटी छली हों उनको भी दण्ड देता रहे ॥ ५ ॥

'चक्षुर्मन्त्रस्य' समासान्त पद को पदपाठ के विरुद्ध सायणाचार्य ने 'मन्त्रस्य चक्षुः' दो पद मान कर व्याख्या की है वह असाधु है। यह समस्त पद (दुर्हार्दः) पद का विशेषण है । इसका प्रयोग अ० १९ । ४५ । १ । में इस प्रकार है ।

५---**शप्तारम्** । शापकर्तारम् । अनीत्या कटुवक्तारम् । **एतु** । गच्छतु । प्राप्नोतु । **शपथः** । म० २ । आक्रोशः । क्रोधवचनम् । **सुहार्त्** । हार्दम् आनुकूल्यं करोति हार्दयतीति । हार्दयतेः क्विपि णिलोपे रूपम् । शोभनहृदयः । सुमनस्कः । अनुकूलकारी । **तेन** । पूर्वोक्तेन सुहृदयेन मित्रेण । **सह** । षह क्षमायाम्–अच् । संयोगः । सम्बन्धः । **चक्षुर्मन्त्रस्य** । **चक्षेः शिच्च** (उ० २ । ११९) इति चक्षिङ्-कथने दर्शने च–उसि । शित्त्वात् ख्याञादेशाभावः । मन्त्रि गुप्तभाषणे–अच् यद्वा घञ् । चक्षुषा नेत्रेण मन्त्रो गुप्तभाषणं परामर्शो यस्य तस्य । नेत्रसङ्केतेन विचारशीलस्य पिशुनस्य । **दुर्हार्दः** । सुहार्त् शब्दवद् व्युत्पत्तिः । दुष्टहृदयस्य । क्रूरपुरुषस्य । **पृष्टीः** । **क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्** (पा० ३ । ३ । १७४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥ अ. १९ । ४५ । १ ॥

(अञ्जन) हे आँखें खोल देने वाले ! तू आँख से गुप्त बात करने वाले दुष्टहृदय वाले की पसलियां ही (शृण) तोड़ दे ॥

सूक्तम् ८ ॥

१–५ ॥ ब्रह्म देवता । १, २, ४ अनुष्टुप्, ३, ५ पंक्तिः ॥

पौरुषमुपदिश्यते—पौरुष का उपदेश किया जाता है ॥

उद्गातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥ १ ॥

उत् । अगाताम् । भगवती इति भगऽवती । विऽचृतौ । नाम । तारके इति । वि । क्षेत्रियस्य । मुञ्चताम् । अधमम् । पाशम् । उत्ऽतमम् ॥१॥

भाषार्थः—(भगवती = ०—त्यौ) दो ऐश्वर्य वाले (विचृतौ) [अन्धकार से] छुड़ाने हारे (नाम) प्रसिद्ध (तारके) तारे [सूर्य और चन्द्रमा]

इति पृषु सेचने–क्तिच् । पर्शुस्थीनि । पार्श्वावयवान् । **शृणीमसि** । शॄ हिंसायाम् । **इदन्तो मसि** (पा० ७ । १ । ४६) इति इकारः । शृणीमः । विनाशयामः ॥

१—उद्गाताम् । उत्+इण् गतौ–लुङ । **इणो गा लुङि** (पा० २ । ४ । ४५) इति गादेशः । उदितेऽभूताम् । **भगवती** । **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** (पा० ५ । २ । ९४) इति भग–मतुप् नित्ययोगे । मस्य वः । ततो ङीप् । **सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णा०** (पा० ७ । १ । ३९) इति पूर्वसवर्णदीर्घः । भगवत्यौ । ऐश्वर्यवत्यौ । पूज्ये । **विचृतौ** । वि+चृती हिंसाग्रन्थनयोः–क्विप् । अन्धकाराद् विमोचयित्र्यौ । **नाम** । प्रसिद्धे । **तारके** । तरति तारयति वान्धकारात् तारका । तॄ–णिच्, ण्वुल्, टाप् । **तारका ज्योतिषि०** (वा० पा० ७ । ३ । ४५) इति इत्वप्रतिषेधः । द्वे नक्षत्रे । ज्योतिषी । सूर्यचन्द्रौ । **क्षेत्रियस्य** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उदगाताम्) उदय हुये हैं। वे दोनों (क्षेत्रियस्य) शरीर वा वंश के दोष वा रोग के (अधमम्) नीचे और (उत्तमम्) ऊँचे (पाशम्) पाश को (वि+मुच्यताम्) छुड़ा देवें ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे सूर्य और चन्द्रमा संसार में उदय होकर अपने ऊपर और नीचे के अन्धकार का नाश करके प्रकाश करते हैं, इसी प्रकार मनुष्य अपने छोटे और बड़े मानसिक, शारीरिक और वांशिक रोगों तथा दोषों को निवृत्त करके स्वस्थ और प्रतापी हों ॥ १ ॥

अपेयं रात्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥ २ ॥

अप । इयम् । रात्री । उच्छतु । अप । उच्छन्तु । अभिऽकृत्वरीः ।
वीरुत् । क्षेत्रियऽनाशनी । अप । क्षेत्रियम् । उच्छतु ॥ २ ॥

भाषार्थः—(इयम्) यह (रात्री) रात (अप+उच्छतु) नष्ट हो जावे, (अभि-कृत्वरीः=०—त्वर्यः) कतरने वाली वा हिंसाशील [कुवासनायें]

क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः (पा० ५ । २ । ९२) इति क्षेत्रियशब्दो निपात्यते परक्षेत्रे चिकित्स्य इत्यर्थे । यद्वा । क्षेत्र-घच् प्रत्ययः । परस्मिन् पुत्रपौत्रादिकस्य शरीरे प्रतीकार्यस्य महाप्रचण्डस्य रोगस्य । यद्वा । क्षेत्रे स्वकीये देहे वंशे वा जातस्य रोगस्य दोषस्य वा । **विमुञ्चताम्** । मुचेर्लोटि । **शे मुचादीनाम्** (पा० ७ । १ । ५९) इति नुम् । विमोचयताम् । **अधमम्** । अधरशरीरस्थितम् । **उत्तमम्** । ऊर्ध्वभागे स्थितम् । **पाशम्** । पश बन्धे ग्रन्थे वा—घञ् । बन्धनम् । ग्रन्थिम् ॥

२—**इयम्** । पुरोवर्त्तिनी । **रात्री** (द्र० अ० १ । १६ । १) रा दाने-त्रिप् । **रात्रेश्चाजसौ** (पा० ४ । १ । ३१) इति ङीप् । निशा । रात्रिरूपोऽन्धकारः । **अप+उच्छन्तु** । उच्छी विवासे=समाप्तौ, अकर्मकः, वर्जने, सक० । समाप्ता भवतु । विनश्यतु । **अप+उच्छन्तु** । दूरे गच्छन्तु । **अभिकृत्वरीः** । **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** (पा० ३ । २ । ७५) इति अभि+कृञ् हिंसायाम्, यद्वा, डुकृञ्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अप+उच्छन्तु) निकल जावें। (क्षेत्रियनाशनी) शरीर वा वंश के दोष वा रोग को नाश करने वाली (वीरुत्) औषधि (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश के दोष वा रोग को (अप+उच्छतु) निकाल देवे ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे रात्रि के समाप्त होने पर आलस्य आदि का नाश होता, और जैसे औषध से शरीर रोग निवृत्त होता है, वैसे ही मनुष्यों को अपने और अपने वंश के अज्ञान का नाश करके ज्ञान के प्रकाश में आनन्दित रहना चाहिये ॥ २ ॥

बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपिञ्ज्या।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥३॥

बभ्रोः। अर्जुनऽकाण्डस्य। यवस्य। ते। पलाल्या। तिलस्य। तिलऽपिञ्ज्या। वीरुत्। क्षेत्रियऽनाशनी। अप। क्षेत्रियम्। उच्छतु ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर!] (ते) तेरे [दिये] (बभ्रोः) पोषण करने वाले, (अर्जुनकाण्डस्य) श्वेत स्तम्भ [डांठा] वाले (यवस्य) यव अन्न की (पलाल्या)

करणे—क्वनिप्, तुगागमः। यद्वा। कृती छेदने—क्वनिप्। **वनो र च** (पा० ४। १। ७) ङीब्रेफौ। **वा छन्दसि** (पा० ६। १। १०६) इति जसः पूर्वसवर्ण-दीर्घः। व्यभिचारशीलाः कर्त्तनशीलाः कुवासनाः। **वीरुत्**। द्र० अ० २। ७। १। ओषधिः। लता। **क्षेत्रियनाशनी**। म० १। स्वकीये शरीरे वंशे वा जातस्य दोषस्य नाशयित्री। **क्षेत्रियम्**। म० १। शरीरस्थं दोषम्। **अप+उच्छतु**। सर्वथा वर्जयतु नाशयतु॥

३—**बभ्रोः**। **कुर्भ्रश्च** (उ० १। २२) इति भृञ् धारणपोषणयोः—कु, द्वित्वं च। बिभर्ति भरति वा बभ्रुः। पोषकस्य। **अर्जुनकाण्डस्य**। **अर्जेर्णिलुक् च** (उ० ३। ५८) इति अर्ज उपार्जने=अलब्धसम्पादने—उनन्। अर्जुनम्=रूपम्—निघ० ३। ७। ततः **क्वादिभ्यः कित्** (उ० १। ११५) इति कण शब्दे गतौ च—डः, डस्य कित्वम्। **अनुनासिकस्य क्वि०** (पा० ६। ४। १५) इति दीर्घः। श्वेतस्तम्भस्य। परिपक्वस्य नवीनस्य चेति यावत्। **यवस्य**। यूयते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालन शक्ति से और (तिलस्य) तिल की (तिलपिञ्ज्या) चिकनाई से (क्षेत्रियनाशनी) शरीर वा वंश के रोग नाश करने वाली (वीरुत्) ओषधि (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश के दोष वा रोग को (अप+उच्छतु) निकाल देवे ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे परिपक्व और नवीन यव, तिल आदि पदार्थों के यथावत् उपयोग से और औषधों के सेवन से शारीरिक बल स्थिर रहता है, वैसे ही मनुष्य उत्तम विद्या के प्रकाश से आत्मिक दोषों की निवृत्ति करके आनन्द प्राप्त करें ॥ ३ ॥

नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥ ४ ॥

नमः । ते । लाङ्गलेभ्यः । नमः । ईषाऽयुगेभ्यः ।
वीरुत् । क्षेत्रियऽनाशनी । अप । क्षेत्रियम् । उच्छतु ॥ ४ ॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] (लाङ्गलेभ्यः) हलों [की दृढ़ता] के लिये (नमः ते = नमस्ते) तुझे नमस्कार है और (ईषायुगेभ्यः) हरस [हल की लंबी लकड़ी] और जूओं [की दृढ़ता] के लिये (नमः) नमस्कार है ।

बलेन । यु मिश्रणे-अप् । स्वनामख्यातधान्यस्य । धान्यराजस्य । **ते** । तव । ईश्वरदत्तस्य । **पलाल्या** । **तमिविशिविडिमृणिकुलिकापिपलिपञ्चिभ्यः कालन्** (उ० १ । ११८) इति पल रक्षणे-कालन् । ङीष् । पालयतीति पलाली । पालनशक्त्या । **तिलस्य** । **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** (पा० ३ । १ । १३५) इति तिल गतौ, स्निग्धीभावे च-कः । स्वनामख्यातशस्यस्य । होमधान्यस्य । **तिलपिञ्ज्या** । **सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४ । ११८) इति पिजि हिंसाबलादाननिकेतनेषु इन् । तिलस्य स्नेहशक्त्या । अन्यद्गतम् ॥

४—**नमस्ते** । **नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च** (पा० २ । ३ । १६) इति चतुर्थी । तुभ्यं नमः । **लाङ्गलेभ्यः** । **लङ्गेर्वृद्धिश्च** (उ० १ । १०८) इति लगि गतौ-कलच्, वृद्धिश्च । लङ्गन्ति प्राप्नुवन्ति, अन्नादिकं येन तल्लाङ्गलम् । हलानां हिताय दृढ़त्वाय । **ईषायुगेभ्यः** । ईष गतिहिंसादर्शनेषु-कः । टाप् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क्षेत्रियनाशनी) शरीर वा वंश के दोष वा रोग की नाश करने वाली (वीरुत्) ओषधि (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश के दोष वा रोग को (अप + उच्छतु) निकाल देवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जैसे किसान लोग हल आदि उपयोगी और दृढ़ सामग्री के प्रयोग से अन्न उत्पन्न करते हैं, वैसे ही सब मनुष्य परमेश्वर के नियमों को साक्षात् करके उद्योग के साथ प्रयत्न से शरीर और अन्तःकरण की दृढ़ता करके उपकारी बनें और सदा आनन्द भोगें ॥ ४ ॥

नमः सनिस्रसाक्षेभ्यो नमः सन्देश्येभ्यः ।
नमः क्षेत्रस्य पतये वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥५॥

नमः । सनिस्रसऽअक्षेभ्यः । नमः । सम्ऽदेश्येभ्यः । नमः । क्षेत्रस्य । पतये । वीरुत् । क्षेत्रियऽनाशनी । अप । क्षेत्रियम् । उच्छतु ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(सनिस्रसाक्षेभ्यः) डबडबाती हुई आँखों वालों [रोगों से पीड़ित दीनों] के लिये (नमः) अन्न हो, और (संदेश्येभ्यः) यथार्थ दानशीलों के लिये (नमः) अन्न हो । (क्षेत्रस्य) खेत के (पतये) स्वामी के लिये (नमः) अन्न हो । (क्षेत्रियनाशनी) शरीर वा वंश के रोग की नाश करने वाली (वीरुत्) औषध (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश के दोष वा रोग को (अप + उच्छतु) निकाल देवे ॥ ५ ॥

ईषा लाङ्गलदण्डः । **उञ्छादीनां च** (पा० ६ । १ । १६०) इति युज योगे-घञ्, अगुणत्वं निपात्यते । युज्येते बलीवर्दौ अस्मिन्निति युगो युगं वा रथहलाद्यङ्गम् । ईषाश्च युगानि च तेभ्यः । हलस्य दण्डयुगानां दृढत्वाय । अन्यद् गतम् ॥

५—**नमः** । णमु प्रह्वत्वे-असुन् । अन्नम्-निघ० २ । ७ । **सनिस्रसाक्षेभ्यः** । स्रंसु गतौ-यङन्ताद् घञ्, अतोलोपयलोपौ । **नीग्वञ्चुस्रंसुध्वंसु०** (पा० ७ । ४ । ८४) इति नीग् आगमः । छान्दसो ह्रस्वः । सनीस्रस्यते-इति सनीस्रसम् । सनीस्रसानि सनीस्रस्यमानानि अतिशयेन विशीर्यमाणानि अक्षाणि, नेत्राणि येषां तेभ्यस्तथाभूतेभ्यः । कुष्ठादिरोगेण पीड़ितनेत्रेभ्यो दीनेभ्यः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सब मनुष्य ऐसा सुप्रबन्ध करें कि दीन दुःखियों का यथावत् पालन हो, उद्योगी दानी पुरुष और किसान लोग अन्न आदि प्राप्त करें। और जैसे परमेश्वर ने औषध आदि उत्पन्न करके उपकार किया है, उसी प्रकार सब को परस्पर उपकारी बनना चाहिये ॥ ५ ॥

टिप्पणी—(संदेश्येभ्यः) पद के स्थान पर सायणभाष्य में [संदेशेभ्यः] की व्याख्या है जो कि मन्त्र विरुद्ध होने से अशुद्ध है ॥

सूक्तम् ९ ॥

१-५ ॥ ईश्वरो देवता ॥ १, पूर्वार्धौ द्विपदा त्रिष्टुप्, उत्तरार्धौ द्विपदाऽनुष्टुप्, २-५ अनुष्टुप् ॥

मनुष्य आत्मानमुन्नयेत्-मनुष्य अपने आप को ऊँचा करे ॥

दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि येनं जग्राह पर्वसु ।
अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय ॥ १ ॥

दशऽवृक्ष । मुञ्च । इमम् । रक्षसः । ग्राह्याः । अधि । या । एनम् । जग्राह । पर्वऽसु । अथो इति । एनम् । वनस्पते । जीवानाम् । लोकम् । उत् । नय ॥ १ ॥

भाषार्थः—(दशवृक्ष) हे प्रकाश वाले वा दर्शनीय विद्वानों के क्लेश काटने वाले वा स्वीकार करने वाले, अथवा, हे दस दिशाओं में सेवनीय परमेश्वर !

संदेश्येभ्यः । सम्+दिश दाने आज्ञापने च-घञ् । सन्देश. सम्यग्दानम् । **तत्र साधुः** (पा० ४ । ४ । ९८) इति यत् । यथाशास्त्रं दानकुशलानां हिताय । **क्षेत्रस्य । दादिभ्यश्छन्दसि** (उ० ४ । १७०) इति क्षि ऐश्वर्यक्षयनिवासगतिषु त्रन् । क्षयति ऐश्वर्यहेतुर्भवति । अथवा, नाशयति दरिद्रतामिति क्षेत्रम् । शस्योत्पत्तिस्थानस्य । केदारस्य । देहस्य । **पतये** । पा रक्षणे-डति । रक्षकाय । स्वामिने । शिष्टं व्याख्यातम् ॥

१—दशवृक्ष । **कनिन् युवृषितक्षिराजि०** (उ० १ । १५६) इति दश दशि दीप्तौ, दर्शने, दंशने च-कनिन्, पक्षे नकारलोपः । **स्नुत्रश्चिकृत्यृषिभ्यः कित्**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इमम्) इस पुरुष को (रक्षसः) राक्षस [दुष्ट अज्ञान] की (ग्राह्याः) जकड़ने वाली पीड़ा [गठिया रोग] से (अधि) सर्वथा (मुञ्च=मोचय) छुड़ा दे, (या) जिस [पीड़ा] ने (एनम्) इस [पुरुष] को (पर्वसु) सब जोड़ों में (जग्राह) पकड़ लिया है। (अथो) और (वनस्पते) हे वननीय, सेवनीय सत्पुरुषों के पति [रक्षक] (एनम्) इस [पुरुष] को (जीवानाम्) जीवधारियों के (लोकम्) संसार में (उन्नय) ऊंचा उठा ॥ १ ॥

भावार्थः—सब चर और अचर के सेवनीय और सत्पुरुषों के रक्षक परमेश्वर के उपकारों पर दृष्टि करके मनुष्य अपने शारीरिक और मानसिक क्लेशों और विघ्नों को हटाकर सदा अपनी उन्नति करे ॥ १ ॥

१—सायणभाष्य में 'दशवृक्ष' का अर्थ "पलाश उदुम्बर आदि दश वृक्षों के खंडों से बनाई हुई मणि" किया है ॥

२—ऐसा ही प्रयोग अथर्ववेद में आया है—

ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम् ॥ अ० ३।११।१ ॥

(यदि) जो (एतद्) इस समय (एनम्) इस पुरुष को (ग्राहिः) जकड़ने वाली पीड़ा ने (जग्राह) पकड़ लिया है (इन्द्राग्नी) हे सूर्य और अग्नि [के समान तेजस्वी विद्वान्] (तस्याः) उस [पीड़ा] से (एनम्) इस पुरुष को (प्रमुमुक्तम्) तुम छुड़ाओ ॥

(उ०३।६६) इति ओव्रश्चू छेदने सं प्रत्ययः कित्। अथवा। **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः।** (पा० ३ । १ । १३५) इति वृक्ष वरणे कः। वृश्चति क्लेशम्, वृक्षते वृणोति स्वभक्तान्, व्रियते वा सर्वैः स वृक्षः। दशानां दीप्यमानानां दर्शकानां दर्शनीयानां विदुषां [अथवा दंशकानां दुष्टस्वभावानामपि] क्लेशछेदकः स्वीकारकः वा। अथवा दशसु दिक्षु स्वीकरणीयः। **मुञ्च**। मोचय। **इमम्**। जीवम्, माम् इत्यर्थः। **रक्षसः**। राक्षसस्य, अज्ञानस्य। **ग्राह्याः**। **विभाषा ग्रहः** (पा० ३ । १ । १४३) इति ग्रह आदाने–ण। **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** (पा० ४ । १।६३) इति ङीष्। यद्वा। **वसिवपियजि०** (उ० ४।१२५) इति ग्रह–इञ्। गृह्णातीति ग्राहो ग्राही ग्राहिर्वा जलजन्तुविशेषो वा। ग्रहणशीलपीडायाः सकाशात्। **जग्राह**। गृहीतवती। **पर्वसु**। **स्नामदिपद्यर्तिपृशकिभ्यो वनिप्** (उ० ४। ११३) इति पॄ पूर्तौ पालने च–वनिप् शरीरग्रन्थिषु। **अथो एनम्**। **ओत्** (पा० १ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगादुदगादुयं जीवानां व्रातमप्यगात् ।
अभूदु पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः ॥ २ ॥

आ । अगात् । उत् । अगात् । अयम् । जीवानाम् । व्रातम् । अपि । अगात् । अभूत् । ऊँ इति । पुत्राणाम् । पिता । नृणाम् । च । भगवत्ऽतमः ॥२॥

भाषार्थः—(अयम्) यह [प्राणी] (आ+अगात्) आया है, (उत्+अगात्) ऊपर आया है, (जीवानाम्) जीवितों [पुरुषार्थियों] के (व्रातम्) समूह में (अपि) भी (अगात्) प्राप्त हुआ है। वह (पुत्राणाम्) पुत्रों का (पिता) पिता (च) और (नृणाम्) मनुष्यों में (भगवत्तमः) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् (उ) अवश्य (अभूत्) हुआ है ॥ २ ॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य ही जीवित होते हैं, इस से मनुष्य संसार में जन्म पाकर ब्रह्मचर्य सेवन से विद्या ग्रहण करें, और पुरुषार्थी होकर पुत्रादि सब प्रजा का पालन पोषण करके महाप्रतापी और यशस्वी होवें ॥ २ ॥

---

१ । १५) इत्योदन्तो निपातः प्रगृह्यः । **वनस्पते** । द्र० अ० १ । १२ । ३ ॥ वन+पतिः सुट् च । वनस्य संभजनीयस्य शास्त्रस्य पालकः—इति श्रीमद्दयानन्दभाष्ये-यजु० २७ । २१ । वनानां पाता वा पालयिता वा वनं वनोतेः (निरु० ८ । ३) हे सेवनीयगुणस्य रक्षक परमेश्वर । **जीवानाम्** । जीवतीति जीवः । **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** (पा० ३ । १ । १३५) इति जीव प्राणे—कः । प्राणिनाम् । **लोकम्** । लोकृ दर्शने—घञ् । भुवनम् । स्थानम् । **उन्नय** । ऊर्ध्वं प्रापय । द्विकर्मको धातुः ॥

२—**आ+अगात्** इण् गतौ—लुङ् । आगतवान् । **उत्+अगात्** । उदस्थात् । संचारक्षमोऽभूत् । **जीवानाम्** । जीवितानां पुरुषार्थिनाम् । **व्रातम्** । **भृमृदृशियजि०** (उ० ३ । १०) इति वृञ् वरणे—अतच् पृषोदरादिः । यद्वा, व्रतं कर्म—निघ० २ । १ । **तस्येदम्** (पा० ४ । ३ । १२०) इति व्रत—अण् । व्राताः, मनुष्याः—निघ० २ । ३ । समूहम् । **पुत्राणाम्** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधीतीरध्यगादयमधि जीवपुरा अगन् ।
शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः ॥ ३ ॥

अधिऽइतीः । अधि । अगात् । अयम् । अधि । जीवऽपुराः । अगन् । शतम् । हि । अस्य । भिषजः । सहस्रम् । उत । वीरुधः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अयम्) इस पुरुष ने (अधीतीः) अध्ययन योग्य शास्त्रों को (अधि+अगात्) अध्ययन किया है, और (जीवपुराः) प्राणियों के पुरों वा नगरों को (अधि+अगन्) जान लिया है। (हि) क्योंकि (अस्य) इस [पुरुष] के (शतम्) सौ [बहुत से] (भिषजः) वैद्य, (उत) और (सहस्रम्) सहस्र [बहुत से] (वीरुधः) औषध हैं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य वेदादि शास्त्रों के अध्ययन, मनुष्यों में निवास, विद्वानों के सत्संग, और पदार्थों के गुणों का बोध करने से संसार में उन्नति करते हैं ॥ ३ ॥

द्र० अ० १ । ११ । ५ । सुतानाम् । सन्तानानाम् । **नृणाम्** । नयतीति ना । **नयतेर्डिच्च** (उ० २ । १००) इति णीञ् प्रापणे-ऋप्रत्ययः, स च डित् । **नृ च** (पा० ६ । ४ । ६) इति दीर्घाभावः । नेतॄणाम् । पुरुषाणाम् । **भगवत्तमः** । **अतिशायने तमबिष्ठनौ** (पा० ५ । ३ । ५५) इति भगवत्+तमप् । अतिशयेन भगवान् ऐश्वर्यवान् ॥

३–अधीतीः । अधि+इङ् अध्ययने, यद्वा, इक् स्मरणे–क्तिन् । अध्येतव्यान् वेदान् । स्मर्तव्यान् पदार्थान् । **अधि+अगात्** । **इणो गा लुङि** (पा० २ । ४ । ४५) तत्रैव वार्त्तिकम् । **इण्वदिक इति वक्तव्यम्** । इति इक् स्मरणे-लुङि गादेशः । अस्मार्षीत् । स्मृतवान् । **जीवपुराः** । **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** (पा० ५ । ४ । ७४) इति पुर् इत्यस्य अकारः समासान्तः । जीवानां पुरः पुराणि नगराणि पत्तनानि । **अधि+अगन्** । गमेर्लुङि । **मो नो धातोः** (पा० ८ । २ । ६४) इति नत्वम् । अध्यगमत् । अज्ञासीत् । **हि** । यस्मात् कारणात् । **शतम्, सहस्रम्** । अपरिमिताः । **भिषजः** । बिभेति रोगो यस्मादिति भिषक् । **भियः षुग्ह्रस्वश्च** (उ० १ । १३८) इति बिभी भये-अजि । षुगागमो ह्रस्वश्च । वैद्याः । **वीरुधः** । द्र० अ० २ । ७ । १ । ओषधयः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवास्ते चीतिमविदन् ब्रह्माण उत वीरुधः ।
चीतिं ते विश्वे देवा अविदुन् भूम्यामधि ॥ ४ ॥

देवाः । ते । चीतिम् । अविदन् । ब्रह्माणः । उत । वीरुधः ।
चीतिम् । ते । विश्वे । देवाः । अविदन् । भूम्याम् । अधि ॥४॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य] (ते) तेरे लिये (देवाः) प्रकाशमान (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञानियों ने (उत) और (वीरुधः) ओषधियों ने (चीतिम् = चितिम्) ज्ञान (अविदन्) प्राप्त किया है। (विश्वे) सब (देवाः दिव्य पदार्थों [सूर्य, चन्द्र, वायु आदि] ने (ते) तेरे लिये (चीतिम्) चैतन्यता को (भूम्याम् अधि) पृथिवी के ऊपर (अविदन्) प्राप्त किया है ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वान् वेदवेत्ताओं के उपदेश से, तथा अन्न आदि ओषधियों, और सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, आकाश आदि दिव्य पदार्थों में ईश्वरीय अटल नियमों से शिक्षा और उपकार प्राप्त करके ईश्वर की महिमा के ध्यान में निमग्न होकर और परोपकार करके आनन्द पाते हैं ॥ ४ ॥

यश्चकार स निष्करत् स एव सुभिषक्तमः ।
स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवद् भिषजा शुचिः ॥५॥

यः । चकार । सः । निः । करत् । सः । एव । सुभिषक्ऽतमः ।
सः । एव । तुभ्यम् । भेषजानि । कृणवत् । भिषजा । शुचिः ॥५॥

भाषार्थः—(यः) जिस [परमेश्वर] ने (चकार) बनाया है, (सः)

४—**देवाः** । प्रकाशमानाः । दातारः । दिव्यपदार्थाः । सूर्यादयः । **ते** । तुभ्यं हे मनुष्य ! **चीतिम्** । इगुपधात् कित् (उ० ४ । १२०) इति चिती ज्ञाने, जागरणे च—इन्, स च कित्, दीर्घश्छान्दसः । ज्ञानम् । जागरणम् । **अविदन्** । विद्लृ लाभे-लुङ् । लब्धवन्तः । **ब्रह्माणः** । द्र० अ० २ । ६ । २ । ब्रह्मज्ञानिनः । ब्राह्मणाः । **वीरुधः** । ओषधयः । **भूम्याम्** । द्र० अ० १ । ११ । २ । भू-मि । भूलोके । पृथिव्याम् ॥

५—**यः** । परमेश्वरः । **चकार** । सर्वं सृष्टवान् । **निः+करत्** । लेटो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही (निष्करत्) निस्तारा करेगा, (सः) वह (एव) ही (सुभिषक्तमः) बड़ा भारी वैद्य है। (सः) वह (एव) ही (शुचिः) पवित्रात्मा (भिषजा) वैद्य रूप से (तुभ्यम्) तेरे लिये (भेषजानि) ओषधों को (कृणवत्) करेगा ॥ ५ ॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर ने इस सृष्टि को रचा है, वही जगदीश्वर अपने आज्ञाकारी, और पुरुषार्थी सेवकों का क्लेश हरण करके आनन्द देता है ॥ ५ ॥

टिप्पणी[1]—'भिषजा शुचिः' "वैद्यरूप से पवित्रात्मा" के स्थान में (भिषजां शुचिः) "वैद्यों में पवित्रात्मा" ऐसा पाठ अधिक ठीक दीखता है। लिपि प्रमाद से अनुस्वार नहीं लगा। नीचे के प्रयोगों को विचारिये ॥

१—ऋग्वेद में ऐसा पाठ है—

भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥ ऋ. २ । ३३ । ४ ॥

मैं तुझ को (भिषजाम्) वैद्यों में महा वैद्य सुनता हूं ॥

२—अथर्ववेद में ऐसा है—

आपस्तत् सर्व निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ॥ अ० ६ । २४ । २ ॥

(भिषजाम्) वैद्यों में अति पूजनीय वैद्य (आपः) परमेश्वर उन सब दुःखों को हटावे ॥

३—यजुर्वेद में ऐसा पाठ है।

सुत्रामाणं सवितारं वरुणं भिषजां पतिं स्वाहा ॥ य० २१ । ४० ॥

बड़े रक्षक, परम ऐश्वर्य वाले, श्रेष्ठ, (भिषजाम्) वैद्यों के (पतिम्) रक्षक को सुन्दर वाणी है[1] ॥

ऽडाटौ (पा० ३ । ४ । ९४) इति कृञ् करणे—लेटि अडागमः। **कः करत्करति०** (पा० ८ । ३ । ५०) इति निसःषत्वम्। निष्कृतिं निर्मुक्तिं पापादिभ्य उद्धारं कुर्यात्। **सुभिषक्तमः**। सु+भिषज्+तमप्। म० ३। अतिशयेन पूजनीयो भिषक्, भयनिवारको वैद्यः। **भेषजानि**। अ० २ । ३ । २। औषधानि। **कृणवत्**। कृवि हिंसाकरणयोः—लेट्। कुर्यात्। **भिषजा**। म० ३। भिषग्रूपेण। इत्थंभावे तृतीया। यद्वा (भिषजाम्) इति पाठे। वैद्यानां मध्ये। **शुचि**। द्र० अ० १ । ३३ । १। शुचिर् शौचे—इन्। स च कित्। शुद्धस्वभावः। पवित्रः॥

---

१. पूर्वसंस्करण में उपरिलिखित पाठ अधिक है, जिसे भाष्यकार एवं वैदिक सिद्धान्त के प्रतिकूल होने से अपपाठ जानना चाहिये। वस्तुतः तृतीयान्त मानने पर यहाँ अर्थ में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है एवं षष्ठ्यन्त अर्थ करने पर भी छान्दस अनुस्वार लोप माना जा सकता है, पर वेद में लिपि प्रमाद कहना कथञ्चिदपि ठीक न होगा ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १० ॥

१–८ ॥ ब्रह्म देवता । १ त्रिष्टुप्, २-७ प्रथम-द्वितीय-पंचम-षष्ठपादा-स्त्रिष्टुप्, तृतीय-चतुर्थौ च जगतीछन्दः ॥

मुक्तिप्राप्त्युपदेशः—मुक्ति की प्राप्ति के लिये उपदेश ॥

क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ १ ॥

क्षेत्रियात् । त्वा । निःऽऋत्याः । जामिऽशंसात् । द्रुहः । मुञ्चामि । वरुणस्य । पाशात् । अनागसम् । ब्रह्मणा । त्वा । कृणोमि । शिवे इति । ते । द्यावापृथिवी इति । उभे इति । स्ताम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—[हे पुरुष !] (त्वा) तुझ को (क्षेत्रियात्) शरीर वा वंश के रोग से, (निर्ऋत्याः) अलक्ष्मी [महामारी दरिद्रता आदि] से, (जामिशंसात्) भक्षणशील मूर्ख के सताने से, (द्रुहः) द्रोह [अनिष्ट चिन्ता] से और (वरुणस्य) दुष्कर्मों से रोकने वाले न्यायाधीश के (पाशात्) दंड पाश वा

१–**क्षेत्रियात्** । द्र० अ० २ । ८ । १ । देहे वंशे वा जाताद् रोगाद् दोषाद्वा । **निर्ऋत्याः** । द्र० अ० १ । ३१ । २ । निर्ऋतिर्निरमणाद्वृच्छतेः कृच्छ्रापत्तिः (निरु० २ । ७) कृच्छ्रापत्तेः सकाशात् । **जामिशंसात्** । 'जामिः' इति व्याख्यातम्–अ० २ । ७ । २ । जम भक्षणे–इञ् । जाम्यतिरेकनाम बालिशस्य वासमानजातीयस्य वोपजनः (निरु० ४ । २०) शंसु हिंसास्तुत्योः–अप्रत्ययः । भक्षणशीलस्य । बालिशस्य मूर्खस्य शंसनात् हिंसनात् । **द्रुहः** । द्रुह [1]अनिष्टचिन्तने–क्विप् । अनिष्टचिन्तनात् । **मुञ्चामि** । मोचयामि । **वरुणस्य** । द्र० अ० १ । ३ । ३ । वृञ् वरणे उनन् । दुष्टानामावरकस्य न्यायाधीशस्य । **पाशात्** । पश्यते बध्यतेऽनेन । पश बन्धे बाधे च–घञ् । शस्त्रभेदात् । दण्डबन्धात् । **अनागसम्** । इण

---

१. धातुपाठ में द्रुह जिघांसायाम् पठित है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्ध से (मुञ्चामि) मैं छुड़ाता हूँ। (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से (त्वा) तुमको (अनागसम्) निर्दोष (कृणोमि) करता हूँ। (ते) तेरे लिये (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी = ०—द्यौ) आकाश और पृथिवी (शिवे) मंगलमय (स्ताम्) होवें ॥ १ ॥

भावार्थ :---मनुष्य वेद ज्ञान प्राप्ति से ऐसा प्रयत्न करे कि आत्मिक, शारीरिक, और दैवी विपत्तियों और मूर्खों के दुष्ट आचरणों से पृथक् रहे और न कभी कोई पाप करे जिस से परमेश्वर वा राजा उसे दण्ड न देवे, किन्तु सुशीलता के कारण संसार के सब पदार्थ आनन्दकारी हों ॥

शं ते अग्निः सहाद्भिरस्तु शं सोमः सहौषधीभिः। एवाहं त्वा क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्। अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ २ ॥

शम्। ते। अग्निः। सह। अत्ऽभिः। अस्तु। शम्। सोमः। सह। ओषधीभिः। एव। अहम्। त्वाम्। क्षेत्रियात्। निःऽऋत्याः। जामिऽशंसात्। द्रुहः। मुञ्चामि। वरुणस्य। पाशात्। अनागसम्। ब्रह्मणा। त्वा। कृणोमि। शिवे इति। ते। द्यावापृथिवी इति। उभे इति। स्ताम् ॥ २ ॥

भाषार्थ :—(ते) तेरे लिये (अग्निः) (अद्भिः सह) जल के साथ (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो, (सोमः) अमृत [ऐश्वर्य] (ओषधीभिः सह)

आगोऽपराधे च (उ० ४। २१२) इति इण् गतौ-असुन्, आगादेशः। अपराधरहितम्। निर्दोषम्। **ब्रह्मणा**। अ० १। ८। ४। वेदज्ञानेन। **शिवे**। अ० २। ६। ३। कल्याणकारिण्यौ। **द्यावापृथिवी**। अ० २। १। ४। **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** (पा० १। १। ११) इति सन्ध्यभावः। आकाशपृथिवीस्थाः पदार्थाः। **स्ताम्**। भवताम् ॥

२—**शम्**। सुखकरः। **ते**। तुभ्यम्। **अग्निः**। पावकः। अद्भिः। जलेन। **सोमः**। अ० १। ६। २। षु प्रसवैश्वर्ययोः—मन्। ऐश्वर्यम्। **ओषधीभिः**।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्न आदि औषधियों के साथ (शम्) सुखदायक हो। (एव) ऐसे ही (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझको (क्षेत्रियात्) शरीर वा वंश के रोग से ·····[मन्त्र १] ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य को विज्ञान पूर्वक देश, काल, अग्नि, जल, वायु, खान, पान आदि पदार्थों का ठीक उपयोग करके स्वस्थ और ऐश्वर्यवान् रहकर आनन्द भोगना चाहिये ॥ २ ॥

शं ते वातो अन्तरिक्षे वयो धाच्छं ते भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः। एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्। अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ ३ ॥

शम्। ते। वातः। अन्तरिक्षे। वयः। धात्। शम्। ते। भवन्तु। प्रऽदिशः। चतस्रः। एव। अहम्। त्वाम्। क्षेत्रियात्। निःऽऋत्याः। जामिऽशंसात्। द्रुहः। मुञ्चामि। वरुणस्य। पाशात्। अनागसम्। ब्रह्मणा। त्वा। कृणोमि। शिवे इति। ते। द्यावापृथिवी इति। उभे इति। स्ताम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(ते) तेरे लिये (अन्तरिक्षे) मध्य में दीखने वाले आकाश में वर्त्तमान (शम्) सुखदायक (वातः) पवन (वयः) अन्न वा यौवन [शारीरिक बल] को (धात्=धेयात्) पुष्ट करे, (ते) तेरे लिये (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) महादिशायें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) होवें। (एव) ऐसे ही

अ० १। २३। १। ओष + धा-कि, ङीप्। ओषो दाहो धीयतेऽत्र। व्रीहियवादिभिः। **एव**। एवम्। अन्यद्गतं म० १॥

३—**वातः**। अ० १। ११। ६। वा सुखाप्तिगतिसेवासु—तन्। पवनः। **अन्तरिक्षे**। अ० १। ३०। ३। सर्वमध्ये दृश्यमाने। आकाशे। **वयः**। सर्वधातुभ्योऽसुन् (उ० ४। १८९) इति वय गतौ, वी गतौ, यद्वा अज गतौ—असुन् अजतेर्वीभावः। अन्नम्-निघ० २। ७। यौवनम्। सामर्थ्यम्। **धात्**। डुधाञ्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अहम्) मैं (त्वाम्) तुझको (क्षेत्रियात्) शारीरिक वा वंशागत रोग से [मन्त्र २] ॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न और परिश्रम करके अपने शरीरस्थ प्राण वायु और देशस्थ वायु, और सब स्थानों को यथोचित शुद्ध और स्वस्थ रख कर आनन्द प्राप्त करे ॥ ३ ॥

(वयोधात् = वयः धात्) इन दो पदों के स्थान पर संहिता और पदपाठ के विरुद्ध सायणभाष्य में [वयोधाः] एक पद मानकर [वयसां पक्षिणां धाता धारयिता वयसाम् अन्नेन पोषयिता वा वातः] व्याख्या की है ॥

इमा या देवीः प्रदिशश्चतस्रो वातपत्नीरभि सूर्यो विचष्टे । एवाहं त्वा क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ ४ ॥

इमाः । याः । देवीः । प्रऽदिशः । चतस्रः । वातऽपत्नीः । अभि । सूर्यः । विऽचष्टे । एव । अहम् । त्वाम् । क्षेत्रियात् । निःऽऋत्याः । जामिऽशंसात् । द्रुहः । मुञ्चामि । वरुणस्य । पाशात् । अनागसम् । ब्रह्मणा । त्वा । कृणोमि । शिवे इति । ते । द्यावापृथिवी इति । उभे इति । स्ताम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(सूर्यः) चलने वा चलाने वाला सूर्य लोक (इमाः) इन (याः) जिन (देवीः) दिव्यगुणवाली (वातपत्नीः) वायु मण्डल से रक्षित (चतस्रः) चारों

धारणपोषणयोः-लेटि विधिलिङि वा छान्दसं रूपम् । धत्तात् । दध्यात् । शम् । सुखकार्यः । **प्रदिशः** । प्रकृष्टा दिशः प्राच्याद्या महादिशाः ।

४–देवीः । अ० १ । ४ । ३ देव–ङीप् । द्योतमानाः । दिव्याः । **वातपत्नीः** । **विभाषा सपूर्वस्य** (पा० ४ । १ । ३४) इति वातपूर्वस्य पति शब्दस्य इकारस्य नकारो ङीप् च । वातः पतिः रक्षको यासां ताः वायुरक्षिताः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रदिशः) महादिशाओं को (अभि) सब प्रकार (विचष्टे) देखता है। (एव) ऐसे ही (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझ को (क्षेत्रियात्) शारीरिक वा वंशागत रोग से..... [मन्त्र २] ॥ ४ ॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपनी किरणों से आकर्षण करके पृथिवी आदि लोकों को धारण करता और वायु मण्डल पतन होजाने से उन की रक्षा करता है, ऐसे ही मनुष्य को अपनी प्रजा का पोषण करके सुखी रहना चाहिये ॥ ४ ॥

तासु त्वान्तर्जरस्यादधामि प्र यक्ष्म एतु निर्ऋतिः पराचैः। एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्। अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ ५ ॥

तासु। त्वा। अन्तः। जरसि। आ। दधामि। प्र। यक्ष्मः। एतु। निःऽऋतिः। पराचैः। एव। अहम्। त्वाम्। क्षेत्रियात्। निःऽऋत्याः। जामिऽशंसात्। द्रुहः। मुञ्चामि। वरुणस्य। पाशात्। अनागसम्। ब्रह्मणा। त्वा। कृणोमि। शिवे इति। ते। द्यावापृथिवी इति। उभे इति। स्ताम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(तासु) उन [दिशाओं] में (त्वा) तुझको (जरसि) स्तुति के (अन्तः) मध्य में (आ) भले प्रकार से (दधामि) धारण करता हूं, (यक्ष्मः) राज रोग [क्षयी आदि] और (निर्ऋतिः) अलक्ष्मी [महामारी दरिद्रता आदि] भी (पराचैः) औंधे मुंह होकर (प्र+एतु) चली जावे। (एव) ऐसे ही (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझको (क्षेत्रियात्) शारीरिक वा वंशागत रोग से...[मन्त्र २] ॥५॥

सर्वलोका इत्यर्थः। **सूर्यः**। अ० १।३।५। आकाशे सत्ता सविता प्रेरको वा। आदित्यलोकः। **विचष्टे**। चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि दर्शने च-लट्, अदादित्वात् शपो लुक्। चष्टे, विचष्टे पश्यतिकर्माणौ (निघ० ३। ११) विविधं पश्यति। किरणैः प्रकाशयति, आकर्षति धारयति चेत्यर्थः ॥

५–**तासु**। पूर्वोक्तासु दिक्षु। **त्वा**। त्वां मनुष्यम्। आत्मानम्। **अन्तर्**।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य को परमेश्वर ने सब प्राणियों में श्रेष्ठ बनाया है, इसलिये पुरुष पुरुषार्थ करके सब विघ्नों को हटावे और कीर्त्तिमान् होकर सदा आनन्द भोगे और अमर होवे ॥ ५ ॥

टिप्पणी—हमारे विचार में यहाँ 'जरस्' पद का अर्थ निघण्टु और निरुक्त आदि के अनुसार स्तुति वा कीर्त्ति है[1] बुढ़ापे का अर्थ बेमेल है। अथर्ववेद १। ३०। २। की टिप्पणी देखिये, और यजु० ३६। २४ भी विचारिये।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ य० ३६। २४ ॥

(तत्) परब्रह्म (चक्षुः) सब का द्रष्टा, (देवहितम्) विद्वान् देवताओं का हितकारी (शुक्रम्) वीर्यवान्, (पुरस्तात्) पहिले काल से वा सम्मुख होकर (उच्चरत्) ऊँचा चढ़ रहा है। [ऐसा ध्यान करते हुए] (शतम् शरदः) सौ शरद् ऋतु वा वर्ष तक (पश्येम) हम देखते रहें, (शतम् शरदः) सौ वर्ष तक (जीवेम) हम जीते रहें, (शतम् शरदः) सौ वर्ष तक (शृणुयाम) हम सुनते रहें, (शतम् शरदः) सौ वर्ष तक (प्रब्रवाम) हम बोलते रहें, (शतम् शरदः) सौ वर्ष तक (अदीनाः) दीनता रहित (स्याम) हम रहें, (च) और (शतात् शरदः) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक अर्थात् हम सर्वथा पुष्टांग रहें और कभी अङ्गहीन और धनहीन न हों ॥

मध्ये। **जरसि**। म० १। ३०। २। गृशब्दे-असुन्। जरिता स्तोतृनाम—निघ० ३। १६। स्तुतौ। यशसि। **आ**। सम्यक्। यथाविधि। **दधामि**। अहं मनुष्यः स्वपौरुषेण धारयाम्यात्मानमित्यर्थः। **यक्ष्मः**। **अर्त्तिस्तुसुहु०** (उ० १। १४०) इति यक्ष पूजायाम्-मन्। पूज्यते वैद्यो रोगे। राजरोगः। क्षयः। **प्र+एतु**। प्रैतु। प्रगच्छतु। निर्गच्छतु। **निर्ऋतिः**। म० १। अलक्ष्मीः। दरिद्रतादिविपत्तिः। **पराचैः**। **नौ दीर्घश्च** (उ० ५। १३) इति बाहुलकात्, पर+चिञ् चयने-डैसि। अकारस्य दीर्घश्च। पराङ्मुखी ॥

---

१. वृद्धत्व का वाचक जरा शब्द जॄष् वयोहानौ धातु से अङ् प्रत्यय (पा० ३।३।१०४) होकर बनेगा तत्पश्चात् अजादि प्रत्यय परे रहते जराया जर० (पा० ७। २। १०१) से जरस् आदेश हो जायेगा। स्तुतिवाचक जरा एवं जरस् शब्द गृ शब्दे धातु से बनेंगे, अतः जरा एवं जरस् शब्दों के दोनों ही अर्थ हैं। द्र० निरु० १। ७, जरिता गरिता ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमुक्था यक्ष्माद् दुरितादवद्याद् द्रुहः पाशाद् ग्राह्याश्चोदमुक्थाः । एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥६॥

अमुक्थाः । यक्ष्मात् । दुःऽइतात् । अवद्यात् । द्रुहः । पाशात् । ग्राह्याः । च । उत् । अमुक्थाः । एव । अहम् । त्वाम् । क्षेत्रियात् । निःऽऋत्याः । जामिऽशंसात् । द्रुहः । मुञ्चामि । वरुणस्य । पाशात् । अनागसम् । ब्रह्मणा । त्वा । कृणोमि । शिवे इति । ते । द्यावापृथिवी इति । उभे इति । स्ताम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यक्ष्मात्) राज रोग [क्षयी आदि] से, (दुरितात्) दुर्गति से, और (अवद्यात्) अकथनीय निन्दनीय कर्म से (अमुक्थाः) तू मुक्त हो गया है, और (द्रुहः) द्रोह [अनिष्ट चिन्तन] से (च) और (ग्राह्याः) जकड़ने वाली पीड़ा के (पाशात्) पाश वा बन्ध से (उत्+अमुक्थाः) तू छूट चुका है। (एव) ऐसे ही (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझ को (क्षेत्रियात्) शारीरिक वा वंशागत रोग से ...[मन्त्र २] ॥ ६ ॥

भावार्थः—जैसे उत्तम वैद्य रोगी के रोगों को निवृत्त करके स्वस्थ कर देता है ऐसे ही ब्रह्मचारी वेद विज्ञान की प्राप्ति से निर्मल होकर सुखी होता है ॥ ६ ॥

६—अमुक्थाः । मुच्लृ मोचने-कर्मणि लुङि मध्यमैकवचने । **झलो झलि** (पा० ८ । २ । २६) इति सिचो लोपः । मुक्तोऽसि । **यक्ष्मात्** । म० ५ । राजरोगात् । **दुरितात्** । दुर्+इण् गतौ-भावे क्तः । दुष्टम् इतं गमनं नरकादिदुर्गतिः-इति दुरितम् । दुर्गतेः पापात् । **अवद्यात्** । **अवद्यपण्यवर्या-गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु** (पा० ३ । १ । १०१) इति अ+वद कथने-यत्प्रत्ययान्तो निपात्यते, क्यपि प्राप्ते। अवचनीयात्, अकथनीयात्, गर्ह्यात्, पापात् । **द्रुहः** । द्रुह क्विप् । अनिष्टचिन्तनात् । **पाशात्** । बन्धनात् । **ग्राह्याः** । अ० २ । ९ । १ । ग्रह-इञ् । ग्रहणशीलायाः पीडायाः सकाशात् । **उत्** । उङ् शब्दे-क्विप्, तुक् । पृषोदरादित्वाद् दत्वं वा । प्राकट्येन । उत्कर्षेण । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहा॒ अरा॑तिमवि॒दः स्यो॒नमप्य॑भूर्भ॒द्रे सु॑कृ॒तस्य॑ लो॒के। एवाहं त्वां क्षे॑त्रि॒यान्नि॒र्ऋत्या॒ जामिशं॑साद् द्रु॒हो मु॑ञ्चामि॒ वरु॑णस्य॒ पाशा॑त्। अ॒ना॒गस॑ं ब्रह्म॑णा त्वा कृणोमि शि॒वे ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒भे स्ता॑म् ॥ ७ ॥

अहाः। अरा॑तिम्। अविदः। स्यो॒नम्। अपि॑। अ॒भूः॒। भ॒द्रे। सु॒ऽकृ॒तस्य॑। लो॒के। एव॑। अ॒हम्। त्वाम्। क्षे॒त्रि॒यात्। निः॒ऽऋ॒त्याः। जा॒मिऽशं॑सात्। द्रु॒हः। मु॒ञ्चा॒मि॒। वरु॑णस्य। पाशा॑त्। अ॒ना॒गस॑म्। ब्रह्म॑णा। त्वा॒। कृ॒णो॒मि॒। शि॒वे इति॑। ते॒। द्यावा॑पृथि॒वी इति॑। उ॒भे इति॑। स्ता॒म्॥७॥

भाषार्थः—(अरातिम्) कंजूसी वा बैर को (अहाः=अहासीः) तूने त्याग दिया है, (स्योनम्) हर्ष को (अविदः) तूने पाया है, (अपि) और भी (सुकृतस्य) सुकृत [पुण्य कर्म] के (भद्रे) आनन्दमय (लोके) लोक में (अभूः) तू वर्त्तमान हुआ है। (एव) ऐसे ही (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझ को (क्षेत्रियात्) शारीरिक वा वंशागत रोग से.....[मन्त्र २] ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य बैर छोड़ कर उदार, उपकारी, सर्वमित्र बनकर अनेक बल अर्थात् मुक्ति के आनन्द को पाता है ॥ ७ ॥

पातञ्जल योगदर्शन, पाद ३ सूत्र २२ देखिये—

७—अहाः। ओहाक् त्यागे—लुङि। **मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्०** (पा० २।४।८०) इति च्लेर्लुक्। अहासीः, अत्याक्षीः। **अरातिम्**। अ० १।१८।२। रा दाने—क्तिन्। अदातृताम्। शत्रुताम्। **अविदः**। विद्लृ लाभे-लुङ्। लृदित्वाद् अङ्। लब्धवानसि। **स्योनम्**। **सिवेष्टेर्यू च** (उ० ३।९।) इति षिवु तन्तुसन्ताने-नप्रत्ययः, टिभागस्य यू इत्यादेशे गुणः। स्योनमिति सुखनाम स्यतेरवस्यन्त्येतत् सेवितव्यं भवतीति वा। निरु० ८।९। सुखम्। आनन्दम्। **अपि**। न पियति। पि गतौ—क्विप्, न तुक्। समुच्चये। अवधारणे। पुनरर्थे। **अभूः**।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैत्र्यादिषु बलानि ।

मित्रता आदिकों में (संयम से) अनेक बल होते हैं ॥

टिप्पणी—'अभूः' का अर्थ परोक्षपरक सायणभाष्य में 'अभूत्' माना है।

सूर्यमृतं तमसो ग्राह्या अधि देवा मुञ्चन्तो असृजन्निरेनसः । एवाहं त्वा क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ ८ ॥

सूर्यम् । ऋतम् । तमसः । ग्राह्याः । अधि । देवाः । मुञ्चन्तः । असृजन् । निः । एनसः । एव । अहम् । त्वाम् । क्षेत्रियात् । निःऽऋत्याः । जामिऽशंसात् । द्रुहः । मुञ्चामि । वरुणस्य । पाशात् । अनागसम् । ब्रह्मणा । त्वा । कृणोमि । शिवे इति । ते । द्यावापृथिवी इति । उभे इति । स्ताम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(देवाः) (ईश्वर के) दिव्य सामर्थ्यों ने (ऋतम) चलने वाले (सूर्यम्) सूर्य को (तमसः) अन्धकार की (ग्राह्याः) पकड़ से और (एनसः अधि) कष्ट से (मुञ्चन्तः) छुड़ा कर (निः+असृजन्) उत्पन्न किया है। (एव) ऐसे ही (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझ को (क्षेत्रियात्) शारीरिक वा वंशागत रोग से,

---

भू सत्तायाम्-लुङ् । त्वं वर्त्तमानोऽभूः । **भद्रे** । अ० १ । १८ । १ । भदि-रन् । भन्दनीये । सुखप्रदे । **लोके** । द्र० अ० २ । ६ । १ । स्थाने । अन्यद् गतम् ॥

८—**सूर्यम्** । अ० १ । ४ । २ । गतिशील प्रेरकं वाऽदित्यम् । **ऋतम्** । ऋ गतौ-कर्त्तरि क्तः । ऋतः, मध्यमस्थानी देवता—निरु० १० । ४० । अन्तरिक्षे गन्तारम् । **तमसः** । तमु काङ्क्षायाम्-असुन् । अन्धकारस्य । **ग्राह्याः** । म० १ । ग्रहणात् । **देवाः** । ईश्वरस्य दिव्यबलानि । **मुञ्चन्तः** । मोचयन्तः । **असृजन्** । सृज विसर्गे । सृष्टवन्तः । उत्पादितवन्तः । **निर्** । नृ नयने-क्विप्, न दीर्घः । निश्चये । बहिर्भावे । **एनसः** । इण आगसि (उ० ४ । १९८) इति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(निर्ऋत्याः) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि] से (जामिशंसात्) भक्षण शील मूर्ख के सताने से, (द्रुहः) द्रोह [अनिष्ट चिन्ता] से और (वरुणस्य) दुष्कर्मों से रोकने वाले न्यायाधीश के (पाशात्) दण्ड पाश वा बन्ध से (मुञ्चामि) मैं छुड़ाता हूँ। (ब्रह्मणा) वेद विज्ञान से (त्वा) तुझ को (अनागसम्) निर्दोष (कृणोमि) करता हूँ, (ते) तेरे लिये (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी=०–व्यौ) आकाश और पृथिवी (शिवे) मंगलमय (स्ताम्) होवें ॥ ८ ॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर की शक्ति से सूर्य प्रलय वा ग्रहण के अन्धकार से छूट कर प्रकाशित होकर क्लेश हरण करता है, ऐसे ही मनुष्य अपने सब विघ्नों का नाश करके, आत्मिक बल बढ़ा कर संसार में उपकार करे, और आनन्द भोगे ॥ ८ ॥

सूक्तम् ११ ॥

१—५॥ पुरुषो देवता । १ पंचपट्का, २-५ प्रथमद्वितीयपादौ द्व्यष्टका, तृतीयचतुर्थौ च द्विषट्का गायत्री ।

पुरुषार्थोपदेशः—पुरुषार्थ का उपदेश ॥

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ १ ॥

दूष्याः । दूषिः । असि । हेत्याः । हेतिः । असि । मेन्याः । मेनिः । असि । आप्नुहि । श्रेयांसम् । अति । समम् । क्राम ॥१॥

भाषार्थः—[हे पुरुष !] तू (दूष्याः) दूषित क्रिया का (दूषिः) खण्डन-कर्ता (असि) है, और (हेत्याः) बरछी का (हेतिः) बरछी (असि) है,

---

इण् गतौ–असुन् । नुट् च । एन एतेः–निरु० ११ । २४ । दुःखात् । पापात् । अपराधात् । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

१–**दूष्याः** । अ० १ । २३ । ४ । दुष दुष्टकर्मणि–इन् । दुष्टक्रियायाः । **दूषिः** । दूषकः, निवारकः—इति सायणोऽपि । **असि** । भवसि । **हेत्याः** । **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च** (पा० ३ । ३ । ९७) इति हन हिंसागत्योः, यद्वा, हि गतिवृद्धयोः—क्तिनि हन्तेर्नकारस्येत्वम्, हिनोतेर्गुणश्च निपात्यते ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मेन्याः) वज्र का (मेनि) वज्र (असि) है। (श्रेयांसम्) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को (आप्नुहि) तू प्राप्त कर, (समम्) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (अति=अतीत्य) बढ़ कर (क्राम) पद आगे बढ़ा ॥ १ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने मनुष्य को बड़ी शक्ति दी है। जो पुरुष उन शक्तियों को परमेश्वर के विचार और अधिक गुण वालों के सत्संग से, काम में लाते हैं वे निर्विघ्न होकर अन्य पुरुषों से अधिक उपकारी होकर आनन्द भोगते हैं ॥ १ ॥

स्रक्त्यो॑सि प्रतिस॒रो॑सि प्रत्यभि॒चर॑णोऽसि ।
आप्नु॑हि श्रेयां॑स॒मति॑ स॒मं क्रा॑म ॥ २ ॥

स्रक्त्यः । असि । प्रतिऽसरः । असि । प्रतिऽअभिचरणः । असि ।
आप्नुहि । श्रेयांसम् । अति । समम् । क्राम ॥ २ ॥

भाषार्थः—तू (स्रक्त्यः) गतिशील (असि) है, (प्रतिसरः) प्रत्यक्ष चलने वाला (असि) है, और (प्रत्यभिचरणः) अभिचार [दुष्ट कर्म] का हटाने वाला (असि) है। (श्रेयांसम्) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को

हेतिर्वज्रनाम-निघ० २ । २० । वज्रस्य । आयुधस्य । **हेतिः** । अस्त्रम् । **मेन्याः** । **वीज्याज्वरिभ्यो निः** (उ० ४ । ४८) इति मिञ् हिंसायाम्-निः । मेनिर्वज्रनाम-निघ० २ । २० । वज्रस्य । **मेनिः** । वज्रः । **आप्नुहि** । प्राप्नुहि । **श्रेयांसम्** । **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** (पा० ५ । ३ । ५७) इति प्रशस्य-ईयसुन् । **प्रशस्यस्य श्रः** (पा० ५ । ३ । ६०) इति प्रशस्यशब्दस्य श्र इत्यादेशः । प्रशस्यतरम् । अधिकगुणवन्तं पुरुषं परमात्मानं मनुष्यं वा । **अति** । अतीत्य । उल्लङ्घ्य । **समम्** । समानम् । तुल्यबलिनम् । **क्राम** । क्रमु पादविक्षेपे-लोट् । अग्रे गच्छ ॥

२—**स्रक्त्यः** । स्रक, स्रकि गतौ "सरकना"-क्तिन् । स्रक्तिर्गतिः । **भवे छन्दसि** (पा० ४ । ४ । ११०) इति यत् । गतिमान् । उद्यमी । **प्रतिसरः** । प्रति+सृ गतौ-अच् । **चितः** (६ । १ । १६३) । इति अन्तोदात्तः । प्रति प्रत्यक्षं सरतीति । अग्रगामी । **प्रत्यभिचरणः** । प्रति+अभि+चर गमने, अदने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आप्नुहि) तू प्राप्त कर, (समम्) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (अति = अतीत्य) बढ़ कर (क्राम) पद आगे बढ़ा ॥ २ ॥

भावार्थः—जो पुरुषार्थी मनुष्य निष्कपट, सरल स्वभाव होकर अग्रगामी होता है वह संकटों को हटा कर आनन्द प्राप्त करता है। मन्त्र १ देखिये ॥ २ ॥

प्रति तमभिचर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ ३ ॥

प्रति । तम् । अभि । चर । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः । आप्नुहि । श्रेयांसम् । अति । समम् । क्राम ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (तम् प्रति) उस [दुराचारी पुरुष] की ओर (अभिचर) चढ़ाई कर (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) बैर करता है, और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रीति करते हैं। (श्रेयांसम्) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को (आप्नुहि) तू प्राप्त कर, (समम्) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (अति = अतीत्य) बढ़ कर (क्राम) पद आगे बढ़ा ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो छली कपटी धर्मात्माओं से अप्रीति करें और जिन दुष्कर्मियों से धर्मात्मा लोग घृणा करते हों, राजा उन दुष्टों को वश में करके दण्ड देवे ॥

२—सब मनुष्य शारीरिक और मानसिक रोगों को हटाकर सत्य धर्म में प्रवृत्त हों और प्रयत्न पूर्वक सदैव उन्नति करें ॥ ३ ॥

आचारे च–ल्युट् । प्रति, प्रतिकूलम् अभिचरणम् अभिचारो हिंसनं यस्मात् स प्रत्यभिचरणः । व्यभिचारनिवारकः । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

३—**प्रति** । अभिलक्ष्य । **अभि+चर** । अभिभव । नाशय । **यः** । दुराचारी पुरुष । **अस्मान्** । धर्मचारिणः । **द्वेष्टि** । द्विष अप्रीतौ-अदादित्वात् शपो लुक् । अप्रीत्या गृह्णाति । जिघांसति । **द्विष्मः** । अप्रीत्या गृह्णीमः । अन्यद् गतम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ ४ ॥

सूरिः । असि । वर्चःऽधाः । असि । तनूऽपानः । असि ।
आप्नुहि । श्रेयांसम् । अति । समम् । क्राम ॥ ४ ॥

भाषार्थः—हे राजन् ! तू (सूरिः) विद्वान् (असि) है, (वर्चोधाः) अन्न वा तेज का धारण करने वाला (असि) है, (तनूपानः) हमारे शरीरों का रक्षक (असि) है। (श्रेयांसम्) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को (आप्नुहि) तू प्राप्त कर, (समम्) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (अति= अतीत्य) बढ़कर (क्राम) पद आगे बढ़ा ॥ ४ ॥

भावार्थः—विद्वान् प्रतापी राजा अन्न आदि से अपनी प्रजा की सदा रक्षा और उन्नति करे ॥ ४ ॥

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ ५ ॥

शुक्रः । असि । भ्राजः । असि । स्वः । असि । ज्योतिः ।
असि । आप्नुहि । श्रेयांसम् । अति । समम् । क्राम ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(शुक्रः) तू वीर्यवान् (असि) है (भ्राजः) प्रकाशमान् (असि) है, (स्वः) तू स्वर्ग [सुखधाम] (असि) है, (ज्योतिः) [सूर्यादि के समान]

४—**सूरिः** । **सूङः क्रिः** (उ० ४ । ६४) इति षूङ् प्राणिप्रसवे, यद्वा, षू प्रेरणे क्रिः । सूते उत्पादयति, सुवति प्रेरयति वा सद्वाक्यानि । स्तोता—निघ० ३ । १६ । अभिज्ञः । पण्डितः । **वर्चोधाः** । वर्चस् + धाञ्–विच् । वर्चः द्र० अ० १ । ९ । ४ । वर्चसः, अन्नस्य तेजसो वा धाता । **तनूपानः** । तनू + पा रक्षणे–भावे ल्युट् । तनूनां पानं रक्षणं यस्मात् सः । शरीररक्षकः ॥

५—**शुक्रः** । **ऋज्रेन्द्राग्रवज्र०** (उ० २ । २८) इति शुच दीप्तौ–रन् । शुक्रम्=पुंस्त्वम् । वीर्यम् । तेजः । उदकम्–निघ० १ । १२ । ततः **अर्श आदिभ्यो ऽच्** (पा० ५ । २ । १२७) इति अच् । यद्वा, शुच–क्विप् । रो मत्वर्थीयः । वीर्यवान् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेजः स्वरूप (असि) है। (श्रेयांसम्) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को (आप्नुहि) तू प्राप्त कर, (समम्) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (अति = अतीत्य) बढ़ कर (क्राम) पद आगे बढ़ा ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजा महाशक्तिमान्, प्रतापी, और ऐश्वर्यवान् ईश्वर पर श्रद्धालु होकर अपनी और प्रजा की सदा वृद्धि करे ॥ ५ ॥

सूक्तम् १२ ॥

१—८ ॥ विश्वेदेवा देवताः । १—६ त्रिष्टुप्, ७, ८ अनुष्टुपछन्दः ॥

सर्वरक्षोपदेशः—सबकी रक्षा के लिए उपदेश ॥

द्यावापृथिवी उर्व१न्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः ।
उतान्तरिक्षमुरु वातगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने ॥१॥

द्यावापृथिवी इति । उरु । अन्तरिक्षम् । क्षेत्रस्य । पत्नी । उरुऽगायः । अद्भुतः । उत । अन्तरिक्षम् । उरु । वातऽगोपम् । ते । इह । तप्यन्ताम् । मयि । तप्यमाने ॥ १ ॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी = ०—व्यौ) सूर्य और पृथ्वी (उरु) विस्तीर्ण (अन्तरिक्षम्) मध्य में दीखने वाला आकाश, (क्षेत्रस्य) निवास स्थान, संसार की (पत्नी) रक्षा करने वाली [दिशा वा वृष्टि], (अद्भुतः) आश्चर्य स्वरूप (उरुगायः) विस्तृत स्तुति वाला परमेश्वर, (उत) और (उरु) विस्तीर्ण (वातगोपम्) प्राण वायु से रक्षा किया हुआ (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्त्ती

कान्तिमान्। **भ्राजः**। टुभ्राजृ दीप्तौ-अच्। दीप्यमानः। तेजस्वी। **स्वर्**। अ० २ । ५ । २ । सु+ऋ गतौ, यद्वा, स्वृ शब्दोपतापयोः-विच्। सुगमनः। शत्रूपतापकः। स्वर्गः। सुखप्रदः। **ज्योतिः** । अ० १ । ६ । १ । द्युत दीप्तौ-इसिन्। दस्य जः। (द्र० उ० २ । ११०) तेजः। प्रकाशः॥

१-द्यावापृथिवी । अ० २ । १ । ४ । **ईद्देद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** (पा० १ । १ । ११) इति सन्धिविषये प्रकृतिभावः। सूर्यभूमी। **उरु** । **महति ह्रस्वश्च** (उ० १ । ३१) इति ऊर्णुञ् आच्छादने-कुः नुलोपो ह्रस्वश्च। महत्। वड्रम्। **अन्तरिक्षम्** । अ० १ । ३० । ३ । अन्तर् +ईक्ष दर्शने -घञ्। आकाशम्। अन्तःकरणम्। **क्षेत्रस्य** । **गुधृवीपचिवचि०** (उ० ४ । १६७) इति क्षि निवासगत्यैश्वर्येषु- त्र। निवासस्थानस्य संसारस्य भूमेर्वा। क्षियन्ति निवसन्ति अस्मिन्निति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तः करण [ये सब जो देव हैं] (ते) वे सब (इह) यहाँ पर [इस जन्म में] (मयि) मुझ (तप्यमाने) तपश्चर्या करते हुये पर (तप्यन्ताम्) ऐश्वर्य वाले होवें ॥ १ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि नियमों के पालन से विद्या ग्रहण करके देख भाल करता है, परमेश्वर और सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थ उस पुरुषार्थी पुरुष को ऐश्वर्य प्राप्त कराते हैं ॥ १ ॥

इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति । पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥ २ ॥

इदम् । देवाः । शृणुत । ये । यज्ञियाः । स्थ । भरत्ऽवाजः । मह्यम् । उक्थानि । शंसति । पाशे । सः । बद्धः । दुःऽइते । नि । युज्यताम् । यः । अस्माकम् । मनः । इदम् । हिनस्ति ॥ २ ॥

भाषार्थः—(देवाः) हे दिव्य गुण वाले महात्माओ ! (ये) जो तुम (यज्ञियाः) सत्कार योग्य (स्थ) हो, (इदम्) यह (शृणुत) सुनो, (भरद्वाजः) पुष्टि-

---

क्षेत्रमुक्तं लोकत्रयम्–इति सायणोऽपि । **पत्नी** । **पत्युर्नो यज्ञसंयोगे** (पा० ४ । १ । ३३) इति पतिशब्दस्य नकारादेशः, ङीप् च । पालयित्री दिशा वृष्टिर्वा । **उरुगायः** । उरु+गै गाने-घञ् । उरुभिर्महद्भिः, यद्वा, उरु विस्तीर्णं गीयते सः । बहुगीयमानः । **अद्भुतः** । **अदि भुवो डुतच्** (उ० ५ । ?) अततीति । अत सातत्यगमने-क्विप् । अत्, अद् वा आश्चर्यार्थे [१] । अत्+भू सत्तायां, भा दीप्तौ वा डुतच् । आश्चर्यस्वरूपः । अपूर्वः । **उत** । अपि च । **वातगोपम्** । वातः प्राणवायुः, गोपाः गोपयिता यस्य, यद्वा प्राणवायुना गोप्यमानं धार्यमाणं यत्तद् अन्तरिक्षं हृदयम् । **ते** । सर्वे पदार्थाः । **इह** । अस्मिन् जन्मनि । **तप्यन्ताम्** । तप उपतापे ऐश्वर्ये च । दिवादिः । आत्मनेपदी–लोट् । ऐश्वर्यवन्तो भवन्तु । पश्यत–"तप्यते धनी, ईश्वरः स्यादित्यर्थः ।" **मयि** । उपासके । **तप्यमाने** । तप उपतापे–कर्मणि शानच् । ब्रह्मचर्यादि–तपश्चर्यां कुर्वति क्लिश्यमाने वा ॥

२—इदम् । **इन्देः कमिन्नलोपश्च** (उ० ४ । १५७) इति इदि परमैश्वर्ये कमिन् । पुरोवर्त्ति वक्ष्यमाणं वा वाक्यम् । **देवाः** । दीप्यमानाः । दातारः । विद्वांसः ।

---

१. अद्भुतम् अभूतमिव । द्र० निरु० १ । ६ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारक अन्न एवं बल वा विज्ञान का धारण करने वाला, परमेश्वर (मह्यम्) मुझ को (उक्थानि) वेद वचनों का (शंसति) उपदेश करता है। (सः) वह मनुष्य (दुरिते) बड़े कठिन (पाशे) फाँस में (बद्धः) बँधा हुआ (नि+युज्यताम्) आज्ञा में रहे, (यः) जो मनुष्य (अस्माकम्) हमारे (इदम्) इस [सन्मार्ग में लगे हुये] (मनः) मन को (हिनस्ति) सतावे ॥ २ ॥

भावार्थः—विद्वानों को परस्पर मिल कर ब्रह्मविचार करना चाहिये। वह सर्वशक्तिमान् दुष्कर्मियों को क्लेश और सुकर्मियों को आनन्द देता है। उस सर्वपोषक ने यह आज्ञा वेद द्वारा मनुष्य मात्र के लिए प्रकाशित की है ॥ २ ॥

इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत्त्वा हृदा शोचता जोहवीमि।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥३॥

इदम् । इन्द्र । शृणुहि । सोमऽप । यत् । त्वा । हृदा । शोचता । जोहवीमि । वृश्चामि । तम् । कुलिशेनऽइव । वृक्षम् । यः । अस्माकम् । मनः । इदम् । हिनस्ति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(सोमप) हे ऐश्वर्य के रक्षक [वा अमृत पीने वाले वा अमृत

शृणुत । श्रु श्रवणे । आकर्णयत । **यज्ञियाः** । **यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ** (पा० ५ । १ । ७१) इति यज्ञशब्दात्-घप्रत्ययः । यज्ञार्हाः । पूजनीयाः । **स्थ** । भवथ । **भरद्वाजः** । भरत्+वाजः । भृञ् धारणपोषणयोः—शतृ । **अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्** (पा० ३ । ३ । १९) इति वज गतौ-घञ् । वाजः, अन्नम्-निघ० २ । ७ । बलम् निघ० २ । ९ । भरत् देवानां पोषकं वाजो हविर्लक्षणम् अन्नं यस्य सोयं भरद्वाजः, इति सायणः । बिभर्तीति भरन् वाजमन्नं यः स भरद्वाजोऽन्नधर्त्ता-इति महीधरो यजुर्वेदभाष्ये १३ । ५५ । वाजोऽन्नं विज्ञानं वा बिभर्त्ति येन-इति दयानन्दसरस्वती-तत्र यजुर्वेदभाष्ये । अन्नस्य बलस्य विज्ञानस्य वा भर्त्ता धारकः पोषको वा परमेश्वरः । **मह्यम्** । मदर्थम् । **उक्थानि** । **पाततुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्थक्** (उ० २ । ७) इति वच कथने-थक् । शास्त्राणि । **शंसति** । शंसु हिंसास्तुत्योः कथने च । कथयति, उपदिशति । **पाशे** । अ० २ । ८ । १ । बन्धने । **बद्धः** । बन्ध बन्धे-क्तः । निरुद्धः । निगडितः । **दुरिते** । इण् क्त । दुर्गते । अतिकठिने । **नि+युज्यताम्** । युज संयमे बन्धने-कर्मणि लोट् । नियतो बद्धो भवतु । **मनः** । मन बोधे-असुन् । मननात्मकं चित्तम् । हृदयम् । **इदम्** । सन्मार्गप्रवृत्तम् । **हिनस्ति** । हिसि हिंसायाम् । बाधते । क्लिश्नाति ॥

३—इदम् । म० २ । वक्ष्यमाणं वाक्यम् । **इन्द्र** । हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन् !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रक्षा करने वाले] (इन्द्र) राजन् ! परमेश्वर ! (इदम्) इस [वचन] को (शृणुहि) तू सुन (यत्) क्योंकि (शोचता) शोक करते हुए (हृदा) हृदय से (त्वा) तुझे (जोहवीमि) आवाहन करता हूँ। (इव) जैसे (कुलिशेन) कुठारी से (वृक्षम्) वृक्ष को [काटते हैं वैसे ही] मैं (तम्) उस [मनुष्य] को (वृश्चामि) काट डालूं (यः) जो (अस्माकम्) हमारे (इदम्) [सन्मार्ग में लगे हुए] (मनः) मन को (हिनस्ति) सतावे ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे प्रजा गण दुष्टों से पीड़ित होकर राजा के सहाय से उद्धार पाते हैं, वैसे ही बलवान् राजा उस परम पिता जगदीश्वर के आवाहन से पुरुषार्थ करके अपने कष्टों से छुटकारा पावे ॥ ३ ॥

शृणुहि । उतश्च प्रत्ययात्० इत्यत्र छन्दसि वेति वक्तव्यम् (वा० पा० ६ । ४) १०६ । इति हेरलुक् । शृणु । **सोमप । अर्त्तिस्तुसुहुसृधृक्षि०** (उ० १ । १४०) इति षु गतौ, ऐश्वर्यप्रसवयोश्च-मन् । सवति ऐश्वर्यहेतुर्भवतीति सोमः । **आतोऽनुपसर्गे कः** (पा० ३ । २ । ३) इति सोम+पा रक्षणे पाने वा-क । हे सोमस्य ऐश्वर्यस्य रक्षक ! यद्वा । अमृतस्य मोक्षसुखस्य पानशील रक्षक वा ! **यत् ।** यतः । यस्मात् कारणात् । **त्वा ।** त्वामिन्द्रम् । **हृदा ।** हृञ् हरणे-क्विप् तुक् च । हृदयेन । मनसा । **शोचता ।** शुच शोके-शतृ । शोकार्तेन । दुःखितेन । **जोहवीमि ।** ह्वेञ् आह्वाने-यङ्लुगन्तात् लडुत्तमैकवचने । **ह्वः सम्प्रसारणम्** (पा० ६ । १ । ३२) **अभ्यस्तस्य च** (पा० ६ । १ । ३३) इति सम्प्रसारणम् । पुनः पुनराह्वयामि । **वृश्चामि ।** ओव्रश्चू छेदने । तुदादित्वात् शः । छिनद्मि । **कुलिशेन ।** कुल बन्धे संहतौ च-इन्, किच्च । कुलिः=हस्तः । यद्वा । कुल अस्त्यर्थे इनि । कुली पर्वतः । कुलौ हरते शेते वर्तते, शीङ् शयने-ड । यद्वा । कुलिनं संहतिवन्तं पर्वतं पर्ववन्तम् अतिदृढं श्यति, शो तनूकरणे-ड । वज्रेण । **वृक्षम् । स्नुव्रश्चिकृत्यृषिभ्यः कित्** (उ० ३ । ६६) इति ओव्रश्चू छेदने-स प्रत्ययः । स च कित् । यद्वा । **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** (पा० । ३ । १ । १३५) इति वृक्ष वरणे-कः । वृक्षते स्वीकरोति श्रान्तं जनं स वृक्षः । वृश्चति परिश्रमम् । यद्वा । विटपम्, पादपम् । अन्यत् व्याख्यातम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ।
इष्टापूर्तमवतु नः पितृणामामुं ददे हरसा दैव्येन ॥ ४ ॥

अशीतिऽभिः । तिसृऽभिः । सामऽगेभिः । आदित्येभिः । वसुऽभिः । अङ्गिरःऽभिः । इष्टापूर्तम् । अवतु । नः । पितृणाम् । आ । अमुम् । ददे । हरसा । दैव्येन ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(तिसृभिः) तीन (अशीतिभिः) व्याप्तियों [अर्थात् ईश्वर, जीव, और प्रकृति] से (सामगेभिः = ०—गैः) मोक्ष विद्या [ब्रह्म विद्या] के गाने वाले, (आदित्येभिः = ०—त्यैः) सर्वथा दीप्यमान, (वसुभिः) प्रशस्त गुण वाले (अङ्गिरोभिः) ज्ञानी पुरुषों के साथ (पितृणाम्) रक्षक पिताओं

४—अशीतिभिः । वसेस्तिः (उ० ४ । १८०) इति अशूङ् व्याप्तौ-ति छन्दसि इडागमो दीर्घश्च । अथवा, **तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके** (पा० ७ । ३ । ९५) इति बाहुलकाद् ईडागमः । व्याप्तिभिः, ईश्वरजीवप्रकृतिरूपाभिः । **तिसृभिः । त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ** (पा० ७ । २ । ९९) इति त्रिशब्दस्य तिसृ इत्यादेशः । त्रिसंख्याकाभिः । **सामगेभिः । सातिभ्यां मनिन्मनिणौ** (उ० ४ । १५३) इति षो नाशे-मनिन् । स्यति नष्टीकरोति पापं दुःखमिति साम, सर्वैर्गीयमानो वेदः । साम + गै—उ । **बहुलं छन्दसि** (पा० ७ । १ । १) इति भिस ऐस्भावो न । सामगैः । वेदपाठिभिः । ब्राह्मणैः । **आदित्येभिः ।** द्र० अ० १ । ९ । १ । आङ + डुदाञ् दाने, दीपी दीप्तौ वा-यक् निपात्यते । आदातृभिर्ग्रहीतृभिर्गुणानाम् । प्रकाशमानैः । सूर्यवत्तेजस्विभिः । **वसुभिः ।** द्र० अ० १ । ९ । १ । वस आच्छादने, निवासे, दीप्तौ च—उप्रत्ययः । **इवसो वसीयःश्रेयसः** (पा० ५ । ४ । ८०) वसुशब्दः प्रशस्तवाची—इति भट्टोजिदीक्षितः सिद्धान्तकौमुद्याम् । प्रशस्तैः । श्रेष्ठैः । **अङ्गिरोभिः । अङ्गेरसिः** (उ० ४ । २३६) इति अगि गतौ-असिप्रत्ययः, रुडागमश्च । अंगनैः । व्यापनशीलैः ज्ञानिभिः । महर्षिभिः । **इष्टापूर्त्तम् ।** इष्टम् च पूर्त्तं च द्वयोः समाहारः, पूर्वपददीर्घः । यज देवपूजादानसङ्गतिकरणेषु, इषु वाञ्छे वा = भावे क्तः । इज्यते इष्यते वा यत्तद् इष्टम् । पॄ पालने-क्तः । **न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम्** (पा० ८ । २ । ५७) इति तस्य नत्वप्रतिषेधः । यज्ञवेदाध्ययनान्नप्रदानादि पुण्यकर्म । यथा शब्दकल्पद्रुमकोषे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पिता के समान उपकारियों] के (इष्टापूर्तम्) यज्ञ, वेदाध्ययन, अन्नदानादि पुण्य कर्म (नः) हमें (अवतु) तृप्त करें, (दैव्येन) विद्वानों के सम्बन्धी (हरसा) तेज से (अमुम्) उस [दुष्ट] को (आ+ददे) मैं पकड़ता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थः—राजा बहुत से सत्यवादी, सत्यपराक्रमी, सर्वहितैषी, निष्कपटी, विद्वानों की सम्मति और सहाय, बड़े-बड़े पुरुषों के पुण्य कर्मों के अनुकरण, तथा दुष्टों को दण्ड दान से प्रजा में शान्ति स्थापित करके सदा सुखी रहे ॥ ४ ॥

द्यावापृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वे देवासो अनु मा रभध्वम् । अङ्गिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता ॥ ५ ॥

द्यावापृथिवी इति । अनु । मा । आ । दीधीथाम् । विश्वे । देवासः । अनु । मा । आ । रभध्वम् । अङ्गिरसः । पितरः । सोम्यासः । पापम् । आ । ऋच्छतु । अपऽकामस्य । कर्ता ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी = ०—व्यौ) हे सूर्य और पृथिवी ! (मा) मुझ पर (अनु=अनुलक्ष्य) अनुग्रह करके (आ) भले प्रकार (दीधीथाम्)

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ॥ १ ॥
वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च ।
अन्नप्रदानमारामाः पूर्त्तमित्यभिधीयते ॥ २ ॥

अवतु । रक्षतु । तर्पयतु । **नः** । अस्मान् । **पितॄणाम्** । अ० १ । २ । १ । पालयितॄणाम् । रक्षकानाम् । **आददे** । गृह्णामि । स्वीकरोमि । **अमुम्** । तं शत्रुं पूर्वमन्त्रोक्तम् । **हरसा** । हृञ् हरणे—असुन् । हरो हरतेर्ज्योतिर्हर उच्यते—निरु० ४ । १९ । हरः क्रोधः—निघ० २ । १३ । ज्योतिषा । तेजसा । **दैव्येन** । द्र० अ० २ । २ । २ । देव—यञ् । देवसम्बन्धिना ॥

५—**द्यावापृथिवी** । म० १ । हे सूर्यभूमी । सर्वे पदार्थाः । **अनु** । **अनुर्लक्षणे** (पा० १ । ४ । ८४) इति अनोः कर्मप्रवचनीयता । **कर्मप्रवचनीययुक्ते**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों प्रकाशित हों, (विश्वे) हे सब (देवासः=०—वाः) उत्तम गुण वाले महात्माओ ! (मा) मुझ पर (अनु) अनुग्रह करके (आ) भले प्रकार (रभध्वम्) उत्साही बनो। (अङ्गिरसः) हे ज्ञानी पुरुषो ! (पितरः) हे रक्षक पिताओ ! (सोम्यासः=०—म्याः) हे सौम्य, मनोहर गुण वाले विद्वानों ! (अपकामस्य) अनिष्ट का (कर्त्ता) कर्त्ता (पापम्) दुःख (आ+ऋच्छतु) प्राप्त करे ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिए कि सूर्य और पृथिवी अर्थात् संसार के सब पदार्थ अनुकूल रहें, और बड़े २ उपकारी विद्वानों के सत्संग से डाकू उचक्के आदि को यथोचित दण्ड देकर और वश में करके शान्ति रक्खे ॥५॥

अतीव॒ यो म॑रुतो॒ मन्य॑ते नो॒ ब्रह्म॑ वा॒ यो नि॒न्दि॑षत्क्रि॒यमा॑णम् । तपूँ॑षि॒ तस्मै॑ वृजि॒नानि॑ सन्तु ब्रह्म॒द्विषं॒ द्यौर॑भि॒संत॑पाति ॥ ६ ॥

अति॑ऽइव । यः । म॒रुतः॑ । मन्य॑ते । नः॒ । ब्रह्म॑ । वा॒ । यः । नि॒न्दि॑षत् । क्रि॒यमा॑णम् । तपूँ॑षि । तस्मै॑ । वृजि॒नानि॑ । स॒न्तु॒ । ब्रह्म॑ऽद्विषम् । द्यौः । अ॒भि॒ऽसंत॑पाति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(मरुतः) हे शत्रुओं को मारने वाले शूरो ! (यः) जो [दुष्ट

द्वितीया (पा० २ । ३ । ८ ।) इति मा इत्यस्य द्वितीया । अनुलक्ष्य । **मा** । माम् । **दीधीथाम्** । दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः—लोट्, अदादित्वात् शपो लुक् । दीप्येताम् । **विश्वे** । सर्वे । **देवासः** । जसि असुगागमः । हे देवाः । महात्मानः । **आ+रभध्वम्** । रभ राभस्ये=उत्सुकीभावे—लोट् । उत्सुका भवत । उद्युक्ता भवत—इति सायणाचार्यः । **अङ्गिरसः** । म० ४ । हे ज्ञानिनः । महर्षयः । **पितरः** । म० ४ । हे पालकाः । पितृवत् सत्करणीयाः । **सोम्यासः** । **तस्मै हितम्** (पा० ५ । १ । ५) इति यत् । **आज्जसेरसुक्** (पा० ७ । १ । ५०) इति असुक् । हे सोम्याः । सोमाय ऐश्वर्याय हिताः । मनोहराः प्रियदर्शनाः । **पापम्** । **पानिविषिभ्यः** पः (उ० ३ । २३) इति पा रक्षणे-पप्रत्ययः । पाति रक्षति अस्मादात्मानमिति । अधर्मम् । पातकम् । दुःखम् । **आ+ऋच्छतु** । आर्च्छतु । ऋच्छ गतौ । **उपसर्गादति धातौ** (पा० ६ । १ । ९१) इति गुणापवादे वृद्धिः । प्राप्नोतु । **अपकामस्य** । अप नञर्थे+कम इच्छायाम्—घञ् । अनिष्टस्य । अपकारस्य । अत्याचारस्य । **कर्त्ता** । कृञ्—तृच् । कारकः, प्रयोजकः ॥

६—अतीव । **अतिरतिक्रमणे च** (पा० १ । ४ । ९५) इव अवधारणे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष] (नः) हम पर (अतीव=अतीत्य एव) हाथ बढ़ा कर (मन्यते= मानयते) मान करे, (वा) अथवा (यः) जो (क्रियमाणम्) उपयुक्त किये हुये (ब्रह्म) [हमारे] वेद विज्ञान वा धन की (निन्दिषत्) निन्दा करे, (वृजिनानि) [उसके] पाप कर्म (तस्मै) उस के लिये (तपूंषि) तापकारी [तुपक रूप] (सन्तु) हों। (द्यौः) दीप्यमान परमेश्वर (ब्रह्मद्विषम्) वेद विरोधी जन को (अभिसंतपाति) सब प्रकार से सन्ताप दे ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य वेदों की सर्वोपकारी आज्ञाओं का उल्लंघन करे, उसे शूरवीर पुरुष योग्य दण्ड देवें, वह दुराचारी परमेश्वर की न्यायव्यवस्था से भी कष्ट भोगता है ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद ६ । ५२ । २ में है ॥

सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा ।
अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरंकृतः ॥ ७ ॥

सप्त । प्राणान् । अष्टौ । मन्यः । तान् । ते । वृश्चामि । ब्रह्मणा ।
अयाः । यमस्य । सदनम् । अग्निऽदूतः । अरम्ऽकृतः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—[हे दुष्ट जीव] (ते) तेरे (तान्) उन [प्रसिद्ध] (सप्त) सात

प्रादिसमासः । अत्येव । अतिशयेन अतिक्रम्य तिरस्कृत्य । **यः** । विरोधीजनः । **मरुतः** । अ० १ । २० । १ । मृङ् प्राणत्यागे अन्तर्भावितण्यर्थः—उति । हे शत्रु-नाशकाः । शूराः । **मन्यते** । मन गर्वे चुरादिः, छन्दसि दिवादिः । मानयते । गर्वयते । **नः** । अस्मान् । **ब्रह्म** । अ० १ । ८ । ४ । वेदविज्ञानम् । धनम् । **निन्दिषत्** । णिदि कुत्सायाम्, इदित्त्वान्नुम् । **लेटोऽडाटौ** (पा० ३ । ४ । ९४) इत्यडागमः । **सिब् बहुलं लेटि** (पा० ३ । १ । ३४) इति सिप् । निन्देत् । दूषयेत् । **क्रियमाणम्** । कृञ् करणे—कर्मणि शानच्, मुक् च । अनुष्ठीयमानम् । विधीयमानम् । **तपूंषि** । **अर्त्तिपॄवपियजितनिधनितपिभ्यो नित्** (उ० २ । ११७) इति तप दाहे—उसि, नित्वात् आद्युदात्तः । तापकानि तेजांसि आयुधानि वा—इति श्री सायणः । **वृजिनानि** । **वृजेः किच्च** (उ० २ । ४७) इति वृजी वर्जने—इनच् । धर्मवर्जकानि पापकर्माणि । **ब्रह्मद्विषम्** । ब्रह्म + द्विष अप्रीतौ—क्विप् । वेदविरोधिनम् । **द्यौः** । **गमेर्डोः** (उ० २ । ६७) इति द्युत दीप्तौ—डो । **गोतो णित्** (पा० ७ । १ । ९०) इति वृद्धिः । द्योतमानः परमेश्वरः । **अभि-सम्-तपाति** । तप दाहे—लेट् । आडागमः । सर्वतः संदहेत् ॥

७—**सप्त** । **सप्यशूभ्यां तुट् च** (उ० १ । १५७) इति षप समवाये-कनिन्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्राणान्) प्राणों को और (अष्टौ) आठ (मन्यः=मन्याः) नाड़ियों को (ब्रह्मणा) वेद नीति से (वृश्चामि) मैं तोड़ता हूं। तू (अग्निदूतः) अग्नि को दूत बनाता हुआ और (अरंकृतः) शीघ्रता करता हुआ (यमस्य) न्यायकारी वा मृत्यु के (सादनम्=सदनम्) घर में (अयाः) आ पहुंचा है ॥ ७ ॥

भावार्थः—सात प्राण अर्थात् दो आंख, दो नथनें, दो कान और एक मुख एवं आठ प्रधान नाड़ियाँ वा अवयव अर्थात् दो दो दोनों भुजाओं और दोनों टांगों के हैं। तात्पर्य यह है कि दण्ड के द्वारा शत्रु के अंगों को छेद कर अनेक क्लेशों के साथ भस्म करके शीघ्र नाश कर देना चाहिये कि अन्य पुरुष दुष्ट कर्म न करने पावें ॥ ७ ॥

टिप्पणी—लिपि प्रमाद[1] से 'मन्याः' के स्थान में 'मन्यः' पद जान पड़ता है।

अथर्ववेद १०।२।६ देखिये—

कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्।
येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥अ० १०।२।६॥

(कः) प्रजापति ने (शीर्षणि) मस्तक में (सप्त) सात (खानि) गोलक (वि+ततर्द) खोदे, (इमौ कर्णौ) यह दोनों कान, (नासिके) दो नथनें,

---

तुट् च। सप्त संख्याकान्। **प्राणान्**। प्र+अन प्राणने-करणे घञ्, प्राणिति जीवत्यनेन। शीर्षण्यानि कर्णनासिकादीन्द्रियानि। **अष्टौ**। **सप्यशूभ्यां तुट् च** (उ० १।१५७) इति अशू व्याप्तौ-कनिन्, तुट् च। **अष्टाभ्य औश्** (पा० ७।१।२१) इति औश्। अष्टसंख्याकाः। **मन्यः**। मन धृतौ-क्यप्, स्त्रियां टाप्। लिपिप्रमादेन[1] मन्याः इत्यस्य स्थाने मन्यः इति जातमनुमीयते। ग्रीवायाः पश्चात् शिराः। अत्र तु हस्तपादद्वयस्थान् अष्टप्रधानावयवान्। **वृश्चामि**। छिनद्मि। **ब्रह्मणा**। वेदज्ञानेन। धर्मेण। **अयाः**। या प्रापणे-लङ्। त्वं प्राप्तवानसि। **यमस्य**। यम प्रतिबन्धे-अच्, यमयति नियमयति जीवानां पुण्यापुण्यफलम्। न्यायकारिणः पुरुषस्य। मृत्योः। **सादनम्**। षदॢ गतौ-ल्युट्, सीदन्त्यत्र।

---

१. लिपि प्रमाद कहना ठीक नहीं। छान्दस ह्रस्वत्व होकर 'मन्यः' हो जायेगा। द्र० हमारी टि० पृ० २३७॥ सम्पा०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चक्षणी) दो आँखें, और (मुखम्) एक मुख। (येषाम्) जिनके (विजयस्य) विजय की (महिनि) महिमा में (चतुष्पादः) चौपाये और (द्विपदः) दो पाये जीव (पुरुत्रा) अनेक प्रकार से (यामम्) मार्ग (यन्ति) चलते हैं ॥

आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि ।
अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपि गच्छतु ॥ ८ ॥

आ । दधामि । ते । पदम् । सम्ऽइद्धे । जातऽवेदसि । अग्निः ।
शरीरम् । वेवेष्टु । असुम् । वाक् । अपि । गच्छतु ॥ ८ ॥

भाषार्थः—[हे दुराचारी] (ते) तेरे (पदम्) पद [वा स्थान] को (समिद्धे) जलती हुई (जातवेदसि) वेदना अर्थात् पीड़ा देने वाली अग्नि में (आ+दधामि) डाले देता हूँ। (अग्निः) अग्नि (शरीरम्) [तेरे] शरीर में (वेवेष्टु) प्रवेश करे, और (वाक्) वाणी (अपि) भी (असुम्) [अपने] प्राण [अंश] में (गच्छतु) जावे ॥ ८ ॥

सांहितिको दीर्घः। सदनम्। गृहम्। **अग्निदूतः**। बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्। अग्निर्दूतः अनुचरो यस्य स तथोक्तः। **अरंकृतः**। ऋ गतौ–अच्, इयर्त्ति गच्छत्यनेनेति अरं शीघ्रम्। शीघ्रीकृतः। शीघ्रं न्यायालये प्राप्तः ॥

८—**आ**। समन्तात्। **दधामि**। स्थापयामि। **ते**। तव। त्वदीयम्। **पदम्**। **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** (पा० ३। १। १३४) इति पद गतौ अच्। व्यवसायम्, स्थानम्, पादम्। **समिद्धे**। सम्+इन्धी दीप्तौ–क्तः। प्रदीप्ते। **जातवेदसि**। द्र० अ० १। ७। २। जात+विद वेदनायां, ज्ञाने, सत्तायाम्, यद्वा विदॢ लाभे–असुन्। जातं वेदो वेदना दुःखं यस्मात् स जातवेदाः, तस्मिन् पीडाजनके अग्नौ। **अग्निः**। पावकः। **शरीरम्**। **कृशपृकटिपटिशौटिभ्य ईरन्** (उ० ४। ३०) इति शॄ हिंसायाम्–ईरन्। शीर्य्यते हिंस्यते रोगादिना यत्। गात्रम्। कायम्। **वेवेष्टु**। विष्ऌ व्याप्तौ। जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः। **निजां त्रयाणां गुणः श्लौ** (पा० ७। ४। ७५) प्रविशतु। **असुम्**। **शॄस्वृस्निहित्रप्यसिवसि०** (उ० १। १०) इति असु क्षेपणे–उप्रत्ययः। असुरिति प्राणनामास्तः शरीरे भवति (निरु० ३। ८) प्राणम्। स्वकारणम्। **वाक्**। **क्विप् वचिप्रच्छिश्रि०** (उ० २।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—दुराचारी मनुष्य राजदण्ड और ईश्वर नियम से ऐसा शारीरिक और मानसिक ताप पाता है जैसे कोई प्रज्वलित अग्नि में जल कर कष्ट पाता है ॥ ८ ॥

सूक्तम् १३ ॥

१—५ । ब्रह्मचारी देवता ॥ १—३, ५ त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्छन्दः ॥

ब्रह्मचारिणः समावर्त्तने वस्त्रादिधारणोपदेशः—ब्रह्मचारी के समावर्त्तन, विद्या समाप्ति पर वस्त्र आदि के लिए उपदेश ।

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् ॥१॥

आयुःऽदाः । अग्ने । जरसम् । वृणानः । घृतऽप्रतीकः । घृतऽपृष्ठः । अग्ने । घृतम् । पीत्वा । मधु । चारु । गव्यम् । पिताऽइव । पुत्रान् । अभि । रक्षतात् । इमम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे तेजस्विन् परमेश्वर ! तू (आयुर्दाः) जीवन दाता और (जरसम्) स्तुति योग्य कर्म को (वृणानः) स्वीकार करने वाला, (घृतप्रतीकः) प्रकाश स्वरूप और (घृतपृष्ठः) प्रकाश [वा सार तत्त्व] से सींचने वाला है । (अग्ने) हे तेजस्विन् ईश्वर ! [अग्नि के समान] (मधु)

---

५७) इति वच परिभाषणे–क्विप्, दीर्घोऽसम्प्रसारणं च । वागिन्द्रियम् । गच्छतु । प्राप्नोतु ॥

१—आयुर्दाः । आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च (पा० ३ । २ । ७४) इति आयुः+दा दाने–विच् । आयुः–अ० १ । ३० । ३ । जीवनदाता । **अग्ने** । हे तेजस्विन् परमेश्वर ! **जरसम्** । अ० १ । ३० । ३ । जरस्–अर्शआद्यच् । स्तुत्यम् । प्रशंसनीयं कर्म । **वृणानः** । वृङ् संभक्तौ–लटः शानच् । **श्नाभ्यस्तयोरातः** (पा० ६ । ४ । ११२) इत्याकारलोपः । संभजमानः । स्वीकुर्वाणः । **घृतप्रतीकः** । **अश्विघृसिभ्यः क्तः** (उ० ३ । ८९) इति घृ भासि सेके च–क्तः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुर, (चारु) निर्मल, (गव्यम्) गौ के (घृतम्) घृत को (पीत्वा) पीकर, (पिता इव) पिता के समान (पुत्रान्) पुत्रों को (इमम्) इस [ब्रह्मचारी] की (अभि) सब ओर से (रक्षतात्) रक्षा कर ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे अग्नि गौ के घृत, काष्ठ आदि हवन सामग्री से प्रज्वलित होकर, हवन, अन्न संस्कार, शिल्प प्रयोग आदि में उपयोगी होता है, वैसे ही परमेश्वर वेद विद्या के और बुद्धि, अन्न आदि पदार्थों के दान से मनुष्यों पर उपकार करता है, इसी प्रकार मनुष्यों को परस्पर उपकारी होना चाहिये ॥१॥

परि॑ धत्त ध॒त्त नो॒ वर्च॑से॒मं ज॒रामृ॑त्युं कृणुत दी॒र्घमायुः॑ । बृह॒स्पतिः॒ प्राय॑च्छ॒द् वास॑ ए॒तत् सोमा॑य॒ राज्ञे॒ परि॑धात॒वा उ॑ ॥ २ ॥

परि॑ । ध॒त्त॒ । ध॒त्त । नः॒ । वर्च॑सा । इ॒मम् । ज॒राऽमृ॑त्युम् । [ज॒राऽअमृ॑त्युम्] । कृ॒णु॒त॒ । दी॒र्घम् । आयुः॑ । बृह॒स्पतिः॑ । प्र । अ॒य॒च्छ॒त् । वासः॑ । ए॒तत् । सोमा॑य । राज्ञे॑ । परि॑ऽधात॒वै । ऊँ॒ इति॑ ॥ २ ॥

भाषार्थः—[हे विद्वानों !] (नः) हमारे लिये (इमम्) इस [ब्रह्मचारी] को (परि+धत्त) वस्त्र पहराओ, और (वर्चसा) तेज वा अन्न से (धत्त)

अलीकादयश्च (उ० ४ । २५) इति प्रति+इण् गतौ-कीकन् । घृताः दीप्ताः प्रतीका अङ्गानि यस्य सः । प्रकाशस्वरूपः । **घृतपृष्ठः** । **तिथपृष्ठगूथयूथप्रोथाः** (उ० २ । १२) इति पृषु सेके-थक्प्रत्ययान्तो निपातः । घृतस्य पृष्ठं सेचनं यस्मात् सः । प्रकाशेन सेचकः । **घृतम्** । आज्यम् । **पीत्वा** । पानेन स्वीकृत्य । **मधु** । मन-उ ।[1] मधुरम् । **चारु** । अ० २ । ५ । १ । मनोहरम् । **गव्यम्** । **गोपयसोर्यत्** (पा० ४। ३। १६०) इति गो–यत् । **वान्तो यि प्रत्यये** (पा० ६ । १ । ७९) इति अव् । गोसम्बन्धि । **पिता** । पाता पालकः, जनकः । **इव** । यथा । **पुत्रान्** । द्र० अ० १ । ११५ । पूङ् पवने–क्त्र । शुभकर्मणा मातापित्रादिशोधकान् । तनयान्, अपत्यानि । **अभि** । सर्वतः । **रक्षतात्** । हेस्तातङ् आदेशः । पाहि । **इमम्** । एनमुपासकम् । ब्रह्मचारिणम् ॥

२—परिधत्त । अन्तर्भावितण्यर्थः । परिधापयत । वस्त्रेण अलङ्कुरुत । **धत्त** । पोषयत । **नः** । अस्मभ्यम् । अस्मदर्थम् । **वर्चसा** । तेजसा । अन्नेन

---

१. मनेर्धश्छन्दसि (उ० २ । ११६) ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुष्ट करो, [तथा इस का] (दीर्घम्) बड़ा (आयुः) आयु, वा आय, अर्थात् धन प्राप्ति, और (जरामृत्युम् = जरा-अमृत्युं जरा-मृत्युं वा) स्तुति से अमरपन, अथवा स्तुति वा बुढ़ापे से मृत्यु[1] (कृणुत) करो। (बृहस्पतिः) बड़े बड़े [विद्वानों] के रक्षक [राजा वा प्रधानाचार्य] ने (एतत्) यह (वासः) वस्त्र (सोमाय) सूर्य समान (राज्ञे) ऐश्वर्य वाले [ब्रह्मचारी] को (उ) ही (परिधातवे) धारण करने के लिये (प्र+अयच्छत्) दान किया है ॥ २ ॥

भावार्थः—जब ब्रह्मचारी विद्या समाप्त कर चुके, तब विद्वान् पुरुष परस्पर उपकार के लिए उसकी योग्यता का सत्कार करें, और राजा वा आचार्य विशेष वस्त्र आदि से अलंकृत करके उस का मान बढ़ावें, जिससे विद्या का प्रचार और आपस में प्रीति अधिक होवे ॥

जैसे विद्वान् पुरुष विद्यादि चिह्नों से अलंकृत होकर पुरुषों में दर्शनीय होता है, वैसे ही मनुष्य शरीर का चोला पाकर सृष्टि में सर्व श्रेष्ठ गिना जाता है ॥ २ ॥

टिप्पणी—यह मन्त्र अथर्ववेद १९ । २४ । ३ । में भी है।

निघ० २ । ७ । **इमम्** । दर्शनीयं ब्रह्मचारिणम् । **जरामृत्युम्** । जरा-अमृत्युं जरा-मृत्युं वा । **षिद्भिदादिभ्योऽङ्** (पा० ३ । ३ । १०४) इति जॄष् वयोहानौ वेदे तु स्तुतौ[2] च-अङ् । **ऋदृशोऽङि गुणः** (पा० ७ । ४ । १६) इति गुणः । टाप् । जरा स्तुतिर्जरतेः स्तुतिकर्मणः—निरु० १० । ८ । **मृजिमृङ्भ्यां युकृत्युकौ** (उ० ३ । २१) इति मृङ् प्राणत्यागे-त्युक् । जरया स्तुत्या अमृत्युम् अमरत्वम् । यद्वा । जरया स्तुत्या वृद्धत्वेन वा त्युं मरणम् । **कृणुत** । कुरुत । **दीर्घम्** । दॄविदारणे[3] घक् । आयतम् । प्रवृद्धम् । **आयुः** । अ० १ । ३० । ३। इण् गतौ-उसि । जीवितकालः । जीवनसाधनम् । आयः । धनप्राप्तिः । **बृहस्पतिः** । अ० १। ८। २। बृहत्+पतिः सुट्तलोपौ । बृहस्पतिर्बृहतः पाता वा पालयिता वा—निरु० १० । ११ । बृहतां विदुषां रक्षकः । **प्र+अयच्छत्** । दाण् दाने-लङ् । **पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्०** (पा० ७। ३। ७८) इति यच्छादेशः । अददात् । **वासः** । **वसेर्णित्** (उ० ४ । २१८) इति वस आच्छादने-असुन्, स च णित् । वस्त्रम् । वासनम् । ज्ञानम् । **एतत्** । पुरोवर्त्ति । **सोमाय** । अ० १। ६। २। षु प्रसवैश्वर्ययोः—मन् सोमः सूर्यः प्रसवनात्, सोम आत्माप्येतस्मादेवेन्द्रियाणां जनितेत्यर्थः—निरु० १४ । १२ । सूर्यवत्तेजस्विने ।

---

१. वृद्धावस्था को प्राप्त होने पर मृत्यु हो. अकाल मृत्यु न हो यह अभिप्राय है ॥सम्पा० ॥

२. स्तुतिवाचक जरा शब्द 'गृ शब्दे' से बनेगा, (द्र० टि० पृ० २४३) । सम्पा० ॥

३. दृणातेर्घक् च (दश० उ० ३ । ७१) से यहां घक् हुआ है । निरुक्त में दीर्घं द्राघतेः (द्र० निरु० २ । १६) कहा है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥३॥

परि । इदम् । वासः । अधिथाः । स्वस्तये । अभूः । गृष्टीनाम् । अभि-शस्तिऽपाः । ऊँ इति । शतम् । च । जीव । शरदः । पुरूचीः । रायः । च । पोषम् । उपऽसंव्ययस्व ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्मचारिन् !] (इदम्) इस (वासः) वस्त्र को (स्वस्तये) आनन्द बढ़ाने के लिये (परि+अधिथाः) तूने धारण किया है, और (गृष्टीनाम्) ग्रहणीय गौओं की (अभिशस्तिपाः) हिंसा से रक्षा करने वाला (उ) अवश्य (अभूः) तू हुआ है। (च) निश्चय करके (पुरूचीः) बहुत पदार्थों से व्याप्त (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं तक (जीव) तू जीवित रह, (च) और (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि [वृद्धि] को (उप+सं+व्ययस्व) अपने सब ओर धारण कर ॥ ३ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोग ब्रह्मचारी को विदित कर दें कि यह उसकी विद्या का सम्मान इस लिये किया गया है कि संसार में गौ आदि उपकारी पदार्थों

राज्ञे । अ० १ । १० । १ । राजति=ईष्टे । निघ० २।२१। ऐश्वर्यवते पुरुषाय । **परि-धातवै** । **तुमर्थे सेसेन०** (पा० ३।४।९) इति तवै प्रत्ययः । परिधातुम् । **उ** । एव ॥

३–**इदम्** । अ० २ । १ । १ । पुरोवर्त्ति । **वासः** । म० २ । वस्त्रम् । **परि+अधिथाः** । **स्थाघ्वोरिच्च** (पा० १ । २ । १७) इति धाञो लुङि इकारोऽन्तादेशः, सिच्च किद्वत् । **ह्रस्वादङ्गात्** (पा० ८ । २ । २७) इति सिज्लोपः । परिहितवानसि । प्राप्तवानसि । **स्वस्तये** । अ० १ । ३० । २ । सु+अस सत्तायाम्-ति प्रत्ययः । क्षेमाय । **अभूः** । भू–लुङ । त्वं वर्त्तमानोऽभूः । **गृष्टीनाम्** । ग्रह उपादाने-क्तिच् । पृषोदरादित्वात् साधुः । ग्राह्यानां गवाम् । **अभिशस्तिपाः** । अभि–शंसु स्तुतौ, हिंसायां च–क्तिन् । पा रक्षणे–विच् । अभिशस्तिः अभितो विशंसनं हिंसा, तन्निमित्ताद् भयात् पालकः इति सायणः । हिंसाभयाद् रक्षकः । **शतम्** । बहुनाम–निघ० ३ । १ । बह्वीः । **जीव** । जीव प्राणधारणे । प्राणान् धारय । **शरदः** । अ० १ । १० । २ । ऋतुविशेषान् । संवत्सरान् । **पुरूचीः** । **ऋत्विग्दधृक्०** (पा० ३ । २ । ५९) इति पुरु+अञ्चु गतिपूजनयोः–क्विन् । **अनिदितां हल उप-धायाः क्ङिति** (पा० ६ । ४ । २४) इति नलोपः । **उगितश्च** (पा० ४ । १ । ६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और विद्या धन और सुवर्ण आदि धन की वृद्धि करके कीर्तियुक्त जीवन व्यतीत करे ॥ ३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से अथर्ववेद १६ । २४ । ६ में है ॥

एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥ ४ ॥

आ । इहि । अश्मानम् । आ । तिष्ठ । अश्मा । भवतु । ते । तनूः । कृण्वन्तु । विश्वे । देवाः । आयुः । ते । शरदः । शतम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्मचारिन्] (एहि = आ + इहि) तू आ, (अश्मानम्) इस शिला पर (आ + तिष्ठ) चढ़, (ते) तेरा (तनूः) तन [शरीर] (अश्मा) शिला [शिला जैसा दृढ़] (भवतु) होवे । (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम गुण वाले [पुरुष और पदार्थ] (ते) तेरी (आयुः) आयु को (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं तक (कृण्वन्तु) [दीर्घ] करें ॥ ४ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी को शिक्षा दें कि वह यथानियम पथ्य सेवन, व्यायाम, ब्रह्मचर्य और पौरुष करके अपने शरीर को दृढ़ और स्वस्थ रक्खे, और विद्वानों के मेल और उत्तम पदार्थों के सेवन से पूर्ण आयु भोगकर संसार में उपकार करे ॥ ४ ॥

अ० १ । २ । २ । में आया है "अश्मानं तन्वं कृधि" शरीर को पत्थर सा दृढ़ बना" ॥

अत्र वार्त्तिकम् । **अश्नुतेश्चोपसंख्यानम्** इति ङीप् । बहुविधान् पदार्थान् व्याप्नुवतीः **रायः** । रै–ङस् विभक्तिः । धनस्य । **पोषम्** । पुष पुष्टौ–घञ् । पुष्टिम् । समृद्धिम् । **उप-सम्-व्ययस्व** । वेञ् तन्तुसन्ताने । परिधत्स्व ॥

४—**आ + इहि** । आगच्छ । **अश्मानम्** । अ० १ । २ । २ । प्रस्तरम् । **अश्मा** । पाषाणशिला । पाषाणवद्दृढाः । **आ + तिष्ठ** । अधितिष्ठ । आरूढो भव । **तनूः** । तनु विस्तारे–ऊ । शरीरम् । **कृण्वन्तु** । कुर्वन्तु । **विश्वे** । सर्वे । **देवाः** । दिव्यगुणाः पुरुषाः पदार्था वा । **आयुः** । म० २ । जीवनम् । **ते** । तव । **युष्मत्तत्ततक्षुःष्वन्तः पादम्** (पा० ८।३।१०३) इति सकारस्य षत्वम् । **शरदः** । शरदृतून् । संवत्सरान् । **शतम्** । बह्वीः । बहुसंवत्सरान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्यं ते वासः प्रथमवास्यं१ हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः । तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां बहवः सुजातम् ॥ ५ ॥

यस्य । ते । वासः । प्रथमऽवास्यम् । हरामः । तम् । त्वा । विश्वे । अवन्तु । देवाः । तम् । त्वा । भ्रातरः । सुऽवृधा । वर्धमानम् । अनु । जायन्ताम् । बहवः । सुऽजातम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्मचारिन्] (यस्य) जिस (ते) तेरे (प्रथमवास्यम्) प्रधानता से धारण योग्य (वासः) वस्त्र को (हरामः) हम लाते हैं [धारण कराते हैं] (तम्) उस (त्वा) तेरी (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम गुण (अवन्तु) रक्षा करें, और (तम्) उस (सुवृधा) उत्तम सम्पत्ति से (वर्धमानम्) बढ़ते हुये, (सुजातम्) पूजनीय जन्म वाले (त्वा) तेरे (अनु) पीछे (बहवः) बहुत से (भ्रातरः) भाई (जायन्ताम्) प्रकट हों ॥ ५ ॥

भावार्थः—जब ब्रह्मचारी इस प्रकार विद्वानों में बड़ा मान पावे, तब वह उत्तम गुणों की प्राप्ति से ऐसी वृद्धि और उन्नति करे कि उसी के समान उसके दूसरे भ्रातृगण संसार में यश प्राप्त करें ॥ ५ ॥

टिप्पणी—इस सूक्त में 'वासः' पद का चोला अर्थात् मनुष्य शरीर का अर्थ करने से आध्यात्मिक विषय का विनियोग भी हो सकता है। यथा मन्त्र २ देखिये ॥

५—**वासः** । वस्त्रम् । शरीरम् । **प्रथमवास्यम्** । प्रथ ख्यातौ–अमच् । **ऋहलोर्ण्यत्** (पा० ३ । १ । १२४) इति वस आच्छादने–कर्मणि ण्यत् । **तित् स्वरितम्** (पा० ६ । १ । १८५) इति स्वरितः । प्रथमं प्रधानत्वेन वास्यं परिधानीयम् । **हरामः** । प्रापयामः । **तम्** । तादृशम् । **त्वा** । त्वां ब्रह्मचारिणमात्मानं वा । **अवन्तु** । रक्षन्तु । **भ्रातरः** । **नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृपोतृभ्रातृ०** (उ० २ । ९५) इति टुभ्राजृ दीप्तौ–तृन् । यद्वा । भृञ् भरणे-तृन् । भ्राजमानाः परस्परं दीप्यमानाः । परस्परपोषकाः । सहोदराः । भ्रातृवत् परस्परपोषणशीलाः पुरुषाः । **सुवृधा** । वृधु वृद्धौ–क्विप् । महावृद्ध्या । समृद्ध्या । **वर्धमानम्** । वृध–शानच् । वृद्धिविशिष्टम् । **अनु** । अनुसृत्य । **जायन्ताम्** । जनी प्रादुर्भावे । प्रादुर्भवन्तु । उत्पद्यन्ताम् । **बहवः** । अनेकाः । **सु-जातम्** । जनी क्तः । प्रशस्तजन्मानम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥ १४ ॥

१—६ ॥ अलक्ष्मीर्दुर्भिक्षता वा देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

अलक्ष्मीर्मनुष्यैः प्रयत्नेन नाशनीया—निर्धनता का मनुष्यों को प्रयत्न से नाश करना चाहिये ॥

निः सालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वम् ।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः ॥ १ ॥

निःऽसालाम् । धृष्णुम् । धिषणम् । एकऽवाद्याम् । जिघत्ऽस्वम् । सर्वाः । चण्डस्य । नप्त्यः । नाशयामः । सदान्वाः ॥१॥

भाषार्थः—(निः सालाम्) बिना साला=घर वाली, (धृष्णुम्) भयानक रूपवाली, (एकवाद्याम्) [दीनता का] एक वचन बोलने वाली, (धिषणम्) बोध वा उत्तम वाणी को (जिघत्स्वम्) खा लेने वाली, (चण्डस्य) क्रोध की (सर्वाः) इन सब (नप्त्यः=नप्त्रीः) सन्तानों, (सदान्वाः) सदा चिल्लाने वाली यद्वा दानवों, दुष्कर्मियों के साथ रहने वाली [निर्धनता की पीड़ाओं] को (नाशयामः) हम मिटा देवें ॥ १ ॥

भावार्थः—निर्धनता के कारण मनुष्य घर से निकल जाता, कुरूप हो जाता, दीन वचन बोलता और मतिभ्रष्ट हो जाता है, और निर्धनता की पीड़ायें

१—**निः सालाम्** । षल गतौ-घञ् । सालः प्रकारोऽस्त्यस्याः सा साला गृहम् । **अर्शआदिभ्योऽच्** (पा० ५ । २ । १२७) इति अच् । टाप् । निर्गता सालायास्ताम् । निर्गृहाम् । **धृष्णुम्** । **त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः** (पा० ३ । २ । १४०) इति धृषि क्रोधे हिंसे, शक्तिबन्धे—क्नुः । घर्षणशीलां भयस्य जनयित्रीम् । **धिषणम्** । **धृषेर्धिषच् सञ्ज्ञायाम्** (उ० २ । ८२) इति ञिधृषा प्रागल्भ्ये—क्यु:, धिषजादेशश्च । यद्वा, धिष शब्दे-क्युः, धिषणा वाङ्नाम-निघ० १ । ११ । कोषादौ बुद्धिः । बोधं वाचं वा । 'जिघत्स्वम्' इत्यस्य कर्म । **एकवाद्याम्** । **ऋहलोर्ण्यत्** (पा० ३ । १ । १२४) इति वद वाचि ण्यत् । एकम् एकप्रकारमेव वाद्यं दीनतारूपं वचनं यस्याः सा । ताम् अलक्ष्मीम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोध अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दुष्टताओं से उत्पन्न होती हैं। मनुष्य को चाहिये कि दूरदर्शी होकर पुरुषार्थ से धन प्राप्त करके निर्धनता को न आने दे और सदा सुखी रहे।। १ ।।

ऋग्वेद में ऐसा वर्णन है—

अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे ।
शिरिम्बिठस्य सत्त्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि ।। ऋ० १०।१५५।१।।

(अरायि) हे अदान शील [कंजूसिनि] ! (काणे) हे कानी ! (विकटे) हे लंगड़ी ! (सदान्वे = सदा नोनुवे शब्दकारिके) सदा चिल्लाने वाली ! (गिरिम्) पहाड़ को (गच्छ) चली जा ! (शिरिम्बिठस्य) मेघ के (तेभिः) उन (सत्त्वभिः) जलों से (त्वा) तुझे (चातयामसि) हम मिटाये देते हैं ।।

इस ऋग्वेद मन्त्र की व्याख्या निरु० ६ । ३० में है। उसके और निरुक्त टीकाकार देवराजयज्वा के आधार पर यहां अर्थ किया है ।।

जिघत्स्वम् । **लुङ्सनोर्घस्लृ** (पा० २ । ४ । ३७) इति अद भक्षणे + सन्–घस्लृ आदेशः, ततः, **सनाशंसभिक्ष उः** (पा० ३ । २ । १६८) इति उः, स्त्रियाम् ऊङ् वा । अत्तुमिच्छुम् । **सर्वाः**। निखिलाः । **चण्डस्य** । क्लीबान्तः । चडि कोपे–पचाद्यच् । यद्वा **अमन्ताड् डः** (उ० १ । ११४) इति चण धातोः डः । बाहुलकात् डस्य इत्संज्ञाप्रतिषेधः । कोपस्य । क्रोधस्य । **नप्त्यः** । न पतन्ति पितरो येनेति नप्ता । **नप्तृनेष्टृत्वष्टृ०** (उ०२।९५) इति न + पत्लृ गतौ–तृन् । **ऋन्नेभ्यो ङीप्** (पा० ४ । १ । ५) इति ङीप् । छन्दसि रलोपः ततश्च जस्विभक्तिः । नप्त्रीः । अपत्यभूताः । **नाशयामः** । हन्मः । **सदान्वाः** । नौतेः शब्दकर्मणो यङ्लुगन्तात् । **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** (पा० ३ । १ । १३४) इति पचाद्यच् । **न धातुलोप आर्धधातुके** (पा० १ । १ । ४) इति गुणप्रतिषेधे उवङ्स्थाने छान्दसो यण् आदेशः, टाप् च । सदान्वे सदा नोनुवे शब्दकारिके–निरु० ६ । ३० । दुर्भिक्षाधिदेवतोच्यते, कालकर्णी वा अलक्ष्मीः–इति टीकायां देवराजयज्वा । सदानोनुवाः । सर्वदा नोनूयमानाः शब्दायमानाः सर्वप्रकारा दरिद्रतादिविपत्तीः यद्वा । स + दानवाः । **केशाद् वोऽन्यतरस्याम्** अत्रवार्त्तिकम्, **अन्येभ्योऽपि दृश्यते** (पा० वा० ५ । २ । १०९) इति वप्रत्ययो मत्वर्थे, अकारलोपः । **दानवैश्छेदनशीलैः** सह वर्तमानाः ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वो॑ गो॒ष्ठाद॑जामसि॒ निर॑क्षा॒न्निरु॑पान॒सात् ।
निर्वो॑ मगुन्द्या दुहितरो गृ॒हेभ्य॑श्चातयामहे ॥ २ ॥

निः । वः । गोऽस्थात् । अजामसि । निः । अक्षात् । निः । उप॒ऽआन॒सात् ।
निः । वः । म॒गु॒न्द्याः । दु॒हि॒तरः । गृ॒हेभ्यः । चा॒त॒या॒म॒हे ॥ २ ॥

भाषार्थः—(वः) तुमको (गोष्ठात्) [अपनी] गोठ अर्थात् वाचनालय वा गोशाला से (निर् + अजामसि) हम निकाले देते हैं, (अक्षात्) व्यवहार से (निर्) निकाले, (उपानसात्) अन्नगृह वा धान्य की गाड़ी से (निर्) निकाले देते हैं । (मगुन्द्याः) हे ज्ञान की मिथ्या करने वाली [कुवासना वा निर्धनता] की (दुहितरः) पुत्रियो ! [पुत्री समान उत्पन्न पीड़ाओ] (वः) तुम को (गृहेभ्यः) [अपने] घरों से (निर्) निकालकर (चातयामहे) हम नाश करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य धन के उपार्जन और व्यय करने में ऐसा प्रबन्ध करे

२—**वः** । युष्मान् । **गोष्ठात्** । **सुपि स्थः** (पा० ३ । २ । ४) इति गो + ष्ठा गतिनिवृत्तौ--कः । यद्वा, घञर्थे कः । **अम्बाम्बगोभूमि०** (पा० ८ । ३ । ९७) इति षत्वम् । गावो वाचो धेन्वादिपशवो वा तिष्ठन्ति यत्र । गोष्ठ्याः, वाचनालयात्, गोशालायाः । **निर् + अजामसि** । अज गतिक्षेपणयोः । **इदन्तो मसि** (पा० ७ । १ । ४६) इति मस् इत्यस्य इकारागमः । निरजामः । निःसारयामः **निर्** । निरजामसि । **अक्षात्** । अक्षू व्याप्तौ--पचाद्यच् घञ् वा । व्यवहारात् । **उपानसात्** । **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** (पा० ५ । ४ । १०७) इति अनस् शब्दात् टच् समासान्तः । अन जीवने–असुन् । अनः, अन्नम् । शकटम् । जन्म । अनसः समीपम् उपानसं धान्यगृहम् । यद्वा । **अनोऽश्मायःसरसां जातिसंज्ञयोः** (पा० ५ । ४ । ९४) इति तत्पुरुषे टच् । उपगतं च तद् अनश्च उपानसं धान्यपूर्णं शकटम् । तस्मात्, धान्यगृहात् । धान्यपूर्णशकटात् । **मगुन्द्याः** । मनु बोधे-ड + गुद्रि[1] मिथ्योक्तौ--अच्, ङीप् च, छन्दसि रलोपः । मं ज्ञानं गुन्द्रयति मिथ्यां वदति सा मगुन्द्री तस्याः । ज्ञाननाशयित्र्याः कुवासनायाः

---

१. धातुपाठ में कुद्रि धातु पठित है । क्षीरतरङ्गिणी में 'गादिः पारायणे' लिखकर गकारादि गुद्रि धातु मानी है, (द्र० क्षीर० पृ० २७९) । धातुवृत्ति में 'ऋदित्इत्येके' कहकर गुद धातु भी माना है । ऋदित् मानने पर छान्दस रेफ लोप नहीं मानना पड़ेगा ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि पठन पाठन, गौ आदि पशुओं, व्यापार और अन्न आदि में हानि न हो किन्तु सब पदार्थों के यथावत् संग्रह से सर्वदा सुख की वृद्धि रहे ॥ २ ॥

टिप्पणी—गोट 'गोष्ठ' शब्द राजस्थान में बातचीत के स्थान अर्थ में लिया जाता है।

असौ यो अधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्यः ।
तत्र सेदिर्नि च्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ३ ॥

असौ । यः । अधरात् । गृहः । तत्र । सन्तु । अराय्यः । तत्र ।
सेदिः । नि । उच्यतु । सर्वाः । च । यातुधान्यः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(असौ) वह (यः) जो (गृहः) घर (अधरात्) नीचे की ओर है, (तत्र) वहाँ पर (अराय्यः) निर्धनता वाली [विपत्तियां] (सन्तु) रहें। (तत्र) वहां ही (सेदिः) महामारी आदि क्लेश (नि+उच्यतु) नित्य निवास करे, (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः) पीड़ा देने वाली क्रियायें भी ॥ ३ ॥

निर्धनतायाः। **दुहितरः। नप्तृनेष्टृ…दुहितृ** (उ० २। ९५) इति दुह प्रपूरणे-तृन्, निपातनाद् गुणाभावः। दोग्धि प्रपूरयति कार्याणीति दुहिता। पुत्र्यः। पुत्रीवद् उत्पन्नाः। **गृहेभ्यः। गेहे कः** (पा० ३। १। १४४) इति ग्रह उपादाने-कः। गेहात्। **निर्**। निःसार्य निःशेषेण वा। **चातयामहे**। चातयतिर्नाशने-निरु० ६। ३०। नाशयामः॥

३—अधरात्। अधस्-आतिः। अधोभागे। नीचैःस्थाने। **गृहः**। म० २। गेहम्। **अराय्यः**। रा दानग्रहणयोः—घञ्। **आतो युक्चिण्कृतोः** (पा० ७। ३। ३३) इति युक् आगमः। राति ददातीति रायो धनम्। न रायः, अरायः अधनम्। **केशाद्वोऽन्यतरस्याम्** इत्यत्र वार्त्तिकम्। **छन्दसीवनिपौ च वक्तव्यौ** (पा० ५। २। १०९)। इति मत्वर्थीय ईकारः। अरायः, अधनं यस्याः सा अरायी। अलक्ष्म्यः विपत्तयः। **तत्र**। अधोदेशे। **सेदिः**। **आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च** (पा० ३। २। १७१) इत्यत्र वार्त्तिकम्। **किकिनावुत्सर्गश्छन्दसि**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे राजा चोर आदि दुष्टों को पकड़ कर कारागार में रखता है, ऐसे ही मनुष्यों को प्रयत्न पूर्वक निर्धनता, दुर्भिक्षता, और दुःखदायी रोगों को हटा कर आनन्दित रहना चाहिये ॥ ३ ॥

भूतपतिर्निरजत्विन्द्रश्चेतः सदान्वाः ।
गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु ॥ ४ ॥

भूतऽपतिः । निः । अजतु । इन्द्रः । च । इतः । सदान्वाः । गृहऽस्य । बुध्ने । आसीनाः । ताः । इन्द्रः । वज्रेण । अधि । तिष्ठतु ॥४॥

भाषार्थः—(भूतपतिः) न्याय, सत्य वा प्राणियों का रक्षक (च) और (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला पुरुष (सदान्वाः) सदा चिल्लाने वाली, अथवा, दानवों दुष्कर्मियों के साथ रहने वाली [निर्धनता की पीड़ाओं] को (इतः) यहाँ से (निर् + अजतु) निकाल देवे । (इन्द्रः) वही महा प्रतापी पुरुष (गृहस्य) [हमारे] घर की (बुध्ने) जड़ में (आसीनाः) बैठी हुई (ताः) उन [पीड़ाओं] को (वज्रेण) वज्र [कुल्हाड़े आदि] से (अधि + तिष्ठतु) वश में करे ॥ ४ ॥

सदादिभ्यो दर्शनात् । इति षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु—किः प्रत्ययः । तस्य लिड्वद्भावाद् द्विर्वचने एत्वाभ्यासलोपौ । निर्ऋतिः । विषादः । **न्युच्यतु** । उच समवाये दिवादिः । नित्यं समवैतु । **सर्वाः** । निखिलाः । **यातुधान्यः** । अ० १ । ७ । १ । यत[1] ताडने-उण् + धान्-युच् ङीष् । यातनाप्रदाः पीडादात्र्यः क्रियाः (न्युच्यन्तु) इति शेषः ॥

४—**भूतपतिः** । भू सत्तायां प्राप्तौ च-कर्त्तरि क्तः । भूतस्य न्यायस्य सत्यस्य वा, अथवा भूतानां प्राणिनां पालकः पुरुषः । **निर्** । निस्सार्य । **अजतु** । प्रेरयतु । बहिष्करोतु । **इन्द्रः** । अ० १ । २ । ३ । इदि परमैश्वर्ये-रन् इन्दतेर्वैश्वर्यकर्मण इन्दञ्छत्रूणां दारयिता वा द्रावयिता वा आदरयिता च यज्वानाम् निरु० १० । ८ । परमैश्वर्यवान् महात्मा । **इतः** । अस्मात् स्थानात् । **सदा-**

---

१. यातु शब्द या धातु से तु प्रत्ययान्त कमिमनिजनि० (उ० १ । ७३) में सिद्ध किया है । जो कि अर्थ की दृष्टि से सङ्गत हैं (द्र० द० भा० १ । ३५ । १०) । उण् प्रत्यय मानने पर उ० १ । १ में बाहुलक से ताडनार्थक यत धातु की कल्पना करनी पड़ती है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—क्लेशों के भीतरी कारणों को भली भांति विचार कर राजा और गृहपति सब पुरुषों को सचेत करके क्लेशों से बचावें और आनन्द में रक्खें ॥४॥

यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिताः ।
यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ॥ ५ ॥

यदि । स्थ । क्षेत्रियाणाम् । यदि । वा । पुरुषऽइषिताः । यदि । स्थ । दस्युऽभ्यः । जाताः । नश्यत । इतः । सदान्वाः[1] ॥ ५ ॥

भाषार्थः—[हे पीड़ाओ !] (यदि) यदि (क्षेत्रियाणाम्) शरीर सम्बन्धी, वा वंश सम्बन्धी रोगों की (वा) अथवा (यदि) यदि (पुरुषेषिताः) अन्य पुरुषों को प्रेषित (स्थ) हो, (यदि) जो (दस्युभ्यः) चोर आदिकों से (जाताः) प्रकट हुयी (स्थ) हो, वह तुम (सदान्वाः) हे सदा चिल्लाने वाली, अथवा दानवों के साथ रहने वाली [पीड़ाओ !] (इतः) यहां से (नश्यत) हट जाओ ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को अपने कुपथ्य सेवन, ब्रह्मचर्य आदि के खण्डन से अथवा माता पिता आदि के कुसंस्कार से शारीरिक वा आध्यात्मिक और शत्रु चोर आदि के अन्यथा व्यवहार से आधिभौतिक पीड़ायें प्राप्त होती हैं। मनुष्य पुरुषार्थ से सब प्रकार के क्लेशों का नाश करके आनन्द से रहे ॥ ५ ॥

न्वाः । म० १ । सदा+नोनुवाः । आक्रोशकारिणीः, यद्वा, । स+दानवाः, दानवैः सह वर्त्तमानाः पीडाः ॥

५--**यदि** । पक्षान्तरम् । चेत् । **स्थ** । यूयं भवथ । **क्षेत्रियाणाम्** । द्र० अ० २ । ८ । १ । स्वकीये देहे वंशे वा जातानां रोगाणाम् । **पुरुषेषिताः** । **पुरः कुषन्** (उ० ४ । ७४) इति पुर अग्रगतौ—कुषन् । पुरति अग्रेगच्छतीति पुरुषः । इष गतौ यद्वा, ईष गतिहिंसादर्शनेषु--कर्मणि निष्ठा, इडागमः । अन्यजनैः प्रेषिताः प्रेरिता दत्ता वा । **दस्युभ्यः** । **यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच्** (उ० ३ । २०) इति दसु उपक्षये-युच् । बाहुलकाद् अनादेशाभावः । दस्यति नाशयति परपदार्थानिति दस्युः, चौरादिभ्यः सकाशात् । **जाताः** । प्रादुर्भूताः । **नश्यत्** । णश अदर्शने, दिवादिः । तिरोभवत । निर्गच्छत । **सदान्वाः** । म० १ । हे सर्वदा शब्दयित्र्यः, यद्वा दानवैः सह वर्त्तमानाः ॥

---

[1] 'सदान्वाः' ऐसे स्वर वाला भी पाठ विभिन्न प्रतियों में उपलब्ध है। सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परि धामान्यासामाशुर्गाष्ठामिवासरन् ।
अजैषं सर्वानाजीन् वो नश्यतेतः सदान्वाः ॥ ६ ॥

परि । धामानि । आसाम् । आशुः । गाष्ठाम्ऽइव । असरन् ।
अजैषम् । सर्वान् । आजीन् । वः । नश्यत । इतः । सदान्वाः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—[वे विद्वान्] (आसाम्) इन [पीड़ाओं] के (धामानि) घरों को (परि) सब प्रकार (असरन्) पहुँच गये हैं। (आशुः इव) जैसे शीघ्रगामी घोड़ा (गाष्ठाम्) अपने गमन स्थान [थान] पर। (वः) तुम्हारे (सर्वान्) सब (आजीन्) संग्रामों को (अजैषम्) मैंने जीत लिया है, (सदान्वाः) हे सदा चिल्लाने वाली, अथवा, दानवों के साथ रहने वाली [पीड़ाओ !] (इतः) यहां से (नश्यत) चंपत हो जाओ ॥ ६ ॥

भावार्थः—जिस प्रकार पूर्वज विद्वान् लोग क्लेशों के कारण शीघ्र जान चुके हैं, जैसे कि घोड़ा मार्ग से लौटते समय अपने थान की ओर शीघ्र चलता है, अथवा, जैसे शूरवीर पुरुष संग्राम में शत्रुओं को हराकर शीघ्र विजयी होता है, वैसे ही मनुष्य आई हुई विपत्तियों का कारण सावधानी से जानकर शीघ्र प्रतीकार करे और सुख से आयु को भोगे ॥ ६ ॥

६—परि । परितः सर्वतः । **धामानि । सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उ० ४ । १४५) इति धाञ्-मनिन् । धीयन्ते द्रव्यजातानि यत्र । गृहाणि । जन्मानि । कारणानि । **आसाम् ।** पूर्वोक्तानां पीडानाम् । **आशुः । कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्** (उ० १ । १) इति अशू व्याप्तौ, यद्वा, अश भोजने—उण् । अश्वनाम निघ० १ । १४ । अश्वः कस्मादश्नुतेऽध्वानं महाशनो भवतीति वा—निरु० २ । २७ । शीघ्रगामी घोटकः । **गाष्ठाम् ।** गाङ् गतौ—क्विप्+ष्ठा गतिनिवृत्तौ विच् । गमनाय गमनाद्वा तिष्ठति यत्र । गमनस्थानम् । **असरन् ।** सृ गतौ भ्वादिः, लङ । अगच्छन् ते विद्वान्सः । **अजैषम् ।** जि जये—लुङ । अहं जितवानस्मि । **आजीन् । अज्यतिभ्यां च** (उ० ४ । १३१) इति अज गतिक्षेपणयोः—इण् । वीभावाभावः । आजौ, संग्रामनामसु—निघ० २ । १७ । अजन्ति गच्छन्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'असरन्' के स्थान पर सायणभाष्य में 'असरम्' और (गाष्ठाम्) के स्थान पर [ग्लाष्ठाम्] पद व्याख्यात है ॥

सूक्तम् १५ ॥

१—६ ॥ प्राणो देवता । गायत्री छन्दः ॥

मनुष्यो धर्मपालने निर्भयो भवेत्—मनुष्य धर्म के पालन में निर्भय रहे ॥

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ १ ॥

यथा । द्यौः । च । पृथिवी । च । न । बिभीतः । न । रिष्यतः । एव । मे । प्राण । मा । बिभेः ॥ १ ।

भाषार्थः—(यथा) जैसे (च) निश्चय करके (द्यौः) आकाश (च) और (पृथिवी) दोनों (न) न (रिष्यतः) दुःख देते हैं, और (न) न (बिभीतः) डरते हैं । (एव) ऐसे ही, (मे) मेरे (प्राण) प्राण ! तू (मा बिभेः) मत डर ॥ १ ॥

भावार्थः—यह आकाश और पृथिवी आदि लोक परमेश्वर के नियम पालन से अपने २ स्थान और मार्ग में स्थिर रह कर जगत् का उपकार करते हैं, ऐसे ही मनुष्य ईश्वर की आज्ञा मानने से पापों को छोड़ कर और सुकर्मों को करके सदा निर्भय और सुखी रहता है ॥ १ ॥

यत्र विजयश्रियं योद्धारः क्षिपन्ति शस्त्राणि यत्र । संग्रामान् । वः । युष्माकम् । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

१—यथा । येन प्रकारेण । **द्यौः** । द्र० अ० २। १२। ६। द्योतन्ते लोका यत्र । आकाशम् । **च** । निश्चये । समुच्चये । **पृथिवी** । द्र० अ० १ । २ । १ । प्रथ विस्तारे—षिवन्,[1] ङीष् । भूमिः । सत्तास्थानम् । **न** । निषेधे । **बिभीतः** । त्रिभी भये । दरं त्रासं प्राप्नुतः । **रिष्यतः** । रिष हिंसायाम्, दिवादिः, सकर्मकः । हिनस्तः । आज्ञाभङ्गं कुरुतः—इत्यर्थः । **एव** । एवम् । तथा । **मे** । मम । **प्राण** । प्र+अन प्राणने अच्, घञ् वा । हे आत्मन् । **मा बिभेः** । त्रिभी भये, लङ् । त्वं शङ्कां मा कार्षीः ॥

---

१. प्रथेः षिवन्० (उ० १ । १५०) ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ २ ॥

यथा । अहः । च । रात्री । च । न । बिभीतः । न । रिष्यतः । एव । मे । प्राण । मा । बिभेः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (च) निश्चय करके (अहः) दिन (च) और (रात्री) रात दोनों (न) न (रिष्यतः) दुख देते हैं और (न) न (बिभीतः) डरते हैं, (एव) वैसे ही (मे) मेरे (प्राण) प्राण ! तू (मा बिभेः) मत डर ॥ २ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने काल प्रयोग में नहीं चूकते वे अपने सुप्रबन्ध से सदा निर्भय रहते हैं ॥ २ ॥

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ ३ ॥

यथा । सूर्यः । च । चन्द्रः । च । न । बिभीतः । न । रिष्यतः । एव । मे । प्राण । मा । बिभेः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (च) निश्चय करके (सूर्यः) सूर्य (च) और (चन्द्रः) चन्द्र दोनों (न) न (रिष्यतः) दुख देते हैं और (न) न (बिभीतः) डरते हैं, (एव) वैसे ही (मे) मेरे (प्राण) प्राण ! तू (मा बिभेः) मत डर ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे ईश्वर के नियम से सूर्य अपनी राशियों में घूमकर संसार में किरणों और प्रकाश द्वारा वृष्टि आदि से, और चन्द्रमा सूर्य से प्रकाश लेकर अन्न आदि औषधों को पुष्ट करके उपकार करते और निर्भय विचरते हैं, ऐसे ही मनुष्य भी वेद विहित धर्म की रक्षा करके सदा प्रसन्न रहें ॥ ३ ॥

२—**अहः । नञि जहातेः** (उ० १ । १५८) इति नञ्+ओहाक् त्यागे-कनिन् । न जहाति न त्यजति सर्वथा परिवर्त्तमानत्वात् तद् अहः । दिनम् । **रात्री** । द्र० अ० २ । ८ । २ । रात्रिः कस्मात् प्ररमयति भूतानि नक्तञ्चारीण्युप-रमयतीतराणि ध्रुवीकरोति । रातेर्वा स्याद् दानकर्मणः प्रदीयन्तेऽस्यामवश्यायाः, निरु० २ । १८ । क्षपा । निशा ॥

३—**सूर्यः** । अ० १ । ३ । ५ । आदित्यः । सप्ताश्वः । **चन्द्रः** । अ० १ । ३ । ४ । चन्द्रमाः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ ४ ॥

यथा । ब्रह्म । च । क्षत्रम् । च । । न । बिभीतः । न ।
रिष्यतः । एव । मे । प्राण । मा । बिभेः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (च) निश्चय करके (ब्रह्म) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] जन (च) और (क्षत्रम्) क्षत्रिय जन, दोनों (न) न (रिष्यतः) दुःख देते और (न) नहीं (बिभीतः) डरते हैं। (एव) वैसे ही (मे) मेरे (प्राण) प्राण ! तू (मा बिभेः) मत डर ॥ ४ ॥

भावार्थः—जैसे सत्यवक्ता ब्राह्मण और सत्य पराक्रमी क्षत्रिय न सताते और न भय करते हैं, वैसे ही प्रत्येक मनुष्य सत्यवक्ता और सत्यपराक्रमी होकर ईश्वराज्ञा पालन में निर्भय होकर आनन्द उठावे ॥ ४ ॥

यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ ५ ॥

यथा । सत्यम् । च । अनृतम् । च । न । बिभीतः । न ।
रिष्यतः । एव । मे । प्राण । मा । बिभेः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (च) निश्चय करके (सत्यम्) यथार्थ (च) और (अनृतम्) अयथार्थ (न) न (रिष्यतः) दुःख देते, और (न) न (बिभीतः) डरते हैं। (एव) वैसे ही (मे) मेरे (प्राण) प्राण ! तू (मा बिभेः) मत डर ॥ ५ ॥

भावार्थः—सत्य अर्थात् धर्म का विधान, और असत्य अर्थात् अधर्म का निषेध, यह दो प्रधान अंग न्याय के हैं। मनुष्य विधि और निषेध के यथावत्

४—ब्रह्म । अ० १ । ८ । ४ । ब्राह्मणजातिः । वेदवेत्तृजनः । **क्षत्रम् ।** क्षणु हिंसायाम्-क्विप्, क्षत्[1] । ततस्त्रायते । क्षत्+त्रैङ् पालने-कः । यद्वा । **गुधृवी०** (उ० ४ । १६७) इति क्षद[2] भक्षणे, संवेषणे, संभृतौ, वधे च-त्रप्रत्ययः । क्षदति शत्रूनिति क्षत्रम् । क्षत्रियकुलम् ॥

५—सत्यम् । तस्मै हितम् (पा० ५ । १ । ५) इति सत्-यत् । सद्भ्यो

---

१. क्षणु धातु से सम्पदादिभ्यः क्विप् (पा० वा० ३ । ३ ९४) से क्विप्, तुक् आगम एवं गमादीनामिति वक्तव्यम् (पा० वा० ६ । ४ । ४०) से अनुनासिक लोप होकर क्षत् बनेगा ॥ सम्पा० ॥

२. क्षद धातु सौत्र पाठ की है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप को समझ कर, कुमार्ग छोड़ कर सुमार्ग में निर्भय चलें और अचल आनन्द भोगें ॥ ५ ॥

यजुर्वेद में वर्णन है—

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः ।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धा सत्ये प्रजापतिः ॥ य० १९ । ७७ ॥

(प्रजापतिः) प्रजाओं के रक्षक परमेश्वर ने (रूपे) दो रूप, (सत्यानृते) सत्य और झूठ (दृष्ट्वा) देखकर (व्याकरोत्) समझाये । (प्रजापतिः) उस प्रजापति ने (अनृते) झूठ में (अश्रद्धाम्) अश्रद्धा वा अप्रीति और (सत्ये) सत्य में (श्रद्धाम्) श्रद्धा वा प्रीति को (अदधात्) धारण कराया ।

यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ ६ ॥

यथा । भूतम् । च । भव्यम् । च । न । बिभीतः । न । रिष्यतः । एव । मे । प्राण । मा । बिभेः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (च) निश्चय करके (भूतम्) अतीत काल (च) और (भव्यम्) भविष्यत् [होने हारा] काल (न) न (रिष्यतः) दुःख देते और (न) न (बिभीतः) डरते हैं (एव) वैसे ही (मे) मेरे (प्राण) प्राण ! तू (मा बिभेः) मत डर ॥ ६ ॥

भावार्थः—समर्थ, सत्य प्रतिज्ञा वाले मनुष्य पहले विजयी हुये हैं और आगे होंगे । इसी प्रकार सब मनुष्य भूत और भविष्यत् का विचार करके जो कार्य करते हैं वे सुखी रहते हैं ॥ ६ ॥

हितम् । तथ्यम् । यथार्थकथनम् । **अनृतम्** । न ऋतं नञ्समासः । मिथ्याभाषणम् ॥

६—**भूतम्** । भू–क्त । अतीतम् । गतकालः । **भव्यम्** । **भव्यगेयप्रवचनीयो०** (पा० ३ । ४ । ६८) इति भू–यत् । भविष्यत् । अनागतम् ॥

---

१. 'सत्यं कस्मात् सत्सु तायते सत्प्रभवं भवतीति वा' (निरु० ३ । १३, १ । १३) ऐसा निरुक्त में निर्वचन किया है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १६ ॥

१—५ ॥ आत्मा देवता । १ आसुरी पङ्क्तिः, २ आसुर्युष्णिक्, ३ आसुरी त्रिष्टुप्, ४---५ आसुरी गायत्री ॥

आत्मरक्षाया उपदेशः—आत्म रक्षा के लिए उपदेश ॥

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥ १ ॥

प्राणापानौ । मृत्योः । मा । पातम् । स्वाहा ॥ १ ॥

भाषार्थः—(प्राणापानौ) हे प्राण और अपान ! तुम दोनों (मृत्योः) मृत्यु से (मा) मुझे (पातम्) बचाओ, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी [आशीर्वाद] हो ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्मचर्य, व्यायाम, प्राणायाम, पथ्य भोजन आदि से प्राण अर्थात् भीतर जाने वाली श्वास, और अपान, अर्थात् बाहिर आने वाली श्वास की स्वस्थता स्थापित करें और बलवान् रह कर चिरंजीवी होवें ॥ १ ॥

द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ॥ २ ॥

द्यावापृथिवी इति । उपऽश्रुत्या । मा । पातम् स्वाहा । ॥ २ ॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी = ०—व्यौ) हे आकाश और पृथिवी ! दोनों (उपश्रुत्या) पूर्ण श्रवण शक्ति के साथ (मा) मेरी (पातम्) रक्षा करो (स्वाहा) यह सुवाणी [सुन्दर आशीर्वाद] हो ॥ २ ॥

१---**प्राणापानौ** । अन प्राणने-अच् वा घञ् । प्राणश्च अपानश्च तौ । हे उच्छ्वासनिश्वासौ । हे अन्तर्मुखश्वासबहिर्मुखश्वासौ । **मृत्योः** । अ० १ । ३० । ३ । मृङ्-त्युक् । प्राणत्यागात् । मरणात् । **मा** । माम् । **पातम्** । युवां रक्षतम् । **स्वाहा** । सु+आङ्+ह्वेञ् आह्वाने-डा । वाङ्नाम-निघ० १ । ११ । स्वाहेत्येतत् सु आहेति स्वा वागाहेति वा स्वं प्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा-निरु० ८ । २० । सुवाणी । आशीर्वादः । सुदानम् ॥

२---**द्यावापृथिवी** । अ० २ । १ । ४ । हे आकाशभूमी ! तदन्तराल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सब दिशाओं में मनुष्य को अपनी श्रवणशक्ति बढ़ानी चाहिये ॥ २ ॥

सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥ ३ ॥

सूर्य । चक्षुषा । मा । पाहि । स्वाहा ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य, तू (चक्षुषा) दृष्टि के साथ (मा) मेरी (पाहि) रक्षा कर, (स्वाहा) यह सुवाणी हो ॥ ३ ॥

भावार्थः—सूर्य प्रकाश का आधार है, और उसी से नेत्र में ज्योति आती है। मनुष्य को सूर्य के समान अपनी दर्शन शक्ति संसार में स्थिर रखनी चाहिये ॥ ३ ॥

अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥ ४ ॥

अग्ने । वैश्वानर । विश्वैः । मा । देवैः । पाहि । स्वाहा ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(वैश्वानर) हे सबको चलाने वाले (अग्ने) अग्नि ! (विश्वैः) सब (देवैः) इन्द्रियों [वा विद्वानों] के साथ (मा) मेरी (पाहि) रक्षा कर (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥ ४ ॥

भावार्थः—शरीर में अग्नि अर्थात् उष्णता का होना बल तेज और प्रताप का लक्षण है और इन्द्रिय आदि का चलाने वाला है। सब मनुष्य अन्न की पाचन शक्ति से शरीर में अग्नि स्थिर रखकर सब इन्द्रियों को पुष्ट करें और उत्तम पुरुषों के सत्संग से स्वस्थ और सुखी रहें ॥ ४ ॥

वर्तिन्यो दिशो विवक्षिताः । **उपश्रुत्या** । उप+श्रु-क्तिन्, उपश्रूयते । समीपश्रवणेन । पूर्णश्रवणशक्तिप्रदानेन । अन्यद् गतम् ॥

३—सूर्य । अ० १ । ३ । ५ । हे सर्वप्रेरक ! हे आदित्य ! **चक्षुषा** । अ० १ । ३३ । ४ । चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि दर्शने च-उसि । नेत्रेण । रूपदर्शनशक्त्या ॥

४—अग्ने । अ० १ । ६ । २ । अग्निः कस्मादग्रणी भवत्यग्रं यज्ञेषु प्रणीयतेऽङ्गं नयति सन्नममानोऽक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीविः—निरु० ७ । १४ । हे शरीरस्थतेजोविशेष ! । **वैश्वानर** । अ० १ । १० । ४ ! वैश्वानरः कस्माद् विश्वान् नरान् नयति विश्व एनं नरा नयन्तीति वा—निरु० ७ । २१ । हे सर्वेषामिन्द्रियादीनां नायक ! । **विश्वैः** । सर्वैः । **देवैः** । दिवु-अच् । इन्द्रियैः विद्वद्भिः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥ ५ ॥

विश्वम्ऽभर । विश्वेन । मा । भरसा । पाहि । स्वाहा ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(विश्वम्भर) हे सर्वपोषक परमेश्वर ! (विश्वेन) सब (भरसा) पोषण शक्ति से (मा) मेरी (पाहि) रक्षा कर, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥ ५ ॥

भावार्थः—सब शरीर को स्वस्थ रखकर मनुष्य उस (विश्वम्भर) परमेश्वर के अनन्त पथ्य, पोषक द्रव्यों और शक्तियों का उपयोग करें और अपनी शारीरिक और आत्मिक शक्ति बढ़ा कर सदा बलवान् रहकर (विश्वम्भर) सर्वपोषक बनें और आनन्द भोगें ॥ ५ ॥

सूक्तम् १७ ॥

१--७॥ ईश्वरो देवता ॥ १---६ आसुरी त्रिष्टुप्, ७ आसुर्युष्णिक् ॥

आयुर्वर्धनायोपदेशः—आयु बढ़ाने के लिए उपदेश ॥

ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ॥ १ ॥

ओजः । असि । ओजः । मे । दाः । स्वाहा ॥ १ ॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर] तू (ओजः) शारीरिक सामर्थ्य (असि) है, (मे) मुझे (ओजः) शारीरिक सामर्थ्य (दाः=दद्याः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥ १ ॥

भावार्थ—(ओजः) बल और प्रकाश का नाम है। वैद्यक में रसादि सात धातुओं से उत्पन्न, आठवें धातु शरीर के बल और पुष्टि के कारण, और

५----**विश्वम्भर** । **संज्ञायां भृतृवृजि०** (पा० ३।२ । ४६) इति विश्व+डुभृञ् धारणपोषणयोः-खच् । **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्** (पा० ६ । ३ । ६७) इति मुम् । हे सर्वधारक ! जगत्पोषक ! विष्णो ! परमात्मन् ! **विश्वेन** । समस्तेन । **भरसा** । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८६) इति डुभृञ्-असुन् । पोषणशक्त्या । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

१----**ओजः** । अ० १ । १२ । १ । ओज बले, तेजसि-असुन् । बलम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानेन्द्रियों की नीरोगता को (ओजः) कहते हैं। जैसे (ओजः) हमारे शरीरों के लिये है वैसे ही परमात्मा सब ब्रह्माण्ड के लिये है ऐसा विचार कर मनुष्यों को शारीरिक शक्ति बढ़ानी चाहिये ॥ १ ॥

इस सूक्त का पाठ यजुर्वेद के पाठ से प्रायः मिलता है—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ य० १९। ९ ॥

तू तेज है, मुझ में तेज धारण कर—इत्यादि ॥

सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ॥ २ ॥

सहः। असि। सहः। मे। दाः। स्वाहा ॥ २ ॥

भाषार्थः—[हे परमात्मा !] तू (सहः) पराक्रम स्वरूप (असि) है, (मे) मुझे (सहः) आत्मिक पराक्रम (दाः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥ २ ॥

भावार्थः—अनन्त ब्रह्माण्डों का रचक और धारक परमेश्वर पराक्रम स्वरूप है। ऐसा सोचकर विद्यादि उपायों से मनुष्य अपनी आत्मिक शक्ति बढ़ावें ॥ २ ॥

बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ॥ ३ ॥

बलम्। असि। बलम्। मे। दाः। स्वाहा ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर] तू (बलम्) सामाजिक बल (असि) है, (मे) मुझे (बलम्) सामाजिक बल (दाः) दे (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥ ३ ॥

भावार्थः—परमेश्वर में सब देवता, मनुष्य आदि समाजों का बल है, ऐसा जान कर मनुष्य अपने कुटुम्बी आदि से प्रीति बढ़ा कर सामाजिक बल बढ़ावे ॥ ३ ॥

प्रकाशः। वैद्यके रसादिसप्तधातुसारजधातुविशेषः शरीरस्य बलपुष्टिकारणम्। ज्ञानेन्द्रियाणां पाटवम्। **मे**। मह्यम्। **दाः**। त्वं दद्याः, देयाः ॥

२—**सहः**। षह अभिभवे, क्षमायाम्-असुन्। मानसिकबलम्। पराक्रमः ॥

३—**बलम्**। बल प्राणने, दाने, बधे-पचाद्यच्। बलते विपक्षान् हन्तीति। सामान्यशक्तिः। सैन्यम्। सामाजिकं सामर्थ्यम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ॥४॥

आयुः । असि । आयुः । मे । दाः । स्वाहा ॥ ४ ॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] तू (आयुः) आयु [जीवन शक्ति] (असि) है, (मे) मुझे (आयुः) आयु (दाः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥४॥

भावार्थः—ईश्वर ने हमें अन्न, बुद्धि, ज्ञान आदि जीवन सामग्री देकर बड़ा उपकार किया है, ऐसे ही हम भी परस्पर उपकार से अपना जीवन बढ़ावें ॥ ४ ॥

श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ॥५॥

श्रोत्रम् । असि । श्रोत्रम् । मे । दाः । स्वाहा ॥ ५ ॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] तू (श्रोत्रम्) श्रवण शक्ति (असि) है (मे) मुझे (श्रवणम्) श्रवण शक्ति (दाः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥ ५ ॥

भावार्थः—परमेश्वर अपनी अनन्त श्रवण शक्ति से हमारी टेर सुनता और संकटों को काटता है। ऐसे ही हम अपनी श्रवण शक्ति को नीरोग रख कर दूसरों के दुःखों का निवारण करें और वेदादि शास्त्रों का श्रवण करें ॥५॥

चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ॥६॥

चक्षुः । असि । चक्षुः । मे । दाः । स्वाहा ॥६॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] तू (चक्षुः) दृष्टि [दर्शन शक्ति] (असि) है, (मे) मुझे (चक्षुः) दर्शन शक्ति (दाः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥६॥

भावार्थः—ऋग्वेद पुरुष सूक्त १०।९०।१ में भी परमेश्वर का नाम (सहस्राक्षः) अनन्त दर्शन शक्ति वाला है, इस प्रकार परमात्मा को सर्वद्रष्टा समझ कर मनुष्य अपनी दर्शन शक्ति चंगी रक्खे, और यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर के बहुदर्शी, दूरदर्शी और न्यायकारी होवे ॥ ६ ॥

४----**आयुः** । अ० १ । ३० । ३ । इण् गतौ—अस, स च णित् । जीवनम् । जीवनकारणम् ।

५----**श्रोत्रम्** । **हुयामाश्रुभसिभ्यस्त्रन्** (उ०४ । १६८) इति श्रु गतिश्रुत्योः—त्रन् । श्रवणेन्द्रियम् । कर्णम् ॥

६----**चक्षुः** । अ० १ । ३३ । ४ । चक्षिङ् दर्शने—उसि । दृष्ट्या । दर्शन शक्त्या ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ॥ ७ ॥

परिऽपानम् । असि । परिऽपानम् । मे । दाः । स्वाहा ॥ ७ ॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] तू (परिपाणम्) सब प्रकार पालन शक्ति (असि) है, (मे) मुझे (परिपाणम्) सब प्रकार की पालन शक्ति (दाः) दे, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥ ७ ॥

भावार्थः—परमेश्वर को अथर्व० १९ । ६ । १ । में (सहस्रबाहुः) अनन्त भुजाओं की शक्ति वाला कहा है । मनुष्य उसकी अनन्त रक्षण शक्ति देख कर आप भी मनुष्यों में (सहस्रबाहुः) महा रक्षक और (शतक्रतुः) शतकर्मा अर्थात् बहुकार्य कर्त्ता होवे ॥ ७ ॥

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

॥ अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १८ ॥

१–५ ॥ ईश्वरो देवता । साम्नी बृहती छन्दः--१८ अक्षराणि ॥

शत्रुभ्यो रक्षा कर्तव्येत्युपदिश्यते—शत्रुओं से रक्षा करनी चाहिये इसका उपदेश ॥

भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यचातनं मे दाः स्वाहा ॥ १ ॥

भ्रातृव्यऽक्षयणम् । असि । भ्रातृव्यऽचातनम् । मे । दाः । स्वाहा ॥ १ ॥

भाषार्थः—(भ्रातृव्यक्षयणम्) वैरियों की नाशन शक्ति (असि) तू है,

---

७—**परिपाणम्** । परि+पा रक्षणे–ल्युट् । **कृत्यचः** (पा० ८ । ४ । २९) इति नस्य णत्वम् । परितः सर्वतः पालनं रक्षणसामर्थ्यम् ॥

१--**भ्रातृव्यक्षयणम्** । **नप्तृनेष्टृत्वष्टृ०** (उ० २ । ९५) इति भ्राजृ दीप्तौ, वा भृञ्–धारणपोषणयोः—तृन् । ततः । **व्यन् सपत्ने** (पा० ४ । १ । १४५) इति व्यन् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मे) मुझे (भ्रातृव्यचातनम्) बैरियों के मिटाने का बल (दाः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥ १ ॥

भावार्थः—(भ्रातृव्य) वह छली पुरुष है जो देखने में भ्राता के समान प्रीति, और भीतर से दुष्ट आचरण करे। परमेश्वर वा राजा ऐसे दुराचारियों का नाश करता है, ऐसे ही मनुष्य मृगतृष्णारूप, इन्द्रिय लोलुपता और अन्य आत्मिक दोषों का नाश कर के सुख से रहें ॥ १ ॥

सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातनं मे दाः स्वाहा ॥२॥

सपत्नऽक्षयणम् । असि । सपत्नऽचातनम् । मे । दाः । स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] तू (सपत्नक्षयणम्) प्रकट शत्रुओं की नाशशक्ति (असि) है, (मे) मुझे (सपत्नचातनम्) प्रकट शत्रुओं के मिटाने का बल (दाः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे ईश्वर वा राजा प्रकट कुचालियों का नाश करता है, वैसे ही मनुष्य अपने प्रकट दोषों का नाश करके सुख भोगे ॥ २ ॥

अरायक्षयणमस्यरायचातनं मे दाः स्वाहा ॥३॥

अरायऽक्षयणम् । असि । अरायऽचातनम् । मे । दाः । स्वाहा ॥३॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] तू (अरायक्षयणम्) निर्धनता की नाशशक्ति (असि) है, (मे) मुझे (अरायचातनम्) निर्धनता के मिटाने का बल (दाः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥ ३ ॥

भावार्थः—ईश्वर सर्वशक्तिमान् और महा धनी है, ऐसा विचार कर मनुष्य अपनी दुष्टता और दुर्मति से अथवा अन्य विघ्नों से उत्पन्न निर्धनता को उद्योग कर के मिटावें ॥ ३ ॥

क्षि क्षये—ल्युट्। भ्रातृव्यो गुप्तशत्रुः, तस्य क्षयणं नाशनम्। **भ्रातृव्यचातनम्**। चातयतिर्नाशने—निरु० ६। ३०। गुप्तशत्रुनाशनम्। **स्वाहा**। अ० २।१६।१। आशीर्वादोऽस्तु ॥

२—सपत्नक्षयणम्। सह+पत गतौ, न, सहस्य सः[1]। एकार्थे पतन्ति यतन्ते ते सपत्नाः। तेषां प्रकटशत्रूणां क्षयणं नाशनम्। अन्यद् गतम् ॥

३—अरायक्षयणम्। रा+दाने-घञ्, युक् आगमः। नञ्तत्पुरुषः। अरायस्य निर्धनत्वस्य नाशनम् ॥

---

१. द्र० टि० पृ० २२३। व्यन्सपत्ने (४।१।१४५) में सपत्न शब्द निपातन है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं मे दाः स्वाहा ॥ ४ ॥

पिशाचऽक्षयणम् । असि । पिशाचऽचातनम् । मे । दाः । स्वाहा ॥ ४ ॥

भाषार्थः—हे ईश्वर ! तू (पिशाचक्षयणम्) मांस खाने वालों की नाश शक्ति (असि) है, (मे) मुझे (पिशाचचातनम्) मांस खाने वालों के मिटाने का बल (दाः) दे। (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥ ४ ॥

भावार्थः—परमेश्वर की न्याय शक्ति का विचार करके मनुष्य कुविचार, कुशीलता और रोगादि दोषों को जो शरीर और आत्मा के हानिकारक हैं मिटावें तथा हिंसक सिंह सर्पादि जीवों का भी नाश करें ॥ ४ ॥

सदान्वाक्षयणमसि सदान्वाचातनं मे दाः स्वाहा ॥ ५ ॥

सदान्वाऽक्षयणम् । असि । सदान्वाऽचातनम् । मे । दाः । स्वाहा ॥ ५ ॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] तू (सदान्वाक्षयणम्) सदा चिल्लाने वाली वा दानवों के साथ रहने वाली (निर्धनता वा दुर्भिक्षता) की नाश शक्ति (असि) है, (मे) मुझे (सदान्वाचातनम्) सदा चिल्लाने वाली वा दानवों के साथ रहने वाली [निर्धनता वा दुर्भिक्षता] के मिटाने का बल (दाः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥ ५ ॥

भावार्थः—निर्धनता और दुर्भिक्षता [अकाल] आदि विपत्तियों के मारे सब प्राणी महादुखी होकर आर्त्तध्वनि करते, और चोर आदि उन्हें सताते हैं। परमेश्वर की दयालुता और पूर्णता पर ध्यान करके, मनुष्य प्रयत्न पूर्वक प्रभूत धन और अन्न का संचय करके आनन्द से रहें ॥ ५ ॥

४—**पिशाचक्षयणम्** । **कर्मण्यण्** (पा० ३ । २ । १) इति पिशित+अश भोजने-अण् । **पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्** (पा० ६ । ३ । १०९) इति शित-भागस्य लोपः, अशभागस्य शाचादेशः । पिशितं मांसम् अश्नन्तीति पिशाचाः कुविचाराः, अथवा, शारीरिकरोगा हिंसकाः प्राणिनो वा, तेषां नाशनम् ॥

५—**सदान्वाक्षयणम्** । अ० २ । १४ । १ । सदानोनुवानां सर्वदा शब्दकारिकानां वा दानवैः राक्षसैः सह वर्त्तमानानां दरिद्रतादिविपत्तीनां नाशनम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १९ ॥

१—५ ॥ अग्निर्देवता । १—४ साम्नी त्रिष्टुप्, २२ अक्षराणि, ५ साम्नी जगती ॥

कुप्रयोगत्यागायोपदेशः—कुप्रयोग के त्याग के लिये उपदेश ॥

अग्ने यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप यो ३ ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ १ ॥

अग्ने । यत् । ते । तपः । तेन । तम् । प्रति । तप । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [अग्नि पदार्थ] (यत्) जो (ते) तेरा (तपः) प्रताप [ऐश्वर्य] है, (तेन) उस से (तम् प्रति) उस [दोष] पर (तप) प्रतापी हो, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करता है, [अथवा] (यम्) जिस से (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—दुराचारी, कामी, क्रोधी आदि पुरुष की मति भ्रष्ट हो जाती है, और कुप्रयोग से शारीरिक और बाह्य अग्नि दुःखदायी होती, और वही अग्नि सुप्रयोग से विचारशील सदाचारियों को सुखप्रद होती है। ऐसा ही आगे समझना चाहिये ॥ १ ॥

ऐसा कहा भी है—

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः ॥

गुण गुणवान् को प्राप्त करके निखर उठते हैं, परन्तु वही निर्गुणी को पाकर दोष हो जाते हैं ॥

१—अग्ने । अग्निनामक तेजोविशेष ! **ते** । त्वदीयम् । **तपः** । तप ऐश्वर्ये—असुन् । प्रतापः । ऐश्वर्यम् । **तेन** । तपसा । **तम्** । दोषम् । **प्रति** । लक्षीकृत्य । **तप** । प्रतापी भव । **यः अस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः** । इति व्याख्यातम्—अ० २ । ११ । ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्ने॒ यत्ते॒ हर॒स्तेन॒ तं प्रति॑ हर॒ यो३॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥ २ ॥

अग्ने॑ । यत् । ते॒ । हरः॑ । तेन॑ । तम् । प्रति॑ । हर॒ । यः । अ॒स्मान् । द्वेष्टि॑ । यम् । व॒यम् । द्वि॒ष्मः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि (यत्) जो (ते) तेरी (हरः) नाश शक्ति है, (तेन) उस से (तम्) उस [दोष] को (प्रति हर) नाश कर दे (यः) जो (अस्मान्) हम से.....मन्त्र १ ॥ २ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ २ ॥

अग्ने॒ यत्ते॒ऽर्चिस्तेन॒ तं प्रत्यर्च॑ यो३॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥ ३ ॥

अग्ने॑ । यत् । ते॒ । अ॒र्चिः । तेन॑ । तम् । प्रति॑ । अ॒र्च॒ । यः । अ॒स्मान् । द्वेष्टि॑ । यम् । व॒यम् । द्वि॒ष्मः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि (यत्) जो (ते) तेरी (अर्चिः) दीपन शक्ति है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (अर्च) प्रदीप्त हो, (यः) जो (अस्मान्) हम से.....मन्त्र १ ॥ ३ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ २ ॥

अग्ने॒ यत्ते॑ शो॒चिस्तेन॒ तं प्रति॑ शोच॒ यो ३॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥ ४ ॥

२—हरः । हृञ् प्रापणस्वीकारस्तेयनाशनेषु—असुन् । हरो हरतेर्ज्योतिर्हर उच्यते—निरु० ४ । १९ । हरति तमः । नाशनशक्तिः । **हर** । नाशय ॥

३—अर्चिः । अर्चिशुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्य इसिः (उ० २ । १०८) इति अर्च पूजाप्रकाशयोः—इसिः । ज्वलतो नाम—निघ० १ । १७ । दीपनम् ज्वाला । **अर्च** । ज्वलितो भव । दीप्यस्व ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्ने । यत् । ते । शोचिः । तेन । तम् । प्रति । शोच । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥४॥

भाषार्थः---(अग्ने) हे अग्नि (यत्) जो (ते) तेरी (शोचिः) शोधन-शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति शोच) शुद्ध कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हम से.....मन्त्र १ ॥ ४ ॥

भावार्थः---मन्त्र १ के समान ॥ ४ ॥

अग्ने यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥

अग्ने । यत् । ते । तेजः । तेन । तम् । अतेजसम् । कृणु । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ ५ ॥

भाषार्थः---(अग्ने) हे अग्नि [अग्नि पदार्थ] (यत्) जो (ते) तेरा (तेजः) तेज है, (तेन) उस से (तम्) उस [दोष] को (अतेजसम्) निस्तेज (कृणु) कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करता है, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः---मन्त्र १ के समान ॥ ५ ॥

सूक्तम् २० ॥

१--५ ॥ वायुर्देवता । १-४ साम्नी त्रिष्टुप्, ५ साम्नी जगतीछन्दः ॥

कुप्रयोगत्यागायोपदेशः---कुप्रयोग के त्याग के लिए उपदेश ॥

वायो यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ १ ॥

४---शोचिः । अर्चिशुचि० (उ० २ । १०८) इति ईशुचिर् पूतीभावे -इसिः । ज्वलतो नाम-निघ० १ । १७ । शुच्यत्यनेनेति । शोधनसामर्थ्यम् । **शोच** । शोचय, शोधय ॥

५---तेजः । अ० १ । ३५ । ३ । तिज निशाने, तेज पालने वा असुन् । कान्तिः । **अतेजसम्** । तिज, तेज-असुन् । नञ्समासः । कान्तिरहितम् । निस्तेजस्कम् । **कृणु** । कुरु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायो इति । यत् । ते । तपः । तेन । तम् । प्रति । तप ।
यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व !] (यत्) जो (ते) तेरा (तपः) प्रताप है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (तप) प्रतापी हो, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करता है, [अथवा] (यम्) जिस से (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—कुप्रयोग से वायु तत्त्व दुःख देता और सुप्रयोग से आनन्द बढ़ाता है । सू० १९ म० १ देखें ॥ १ ॥

वायो यत्ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ २ ॥

वायो इति । यत् । ते । हरः । तेन । तम् । प्रति । हर । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व] (यत्) जो (ते) तेरी (हरः) नाशन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति हर) नाश कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हम से ..... मन्त्र १ ॥ २ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ २ ॥

वायो यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ३ ॥

वायो इति । यत् । ते । अर्चिः । तेन । तम् । प्रति । अर्च । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व] (यत्) जो (ते) तेरी (अर्चिः) दीपन शक्ति है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (अर्च) प्रदीप्त हो (यः) जो (अस्मान्) हम से .....मन्त्र १ ॥ ३ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ ३ ॥

१—वायो । कृवापाजिमि० (उ० १ । १) इति वा गतिगन्धनयोः—उण् आतो युक् चिण्कृतोः (पा० ७ । ३ । ३३) इति युक् । वायुर्वातेर्वेतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः—निरु० १० । १ । हे पवन ! अन्यद् गतम्, सू० १९ ॥

२, ३, ४, ५—उपरि व्याख्याताः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायो यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच यो ३' स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ४ ॥

वायो इति । यत् । ते । शोचिः । तेन । तम् । प्रति । शोच । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व] (यत्) जो (ते) तेरी (शोचिः) शोधन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति शोच) शुद्ध कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हम से.....मन्त्र १ ॥ ४ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ ४ ॥

वायो यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु यो ३' स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥

वायो इति । यत् । ते । तेजः । तेन । तम् । अतेजसम् । कृणु । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व] (यत्) जो (ते) तेरा (तेजः) तेज है, (तेन) उस से (तम्) उस [दोष] को (अतेजसम्) निस्तेज (कृणु) कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करे, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ ५ ॥

सूक्तम् २१ ॥

१-५ । सूर्यो देवता । १-४ साम्नी त्रिष्टुप्, ५ साम्नी जगती छन्दः ॥

कुप्रयोगत्यागायोपदेशः—कुप्रयोग के त्याग के लिये उपदेश ॥

सूर्य यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप यो ३' स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य॑। यत्। ते॒। तपः॑। तेन॑। तम्। प्रति॑। तप॑। यः। अ॒स्मान्। द्वेष्टि॑। यम्। व॒यम्। द्वि॒ष्मः॥ १॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य [आदित्य मण्डल!] (यत्) जो (ते) तेरा (तपः) प्रताप है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (तप) प्रतापी हो, (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करे, [अथवा] (यम्) जिससे [वयम्] हम [द्विष्मः] अप्रिय करें॥ १॥

भावार्थः—सूर्य सृष्टि के पदार्थों को वीर्यवान् और तेजस्वी करता है किन्तु वही कुप्रयोग से दुःखदायी और सुप्रयोग से सुखदायी होता है॥ १॥

सूर्य॒ यत्ते॒ हर॒स्तेन॒ तं प्रति॑ हर॒ यो३॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः॥ २॥

सूर्य॑। यत्। ते॒। हरः॑। तेन॑। तम्। प्रति॑। हर॑। यः। अ॒स्मान्। द्वेष्टि॑। यम्। व॒यम्। द्वि॒ष्मः॥ २॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य [सूर्य मण्डल]! (यत्) जो (ते) तेरी (हरः) नाशन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति हर) नाश कर डाल, (यः) जो (अस्मान्) हम से……मन्त्र १॥ २॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान॥ २॥

सूर्य॒ यत्ते॒ऽर्चिस्तेन॒ तं प्रत्यर्च॒ यो३॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः॥ ३॥

सूर्य॑। यत्। ते॒। अ॒र्चिः। तेन॑। तम्। प्रति॑। अ॒र्च॒। यः। अ॒स्मान्। द्वेष्टि॑। यम्। व॒यम्। द्वि॒ष्मः॥ ३॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य [सूर्य मण्डल!] (यत्) जो (ते) तेरी (अर्चिः)

१-सूर्य। अ० १। ३। ५। हे सरणशील! हे प्रेरणशील! आदित्य! अन्यदुपरिगतम्॥

२, ३, ४, ५—उपरि व्याख्याताः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीपन शक्ति है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (अर्च) प्रदीप्त हो, (यः) जो (अस्मान्) हम से···मन्त्र १ ॥ ३ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ ३ ॥

सूर्य यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ४ ॥

सूर्य । यत् । ते । शोचिः । तेन । तम् । प्रति । शोच । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य [सूर्य मण्डल !] (यत्) जो (ते) तेरी (शोचिः) शोधन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति शोच) शुद्ध कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हमसे...मन्त्र १ ॥ ४ ॥

भावार्थः---मन्त्र १ के समान ॥ ४ ॥

सूर्य यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥

सूर्य । यत् । ते । तेजः । तेन । तम् । अतेजसम् । कृणु । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ ५ ॥

भाषार्थः---(सूर्य) हे सूर्य [सूर्य मण्डल !](यत्) जो (ते) तेरा (तेजः) तेज है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (अतेजसम्) निस्तेज (कृणु) कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करे, [अथवा] (यम्) जिस से (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ ५ ॥

सूक्तम् २२

चन्द्रो देवता ॥ १—४ साम्नी त्रिष्टुप्, ५ साम्नी जगती छन्दः ॥

कुप्रयोगत्यागोपदेशः—कुप्रयोग के त्याग के लिये उपदेश ॥

चन्द्र यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्र । यत् । ते । तपः । तेन । तम् । प्रति । तप । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(चन्द्र) हे चन्द्र [चन्द्र मण्डल !] (यत्) जो (ते) तेरा (तपः) प्रताप है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस (दोष) पर (तप) प्रतापी हो, (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करे, (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करें ॥ १ ॥

भावार्थः—शीतल स्वभाव चन्द्रमा स्वभावतः अपनी किरणों से अनिष्टों को हटा कर अन्न आदि औषधियों को पुष्ट करके प्राणियों को आनन्द देता है। परन्तु उसी चन्द्रमा के कुप्रयोग से मनुष्य पागल [Lunatic] और घोड़े आदि पशु रोगी हो जाते हैं। इस कुप्रयोग का त्याग करके सुप्रयोग से आनन्द प्राप्त करना चाहिये ॥ १ ॥

चन्द्र यत्ते हरस्तेन तं प्रति हर यो ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ २ ॥

चन्द्र । यत् । ते । हरः । तेन । तम् । प्रति । हर । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(चन्द्र) हे चन्द्र [चन्द्र लोक !] (यत्) जो (ते) तेरी (हरः) नाशन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] का (प्रति हर) नाश कर डाल, (यः) जो (अस्मान्) हमसे...मन्त्र १ ॥ २ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ २ ॥

चन्द्र यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च यो ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ३ ॥

चन्द्र । यत् । ते । अर्चिः । तेन । तम् । प्रति । अर्च । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ ३ ॥

१---चन्द्र । अ० १ । ३ । ४ । हे आह्लादक चन्द्रलोक !।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(चन्द्र) हे चन्द्र [चन्द्र लोक !] (यत्) जो (ते) तेरी (अर्चिः) दीपन शक्ति है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (अर्च) प्रदीप्त हो, (यः) जो (अस्मान्) हम से...मन्त्र १ ॥ ३ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ ३ ॥

चन्द्र यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ४ ॥

चन्द्र। यत्। ते। शोचिः। तेन। तम्। प्रति। शोच। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(चन्द्र) हे चन्द्र [चन्द्र लोक !] (यत्) जो (ते) तेरी (शोचिः) शोधन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति शोच) शुद्ध कर दे (यः) जो (अस्मान्) हमसे...मन्त्र १ ॥ ४ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ ४ ॥

चन्द्र यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥

चन्द्र। यत्। ते। तेजः। तेन। तम्। अतेजसम्। कृणु। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(चन्द्र) हे चन्द्र [चन्द्र लोक !] (यत्) जो (ते) तेरा (तेजः) तेज है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (अतेजसम्) निस्तेज (कृणु) कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करे, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ ५ ॥

सूक्तम् २३ ॥

१----५ ॥ आपो देवताः। १----४ साम्नी जगती, ५ स्वराट् साम्नी जगती छन्दः ॥

कुप्रयोगत्यागोपदेशः—कुप्रयोग त्याग के लिये उपदेश ॥

आपो यद् वस्तपस्तेन तं प्रति तपत यो ३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपः । यत् । वः । तपः । तेन । तम् । प्रति । तपत । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ १ ॥

भाषार्थः---(आपः) हे जल [जल पदार्थ !] (यत्) जो (वः) तुम्हारा (तपः) प्रताप है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (तपत) प्रतापी हो, (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करे, (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करें ॥ १ ॥

भावार्थः---वृष्टि, नदी, कूप आदि का जल अनावृष्टि दोषों को मिटाकर अन्न आदि पदार्थों को उत्पन्न करके प्राणियों को बल और सुख देता है, और वही कुप्रबन्ध से दुख का कारण होता है. ऐसे ही राजा सामाजिक नियमों के विरोधी दुष्टों का नाश करके प्रजा को समृद्ध करता और सुख देता है ॥ १ ॥

आपो यद् वो हरस्तेन तं प्रति हरत यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ २ ॥

आपः । यत् । वः । हरः । तेन । तम् । प्रति । हरत । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ २ ॥

भाषार्थः---(आपः) हे जलों (यत्) जो (वः) तुम्हारी (हरः) नाशन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति हरत) नाश कर डालो, (यः) जो (अस्मान्) हमसे .. म० १ ॥ २ ॥

भावार्थः---मन्त्र १ के समान ॥ २ ॥

आपो यद् वोऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चत यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ३ ॥

आपः । यत् । वः । अर्चिः । तेन । तम् । प्रति । अर्चत । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ ३ ॥

भाषार्थः---(आपः) हे जलों (यत्) जो (वः) तुम्हारी (अर्चिः) दीपन शक्ति है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (अर्चत) प्रदीप्त हो, (यः) जो (अस्मान्) हम से···म० १ ॥ ३ ॥

भावार्थः---मन्त्र १ के समान ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपो यद् वः शोचिस्तेन तं प्रति शोचत यो ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ४ ॥

आपः । यत् । वः । शोचिः । तेन । तम् । प्रति । शोचत । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(आपः) हे जलों ! (यत्) जो (वः) तुम्हारी (शोचिः) शोधन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति शोचत) शुद्ध कर दो, (यः) जो (अस्मान्) हमसे ·····मन्त्र १ ॥ ४ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ ४ ॥

आपो यद् वस्तेजस्तेन तमतेजसं कृणुत यो ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥

आपः । यत् । वः । तेजः । तेन । तम् । अतेजसम् । कृणुत । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(आपः) हे जलों ! (यत्) जो (वः) तुम्हारा (तेजः) तेज है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (अतेजसम्) निस्तेज (कृणुत) कर दो (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करे (अथवा) (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ ५ ॥

सूक्तम् २४ ॥

१-८ ॥ ईश्वरो देवता । पूर्वार्धाः-१, २ भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप् २३; ३, ४ निचृत् साम्नी त्रिष्टुप् २१; ५ साम्नी बृहती १८; ६-७ भुरिक् साम्नी बृहतीछन्दः, १९; उत्तरार्धाः सर्वत्र साम्नी बृहती १८ अक्षराणि ॥

म०—१-४ । कुसंस्काराणां ५-८ कुवासनानां च नाशायोपदेशः—म० १-४ कुसंस्कारों के और ५-८ कुवासनाओं के नाश का उपदेश ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥ १ ॥

शेरभक। शेरभ। पुनः। वः। यन्तु। यातवः। पुनः। हेतिः। किमीदिनः। यस्य। स्थ। तम्। अत्त। यः। वः। प्र_ऽअहैत्। तम्। अत्त। स्वा। मांसानि। अत्त ॥ १ ॥

भाषार्थः—(शेरभक) अरे बधकपन में मन लगाने वाले! (शेरभ) अरे रंग में भंग डालने वाले! [दुष्ट!] और (किमीदिनः) अरे लुतरे लोगो! (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें, और (हेतिः) चोट (पुनः पुनः) लौट लौट कर (यन्तु) चली जावें। तुम (यस्य) जिसके [साथी] (स्थ) हो, (तम्) उस (पुरुष) को (अत्त) खाओ, (यः) जिस [पुरुष] ने (वः) तुमको (प्राहैत्=प्राहैषीत्) भेजा है, (तम्) उस को (अत्त) खाओ, (स्वा=स्वानि) अपने ही (मांसानि) मांस की बोटियां (अत्त) खाओ ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे नीति निपुण राजा अपने बुद्धिबल से ऐसा प्रबन्ध करता है कि शत्रु जो कुछ छलबल करे वह उसी को ही उलटा दुःखदायी हो और उसके मनुष्य उसकी कुनीतियों को जान कर उसका ही नाश कर दें, और वह लोग

१--**शेरभक**। शसु हिंसायाम्-डः। **कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उन्** (उ० ५।३५) इति रभेऽ उत्सुकीभावे=अविचारप्रवृत्तौ-उन्। शसति हन्ति येनेति शः। शस्त्रं हननं वधो वा। शे वधे। रभते उत्सुकीभवतीति शेरभकः, तत्सम्बुद्धौ। अलुक् समासः। हे हिंसायामुत्सुक। **शेरभ**। **वृधिवपिभ्यां रन्** (उ० २। २७) इति शीङ् स्वप्ने-रन्। भञ्जो आमर्दने-डः। शेवं सुखनाम-निघ० ३। ६। शेरं शेवं सुखं भनक्तीति शेरभः सुखभञ्जकः, तत्सम्बुद्धौ। **पुनः**। पन स्तुतौ-अर्, अकारस्य उत्वम्। द्वितीयवारे। भेदे। निवृत्य। **वः**। युष्माकम्। **यन्तु**। इण् गतौ। गच्छन्तु। **यातवः**। अ० द्र० १। ७। १। यत ताडने-उण्। ताडनाः। पीडाः। **हेतिः**। अ० द्र० १।१३।३। हन हिंसागत्योः-क्तिन्। हननम्। वज्रः। **किमीदिनः**। अ० द्र० १। ७; १। किम्+इदम्-इनिः। पिशुनाः। **यस्य**। अस्मद्विरोधिनः। **स्थ**। सहायका भवथ। **तम्**। विरोधिनम्। **अत्त**। भक्षयत। **वः**। युष्मान्।

---

१. धातुपाठ में रभ राभस्ये धातु पढ़ी है, रभङ् नहीं। उसीसे यहां तात्पर्य है। सम्पा०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपस में विरोध करके परस्पर मार डालें। इसी प्रकार आत्मजिज्ञासु पुरुष अपने शरीर और आत्मा की निर्बलता और दोषों और उनसे उत्पन्न दुष्ट फलों को समझ कर बुद्धिपूर्वक उन्हें एक एक करके नाश करदे, और जितेन्द्रिय हो कर आनन्द भोगे । १ ॥

सायणभाष्य में 'स्वा' पद के स्थान में 'सा' पद है और उसका अर्थ 'तस्य शत्रोः यद्वा सा हेतिः' ऐसा किया है, हमारी समझ में बहुवचनान्त (स्वा) पद ही ठीक है ॥

इस सूक्त के पहिले चार मन्त्रों में पुंल्लिङ्ग शब्दों का, और पिछले पाँच मन्त्रों में स्त्रीलिङ्ग का सम्बोधन है ॥

शेवृधक शेवृध पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिःकिमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥२॥

शेवृधक । शेवृध । पुनः । वः । यन्तु । यातवः । पुनः । हेतिः । किमीदिनः । यस्य । स्थ । तम् । अत्त । यः । वः । प्रऽअहैत् । तम् । अत्त । स्वा । मांसानि । अत्त ॥ २ ॥

भाषार्थः—(शेवृधक) अरे बधक पन में बढ़ने वाले ! (शेवृध) अरे सुख के नाश करने वाले [दुष्ट !] और (किमीदिन.) अरे लुतरे लोगो ! (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें और (हेतिः) (चोट) ..मन्त्र १ ॥ २ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ २ ॥

प्र-अहैत् । हि गतौ-अन्तर्भावितण्यर्थः । लुङि सिचि वृद्धिः । **बहुलं छन्दसि** (पा० ७ । ३ । ९७) इति अपृक्तप्रत्ययस्य ईडभावे **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** (पा० ८ । २ । २९) इति सलोपः । प्राहैषीत् । प्रेषितवान् । **स्वा**[1] । स्वानि । **मांसानि** । अ० द्र० १ । ११ । ४ । मन ज्ञाने धृतौ च सप्रत्ययः । पिशितानि ॥

२-शेवृधक । शसु हिंसायाम्-डः । **बहुलमन्यत्रापि** (उ० २ । ३९) इति वृधु वृद्धौ क्वुन् । शे शस्त्रे हनने वधे वा वर्धते दीप्यते वा स शेवृधकः । तत्सम्बुद्धौ । **शेवृध** । **सावसेर्ऋन्** (उ० २ । ९६) इति शेवृ सेवने-ऋन् । धक्क नाशने-डप्रत्ययः । शेवं सुखनाम-निघ० ३ । ६ । शेवृ शेवं सुखं धक्कयतीति शेवृधः । हे सुखनाशक । अन्यत् पूर्ववत् ॥

---

१. सुपां सुलुक्० (पा० ७।१।३९) से यहाँ जस् को आकारादेश हुआ है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओकानुंओक पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥३॥

ओकं । अनुंऽओक । पुनः । वः । यन्तु । यातवः । पुनः । हेतिः । किमीदिनः । यस्य । स्थ । तम् । अत्त । यः । वः । प्रऽअहैत् । तम् । अत्त । स्वा । मांसानि । अत्त ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(ओक) अरे चोर ! (अनुओक) अरे चोरों के साथी ! (किमीदिनः) अरे तुम लुतरे लोगो ! (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें और (हेतिः) चोट (पुनः पुनः) लौट लौट कर (यन्तु) चली जावें···मन्त्र १ ॥ ३ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ ३ ॥

सर्पानुंसर्प पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥४॥

सर्प । अनुंऽसर्प । पुनः । वः । यन्तु । यातवः । पुनः । हेतिः । किमीदिनः । यस्य । स्थ । तम् । अत्त । यः । वः । प्रऽअहैत् । तम् । अत्त । स्वा । मांसानि । अत्त ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(सर्प) अरे सांप [क्रूर स्वभाव !] (अनुसर्प) अरे साँपों के साथी ! (किमीदिनः) अरे तुम लुतरे लोगो ! (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें और (हेतिः) चोट (पुनः पुनः) लौट लौट कर (यन्तु) चली जावें...म० १॥ ४॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥ ४ ॥

३-**ओक**। **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** (पा० ३ । ३ । ११८) इति म्रुचु गतौ-कर्तरि घप्रत्ययः। **चजोः कु घिण्ण्यतोः** (पा० ७।३।५२) इति कुत्वम्। ओचति धनादिकम् अपहृत्य छन्नः सन् गच्छतीति ओकः-इति सायणः। हे चौर, म्लेच्छ। **अनुओक**। ओकान् अनु गच्छतीति अनुओकः। चौरसहायक ! ॥

४-**सर्प**—सृप्ल्ट गतौ-पचाद्यच्। सर्पति इतस्ततो गच्छतीति **सर्पः**। हे हिंस्रजन्तुविशेष ! तद्वत् क्रूरस्वभाव पुरुष ! **अनुसर्प**। सर्पान् अनुसृत्य सह व्याप्य गच्छतीति अनुसर्पः। हे सर्पानुसारिन्। हिंस्रसहायक ! ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥५॥

जूर्णिं । पुनः । वः । यन्तु । यातवः । पुनः । हेतिः । किमी-दिनीः । यस्य । स्थ । तम् । अत्त । यः । वः । प्रऽअहैत् । तम् । अत्त । स्वा । मांसानि । अत्त ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(जूर्णि) अरी जूड़ी [जाड़े के ज्वर] ! (किमीदिनीः = ०न्यः) अरी तुम लुतरियो ! [कुवासनाओ !] (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें और (हेतिः) चोट (पुनः पुनः) लौट लौट कर (यन्तु) चली जावें ... म० १ ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो नीतिज्ञ पुरुष अपने मन की कुवासनाओं और उनके कारण को जानकर उनको सर्वथा मिटाता है, वह वशिष्ठ महा उपकारी जितेन्द्रिय होकर संसार का उपकार करके आनन्दित होता है ॥ ५ ॥

उपब्दे पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥६॥

उपब्दे । पुनः । वः । यन्तु । यातवः । पुनः । हेतिः । किमी-दिनीः । यस्य । स्थ । तम् । अत्त । यः । वः । प्रऽअहैत् । तम् । अत्त । स्वा । मांसानि । अत्त ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(उपब्दे) अरी चिंघारने वाली ! और (किमीदिनीः = ०—न्यः)

५—**जूर्णि** । **वीज्याज्वरिभ्यो निः** (उ० ४ । ४८) इति ज्वर रोगे—निः । **ज्वरत्वरश्रिव्यवि०** (पा० ६ । ४ । २०) इति वकारोपधयोरूठ् । शीतज्वरवद् दुःखप्रदकुवासने । **किमीदिनीः** । **ऋन्नेभ्यो ङीप्** (पा० ४ । १ । ५) इति **ङीप्** । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति जसि पूर्वसवर्णदीर्घः । किमी-दिन्यः, पिशुन्यः ॥

६—**उपब्दे** । **सर्वधातुभ्यः इन्** (उ० ४ । ११८) इति उपपूर्वात् पद गतौ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरी तुम लुतरियो [कुवासनाओ !] (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें और (हेतिः) चोट (पुनः पुनः) लौट लौट कर (यन्तु) चली जावें म० ५ ॥ ६ ॥

भावार्थः—कुवासनाओं और कुचिन्ताओं से मनुष्य कठोरवादी हो जाता है ॥ ६ ॥

अर्जुनि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥ ७ ॥

अर्जुनि । पुनः । वः । यन्तु । यातवः । पुनः । हेतिः । किमीदिनीः । यस्य । स्थ । तम् । अत्त । यः । वः । प्रऽअहैत् । तम् । अत्त । स्वा । मांसानि । अत्त ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(अर्जुनि) अरे कुटिनी [दूती !] (किमीदिनीः=न्यः) अरी तुम लुतरियो ! [कुवासनाओ] (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें..... म० ५ ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कुवासनाओं को कुटिनी वा दूती इत्यादि माना है—शेष मन्त्र ५ के समान ॥ ७ ॥

भरूजि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥ ८ ॥

भरूजि । पुनः । वः । यन्तु । यातवः । पुनः । हेतिः । किमीदिनीः । यस्य । स्थ । तम् । अत्त । यः । वः । प्रऽअहैत् । तम् । अत्त । स्वा । मांसानि । अत्त ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(भरूजि—भरुजि) अरी नीच शृगाली [गीदड़नी, लोमड़ी !]

वा वद व्यक्तायां वाचि-इन् । यद्वा, **कृत्यल्युटो बहुलम्** (पा० ३ । ३ । ११३) इति बहुलवचनात् **उपसर्गे घोः किः** (पा० ३ । ३ । ९२) इति दो अवखण्डने-किः । पृषोदरादित्वाद् रूपसिद्धिः । उपब्दिः, वाङ्नाम-निघ० १ । ११ । उपेत्य द्यति खण्डयतीति । हे क्रूरशब्दकारिणि ॥

७—अर्जुनि । अर्जेर्णिलुक् च (उ० ३ । ५८) इति अर्ज लाभे, संस्कारे च-उनन् । **षिद्गौरादिभ्यश्च** (पा० ४ । १ । ४१) इति ङीष् । हे कुट्टिनि ! ॥

८—भरूजि । भ+रुजो भङ्गे, वा रुज हिंसायाम्-कः । भ-इति शब्देन रुज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(किमीदिनी :=०–न्यः) अरी तुम लुतरी [कुवासनाओ !] (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें, और (हेतिः) चोट (पुनः पुनः) लौट २ कर (यन्तु) चली जावें। तुम (यस्य) जिसकी [साथिनी] (स्थ) हो. (तम्) उस [पुरुष] को (अत्त) खाओ, (यः) जिस [पुरुष] ने (वः) तुमको (प्राहैत्) भेजा है, (तम्) उसे (अत्त) खाओ, (स्वा=स्वानि) अपने ही (मांसानि) मांस की बोटियां (अत्त) खाओ ॥ ८ ॥

भावार्थः—(भरूजी वा भरुजी) गीदड़नी को कहते हैं। जैसे गीदड़नी छल कपट करके पीड़ा देती है, ऐसे ही मनुष्य कुवासनाओं के कारण कपटी छली होकर सताने लगता है। कुवासनाओं के नाश करने का उपाय पुरुष को प्रयत्न पूर्वक करना चाहिये–म० ५ देखो ॥ ८ ॥

टिप्पणी—'भरूजि' पद के स्थान में सायणभाष्य में 'भरूचि' पद व्याख्यात है ॥

सूक्तम् २५ ॥

१-५ ॥ पृश्निपर्णी देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

शत्रुनाशायोपदेश :–शत्रुओं के नाश के लिये उपदेश ॥

शं नो॑ दे॒वी पृ॑श्नि॒पर्ण्यशं॒ निर्ऋ॑त्या अकः ।
उ॒ग्रा हि क॑ण्व॒जम्भ॑नी॒ तामभ॑क्षि॒ सह॑स्वतीम् ॥ १ ॥

शम् । नः । दे॒वी । पृ॒श्नि॒ऽपर्णी । अशम् । निःऽऋ॑त्यै । अकः ।
उ॒ग्रा । हि । क॒ण्व॒ऽजम्भ॑नी । ताम् । अभ॑क्षि । सह॑स्वतीम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(देवी) दिव्य गुण वाली (पृश्निपर्णी) सूर्य वा पृथिवी की पालने वाली [अथवा, सूर्य वा पृथिवी जैसे पत्ते वाली ओषधि रूप परमेश्वर

तीति भरुजः, क्षुद्रशृगालः–इति शब्दकल्पद्रुमकोषे। **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** (पा० ४ । १ । ६३) इति ङीष्, उकारस्य छान्दसो दीर्घः। हे क्षुद्रशृगालि। तद्वत् कपटिनि ! ॥

१—शम् । सुखम् । **नः** । अस्मभ्यम् । **देवी** । दीप्यमाना । **पृश्निपर्णी** । पृश्निः–इति व्याख्यातम्, अ० द्र० २।२।१। स्पृश संस्पर्शने–निः, सलोपः । पृश्निः= सूर्यः, पृथिवी । **धापृवस्यज्यतिभ्यो नः** (उ० ३ । ६) इति पॄ पालनपूरणयोः–नः । पिपर्त्ति पालयति पूरयति वा तत् पर्णं पत्रं वा । स्त्रियां ङीष् । सूर्यस्य पृथिव्या वा परमेश्वरस्य पालनशक्तिः । सूर्यवत् पृथिवीवद्वा पर्णानि पत्राणि यस्याः सा पृश्निपर्णी, ओषधिरूपा परमेश्वरशक्तिः । पृश्निपर्णी चित्रपर्णी ओषधिः—इति सायणः । पृश्नि स्वल्पं पर्णमस्याः—लता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति] ने (नः) हमारे [पुरुषार्थियों के] लिये (शम्) सुख, और (निर्ऋत्यै) दुःखदायिनी अलक्ष्मी, महामारी आदि पीड़ा के लिये (अशम्) दुःख (अकः = अकार्षीत्) किया है। (हि) क्योंकि वह शक्ति (उग्रा) प्रचंड और (कण्वजम्भनी) पाप का नाश करने वाली है, [इसलिये] (ताम्) उस (सहस्वतीम्) बलवती को (अभक्षि) मैंने भजा वा पूजा है ॥ १ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने सूर्य आदि बड़े बड़े लोकों को धारण किया है और जैसे पृथिवी पर अन्नादि ओषधियां अपने पत्ते, फलादि से उपकार करती हैं, वैसे ही परमेश्वर की सृष्टि में सूर्यादि लोक आकर्षण, धारण, वृष्टि आदि से परस्पर उपकारी होते हैं। परमेश्वर अपने आज्ञापालक पुरुषार्थियों को सुख, और आज्ञानाशक कर्महीनों को दुःख देता है। उस दयालु और प्रचंड परमात्मा की आज्ञा मान कर हम सदा आनन्द भोगें ॥ १ ॥

टिप्पणी—'पृश्नि' शब्द का अर्थ सूर्य है-निरु० २ । २४ । पृथिवी छोटा और विचित्र भी है, 'पर्ण' का अर्थ पालन, और पत्ते हैं । सायणाचार्य ने 'पृश्निपर्णी' का अर्थ चित्रपर्णी ओषधि लिखा है। शब्दकल्पद्रुमकोष में वर्णन है कि 'पृश्निपर्णी' छोटे पत्ते वाली लता विशेष है, उसे बंगला में "चाकुलिया" और नागरी में "चकरौत्" कहते हैं, इसके गुण कटुत्व, और अतिसार कास, वातरोग, ज्वर, उन्माद, व्रण, और दाह नाशक हैं ॥

विशेषः, चाकुलिया इति बङ्गभाषा, चकरौत् इति हिन्दीभाषा, अस्याः गुणाः—कटुत्वम्, अतीसारकासवातरोगज्वरोन्मादव्रणदाहनाशित्वञ्च, इति शब्दकल्पद्रुमे । **अशम्** । अशान्तिम् । दुःखम् । **निर्ऋत्यै** । अ० द्र० १ । ३१ । २ । निः+ऋ गतौ—क्तिन् । अलक्ष्म्यै, निर्धनतायै । **अकः** । डुकृञ् करणे लुङ् । **मन्त्रे घस०** (पा० २ । ४ । ८०) इति च्लेर्लुक् । गुणे । **हल्ङ्याब्भ्यो०** (पा० ६ । १ । ६८) इति तिलोपः । अकार्षीत्, कृतवती । **उग्रा** । अ० द्र० १ । १० । १ । उच समवाये—रक् । प्रचण्डा । **हि** । यस्मात् कारणात् । **कण्वजम्भनी** । **अशूप्रुषिलटिकणिखटिविशिभ्यः क्वन्** (उ० १ । १५१) इति कण गतौ, आर्त्तस्वरे—क्वन् । कण्यते अपोद्यते तत् कण्वं पापम् । जभि नाशने—ल्युट्, ङीप् । पापस्य नाशयित्री । **अभक्षि** । भज सेवायाम्, लुङि आत्मनेपदोत्तमैकवचनम् । अहं सेवितवानस्मि । **सहस्वतीम्** । सहस्-मतुप् ङीष् । **तसौ मत्वर्थे** (पा० १ । ४ । १९) इति भत्वेन अपदत्वाद् रुत्वाभावः । अभिभवनशीलाम् । बलवतीम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ज्यजायत ।
तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥ २ ॥

सहमाना । इयम् । प्रथमा । पृश्निऽपर्णी । अजायत । तया ।
अहम् । दुःऽनाम्नाम् । शिरः । वृश्चामि । शकुनेःऽइव ॥ २ ॥

भाषार्थः—(सहमाना) जीतने वाली (इयम्) यह (पृश्निपर्णी) सूर्य वा पृथिवी की पालने वाली [अथवा, सूर्य वा पृथिवी जैसे पत्ते वाली औषधि रूप परमेश्वर शक्ति] (प्रथमा) सब से पहिले (अजायत) प्रकट हुयी है। (तया) उस [शक्ति] से (अहम्) मैं (दुर्नाम्नाम्) बुरे नाम वाले दोषों के (शिरः) शिर को (वृश्चामि) तोड़ डालूँ, (इव) जैसे (शकुनेः) पक्षी के [शिर को तोड़ डालते हैं] ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य आदिकारण परमेश्वर के विश्वास पर अपना शारीरिक और आत्मिक बल बढ़ाकर अपने शत्रुओं और दोषों का नाश करके आनन्द भोगें ॥ २ ॥

टिप्पणी—'दुर्नाम' शब्द का शब्दकल्पद्रुम कोष में 'अर्श' अर्थात् बवासीर रोग अर्थ भी लिखा है ॥

२–सहमाना । षह मर्षणे—शानच् । दोषान् अभिभवन्ती । **इयम् ।** समीपवर्त्तिनी पृश्निपर्णी । **प्रथमा । प्रथेरमच् ।** (उ० ५ । ६८) इति प्रथ प्रख्याने—अमच्, टाप् । प्रख्याता । मुख्या । सृष्टेः प्राग्भवा । **पृश्निपर्णी ।** म० १ । **अजायत ।** जनी प्रादुर्भावे–लङ् । **ज्ञाजनोर्जा** (पा० । ७ । ३ । ७९) इति जा इत्यादेशः । प्रादुरभवत् । **दुर्णाम्नाम् ।** दुर्दुष्टं निन्दितं नाम येषाम् । दुष्टदोषाणाम् । दुर्नाम, अर्शो रोगः–इति शब्दकल्पद्रुमे । **शिरः । श्रयतेः स्वाङ्गे शिरः किच्च** (उ० ४ । १९४) इति श्रिञ् सेवने–असुन्, स च कित्, धातोः शिरादेशश्च । मस्तकम् । **वृश्चामि ।** ओव्रश्चू छेदने । छिनद्मि । **शकुनेरिव । शकेरुनोन्तोन्त्युनयः** (उ० ३ । ४९) इति शक्लृ शक्तौ–उनिः । यथा पक्षिणः शिरः खड्गादिकं विनापि छिद्यते ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरायमसृक्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति ।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ॥ ३ ॥

अरायम् । असृक्पावानम् । यः । च । स्फातिम् । जिहीर्षति ।
गर्भादम् । कण्वम् । नाशय । पृश्निपर्णि । सहस्व । च ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(पृश्निपर्णि) हे सूर्य वा पृथिवी की पालने वाली [अथवा सूर्य वा पृथिवी जैसे पत्ते वाली ओषधि रूप परमेश्वर शक्ति] (अरायम्) निर्धनता को, (च) और (यः) जो [रोग] (स्फातिम्) बढ़वार को (जिहीर्षति) छीनना चाहे, [उस] (असृक्पावानम्) रक्त पीने वाले, और (गर्भादम्) गर्भ खाने वाले [गर्भाधान शक्ति का नाश करने वाले] (कण्वम्) पाप [रोग] को (सहस्व) जीत ले (च) और (नाशय) मिटा दे ॥ ३ ॥

भावार्थः—जिन आलस्यादि दोषों और ब्रह्मचर्यादि खण्डन रूप कुकर्मों से हम धन हीन, तन क्षीण, मन मलिन होकर वंशच्छेद करें, ऐसे दोषों को हम सर्वथा त्यागें, और उस (पृश्निपर्णी) सूर्यादि जगत् के रचक, पोषक अखण्डव्रत परमात्मा का ध्यान करके विद्यावृद्धि धनवृद्धि और कुलवृद्धि करके आनन्द भोगें ॥ ३ ॥

३—**अरायम्** । रा दाने–घञ् युक् आगमः । नञ्समासः । निर्धनताम् । **असृक्पावानम्** । असु क्षेपणे, यद्वा असूञ् दीप्तिग्रहणगतिषु–ऋजिप्रत्ययः[1] । अस्यते क्षिप्यते नाडीभिः । यद्वा अस्यति शरीरं येन, यद्वा गृह्णाति गच्छति वा यत्तद् असृक्, रक्तम् । **आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च** (पा० ३ । २ । ७४) इति पा पाने वनिप् । रुधिरस्य पानशील नाशकम् । **स्फातिम्** । स्फायी वृद्धौ--क्तिन् । वृद्धिम् । **जिहीर्षति** । हृञ् हरणे--सनि लट् । हर्त्तुं इच्छति नाशयितुम् उपक्रमते । **गर्भादम्** । **अद्योऽनन्ने** (पा० ३ । २ । ६८) इति गर्भ+अद भक्षणे–विट् । गर्भस्य भक्षकम् । **कण्वम्** । व्याख्यातम् (कण्वजम्भनी) इति शब्दे--म० १ । कण्यते अपोद्यते इति कण्वं पापम् । **अर्श आदिभ्योऽच्** (पा० ५ । २ । १२७) इति मत्वर्थे अच् । पापयुक्तं दुःखकरं रोगम् । **नाशय** । मारय । **पृश्निपर्णि** । म० १ । **सहस्व** । अभिभव ॥

---

१. असु क्षेपे से ऋजि प्रत्यय की कल्पना करने की अपेक्षा सृज विसर्गे धातु से क्विन् प्रत्यय करना अधिक उचित है । अर्थात् न सृज्यते इतररागवत् संसृज्यते सहजत्वादिति असृक्=रुधिरः । सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरिमेनाँ आ वेशय कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ॥ ४ ॥

गिरिम् । एनान् । आ । वेशय । कण्वान् । जीवितऽयोपनान् । तान् । त्वम् । देवि । पृश्निऽपर्णि । अग्निःऽइव । अनुऽदहन् । इहि ॥ ४ ॥

भाषार्थः---(देवि) हे दिव्य गुण वाली (पृश्निपर्णि) सूर्य वा पृथिवी की पालने वाली [अथवा सूर्य वा पृथिवी जैसे पत्ते वाली ओषधिरूप परमेश्वर शक्ति] (एनान्) इन (जीवितयोपनान्) प्राणों के मोहने वाले [व्याकुल करने वाले] (कण्वान्) पाप रोगों को (गिरिम्) पहाड़ [अगम्य स्थान] में (आ वेशय) गाड़ दे। और (त्वम्) तू (अनुदहन्) क्रम से दाह करती हुई (अग्निःइव) आग के समान (तान्) उन पर (इहि) पहुंच ॥ ४ ॥

भावार्थः--जिन (कण्वान्) आत्म दोषों से मनुष्य का जीवन द्विविधा में पड़े और विघ्नों में फँसकर अपकीर्ति मिले, उन दुःखदायी दोषों को परमेश्वर का सहाय लेकर सर्वथा नाश करे ॥ ४ ॥

टिप्पणी---पातञ्जल योगदर्शन, पाद १ सूत्र में इन विघ्नों का वर्णन किया है—

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनाल-
ब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥

४--**गिरिम्** । कृगृशपकुट्टि० (उ० ४ । १४३) इति गॄ निगरणे, अथवा गृणातिः स्तुतिकर्मा—निरु० ३ । ५ । इप्रत्ययः, किच्च । गिरति धारयति पृथिवीं ग्रियते स्तूयते गुरुत्वाद्वा । पर्वतम् । अगम्यस्थानम् । **एनान्** । समीपस्थान्, प्रसिद्धान् । **आ+वेशय** । द्विकर्मकः । प्रवेशय, स्थापय । **कण्वान्** । म० ३ । दुःखकरान् दोषान् । **जीवितयोपनान्** । जीव प्राणधारणे—भावे क्तः । **कृत्यल्युटो बहुलम्** (पा० ३ । ३ । ११३) इति युप विमोहने-कर्तरि ल्युट् । जीवनस्य विमोहकान् । **अनुदहन्** । अनुक्रमेण भस्मीकुर्वन् । **इहि** । इण् गतौ—लोट् । गच्छ, प्राप्नुहि आक्रमस्व । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—(व्याधि) रोग, २—(स्त्यान) भारीपन, ३—(संशय) द्विविधा, ४—(प्रमाद) भूल, ५—(आलस्य) ढीलापन, ६—(अविरति) जंजाल में फंस जाना, ७—(भ्रान्तिदर्शन) भ्रम वा अज्ञान से कुछ का कुछ देखना, ८—(अलब्धभूमिकत्व) ठिकाने का न पाना, और ९—(अनवस्थितत्वानि) अदृढ़ता, (चित्तविक्षेपाः) चित्त की हलचलें हैं, और (ते अन्तरालाः) वे विघ्न हैं ॥

परांच एनान् प्र णुद कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ॥ ५ ॥

परांचः । एनान् । प्र । नुद । कण्वान् । जीवितऽयोपनान् ।
तमांसि । यत्र । गच्छन्ति । तत् । क्रव्यऽअदः । अजीगमम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (एनान्) इन (जीवितयोपनान्) प्राणों के मोहने वाले (कण्वान्) पाप रोगों को (पराचः) औंधे मुख (प्र णुद) ढकेल दे । (यत्र) जहां (तमांसि) अन्धकार (गच्छन्ति) व्याप्त रहते हैं, (तत्=तत्र) वहाँ (क्रव्यादः) मांस खाने वाले [रोगों] को (अजीगमम्) मैंने पहुँचा दिया है ॥ ५ ॥

भावार्थः—जैसे राजा महापापी दुराचारी पुरुष को बन्ध करके अँधेरे कारागार में डाल देता है, इसी प्रकार पुरुषार्थी पुरुष व्यायाम करने और

५—**पराचः** । परा प्रातिलोम्ये, अनादरे, न्यग्भावे, तत्पूर्वाद् अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन्, शसि रूपम् । पराङ्मुखान्, विमुखान् । **एनान्** । समीपस्थान् । अस्माकं कुसंस्कारोत्पन्नान् । **प्र+नुद** । णुद प्रेरणे । प्रेरय । अपसारय । **तमांसि** । तमु कांक्षायाम्-असुन् । क्लेशहेतुकाः । अन्धकाराः । **यत्र** । यत् स्थानम् । **गच्छन्ति** । व्याप्नुवन्ति । **तत्** । निःसूर्यस्थानम् । **क्रव्यादः** । क्लव भये[1]-यत् । रलयोरेकत्वात् । **क्रव्ये च** (पा० ३ । २ । ६९) क्रव्योपपदाद् अद

---

१. क्लव भये धातु धातुपाठ आदि में कहीं नहीं है । भाष्यकार ने यह व्युत्पत्ति आप्टे आदि कोशों के आधार पर लिखी है । निरुक्त में 'क्रव्यं विकृत्ताज्जायते' (निरु० ६।११) ऐसी व्युत्पत्ति की है, जो कि संगत है । वस्तुतः कृती छेदने से 'कृत्त' शब्द बनेगा । उसके उपपद रहते अद धातु से यहाँ औत्सर्गिक अण् (पा० ३ । २ । १) होकर कृत्त को क्रव्य भाव पृषोदरादीनि० (पा० ६ । ३ । १०३) से होकर क्रव्यादः बन जायेगा । (द्र. काशि. ३ । २ । ६९) । कोशानुसारी व्युत्पत्ति करके क्रव्य बनाना एवं विट् प्रत्यय करना यहाँ अशुद्ध है । क्रव्यादः पक्वमांसभक्षः (द्र. न्या. ३ । २ । ६९) ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पथ्य पदार्थों के सेवन से आलस्य, ज्वर आदि शारीरिक रोगों को मिटाकर अविद्यादि मानसिक रोगों का नाश करें ।। ५ ।।

सूक्तम् २६ ।।

१---५।। त्वष्टा सविता वा देवता । १–२ त्रिष्टुप्, ३-५ अनुष्टुप् ।।

सङ्गतिकरणोपदेशः—मेल करने का उपदेश ।।

एह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां सहचारं जुजोष । त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदास्मिन् तान् गोष्ठे सविता नि यच्छतु ।। १ ।।

आ । इह । यन्तु । पशवः । ये । पराऽईयुः । वायुः । येषाम् । सहऽचारम् । जुजोष । त्वष्टा । येषाम् । रूपऽधेयानि । वेद । अस्मिन् । तान् । गोऽस्थे । सविता । नि । यच्छतु ।। १ ।।

भाषार्थ :---(पशवः) वे पशु [गौ आदि वा मनुष्यादि प्राणी] (इह) यहां (आ यन्तु) आ जावें, (ये) जो (परेयुः) भटक गये हैं। (येषाम्) जिनके (सहचारम्) साथ साथ चलना (वायुः) पवन ने (जुजोष) अङ्गीकार किया है। (त्वष्टा) सूक्ष्म क्रियाओं का रचने वाला [सूक्ष्मदर्शी पुरुष] (येषाम) जिनके (रूपधेयानि) रूपों [शारीरिक रूपों और मानसिक स्वभावों] को (वेद) पहिचानता है, (सविता) वह सब का चलाने वाला [गोपाल वा सभाप्रधान पुरुष] (तान्) उन [पशुओं] को (अस्मिन्) इस (गोष्ठे) [गोठ, अर्थात् गोशाला वा सभा] में (नियच्छतु) बांध कर रखे ।। १ ।।

भक्षणे–विट् । मांसभक्षकान् कुष्ठादिरोगान् । **अजीगमम्** । गमेर्ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् । अहं प्रेरितवानस्मि ।।

१- **इह** । अत्र गोष्ठे सभायां वा । **आ+यन्तु** । इण् गतौ । आगच्छन्तु । **पशवः** । द्र० अ० १ । १५ । २ । दृशिर् प्रेक्षणे—कु, पशि आदेशः । पशव =व्यक्तवाचश्चाव्यक्तवाचश्च—निरु० ११ । २९ । मनुष्यगवादिप्राणिनः । जीवाः । **परा-ईयुः** । इण् गतौ–लिट् । विमुखा जग्मुः । **वायुः** । अ०२।२०।१। पवनः । **येषाम्** । पशूनाम् । **सहचारम्** । सह+चर गतौ–घञ् । सङ्गमनम् । **जुजोष** । जुषी प्रीतिसेवनयोः—लिट्, छन्दसि परस्मैपदम् । जुजुषे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—इस सूक्त में (पशु) शब्द का अर्थ गौ आदि और सब प्राणी मात्र है। "पशु व्यक्त वाणी वाले और अव्यक्त वाणी वाले हैं—" निरु० ११। २९। अर्थात् मनुष्य आदि और गौ आदि। जैसे विचारशील गोपाल, गोरक्षक वायु लगने से इधर उधर भटकते हुये गौ आदि पशुओं को प्रेम के साथ बाड़े में लाकर बाँधता है, वैसे ही सूक्ष्मदर्शी प्रधान पुरुष अपने आश्रितों और सम्बन्धियों को, जो वायु लगने अर्थात् कुसंस्कार पाने से भटक गये हों, उन्हें उपकार और प्रीति की दृष्टि से एकत्र करके सभा में नियमबद्ध करे॥ १॥

पशु शब्द प्राणी मात्र के अर्थ में प्रायः वेद में आया है, जैसे—

त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः॥ अ० २।२८।३॥

तू पृथिवी के पशुओं [प्राणियों] का राजा है जो उत्पन्न हुये हैं अथवा जो उत्पन्न होंगे।

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम्॥ अ० २। ३४। १।

जो पशुपति चौपाये और जो दोपाये पशुओं का स्वामी है॥

इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन्।
सिनीवालो नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ॥ २॥

सेवते स्म। **त्वष्टा**। अ०। २। ५। ६। त्वक्षू तनूकरणे—तृन्। व्यवहारतनूकर्ता। सूक्ष्मदर्शी पुरुषः। **रूपधेयानि**। **भागरूपनामभ्यो धेयः**। (पा० वा० ५। ४। २५) नानारूपाणि। विविधस्वभावान्। **वेद**। विद ज्ञाने—लट्। वेत्ति। जानाति। **अस्मिन्**। निकटस्थे। **गोष्ठे**। अ० २। १४। २। गोशालायाम्, सभायाम्। **सविता**। अ० १। १८। २। पशुप्रेरकः। सभाप्रधानः। **नि+यच्छतु**। **इषुगमियमां छः** (पा० ७। ३। ७७) इति निपूर्वाद् यमेः शपि छत्वम्। नियमयतु नियमे स्थापयतु॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमम् । गोऽस्थम् । पशवः । सम् । स्रवन्तु । बृहस्पतिः । आ । नयतु । प्रऽजानन् । सिनीवाली । नयतु । आ । अग्रम् । एषाम् । आऽजग्मुषः । अनुऽमते । नि । यच्छ ॥ २ ॥

भाषार्थः—(पशवः) सब पशु [गौ आदि वा मनुष्यादि प्राणी] (इमम्) इस (गोष्ठम्) स्थिर वचन वाले पुरुष [गोपाल वा प्रधान] से (सम् स्रवन्तु) आ आकर मिलें और वह (बृहस्पतिः) बड़े बड़ों का स्वामी [गोपाल वा सभापति] (प्रजानन्) पहचान २ करें [उनको] (आ नयतु) ले आवे (सिनीवाली) अन्न देने वाली देवी [गृहपत्नी वा नीतिविद्या, आप] (एषाम्) इन का (अग्रम्) आगमन (आ नयतु) स्वीकार करे । (अनुमते) हे अनुकूल बुद्धि वाली [गृहपत्नी वा नीतिविद्या] (आजग्मुषः) इन आये हुओं को (नियच्छ) नियम में बांध कर रख ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे सायंकाल में गौ आदि मिल कर अपने गो वाले के पास आते हैं, और (बृहस्पति) बड़े उपकारी गौ आदि का रक्षक उनको ढूंढ़ २ कर लाता हैं, और उस की गृहपत्नी आगे आकर उनको अन्न तृण आदि देकर प्रसन्न करती और अपने २ स्थान पर बांध देती है, इसी प्रकार उत्तम सभा-

---

२—**इमम्** । शुभगुणैर्निर्दिष्टं गोपालं प्रधानपुरुषं वा । **गोष्ठम्** । गौर्वाङ्नाम—निघ० १ । ११ । गवि वाचि तिष्ठतीति गोष्ठः । स्थिरवाचं दृढ़वचनं गोपालं प्रधानपुरुषं वा । **पशवः** । म० १ । **सम्+स्रवन्तु** । स्रु गतौ । समेत्य गच्छन्तु । **बृहस्पतिः** । अ० २ । १३ । २ । बृहतां महतां प्राणिनां पाता रक्षिता । गोपः सभापतिर्वा । **आनयतु** । आगमयतु । **प्रजानन्** । प्र+ज्ञा-शतृ । विद्वान् । **सिनीवाली** । **इण्सिञ्जिदीङ्ष्यविभ्यो नक्** (उ० ३ । २) इति षिञ् बन्धने—नक्, स्त्रियां ङीप् । वल संवरणे, यद्वा, बल प्राणने दाने—अण्, ङीप् । सिनीवाली, सिनमन्नं भवति सिनाति भूतानि बालं पर्व वृणोतेस्तस्मिन्नन्नवती । निरु० ११ । ३१ । सिनीं सिनमन्नं वलति धारयतीति । अन्नधर्त्री । अन्नवती गृहपत्नी नीतिविद्या वा । **आ+नयतु** । **छन्दसि परेऽपि** (पा० १ । ४ । ८१) इति उपसर्गस्य परत्वम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति अपने संगठित सभासदों को यथायोग्य आसन दे और नीति अर्थात् सुशीलता और विनय के साथ उनका आदर सत्कार करके नियम में रक्खे ॥ २ ॥

'अनुमते' पद के स्थान में सायणभाष्य में 'अनुगते' व्याख्यान है ॥

सं संस्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पूरुषाः ।
संधान्यस्य या स्फातिः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥

सम् । सम् । स्रवन्तु । पशवः । सम् । अश्वाः । सम् । ऊँ इति । पुरुषाः । सम् । धान्यस्य । या । स्फातिः । सम् । स्राव्येण । हविषा । जुहोमि ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(पशव) गौ आदि (सम्) मिल कर, (अश्वाः) घोड़े (सम्) मिल कर, (उ) और (पुरुषाः) सब पुरुष (सम् सम्) मिल मिल कर (स्रवन्तु) चलें। और (या) जो (धान्यस्य) धान्य [अन्न] की (स्फातिः) बढ़ती है, [वह भी] (सम्=सम् स्रवतु) मिल कर चले (संस्राव्येण) कोमलता से युक्त (हविषा) भक्ति वा अन्न के साथ [उन सब को] (जुहोमि) मैं ग्रहण करूं ॥ ३ ॥

भावार्थः—सब उपकारी गौ, अश्व आदि पशु और मनुष्य नियम के साथ

आगमयतु । **अग्रम्** । ऋज्रेन्द्राग्रवज्र० (उ० २ । २८) इति अगि गतौ--रन् । अग्रतः । पुरस्तात् । **आजग्मुषः** । आङ्+गमेः कसुः । **वसोः संप्रसारणम्** (पा० । ६ । ४ । १३१) इति शसि संप्रसारणम् । आगतान् । पशून् । **अनुमते** । अनु+मन ज्ञाने--क्तिन् । अनुमतिरनुमननात्--निरु० ११ । २९ । अनुकूलबुद्धियुक्ते । **नियच्छ** । नियमय ॥

३—**सम्** । सम्यक् । यथाविधि । समेत्य । **स्रवन्तु** । गच्छन्तु । **पशवः** । गवादयः । **अश्वाः** । द्र० अ० १ । १६ । ४ । घोटाः । **पूरुषाः** । द्र० अ० १ । १६ । ४ । मनुष्याः । **धान्यस्य** । **दधातेर्यनुट् च** (उ० ५ । ४८) इति डुधाञ् धारणपोषणयोः--यत् नुट् च । अन्नस्य । **स्फातिः** । द्र० अ० २ । २५ । ३ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल कर रहें, एवं प्रयत्न पूर्वक पुष्कल जीविका प्राप्त करें, और प्रधान पुरुष उन के शिक्षादान तथा भरण पोषण की यथोचित सुधि रक्खे ॥ ३ ॥

सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम् ।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥४॥

सम् । सिञ्चामि । गवाम् । क्षीरम् । सम् । आज्येन । बलम् । रसम् । सम्ऽसिक्ताः । अस्माकम् । वीराः । ध्रुवाः । गावः । मयि । गोऽपतौ ॥४॥

भाषार्थः—(गवाम्) गौओं का (क्षीरम्) दूध [अपने मनुष्यों पर] (सम्) यथानियम (सिञ्चामि) मैं सींचता हूं, और [उन मनुष्यों के] (बलम्) बल और (रसम्) शरीर पोषक धातु को (आज्येन) घृत से (सम्) यथानियम [सींचता हूं] (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर पुरुष [दूध, घी आदि से] (संसिक्ताः) अच्छे प्रकार सिंचे रहें, [इसलिए] (मयि) मुझ (गोपतौ) गोपति में (गावः) गौयें (ध्रुवाः) स्थायी [रहें] ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न से गौओं की रक्षा करके उन के दूध घी आदि के सेवन से अपने और अपने पुरुषों के शारीरिक धातुओं को पुष्ट कर के और बल और बुद्धि बढ़ा कर शूर वीर बनावें। इसी प्रकार जो प्रधान पुरुष अपने उपकारी सभासदों को भरण पोषण आदि उचित व्यवहार से पुष्ट करते रहते हैं, वही नीति निपुण संसार की वृद्धि करते हैं ॥ ४ ॥

समृद्धिः । **संस्राव्येण हविषा जुहोमि** । अ० १ । १५ । १ । आर्द्रीभावयुक्तेन भक्त्या अन्नेन वा स्वीकरोमि ॥

४—**सम्** । यथाविधि । **सिञ्चामि** । षिच क्षरणे । आर्द्रीकरोमि । वर्धयामि । **गवाम्** । **गमेर्डोः** (उ० २ । ६७) धेनूनाम् । **क्षीरम्** । अ० १ । १५ । ४ । घस्लृ=अद भक्षणे ईरन् । दुग्धम् । **आज्येन** । अ० १ । ७ । २ । घृतेन । **बलम्** । अ० १ । १ । १ । सामर्थ्यम् । **रसम्** । अ० १ । ५ । २ । सारम् । वीर्य्यम् । देहस्थं भुक्तान्नादेः परिणामम् । **संसिक्ताः** । षिच—क्तः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिप्पणी—इस मन्त्र के अर्थ से "दूधों नहाओ पूतों फलो" इस आशीर्वाद का मिलान कीजिये ॥

आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं १ रसम् ।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥ ५ ॥

आ । हरामि । गवाम् । क्षीरम् । आ । अहार्षम् । धान्यम् । रसम् ।
आऽहृताः । अस्माकम् । वीराः । आ । पत्नीः । इदम् । अस्तकम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(गवाम्) गौओं के (क्षीरम्) दूध को (आ हरामि) मैं प्राप्त करूं, [क्योंकि दूध से] (धान्यम्) पोषण वस्तु अन्न और (रसम्) शारीरिक धातु को (आ अहार्षम्) मैंने पाया है। (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर पुरुष (आहृताः) लाये गये हैं, और (पत्नीः=पत्न्यः) पत्नियां भी (इदम्) इस (अस्तकम्=अस्तम्) घर में (आ=आहृताः) लायी गयी हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को सदा गौओं की रक्षा करनी चाहिये, जिससे सब स्त्री पुरुष दूध घी का सेवन करके हृष्ट पुष्ट होकर शूर वीर रहें और घरों में सब प्रकार की सम्पत्ति बढ़ती जावे ॥ ५ ॥

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

घृतदुग्धादिना संसिक्तशरीराः दृढ़गात्राः सन्तु । **वीराः** । अ० १ । १९ । ६ । शूरपुरुषाः । **ध्रुवाः** । **स्रुवः कः** (उ० २ । ६१) इति ध्रु स्थैर्ये-कः । दृढाः । स्थिराः । **गावः** । धेनवः । **मयि** । उपासके । धार्मिके पुरुषे । **गोपतौ** । गोस्वामिनि ॥

५—**आहरामि** । आनयामि । **गवां क्षीरम्** । म० ४ । धेनूनां दुग्धम् । **अहार्षम्** । हृञ् हरणे-लुङ् । आनीतवानस्मि । **धान्यम्** । म० ३ । अन्नम् **रसम्** । म० ४ । शारीरिकधातुम् । **आहृताः** । आनीताः । **वीराः** । अ० १ । २९ । ६ । पराक्रमिणः पुरुषाः । **पत्नीः** । अ० २ । १२ । १ । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति पूर्वसवर्णदीर्घः । पत्न्यः । **अस्तकम्** । **हसिमृग्रिण्०** (उ० ३ । ८६) इति अस भुवि, गतिदीप्त्यादानेषु-तन्, स्वार्थे कः । अस्तम्=गृहम्-निघ० ३ । ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २७ ॥

१–७ ॥ १–६ ओषधिर्देवता, ७ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप्छन्दः ॥

बुद्ध्या विवादः कर्तव्य इत्युपदिश्यते--बुद्धि से विवाद करे, इसका उपदेश ॥

नेच्छत्रुः प्राशं जयाति सहमानाभिभूरसि ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ १ ॥

न । इत् । शत्रुः । प्राशम् । जयाति । सहमाना । अभिऽभूः । असि ।
प्राशम् । प्रतिऽप्राशः । जहि । अरसान् । कृणु । ओषधे ॥ १ ॥

भाषार्थः—(शत्रुः) बैरी (प्राशम्) प्रश्न कर्ता [मुझ] को (न इत्) कभी न (जयाति) जीते, [हे बुद्धि] तू (सहमाना) जयशील और (अभिभूः) प्रबल (असि) है। (प्राशम्) [मुझ] प्रश्न कर्ता के (प्रतिप्राशः) प्रतिकूल वादियों को (जहि) मिटादे, (ओषधे) हे ताप को पीने वाली [ज्वरादिताप हरने वाली औषध के समान बुद्धि उन सबको] (अरसान्) नीरस [फीका] (कृणु) कर ॥

भावार्थः—इस सूक्त में ओषधि के उदाहरण से बुद्धि का ग्रहण है। ओषधि का अर्थ निरु० ९। २७ में किया है "औषधियें ओषत्, दाह वा ताप को पी लेती हैं अथवा ताप में इनको पीते हैं, अथवा ये दोष को पी लेती हैं"।

१—**न** । निषेधे । **इत्** । अवधारणे । एव । **शत्रुः** । अ० २ । ५ । ३ । विपक्षः । प्रतिवादी । **प्राशम्** । **क्विब् वचिप्रच्छिश्रि०** (उ० २ । ५७) इति प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्--क्विप्, दीर्घः संप्रसारणाभावश्च । **च्छ्वोः शूडनुनासिके च** (पा० ६।४।१९) इति च्छस्य शः । प्रष्टारं वादिनं माम् । **जयाति** । जयतेर्लेटि आडागमः । जयतु । अभिभवतु । **सहमाना** । अ० २ । २५ । २ । जेत्री । **अभिभूः** । **भुवः संज्ञान्तरयोः** (पा० ३।२।१७९) इति अभि + भू-क्विप् । अभिभवित्री । **प्रतिप्राशः** । प्रति + प्रच्छ कर्त्तरि क्विप् । **न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्** (पा० २ । ३ । ६९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र का आशय जिस प्रकार शुद्ध परीक्षित ओषधि के सेवन करने से ज्वर आदि रोग नाश होते हैं, ऐसे ही मनुष्य के बुद्धि पूर्वक, प्रमाण युक्त विवाद करने से बाहिरी और भीतरी प्रतिपक्षी हार जाते हैं ॥ १ ॥

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ २ ॥

सुऽपर्णः । त्वा । अनु । अविन्दत् । सूकरः । त्वा । अखनत् ।
नसा । प्राशम् । प्रतिऽप्राशः । जहि । अरसान् । कृणु । ओषधे ॥ २ ॥

भाषार्थः—(सुपर्णः) सुन्दर पक्ष वाले [गरुड़, गिद्ध आदि पक्षी के समान दूरदर्शी पुरुष] ने (त्वा) तुझ को (अनु=अन्विष्य) ढूँढ कर (अविन्दत्) पाया है, (सूकरः) सूकर [सूअर पशु के समान तीव्रबुद्धि और बलवान् [पुरुष] ने (त्वा) तुझको (नसा) नासिका से (अखनत्) खोदा है। (प्राशम्) मुझ प्रश्न कर्त्ता के (प्रतिप्राशः) प्रतिवादियों को (जहि) मिटा दे, (ओषधे) हे ताप को पी लेने वाली [ओषधि के समान बुद्धि ! उन सब को] (अरसान्) फीका (कृणु) कर ॥ २ ॥

इति तृन् ग्रहणात्। तद्वाचके क्विपि प्रत्ययेऽपि (प्राशम्) इत्यस्य कर्मत्वम्। प्रतिकूलप्रष्टॄन्। प्रतिवादकान्। **जहि**। हन हिंसागत्योः—लोट्। नाशय। पराजितान् कुरु। **अरसान्**। नीरसान्। निर्वीर्यान्। **कृणु**। कुरु। **ओषधे**। अ० १। २३। १। उष दाहे—घञ्। ततो धेट् पाने—किः। ओषधयः ओषद् धयन्तीति वौषत्येना धयन्तीति वा दोषं धयन्तीति वा—निरु० ९। २७। ओषं दाहं धयति पिबति नाशयतीति ओषधिः। यवादिधान्यम्। रोगनाशकद्रव्यम्। तापनाशिका बुद्धिः। तत्संबुद्धौ ॥

२—**सुपर्णः**। **धापृवस्यज्यतिभ्यो नः** (उ० ३। ६) इति सु+पॄ पालनपूरणयोः—नः, यद्वा। पत गतौ—नप्रत्ययः, तकारस्य रेफः। सुपतनः शोभनगमनः। शीघ्रगामी। गरुड़ः। पक्षिमात्रम्। **अनु**। अन्विष्य। **अविन्दत्**। विदॢ लाभे लङ्। **शे मुचादीनाम्** (पा० ७। १। ५९) इति नुम्। अलभत। **सूकरः**।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(सुपर्णः) गिद्ध, मोर आदि पक्षी बड़े तीव्रदृष्टि होते हैं और सूकर एक बलवान् पशु अपनी नासिका से अपने खाद्य तृण को पृथिवी में से खोद कर खा जाता है। इसी प्रकार दूरदर्शी परिश्रमी और बलवान् पुरुष बुद्धि की महिमा को साक्षात् करके यथायोग्य उसका प्रयोग करते हैं और सदा जय पाते हैं ॥ २ ॥

इन्द्रो ह चक्रे त्वा बाहावसुरेभ्य स्तरीतवे ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ ३ ॥

इन्द्रः । ह । चक्रे । त्वा । बाहौ । असुरेभ्यः । स्तरीतवे ।
प्राशम् । प्रतिऽप्राशः । जहि । अरसान् । कृणु । ओषधे ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष ने (ह) ही (त्वा) तुझको (बाहौ) अपनी भुजा पर (असुरेभ्यः) असुरों से (स्तरीतवे) रक्षा के लिये (चक्रे) किया है। (प्राशम्) [मेरे] प्रश्न के (प्रतिप्राशः) प्रतिवादियों को (जहि) मिटा दे, (ओषधे) हे ताप को पीने वाली [ओषधि के समान बुद्धि ! उन सब को] (अरसान्) फीका (कृणु) कर ॥ ३ ॥

ऋदोरप् (पा० ३ । ३ । ५७) इति सु+कृ विक्षेपे, कृञ् हिंसायाम्, वा[1] कृङ् विज्ञाने वा-अप्। अथवा, टप्रत्ययः। उकारस्य दीर्घः। अथवा, सू इति शब्दं करोति, सू+कृ-ट। सुकिरति भूमिं सुकृणाति मनुष्यान् यद्वा सुकारयते विजानाति खाद्य पदार्थान्। वराहः। **अखनत्**। खनुअवदारणे-लङ। विदारितवान्। उद्धृतवान्। **नसा**। णस कौटिल्ये-ण्वुल्[2]। नासिकया ॥

३—इन्द्रः—अ० १ । २ । ३ । परमैश्वर्यवान् महाप्रतापी पुरुषः। **ह**। हन हिंसागत्योः-ड। प्रसिद्धम्। **चक्रे**। कृञ्-लिट्। कृतवान्। **त्वा**। त्वाम्। ओषधिम्। **बाहौ**। **कृवापाजिमि०** (उ० १। १) इति वह प्रापणे, यद्वा, वाहृ प्रयत्ने-उण्। यद्वा, **अर्जिदृशिकमि०** (उ० १।२७) इति बाधृ विलोडने-कु:, धस्य हः। बकारवकारयोरेकत्वम्। भुजे। **असुरेभ्यः**। **सुसूधाञ्गृधिभ्यः क्रन्**। (उ०२ । २४) इति षु ऐश्वर्यप्रसवयोः-क्रन्। यद्वा, सुर दीप्त्यैश्वर्ययोः-कप्रत्ययः। देवनिरोधिभ्यः। अपण्डितेभ्यः। राक्षसेभ्यः सकाशात्। (असुरेभ्यस्तरीतवे)

---

१. धातुपाठ में यह धातु एवं इसका अर्थ दोनों ही नहीं है।

२. नासिका को पद्दन्नोमास्० (६ । १ । ६३) से यहाँ नस् आदेश होकर तृतीयैकवचन में 'नसा' बना है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(इन्द्र) महाप्रतापी महाबली पुरुष ही अपने बुद्धि बल से (असुर) देवताओं के विरोधी अधर्मियों का नाश करते आये हैं, करते हैं और करेंगे ॥ ३ ॥

सायणभाष्य में 'स्तरीतवे" के स्थान में "तरीतवे" है।

पाटामिन्द्रो व्याश्नादसुरेभ्य स्तरीतवे ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ ४ ॥

पाटाम् । इन्द्रः । वि । आश्नात् । असुरेभ्यः । स्तरीतवे ।
प्राशम् । प्रतिऽप्राशः । जहि । अरसान् । कृणु । ओषधे ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष ने (पाटाम्) चमकती हुयी [ओषधि रूप बुद्धि] को (असुरेभ्यः) असुरों से (स्तरीतवे) रक्षा के लिए (वि) विविध प्रकार से (आश्नात्) भोजन किया है। (प्राशम्) मुझ वादी के (प्रतिप्राशः) प्रतिवादियों को (जहि) मिटा दे (ओषधे) हे ताप को पी लेने वाली [औषधि के समान बुद्धि ! उन सब को] (अरसान्) फीका (कृणु) कर ॥ ४ ॥

भावार्थः—जैसे उत्तम ओषधि के सेवन से रोग का नाश होकर शरीर और चित्त को आनन्द मिलता है, वैसे ही ऐश्वर्यशाली पुरुष बुद्धि के यथावत् प्रयोग से शत्रुओं का नाश करके शान्ति लाभ करते हैं ॥ ४ ॥

वा शरि (पा० ८ । ३ । ३६) **खर्परे शरि वा लोपो वक्तव्यः** । वार्त्तिकम् । इति विसर्जनीयलोपः । **स्तरीतवे । तुमर्थे सेसेनसेऽसे०** (पा० ३ । ४ । ६ ।) इति स्तृञ् प्रीतिरक्षाप्राणनेषु [श० क० द्रुमकोषे] तवे प्रत्ययः । रक्षितुम् ॥

४—पाटाम् । पट गतिदीप्तिवेष्टनेषु—घञ्, टाप् । गतिम्, दीप्तिम् । विद्याम् । ओषधिम् । अत्र प्रसङ्गात् सायणभाष्योक्तम् "पाठः" इति पदं व्याख्यायते तद् यथा शब्दकल्पद्रुमकोषे—पठ्यते बहुगुणवत्तया कथ्यते इति । पठ—कर्मणि घञ्, अजादित्वात् टाप्, लताविशेषः, आकनादि इति भाषा, तत्पर्यायः प्राचीना, दीपनी···, अस्याः गुणाः, तिक्तत्वम् गुरुत्वम्, उष्णत्वम्, वातपित्तज्वर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीनों संहिताओं के 'पाटाम्' पद के स्थान पर सायणभाष्य में 'पाठाम्' है, और भाष्यकार ने उसे ओषधि विशेष माना है। शब्दकल्पद्रुम कोष में लिखा है कि 'पाठा' लता विशेष है, आकनादि भाषा नाम है। उसके गुण तिक्तता, गुरुता, उष्णता, और वातपित्त, ज्वरपित्त, दाह, अतीसार, शूल नाशन आदि है।

तयाहं शत्रून्त्साक्ष इन्द्रः सालावृकाँ इव।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ ५ ॥

तया। अहम्। शत्रून्। साक्षे। इन्द्रः। सालावृकान्ऽइव।
प्राशम्। प्रतिऽप्राशः। जहि। अरसान्। कृणु। ओषधे ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (तया) उस [ओषधि रूप बुद्धि] से (शत्रून्) बैरियों को (साक्षे) हरा दूं, (इन्द्रः) ऐश्वर्यशाली [वह पति] (सालावृकान् इव) जैसे घर के भेड़ियों, कुत्ते, बिलाव आदियों को। (प्राशम्) मुझ वादी के (प्रतिप्राशः) प्रति वादियों को (जहि) मिटा दे (ओषधे) हे ताप को पी लेने वाली [ओषधि के समान बुद्धि ! उन सब को] (अरसान्) फीका (कृणु) कर ॥ ५ ॥

भावार्थः—जैसे ओषधि बल से रोग निवृत्त होता है, वैसे ही मनुष्य बुद्धि बल से, अपने दोषों और शत्रुओं का नाश करके आनन्द लाभ करे ॥ ५ ॥

रुद्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत्।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ ६ ॥

पित्तदाहातीसारशूलनाशित्वम् भग्नसन्धानकारित्वं च। **वि।** विविधम्। **आश्नात्।** अश भोजने—लङ्। अभक्षयत्। अन्यद् व्याख्यातम् ॥

५—**तया।** पाटया। तत्प्रभावेन। **शत्रून्।** वैरिणः। **साक्षे।** षह अभिभवे—लेटि उत्तमे। अभिभवामि। असत्प्रायान् करोमि। **सालावृकान्।** सालायां गृहे वृक इव। शालावृकान्। कुक्कुरान् विडालान्। अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुद्र । जलाषऽभेषज । नीलऽशिखण्ड । कर्मऽकृत् ।
प्राशम् । प्रतिऽप्राशः । जहि । अरसान् । कृणु । ओषधे ॥६॥

भाषार्थः—(रुद्र) हे ज्ञान प्रापक ! हे दुःख विनाशक ! (जलाषभेषज) हे सुख दायक औषधि वाले ! (नीलशिखण्ड) हे निधियों वा निवास स्थानों के प्राप्त कराने वाले ! (कर्मकृत्) हे कार्य्य में कुशल पुरुष ! (प्राशम्) मुझ वादी के (प्रतिप्राशः) प्रतिवादियों को (जहि) मिटा दे, (ओषधे) हे ताप को पीने वाली [ओषधि रूप बुद्धि ! उन सब को] (अरसान्) फीका (कृणु) कर दे ॥ ६ ॥

भावार्थः—जैसे उपकारी चतुर सद्वैद्य सुपरीक्षित औषधियों से संसार में उपकार करते हैं, वैसे ही मनुष्यों को अपने बुद्धि प्रभाव से कार्यकुशल होकर सदा उपकारी रहना चाहिये ॥ ६ ॥

तस्य प्राशं त्वं जहि यो नं इन्द्राभिदासति ।
अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं कृधि ॥ ७ ॥

६—**रुद्र** । अ० १ । १९ । ३ । रुत्+र । रु गतौ–वधे क्विप्, तुक् आगमः । रवते गच्छति जानाति येनेति रुत् ज्ञानम् । रा दाने–कः[1] । यद्वा । मत्वर्थे रप्रत्ययः । ज्ञानदाता ज्ञानवान् वा रुद्रः । यद्वा । रवते हिनस्तीति रुत्, दुःखम् । रुत् रवते नाशयतीति रुत्+रु बधे–डः । दुःखनाशको रुद्रः । तत्संबुद्धौ । **जलाषभेषज** । जनी–ड+लष कान्तौ—घञ् । जैः जातैः लष्यते, इति जलाषम् । ततो भिषज् चिकित्सायां सुखने–अच् । जलाषं भेषजं च सुखनाम—निघ० ३ । ६ । जलाषं सुखकरं भेषजं यस्य । हे सुखप्रदौषधयुक्त । **नीलशिखण्ड** । **स्फायितञ्चिवञ्चि०** (उ० २ । १३) इति णीञ् प्रापणे, रक् । रस्य लः । नीयते प्राप्यते इति नीलः, निधिभेदः । संख्याविशेषो वा । यद्वा । नि+इल गतौ–कः । नीलः–नीडः निवासः । **अण्डन् कृसृभृवृञः** (उ० १ । १२९) इति शिखि गतौ–अण्डन्, स च कित् । नीलानां निधीनां निवासानां वा शिखण्डः प्राप्तिर्यस्मात् स नीलशिखण्डः । हे निधीनां निवासानां वा प्रापक ! **कर्मकृत्** । कर्म+कृञ्–क्विप्, तुक् च । कर्माणि कृत्यानि करोतीति सः हे कृत्यकुशल ! । अन्यद् गतम् ॥

---

१. रुद्रो रौतीति सतः, रोरूयमाणो द्रवतीति वा, रोदयतेर्वा (निरु. १०।५) यह निरुक्त का पाठ यहां द्रष्टव्य है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य । प्राशम् । त्वम् । जहि । यः । नः । इन्द्र । अभिऽदासति । अधि । नः । ब्रूहि । शक्तिऽभिः । प्राशि । माम् । उत्ऽतरम् । कृधि ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले [पुरुष !] (त्वम्) तू (तस्य) उस पुरुष के (प्राशम्) प्रश्न को (जहि) मिटा दे, (यः) जो (नः) हमको (अभि-दासति) दबावे। (नः) हम से (शक्तिभिः) अपनी शक्तियों के साथ (अधि) अधिकार पूर्वक (ब्रूहि) कथन कर, और (प्राशि) विवाद में (माम्) मुझ को (उत्तरम्) अधिक उत्तम (कृधि) कर दे ॥ ७ ॥

भावार्थः—जैसे न्यायी राजा सत्यवादी को जिता और मिथ्यावादी को हराता है। वैसे ही प्रत्येक मनुष्य अपने कुविचारों को दबाकर और सुविचारों को प्रबल करके आनन्द भोगे। ऐसे ही मनुष्य (इन्द्र) परम सामर्थ्य वाले होते हैं ॥ ७ ॥

'प्राशि' पद के स्थान पर सायणभाष्य में 'प्राशम्' है ॥

सूक्तम् ॥ २८ ॥

१—५ ॥ **अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥**

आयुर्वर्धनायोपदेशः—आयु बढ़ाने के लिए उपदेश ॥

तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये । मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एनं मित्रियात् पात्वंहसः ॥ १ ॥

७—**तस्य** । प्रतिवादिनः । **प्राशम्** । म० १ । **सम्पदादिभ्यः क्विप्** (वा० पा० ३ । ३ । ९४) इति प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्—भावे क्विप् । प्रश्नम् । **अभि-दासति** । दसु उपक्षये, ण्यन्तात् शपः । **छन्दस्युभयथा** (पा० ३ । ४ । ११७) इति आर्धधातुकत्वात् **णेरनिटि** (पा० ६ । ४ । ५१) इति णिलोपः । उपक्षपयति । तिरस्करोति । **अधि** । अधिकृत्य । **नः** । अस्मान् । **ब्रूहि** । कथय । निर्णय । **शक्तिभिः** । स्वसामर्थ्यैः । **प्राशि** । पूर्ववद् भावे क्विप् । प्रश्ने । **माम्** । प्रष्टारम् । सत्यवादिनम् । **उत्तरम्** । उत् अतिशयेन उद्गतः । उत्—तरप् । ऊर्ध्वम् । उत्कृष्टम् । **कृधि** । **श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसि** (पा० ६ । ४ । १०२) इति हेर्धिरादेशः । कुरु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुभ्यम् । एव । जरिमन् । वर्धताम् । अयम् । मा । इमम् । अन्ये । मृत्यवः । हिंसिषुः । शतम् । ये । माताऽइव । पुत्रम् । प्रऽमनाः । उपऽस्थे । मित्रः । एनम् । मित्रियात् । पातु । अंहसः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(जरिमन्) हे स्तुति योग्य परमेश्वर ! (तुभ्यम्) तेरे [शासन मानने के] लिये (एव) ही (अयम्) यह पुरुष (वर्धताम्) बढ़े, (ये) जो (अन्ये) दूसरे (शतम्) सौ (मृत्यवः) मृत्यु हैं, [वे] (इमम्) इस पुरुष को (ना हिंसिषुः) न मारें । (प्रमनाः) प्रसन्न मन (माता इव) माता जैसे (पुत्रम्) कुलशोधक पुत्र को (उपस्थे) गोद में [पालती है वैसे ही] (मित्रः) मृत्यु से बचाने वाला, वा बड़ा स्नेही परमेश्वर (एनम्) इस पुरुष को (मित्रियात्) मित्र सम्बन्धी (अंहसः) पाप से (पातु) बचावे ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्य अपने जीवन को सदैव ईश्वर की आज्ञा पालन अर्थात् शुभ कर्म करने में बितावे, और प्रयत्न करे कि उसकी मृत्यु निन्दनीय कामों में कभी न हो और न उसके मित्रों में फूट पड़े और न वे दुष्कर्मी हों । और न कोई दुष्ट पुरुष अपने मित्रों को सता सके । जैसे प्रसन्नचित्त विदुषी माता की गोद में बालक निर्भय क्रीड़ा करता है, वैसे हा वह नीतिज्ञ पुरुष परमेश्वर की शरण पाकर अपने भाई बन्धुओं के बीच सुरक्षित रह कर आनन्द भोगे ॥ १ ॥

१—**तुभ्यम्** । त्वदर्थम् । त्वदाज्ञापालनाय । **एव** । अवश्यम् । **जरिमन्** । जरास्तुतिर्जरतेः स्तुतिकर्मणः—निरु० १० । ८ । **जनिमृडभ्यामिमनिन्** (उ० ४ । १४६) इति जरतेः स्तुतिकर्मणः कर्मणि इमनिन् । हे स्तुत्य ! स्तूयमान परमेश्वर ! **वर्धताम्** । वृद्धिं समृद्धिं प्राप्नोतु । **अयम्** । निर्दिष्टः शरीरस्थो जीवः । **एनम्** । निर्दिष्टं जीवम् । **अन्ये** । स्तुत्यकर्मभ्यो भिन्नाः । **मृत्यवः** । अ० १ । ३० । ३ । मरणानि । **मा हिंसिषुः** । मा बधिषुः । मा हिंसन्तु । **शतम्** । असंख्याताः । **माता** । अ० १ । २ । १ । मान पूजायाम्—तृन् । माननीया जननी । **इव** । यथा । **पुत्रम्** । अ० १ । ११ । ५ । कुलशोधकं सुतम् । **प्रमनाः** । प्र+मन ज्ञाने—असुन् । प्रसन्नचित्ता । **उपस्थे** । उप+ष्ठा—कः । भुजान्तरे । क्रोडे । **मित्रः** । अ० १ । ३ । २ । मित्रः प्रमीतेस्त्रायतेः सम्मिन्वानो द्रवतीति वा मेदयतेर्वा—निरु० १० । २१ । मरणाद्रक्षकः । सर्वप्रेरकः परमेश्वरः । **एनम्** । जीवम् । **मित्रियात्** । **समुद्राभ्राद् घः** (पा० ४ । ४ । ११८) इति बाहुलकात् मित्र—घः । मित्रसम्बन्धिनः । **अंहसः** । अ० २ । ४ । ३ । पापात् । दोषात् । दुखात् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ। तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ॥ २ ॥

मित्रः। एनम्। वरुणः। वा। रिशादाः। जराऽमृत्युम् [जराऽअमृत्युम्]। कृणुताम्। सम्ऽविदानौ। तत्। अग्निः। होता। वयुनानि। विद्वान्। विश्वा। देवानाम्। जनिम। विवक्ति ॥ २ ॥

भाषार्थः—(मित्रः) सर्व प्रेरक काम में लगाने वाला दिन का समय (वा) और (रिशादाः) श्रम का भक्षण करने वाला (वरुणः) रात्रि का समय (संविदानौ) दोनों मिले हुए (एनम्) इस पुरुष को (जरामृत्युम्=जरा-अमृत्युं जरा-मृत्युं वा) स्तुति के साथ अमर, अथवा, स्तुति वा बुढ़ापे से मृत्यु वाला (कृणुताम्) करें। (तत्) इस लिए (होता) महादानी और (वयुनानि) सब व्यवस्थाओं को (विद्वान्) जानने वाला (अग्निः) अग्नि [तेजस्वी परमेश्वर] (देवानाम्) दिव्य पदार्थों वा महात्माओं के (विश्वा=विश्वानि) सब (जनिमा=०—मानि) जन्म विधानों को (विवक्ति) बतलावे ॥ २ ॥

२—**मित्रः**। म० १। मध्यस्थानीदेवता--निरु० १०। २१। अहरभिमानी देवः--इति सायणः। दिनकालः। **वरुणः**। मध्यस्थानीदेवता--निरु० १०। ३। द्युस्थानी देवता--निरु० १२। २१। रात्र्यभिमानी [देवः]--इति सायणः। रात्रि-समयः। **एनम्**। जीवम्। **वा**। चार्थे। **रिशादाः**। **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** (पा० ३। १। १३५) इति रिश हिंसायाम्--कः। अद भक्षणे--असुन्। रिशानां हिंसकानां श्रमाणाम् अत्ता नाशयिता। **जरामृत्युम्**। अ० २। १३। २। जरया स्तुत्या अमृत्युः अमरणं यस्य तम्। यद्वा। जरया स्तुत्या वृद्धत्वेन वा मृत्युर्मरणं यस्य तम्। यशस्विनम्। **कृणुताम्**। उभौ कुरुताम्। **संविदानौ**। **समो गम्यृच्छिप्रच्छिस्वरत्यर्तिश्रुविदिभ्यः** (पा० १। ३। २९) इति संपूर्वाद् वेत्तेरकर्मकात्--आत्मनेपदम्। लटः शानच्। संगच्छमानौ। ऐकमत्यं प्राप्तौ। **तत्**। तेन कारणेन। **अग्निः**। अ० १। ६। २। व्यापकः सर्वज्ञः परमेश्वरः।

१--'समो गम्यृच्छिभ्याम्' इतना ही पाणिनीय सूत्र है। शेष अंश सूत्र में सम्मिश्रित वार्त्तिक है, जो कि काशिकादि ग्रन्थों में पठित है। विस्तार के लिए इस सूत्र पर महाभाष्यादि देखें ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य दिन और रात ईश्वर की आज्ञा पालन में लगे रहते हैं, वे ही अन्त में यशस्वी होते हैं, और सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमेश्वर उनके हृदय में सब उत्तम २ व्यवस्थाओं और नियमों को प्रकट करता जाता है ॥२॥

त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः । मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ॥ ३ ॥

100370

त्वम् । ईशिषे । पशूनाम् । पार्थिवानाम् । ये । जाताः । उत । वा । ये । जनित्राः । मा । इमम् । प्राणः । हासीत् । मो इति । अपानः । मा । इमम् । मित्राः । वधिषुः । मो इति । अमित्राः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (पार्थिवानाम्) पृथिवी पर के (पशूनाम्) पशुओं [जीवों] का (ईशिषे) स्वामी है, (ये) जो (जाताः) उत्पन्न हो चुके हैं (उत) और (वा) अथवा (ये) जो (जनित्राः) उत्पन्न होंगे । (इमम्)

होता । अ० १ । ११ । १ । हु–तृन् । दाता । आदाता । **वयुनानि** । **अजियमिशीङ्भ्यश्च** (उ० ३ । ६१) इति अज गतिक्षेपणयोः–उनन्, वीभावः । अथवा वी गतिकान्तिव्याप्त्यादिषु–उनन् । वयुनं वेतेः कान्तिर्वा प्रज्ञा वा–निरु० ५।१४। ज्ञातव्यानि कर्माणि । **विश्वा** । विश्वानि । सर्वाणि । **जनिमा** । **जनिमृङ्भ्यामिमनिन्** (उ० ४ । १४६) इति जन जनी वा–इमनिन् । जनिमानि, जन्मानि । प्रादुर्भावस्थानानि । **विवक्ति** । वचेः–लेटि शपः श्लुः । **बहुलं छन्दसि** (पा० ७ । ४ । ७८) इत्यभ्यासस्य इकारः । ब्रवीतु, उपदिशतु ॥

३---**त्वम्** । हे अग्ने, परमेश्वर ! **ईशिषे** । ईश ऐश्वर्ये । **ईशः से** (पा० ७ । २ । ७७) इडागमः । ईश्वरोऽधिपतिरसि । **पशूनाम्** । अ० २ । २६ । १ । द्विपाच्चतुष्पाद्रूपाणां प्राणिनाम् । **अधीगर्थदयेशां कर्मणि** (पा० २ । ३ । ५२)इति षष्ठी । **पार्थिवानाम्** । **दित्यदित्या०** (पा० ४ । १ । ८५) अत्र वार्त्तिकम् । **पृथिव्या ञौ** इति पृथिवी–अञ् । ञित्वाद् आद्युदात्तः । पृथिव्यां भवानाम् । **ये** । पशवः । **जाताः** । उत्पन्नाः । **उत** । अपि । **जनित्राः** । **अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ** (उ० ४ । १७३) इति जन जनी–इत्रः । जनिष्यमाणाः । उत्पत्स्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पुरुष को (प्राणः) प्राण [बाहिर जाने वाला श्वास] (मा हासीत्) न त्यागे, (मो=मा+उ) और न (अपानः) अपान [भीतर आने वाला प्रश्वास]। (इमम्) इस पुरुष को (मित्राः) मित्र (मा वधिषुः) न मारें, (मो=मा+उ) और न (अमित्राः) अमित्र [विरोधी अर्थात् बैरी लोग] ॥ ३ ॥

भावार्थः—परमेश्वर महा उपकार करके संसार के चर और अचर का शासक और नियन्ता है, इसी प्रकार मनुष्य को उपकारी होकर प्रयत्न करना चाहिये कि उसका स्वयम्, आत्मा और अन्य मित्र अथवा शत्रु सब प्रीति से आनन्द बढ़ाते रहें ॥ ३ ॥

द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने। यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ॥ ४ ॥

द्यौः । त्वा । पिता । पृथिवी । माता । जराऽमृत्युम् [जराऽ अमृत्युम्] । कृणुताम् । संविदाने इति सम्ऽविदाने । यथा । जीवाः । अदितेः । उपऽस्थे । प्राणापानाभ्याम् । गुपितः । शतम् । हिमाः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(पिता) पिता [के समान रक्षक] (द्यौः) सूर्य लोक और (माता) माता [के समान प्रीति करने वाली] (पृथिवी) पृथिवी लोक, (संविदाने) दोनों मिले हुये, (त्वा) तुझको (जरामृत्युम्=जरा-अमृत्युं जरा-मृत्युं वा) स्तुति के

माना: । **इमम्** । प्राणिनम् । **प्राणः** । अ० २ । १५ । १ । ऊर्ध्वकायस्थो वायुः । **मा हासीत्** । ओहाक् त्यागे—लुङ् । **न माङ्योगे** (पा० ६ । ४ । ७४) इति अडभावः । मा त्याक्षीत् । **मो** । मा + उ । मैव । **अपानः** । अप + अन प्राणने-अच् । अपानिति अधो निःसरतीति । अधरकायस्थो वायुः । **मित्राः** । स्नेहिनः । बान्धवाः । **मा वधिषुः** । **लुङि च** (पा० २ । ४ । ४३) इति हन्तेर्वधादेशः । मा हिंसिषुः । **अमित्राः** । **अमेर्द्विषति चित्** (उ० ४ । १७४) इति अम रोगे, पीडने-इत्रच् । पीडकाः, शत्रवः ॥

४—**द्यौः** । अ० २ । १२ । ६ । द्योतमानः सूर्यः । **त्वा** । त्वां प्राणिनम् । **पिता** । अ० १ । २ । १ । रक्षकः । जनकः । तद्वदुपकारकः । **पृथिवी** । अ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ अमर, अथवा, स्तुति वा बुढ़ापे से मृत्यु वाला (कृणुताम्) करें। (यथा) जिससे (अदितेः) अखण्ड परमेश्वर [अथवा अदीन प्रकृति, वा पृथिवी] की (उपस्थे) गोद से (प्राणापानाभ्याम्) प्राण और अपान से (गुपितः) रक्षा किया हुआ तू (शतम्) सौ (हिमाः) हेमन्त ऋतुओं तक (जीवाः) जीता रहे ॥ ४ ॥

भावार्थः—पुरुषार्थी पुरुष प्रबन्ध रक्खे कि सूर्य का तेज और आकर्षण आदि सामर्थ्य और पृथिवी की अन्न आदि की उत्पादनादि शक्ति, और अन्य सब पदार्थ अनुकूल रहें, जैसे माता पिता सन्तानों पर प्रीति रखते हैं, जिससे वह पुरुष परमेश्वर के अनुग्रह से पृथिवी पर यशस्वी होकर पूर्ण आयु भोगे ॥ ४ ॥

इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्र राजन्। मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥ ५ ॥

१ । २ । १ । प्रख्याता भूमिः । **माता** । अ० १ । २ । १ । मानकर्त्री, जननी । **जरामृत्युम्** । व्याख्यातं म० २ । यशस्विनम् । **कृणुताम्** । कुरुताम् । **संविदाने** । म० २ । ऐकमत्यं प्राप्ते । **यथा** । यस्मात् कारणात् । **जीवाः** । जीव प्राणधारणे—लेटि आडागमः । त्वं जीवेः । प्राणान् धरेः । **अदितेः** । **कृत्यल्युटो बहुलम्** (पा० ३ । ३ । ११३) इति दीङ् क्षये, दो अवखण्डने, दाप् लवने क्तिन् । **द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति** (पा० ७ । ४ । ४०) इति इत्वम् । दीङ् पक्षे ह्रस्वत्वं, नञ्समासः । अदितिः पृथिवी—निघ० १ । १ । वाक्—निघ० १ । ११ । गौः—निघ० २ । ११ । अदीना देवमाता—निरु० ४ । २२ । मध्यस्थानदेवतासु प्रथमगामिनी— निरु० ११ । २२ । अक्षीणस्य अखण्डस्य वा परमेश्वरस्य, अथवा अदीनायाः देवमातुः, मनुष्यसूर्यादिदिव्यपदार्थानां जनन्याः प्रकृतेः पृथिव्या वा । **उपस्थे** । क्रोडे । उत्सङ्गे । **प्राणापानाभ्याम्** । म० ३ । श्वासनिःश्वासाभ्याम् । **गुपितः** । गुपू रक्षणे—क्तः । रक्षितः । **शतम्** । अपरिमिताः । **हिमाः** । **हन्तेर्हिं च** (उ० १ । १४७) इति हन हिंसागत्योः—मक् । । हिमं तुषारोऽस्ति यस्याम् । हेमन्तान् संवत्सरान् । **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** (पा० २ । ३ । ५) इति द्वितीया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमम् । अग्ने । आयुषे । वर्चसे । नय । प्रियम् । रेतः । वरुण । मित्र । राजन् । माताऽइव । अस्मै । अदिते । शर्म । यच्छ । विश्वे । देवाः । जरत्ऽअष्टिः । यथा । असत् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि तत्त्व ! (वरुण) हे जल तत्त्व ! (राजन्) हे बड़ी शक्ति वाले (मित्र) चेष्टा कराने वाले प्राण वायु ! (इमम्) इस पुरुष को (आयुषे) आयु [बढ़ाने] के लिये और (वर्चसे) तेज वा अन्न के लिये (प्रियम्) प्रसन्न करने वाला (रेतः) वीर्य वा सामर्थ्य (नय) प्राप्त करा। (अदिते) हे अदीन वा अखण्ड प्रकृति वा भूमि ! (माता इव) माता के समान (अस्मै) इस जीव को (शर्म) आनन्द (यच्छ) दान कर। (विश्वे) हे सब (देवाः) दिव्य पदार्थ वा महात्माओ ! (यथा) जिससे [यह पुरुष] (जरदष्टिः) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वा भोजन वाला (असत्) होवे ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य अग्नि, जल, वायु, और पृथिवी तत्त्वों को प्रयत्न पूर्वक उचित खान पान ब्रह्मचर्यादि के नियम पालन से अनुकूल रक्खे, जिससे

५—**इमम्** । प्राणिनम् । **अग्ने** । हे अग्नितत्त्व ! **आयुषे** । **एतेर्णिच्च** (उ० २ । ११८) इति इण् गतौ—उसि । जीवनवर्धनाय । **वर्चसे** । अ० २।१३।२। तेजसे । अन्नाय । **नय** । प्रापय । द्विकर्मकः । **प्रियम्** । **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** (पा० ३।१।१३५) इति प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च, कः । **अचिश्नुधातुभ्रुवां०** (पा० ६।४।७७) इयङादेशः । हितकरम् । **रेतः** । **स्फुरीभ्यां तुट् च** (उ० ४ । २०२) इति रीङ् क्षरणे[1]-असुन्, तुट् च । शुक्रम् । वीर्यम् । प्रजननसामर्थ्यम् । **वरुण** । **कृवृदारिभ्य उनन्** (उ० ३ । ५३) इति वृञ् वरणे-उनन् । उत्तमं जलमिति दयानन्द सरस्वती तद्वृत्तौ । अपानवायुः—यथा । ब्रह्माण्डस्थौ गमनागमनशीलौ मित्रावरुणौ प्राणापानौ—इति दयानन्दकृतयजुर्वेदभाष्ये, २ । ३ । तत्संबुद्धौ । **मित्र** । हे प्राणवायो यथा पूर्वोक्तम् । **राजन्** । **कनिन् युवृषितक्षिराजि०** (उ० १ । १५६) इति राजृ दीप्तौ,-कनिन् । राजति = ईष्टे—निघ० २ । २१ । हे दीप्यमान, हे ऐश्वर्यवत् । **मातेव** । जननीव । **अस्मै** । प्राणिने ।

---

१. धातुपाठ में रीङ् श्रवणे सर्वत्र पठित है, क्षरणे नहीं। महर्षि ने उणादि की व्याख्या में रेतस् का अर्थ 'रीयते स्रवति' ही किया है। वास्तव में धातुओं के अर्थ के विषय में महाभाष्य का 'बह्वर्था अपि धातवो भवन्ति' (म. भा. १।३।१, ३।१।१९) यह सिद्धांत याद रखना चाहिये, अतः धातु पठित अर्थों से अतिरिक्त अर्थों में भी धातुओं का प्रयोग होता है। इस विषय में काशिका ३।१।७६ भी देखें। सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर की पुष्टि और आत्मा की उन्नति करके उत्साही और यशस्वी होवें ॥ ५ ॥

टिप्पणी—बम्बई गवर्नमेन्ट पुस्तक की संहिता और पद पाठ में 'मित्र-राजन्' एक पद है। परन्तु सायणभाष्य और अन्य दो पुस्तकों में 'मित्र राजन्' दो पद हैं वही हमने लिये हैं ॥

सूक्तम् २९ ॥

१—७ ॥ बृहस्पतिरिन्द्रो वा देवता । १ अनुष्टुप्; ४ चतुर्थे चतुर्थौ दैवी त्रिष्टुप्; अन्ये पादास्त्रिष्टुप् ॥

मनुष्यः स्वोन्नतिं कुर्यादित्युपदिश्यते—मनुष्य अपनी उन्नति करता रहे, इसका उपदेश ॥

पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वो ३ बले ।
आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः ॥१॥

पार्थिवस्य । रसे । देवाः । भगस्य । तन्वः । बले । आयुष्यम् ।
अस्मै । अग्निः । सूर्यः । वर्चः । आ । धात् । बृहस्पतिः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(देवाः) हे व्यवहार कुशल महात्माओ ! (अग्निः) सर्वव्यापक, (सूर्यः) लोकों में चलने वाला, वा लोकों का चलाने वाला, (बृहस्पतिः) बड़े बड़े [ब्रह्माण्डों] का रक्षक परमेश्वर ! (पार्थिवस्य) पृथिवी पर वर्त्तमान

अदिते । म० ४ । हे प्रकृते । भूमे । **शर्म** । अ० १ । २० । ३ । शृ हिंसायाम्-मनिन् । गृहम्-निघ० ३ । ४ । सुखम्-निघ० ३ । ६ । **यच्छ** । देहि । **विश्वे** । सर्वे । **देवाः** । दिव्याः पदार्थाः पुरुषा वा । **जरदष्टिः** । **जीर्यतेरतृन्** (पा० ३ । २ । १०४) इति बाहुलकात् जरतेः स्तुतिकर्मणः—अतृन् । अशूङ् व्याप्तौ सङ्घाते च, अश भोजने-क्तिन् । जरता स्तुत्या सह अष्टिः कार्यव्याप्तिर्भोजनं वा यस्य सः । **यथा** । प्रकारेण । **असत्** । अस्तेर्लेटि अडागमः । भवेत् ।

१—पार्थिवस्य । अ० २ । २८ । ३ । भूमेः सम्बन्धिनः । **रसे** । रस शब्दे आस्वादने च-अच् । सारे शरीरपुष्टौ । **देवाः** । हे व्यवहारकुशला विद्वांसः । **भगस्य** । अ० १ । १४ । १ । भज सेवायाम्-घः । ऐश्वर्यस्य । **तन्वः** । अ० १ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(भगस्य) ऐश्वर्य के (तन्वः) विस्तार के (रसे) रस अर्थात् तत्त्व ज्ञान, और (बले) बल में (अस्मै) इस [जीव] को (आयुष्यम्) आयु बढ़ाने वाला (वर्चः) तेज [शरीर कान्ति और ब्रह्मवर्चस्] (आ) सब ओर से (धात्=धत्तात्) देवे ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के सत्संग से आध्यात्मिक पक्ष में परमेश्वर के ज्ञान से, और आधिभौतिक पक्ष में (अग्नि) जो बिजुली आदि रूप से सब शरीरों में बड़ा उपयोगी पदार्थ है, और (सूर्य) जो अनेक बड़े बड़े लोकों को अपने आकर्षण आदि में रखता है, इनके विज्ञान से, अपनी शरीर कान्ति और आत्मिक शक्ति बढ़ावें, और पृथिवी आदि पदार्थों के सारतत्त्व से उपकार लेकर प्रतापी, यशस्वी, और चिरंजीवी बनें ॥ १ ॥

आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै ।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥२॥

आयुः । अस्मै । धेहि । जातऽवेदः । प्रऽजाम् । त्वष्टः । अधिऽनिधेहि । अस्मै । रायः । पोषम् । सवितः । आ । सुव । अस्मै । शतम् । जीवाति । शरदः । तव । अयम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे प्राणियों को जानने वा धन देने वाले परमेश्वर ! [वा अग्नि] (अस्मै) इस [जीव] को (आयुः) आयु (धेहि) दे, (त्वष्टः)

---

१ । १ । विस्तारस्य । **बले** । आत्मशरीरसामर्थ्ये । **आयुष्यम्** । **तस्मै हितम्** (पा० ५ । १ । ५) आयुष्-यत् । जीवनवर्धकम् । **अस्मै** । निर्दिष्टप्राणिने । **अग्निः** । व्यापकः । तेजोविशेषः । **सूर्यः** । अ० १ । ३ । ५ । **राजसूयसूर्य०** (पा० ३ । १ । ११४) अत्र सिद्धान्तकौमुदीटीकायां भट्टोजिदीक्षितः । "सरत्याकाशे ससूर्यः । यद्वा सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयतीति" । परमेश्वरः । सूर्यलोकः । **वर्चः** । तेजः शरीरकान्तिर्ब्रह्मवर्चसं च । **आ** । समन्तात् । यथाविधि । **धात्** । छान्दसं रूपम् । धत्तात् । धेयात् । स्थापयतु । **बृहस्पतिः** । अ० १ । ८ । २ । महतां पृथिव्यादिलोकानां रक्षकः प्रकाशवृष्टिदानेनाकर्षणेन च । परमात्मा । सूर्यः ॥

२—**आयुः** । जीवनम् । **अस्मै** । समीपस्थाय प्राणिने । **धेहि** । डुधाञ् धारणपोषणदानेषु । देहि । प्रयच्छ । **जातवेदः** । अ० १ । ७ । २ । वेदो धनम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे सूक्ष्म रचना करने वाले परमेश्वर ! [वा सूर्य] (अस्मै) इसको (प्रजाम्) प्रजा जन (अधि-निधेहि) अधिक २ संग्रह कर। (सवितः) हे परम ऐश्वर्य वाले परमेश्वर ! [वा सूर्य] (अस्मै) इसको (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टता (आसुव) भेज दे, (तव) तेरा [सेवक] (अयम्) यह [जीव] (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं तक (जीवाति) जीता रहे ॥ २ ॥

भावार्थः--सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के गुणों को विचार कर मनुष्य को (जातवेदाः) अपने लोगों का जानने वाला, (त्वष्टा) विश्वकर्मा, सब कामों में कुशल और (सविता) महाप्रतापी होकर अपनी सामाजिक और आर्थिक शक्ति बढ़ा कर और संसार में कीर्ति फैला कर पूर्ण आयु भोगनी चाहिये ॥ २ ॥

२- अग्नि के प्रभाव से शरीर में चेष्टा होती है, और सूर्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न, अन्न से बल होता है। जो मनुष्य योग्य प्रयोग से इनको अनुकूल रखता है वह प्रजावान्, धनवान् और आयुष्मान् होता है ॥ २ ॥

आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं दत्तं धत्तं द्रविणं सचेतसौ। जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्त्स-पत्नान् ॥ ३ ॥

निघ० २। १०। जातेभ्यः प्राणिभ्यो धनं ज्ञानं वा यस्मात् स जातवेदाः। हे प्राणिभ्यो धनप्रद, सर्वज्ञ, परमेश्वर। **प्रजाम्**। सन्तानम्। पुत्रपौत्र-भृत्यादिकम्। **त्वष्टः**। अ० २। ५। ६। त्वक्षू तनूकरणे-तृन्। हे तनू-कारक। विश्वकर्मन्। सूर्य। **अधिनिधेहि**। अधिकं बाहुल्येन स्थापय। **रायस्पोषम्**। अ० १। ९। ४। रायो धनस्य पोषं वर्धनम्। **सवितः**। अ० १।१८।२। षु प्रसवैश्वर्ययोः वा षू प्रेरणे-तृचि। **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** (पा० ७। २। ४४) विकल्पाद् इडागमः। परमेश्वर। वृष्टिदानादिना शरीरिणां जनयिता सूर्यः। हे उत्पादक। ऐश्वर्यवन्। **आ**। अभिमुखम्। **सुव**। षू प्रेरणे। प्रेरय। प्रापय। **शतम्**। बह्वीः। अपरिमिताः। **जीवाति**। जीव प्राणधारणे-लेट्। आडागमः। जीवतु। **शरदः**। अ० १। १०। २। शरदृतून्। संवत्सरान्। **तव**। तवानुगृहीतः। **अयम्**। प्राणी ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आऽशीः । नः । ऊर्जम् । उत । सौप्रजाःऽत्वम् । दक्षम् । धत्तम् । द्रविणम् । सऽचेतसौ । जयम् । क्षेत्राणि । सहसा । अयम् । इन्द्र । कृण्वानः । अन्यान् । अधरान् । सऽपत्नान् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(नः) हमारे लिये (आशीः) आशीर्वाद [हो], (सचेतसौ) हे समान चित्त वाले [माता पिता तुम दोनों] ! (ऊर्जम्) अन्न, (सौप्रजास्त्वम्—=०=जस्त्वम्) उत्तम प्रजायें, (दक्षम्) बल, (उत) और (द्रविणम्) धन (धत्तम्) दान करो ।

(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर (अयम्) यह [जीव] (सहसा) [आप के] बल से (जयम्) जय और (क्षेत्राणि) ऐश्वर्य के कारण खेतों को (कृण्वानः) करता हुआ, और (अन्यान्) जीवित [वा भिन्न भिन्न] (सपत्नान्) विपक्षियों को (अधरान्) नीचे [करता हुआ] [जीवाति=जीता रहे—मं० २ से]॥ ३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में (जीवाति) जीता रहे, इस पद की अनुवृत्ति मं० २ से है। माता पिता प्रयत्न करें कि उनके पुत्र पुत्री सब सन्तान बड़े

३—**आशीः** । आङः शासु इच्छायाम्-क्विप्, उपधाया इत्वम् । आशीर्वादः । मङ्गलवचनम् । **नः** । अस्मभ्यम् + अस्तु । **ऊर्जम्** । ऊर्ज बलप्राणनयोः—क्विप् । ऊर्गित्यन्ननामोर्जयतीति सतः । पक्वं सुप्रवृक्णमिति वा—निरु० ३ । ८ । ऊर्जयति प्रबलति बलवन्तं प्राणवन्तं वा करोतीति सा ऊर्क् । अन्नम् । **उत** । अपि च । **सौप्रजास्त्वम्** । **नित्यमसिच् प्रजामेधयोः** (पा० ५ । ४ । १२२) इति सु + प्रजा—असिच् । छान्दसौ वृद्धिदीर्घौ । सुप्रजस्त्वम् । शोभनसन्तानत्वम् । **दक्षम्** । दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे च—अच् । पुष्टिम् । दक्षः=बलम्—निघ० २ । ९ । **धत्तम्** । युवां धारयतम् । स्थापयतम् । **द्रविणम्** । **द्रुदक्षिभ्यामिनन्** (उ० २ । ५०) इति द्रु गतौ—इनन् । धनम् । निघ० २ । १० । **सचेतसौ** । समानमनसौ । मातापितरौ । **क्षेत्राणि** । **दादिभ्यश्छन्दसि** (उ० ४ । १७०) इति क्षि क्षय-गतिनिवासेषु—त्रन् । क्षेत्रं क्षियतेर्निवासकर्मणः—निरु० १० । १४ । ऐश्वर्याणि । भूमिप्रदेशान् । **सहसा** । बलेन (तव दत्तेन) । **अयम्** । निर्दिष्टः पुरुषः **इन्द्र** । हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन् । **कृण्वानः** । कुर्वाणः । उत्पादयन् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्नवान्, बलवान् और धनवान् होकर, उत्तम गृहस्थी बनें और जितेन्द्रिय होकर अपने दोषों और शत्रुओं का नाश करें ॥ ३ ॥

इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन्।
एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत् ॥ ४ ॥

इन्द्रेण । दत्तः । वरुणेन । शिष्टः । मरुत्ऽभिः । उग्रः । प्रऽहितः । नः । आ । अगन् । एषः । वाम् । द्यावापृथिवी इति । उपऽस्थे । मा । क्षुधत् । मा । तृषत् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(एषः) यह [जीव] (इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा करके (दत्तः) दिया हुआ, (वरुणेन) श्रेष्ठ गुण वाले पिता करके (शिष्टः) शिक्षा किया हुआ, और (मरुद्भिः) शूर वीर महात्माओं करके (प्रहितः) भेजा हुआ, (उग्रः) तेजस्वी होकर, (नः) हम लोगों में (आ अगन् = अगमत्) आया है। (द्यावापृथिवी = द्यौ—०) हे सूर्य और भूमि ! (वाम्) तुम दोनों की (उपस्थे) गोद में [यह जीव] (मा क्षुधत्) न भूखा रहे और (मा तृषत्) न पियासा मरे ॥ ४ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने अपनी न्याय व्यवस्था से इस जीव को मनुष्य जन्म दिया है, माता पिता ने शिक्षा दी है, विद्वानों ने उत्तम विद्याओं का अभ्यास कराया है, इस प्रकार वह अध्ययन समाप्ति पर समावर्तन करके संसार में प्रवेश करे, और सूर्य पृथिवी आदि सब पदार्थों से उपकार लेकर आनन्द भोगे ॥ ४ ॥

अन्यान्। माछासिभ्यो यः (उ० ४। १०९) इति बाहुलकात् अन प्राणने—यः। अनिति जीवयतीति अन्यः। जीवितान्। भिन्नान्। **अधरान्।** न+धृङ्—अच्। अधोगतान्। नीचान्। **सपत्नान्।** अ० १। ९। २। सहपतनशीलान्। शत्रून् ॥

४—इन्द्रेण। परमैश्वर्यवता परमात्मना। **दत्तः।** **दो ददघोः** (पा० ७। ४। ४६) इति डुदाञ् दाने—क्तः, ददभावः। लब्धजीवनः। **वरुणेन।** वृञ्—उनन्। श्रेष्ठजनकेन। **शिष्टः।** शासु अनुशिष्टौ—क्त। **शास इदङ्हलोः** (पा० ६। ४। ३४) इत्युपधाया इकारः। **शासिवसिघसीनां च** (पा० ८।३।६०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्तम् । ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः ॥ ५ ॥

ऊर्जम् । अस्मै । ऊर्जस्वती इति । धत्तम् । पयः । अस्मै । पयस्वती इति । धत्तम् । ऊर्जम् । अस्मै । द्यावापृथिवी इति । अधाताम् । विश्वे । देवाः । मरुतः । ऊर्जम् । आपः ॥५॥

भाषार्थः---(ऊर्जस्वती = ०—त्यौ) हे अन्न वाली [पिता और माता] दोनों ! (अस्मै) इस [जीव को] (ऊर्जम्) अन्न (धत्तम्) दान करो, (पयस्वती= ०—त्यौ) हे दूध वाली तुम दोनों ! (अस्मै) इस को (पयः) दूध वा जल (धत्तम्) दान करो। (द्यावापृथिवी = ०—व्यौ) सूर्य और पृथिवी ने (अस्मै)

इति सस्य षः । शासितः । अनुज्ञातः । **मरुद्भिः** । अ० १ । २० । १ । शत्रुमारण शीलैः शूरैः । **उग्रः** । तेजस्वी । **प्रहितः** । हि गतौ वृद्धौ च—क्तः । प्रेषितः प्रेरितः । **नः** । अस्मान् । **आ + अगन्** । गमेर्लुङि । **मन्त्रे घस०** (पा० २ । ४ । ८०) इति च्लेर्लुक् । **मो नो धातोः** (पा० ८।२।६४) इति नत्वम् । आगमत् **एषः** । प्राणी । **वाम्** । युवयोः । **द्यावापृथिवी** । हे द्यावापृथिव्यौ । तत्रस्थाःपदार्थाः—इत्यर्थः । **उपस्थे** । क्रोडे । **मा क्षुधत्** । क्षुत्पीडां मा प्राप्नोतु । **मा तृषत्** । तृषार्तो मा भवतु । क्षुध बुभुक्षायाम् । ञितृष पिपासायाम् । उभयोर्माङि लुङि पुषादित्वाद् अङ् ॥

५—ऊर्जम् । म० ३ । अन्नम् । **ऊर्जस्वती** । ऊर्ज बलप्राणनयोः—असुन् । ततो मतुप् । मस्य वः । **तसौ मत्वर्थे** (पा० १ । ४ । १९) इति भत्वाद् रुत्वाभावः । विभक्तेः पूर्वसदर्णदीर्घः । हे अन्नवत्यौ । बलवत्यौ मातापितरौ । **धत्तम्** । दत्तम् । **पयः** । अ० १ । ४ । १ । दुग्धम् । जलम् । **अस्मै** । जीवाय । **पयस्वती** । पूर्ववत् सिद्धिः । दुग्धवत्यौ । जलवत्यौ । **द्यावापृथिवी** । अ० २ । १ । ४ । प्रगृह्यत्वाद् अचि प्रकृतिभावः । सूर्यभूमी । **अधाताम्** । डुधाञ्-लुङ् । दत्तवत्यौ । **विश्वे** । सर्वे । **देवाः** । दिव्यगुणयुक्ताः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस [जीव] को (ऊर्जम्) अन्न (अधाताम्) दिया है, (विश्वे) सब (देवाः) दिव्यगुण वाले (मरुतः) दोषनाशक, प्राण अपानादि वायु और (आपः) व्यापन शील जल ने (ऊर्जम्) अन्न [अधुः] [दिया है] ॥ ५ ॥

भावार्थः—माता पिता संतानों को ऐसी शिक्षा देकर उद्यमी करें कि वे खान पान आदि प्राप्त करके सदा सुखी रहें। सूर्य भूमि वायु जलादि प्राकृतिक पदार्थ खान पानादि देकर बड़ा उपकार कर रहे हैं। उस से सबको लाभ उठाना चाहिये ॥ ५ ॥

शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः। सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ॥ ६ ॥

शिवाभिः । ते । हृदयम् । तर्पयामि । अनमीवः । मोदिषीष्ठाः । सुऽवर्चाः । सुऽवासिनौ । पिबताम् । मन्थम् । एतम् । अश्विनोः । रूपम् । परिऽधाय । मायाम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—[हे जीव !] (शिवाभिः) मङ्गल करने वाली [विद्याओं वा शक्तियों] से (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय को (तर्पयामि) मैं तृप्त करता हूं, तू (अनमीवः) नीरोग और (सुवर्चाः) उत्तम कान्ति वाला होकर (मोदिषीष्ठाः) हर्ष प्राप्त कर (सवासिनौ) मिलकर निवास करने वाले दोनों [स्त्री पुरुष] (अश्विनोः) माता

मरुतः । अ० १ । २० । १ । अथातो मध्यस्थाना देवगणास्तेषां मरुतः प्रथमागामिनो भवन्ति । मरुतो मितराविणो वा, मितरोचिनो वा, महद् द्रवन्तीति वा-निरु० ११ । १३ । वायुः । ऋत्विजः । शूराः पुरुषाः । **आपः** । अ० १ । ४ । ३ । जलम् । आप्ताः प्रजाः—दयानन्दभाष्ये, य० ६ । २७ ॥

६—शिवाभिः । शिव-टाप् । अ० २ । ६ । ३ । मङ्गलवतीभिर्विद्याभिः शक्तिभिर्वा । (शिवाभिष्टे) **युष्मत्तत्ततक्षुःष्वन्तः पादम्** (पा० ८ । ३ । १०३) इति षत्वम् । **ते** । तव । **हृदयम्** । **वृहोः षुग्दुकौ च** (उ० ४। १००) इति हृञ् हरणे-कयन्प्रत्ययः दुक् च । हरति स्वीकरोति विषयानिति । मनः । **तर्पयामि** । सुखयामि । **अनमीवः** । **इण्शीभ्यां वन्** (उ० १ । १५२) इति अम रोगे—वन्, ईडागमः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता के (रूपम्) स्वभाव और (मायाम्) बुद्धि को (परिधाय) सर्वथा धारण करके (एतम्) इस (मन्थम्) रस का (पिबताम्) पान करें ॥ ६ ॥

भावार्थः—परमेश्वर कहता है कि हे मनुष्य तेरे आनन्द के लिये मैंने तुझे अनेक विद्यायें और शक्तियां दी हैं तुम दोनों स्त्री पुरुषो ! माता पिता रूप से संसार का उपकार करके इस [मेरे दिये] आनन्द रस को भोगो ॥६॥

इन्द्र एतां ससृजे विद्धो अग्र ऊर्जां स्वधामजरां सा त एषा। तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा मा त आ सुस्रोद् भिषजस्ते अक्रन् ॥ ७ ॥

इन्द्रः। एताम्। ससृजे। विद्धः। अग्रे। ऊर्जाम्। स्वधाम्। अजराम्। सा। ते। एषा। तया। त्वम्। जीव। शरदः। सुऽवर्चाः। मा। ते। आ। सुस्रोत्। भिषजः। ते। अक्रन् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(विद्धः) सेवा किये हुये (इन्द्रः) परमेश्वर ने (एताम्) इस (अजराम्) अक्षय (ऊर्जाम्) अन्नयुक्त (स्वधाम्) अमृत को (अग्रे)

रोगरहितः। **मोदिषीष्ठाः**। मुद हर्षे। आशिषि लिङ्ग। मोदस्व। हृष्टो भव। **सुवर्चाः**। सु+वर्च–असुन्। सुतेजस्कः। **सवासिनौ। व्रते** (पा० ३। २। ८०) इति वस निवासे–णिनिः। समानस्य सभावः। **पुमान् स्त्रिया** (पा० १। २। ६७) इत्येकशेषः। समानम् एकत्र निवसन्तौ स्त्रीपुरुषौ। **पिबताम्**। पीतं कुरुताम्। **मन्थम्**। मन्थ विलोडने–घञ्। विलोडनम्। रसम्। **एतम्**। निर्दिष्टम्। वेदोक्तम्। **अश्विनोः। अशूप्रुषिलटि०** (उ० १। १५१) अशूङ् व्याप्तौ सङ्घाते च–क्वन्। अश्वो व्याप्तिः—इनिप्रत्ययः। एकशेषः पूर्ववत्। अश्विनौ द्यावापृथिव्यावित्येकेऽहोरात्रावित्येके सूर्याचन्द्रमसावित्येके राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः—निरु० १२। १। कार्येषु व्याप्तिमतोः, जननीजनकयोः। **रूपम्**। स्वभावम्। **परिधाय**। धृत्वा। **मायाम्**। **माछापसिभ्यो यः** (उ० ४। १०९) माङ् माने यः, टाप् बुद्धिम्। प्रज्ञाम्–निघ० ३। ९ ॥

७—इन्द्रः। परमैश्वर्यवान् परमेश्वरः। **एताम्**। सर्वत्र विद्यमानाम्। **ससृजे**। सृज्–लिट्। सृष्टवान्। उत्पादितवान्। **विद्धः**। विध विधाने–क्तः–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहिले से (ससृजे) उत्पन्न किया है। (सा एषः) सो यह (ते) तेरे लिये [है], (तया) उस [अमृत] से (त्वम्) तू (सुवर्चाः) उत्तम कान्ति वाला होकर (शरदः) बहुत शरद् ऋतुओं तक (जीव) जीता रह, (आ) और [सा स्वधा] [वह] (ते) तेरे लिये (मा सुस्रोत्) न घट जावे। (भिषजः) वैद्यों ने (ते) तेरे लिए [उस अमृत को] (अक्रन्) बनाया है ॥ ७ ॥

भावार्थः—अनादि परमेश्वर ने सृष्टि के पहिले मनुष्य को अमृत रूप सार्वभौम ज्ञान दिया है उसकी कभी हानि नहीं होती, मनुष्य जितना जितना उसे काम में लाता है उतना ही वह बढ़ता जाता है और सुखदायक होता है। उसके उचित प्रयोग से मनुष्य पूर्ण आयु भोगता है। बुद्धिमानों ने बुद्धि को महौषधि बताया है ॥ ७ ॥

'ऊर्जाम्' पद के स्थान पर सायणभाष्य में 'ऊर्जम्'[1] व्याख्यात है।

तुदादिः, छन्दसि अनिट्। विधेम = परिचरेम—निघ० ३।५ वेधितः, परिचरितः। सेवितः। **अग्रे**। सर्वेभ्यः पूर्वम्। **ऊर्जाम्**। म० ३। ऊर्क् = अन्नं बलं वा। ततः, अर्शआद्यच्, टाप्। अन्नवतीम्। बलवतीम्। **स्वधाम्। आःसमिण्-निकषिभ्याम्** (उ० ४। १७५) इति ष्वद आस्वादने—आः, दस्य धः। स्वादयति रसान् उत्पादयतीति स्वधा। यद्वा। **आतोऽनुपसर्गे कः** (पा० ३। २। ३) इति स्व + डुधाञ् धारणपोषणदानेषु-कः, टाप्। अथवा क्विप्। स्वम् आत्मानं भोक्तृशरीरं दधाति पुष्णातीति वा स्वधा। यद्वा। स्व + धेट् पाने-कः, टाप्। उदकम्। निघ० १। १२। अन्नम्-निघ० २। ७। पितॄणाम् अन्नम्। अमृतम्। शरीरपोषकं पदार्थम्। **अजराम्। ऋच्छेरः** (उ० ३। १३१) इति अज[2] गति-क्षेपणयोः—अरप्रत्ययः, टाप्। गतिशीलाम्। उत्साहवर्धयित्रीम्। यद्वा। जॄष् वयोहानौ अङ्, टाप्। अक्षीणाम्। **ते**। तुभ्यम्। **तया**। स्वधया। **जीव**। प्राणान् धारय। **शरदः**। अ० १। १०। २। शरदृतून्। वर्षाणि। **आ**। आप्लृ व्याप्तौ—क्विप्, पलोपः समुच्चये। यथा। देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च आ। **मा सुस्रोत्**। स्रु गतौ—लङि, छन्दसि शपः श्लुः। नष्टो मा भूत्। **भिषजः**। अ० २। ९। ३। चिकित्सकाः। **अक्रन्**। **मन्त्रे घस०** (पा० २। ४। ८०) इति करोतेः—च्लेर्लुक्। अकार्षुः ॥

---

१. यह अथर्ववेदीय पैप्पलाद शाखानुसारी पाठ है ॥ सम्पा० ॥

२. यहाँ भी बाहुलक का आश्रयण करना चाहिये ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥ ३० ॥

१—५ ॥ अश्विनौ देवते ॥ १ पङ्क्तिः, २—५ अनुष्टुप् ॥

गृहस्थाश्रमप्रवेशायोपदेशः—गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिये उपदेश ॥

यथेदं भूम्या अधि तृणं वातो मथायति । एवा मथ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ १ ॥

यथा । इदम् । भूम्याः । अधि । तृणम् । वातः । मथायति । एव । मथ्नामि । ते । मनः । यथा । माम् । कामिनी । असः । यथा । मत् । न । अपऽगाः । असः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(यथा) जिस प्रकार (वातः) वायु (भूम्याः) भूमि के (अधि) ऊपर (इदम्) इस (तृणम्) तृण को (मथायति) चलाता है। (एव) वैसे ही (ते) तेरे (मनः) मन को (मथ्नामि) मैं चलाता हूं, (यथा) जिससे तू (माम् कामिनी) मेरी कामना वाली (असः) होवे, और (यथा) जिससे तू (मत्) मुझ से (अपगाः) वियोग करने वाली (न) न (असः) होवे ॥ १ ॥

भावार्थः—विद्यासमाप्ति पर ब्रह्मचारी अपने अनुरूप गुणवती कन्या को ढूंढ़े, और कन्या भी अपने सदृश वर ढूंढ़े। इस प्रकार विवाह होने से वियोग न होकर आपस में प्रेम बढ़ता और आनन्द मिलता है ॥ १ ॥

१—यथा । येन प्रकारेण । **इदम्** । परिदृश्यमानम् । **भूम्याः** । अ० १ । ११ । २ । पृथिव्याः । **अधि** । उपरि । **तृणम्** । **तृहेः कनो हलोपश्च** (उ० ५ । ८) इति तृह हिंसायाम्--क्तः, हलोपः । तृह्यते हन्यते भक्ष्यते, गवादिभिः । गवादि-भक्ष्यम् । **वातः** । अ० १ । ११ । ६ । वायुः । **मथायति** । **छन्दसि शायजपि** (पा० ३ । १ । ८४) इति बाहुलकात् मथे विलोडने—शायच् विलोडयति । भ्रामयति । **एव** । एवम् । तथा । **मथ्नामि** । मन्थ विलोडने । विलोडयामि । **ते** । तव । **मनः** । मन--असुन् । चित्तम् । **यथा** । यस्मात् कारणात् । **माम्** । कामयमानं वरम् । **कामिनी** । कर्मण्यजन्ताद् औणादिक इनिप्रत्ययः । ङीप् । **भविष्यति गम्यादयः** (पा० ३ । ३ । ३) इति भविष्यदर्थत्वम् । **अकेनोर्भविष्य-दाधमर्ण्ययोः** (पा० २ । ३ । ७०) इति कर्मणि षष्ठीप्रतिषेधत्वात् (माम्) इति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भूम्याः' पद के स्थान पर सायणभाष्य में 'भूम्याम्' पद व्याख्यात है।

इस मन्त्र का अन्तिम भाग "यथा मन्नापगा असः" अ० १। ३४। ५, और ६। ८। १–३ में भी है।

सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः।
सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता ॥ २ ॥

सम्। च। इत्। नयाथः। अश्विना। कामिना। सम्। च। वक्षथः। सम्। वाम्। भगासः। अग्मत। सम्। चित्तानि। सम्। ऊँ इति। व्रता ॥ २ ॥

भाषार्थः---(च) और (अश्विना = ०—नौ) हे कार्य में व्याप्ति वाले माता और पिता, तुम दोनों, (इत्) ही (कामिना = ०—नौ) कामना वाले दोनों [वर कन्या] को (सम्) मिल कर (नयाथः) ले चलो, (च) और (सम्) मिल कर (वक्षथः) आगे बढ़ाओ। (वाम्) तुम दोनों के (भगासः = भगाः) सब ऐश्वर्य (सम् अग्मत) [हम को] मिल गये हैं, (चित्तानि) [हमारे] चित्त (सम = सम् + अग्मत) मिल गये हैं, (उ) और भी (व्रता = व्रतानि) नियम और कर्म (सम् + अग्मत) मिल गये हैं ॥ २ ॥

द्वितीया। काङ्क्षिष्यन्ती। **असः**। भवेः। **मत्**। मत्तः सकाशात्। **न**। निषेधे। **अपगाः**। **जनसनखनक्रमगमो विट्** (पा० ३। २। ६७) इति गमेर्विट्। **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** (पा० ६। ४। ४१) इति आत्त्वम्। अपसृत्य गन्त्री। वियोगं प्राप्ता ॥

२—**सम्**। मिलित्वा। संगत्य। **च**। समुच्चये। **इत्**। अवश्यम्। **नयाथः**। नयतेर्लेटि आडागमः। प्रापयतम्। **अश्विना**। अ० २। २९। ६। कार्येषु व्यापनशीलौ मातापितरौ। **कामिना**। म० १। कम--णिच्—इनि। कामयमानौ। कन्यावरौ। **वक्षथः**। वहेर्लेटि अडागमः, सिप् च। युवां वहतम्। संयोजयतम्। **वाम्**। युवयोः। **भगासः**। **आज्जसेरसुक्** (पा० ७। १। ५०) इति जसि असुक्। भगाः। भजनीयानि, ऐश्वर्याणि। **सम्** + **अग्मत**। **समोगम्यृच्छि०** (पा० १। ३। २९) आत्मनेपदम्। लुङि च्लेर्लुक्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—वर और कन्या माता पिता आदि बड़ों की भी सम्मति प्राप्त करें। उनके अनुग्रह से दोनों ने विद्या धन सुवर्ण आदि धन, तथा परस्पर एक चित्त होने और नियम पालन की शक्ति को पाया है। यह मूल मन्त्र गृहस्थाश्रम में आनन्द वर्धक है ॥ २ ॥

यत् सुपर्णा विवक्षवो अनमीवा विवक्षवः ।
तत्र मे गच्छताद्धवं शल्य इव कुल्मलं यथा ॥ ३ ॥

यत् । सुऽपर्णाः । विवक्षवः । अनमीवाः । विवक्षवः । तत्र । मे । गच्छतात् । हवम् । शल्यःऽइव । कुल्मलम् । यथा ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(यत् = यत्र) जहां (सुपर्णाः) बड़ी पूर्त्ति वाले [अथवा गरुड़ गिद्ध, मोर आदि के समान दूरदर्शी पुरुष] (विवक्षवः) विविध प्रकार से राशि वा समूह करने वाले, और (अनमीवा) रोगरहित स्वस्थ पुरुष (विवक्षवः) बोलने वाले हों, (तत्र) उस स्थान में [वह वर वा कन्या] (मे) मेरी [वर व कन्या को] (हवम्) पुकार [विज्ञापन] को (गच्छतात्) पावे, (शल्यः इव) जैसे बाण की कील (यथा) जिस प्रकार (कुल्मलम्) अपने दंडे में [पहुँचती है] ॥ ३ ॥

सम्यग् अगमन् । **चित्तानि** । चिती संज्ञाने—क्तः । मनांसि । **व्रतानि** । **पृषिरञ्जिभ्यां कित्** (उ० ३।१११) इति वृञ्धातोः-अतच्प्रत्ययः कित्वाद् गुणाभावः **यण**ादेशः । व्रतमिति कर्म नाम निवृत्तिकर्म वारयतीति सतः । इदमपीतरद् व्रतमेतस्मादेव वृणोतीति सतोऽन्नमपि व्रतमुच्यते यदावृणोति शरीरम्-निरु० २ । १३ । कर्माणि । नियमान् ॥

३—**यत्** । यत्र स्थाने । **सुपर्णाः** । अ० १ । २४ । १ । सुपालनाः, सुपूरणाः । सुपतनशीलाः गरुड़ादयः पक्षिणो यथा । **विवक्षवः** । **भृमृशीङ्०** (उ० १ । ७) इति वि + वक्ष रोषे संघाते च—उः । विविधं राशीकरणशीलाः, विद्यासुवर्णादीनाम् । **अनमीवाः** । अ० २ । २९ । ६ । रोगरहिताः । स्वस्थाः । **विवक्षवः** । ब्रुवः सनि वच्यादेशे । **सनाशंसभिक्ष उः** (पा० ३ । २ । १६८) उप्रत्ययः । वक्तुमिच्छवः । **तत्र** । तस्मिन् स्थाने । **मे** । मम । **गच्छतात्** । प्राप्नुयात् । वरः कन्या वा । **हवम्** । अ० १ । १५ । २ । ह्वेञ्—अप् । आवाहनम् । विज्ञापनम् । **शल्यः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जहाँ विद्वान् पुरुषों में रहकर वर ने, और विदुषी स्त्रियों में रहकर कन्या ने विद्या और सुवर्णादि धन प्राप्त किये हों, और नीरोग रहने और धर्म उपदेश करने की शिक्षा पायी हो, वहाँ पर उन दोनों के विवाह की बात चीत पहुंचे और ऐसी दृढ़ होजावे जैसे बाण की कील बाण की दंडी में पक्की जम जाती है ॥ ३ ॥

यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम् ।
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे ॥ ४ ॥

यत् । अन्तरम् । तत् । बाह्यम् । यत् । बाह्यम् । तत् । अन्तरम् ।
कन्यानाम् । विश्वऽरूपाणाम् । मनः । गृभाय । ओषधे ॥ ४ ॥

भाषार्थः [हे वर!] (यत्) जो कुछ [प्रीति भाव आदि] (अन्तरम्) भीतर [तेरे हृदय में] है, (तत्) वह (बाह्यम्) बाहिर [कन्या को प्रकट] हो, और (यत्) जो कुछ [प्रीतिभाव] (बाह्यम्) बाहिर [प्रकट किया जाय] (तत्) वह (अन्तरम्) भीतर [कन्या के हृदय में स्थिर हो] (ओषधे) हे ताप नाशक [ओषधि रूप वर] (विश्वरूपाणाम्) सर्वसुन्दरी (कन्यानाम्) कन्याओं [कन्या] के (मनः) मन को (गृभाय) ग्रहण कर ॥ ४ ॥

भावार्थः—वर हार्दिक प्रीति से कन्या के साथ व्यवहार करे, और पत्नी भी पति से हार्दिक प्रीति रक्खे। इस प्रकार परस्पर प्रसन्नता से गृह लक्ष्मी बढ़ेगी और नित्य प्रति आनन्द रहेगा। (कन्यानाम्) बहुवचन एक के लिये आदरार्थ है, और मन्त्र में जो वर को उपदेश है वही कन्या के लिये भी समझना चाहिये ॥ ४ ॥

सानसिवर्णसिपर्णसि...शल्याः (उ० ४।१०७) इति शल गतौ-यः। बाणाग्रभागः। शस्त्रविशेषः। **कुल्मलम्। कुषेर्लश्च** (उ० ४। १०८) इति कुष निष्कर्षे, दीर्घौ-कमलन्। कुष्मलम्। षस्य लः। छेदनम्। बाणदण्डछिद्रम् ॥

४—यत्। किञ्चित्, प्रीतिभावः। शुभविचारः। **अन्तरम्।** अन्त+रा-कः। अन्तं राति ददाति। मध्यम्। अन्तर्धानम्। आत्मीयम्। **बाह्यम्।** **दित्यदित्यादित्य०** (पा० ४। १। ८५) अत्र वार्त्तिकम्, **बहिषष्टिलोपश्च।** इति बहिस्-यञ्, टिलोपश्च। बहिष्ठम्। प्रकटम्। **कन्यानाम्। अघ्न्यादयश्च**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एयमगन् पतिं कामा जनिकामोऽहमागमम् ।
अश्वः कनिक्रदद् यथा भगेनाहं सहागमम् ॥ ५ ॥

आ । इयम् । अगन् । पतिऽकामा । जनिऽकामः । अहम् । आ । अगमम् । अश्वः । कनिक्रदत् । यथा । भगेन । अहम् । सह । आ । अगमम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(इयम्) यह (पतिकामा) पति की कामना करती हुई कन्या (आ+अगन्=आगमत्) आयी है, और (जनिकामः) पत्नी की कामना वाला (अहम्) मैं (आ+अगमम्) आया हूँ। (अहम्) मैं (भगेन) ऐश्वर्य के (सह) साथ (आ+अगमम्) आया हूँ। (यथा) जैसे (कनिक्रदत्) हींसता हुआ (अश्वः) घोड़ा ॥ ५ ॥

भावार्थः—जैसे बलवान् घोड़ा मार्ग गमन, अन्न, घास आदि भोजन के समय हिनहिनाकर प्रसन्नता प्रकट करता है, इसी प्रकार विद्या समाप्ति पर पूर्ण विद्वान् और समर्थ कन्या और वर गृहाश्रम में प्रवेश करके आनन्द भोगते हैं ॥ ५ ॥

(उ० ४ । ११२) इति कनी दीप्तिकान्तिगतिषु–यक्, टाप् च[1] । आदरार्थं बहुवचनम् । दीप्यमानायाः । कमनीयायाः । कुमार्याः । **विश्वरूपाणाम्** । सर्वाङ्गसुन्दरीणाम् । **मनः** । चित्तम् । **गृभाय** । **छन्दसि शायजपि** (पा० ३ । १ । ८४) इति ग्रहेर्लोटि श्नः शायजादेशः । हस्य भः । गृहाण । **ओषधे** । अ० १ । २३ । १ । हे तापनाशक । ओषधिरूपवर ॥

५—**इयम्** । कमनीया कन्या । **आ+अगन्** । गमेर्लुङि तिपि च्लेर्लुकि **मो नो धातोः** (पा० ८ । २ । ६४) इति नत्वम् । आगमत् । **पतिकामा** । भर्त्तारमिच्छन्ती । **जनिकामः** । **जनिघसिभ्यामिण्** (उ० ४ । १३०) इति जन जनने वा जनी प्रादुर्भावे–इण् । **जनिवध्योश्च** (पा० ७ । ३ । ३५) इति वृद्धिनिषेधः । जनयति वीरपुत्रान्, जायते सुखमनया सा जनिर्जाया । तां कामयमानः । **अहम्** । वरः । **आ+अगमम्** । आगतवान्नस्मि । **अश्वः** । अ० १ । १६ । ४ । तुरङ्गः । **कनिक्रदत्** । **दाधर्त्तिदर्द्धर्त्ति०** (पा० ७।४।६५) इति क्रन्द आह्वाने यङि शत्रन्तो निपातितः । भृशं ह्रेषां कुर्वन् । **भगेन** । भजनीयेन पत्नीरूपैश्वर्येण । **सह** । सङ्गतः ॥

---

१. तित्यशिक्य० (फिट्-७६) से 'कन्या' शब्द को स्वरित हुआ है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ३१ ॥

१—५ ॥ इन्द्रो देवता । १, २, ४ अनुष्टुप्; ३, ५ त्रिष्टुप् ।

स्वल्पानपि दोषान्नाशयेत्—छोटे २ दोषों का भी नाश करे ॥

इन्द्रस्य॒ या म॒ही दृ॒षत् क्रिमे॒र्विश्व॑स्य॒ तर्ह॑णी ।
तया॑ पिनष्मि॒ सं क्रिमी॑न् दृ॒षदा॒ खल्वाँ॑ इव ॥ १ ॥

इन्द्र॑स्य । या । म॒ही । दृ॒षत् । क्रिमेः॑ । विश्व॑स्य । तर्ह॑णी ।
तया॑ । पि॒न॒ष्मि॒ । सम् । क्रिमी॑न् । दृ॒षदा॑ । खल्वा॑न्ऽइव ॥ १ ॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर की (या) जो (मही) विशाल [सर्वव्यापिनी विद्यारूप] (दृषत्) शिला (विश्वस्य) प्रत्येक (क्रिमेः) क्रिमि [कीड़े] की [तर्हणी] नाश करने वाली है, (तया) उससे (क्रिमीन्) सब क्रिमियों को (सम्) यथा नियम (पिनष्मि) पीस डालूं, (इव) जैसे (दृषदा) शिला से (खल्वान्) चनों को [पीसते हैं] ॥ १ ॥

भावार्थः—परमेश्वर अपनी अटूट न्याय व्यवस्था से प्रत्येक दुराचारी को दंड देता है, इस प्रकार मनुष्य अपने छोटे २ दोषों को नाश करे । क्योंकि छोटे छोटों से ही बड़े बड़े दोष उत्पन्न होकर अन्त में बड़ी हानि पहुँचाते हैं । जैसे कि शिर वा उदर में छोटे २ कीड़े उत्पन्न होकर बड़ी व्याकुलता और रोग के कारण होते हैं ॥ १ ॥

इस सूक्त में क्रिमियों के उदाहरण से क्षुद्र दोषों के नाश का उपदेश है ॥

इस सूक्त और आगामी सूक्त का मिलान अथर्व० का० ५ सूक्त २३ से कीजिये ॥

१—**इन्द्रस्य** । परमैश्वर्यवतः परमात्मनः । **मही** । मह पूजायाम्—अच् । **पिद्गौरादिभ्यश्च** (पा० ४। १। ४१) इति ङीष् । मह्यते मही । महती । विशाला । **दृषत्** । **दृणातेः षुग्ह्रस्वश्च** (उ० १ । १३१) इति दृ विदारणे—अदिप्रत्यये—धातोः षुक्ह्रस्वश्च । दीर्यते यया । शिला । **क्रिमेः** । **क्रमितिमिशतिस्तम्भामत इच्च** (उ० ४ । १२२) इति क्रमु पादविक्षेपे—इन्, कित्, अत इत् क्रमेः[1] । क्षुद्रजन्तोः कीटस्य । **विश्वस्य** । सर्वस्य । प्रत्येकस्य । **तर्हणी** । तृह हिंसायाम्—करणे ल्युट् । ङीप् । हन्त्री । **पिनष्मि** । पिष्ल संचूर्णने । संचूर्णयामि । **क्रिमीन्** । कीटान् । **दृषदा** । शिलया । **खल्वान्** । **सर्वनिघृष्व०** (उ० १ । १५३) इति खल संचये—वन् । चणकान्—इति सायणः ।

---

१. भ्रमेः सम्प्रसारणञ्च (उ० ४ । १२१) से सम्प्रसारण की अनुवृत्ति आकर यहाँ पक्ष में कृमिः रूप भी बनता है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम् । अल्गण्डून्त्सर्वान्छलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥ २ ॥

दृष्टम् । अदृष्टम् । अतृहम् । अथो इति । कुरूरुम् । अतृहम् । अल्गण्डून् । सर्वान् । शलुनान् । क्रिमीन् । वचसा । जम्भयामसि ॥ २ ॥

भाषार्थः—(दृष्टम्) दीखते हुये और (अदृष्टम्) न दीखते हुये [क्रिमिगण] को (अतृहम्) मैंने नष्ट कर दिया है, (अथो) और भी (कुरूरुम्) भूमि पर रेंगने वाले, वा बुरे प्रकार से सताने वा भिनभिनाने वाले को (अतृहम्) मैंने नष्ट कर दिया है। (सर्वान्) सब (अल्गण्डून्) उपधानों [तकियों] में भरे हुये, (शलुनान्) बेग बेग चलने वाले (क्रिमीन्) कीड़ों को (वचसा) वचन से (जम्भयामसि = ०—मः) हम मार डालें ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य बड़े और छोटे क्षुद्र जन्तुओं को, जो अशुद्धि, मलिनता आदि से उत्पन्न होकर बड़े २ रोगों के कारण होते हैं, मार डालते हैं, इसी प्रकार अपने छोटे २ दोषों का शीघ्र ही नाश करना चाहिये ॥ २ ॥

(वचसा जम्भयामसि) वचन से हम मार डालें। इसका यह अभिप्राय है कि (१) वचन मात्र से अर्थात् शीघ्र ही, (२) औषधि शौच आदि

२—**दृष्टम्** । दृष्टिगोचरम् । स्थूलशरीरयुक्तम् । **अदृष्टम्** । अगोचरम् । सूक्ष्मकायम् । अस्माकं शरीरान्तःस्थितं वा । **अतृहम्** । तृह हिंसायाम्—छन्दसि लुङि च्लेरङ् । नाशितवानस्मि । **अथो** । अथ + उ । अपि च । **कुरूरुम्** । कु—रुरुम् । कु शब्दे, आर्त्तस्वरे—डुः । कवन्ते शब्दयन्ति प्राणिनो यत्र सा कुः पृथिवी । यद्वा कुवन्ते आर्त्तस्वरं कुर्वन्ति यस्मात् कु पापम्, कुत्सा । **रुशातिभ्यां क्रुन्** (उ० ४।१०३) इति रुङ् गतिरेषणयोः यद्वा रु शब्दे-क्रुन् । छान्दसो दीर्घः । कौ भूमौ रवते गच्छतीति कुरूरुः । यद्वा, कुत्सितं रवते हिनस्ति, रौति ध्वनयतीति कुरूरुः । भूमिगन्तारम् । कुहिंसकम् । कुत्सितध्वनियुक्तं कीटम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के हित उपदेश से, ३—ओ३म् शब्द, गायत्री आदि मन्त्र के जप से, ४—रोचक कथा, लोरी वा गीत आदि के सुनाने से चित्त को शान्ति, और शान्ति से कुरोग और कुवासनाओं का नाश होता है ॥

टिप्पणी—'कुरूरुम्' के स्थान पर सायणभाष्य में 'कुरीरम्' और 'शलुनान्' के स्थान पर 'शल्गान्' व्याख्यात है ॥

अलगण्डून् हन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन् । शिष्टानशिष्टान् नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरुच्छिषातै ॥ ३ ॥

अलगण्डून् । हन्मि । महता । वधेन । दूनाः । अदूनाः । अरसाः । अभूवन् । शिष्टान् । अशिष्टान् । नि । तिरामि । वाचा । यथा । क्रिमीणाम् । नकिः । उत्ऽशिषातै ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अलगण्डून्) उपधानों [तकियों में] भरे हुये जन्तुओं को (महता) बड़ी (वधेन) चोट से (हन्मि) मैं मारता हूं। (दूनाः) तपे

अलगण्डून् । अल् गण्डून् । अल पर्याप्तौ–क्विप् । **भृमृशीङ्०**[1] (उ० १ । ७) इति गडि वदनैकदेशे–उः । शिरोभागः स्थास्यतेऽत्रेति गण्डुः । उपधानम् । अलन्ति पर्याप्ता भवन्ति गण्डुषु, उपधानेषु ये तान् । **सर्वान्** । निःशेषान् । **शलुनान्** । **कृवृदारिभ्य उनन्** (उ० ३ । ५३) इति शल वेगे–उनन् । शीघ्रगतीन् । **क्रिमीन्** । म० १ । कीटान् । **वचसा** । वच परिभाषणे–असुन् । वचनेन । कथनेन । वचनमात्रेण, अतिशीघ्रम् । औषधिशौचादि–हितकथनेन–ओ३म्, गायत्र्यादिजपेन–रोचककथा–निद्रागीतादिवर्णनेन–इत्येवमर्थाः । **जम्भयामसि** । जभि नाशे, नाशने च । **रधिजभोरचि** (पा० ७ । १ । ६१) इति नुम् । जम्भयामः । नाशयामः ॥

३—**अलगण्डून्** । म० २ । उपधानेषु पूर्णान् । **हन्मि** । नष्टीकरोमि । **महता** । अ० १ । १० । ४ । प्रभूतेन । **वधेन** । **हनश्च वधः** (पा० ३ । ३ । ७६) इति हन–अप् वधादेशः । हननसाधनेन । प्रहारेण । **दूनाः** । **ल्वादिभ्यः**

---

१. 'बाहुलकात् गण्डति स गण्डुः वदनैकदेशः' ऐसा उणादिव्याख्या में स्वामी जी ने लिखा है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुये और (अदूनाः) बिना तपे हुए [पक्के और कच्चे कीड़े] (अरसाः) नीरस [निर्बल] (अभूवन्) हो गये हैं । (शिष्टान्) बचे हुये (अशिष्टान्) दुष्टों को (वाचा) वचन से (नि) नीचे डाल कर (तिरामि) मार डालूँ, यथा) जिससे (क्रिमीणाम्) कीड़ों में से (नकिः) कोई भी न (उच्छिषातै) बचा रहे ॥ ३ ॥

भावार्थः—मन्त्र १, और २ के समान ॥ ३ ॥

अन्वान्त्र्यं शीर्षण्यं १ मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन् ।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥ ४ ॥

अनुऽआन्त्र्यम् । शीर्षण्यम् । अथो इति । पार्ष्टेयम् । क्रिमीन् । अवस्कवम् । विऽअध्वरम् । क्रिमीन् । वचसा । जम्भयामसि ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अन्वान्त्र्यम्) आंतों में के (शीर्षण्यम्) शिर पर वा शिर में के (अथो = अथ-उ) और भी (पार्ष्टेयम्) पसलियों में के (क्रिमीन्) इन सब कीड़ों को, (अवस्कवम्) नीचे २ रेंगने वाले [जैसे दद्रु क्रिमि] और

(पा० ८ । २ । ४४) अत्र वार्त्तिकम् । **दुग्वोर्दीर्घश्च** इति दु गतौ-क्तस्य च नः । अथवा दूङ्[1] परितापे क्तः । **ओदितश्च** (पा० ८ । २ । ४५) तस्य नः । खेदिताः । परितप्ताः । **अदूनाः** । अखेदिताः । अतप्ताः । **अरसाः** । शुष्काः । निर्बलाः । **शिष्टान्** । शिष असर्वोपयोगे-क्तः । अवशिष्टान् । शेषान् । **अशिष्टान्** । शासु अनुशिष्टौ-क्तः । **शास इदङ्हलोः** (पा० ६।४।३४) इति इकारः । **शासिवसिघसीनाम् च** (पा० ८ । ३ । ६०) इति सस्य षः । शिष्टविरोधिनः । दुष्टान् । **नि+तिरामि** । निपूर्वस्तिरतिर्हिंसने । निहन्मि । **वाचा** । वचसा म० २ । **क्रिमीणाम्** । कीटानां मध्ये । **नकिः** । न कश्चिदपि । **उच्छिषातै** । शिष्लृ विशेषणे लेटि आडागमः । छन्दसि आत्मनेपदम् । टेरेत्वे कृते । **वैतोऽन्यत्र** (पा० ३ । ४ । ९६) इति ऐत्वम् । उच्छिष्यात् ॥

४—**अन्वान्त्र्यम् । अस्जिगमिनमिहनिविश्यशां वृद्धिश्च** (उ० ४ । १६०) इति अम गतौ, यद्वा, अति बन्धने -ष्ट्रन्, धातोर्वृद्धिश्च । अन्त्यते बध्यते देहोऽ—

---

१. स्वादय ओदिताः (धा. पा. दिवा. पृ. ३१) इस धातु पाठ के वचन से पूङ् प्राणिप्रसवे से लेकर व्रीङ् वृणोत्यर्थे पर्यन्त धातुएं ओदित् मानी गई हैं, अतः ओदितश्च से क्त के त को न हो गया ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(व्यध्वरम्) छेद करने वाले वा पीड़ा देने वाले, वा यज्ञ के विरोधी (क्रिमीन्) इन सब कीड़ों को (वचसा) बात मात्र से (जम्भयामसि = ०–मः) हम नाश करें ॥ ४ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ और २ के समान है ॥ ४ ॥

सायणभाष्य में 'पार्ष्टेयम्' के स्थान पर 'पार्ष्णेयम् है ॥

ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्व १ न्तः ।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् ॥ ५ ॥

ये । क्रिमयः । पर्वतेषु । वनेषु । ओषधीषु । पशुषु । अप्सु । अन्तः । ये । अस्माकम् । तन्वम् । आऽविविशुः । सर्वम् । तत् । हन्मि । जनिम । क्रिमीणाम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(ये) जो (क्रिमयः) कीड़े (पर्वतेषु) पहाड़ों में, (वनेषु)

नेनेति आन्त्रं देहबन्धको नाडीभेदः । **शरीरावयवाच्च** (पा० ४ । ३ । ५५) इति भवे यत् । अनुक्रमेण आन्त्रेषु भवम् । **शीर्षण्यम् । शरीरावयवाच्च** (पा० ४ । ३ । ५५) इति शिरस्–यत् । **ये च तद्धिते** (पा० ६ । १ । ६१) इति शीर्षन् आदेशः । शिरसि भवम् । **पार्ष्टेयम् । क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्** (पा० ३ । ३ । १७४) इति पृषु सेचने–क्तिच् । इति पृष्टिः–अ० २ । ७ । ५ । ततो ढञ् । **आयनेयीनीयियः०** (पा० ७। १। २) इति ढस्य एयादेशः । पृष्टिषु पार्श्वावयवेषु भवम् । **अवस्कवम् ।** अव + स्कुञ् आप्रवणे "कूदना"–पचाद्यच् । अवाग्गमनस्वभावम् । अन्तरन्तः प्रविश्य वर्त्तमानम् । **व्यध्वरम् । १–उपसर्गादध्वनः** (पा० ५ । ४ । ८५) इति वि + अध्वन्—अच्प्रत्ययः, प्रादिसमासः । रो मत्वर्थीयः । विरुद्धमार्गयुक्तम् । कुपथगामिनम् । **२–स्थेशभासपिसकसो वरच्** (पा० ३ । २ । १७५) इति व्यध ताडने–वरच् । **चितः** (पा० ६ । १ । १६३) इति चिति प्रत्यये अन्त उदात्तः । व्याधम् । ताडकम् । पीडकम् । अथवा । ३–ध्वरति = हन्ति–द्र० निघ० ३ । १७ । **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** (पा० ३ । ३ । ११८) इति घः । वि विरोधे + अध्वरा, अहिंसा । अहिंसाविरोधिनम् । हिंसावर्धकम् । शरीरमांसभक्षकम् । अयं शब्दः सर्वत्रान्तोदात्तः । अन्यद् व्याख्यातम्, म० २ ॥

५–क्रिमयः । म० १ । क्षुद्रजन्तवः । **पर्वतेषु । भृमृदृशियजिपर्वि०**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनों में (ओषधीषु) अन्न आदि ओषधियों में, (पशुषु) गौ आदि पशुओं में और (अप्सु) जल के (अन्तः) भीतर हैं। और (ये) जो (अस्माकम्) हमारे (तन्वम्) शरीर में (आविविशुः) प्रविष्ट हो गये हैं, (क्रिमीणाम्) क्रिमियों के (तत्) उस (सर्वम्)सब (जनिम) जन्म को (हन्मि) मैं नाश करूँ ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि सब स्थानों, सब वस्तुओं और अपने शरीरों को शुद्ध रक्खें कि छोटे बड़े कोई अन्य क्लेश न देवें, ऐसे ही सब पुरुष आत्म शुद्धि करके अपने भीतरी बाहिरी, छोटे बड़े दोषों को मिटाकर आनन्द से रहें ॥ ५ ॥

सायणभाष्य में (ये) के स्थान में [ते] और (तन्वम्) के स्थान में [तन्वः] है ॥

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ३२ ॥

१—६ ॥ आदित्यो देवता । १--गायत्री, २—६ अनुष्टुप् छन्दः ॥

क्रिमितुल्यान् दोषान् नाशयेत्, इत्युपदेशः—कीड़ों के समान दोषों का नाश करे, इसका उपदेश ॥

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः ।
ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥ १ ॥

(उ० ३ । ११०) इति पर्व पूरणे—अतच् । पर्वति पूरयति भूमिमिति । शैलेषु । **वनेषु । पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** पा० ३ । ३ । ११८) इति वन सम्भक्तौ—घः । वन्यते सेव्यते वृक्षैः । बहुवृक्षयुक्तस्थानेषु । अरण्येषु । **ओषधीषु । पशुषु । अप्सु । अन्तः** । व्याख्यातानि—अ० १ । ३० । ३ । **ओषधीषु** । धान्यादिषु । **पशुषु** । गवादिषु । सर्वजीवेषु । **अप्सु** । जलेषु । **अन्तः** । मध्ये । **तन्वम्** । अ० १ । १ । १ । शरीरम् । **आ-विविशुः** । विश प्रवेशने—लिट् । प्रविष्टाः । **सर्वम्** । प्रत्येकम् । **तत्** । पूर्वोक्तम् । **हन्मि** । नाशयामि । **जनिम** । अ० १ । ८ । ४ । उत्पत्तिकारणम् । **क्रिमीणाम्** । कृमीणाम् । कीटानाम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्ऽयन् । आदित्यः । क्रिमीन् । हन्तु । निऽम्रोचन् । हन्तु । रश्मिऽभिः । ये । अन्तः । क्रिमयः । गवि ॥ १ ॥

भाषार्थः—(उद्यन्) उदय होता हुआ (आदित्यः) प्रकाशमान सूर्य (क्रिमीन्) उन कीड़ों को (हन्तु) मारे और (निम्रोचन्) अस्त हुआ [भी सूर्य] (रश्मिभिः) अपनी किरणों से (हन्तु) मारे, (ये) जो (क्रिमयः) कीड़े (गवि) पृथिवी के (अन्तः) भीतर हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—(१) प्रातःकाल और सायंकाल में सूर्य की कोमल किरणों और शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु के सेवन से शारीरिक रोग के कीड़ों का नाश होकर मन हृष्ट और शरीर पुष्ट होता है ॥ १ ॥

(२) उदय और अस्त होते हुये सूर्य के समान मनुष्य बालपन से बुढ़ापे तक अपने दोषों का नाश करके सदा प्रसन्न रहे ॥

टिप्पणी—इस सूक्त और ३३वें सूक्त का मिलान अथर्व० का० ५ सू० २३ से करें ॥

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥ २ ॥

१—**उद्यन्** । उत्+इण् गतौ—शतृ । उदयं प्राप्नुवन् । **आदित्यः** । द्र० अ० १ । ९ । १ । आङ्+दीपी दीप्तौ—यक्प्रत्ययान्तो निपातितः । आदीप्यमानः सूर्यः । **क्रिमीन्** । अ० २ । ३१ । १ । क्षुद्रजन्तून् । **हन्तु** । नाशयतु । **निम्रोचन्** । नि+म्रुचु गतौ—शतृ । अस्तं गच्छन् । **रश्मिभिः** । **अश्नोतेरशच्** (उ० ४ । ४६) इति अशूङ् व्याप्तौ—मिधातोरशादेशश्च । किरणैः । **अन्तः** । मध्ये । **क्रिमयः** । क्रमणशीलाः क्षुद्रजन्तवः । **गवि** । **गमेर्डोः** (उ० २ । ६७) इति गम्लृ गतौ-डोः । गौरिति पृथिव्या नामधेयं यद् दूरङ्गता भवति यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति, गातेर्वौकारो नामकरणः—निरु० २ । ५ । पृथिवी इन्द्रियो वा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि॒श्वऽरू॑पम् । च॒तुः॒ऽअ॒क्षम् । क्रिमि॑म् । सा॒रङ्ग॑म् । अर्जु॑नम् । शृ॒णामि॑ । अ॒स्य॒ । पृ॒ष्टीः । अपि॑ । वृ॒श्चा॒मि॒ । यत् । शिरः॑ ॥ २ ॥

भाषार्थः—(विश्वरूपम्) नाना आकार वाले (चतुरक्षम्) [चार दिशाओं में] नेत्र वाले, (सारङ्गम्) रींगने वाले [वा चितकबरे] और (अर्जुनम्) संचयशील [वा श्वेत वर्ण] (क्रिमिम्) कीड़े को (शृणामि) मैं मारता हूँ, (अस्य) इसकी (पृष्टीः) पसलियों को (अपि) भी, और(यत्) जो (शिरः) शिर है [उसको भी] (वृश्चामि) तोड़ डालता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थः—पृथिवी और अन्तरिक्ष के नाना आकार और नाना वर्ण वाले मकड़ी मक्खी आदि क्षुद्र जन्तुओं को शुद्धि आदि द्वारा पृथक् रखने से शरीर स्वस्थ रहता है, इसी प्रकार आत्मिक दोषों की निवृत्ति से आत्मिक शान्ति होती है ॥ २ ॥

टिप्पणी—'चतुरक्ष' = चार आंख वाला ऐसा प्रयोग वेद में अन्यत्र भी आया है, वहाँ भी चारों दिशाओं का ही ग्रहण है। देखिये—

क॒श्यप॑स्य॒ चक्षु॑रसि श॒न्याश्च॑ चतुर॒क्ष्याः ॥ अ० ४।२०।७ ॥

तू (कश्यपस्य) सूर्य की और (चतुरक्ष्याः) चार आंख वाली (शुन्याः) व्याप्ति वाली दिशा की (चक्षुः) आंख है। ऋ० १०। १४। १०, ११ भी यहाँ देखिए ॥

अ॒त्त्रि॒वद् वः॑ क्रिमयो हन्मि कण्व॒वज्ज॑मदग्नि॒वत् ।
अ॒गस्त्य॑स्य॒ ब्रह्म॑णा॒ सं पि॑नष्म्य॒हं क्रिमी॑न् ॥ ३ ॥

२—**विश्वरूपम्** । नानाकारम् । **चतुरक्षम्** । बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् (पा० ५। ४। ११३) इति षच्। चतुर्नेत्रम्। चतुर्दिक्षु नेत्रयुक्तम्। **सारङ्गम्** । **सृवृञोर्वृद्धिश्च** (उ० १। १२२) इति सृ गतौ—अङ्गच्, धातोर्वृद्धिश्च । शरणशीलम् । शबलवर्णम् । **अर्जुनम्** । **अर्जेर्णिलुक् च** (उ० ३। ५८) इति अर्ज अर्जने-उनन् । संचयशीलम् । श्वेतवर्णम् । **शृणामि** । शॄ हिंसायाम् । हन्मि । **पृष्टीः** । अ० २।७।५। पार्श्वस्थीनि । **वृश्चामि** । छिनद्मि । **शिरः** । अ० २। २५। २। मस्तकम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्त्रिऽवत् । वः । क्रिमयः । हन्मि । कण्वऽवत् । जमदग्निऽवत् । अगस्त्यस्य । ब्रह्मणा । सम् । पिनष्मि । अहम् । क्रिमीन् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(क्रिमयः) हे कीड़ों ! (वः) तुमको (अत्त्रिवत्) दोष भक्षक, वा गतिशील, मुनि के समान (कण्ववत्) स्तुति योग्य मेधावी पुरुष के समान, (जमदग्निवत्) आहुति खाने वाले अथवा प्रज्वलित अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष के समान, (हन्मि) मैं मारता हूँ । (अगस्त्यस्य) कुटिल गति पाप के छेदने में समर्थ परमेश्वर के (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से (अहम्) मैं (क्रिमीन्) कीड़ों को (सम् पिनष्मि) पीसे डालता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्य को ऋषि, मुनि, धर्मात्माओं के अनुकरण से वेद ज्ञान प्राप्त करके पाप का नाश करना चाहिये ॥ ३ ॥

मन्त्र ३-५ अथर्ववेद का० ५ सू० २३ मन्त्र १०—१२ में भी हैं ॥

३—**अत्त्रिवत्** । **अदेस्त्रिनिश्च** (उ० ४ । ६८) इति अद भक्षणे अत सातत्यगमने वा—त्रिप् । अत्ति दोषान् भक्षयति, नाशयतीति अततीति वा अत्रिः । मुनिः । अथवा । रसान् अत्तीति सूर्यः । तत्सदृशः । **वः** । युष्मान् । **क्रिमयः** । हे क्षुद्रजन्तवः । **हन्मि** । नाशयामि । **कण्ववत्** । अ० २ । २५ । ३ । **अशूप्रुषिलटिकणि०** (उ० १ । १५१) इति कण शब्दे, निमीलने—कन् । कणति उपदेशशब्दं करोति, कण्यते स्तूयते वा । निमीलयति परान् वा स्वतेजसा । मेधाविवत्—निघ० ३ । १५ । **जमदग्निवत्** । जमु अदने, दीप्तौ च—शतृ, + अग्नि—वतुप् । जमदग्नयः प्रजमिताग्नयो वा प्रज्वलिताग्नयो वा—निरु० ७ । २४ । जमन् हुतभक्षणशीलः, अथवा प्रज्वलितोऽग्निरिव तेजो येषां ते जमदग्नयः । तत्सदृशः । **अगस्त्यस्य** । अग कुटिलायां गतौ—अच् । ततः **वसेस्तिः** (उ० ४ । १८०) इति अग + असु क्षेपणे—भावे तिप्रत्यय । **तत्र साधुः** (पा० ४ । ४ । ९८) इति यत् । पृषोदरादित्वात् दीर्घाभावः । अगस्य कुटिलगतेः पापस्य असने उत्पाटने समर्थस्य परमेश्वरस्य । **ब्रह्मणा** । अ० १ । ८ । ४ । वेदज्ञानेन । **सम् + पिनष्मि** । अ० २ । ३१ । १ । संचूर्णयामि । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥ ४ ॥

हतः । राजा । क्रिमीणाम् । उत । एषाम् । स्थपतिः । हतः ।
हतः । हतऽमाता । क्रिमिः । हतऽभ्राता । हतऽस्वसा ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(एषाम्) इन (क्रिमीणाम्) कीड़ों का (राजा) राजा (हतः) नष्ट होवे, (उत) और (स्थपतिः) द्वार पाल (हतः) नष्ट होवे। (हतमाता) जिसकी माता नष्ट हो चुकी है, (हतभ्राता) जिसका भ्राता नष्ट हो चुका है और (हतस्वसा) जिसकी बहिन नष्ट हो चुकी है, (क्रिमिः) वह चढ़ाई करने वाला कीड़ा (हतः) मार डाला जावे ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य अपने दोषों और उनके कारणों को उचित प्रकार से समझकर नष्ट करे, जैसे वैद्य दोषों के प्रधान और गौण कारणों को समझ कर रोग निवृत्ति करता है ॥ ४ ॥

हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥ ५ ॥

४—हतः । नाशितः । **राजा** । द्र० अ० १ । १० । १ । अधिपतिः । **उत** । अपि च । **एषाम्** । उपस्थितानाम् । **स्थपतिः** । ष्ठा-कः । स्थः स्थानम् । **अमेरतिः** (उ० ४।५९) इति बाहुलकात् पा रक्षणे-अतिः । अथवा, ण्यन्तात् स्थाधातोः पुकि-अतिप्रत्यये ह्रस्वः । स्थं स्थानं पाति, अथवा पुरुषान् स्थापयतीति स्थपतिः कञ्चुकी, द्वारपालः । **हतमाता** । हता माता यस्य । **नद्यृतश्च** (पा० ५ । ४ । १५३) इति बहुव्रीहौ नित्यं प्राप्तस्य कपः **ऋतश्छन्दसि** (पा० ५ । ४ । १५८) इति प्रतिषेधः । नष्टमातृकः । **हतभ्राता** । पूर्ववत् कपः प्रतिषेधः । नष्टभ्रातृकः । **हतस्वसा** । पूर्ववत् सिद्धिः । हतस्वसृकः । नष्टभगिनीकः । **अन्यद् गतम्** ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हतासः । अस्य । वेशसः । हतासः । परिऽवेशसः । अथो इति । ये । क्षुल्लकाःऽइव । सर्वे । ते । क्रिमयः । हताः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [क्रिमि] के (वेशसः) मुख्य सेवक (हतासः = हताः) नष्ट हों, और (परिवेशसः) साथी भी (हतासः) नष्ट हों, (अथो = अथ-उ) और भी (ये) जो (क्षुल्लकाः इव) बहुत सूक्ष्म आकार वाले से हैं (ते) वे (सर्वे) सब (क्रिमयः) कीड़े (हताः) नष्ट हों ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्य अपनी स्थूल और सूक्ष्म कुवासनाओं का और उनकी सामग्री का सर्वनाश कर दे, जैसे रोग जनक जन्तुओं को औषध आदि से नष्ट करते हैं ॥ ५ ॥

प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि ।
भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥ ६ ॥

प्र । ते । शृणामि । शृङ्गे इति । याभ्याम् । विऽतुदायसि । भिनद्मि । ते । कुषुम्भम् । यः । ते । विषऽधानः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (शृङ्गे) दो सींगों को (प्र+शृणामि) मैं तोड़े डालता हूँ, (याभ्याम्) जिन दोनों से (वितुदायसि) तू सब ओर टक्कर मारता है । (ते) तेरे (कुषुम्भम्) जल पात्र को (भिनद्मि) तोड़ता हूँ (यः) जो (ते) तेरे (विषधानः) विष की थैली है ॥ ६ ॥

५—**हतासः** । असुक् आगमः । हताः । **वेशसः** । **मिथुनेऽसिः** (उ० ४ । २२३) इति बाहुलकाद् अमिथुनेऽपि । विश-असिप्रत्ययः । प्रवेशकाः । मुख्यसेवकाः । **परिवेशसः** । परितः स्थिताः । अनुचराः । **अथो** । अपि च । **क्षुल्लकाः** । [1]क्षुद्+लकाः । क्षुदिर संप्रेषणे-क्विप्+लक आस्वादने, प्राप्तौ-अच् । **तोलिं** (पा० ८ । ४ । ६०) इति परसवर्णः । क्षुदं क्षुद्रत्वं लाकयन्ति प्राप्नुवन्ति ते क्षुल्लकाः[1] । सूक्ष्माकाराः क्षुद्रजन्तवः । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

६—**ते** । तव । **शृणामि** । भिनद्मि । **शृंगे** । **शृणातेर्ह्रस्वश्च** (उ० १ । १२६) इति शृ हिंसायाम्-गन् प्रत्ययः, धातोर्ह्रस्वत्वं कित्वं नुट् चागमः । शृङ्गं श्रय-

---

१. 'क्षुदं लाति गृह्णातीति क्षुल्लः ततः ह्रस्वार्थे कप्रत्ययः' यह व्युत्पत्ति लक धातु की कल्पना की अपेक्षा अधिक ठीक है । लक धातु काशकृत्स्न धातुपाठ में ही केवल पठित है । द्र० क्षीर० की टिप्पणी पृ० २०६ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः---जैसे दुष्ट वृषभ अपने सींगों से अन्य जीवों को सताता है, इसी प्रकार जो क्षुद्र क्रिमियों के समान आत्मदोष दिन रात कष्ट देते हैं, उनको और उनके कारणों को खोजकर नष्ट करना चाहिये ॥ ६ ॥

'कुषुम्भम्' के स्थान पर सायण भाष्य में 'षुकम्भम्' पद० है ॥

सूक्तम् ३३ ॥

१-७ ॥ **आत्मा देवता । १-६ अनुष्टुप्, ७ पङ्क्तिः ॥**

शारीरिकविषये शरीररक्षा—शारीरिक विषय में शरीररक्षा ॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्ष॒ण्यं॑ मस्तिष्काज्जिह्वाया॒ वि वृ॑हामि ते ॥१॥

अक्षीभ्याम् । ते । नासिकाभ्याम् । कर्णाभ्याम् । छुबुकात् । अधि । यक्ष्मम् । शीर्षण्यम् । मस्तिष्कात् । जिह्वायाः । वि । वृहामि । ते ॥ १ ॥

भाषार्थः—[हे प्राणी] (ते) तेरी (अक्षीभ्याम्) दोनों आंखों से, (नासिकाभ्याम्) दोनों नथुनों से (कर्णाभ्याम्) दोनों कानों से, (छुबुकात् = चुबकात् अधि) ठोड़ी में से, ते) तेरे (मस्तिष्कात्) भेजे से, और (जिह्वायाः)

तेर्वा शृणातेर्वा शम्नातेर्वा शरणायोद्गतमिति वा शिरसो निर्गतमिति वा—निरु० २ । ७ । द्वे विषाणे । **वि-तुदायसि** । तुद व्यथने—शस्य शायजादेशः । विशेषेण तुदसि । व्यथयसे । **भिनद्मि** । भिदिर् विदारणे । विदारयामि । **कुषुम्भम्** । [1]**कुसेरुम्भोमेदेताः** (उ० ४ । १०६) इति कुष निष्कर्षे, कुस संश्लेषणे वा—उम्भप्रत्ययः । सकारषकारयोरेकत्वम् । कुसुम्भः = कमण्डलुः, जलपात्रम् । शरीरे जलनाडीविशेषम् । **विषधानः । करणाधिकरणयोश्च ।** (पा० ३ । ३ । ११७) इति विष + डुधाञ् धारणपोषणयोः—अधिकरणे ल्युट् । विषं धीयतेऽत्र । विषस्थानम् ।

१—अक्षीभ्याम् । ई च द्विवचने (पा० ७ । १ । ७७) इति अक्षि शब्दस्य ईकारादेशः । स चोदात्तः । चक्षुर्भ्याम् । **ते** । तव । **नासिकाभ्याम्** ।

---

१. कु उपपद रहते षुन्भ धातु (द्र० मा० धा० पृ० १२५, गुप्तस्तु मूर्धन्यादित्वमाह) से अच् करके 'कुषुम्भ' शब्द बन जायेगा । रलयोरभेदः या सकारषकारयोरभेदः आदि नवीन वैयाकरणों के सिद्धान्त अनार्ष हैं । द्र० म० भा० पृ० ७८ शशः षष इति माभूत् ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिह्वा से (शीर्षण्यम्) शिर में के (यक्ष्मम्) क्षयी [छयी] रोग को (वि वृहामि) मैं उखाड़े देता हूं ।। १ ।।

भावार्थः—(१) इस मन्त्र में शिर के अवयवों का वर्णन है । जैसे सद्वैद्य उत्तम औषधों से रोगों की निवृत्ति करता है, ऐसे ही मनुष्य अपने आत्मिक और शारीरिक दोषों को विचार पूर्वक नाश करे ।। १ ।।

(२) सायणभाष्य में 'छुबुकात्' के स्थान में 'चुबुकात्' है, और ऋग्वेद में भी (छुबुकात्) पाठ है ।

(३) इस सूक्त के ७ मन्त्रों के स्थान में ऋग्वेद म० १० सू० १६३ में ६ मन्त्र हैं । मन्त्र ३ का पहिला आधा 'हृदयात् ते परि...' और म० ४ का दूसरा आधा 'यक्ष्मं कुक्षिभ्यां ..' ऋग्वेद में नहीं है, शेष मन्त्र कुछ भेद से हैं । ऋग्वेद में इस सूक्त के ऋषि विवृहा काश्यप हैं ।।

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य१ मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ २ ॥

ण्वुल्तृचौ (पा० ३ । १ । १३३) इति णस कौटिल्ये–ण्वुल् । टापि अत इत्त्वम् । घ्राणछिद्राभ्याम् । **कर्णाभ्याम्** । कृवृजॄसि० (उ० ३ । १०) इति कॄ विक्षेपे =नन् । कीर्यते विक्षिप्यते शब्दो वायुना यत्र । श्रवणाभ्याम् । **छुबुकात्** । **वलेरूकः** (उ० ४ । ४०) इति छुप स्पर्शे–उक प्रत्ययो बाहुलकात्, पस्य च बः । ओष्ठाधोभागात् । चिबुकात् । **अधि** । पञ्चम्यर्थानुयायी । सर्वथा । **यक्ष्मम्** । अ० २ । १० । ५ । राजरोगम् । क्षयरोगम् । **शीर्षण्यम्** । **शरीरावयवाच्च** (पा० ४ । ३ । ५५) इति शिरस्–यत् । **ये च तद्धिते** (पा० ६।१।६१) इति शिरसः शीर्षन् आदेशः । **ये चाभावकर्मणोः** (पा० ६ । ४ । १६८) इति प्रकृतिभावः । शिरसि भवम् । **मस्तिष्कात्** । [1]मस्त + इष गतौ–कः, पृषोदरादित्वात् साधुः । मस्तं मस्तकम् इष्यति स्वाधारत्वेन प्राप्नोतीति । मस्तकस्थं घृताकारस्नेहम् । मस्तकस्नेहम् । **जिह्वायाः** । अ० १ । १० । ३ । रसनायाः सकाशात् । **वि+वृहामि**–वृहू उद्यमने = उद्धरामि । पृथक्करोमि ।।

१. मसी क्तः = मस्तम् = माथा ।। सम्पा० ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रीवाभ्यः । ते । उष्णिहाभ्यः । कीकसाभ्यः । अनूक्यात् । यक्ष्मम् । दोषण्यम् । अंसाभ्याम् । बाहुऽभ्याम् । वि । वृहामि । ते ॥ २ ॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (ग्रीवाभ्यः) गले की नाड़ियों से, (उष्णिहाभ्यः) गुद्दी की नाड़ियों से, (कीकसाभ्यः) हँसली की हड्डियों से, (अनूक्यात्) रीढ़ से और (ते) तेरे (अंसाभ्याम्) दोनों कन्धों से और तेरे (बाहुभ्याम्) दोनों भुजाओं से (दोषण्यम्) मुड्ढे वा बक्खे के (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामि) मैं उखाड़े देता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में ग्रीवा के अवयवों का वर्णन है। भावार्थ म० १ के समान है ॥ २ ॥

२—**ग्रीवाभ्यः**। **शेवायह्वजिह्वाग्रीवाऽप्वामीवाः** (उ० १।१५४) इति गॄ निगरणे—वन्, धातोर्ग्रीभावः, टाप्। निगलति यया। कन्धरावयवेभ्यः। **उष्णिहाभ्यः**। **ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च** (पा० ३।२।५९) इति उत्+ष्णिह प्रीतौ, स्नेहने—क्विन्, तलोपः षत्वं च, टाप्। उष्णिगेव उष्णिहा। उष्णिगुत्स्नाता भवति स्निह्यतेर्वा स्यात् कान्तिकर्मणः। नि० ७।१२। ऊर्ध्वं स्निग्धाभ्यः, रक्तादिना उत्स्नाताभ्यो वा नाडीभ्यः। **कीकसाभ्यः**। **अत्यविचमि०** (उ० ३।११७) इति ककि गतौ-असच्, धातोः कीकादेशः। यद्वा। की कुत्सितेन रक्तादिना देहाभ्यन्तरे कसति उत्पद्यते। की+कस गतौ-अच्, टाप्। जत्रुवक्षोगतास्थिभ्यः। **अनूक्यात्**। **कृत्यल्युटो बहुलम्** (पा० ३।३।११३) इति अनु+उच समवाये अधिकरणे ण्यत्। **न्यङ्क्वादीनां च** (पा० ७।३।५३) इति कुत्वम्। **तित् स्वरितम्** (पा० ६।१।१८५) इति स्वरितः। अनु-क्रमेण उच्यन्ति समवयन्ति अस्थीनि यत्र। पृष्ठास्थिसकाशात्। **यक्ष्मम्**। अ० २।१०।५। राजरोगम्। क्षयरोगम्। **दोषण्यम्**। **भवे छन्दसि** (पा० ४।४।११०) इति दोस्—यत्। **पदन्नो०** (पा० ६।१।६३) इति दोषन् आदेशः दोष्णोः, भुजदण्डयोर्भवम्। **अंसाभ्याम्**। **अमेः सन्** (उ० ५।२१) इति अम गतौ—सन्। स्कन्धाभ्याम्। **बाहुभ्याम्**। अ० २।२७।३। भुजाभ्याम्। **वि+वृहामि**। म० १। उन्मूलयामि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृद॑यात् ते॒ परि॑ क्लो॒म्नो हली॑क्ष्णात् पा॒र्श्वाभ्या॑म् ।
यक्ष्मं॒ मत॑स्नाभ्यां प्ली॒ह्नो य॒कन॑स्ते॒ वि वृ॑हामसि ॥ ३ ॥

हृद॑यात् । ते॒ । परि॑ । क्लो॒म्नः । हली॑क्ष्णात् । पा॒र्श्वाभ्या॑म् ।
यक्ष्मं॑म् । मत॑स्नाभ्याम् । प्ली॒ह्नः । य॒कृ॑नः । ते॒ । वि । वृ॒हा॒म॒सि॒ ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (हृदयात्) हृदय से, (क्लोम्नः) फेफड़े से, (हलीक्ष्णात्) पित्ते से, (पार्श्वाभ्याम् परि) दोनों कांखों [कक्षाओं वा बगलों] से और (ते) तेरे (मतस्नाभ्याम्) दोनों मतस्नों [गुर्दों] से, (प्लीह्नः) प्लीहा, वा पिलई [तिल्ली] से, और (यकृनः) यकृत् [काल खण्ड वा जिगर] से (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामसि = ०—मः) हम उखाड़े देते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कन्धों के नीचे के अवयवों का वर्णन है। भावार्थ मन्त्र १ के समान है ॥ ३ ॥

३—**हृदयात्** । अ० २ । २९ । ६ । वक्षःस्थमांसपिण्डात् । हृदयलक्षणं, यथा । शोणितकफप्रसादजं हृदयं तदाश्रया हि धमन्यः प्राणवहाः । तस्याधोवामतः प्लीहा फुस्फुसश्च दक्षिणतो यकृत् क्लोम च । इति शब्दकल्पद्रुमे सुश्रुतात् । **क्लोम्नः** । क्लुङ् गतौ-मनिन् । फुप्फुसात् । बाह्वोर्द्वयोर्मध्ये वक्षः, तन्मध्ये हृदयं तत्पार्श्वे क्लोम पिपासास्थानम् । इति श० क० द्रुमे । **हलीक्ष्णात्** । **अवितृस्तृतन्त्रिभ्य ईः** (उ० ३ । १५८) इति हल विलेखने-ईः । क्ष्णु तेजने-डः । हलीं विलेखं क्ष्णौति तेजतीति । मांसपिण्डविशेषात् पित्तात् । **पार्श्वाभ्याम्** । **स्पृशेः श्वण्शुनौ पृ च** (उ० ५ । २७) इति स्पृश-श्वण्, पृ आदेशश्च । कक्षयारधोभागाभ्याम् । **मतस्नाभ्याम्** । मत+ष्णिह स्नेहने डः । मतं ज्ञानं स्नेहयतीति मतस्नम् । उभयपार्श्वसंबन्धाभ्यां वृक्याभ्यां तत्समीपस्थपित्ताधारपात्राभ्यां वा—इति सायणः । ग्रीवाधस्ताद् भागस्थितहृदयोभयपार्श्वस्थे अस्थिनी मतस्ने ताभ्याम् इति महीधरः शुक्लयजु० २५ । ८ । **प्लीह्नः** । **श्वनुक्षन्पूषन्प्लीहन्०** (उ० १ । १५९) इति प्लिह गतौ-कनिन् । कुक्षिवामपार्श्वस्थमांसखण्डात् । **यकृनः** । **शकेर्ऋतिन्** (उ० ४ । ५८) इति बाहुलकात् यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु-ऋतिन् । जस्य कः । यजति संगच्छते इति यकृत् । **पद्दन्नो०** (पा० ६ । १ । ६३) इति यकन् आदेशः । कुक्षेर्दक्षिणभागस्थमांसखण्डात् । कालखण्डात् । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥ ४ ॥

आन्त्रेभ्यः । ते । गुदाभ्यः । वनिष्ठोः । उदरात् । अधि ।
यक्ष्मम् । कुक्षिऽभ्याम् । प्लाशेः । नाभ्याः । वि । वृहामि । ते ॥४॥

भाषार्थः—(ते) तेरी (आन्त्रेभ्यः) आंतों से, (गुदाभ्यः) गुदा की नाड़ियों से, (वनिष्ठोः) वनिष्ठु [भीतरी मलस्थान] से, (उदरात् अधि) उदर में से, और (ते) तेरी (कुक्षिभ्याम्) दोनों कोखों से, (प्लाशेः) कोख में की थैली से, और (नाभ्याः) नाभि से (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामि) मैं उखाड़े देता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उदर के अवयवों का वर्णन है। भावार्थ मन्त्र १ के समान है ॥ ४ ॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भस्द्यं१ श्रोणिभ्यां भासदं भंसस्तो वि वृहामि ते ॥५॥

४—**आन्त्रेभ्यः** । अ० १ । ३ । ६ । **भ्रस्जिगमिनमि०** (उ० ४ । १६०) इति अति बन्धने—ष्ट्रन् । उदरनाडीविशेषेभ्यः । पुरीतद्भ्यः । **गुदाभ्यः** । **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** (पा० ३ । १ । १३५) इति गुद क्रीडायाम्—कः । टाप् । गोदते क्रीडति चलति अपानवायुर्यया । मलत्यागनाडीभ्यः । **वनिष्ठोः** । वन संभक्तौ—औणादिक इष्ठुप्प्रत्ययः । स्थूलान्त्रात् । **उदरात्** । **उदि दृणातेरलचौ पूर्वपदान्त्यलोपश्च** (उ० ५ । १९) इति उद् + दृ विदारणे—अच् । उपसर्गस्य दलोपः । नाभिस्तनयोर्मध्यभागात् । जठरात् । **कुक्षिभ्याम्** । **प्लुषिकुषिशुषिभ्यः क्सिः** (उ० ३ । १५५) इति कुष निष्कर्षे—क्सिः । दक्षिणोत्तरोदरभागाभ्याम् । **प्लाशेः** । **वसिवपियजि०** (उ० ४।१२५) इति प्र + अशूङ् व्याप्तौ—इञ्, रस्य लः । बहुच्छिद्रात् मलपात्रात्—इति सायणः [Mesentery—Griffith.] । शिश्नात्, यथा महीधरः—यजु० १९ । ८७ । कुक्षिस्थनाडीविशेषात् । **नाभ्याः** । अ० १ । १३ । ३ । उदरावर्तात् । नाभिमण्डलात् । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊरुऽभ्याम् । ते । अष्ठीवत्ऽभ्याम् । पार्ष्णिऽभ्याम् । प्रऽपदाभ्याम् । यक्ष्मम् । भसद्यम् । श्रोणिऽभ्याम् । भासदम् । भंससः । वि । वृहामि । ते ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (ऊरुभ्याम्) दोनों जंघाओं से, (अष्ठीवद्भ्याम्) दोनों घुटनों से, (पार्ष्णिभ्याम्) दोनों एड़ियों से, (प्रपदाभ्याम्) दोनों पैरों के पंजों से और (ते) तेरे (श्रोणिभ्याम्) दोनों कूल्हों से [वा नितम्बों से] और (भंसस:) गुह्य स्थान से (भसद्यम्) कटि [कमर] के और (भासदम्) गुह्य के (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामि) मैं जड़ से उखाड़ता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कटि से नीचे के अवयवों का वर्णन है। भावार्थ मन्त्र १ के समान है ॥ ५ ॥

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥ ६ ॥

५—**ऊरुभ्याम्** । ऊर्णोतेर्नुलोपश्च (उ० १ । ३०) इति ऊर्णुञ् आच्छादने-कु:, नुलोपश्च । जानूपरिभागाभ्याम् । जङ्घाभ्याम् । **अष्ठीवद्भ्याम्** । **आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्०** (पा० ८ । २ । १२) इति अस्थि-मतुप्, अष्ठीभावो निपात्यते । जानुभ्याम् । **पार्ष्णिभ्याम्** । **घृणिपृश्निपार्ष्णि०** (उ० ४ । ५२) इति पृषु सेचने—नि:, निपातनात् साधु: । पृष्यते भूम्यादिकमनेनेति । गुल्फस्याधोभागाभ्याम् । पादग्रन्थ्यधराभ्याम् । **प्रपदाभ्याम्** । प्रारब्धं प्रगतं वा पदमिति प्रादिसमास: । पादाग्रभागाभ्याम् । **भसद्यम्** । **शृदभसोऽदिः** (उ० १ । १३०) इति भस भर्त्सनदीप्त्यो:—अदि:, यत् । भसत्=जघनं योनिर्वा—श० क० द्रुमे । कटिप्रदेशे भवम् । **श्रोणिभ्याम्** । **वहिश्रिश्रुयु०** (उ० ४ । ५१) इति श्रु श्रवणे—नि: । यद्वा, श्रोणृ संघाते—इन् । **कटिभ्याम्** । नितम्बाभ्याम् । **भासदम्** । भसद्—अण् । भसदि, योनौ भवम् । **भंससः** । भस भर्त्सनदीप्त्यो: असुन् नुट् च । भासमानात् पायो:, गुह्यस्थानात् । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्थिऽभ्यः । ते । मज्जऽभ्यः । स्नावऽभ्यः । धमनिऽभ्यः । यक्ष्मम् । पाणिऽभ्याम् । अङ्गुलिऽभ्यः । नखेभ्यः । वि । वृहामि । ते ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (अस्थिभ्यः) हड्डियों से (मज्जभ्यः) मज्जा धातु [अस्थि के भीतर के रस] से (स्नावभ्यः) पुठ्ठों से और (धमनिभ्यः) नाड़ियों से, और (ते) तेरे (पाणिभ्याम्) दोनों हाथों से, (अङ्गुलिभ्यः) अंगुलियों से, और (नखेभ्यः) नखों से (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामि) मैं जड़ से उखाड़ता हूँ ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य अपने शरीर के भीतरी धातुओं, नाड़िओं और हाथ आदि बाहिरी अंगों को यथायोग्य आहार, विहार से पुष्ट और स्वस्थ रक्खें, जिससे आत्मिक शक्ति सदा बढ़ती रहे ॥ ६ ॥

अङ्गेऽअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि । यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वंञ्चं वि वृहामसि ॥७॥

६—अस्थिभ्यः । अ० १ । २३ । ४ । असु क्षेपणे—क्थिन् । शरीरस्थधातुविशेषेभ्यः । **मज्जभ्यः** । अ० १ । ११ । ४ । अस्थिमध्यस्थस्नेहेभ्यः । **स्नावभ्यः** । **स्नामदिपद्यर्त्ति०** (उ० ४ । ११३) इति ष्णा शौचे—वनिप् । वायुवाहिनाभ्यः नाडीभ्यः । सूक्ष्मशिराभ्यः । **धमनिभ्यः** । **अर्त्तिसृधृधम्यम्य०** (उ० २ । १०२) इति धम प्रापणे-सौत्रो धातुः अनिः । धमतिः गतिकर्मा निघ० २ । १४ । यद्वा धमा शब्दाग्निसंयोगयोः—अनिः । धमति प्रापयति रसादिकमिति धमनिः । स्थूलनाडीभ्यः । **पाणिभ्याम्** । **अशिपणाय्योरुडायलुकौ च** (उ० ४ । १३३) इति पण व्यवहारे—इण्प्रत्ययः[1] आयलुक् च । हस्ताभ्याम् । **अङ्गुलिभ्यः** । अङ्ग लक्षणे—उलिच्[2] । अङ्गुलयः कस्मादग्रगामिन्यो भवन्तीति वाग्रगालिन्यो भवन्तीति वाग्रकारिण्यो भवन्तीति वाग्रसारिण्यो भवन्तीति वाङ्कना भवन्तीति वाञ्चना भवन्तीति वापि वाभ्यञ्चनादेव स्युः—निरु० ३ । ८ । हस्तपदप्रसिद्धावयवेभ्यः । **नखेभ्यः** । **नहेर्हलोपश्च** (उ० ५ । २३) इति णह बन्धने—खः, हस्य लोपः । नह्यति रुधिरादिकम् । अङ्गुलीकण्टकेभ्यः । अन्यद् गतम् ॥

१. गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः (पा० ३ । १ । २८) सूत्र से पण धातु से आय प्रत्यय करके 'पणाय' नया धातु (पा० ३ । १ । ३२) बना है, उसी आय का यहाँ लुक् किया है ॥ सम्पा० ॥

२. ऋतन्यञ्जि० (उ० ४ । २) सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्गेऽअङ्गे । लोम्निऽलोम्नि । यः । ते । पर्वणिऽपर्वणि । यक्ष्मम् । त्वचस्यम् । ते । वयम् । कश्यपस्य । विऽबर्हेण । विष्वञ्चम् । वि । वृहामसि ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(यः) जो [क्षयी रोग] (ते) तेरे (अङ्गे-अङ्गे) अंग अंग में, (लोम्नि-लोम्नि) रोम रोम में (पर्वणि-पर्वणि) गांठ गांठ में है । (वयम्) हम (ते) तेरे (त्वचस्यम्) त्वचा के और (विष्वञ्चम्) सब अवयवों में व्यापक (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (कश्यपस्य) ज्ञान दृष्टि वाले विद्वान् के (विबर्हेण) विविध उद्यम से (वि वृहामसि) जड़ से उखाड़ते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपसंहार वा समाप्ति है अर्थात् प्रसिद्ध अवयवों का वर्णन करके अन्य सब अवयवों का कथन है । जिस प्रकार सद्वैद्य निदान पूर्वक रोगी के जोड़ जोड़ में से रोग का नाश करता है, वैसे ही ज्ञानी पुरुष निदिध्यासन पूर्वक आत्मिक दोषों को मिटा कर प्रसन्नचित होता है ॥ ७ ॥

७—**अङ्गे अङ्गे** । अ० १ । १२ । २ । **नित्यवीप्सयोः** (पा० ८ । १ । ४) इति सर्वत्र द्विर्वचनम् । सर्वावयवेषु । **लोम्नि-लोम्नि** । **नामन्सीमन्व्योमन्-रोमन्लोमन्०** (उ० ४ । १५१) इति लूञ् छेदने—मनिन्प्रत्ययान्तः साधुः । लूयते छिद्यते शरीरं येन । सर्वेषु रोमकूपेषु । **पर्वणि-पर्वणि** । अ० २ । ६ । १ । सर्वेषु शरीरसन्धिषु । **त्वचस्यम्** । त्वच संवरणे—असुन्, यत् । **यचि भम्** । (पा १।४।१८) इति रुत्वाभावः । त्वचि भवम् । **कश्यपस्य** । द्र० अ० १ । १४। ४ । सोमरसपानशीलस्य । यद्वा । **कृञादिभ्यः संज्ञायां वुन्** (उ० ५ । ३५) इति दृशिर् प्रेक्षणे-वुन् । **पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्ति०** (पा० ७ । ३ । ७८) इति छन्दसि अशिति प्रत्ययेऽपि, दृशेः पश्य इत्यादेशः, आद्यन्ताक्षरविपर्य्ययेण सिद्धिः । कश्यपस्य अर्थात् पश्यकस्य द्रष्टुर्ज्ञानिनः पुरुषस्य । यथा "कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति निरुक्त्या पश्यतीति पश्यः, सर्वज्ञतया सकलं जगद्विजानाति स पश्यः पश्य एव निर्भ्रमतयातिसूक्ष्ममपि वस्तु यथार्थं जानात्येवातः पश्यक इति । आद्यन्ताक्षरविपर्य्ययाद्धिंसः सिंहः कृतेस्तर्कुरित्यादिवत् कश्यप इति हयवरट् इत्येतस्योपरि महाभाष्यप्रमाणेन पदं सिध्यति"—इति श्रीदयानन्दकृतायां ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायाम् पृष्ठे २९१ तमे । **विबर्हेण** । बृहि वृद्धौ, शब्दे च, वृहू उद्यमने—ल्युट्, उपसर्गस्य दीर्घः । विविधोद्यमेन । **विष्वञ्चम्** । विष्लृ व्याप्तौ—कुः +अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन् । नानाङ्गव्यापकम् । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ३४ ॥

१—५ ॥ पशुपतिर्देवता ॥ त्रिष्टुप्छन्दः ॥

बन्धात् मोक्षायोपदेशः—बन्ध से मुक्ति के लिये उपदेश ।

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ।
निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम् ॥ १ ॥

यः । ईशे । पशुऽपतिः । पशूनाम् । चतुःऽपदाम् । उत । यः । द्विऽपदाम् । निःऽक्रीतः । सः । यज्ञियम् । भागम् । एतु । रायः । पोषाः । यजमानम् । सचन्ताम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(यः) जो (पशुपतिः) पशुओं [जीवों] का स्वामी परमेश्वर (चतुष्पदाम्) चौपाये, (उत) और (यः) जो (द्विपदाम्) दोपाये (पशूनाम्) जीवों का (ईशे = ईष्टे) राजा है (सः) वह परमेश्वर (निष्क्रीतः) अनुकूल हो-

---

१—**ईशे** । ईश ऐश्वर्ये । **लोपस्त आत्मनेपदेषु** (पा० ७ । १ । ४१) इति तलोपः । **अधीगर्थदयेशां कर्मणि** (पा० २ । ३ । ५२) इति कर्मणि षष्ठी । ईष्टे । ईश्वरः स्वामी वर्तते । **पशुपतिः** । **अर्जिदृशिकम्यमि०** (उ० १ । २७) इति दृशिर् प्रेक्षणे—कुः । **पातेर्डतिः** (उ० ४।५७) इति पा रक्षणे डतिः । पशूनां दृष्टिवतां द्रष्टानां वा स्थावरजङ्गमानां जीवानां पाता रक्षिता परमेश्वरः । **पशूनाम्** । अ० १ । २५ । २ । जीवानाम् । **चतुष्पदाम्** । **संख्यासुपूर्वस्य** (पा० ५ । ४ । १४०) इति बहुव्रीहेः पादशब्दान्तस्य लोपः । **पादः पत्** (पा० ६ । ४ । १३०) इति पाद इत्यस्य पदादेशो भसंज्ञायाम् । गवादीनाम् । **उत** । अपि च । **द्विपदाम्** । पूर्ववत् सिद्धिः । मनुष्यादीनाम् । **निष्क्रीतः** । निः नितराम् + डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये—क्तः । प्रार्थनादिना अनुकूलीकृतः । **यज्ञियम्** । **यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ** (पा० ५ । १ । ७१) पूजाकर्महिम् । **भागम्** । भज सेवायाम्—घञ् । अंशम् । भजनम् । **एतु** । गच्छतु । प्राप्नोतु । **रायः** । **रातेर्डैः** (उ० २।६६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर (यज्ञियम्) हमारे पूजा योग्य (भागम्) भजन वा अंश को (एतु) प्राप्त करे। (रायः) धन की (पोषाः) वृद्धियां (यजमानम्) पूजनीय कर्म करने वाले को (सचन्ताम्) सीचती रहें ॥ १ ॥

भावार्थः—परमेश्वर सब मनुष्यादि दोपाये, और गौ आदि चौपाये तथा सब संसार का स्वामी है, वह मनुष्यों के धर्मानुकूल चलने से उनका (निष्क्रीतः) मोल लिया हुआ अर्थात् उन का इच्छावर्ती होकर उन को सब प्रकार का आनन्द देता है ॥ १ ॥

प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः। उपाकृतं शशमानं यदस्थात् प्रियं देवानामप्येतु पाथः ॥ २ ॥

प्रऽमुञ्चन्तः। भुवनस्य। रेतः। गातुम्। धत्त। यजमानाय। देवाः। उपऽआकृतम्। शशमानम्। यत्। अस्थात्। प्रियम्। देवानाम्। अपि। एतु। पाथः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वान् महात्माओं! (भुवनस्य) संसार के (रेतः) बीज [वृद्धि सामर्थ्य] का (प्रमुञ्चन्तः) दान करते हुए तुम, (यजमानाय) पूजनीय कर्म करने वाले पुरुष को (गातुम्) मार्ग (धत्त) दान करो, (यत्) जो (शशमानम्) उछल कर प्राप्त होता हुआ (उपाकृतम्) समीप

इति रा दाने ग्रहणे च–डैः। धनस्य। स्वर्णस्य। **पोषाः**। पुष पुष्टौ धारणे च–घञ्। समृद्धयः। **षष्ठ्याः पतिपुत्र०** (पा० ८। ३। ५३) इति 'रायस्पोषाः' इत्यत्र सत्वम्। **यजमानम्**। यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु–शानच्। यष्टारम्। याज्ञिककर्म। **सचन्ताम्**। षिच क्षरणे–लोट्। सिञ्चन्तु॥

२—**प्रमुञ्चन्तः**। प्रपूर्वात् मुच्ल मोचने—शतृ। विसृजन्तः। प्रयच्छन्तः। **भुवनस्य**। अ० २। १। ३। संसारस्य। **रेतः**। अ० २। २८। ५। बीजम्। वृद्धिसामर्थ्यम्। **गातुम्**। **कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च** (उ० १। ७३) इति गाङ् गतौ–तुः। गाते गच्छति येन। मार्गम्। **धत्त**। यूयं दत्त। **यजमा-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाया गया (पाथः) रक्षा साधन अन्नादि (देवानाम्) विद्वानों का (प्रियम्) प्रिय [हितकारक] (अस्थात्) स्थित हुआ है [वह हमें] (अपि) अवश्य (एतु) प्राप्त होवे ॥ २ ॥

भावार्थः—विद्वान् महात्मा लोग वेद द्वारा संसार की वृद्धि और स्थिति का कारण विचार कर सबको सत्य मार्ग का उपदेश करें जिस से मनुष्य ईश्वर-कृत रक्षा साधन, ज्ञान, खान पान आदि पदार्थों का [जो सब को सब जगह सुलभ है] यथावत् प्राप्त कर दुःखों से मुक्त होकर आनन्द भोगें ॥ २ ॥

ये बध्यमानमनु दीध्यानाऽअन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष्टानग्रे प्रमुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥३॥

ये । बध्यमानम् । अनु । दीध्यानाः । अनुऽऐक्षन्त । मनसा । चक्षुषा । च । अग्निः । तान् । अग्रे । प्र । मुमोक्तु । देवः । विश्वऽकर्मा । प्रऽजया । सम्ऽरराणः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(ये) जो [महाविद्वान्] (बध्यमानम् अनु) बन्धन में पड़ते हुए [जीव] पर (दीध्यानाः+सन्तः) प्रकाश करते हुये, (मनसा) मन से (च) और (चक्षुषा) नेत्र से (अन्वैक्षन्त) दया से देख चुके हैं, (तान्) उन (अग्रे=अग्रे वर्त्तमानान्) अग्रगामियों को (अग्निः) सर्वव्यापक, (देवः) प्रकाश-

---

नाय । म० १ । उपकर्त्रे । **देवाः** । हे विद्वांसः । **उपाकृतम्** । उप+आङ्+कृ—क्तः । समीपे आनीतम् । **शशमानम्** । शश प्लुतगतौ—चानश् । उत्प्लुत्य गमनशीलम् । **यत्** । पाथः । **अस्थात्** । तिष्ठति स्म । **प्रियम्** । अ० २ । २८ । ५ । हितकरम् । **देवानाम्** । विदुषाम् । **एतु** । अस्मान् प्राप्नोतु । **पाथः** । **अन्ने च** (उ० ४ । २०५) इति पा रक्षणे—असुन्, धुट् च । रक्षासाधनम् । अन्नम् ॥

३—**ये** । विद्वांसः । **बध्यमानम्** । **सार्वधातुके यक्** (पा० ३ । १ । ६७) इति बन्ध बन्धने—कर्मणि यक्, ततः शानच् । बन्धने गच्छन्तम् । **अनु** । अनुलक्ष्य । **दीध्यानाः** । दीधीङ् दीप्तिदेवनयो—शानच् । दीप्यमानाः । **अन्वैक्षन्त** । ईक्ष दर्शने—छान्दसो लङ् । अनुकूलम् अनुक्रमेण वा दृष्टवन्तः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप, (विश्वकर्मा) सब का रचने वाला परमेश्वर, (प्रजया) प्रजा [सृष्टि] के साथ (संरराणः = संरममाणः) आनन्द करता हुआ (प्र) भली प्रकार (मुमोक्तु) [विघ्न से] मुक्त करे ।। ३ ।।

भावार्थः—जो महात्मा अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति से अज्ञान के कारण से दुःख में डूबे हुओं के उद्धार में समर्थ होते हैं, वह सर्वशक्तिमान् सर्वकर्त्ता परमेश्वर उन परोपकारी जनों का सदा सहायक और आनन्ददायक होता है ।। ३ ।।

'बध्यमानम्' के स्थान पर 'वध्यमानम्' और 'अनु दीध्यानाः' दो पद के स्थान पर 'अनुदीध्यानाः' एक पद सायण भाष्य में है ।।

ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः ।
वायुष्टानग्ने प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संरराणः ॥ ४ ॥

ये । ग्राम्याः । पशवः । विश्वऽरूपाः । विऽरूपाः । सन्तः । बहुऽधा । एकऽरूपाः । वायुः । तान् । अग्ने । प्र । मुमोक्तु । देवः । प्रजाऽपतिः । प्रऽजया । सम्ऽरराणः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(ये) जो (ग्राम्याः) ग्राम में बसने वाले, (विश्वरूपाः) सब वर्ण वाले (पशवः) जीव (बहुधा) प्रायः (विरूपाः) पृथक् २ रूप वाले

मनसा । चित्तेन । **चक्षुषा ।** अ० १ । ३३ । ४ । दर्शनेन्द्रियेण । नेत्रेण । **अग्निः ।** सर्वत्रगतिः । परमेश्वरः । **तान् ।** विदुषः पुरुषान् । **युष्मत्तत्ततक्षुः--ष्वन्तः पादम्** (पा० ८ । ३ । १०३) इति 'अग्निष्टान्' इत्यत्र षत्वम् । **अग्ने ।** अग्ने वर्त्तमानान् । **प्र ।** प्रकर्षेण । **मुमोक्तु ।** छन्दसि शपः श्लुः । मोचयतु विघ्नात् । **देवः ।** दीप्यमानः । **विश्वकर्मा । सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उ० ४ । १४५) इति विश्व + कृञ् - मनिन् । विश्वकर्मा सर्वस्य कर्त्ता [मध्यस्थानः]—निरु० ०।२५ । विश्वेषु कर्म यस्य । सर्वकर्त्ता । परमात्मा । **प्रजया ।** स्वसृष्ट्या । **संरराणः ।** संरममाणः । सह रममाणः । सम्यग्रममाणः । यद्वा रा दाने, ग्रहणे, रै शब्दे—लिटः कानच् । सम्यग्दाता ग्रहीता शब्दायमानो वा ।।

४—ये । पशवः । **ग्राम्याः । ग्रसेरा च** (उ० १ । १४३) इति ग्रसु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सन्तः) होकर (एकरूपाः) एकस्वभाव वाले हैं, (तान्) उन (अग्रे = अग्रे वर्त्तमानान् पशून्) अग्र वर्त्ती जीवों को (वायुः) सर्वव्यापी वा बलदायक (देवः) प्रकाश स्वरूप, (प्रजापतिः) प्रजाओं का रक्षक परमेश्वर (प्रजया) प्रजा [अपने जनों से (संरराणः = संरममाणः) आनन्द करता हुआ (प्र) भली प्रकार (मुमोक्तु) मुक्त करे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो (ग्राम्याः) मिलकर भोजन करने वाले मनुष्य भिन्न देश, भिन्न अन्न जल वायु होने से भिन्न वर्ण होकर भी एक ईश्वर की आज्ञा पालन में (एकरूप) तत्पर रहते हैं, परमेश्वर प्रसन्न होकर उन पुरुषार्थी महात्माओं को दुःख से छुड़ा कर सदा आनन्द देता है ॥

२—शुद्ध वायु सब प्राणियों को शारीरिक और आत्मिक सुख देता है ॥ ४ ॥

प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम् ।
दिवं गच्छ प्रतितिष्ठा शरीरैः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः ॥५॥

प्रऽजानन्तः । प्रति । गृह्णन्तु । पूर्वे । प्राणम् । अङ्गेभ्यः । परि । आऽचरन्तम् । दिवम् । गच्छ । प्रति । तिष्ठ । शरीरैः । स्वःऽगम् । याहि । पथिऽभिः । देवऽयानैः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(प्रजानन्तः) बड़े ज्ञान वाले (पूर्वे = पूर्वे वर्त्तमानाः + भवन्तः)

अदने—मन्, धातोराकारान्तादेशश्च । ग्रसन्ति यत्र मिलित्वा । **ग्रामाद् यखञौ** (पा० ४ । २ । ९४) ग्रामे शालासमुदाये भवा उत्पन्नाः । ग्रामीणाः । **पशवः** । प्राणिनः । **विश्वरूपाः** । **खष्पशिल्पशष्पवाष्परूपपर्पतल्पाः** (उ० ३ । २८) इति रु शब्दे—पः, दीर्घश्च । रूयते कीर्त्यते तद् रूपम् । शुक्लादिवर्णम् । आकृतिः । स्वभावः । सौन्दर्यम् । नानावर्णाः । **विरूपाः** । विरुद्धाकाराः । **सन्तः** । वर्त्तमाना अपि । **बहुधा** । **विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले** (पा० ५ । ४ । २०) इति बहु + धा । बहुप्रकारम् । प्रायेण । **एकरूपाः** । परमेश्वराज्ञापालन-एकस्वभावाः । **वायुः** । अं० २ । २० । १ । सर्वव्यापी । परमेश्वरः पवनः । **प्रजापतिः** । यज्ञः—निघ० ३ । १७ । प्रजानां पाता वा पालयिता वा [मध्यस्थानी देवः] निरु० १० । ४२ । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

५—प्रजानन्तः । प्र + ज्ञा—शतृ । प्रकर्षेण जानन्तः । महाविद्वांसः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम स्थान में वर्त्तमान महात्मा पुरुष आप (अङ्गेभ्यः) सब के अङ्गों के हित के लिए (परि) सब ओर (आचरन्तम्) चलने वाले (प्राणम्) अपने प्राण [बल] को (प्रति) प्रत्यक्ष (गृह्णन्तु) ग्रहण करें।

[हे मनुष्य !] (दिवम्) ज्ञान प्रकाश वा व्यवहार को (गच्छ) प्राप्त कर, (शरीरैः) सब अङ्गों के साथ (प्रति तिष्ठ) तू प्रतिष्ठित रह, (देवयानैः) देवताओं के चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (स्वर्गम्) स्वर्ग [महा आनन्द] में (याहि) तू पहुँच ॥ ५ ॥

भावार्थः—ज्ञानी महात्मा पुरुष जो श्वास लें वह संसार के उपकार के लिये ही लें, अर्थात् प्रतिक्षण परोपकार में लगकर अपना सामर्थ्य और जीवन बढ़ावें। और प्रत्येक मनुष्य को योग्य है कि अपने आत्मा में ज्ञान का प्रकाश करके सब व्यवहारों में चतुर हो, और आंख कान, हाथ, पग आदि अङ्गों से शुभ कर्म करके प्रतिष्ठा बढ़ावे, और जिन वेद मार्गों पर देवता चलकर स्वर्ग भोगते हैं उन्हीं वेदरूपी राजपथों पर चल कर जीवन्मुक्त होकर आनन्द भोगें ॥ ५ ॥

टिप्पणी—स्वर्ग का लक्षण टिप्पणी, अ० १ । ३० । २ में अथर्व० का० ६ । सू० १२० म० ३ के प्रमाण से दिया है, वहां देख लीजिये ॥

प्रति । प्रत्यक्षम् । **गृह्णन्तु** । स्वीकुर्वन्तु । **पूर्वे** । प्रतिष्ठास्थाने वर्त्तमानाः । प्रधानाः । **प्राणम्** । अ० २ । १५ । १ । जीवनसाधनं प्राणापानरूपं बलम् । **अङ्गेभ्यः** । अ० १ । १२ । ४ । अङ्गानां हिताय । **परि** । सर्वतः । **आचरन्तम्** । चर–शतृ । आगच्छन्तम् । **दिवम्** । अ० १ । ३० । ३ । प्रकाशम् । **शरीरैः** । अ० २ । १२ । ८ । शरीराङ्गैः सह । **स्वर्गम्** । स्वः–इति व्याख्यातम् अ० २ । ५ । २ । स्वः सुखं गीयते यत्र, स्वः+गै–कः । यद्वा, सुष्ठु अर्ज्यते सु+अर्ज अर्जने–घञ् । शकन्ध्वादित्वात् कुत्वम् । देवतानां विदुषां निवासस्थानम् । स्वर्लक्षणं द्रष्टव्यम्–टिप्पण्याम् । अ० १ । ३० । २ । **पथिभिः** । **पतःस्थ च** (उ० ४ । १२) इति पत्लृ गतौ–इनिः, थश्चान्तादेशः । मार्गैः । **देवयानैः** । देव+या गतौ–ल्युट् । देवानां यानं गमनं यैः । देवगमनयोग्यैः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ३५ ॥

१–५ ॥ विश्वकर्मा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

पापत्यागात् सुखलाभ इत्युपदिश्यते–पाप के त्याग से सुखलाभ है, इस का उपदेश ॥

ये भक्षयन्तो न वसून्यानुधुर्यान्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा ॥१॥

ये । भक्षयन्तः । न । वसूनि । आनृधुः । यान् । अग्नयः । अनुऽअतप्यन्त । धिष्ण्याः । या । तेषाम् । अवऽड्याः । दुःऽइष्टिः । सुऽइष्टिम् । नः । ताम् । कृणवत् । विश्वऽकर्मा ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ये) जिन मनुष्यों ने (भक्षयन्तः) पेट भरते हुए (वसूनि) धनों को (न) नहीं (आनृधुः) बढ़ाया, और (यान्) जिन पर (धिष्ण्याः) बोलने, काम वा बुद्धि में चतुर (अग्नयः) गतिशील ज्ञानी [वा अग्नि समान तेजस्वी] पुरुषों ने (अन्वतप्यन्त) अनुताप किया है । [शोक माना है], (तेषाम्) उन [कंजूसों] की (या) जो (अवयाः) विनाश हेतु (दुरिष्टिः) खोटी सङ्गति है,

---

१—**भक्षयन्तः** । भक्ष–शतृ । भक्षकाः । उदरपोषकाः । **न** । निषेधे । **वसूनि** । धनानि । **आनृधुः** । ऋधु वृद्धौ–लिट् । **अत आदेः** (पा० ७।४।७०) इत्यभ्यासदीर्घत्वे । **तस्मान्नुड् द्विहलः** (पा० ७ । ४ । ७१) इति नुडागमः । वर्धितवन्तः । **यान्** । स्वार्थिनः पुरुषान् । **अग्नयः** । अगि गतौ–निः । गतिशीलाः । ज्ञानिनः । अग्निवत्तेजस्विनः पुरुषाः । **अन्वतप्यन्त** । अनुतापं पश्चात्तापं कृतवन्तः । **धिष्ण्याः** । **सानसिवर्णसिपर्णसि०** (उ० ४ । १०७) इति धिष शब्दे–ण्यप्रत्ययः । शब्दकुशलाः । विद्वांसः । यद्वा । धीङ् आधारे, ध्यै चिन्तायाम्–क्विप् । धीः, कर्मनाम–निघ० २।१। प्रज्ञा नाम–निघ० ३।९। इषु इच्छायाम्–ण्यप्रत्ययः पूर्ववत्, निपातनाद् रूपसिद्धिः । धियः कर्माणि प्रज्ञां वा इच्छन्ति ते **धिष्ण्याः** । कर्मकुशलाः । धीराः । **अवयाः** । **अवे यजः** (पा० ३ । २ । ७२) अव + यज–ण्विन् । **अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च** (पा० ८।२।६७) इति निपातितः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विश्वकर्मा) सब कर्मों में चतुर [वा संसार का रचने वाला] परमेश्वर (ताम्) उस [कुसंगति] को (नः) हमारे लिए (स्विष्टिम्) उत्तम फलदायक (कृणवत्) करे ॥ १ ॥

भावार्थः—जो स्वार्थी मनुष्य केवल अपना पेट भरना जानते हैं और जो धन एकत्र करके उपकार नहीं करते, उन की दशा उदारशील महात्माओं को शोचनीय होती है. सब कर्मकुशल मनुष्यों को [परमेश्वर] सुमति दे कि उनका मन स्वार्थपन छोड़ कर जगत् की भलाई में लगे। सब मनुष्य (विश्वकर्मा) विहित कर्मों में कुशल होकर, और कुसगति का दुष्ट फल देखकर दुष्कर्मों से बचें और सदा आनन्द से रहें ॥ १ ॥

यज्ञपतिमृषय एनसाहुर्निर्भक्तं प्रजा अनुतप्यमानम् ।
मथव्यान्त्स्तोकानप यान् रराध सं नष्टेभिः सृजतु विश्वकर्मा ॥ २ ॥

यज्ञऽपतिम् । ऋषयः । एनसा । आहुः । निःऽभक्तम् । प्रऽजाः । अनुऽतप्य-मानम् । मथव्यान् । स्तोकान् । अप । यान् । रराध । सम् । नः । तेभिः । सृजतु । विश्वऽकर्मा ॥ २ ॥

भाषार्थः—(ऋषयः) सूक्ष्मदर्शी ऋषि (प्रजाः) मनुष्यादि प्रजाओं पर (अनुतप्यमानम्) अनुताप [अनुकम्पा] करने वाले (यज्ञपतिम्) उत्तम कर्मों के रक्षक पुरुष को (एनसा) पाप से (निर्भक्तम्) पृथक् किया हुआ (आहुः) बताते हैं ।

अवयजामहे = विनाशयामः—इति महीधरः, यजु० ३।४५ विनाशहेतुः । **दुरिष्टिः** । दुर्+इषु इच्छायाम्, यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु वा—क्तिन् । दुष्टक्रिया । कुसगतिः । **स्विष्टिम्** । सु+इष्टिम् । शोभनाम् इष्टसाधिकाम् । **नः** । अस्मदर्थम् । **कृणवत्** । अ० २ । ६ । ५ । करोतु । **विश्वकर्मा** । अ० २ । ३४ । ३ । सर्वकर्ता परमेश्वरः ॥

२—**यज्ञपतिम्** । शुभकर्मरक्षकम् । **ऋषयः** । अ० २।६।१ । मन्त्रार्थद्रष्टारः । सूक्ष्मदर्शिनः । **एनसा** । अ० २ । १० । ८ । पापेन । अपराधेन । **आहुः** । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि लट् ब्रुवन्ति । **निर्भक्तम्** । भज सेवायाम्, विभागे—क्तः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने (यान्) जिन (मथव्यान्) मथने योग्य (स्तोकान्) प्रसन्न करने वाले, सूक्ष्म विषयों को (अप) आनन्द से (रराध) सिद्ध किया है (विश्वकर्मा) संसार का रचने वाला परमेश्वर (तेभिः=तैः) उन [सूक्ष्म विषयों] के साथ (नः) हमें (सं सृजतु) संयुक्त करे ॥ २ ॥

भावार्थः—ऋषि लोग उस पुरुषार्थी पुरुष को निष्पाप और पुण्यात्मा मानते हैं जो सब जीवों पर दया और उपकार करता है वही धर्मात्मा आप्तपुरुष, सत्य सिद्धान्तों को साक्षात् करके आनन्द से संसार में प्रकाशित करता है। (विश्वकर्मा) परमेश्वर उन अटल वैदिक धर्मों को हम सब के हृदय में स्थापित करे, जिससे हम पुरुषार्थ पूर्वक सदा आनन्द भोगें ॥ २ ॥

टिप्पणी— 'अनुतप्यमानम्' के स्थान पर 'अनु तप्यमानम्' दो पद और 'मथव्यान्' के स्थान पर [मधव्यान्] पद सायणभाष्य में हैं ॥

अदान्यान्त्सोमपान् मन्यमानो यज्ञस्य विद्वान्त्समये न धीरः। यदेनश्चकृवान् बुद्ध एष तं विश्वकर्मन् प्र मुञ्चा स्वस्तये ॥ ३ ॥

अदान्यान्। सोमऽपान्। मन्यमानः। यज्ञस्य। विद्वान्। सम्ऽअये। न। धीरः। यत्। एनः। चकृऽवान्। बुद्धः। एषः। तम्। विश्वऽकर्मन्। प्र। मुञ्च। स्वस्तये ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अदान्यान्) दान के अयोग्य पुरुषों को (सोमपान्) अमृत पान

पृथक् कृतम्। वियुक्तम्। **प्रजाः**। ईश्वरसृष्टीः। **अनुतप्यमानम्**। अनुतापं पश्चात्तापं कुर्वन्तम्। **मथव्यान्**। मथे विलोडने-तव्यत्, छान्दसं रूपम्। मथितव्यान्। अन्वेषणीयान्। **स्तोकान्**। ष्टुच प्रसादे दीप्तौ-घञ्। प्रसन्नकरान्, दीप्यमानान् सूक्ष्मविषयान्। बिन्दून्। **अप**। आनन्दे-यथा। अपचितिः=पूजा, अपदानम्=प्रशस्यकर्म। **रराध**। राध संसिद्धौ—लिट्। साधितवान्, पूरितवान्। **नः**। अस्मान्। **तैः**। स्तोकैः। **संसृजतु**। संयोजयतु। **विश्वकर्मा**। सर्वरचयिता। अन्यद् गतम् ॥

३—अदान्यान्। छन्दसि च (पा० ५। १। ६७) इति अदान-यप्रत्ययः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाले (मन्यमानः) मानता हुआ पुरुष, (यज्ञस्य) शुभ कर्म का (विद्वान्) जानने वाला और (समये) समय पर (धीरः) धीर (न) नहीं होता। (एषः) इस पुरुष ने (बद्धः) [अज्ञान में] बन्ध होकर (यत्) जो (एनः) पाप (चकृवान्) किया है, (विश्वकर्मन्) हे संसार के रचने वाले परमेश्वर! (तम्) उस पुरुष को (स्वस्तये) आनन्द भोगने के लिए (प्र मुञ्च) मुक्त कर दे ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्य अविवेक के कारण मूढ़ होकर अपनी और संसार की हानि कर डालता है। वह पुरुष अपने प्रमाद पर पश्चात्ताप कर और पाप कर्म छोड़कर ईश्वर आज्ञा का पालन करके आनन्द भोगे ॥ ३ ॥

घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम्।
बृहस्पतये महिष द्युमन्नमो विश्वकर्मन् नमस्ते पाह्य१ स्मान् ॥ ४ ॥

दानानर्हान्। **सोमपान्**। **गापोष्टक्** (पा० ३ । २ । ८, सोम+पा पाने-टक् । अमृतपानशीलान् पण्डितान्। **मन्यमानः**। मन ज्ञाने दिवादिः-शानच्। जानन् सन्। **यज्ञस्य**। अ० १ । ९ । ४। प्रशस्यकर्मणः। **विद्वान्**। **विदेः शतुर्वसुः** (पा० ७ । १ । ३६) इति विद ज्ञाने-शतृ, वसुरादेशः। प्राज्ञः। पण्डितः। **समये**। सम्+इण् गतौ-पचाद्यच्। उचितकाले, अवसरे। **न**। निषेधे। **धीरः**। **सुसूधाञ्गृधिभ्यः क्रन्** (उ० २ । २४) इति डुधाञ् धारण-पोषणयोः-क्रन्। **धुमास्थागापा०** (पा० ६ । ४ । ६६) इति ईत्वम्। यद्वा। धीः प्रज्ञा कर्म वा, रो मत्वर्थीयः। यद्वा। **कर्मण्यण्** (पा० ३ । २ । १) इति धी+ईर गतौ कम्पने च-अण्। धियम् ईरयतीति। यद्वा। धी+रा-कः। धियं राति ददाति गृह्णातीति वा। मेधावी-निघ० ३ । १५। धैर्यवान्। पण्डितः। **एनः**। म० २। अपराधम्। **चकृवान्**। कृञ्-लिटः कसुः। कृतवान्। **बद्धः**। बध्यते स्म। बन्ध-क्तः। बन्धनयुक्तः। **विश्वकर्मन्**। हे सर्वकृत्। **प्र+मुञ्च**। प्रमोचय। **स्वस्तये**। अ० १ । ३० । २। क्षेमाय। कुशलाय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोराः । ऋषयः । नमः । अस्तु । एभ्यः । चक्षुः । यत् । एषाम् । मनसः । च । सत्यम् । बृहस्पतये । महिष । द्युमत् । नमः । विश्वकर्मन् । नमः । ते । पाहि । अस्मान् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(ऋषयः) सूक्ष्मदर्शी पुरुष (घोराः) [पाप कर्मों पर] क्रूर होते हैं, (एभ्यः) उन [ऋषियों] को (नमः) अन्न वा नमस्कार (अस्तु) होवे, (यत्) क्योंकि (एषाम्) उन [ऋषियों] के (मनसः) मन की (चक्षुः) आँख (च) निश्चय करके (सत्यम्) यथार्थ [देखने वाली] है। (महिष) हे पूजनीय परमेश्वर ! (बृहस्पतये) सब बड़े बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी [आप] को (द्युमत्) स्पष्ट (नमः) नमस्कार है, (विश्वकर्मन्) हे संसार के रचने वाले ! (नमस्ते) तेरे लिये नमस्कार है, (अस्मान्) हमारी (पाहि) रक्षा कर ॥ ४ ॥

भावार्थः—जिन महात्मा आप्त ऋषियों के मानसिक, वाचिक और कायिक कर्म, संसार को दुःख से मुक्त करने के लिये होते हैं, उनके उपदेशों को सब मनुष्य प्रीति पूर्वक ग्रहण करें, और जो परमेश्वर समस्त सृष्टि का कर्त्ता धर्त्ता है,

---

४—**घोराः** । अ० १ । १८ । ३ हन—अच्, घुरादेशः । यद्वा । घुर भीमार्थ-शब्दयोः-अच् । भयानकाः । भीमाः । **ऋषयः** । म० २ । मुनयः आप्तपुरुषाः । **नमः** । अ० १ । १० । २ । णम प्रह्वत्वे शब्दे च, असुन् अन्नम्—निघ० ३ । ७ । सत्कारः । **अस्तु** । भवतु । **एभ्यः** । ऋषिभ्यः । **चक्षुः** । अ० १ । ३३ । ४ । दृष्टिः । नेत्रम् । **एषाम्** । ऋषीणाम् । **मनसः** । अ० १ । १ । २ । अन्तःकरणस्य । **सत्यम्** । अ० २ । ४ । ४ । तथ्यम् । यथार्थम् । **बृहस्पतये** । अ० १ । ८ । २ । बृहतां महतां लोकानां पत्ये स्वामिने । **महिष** । **अविमह्योष्टिषच्** (उ० १ । ४५) इति मह पूजायाम्-टिषच् । महिषा=महान्तः-निरु० ७ । २६ । मह्यते पूज्यते सर्वैः, यद्वा, महति पूजयति शुभगुणानिति । हे महन्-निघ० ३ । ३ । पूजनीय । **द्युमत्** । **सम्पदादित्वात् क्विप्** (पा० वा० ३ । ३ । ९४) इति द्यु अभिगमने, यद्वा, द्युत दीप्तौ-क्विप् । मतुपि तलोपः । **पृषोदरादित्वात्**, (पा० ६ । ३ । १०९) यद्वा, दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु-विच् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस के उपकारों को हृदय में धारण करके उसकी उपासना करें और सदा पुरुषार्थ करके श्रेष्ठों की रक्षा करते रहें ॥ ४ ॥

'महिष' के स्थान पर सायण भाष्य में 'महि सत्' दो पद हैं ॥

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं वितंतं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥५॥

यज्ञस्य । चक्षुः । प्रऽभृतिः । मुखम् । च । वाचा । श्रोत्रेण । मनसा । जुहोमि । इमम् । यज्ञम् । विऽततम् । विश्वऽकर्मणा । आ । देवाः । यन्तु । सुऽमनस्यमानाः ॥ ५ ॥

भाषार्थः---[जो पुरुष] (यज्ञस्य) पूजनीय कर्म का (चक्षुः) नेत्र [नेत्र समान प्रदर्शक], (प्रभृतिः) पुष्टि (च) और (मुखम्) मुख [समान मुख्य] है, [उस को] (वाचा) वाणी से, (श्रोत्रेण) कान से और (मनसा) मन से (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूँ। (सुमनस्यमानाः) शुभ चिन्तकों के जैसे आचरण वाले (देवाः) व्यवहारकुशल महात्मा (विश्वकर्मणा) संसार के रचने वाले परमेश्वर करके (विततम्) फैलाये हुये (इमम्) इस (यज्ञम्) पूजनीय धर्म को (आ यन्तु) प्राप्त करें ॥ ५ ॥

द्योतनं दिव्। **दिव उत्** (पा० ६ । १ । १३१) इति मतुपि उत्त्वम्। दीप्तिमत् । कान्तियुक्तम् । स्पष्टम् । **नमः** । सत्कारः । **विश्वकर्मन्** । म० १ । हे सर्वजनक परमात्मन् । **पाहि** । त्वं रक्ष । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

५—**यज्ञस्य** । म० ३ । पूजनीयकर्मणः । **चक्षुः** । म० ४ । नेत्रवत् प्रदर्शको यः पुरुषोऽस्ति । **प्रभृतिः** । डुभृञ् धारणपोषणयोः-क्तिन् । धारणम् । पोषणम् । **मुखम् । डित् खनेर्मुट् चोदात्तः** (उ० ५ । २०) इति खनु अवदारणे—अलच् । स च डित्, धातोर्मुडागमश्च । तस्योदात्तत्त्वम् । खनति अन्नादिकमनेनेति । आस्यम् । मुखमिव मुख्यम् । **वाचा** । अ० १ । १ । १ । वाण्या । पठनपाठनकर्मणा । **श्रोत्रेण** । अ० २ । १७ । ५ । श्रुत्या । कर्णेन । श्रवणश्रावणकर्मणा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि सत्य सङ्कल्पी, सत्यसन्ध, ऋषि महात्माओं के वैदिक उपदेश को वाणी से पठन पाठन, श्रोत्र से श्रवण श्रावण, और मन से निदिध्यासन अर्थात् बारम्बार विचार, करके ग्रहण करें। और सब अनुग्रहशील महात्मा परमेश्वर के दिये हुए विज्ञान और धर्म का प्रचार करते रहें ॥ ५ ॥

सूक्तम् ३६ ॥

१—८ अग्निर्देवता। १, ३, ४ त्रिष्टुप्, २, ५, ६, ७ अनुष्टुप्, ८ गायत्री ॥

विवाहसंस्कारोपदेशः—विवाह संस्कार का उपदेश ॥

आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमेद्विमां कुमारीं सह नो भगेन। जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै ॥ १ ॥

आ। नः। अग्ने। सुऽमतिम्। सम्ऽभलः। गमेत्। इमाम्। कुमारीम्। सह। नः। भगेन। जुष्टा। वरेषु। समनेषु। वल्गुः। ओषम्। पत्या। सौभगम्। अस्तु। अस्यै ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) अग्निवत् तेजस्वी राजन् (सम्भलः) यथाविधि सम्भाषण वा निरूपण करने वाला वर (इमाम्) इस (सुमतिम्) सुन्दर बुद्धि वाली (कुमारीम्) कुमारी को (नः) हमारे लिये (भगेन सह + वर्त्तमानः

मनसा। मननेन। अन्तःकरणेन। निदिध्यासनेन। **जुहोमि**। अ० १। १५। १। आददे। स्वीकरोमि तम्। **विततम्**। तनु विस्तारे-क्तः। विस्तृतम्। **विश्वकर्मणा**। परमात्मना। **देवाः**। व्यवहारकुशलाः। महात्मानः। **यन्तु**। प्राप्नुवन्तु। **सुमनस्यमानाः**। अ० १। ३५। १। शोभनं ध्यायन्तः। शुभचिन्तकाः ॥

१—नः। अस्मान्। **अग्ने**। हे अग्निवत्तेजस्विन राजन्। **सुमतिम्**। सु + मन ज्ञाने-क्तिन्। शोभनबुद्धियुक्ताम्। **सम्भलः**। सम् + भल परि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्) ऐश्वर्य के साथ वर्त्तमान होकर (नः) हममें (आ=आगत्य) आकर (गमेत्) ले जावे। [इयम् कुमारी] [यह कन्या] (वरेषु) वर पक्ष वालों में (जुष्टा) प्रिय और (समनेषु) साधु विचार वालों में (वल्गुः) मनोहर है। (अस्यै) इस [कन्या] के लिये (ओषम्) शीघ्र (पत्या) पति के साथ (सौभगम्) सुहागपन (अस्तु) होवे ॥ १ ॥

भावार्थः—यहां (अग्नि) शब्द राजा के लिये है। माता पिता आदि राजव्यवस्था के अनुसार योग्य आयु में गुणवती कन्या का विवाह गुणवान् वर से करें। जिस से वह कन्या पतिकुल में सब को प्रसन्न रक्खे और आप आनन्द से रहे। इसी आशय का राजप्रकरण में मनु महाराज ने अ० ७। १५२ में वर्णन किया है—"कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्।" "कन्याओं के नियम पूर्वक दान [विवाह] का और कुमारों की रक्षा का [राजा चिन्तन करे]" ॥१॥

'ओषम्' के स्थान पर सायण भाष्य में 'ऊषम्' है ॥

भाषणहिंसादानेषु निरूपणे च-पचाद्यच्। सम्यग् भलते परिभाषते निरूपयति वा स सम्भलः। यथाविधि परिभाषकः यथाशास्त्रं निरूपकः। **आ+गमेत्**। द्विकर्मकः। आगत्य गमयेत्, नयेत्। **इमाम्**। प्रसिद्धाम्। गुणवतीम्। **कुमारीम्**। कुमार क्रीडायाम्-अच्। **वयसि प्रथमे** (पा० ४। १। २०) इति ङीप्। कन्याम्। **सह**। सहितः। **नः**। अस्मदर्थम्। **भगेन**। भजनीयेन गुणेन ऐश्वर्येण। **जुष्टा**। प्रीता, सेविता। **वरेषु**। वृञ् वरणे-अप्। यद्वा वर ईप्सायाम्-घञ् श्रेष्ठेषु वरयितृषु, वरपक्षीयेषु। **समनेषु**। सम्+अन प्राणने-घञ्। यद्वा। सम्+आङ्+णीञ् प्रापणे-अच्। सम्यग् अनिति आनीयते वा। समानं तुल्यं साधु वा। समानस्य सभावः। मन ज्ञाने-पचाद्यच्। साधुमननयुक्तेषु। **वल्गुः**। **[1]बलेर्गुक् च** (उ० १। १९) इति बल प्राणने-उप्रत्ययः, गुक् आगमः। रुचिरा। मनोहरा। **ओषम्**। उष दाहे, बधे-घञ्। क्षिप्रम्। निघ० २। १५। **पत्या**। स्वामिना सह। **सौभगम्**। सुभग-अण्। सुभगत्वम्। **अस्यै**। कुमार्यै। अन्यद् गतम् ॥

---

१. 'वलेर्गुक् च' ऐसा दन्त्योष्ठ्यादि पाठ उज्ज्वलदत्त ने उणदि में माना है। द्र० क्षीर० पृ० ७५ टि० २ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमंजुष्टं ब्रह्मंजुष्टमर्यम्णा संभृतं भगम् ।
धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम् ॥ २ ॥

सोमंऽजुष्टम् । ब्रह्मंऽजुष्टम् । अर्यम्णा । सम्ऽभृतम् । भगम् ।
धातुः । देवस्य । सत्येन । कृणोमि । पतिऽवेदनम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(धातुः) सब के धारण करने वाले (देवस्य) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर के (सत्येन) सत्य नियम से (सोमजुष्टम्) ऐश्वर्यवान् पुरुषों के प्रिय (ब्रह्मजुष्टम्) ब्रह्म ज्ञानी पुरुषों से सेवित और (अर्यम्णा) श्रेष्ठों के मान करने वाले राजा से (संभृतम्) पुष्ट किये हुए (भगम्) सेवनीय वा ऐश्वर्ययुक्त (पतिवेदनम्) पत्नी [वा पति] की प्राप्ति [विवाह] (कृणोमि) मैं करता [वा करती] हूँ ॥ २ ॥

भावार्थः—यह गृहस्थाश्रम ईश्वरकृत नियम है। इसकी रक्षा के लिये सब बड़े बड़े महात्मा प्रयत्न करते और राजा नियम बनाते हैं। उस के निर्वाह के लिये माता पिता आदि वर और कन्या को यथावत् उपदेश करें और उनका विवाह करें ॥ २ ॥

२—**सोमजुष्टम्** । अर्त्तिस्तुसुहु० (उ० १।१४०) इति षु प्रसवैश्वर्ययोः—मन्। जुषी प्रीतिसेवनयोः—क्तः। ऐश्वर्यवद्भिः प्रीतम्। **ब्रह्मजुष्टम्** । बृंहेर्नोऽच्च (उ० ४। १४६) इति बृंह वृद्धौ—मनिन्, नस्य अकारः। ब्रह्मभिः अधीतवेदैर्ब्राह्मणैर्ब्रह्मज्ञानिभिः सेवितम्। **अर्यम्णा** । अ० १। ११। १। अर्यमादित्योऽरीन् नियच्छति—निरु० ११।२३। श्रेष्ठानां मानकर्त्रा, न्यायकारिणा राज्ञा। **सम्भृतम्** । सम्यक् पोषितं वर्धितम्। **भगम्** । **पुंसि संज्ञायाम् घः प्रायेण** (पा० ३। ३। ११८) इति भज सेवायाम्—घः। **चजोः कु घिण्ण्यतोः** (पा० ७। ३।५२) इति जस्य गः। भजनीयम्। सेवनीयम्। ऐश्वर्ययुक्तम्। **धातुः** । सर्वस्य धारकस्य पोषकस्य। **देवस्य** । प्रकाशमयस्य परमेश्वरस्य। **सत्येन** । सते हितम्, सत्—यत्। यथार्थधर्मेण। **कृणोमि** । करोमि। **पतिवेदनम्** । विद्लृ लाभे, विद ज्ञाने—ल्युट्। वेदनम्=विवाहः। ज्ञानम्। **पुमान् स्त्रिया** (पा० १।२।६७) इति पत्नी च पतिश्च पती एकशेषःतयोर्वेदनं लाभः ज्ञानं विवाहोवा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति।
सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु॥३॥

इयम् । अग्ने । नारी । पतिम् । विदेष्ट । सोमः । हि । राजा । सुऽभगाम् । कृणोति । सुवाना । पुत्रान् । महिषी । भवाति । गत्वा । पतिम् । सुऽभगा । वि । राजतु ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर ! (इयम्) यह (नारी) नर [अपने पति] का हित करने वाली कन्या (पतिम्) पति को (विदेष्ट) प्राप्त करे, (हि) क्योंकि (सोमः) ऐश्वर्यवान् वा चन्द्र समान आनन्द प्रद (राजा) राजा [ऐश्वर्यवान् वर] [इस को] (सुभगाम्) सौभाग्यवती (कृणोति) करता है। [यह कन्या] (पुत्रान्) कुलशोधक वा बहुरक्षक वीर पुत्रों को (सुवाना) उत्पन्न करती हुई (महिषी) पूजनीय महारानी (भवाति) होवे, और (पतिम्) पति को (गत्वा) पाकर (सुभगा) सौभाग्यवती होकर (वि) अनेक प्रकार से (राजतु) राज्य करे ॥ ३ ॥

भावार्थः—परमेश्वर के अनुग्रह से यह दोनों पति और पत्नी, बड़े ऐश्वर्य वा ठाट वाले राजा और रानी के समान गृह कार्यों को चलावें और वीर पुत्र पौत्र आदिकों को उत्तम शिक्षा देते हुऐ सदा आनन्द भोगें ॥ ३ ॥

३—**इयम्** । निर्दिष्टा गुणवती । **अग्ने** । हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर । **नारी** । अ० १ । ११ । १ । नरस्य हिता । कन्या । वधूः । **पतिम्** । अ० १ । १ । १ । रक्षकम् । ऐश्वर्यवन्तम् । **विदेष्ट** । विदॢ लाभे—आशीर्लिङि छान्दसं रूपम् । वेदिषीष्ट । विन्दताम् । लभताम् । **सोमः** । अ० १ । ६ । २ । ऐश्वर्यवान् । चन्द्रवदानन्दप्रदः । **हि** । यस्मात् । **राजा** । अ० १ । १० । १ । ऐश्वर्यवान् । प्रतापी । **सुभगाम्** । सुष्ठु भगं यस्याः । शोभनैश्वर्यवतीम् । पतिप्रियाम् । **कृणोति** । करोति । **सुवाना** । षूङ् प्राणिगर्भविमोचने—शानच् । जनयन्ती । **पुत्रान्** । अ० १ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु महाराज ने कहा है—

संतुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥मनु० ३।६०॥

भार्या से भर्त्ता और भर्त्ता से भार्या, जिस कुल में संतुष्ट हों, वहाँ पर अवश्य ही नित्य कल्याण रहता है ॥

यथाखरो मघवंश्चारुरेष प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव ।
एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी संप्रिया पत्याविराधयन्ती ॥ ४ ॥

यथा । आऽखरः । मघऽवन् । चारुः । एषः । प्रियः । मृगाणाम् । सुऽसदाः । बभूव । एव । भगस्य । जुष्टा । इयम् । अस्तु । नारी । सम्ऽप्रिया । पत्या । अविऽराधयन्ती ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे पूजनीय, वा महाधनी परमेश्वर, (यथा) जैसे (एषः) यह (चारुः सुन्दर (आखरः) खोह वा मांद (मृगाणाम्) जंगली पशुओं का (प्रियः) प्रिय और (सुषदाः) रमणीक घर (बभूव)हुआ है [होता है], (एव =एवम्) ऐसे ही (इयम्) यह (नारी) नारी (भगस्य) ऐश्वर्यवान् [पति] की (जुष्टा) दुलारी और (संप्रिया) प्रियतमा होकर (पत्या) पति से (अविराधयन्ती) वियोग न करती हुई (अस्तु) रहे ॥ ४ ॥

---

११ । ५ । कुलशोधकान् बहुरक्षकान् वा वीरान् । **महिषी** । अ० २ । ३५ । ४ । मह पूजायाम्–टिषच् । टित्वात् ङीप् । पूजनीया । कृताभिषेका राजपत्नी । **भवाति** । भू–लेट् । भूयात् । **गत्वा** । प्राप्य । लब्ध्वा । **सुभगा** । सौभाग्यवती । **वि** । विशेषेण । **राजतु** । ईश्वरी तेजस्विनी भवतु ॥

४—**यथा** । येन प्रकारेण । **आखरः** । आङ् पूर्वात् खनु अवदारणे डर प्रत्ययः, डित्वात् टिलोपः । आखन्यते, आखरः । गर्त्तः । बिलम् । **मघवन्** । अ० २ । ५ । ७ । हे पूजनीय । हे धनवन् परमेश्वर । **चारुः** । अ० २ । ५ । १ । शोभनः । मनोज्ञः । **प्रियः** । प्री–कः । हृद्यः । सुखकरः । **मृगाणाम्** । मृग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस प्रकार आरण्यक नर नारी पशु आनन्द पूर्वक अपने बिलों में विश्राम करते हैं, इसी प्रकार मनुष्यजातीय पति पत्नी परस्पर मिल-जुल कर उपकार करते हुये सदा सुख से रहें ॥ ४ ॥

मनु भगवान् ने कहा है—

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने ।
पुत्राणां भर्त्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥ मनु० ५ । १४८ ॥

स्त्री बालकपन में पिता के, युवावस्था में पति के, और पति के मरने पर पुत्रों के वश में रहे, स्त्री स्वतन्त्रता का उपभोग न करे ॥

सायणभाष्य में 'मघवन्' के स्थान में 'मघवान्' और 'अविराधयन्ती' के स्थान में 'अभिराधयन्ती = अभि वर्धयन्ती, समृद्धा भवन्ती' है ॥

भगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम् ।
तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिक्राम्यः ॥ ५ ॥

भगस्य । नावम् । आ । रोह । पूर्णाम् । अनुपदस्वतीम् ।
तया । उपप्रतारय । यः । वरः । प्रतिक्राम्यः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—[हे कन्या !] (भगस्य) ऐश्वर्य की (पूर्णाम्) भरी भरायी और (अनुपदस्वतीम्) अटूट (नावम्) नाव पर (आ रोह) चढ़। और (तया) उस [नाव] से [अपने वर को] (उप-प्रतारय) आदर पूर्वक पार

अन्वेषणे-इगुपधत्वात् कः । पशूनाम् । **सुषदाः** । षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु-असुन् । सुखेन स्थातुं योग्यः । सुखस्थानः । **एव** । एवम् । तथा । **भगस्य** । ऐश्वर्यवतः पत्युः । **जुष्टा** । प्रीता । **अस्तु** । भवतु । **सम्प्रिया** । सम्प्रियमाणा । **पत्या** । भर्त्रा । **अविराधयन्ती** । अ+विपूर्वात् राध संसिद्धौ-शतृ, ङीप् । वियोगम् अकुर्वाणा । अन्यत् गतम् ॥

५—**भगस्य** । भजनीयस्य । ऐश्वर्यस्य । **नावम्** । **ग्लानुदिभ्यां डौः** (उ० २ । ६४) इति णुद प्रेरणे-डौः । नुद्यते जले सा नौः । समुद्रादिसन्तरणार्थयान-विशेषम् । पोतम् । समुद्रयानम् । गृहस्थाश्रमरूपम् । **आरोह** । अधितिष्ठा आरूढा भव । **पूर्णाम्** । पॄ पूरणे-क्तः तस्य नः । पूरिताम् । कृतपूरणाम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा, (यः) जो (वरः) वर (प्रति-काम्यः) प्रतिज्ञा करके चाहने [प्रीति करने] योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में गृहपत्नी की भारी उत्तरदातृता [जिम्मेदारी] का वर्णन है। जैसे नाविक खान पान आदि आवश्यक सामग्री से लदी लदायी और बड़ी दृढ़ नौका से जल यात्रियों को समुद्र से पार लगाता है, वैसे ही गृहपत्नी अपने घर को धन धान्य आदि ऐश्वर्य से भर पूर और दृढ़ रक्खे और पति को नियम बांधकर पूरे प्रेम से प्रसन्न रखकर गृहस्थाश्रम से पार लगावे ॥ ५ ॥

आ क्रन्दय धनपते वरमामनसं कृणु ।
सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः ॥ ६ ॥

आ । क्रन्दय । धनऽपते । वरम् । आऽमनसम् । कृणु । सर्वम् । प्रऽदक्षिणम् । कृणु । यः । वरः । प्रतिऽकाम्यः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(धनपते) हे धनों की रक्षा करने वाली [कन्या !] (वरम्) रव को (आ) आदर पूर्वक (क्रन्दय) बुला, और (आमनसम्) अपने मन के अनुकूल (कृणु) कर। [उस वर को] (सर्वम्) सर्वथा (प्रदक्षिणम्) अपनी दाहिनी ओर (कृणु) कर, (यः) जो (वरः) वर (प्रतिकाम्यः) नियम कर के चाहने योग्य है ॥ ६ ॥

अनुपदस्वतीम् । अन् + उप + दसु उपक्षये–क्विप् । मतुप्, मस्य वः । अखण्डिताम् । अक्षीणाम् । **तया** । नावा । **उपप्रतारय** । उप पूजया शक्त्या वा पारय । **यः** । पूर्वोक्तः । **वरः** । ऋदोरप् (पा० ३ । ३ । ५७) इति वृञ् वरणे–अप् । वरणीयः । श्रेष्ठः पतिः । जामाता । **प्रतिकाम्यः** । कमु कान्तौ–णिच्, कर्मणि यत् प्रति निश्चयेन प्रतिज्ञया कमनीयः कामनायोग्यः ॥

६—आ क्रन्दय । क्रदि आह्वाने । आदरेण आह्वय । **धनपते** । हे धनरक्षिके पत्नि । **वरम्** । वरणीयं पतिम् । **आमनसम्** । मन ज्ञाने–असुन् । अभिमुखमनस्कम् । अनुकूलचित्तम् । **कृणु** । कुरु । **सर्वम्** । सर्वथा । **प्रदक्षिणम्** । दुदक्षिभ्यामिनन् (उ० २ । ५०) इति दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे–इनन् । प्रगता दक्षिणा प्रतिष्ठा यस्य तम् । प्रतिष्ठायुक्तम् । प्रवृद्धम् । समर्थम् । प्रतिष्ठापूर्वकं स्वदक्षिणहस्तस्थितम् । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—पत्नी धनों की रक्षा करती है, वह पति को आदर पूर्वक बुलावे और उस की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता जाने, और सदा उसे अपनी दाहिनी ओर रक्खे, अर्थात् जैसे दाहिना हाथ बायें हाथ की अपेक्षा अधिक सहायक होता है, इसी प्रकार पत्नी अपने पति को सब से अधिक अपना हितकारी जानकर सदा प्रीति से सत्कार मान करती रहे। इसी विधि से पति भी पत्नी को अपना हितकारी जाने, और उस के साथ प्रीति और प्रतिष्ठा के साथ बर्ताव रक्खे ॥ ६ ॥

टिप्पणी—(१) विवाह संस्कार में वर का आसन वधू के दाहिने हाथ को किया जाता है ॥

(२) मन्त्र ५ और ६ का आशय मनु महाराज इस प्रकार कहते हैं—

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ मनु० ५ । १५० ॥

स्त्री घर के कामों में प्रसन्नचित्त और चतुर होवे, घर की सामग्री, बासन, वस्त्र आदि को संभाल कर रक्खे, और व्यय करने में हाथ संकुचित रक्खे ॥

इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः ।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे ॥ ७ ॥

इदम् । हिरण्यम् । गुल्गुलु । अयम् । औक्षः । अथो इति । भगः ।
एते । पतिऽभ्यः । त्वाम् । अदुः । प्रतिऽकामाय । वेत्तवे ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (हिरण्यम्) सुवर्ण और (गुल्गुलु) गुल्गुले [गुड़ का पका भोजन] (अथो) और (अयम्) यह (औक्षः) महात्माओं के योग्य [वा ऋषभ

७—**इदम्** । वराय दातव्यम् । **हिरण्यम्** । अ० ? । ९ । २ । हृञ् हरणे, यद्वा, हर्य गतिकान्त्योः—कन्यन्, हिरादेशश्च । हिरण्यं कस्माद्ध्रियत आयम्यमानमिति वा ह्रियते जनाज्जनमिति वा हितरमणं भवतीति वा हृदयरमणं भवतीति वा हर्यतेर्वा स्यात् प्रेप्साकर्मणः—निरु० २ । १० । सुवर्णम् । **गुल्गुलु** । **क्वादिभ्यः कित्** (उ० १ । ११५) इति गुङ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औषध सम्बन्धी] (भग) ऐश्वर्य है [और हे कन्या !] (एते) इन कन्या के पक्ष वालों ने (पतिभ्यः) पति पक्ष वालों के हितार्थ (त्वाम्) तुझे (प्रतिकामाय) प्रतिज्ञा पूर्वक कामना योग्य [पति] के लिये (वेत्तवे) लाभ पहुंचाने को (अदुः) दिया है ॥ ७ ॥

भावार्थः—कन्या के माता पिता आदि कन्या और वर को विवाह के उपरान्त दाय अर्थात् यौतुक [दैजा, जहेज़] में सुन्दर अलकार, वस्त्र भोजन पदार्थ वाहन, गौ, धन आदि देवें, और कन्या को पति सेवा की यथायोग्य शिक्षा करें जिस से पति पत्नी मिलकर सदा आनन्द भोगें ॥ ७ ॥

'गुल्गुलु' पद के स्थान पर सायणभाष्य में 'गुग्गुलु' पद है ॥

आ ते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्यः ।
त्वमस्यै धेह्योषधे ॥ ८ ॥

आ । ते । नयतु । सविता । नयतु । पतिः । यः ।
प्रतिऽकाम्यः । त्वम् । अस्यै । धेहि । ओषधे ॥ ८ ॥

भाषार्थः—[हे कन्ये] (सविता) सर्व प्रेरक, सर्व जनक परमेश्वर (ते) तेरे लिये [उस पति को] (आ नयतु) मर्यादा पूर्वक चलावे, और (नयतु)

अव्यक्तशब्दे–डप्रत्ययः, इति गुडः। अकारलोपः[1]। यद्वा गुड वेष्टने, रक्षायाम्–क्विप्। डलयोरैक्याड् डस्य लत्वम्। ततो गुड–कुः। गुड एव गुलः। गुडेन इक्षूपाकेन गुडितं वेष्टितं रक्षितं वा गुल्गुलु भोज्यम्। 'गुलगुला''–इति भाषा। **अथो**। अपि च। **औक्षः**। **श्वनुक्षन्पूषन्०** (उ० १। १५९) इति उक्ष सेचने–कनिन्। यद्वा उक्ष–कः। उक्षाः, महन्नाम–निघ० ३। ३। उक्षण उक्षते-र्वृद्धिकर्मण उक्षन्त्युदकेनेति वा-निरु० १२। ९। उक्षा ऋषभौषधिः-श० क० द्रु०। ततः अण्प्रत्ययः। महतां योग्यः। ऋषभौषधिसंबन्धी। प्रलेपनद्रव्यम्–इति सायणः। **भगः**। भज–घञ् सेवनीयम्। ऐश्वर्यम्। **एते**। कन्यापक्षीयाः। **पतिभ्यः**। वरपक्षीयेभ्यः। तेषां हिताय। **त्वाम्**। कन्याम्। **अदुः**। दात्रो लुङ्। दत्तवन्तः। **प्रतिकामाय**। प्रतिज्ञापूर्वकं कामनायोग्याय वराय। **वेत्तवे। तुमर्थे सेसेनसे०** (पा० ३। ४। ९) इति विदॢ लाभे-तवेप्रत्ययः। वेत्तुम्। लब्धुम् ॥

८—आ। समन्तात्। अनुकूलम्। **ते**। तुभ्यम्। **नयतु**। णीञ् प्रापणे। प्रेरयतु। नयनं करोतु। **सविता**। अ० १। १८। २। सर्वप्रेरकः। सर्वो पादकः

---

१. यहाँ बाहुलक से 'डकार' की इत् संज्ञा नहीं होती ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नायक बनावे, (यः पतिः) जो पति (प्रतिकाम्यः) प्रतिज्ञा पूर्वक चाहने योग्य है। (ओषधे) हे ताप नाशक परमेश्वर ! (त्वम्) तू (अस्यै) इस [कन्या] के लिये [उस पति को] (धेहि) पुष्ट रख ॥ ८ ॥

भावार्थः—यह आशीर्वाद का मन्त्र है। पति और पत्नी उस सर्वनियन्ता परमेश्वर का सदा ध्यान करते हुये परस्पर हार्दिक प्रीति रखकर वेदोक्त मर्यादा पर चलें, जिससे वे दोनों प्रधान पुरुष और प्रधान स्त्री होकर संसार में कीर्त्तिमान् होवें, और अन्न आदि औषधि के समान सुखदायक होकर सदा हृष्ट पुष्ट बने रहें ॥ ८ ॥

यजुर्वेद का वचन है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ꣳ समाः ॥ यजु० ४० । २ ॥

मनुष्य (इह) यहाँ (कर्माणि) वेदोक्त कर्मों को (कुर्वन्) करता हुआ (एव) ही (शतम्) सौ (समाः) वर्ष तक (जिजीविषेत्) जीवन की इच्छा करे ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

इति द्वितीयं काण्डम् ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिमश्री **सयाजीरावगायकवाडा-**धिष्ठित बड़ोदेपुरीगतश्रावणमासदक्षिणापरीक्षायाम् ऋक् सामाथर्ववेद-भाष्येषु लब्धदक्षिणेन श्रीपण्डित**क्षेमकरणदासत्रिवेदिना** कृते अथर्ववेदभाष्ये द्वितीयं काण्डं समाप्तम्।

इदं काण्डं प्रयागनगरे वैशाखमासे अक्षय्यायाम् [शुक्लतृतीयायाम्] १९७० तमे विक्रमीये संवत्सरे सुसमाप्तिमगात् ॥

मुद्रितम्—भाद्रकृष्ण जन्माष्टमी संवत् १९७० ता० २५ अगस्त १९१३ ॥

परमेश्वरः । **पतिः** । म० ३ । ऐश्वर्यवान् । भर्त्ता । **प्रतिकाम्यः** । म० ५ । प्रतिज्ञया कमनीयः । **अस्यै** । वधूहितार्थम् । **धेहि** । डुधाञ् धारणपोषणयोः—लोट् । धारय । पोषय । वर्धय । **ओषधे** । अ० १ । २३ । १ । हे तापभक्षक परमेश्वर ॥

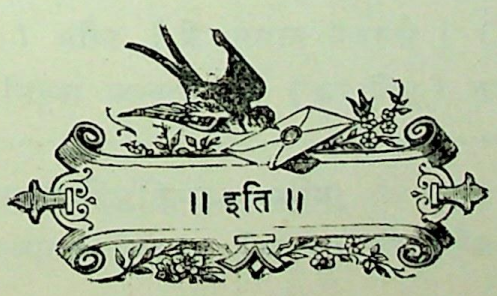

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेदः ॥

तृतीयं काण्डम्

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १ ॥

१—६ ॥ १ अग्निः, २ मरुतः, ३—६ इन्द्रश्च देवताः । १, २, ४ त्रिष्टुप्; ३, ६ अनुष्टुप्; ५ स्वराड् गायत्री ॥

युद्धविद्योपदेशः—युद्ध विद्या का उपदेश ॥

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स सेना मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥ १ ॥

अग्निः । नः । शत्रून् । प्रति । एतु । विद्वान् । प्रतिऽदहन् । अभिऽशस्तिम् । अरातिम् । सः । सेनाम् । मोहयतु । परेषाम् । निःऽहस्तान् । च । कृणवत् । जातऽवेदाः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी] (विद्वान्) विद्वान् राजा (अभिशस्तिम्) मिथ्या अपवाद और (अरातिम्) शत्रुता को (प्रति-

---

१—शब्दार्थव्याकरणादिप्रक्रिया—अग्निः । अ० १ । ६ । २ । अङ्गति गच्छति जानाति व्याप्नोतीति वा । विद्वान् । अग्निवत्तेजस्वी । अग्निशब्दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दहन्) सर्वथा भस्म करता हुआ, (नः) हमारे (शत्रून्) शत्रुओं पर (प्रति, एतु) चढ़ाई करे। (सः) वह (जातवेदाः) प्रजाओं का जानने वाला वा बहुत धनवाला राजा (परेषाम्) शत्रुओं की (सेनाम्) सेना को (मोहयतु) व्याकुल कर देवे, (च) और [उन वैरियों को] (निर्हस्तान्) निहत्था (कृणवत्) कर डाले ॥ १ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रजा में अपकीर्ति और अशान्ति फैलावे, विद्वान् अर्थात् नीतिनिपुण राजा ऐसे दुष्टों और उनके साथियों को यथावत् दण्ड देवे, जिससे वे लोग निर्बल होकर उपद्रव न मचा सकें ॥ १ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से सूक्त २ मन्त्र १ में है।

यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम्।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्वेषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् ॥ २ ॥

यूयम् । उग्राः । मरुतः । ईदृशे । स्थ । अभि । प्र । इत । मृणत । सहध्वम् । अमीमृणन् । वसवः । नाथिताः । इमे ।

भगवता यास्केन बहुधा व्याख्यातः-निरु० ७ । १४ । **नः** । अस्माकम् । **शत्रून्** । अ० २ । ५ । ३ । शातयितॄन् । द्वेष्यान् । **प्रत्येतु** । प्रतिमुखं गच्छतु । **विद्वान्** । अ० २।१।२ । विद ज्ञाने—शतृ तस्य च वसुरादेशः । जयोपायं जानन् । **प्रतिदहन्** । प्रातिकूल्येन भस्मीकुर्वन् । **अभिशस्तिम्** । शसु हिंसायाम्-क्तिन् । मिथ्यापवादम् । **अरातिम्** । शत्रुताम् । **सः** । राजा । **सेनाम्** । **कृवृजसिद्रू०** (उ० । ३ । १०) इति षिञ् बन्धने—नः । सेना सेश्वरा समान-गतिर्वा निरु० २ । ११ । सिनोति बध्नाति व्यूहं युद्धार्थम् । सैन्यम् । **मोहयतु** । व्याकुलां करोतु । **परेषाम्** । शत्रूणाम् । **निर्हस्तान्** । हस्तव्यापारशून्यान् । आयुधग्रहणासमर्थान् । **कृणवत्** । कृवि हिंसाकरणयोः-**लिङर्थेलेट्** (पा० ३।४।७) अडागमः । कुर्यात् । **जातवेदाः** । अ० १ । ७ । २ । जातप्रज्ञानः । जातधनः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निः । हि । एषाम् । दूतः । प्रतिऽएतु । विद्वान् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(मरुतः) हे शत्रुघातक शूरो ! (यूयम्) तुम (ईदृशे) ऐसे [कर्म, संग्राम] में (उग्राः) तीव्रस्वभाव (स्थ) हो । (अभि, प्र, इत) आगे बढ़ो, (मृणत) मारो, और (सहध्वम्) जीत लो । (इमे) इन (नाथिताः) प्रार्थना किये हुये (वसवः) श्रेष्ठ पुरुषों [मरुत् गणों] ने, [दुष्टों को] (अमीमृणन्) मरवा डाला है । (एषाम्) इन शत्रुओं का (दूतः) दाहकारी (अग्निः) अग्नि [समान] (विद्वान्) राजा (हि) अवश्य करके (प्रत्येतु) चढ़ाई करे ॥ २ ॥

भावार्थः—जो शूरवीर संग्राम विजयी हों, और जो बैरियों के नाश करने में सहायक रहे हों, उन वीरों को अग्रगामी करें और उनका उत्साह बढ़ाते रहें, और राजा विजयी सेनापतियों की पुष्टि करता हुआ शत्रुओं पर चढ़ाई करे ॥ २ ॥

टिप्पणी— 'मरुतः' देवताओं के लिये अ० १ । २० । १ देखिये ॥

अमित्रसेनां मघवन्नस्मान् छत्रूयतीमभि ।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्चं दहतं प्रति ॥ ३ ॥

२— **उग्राः** । उत्कठाः । **मरुतः** । अ० १।२०।१। मारयन्ति शत्रून् दोषान् वा । शत्रुनाशकाः शूराः । **ईदृशे** । इदम् + दृशिर् प्रेक्षणे–क्विन् । एतत्सदृशे कर्मणि संग्रामलक्षणे । **स्थ** । भवथ । **अभि** । आभिमुख्येन । **प्रेत** । इण् गतौ । प्रकर्षेण गच्छत । **मृणत** । मृण हिंसायाम् । मारयत । **सहध्वम्** । अभिभवत । **अमीमृणन्** । मृणतेर्णिजन्ताच्छान्दसे लुङि चङि । **उर्ऋत्, नित्यं छन्दसि** (पा० ७।४।७, ८) इति ऋदादेशः । नाशितवन्तः । **वसवः** । अ० ३ । ६ । १ । प्रशस्ता देवाः । **नाथिताः** । नाथृ याच्ञ्योपतापैश्वर्याशीःषु–क्तः । प्रार्थिताःसन्तः । **इमे** । प्रशंसिताः । **अग्निः** । ज्ञानवान् तेजस्वी वा राजा । **हि** । अवश्यम् । **एषाम्** । उपस्थितानां शत्रूणाम् । **दूतः** । अ० १ । ७ । ६ । टुदु उपतापे-क्तः, दीर्घश्च । दुनोत्युपतापयतीति । संतापकः । **प्रत्येतु** । प्रतिगच्छतु । **विद्वान्** । नीतिकुशलः ॥

---

१. सायणाचार्य ने 'ताम्' पद मानकर यहाँ अर्थ किया है । सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमित्रऽसेनाम् । मघऽवन् । अस्मान् । शत्रूऽयतीम् । अभि ।
युवम् । तान् । इन्द्र । वृत्रऽहन् । अग्निः । च । दहतम् । प्रति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे धनवान्, (वृत्रहन्) अन्धकार वा शत्रुओं के नाश करने वाले, (इन्द्र) सूर्य [समान तेजस्वी] (च) और (अग्निः) हे अग्नि [समान शत्रुदाहक] ! (युवम्) तुम दोनों (अस्मान्) हम पर (शत्रूयतीम्) शत्रुओं के समान आचरण करती हुई (अमित्रसेनाम्) बैरियों की सेना को (अभि = अभिभूय) हराकर (तान्) चोरों वा म्लेच्छों को (प्रति, दहतम्) जला डालो ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अन्धकार का नाश करके और अग्नि अशुद्धादि दुर्गुणों को जलाकर हटाते और अनेक प्रकार से उपयोगी होते हैं, ऐसे ही धनी और प्रतापी राजा कुमार्गियों को मिटाकर उपकारी होवें ॥ ३ ॥

**प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक् सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम् ॥ ४ ॥**

प्रऽसूतः । इन्द्र । प्रऽवता । हरिऽभ्याम् । प्र । ते । वज्रः ।
प्रऽमृणन् । एतु । शत्रून् । जहि । प्रतीचः । अनूचः । पराचः ।

३—**अमित्रसेनाम्** । अमित्रशब्दो व्याख्यातः—अ० २ । २८ । ३ । अम रोगे-इत्रच् । पीडकसेनाम् । **मघवन्** । हे धनवन् । **अस्मान्** । प्रजागणान् । **शत्रूयतीम्** । **उपमानादाचारे** (पा० ३।१।१०) इति शत्रु—क्यच् । **अकृत्सार्वधातुकयो०** (पा० ७।४।२५) इति दीर्घः । तदन्तात् शतरि । **उगितश्च** (पा० ४।१।६) इति ङीप् **शतुरनुमो०** (पा० ६ । १ । १७३) इति ङीप् उदात्तत्वम् । शत्रूनिव आचरन्तीम् । **अभि** । अभिभूय । **युवम्** । युवाम् । **तान्** । तर्द हिंसायाम्-डः । तर्दति हिनस्तीति तः[1] । चौरान् । म्लेच्छान् । **इन्द्र** । सूर्यवत्प्रतापिन् । **वृत्रहन्** । अ० १।२१।१ । हे अन्धकारनाशक । शत्रुघातक । **अग्निः** । हे अग्निवद् दाहक । **च** । समुच्चये । **दहतम्** । भस्मीकुरुतम् । **प्रति** । प्रातिकूल्येन ॥

१. तर्द धातु से 'डप्रत्यय करके' 'तः' बनाना क्लिष्ट कल्पना है । वस्तुतः त्यजितनि० (उ० १ । १३२) से अदि प्रत्यय करके तत् बनाकर द्वितीया में 'तान् = उन बैरियों की सेना को' ऐसा अर्थ करने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्वंक् । सत्यम् । कृणुहि । चित्तम् । एषाम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले राजन् ! (प्रवता) उत्तम गति वा मार्ग से (हरिभ्याम्) स्वीकरण और प्रापण [ग्रहण और दान] के साथ (ते) तेरा (प्रसूतः) चलाया हुआ (वज्रः) वज्र अर्थात् दण्ड (शत्रून्) शत्रुओं को (प्रमृणन्) पीड़ा देता हुआ (प्र, एतु) आगे चले । (प्रतीचः) सन्मुख आते हुए, (अनूचः) पीछे से आते हुये और (पराचः) तिरस्कार करके चलते हुये [शत्रुओं] को (जहि) नाश करदे, और (एषाम्) इन [शत्रुओं] के (चित्तम्) चित्त को (विष्वक्) सब प्रकार (सत्यम्) सत्पुरुषों का हितकारी (कृणु) बना दे ॥ ४ ॥

भावार्थः—नीतिज्ञ राजा प्रजा और शत्रुओं से कर लेकर उन के हित कार्य में लगावे, जिससे सब बाहिरी और भीतरी शत्रु लोग नष्ट होकर दबे रहें और श्रेष्ठों का पालन किया करे ॥ ४ ॥

४— प्रसूतः । षू प्रेरणे—क्तः । प्रेरितः । प्रवर्त्तितः । **इन्द्र** । हे प्रतापिन् राजन् । **प्रवता** । **उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे** (पा० ५ । १ । ११८) इति उपसर्गात् साधने धात्वर्थे वर्त्तमानात् स्वार्थे वतिः प्रत्ययः । प्रवत उद्वतो निवत इत्यवतिर्गतिकर्मा—निरु० १० । २० । प्रकृष्टगत्या मार्गेण, प्रावनेन वा । **हरिभ्याम्** । **हृषिषिरुहि०** (उ० ४ । ११९) इति हृञ् हरणे—इन् । हरणं स्वीकारः प्रापणं स्तेयं नाशनं च । हरिः स्वीकारो ग्रहणं, प्रापणं, दानं च ताभ्यां ग्रहणदानाभ्याम् । **ते** । तव । **वज्रः** । दण्डरूपः । **प्रमृणन्** । प्रकर्षेण हिंसन् । **प्र, एतु** । प्रगच्छतु । **शत्रून्** । अरातीन् । **जहि** । हन हिंसागत्योः । विनाशय । **प्रतीचः** । **ऋत्विग्दधृक्०** (पा० ३ । २ । ५९) इति प्रति+अञ्चतेः क्विन् । **अनिदिताम्०** (पा० ६ । ४ । २४) इति नलोपः । शसि । **अचः** (पा० ६ । ४ । १३८) इत्यलोपे । **चौ** (पा० ६ । ३ । १३८) इति दीर्घः । प्रतिमुखमागच्छतः शत्रून् । **अनूचः** । अनु+अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन् । पूर्ववत् सिद्धिः । अनु पश्चाद् आगच्छतः । **पराचः** । परा+अञ्चु—क्विन् । पूर्ववत् सिद्धिः । परा तिरस्कृत्य पराङ्मुखं वा गच्छतः । **विष्वक्** । विषु+अञ्चु—क्विन् । सर्वतः । **सत्यम्** । सद्भ्यो हितम् । **कृणुहि** । **उतश्च प्रत्ययाच्छन्दसि वा वचनम्** (वा० पा० ६ । ४ । १०६) इति हेरलुक् । कृणु, कुरु । **चित्तम्** । अन्तःकरणम् । **एषाम्** । शत्रूणाम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम्।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥ ५ ॥

इन्द्र। सेनाम्। मोहय। अमित्राणाम्। अग्नेः। वातस्य। ध्राज्या। तान्। विषूचः। वि। नाशय ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् (अमित्राणाम्) शत्रुओं की (सेनाम्) सेना को (मोहय) व्याकुल कर दे। (अग्नेः) अग्नि के और (वातस्य) पवन के (ध्राज्या) झोंके से (विषूचः) सब ओर फिरने वाले (तान् , चोरों को (वि, नाशय) नाश कर डाल ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजा अपनी सेना के बल से शत्रु सेना को जीते और जैसे दावानल वन को भस्म करता और प्रचंड वायु वृक्षादि को गिरा देता है, वैसे ही विघ्नकारी वैरियों को मिटाता रहे ॥ ५ ॥

इस मन्त्र का दूसरा आधा अ० ३ । २ । ३ । में आया है ॥

इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घनन्त्वोजसा।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥ ६ ॥

इन्द्रः। सेनाम्। मोहयतु। मरुतः। घनन्तु। ओजसा। चक्षूंषि। अग्निः। आ। दत्ताम्। पुनः। एतु। पराऽजिता ॥ ६ ॥

५—**इन्द्र**। हे परमैश्वर्य राजन्। **सेनाम्**। चमूम्। पृतनाम्। **मोहय**। मूढां कुरु। **अमित्राणाम्**। म० ३। पीडकानां शत्रूणाम्। **अग्नेः**। पावकस्य। **वातस्य**। पवनस्य। **ध्राज्या**। **वसिवपियजि०** (उ० ४। १२५) इति ध्रज गतौ-इञ्। वेगगत्या। **तान्**। म० ३। चौरान्। **विषूचः**। विषु+अञ्चु-क्विन्। जसि (प्रतीचः) इति शब्दवत् सिद्धिः-म० ४। सर्वतः प्राप्तान्। **वि,नाशय**। विध्वंसय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्रः) प्रतापी सूर्य (सेनाम्) [शत्रु] सेना को (मोहयतु) व्याकुल करदे। (मरुतः) दोष नाशक पवन के झोंके (ओजसा) बल से (घ्नन्तु) नाश करदें। (अग्निः) अग्नि (चक्षूंषि) नेत्रों को (आ, दत्ताम्) निकाल लेवे। [जिससे] (पराजिता) हारी हुई सेना (पुनः) पीछे (एतु) चली जावे ॥ ६ ॥

भावार्थः—युद्धकुशल सेनापति राजा अपनी सेना का व्यूह ऐसा करे जिससे उसकी सेना सूर्य, वायु और अग्नि वा बिजुली और जल के प्रयोग वाले अस्त्र, शस्त्र, विमान, रथ, नौकादि के बल से शत्रु सेना को नेत्रादि से अंग भंग करके सर्वदा हराकर भगा दे ॥ ६ ॥

सूक्तम् २ ॥

१—६ ॥ १—२ अग्निः, ३—४ इन्द्रः, ५ अप्वा। ६ मरुतो देवताः। १, ५, ६ त्रिष्टुप्, २—४ अनुष्टुप् छन्दः ॥

सेनापतिकृत्यमुपदिश्यते। सेनापति के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥

अग्निः। नः। दूतः। प्रतिऽएतु। विद्वान्। प्रतिऽदहन्। अभिऽशस्तिम्। अरातिम्। सः। चित्तानि। मोहयतु। परेषाम्। निःऽहस्तान्। च। कृणवत्। जातऽवेदाः ॥ १ ॥

६—इन्द्रः। प्रतापी सूर्यः। **मरुतः।** दोषनाशकाः वायुवेगाः। **घ्नन्तु।** हन लोट्। नाशयन्तु। **ओजसा।** शस्त्रास्त्रादीनां बलेन। **चक्षूंषि।** अक्षीणि। नेत्राणि। **अग्निः।** अग्निप्रयोगः। **आ, दत्ताम्।** अपहरतु। **पुनः।** पश्चात्। निवर्त्य। **एतु।** गच्छतु। **पराजिता।** पराभूता सती। अन्यत् सुगमं व्याख्यातं च ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी] (दूतः) अग्रगामी वा तापकारी (विद्वान्) विद्वान् राजा (नः) हमारे लिये (अभिशस्तिम्) मिथ्या अपवाद और (अरातिम्) शत्रुता को (प्रतिदहन्) सर्वथा भस्म करता हुआ (प्रत्येतु) चढ़ाई करे। (सः) वह (जातवेदाः) प्रजाओं का जानने वाला [सेनापति] (परेषाम्) शत्रुओं के (चित्तानि) चित्तों को (मोहयतु) व्याकुल कर देवे (च) और [उनको] (निर्हस्तान्) निहत्था (कृणवत्) कर डाले ॥१॥

भावार्थः—राजा सेनादि से ऐसा प्रबन्ध रक्खे कि प्रजा गण आपस में मिथ्या कलङ्क न लगावें और न वैर करें और दुराचारियों को दंड देता रहे कि वे शक्तिहीन होकर सदा दबे रहें, जिससे श्रेष्ठों को सुख मिले और राज्य बढ़ता रहे ॥ १ ॥

यह मन्त्र इसी काण्ड के सूक्त १ मन्त्र १ में कुछ भेद से है ॥

अयमग्निरमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि ।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः ॥ २ ॥

अयम् । अग्निः । अमूमुहत् । यानि । चित्तानि । वः । हृदि ।
वि । वः । धमतु । ओकसः । प्र । वः । धमतु । सर्वतः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अयम्) इस (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी राजा] ने (चित्तानि) उन ज्ञानों को (अमूमुहत्) उलट पलट कर दिया है (यानि) जो (वः) तुम्हारे (हृदि) हृदय में [थे]। वह (वः) तुमको (ओकसः) घर से (वि, धमतु) निकाल देवे, वह (वः) तुमको (सर्वतः) सब स्थान से (प्र, धमतु) बाहिर कर देवे ॥ २ ॥

१—**दूतः** । अ० १ । ७ । ६ । दु गतौ-यद्वा, टुदु उपतापे—क्तः । अग्रेसरः । उपतापकः । **चित्तानि** । अन्तःकरणानि । अन्यद् व्याख्यातम् सू० १ म० १ ॥

२—**अयम्** । समीपवर्ती । प्रसिद्धः । **अग्निः** । ज्ञानवान् । अग्निवत्तेजस्वी । **अमूमुहत्** । मुहेर्ण्यन्ताद् लुङि चङि रूपम् । व्याकुली कृतवान् । **चित्तानि** । ज्ञानानि । **वः** । युष्माकम् । **हृदि** । हृञ् हरणे-क्विप्, तुक्, तस्य दः । हृदये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस सेनापति राजा ने दुष्टों को वश में करके रक्खा था, वह राजा विरोधियों को प्रतिज्ञा भंग करने पर देश निकाला आदि दण्ड देवे ॥ २ ॥

इन्द्र चित्तानि मोहयन्नधराङाकूत्या चर ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥ ३ ॥

इन्द्र । चित्तानि । मोहयन् । अधराङ् । आङ्कूत्या । चर ।
अग्नेः । वातस्य । ध्राज्या । तान् । विषूचः । वि । नाशय ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे महाप्रतापी राजन् ! [शत्रुओं के] (चित्तानि) चित्त को (मोहयन्) व्याकुल करता हुआ (अधराङ्) हमारे सन्मुख (आकूत्या) उत्तम संकल्प से (चर) आ । (अग्नेः) अग्नि के और (वातस्य) पवन के (ध्राज्या) झोके से (तान्) उन (विषूचः) विरुद्ध गति वालों को (वि, नाशय) नाश कर डाल ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे अग्नि और वायु मिलकर प्रचंड हो जाते हैं, इसी प्रकार राजा प्रचण्ड होकर दुष्टों को दंड देवे और सत्कर्मी पुरुषों का शिष्टाचार करे ॥ ३ ॥

इस मन्त्र का दूसरा आधा अ० ३ । १ । ५ । में आ चुका है ॥

वि । विशेषेण । **वः** । युष्मान् । **धमतु** । धमति, गतिकर्मा–निघ० २ । १४ । बधकर्मा—निघ० २ । १९ । सौत्रो धातुः । अन्तर्भावितण्यर्थः । धमयतु । गमयतु । निःसारयतु । **ओकसः** । उच समवाये–असुन्, गुणः, न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वम् । गृहात् । **सर्वतः** । सर्वप्रकारेण । अन्यत् सुगमम् ॥

३—**इन्द्र** । हे परमैश्वर्यवन् राजन् । **चित्तानि** । मनांसि । **मोहयन्** । व्याकुलीकुर्वन् । **अर्वाङ्** । अवरे काले देशे वा अञ्चति । अवर+अञ्चु—क्विन् अर्वादेशः । अस्मदभिमुखः । **आकूत्या** । आङ्+कूङ् शब्दे–क्तिन् । संकल्पेन । अन्यद् व्याख्यातं सू० १ म० ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत ।
अथो यदुद्यैषां हृदि तदेषां परि निर्जहि ॥ ४ ॥

वि । आऽकूतयः । एषाम् । इत । अथो इति । चित्तानि । मुह्यत । अथो इति । यत् । अद्य । एषाम् । हृदि । तत् । एषाम् । परि । निः । जहि ॥ ४ ॥

भाषार्थः—हे (एषाम्) इन [शत्रुओं] के (आकूतयः) विचारो ! (वि) उलट पलट होकर (इत) चले जाओ, (अथो) और हे (चित्तानि) इनके चित्तो ! (मुह्यत) व्याकुल हो जाओ ।

(अथो) और [हे राजन्] (यत्) जो कुछ [मनोरथ] (अद्य) अब (एषाम्) इनके (हृदि) हृदय में है, (एषाम्) इनके (तत्) उस [मनोरथ] को (परि) सर्वथा (निर्जहि) नाश कर दे । ४ ॥

भावार्थः—नीतिकुशल राजा दुराचारियों में परस्पर मतभेद करादे और उनका मनोरथ सिद्ध न होने दे ॥ ४ ॥

अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्या मित्रांस्तमसा विध्य शत्रून् ॥ ५ ॥

अमीषाम् । चित्तानि । प्रतिऽमोहयन्ती । गृहाण । अङ्गानि । अप्वे । परा । इहि । अभि । प्र । इहि । निः । दह । हृत्ऽसु ।

४—आकूतयः । म० ३ । हे सङ्कल्पाः । मनोरथाः । **एषाम्** । शत्रूणाम् । **वि, इत** । विरोधेन गच्छत । **अथो** । अपि च । **चित्तानि** । मनांसि । **मुह्यत** । व्याकुलानि भवत । **यत्** । प्रयोजनम् । **अद्य** । इदानीम् । **हृदि** । मनसि । **तत्** । प्रयोजनम् । **परि** । परितः । सर्वतः । **निः** । नितराम् । **जहि** । नाशय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोकैः । ग्राह्या । अमित्रान् । तमसा । विध्य । शत्रून् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(अप्वे) हे शत्रुओं को मार डालने वा हटा देने वाली सेना (अमीषाम्) उन [शत्रुओं] के (चित्तानि) चित्तों, और (अङ्गानि) शरीर के अवयवों और सेना विभागों को (प्रतिमोहयन्ती) व्याकुल करती हुई (गृहाण) पकड़ ले, और (परा, इहि) पराक्रम से चल । (अभि) चारों ओर से (प्र, इहि) धावा कर (हृत्सु) उनके हृदयों में (शोकैः) शोकों से (निर्दह) जलन करदे, और (ग्राह्या) ग्रहण शक्ति [बन्धनादि] से और (तमसा) अन्धकार से (अमित्रान्) पीड़ा देने वाले (शत्रून्) शत्रुओं को (विध्य) छेद डाल ॥ ५ ॥

भावार्थः—सेनापति इस प्रकार व्यूह रचना करे कि उसकी उत्साहित सेना धावा करके अश्ववार अश्ववारों को, रथी रथियों को, पदाति पदातियों को व्याकुल करदे, अर्थात् आग्नेय अस्त्रों से धूंआ धड़क, और वारुणेय अस्त्रों से बन्धन में करके जीत लें ॥ ५ ॥

इस मन्त्र का ऋग्वेद १० । १०३ । १२ । यजुर्वेद १७ । ४४ । सामवेद उ० ९ । ३ । ५ तथा निरुक्त ९ । ३३ में इस प्रकार समान पाठ है ॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥

(अप्वे) हे शत्रुओं को मार डालने वा हटा देने वाली सेना ! (अमीषाम्) उनके (चित्तम्) चित्त को (प्रतिलोभयन्ती) व्याकुल करती हुई (अङ्गानि) अङ्गों को (गृहाण) पकड़ ले और (परा, इहि) पराक्रम से चल । (अभि)

५—**अमीषाम्** । अदस्-इत्यस्य रूपम् । परिदृश्यमानानां शत्रूणाम् । **चित्तानि** । मनांसि । **प्रतिमोहयन्ती** । मुह वैचित्ये-हेतौ शतृ । सर्वथा व्याकुलीकुर्वती । **गृहाण** । वशीकुरु । **अङ्गानि** । शरीरावयवान् । सेना-विभागान् । **अप्वे** । **अन्येष्वपि दृश्यते** (पा० ३ । २ । १०१) इति अपपूर्वात् वा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों ओर से (प्र, इहि) आगे बढ़ (हृत्सु) उनके हृदयों में (शोकैः) शोकों से (निर्दह) जलन कर दे। (अन्धेन) गाढ़े [दृष्टि रोकने वाले] (तमसा) अन्धकार से (अमित्राः) पीड़ा देने वाले लोग (सचन्ताम्) संयुक्त हो जावें ।।

असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना । तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥ ६ ॥

असौ । या । सेना । मरुतः । परेषाम् । अस्मान् । आऽएति । अभि । ओजसा । स्पर्धमाना । ताम् । विध्यत । तमसा । अपऽव्रतेन । यथा । एषाम् । अन्यः । अन्यम् । न । जानात् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(मरुतः) हे शूर पुरुषो ! (परेषाम्) बैरियों की (असौ) वह (या) जो (सेना) सेना (अस्मान्) हम पर (अभि) चारों ओर से (ओजसा) बल के साथ (स्पर्धमाना) ललकारती हुई (आ-एति) चढ़ी

गतिहिंसनयोः, अथवा, वेञ् तन्तुसन्ताने, अन्तर्भावितण्यर्थात् उप्रत्ययः। अथवा **शेवायह्वाजिह्वाग्रीवाऽप्वामीवाः** (उ० १। १५४) इति आप्लृ व्याप्तौ-वन्। टाप्। छान्दसं रूपम्। अप्वा यदेनया विद्धोऽपवीयते। व्याधिर्वा भयं वा। निरु० ६। १२। अपवाति हिनस्ति, यद्वा, अपवयति अपगमयति वा आप्नोति शत्रून् सा अप्वा तत्संबुद्धौ। **परा**। पराक्रमेण। **इहि**। गच्छ। **अभि**। अभितः, सर्वतः। **प्र**। प्रकर्षेण। **निः**। नितराम्। **दह**। दहनं कुरु। **हृत्सु**। हृदयेषु। **शोकैः**। शुच शोके—घञ्। खेदैः। **ग्राह्या**। अ० २। ९। १। ग्रह आदाने इञ्। ग्रहण—शक्त्या। बन्धनादिना। **अमित्रान्**। अ० १। १९। २। पीडकान्। **तमसा**। अन्धकारेण। आग्नेयास्त्रोत्थितेन धूमेनेत्यर्थः। **विध्य**। व्यध ताडने, छेदने। ताडय। छिन्धि। **शत्रून्**। अ० २। ५। ३ शातयितॄन्। हिंसकान् ।।

६—असौ। परिदृश्यमाना। **या सेना**। सू० १ म० १। सैन्यम्। **मरुतः**। अ० १। २०। १। हे शत्रुमारणशीलाः। शूराः। **आ-एति**।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आती है। (ताम्) उसको (अपव्रतेन) क्रियाहीन कर देने वाले (तमसा) अन्धकार से (विध्यत) छेद डालो, (यथा) जिससे (एषाम्) इनमें से (अन्यः) कोई (अन्यम्) किसी को (न) न (जानात्) जाने ॥ ६ ॥

भावार्थः—सेनापति अपनी पलटनों को घातस्थानों में इस प्रकार खड़ा करे कि आती हुयी शत्रुसेना को रोक कर सब नष्ट करदेवें ॥ ६ ॥

(मरुतः) शब्द के लिये अ० १ । २० । ६ । देखो ॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में इस प्रकार है—

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ऽओजसा स्पर्धमाना ।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथामी ऽअन्योऽअन्यन्न जानन् ॥ यजु० १७। ४७ ॥

(मरुतः) हे शूरो ! (परेषाम्) बैरियों की (असौ या सेना) वह जो सेना (नः) हमको (अभि) चारों ओर से (ओजसा स्पर्धमाना) बल के साथ ललकारती हुयी (आ, एति) चली आती है। (ताम्) उसको (अपव्रतेन तमसा) क्रियाहीन कर देने वाले अन्धकार से (गूहत) ढक दो, (यथा) जिससे (अमी) वे लोग (अन्यः, अन्यम्) एक दूसरे को (न जानन्) न जानें ॥

आगच्छति । **अभि** । सर्वतः । **ओजसा** । बलेन । **स्पर्धमाना** । स्पर्ध संघर्षे—लटः शानच् । संघर्षं युद्धोद्यमं कुर्वाणा । **ताम्** । सेनाम् । **विध्यत** । ताडयत । छिन्त । **तमसा** । अन्धकारेण । **अपव्रतेन** । व्रतं कर्म—निघ० २ । १ । अपगतकर्मणा । सर्वव्यापारविघातकेन । **यथा** । येन प्रकारेण । **एषाम्** । उपस्थितानां शत्रूणाम् । **अन्यः** । कश्चित् । **अन्यम्** । कमपि । **न** । निषेधे । **जानात्** । ज्ञा अवबोधने-लेट् । **इतश्च लोपः परस्मैपदेषु** (पा० ३ । ४ । ९७) इति इकारलोपः । जानीयात् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥ ३ ॥

१-६ ॥ इन्द्रो देवता । १-४ त्रिष्टुप्, ५, ६ अनुष्टुप् छन्दः ॥

राजाप्रजाधर्मोपदेशः राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश ॥

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरूची । युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम् ॥ १ ॥

अचिक्रदत् । स्वऽपाः [सुऽअपाः] । इह । भुवत् । अग्ने । वि । अचस्व । रोदसी इति । उरूची इति । युञ्जन्तु । त्वा । मरुतः । विश्वऽवेदसः । आ । अमुम् । नय । नमसा । रातऽहव्यम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अचिक्रदत्) उस (परमेश्वर) ने पुकार कर कहा है, "(इह) यहां पर (स्वपाः) अपने जनों का पालने वाला, अथवा, उत्तम कर्मों वाला प्राणी (भुवत्) होवे ।"

(अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वि राजन् !] (उरूची) बहुत पदार्थों को प्राप्त करानेवाले (रोदसी) सूर्य और पृथ्वी में (वि) विविध प्रकार से (अचस्व) गति कर । (विश्ववेदसः) सब प्रकार के ज्ञान या ध्यान वाले (मरुतः) शूर और विद्वान् पुरुष (त्वा) तुझसे (युञ्जन्तु) मिलें । [हे राजन्] (रातहव्यम्) भेंट वा भक्ति का दान करने वाले (अमुम्) उस [प्रजा गण] को (नमसा) अन्न वा सत्कार के साथ (आ, नय) अपने समीप ला ॥ १ ॥

१—**अचिक्रदत्** । क्रदि आह्वाने रोदने च-ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम्, नुमभावः । आहूतवान्, शब्दमकरोत् । **स्वपाः** । स्व+पा रक्षणे-विच् । अथवा । **आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट्, च वा** (उ० ४ । २०८) इति सु+आप्ल् व्याप्तौ असुन् । स्वकीयप्रजापालकः । शोभनकर्मा । **इह** । अत्र । अस्मिन् जन्मनि लोके वा । **भुवत्** । भू—लेट् । भवेत् । **वि** । विविधम् । **अचस्व** । अचु गतौ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर ने यजुर्वेद में भी कहा है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ꣳ समाः ॥ यजु० ४० । २ ॥

मनुष्य (इह) यहाँ पर (कर्माणि कुर्वन् एव) कर्मों को करता हुआ ही (शतं समाः) सौ वर्षों तक (जिजीविषेत्) जीना चाहे ॥

इस प्रकार राजा परमेश्वर की आज्ञा पालन और स्वप्रजापालन में कुशल होकर सूर्य विद्या और पृथिवी आदि विद्या में निपुण बन कर विज्ञानी होवे, शूरवीर विद्वान् लोग उससे मिलें और राजा उन भक्त प्रजागणों का सत्कार करे ॥ १ ॥

दूरे चित् सन्तमरुषास इन्द्रमा च्यावयन्तु सख्याय विप्रम् । यद् गायत्रीं बृहतीमर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः ॥ २ ॥

दूरे । चित् । सन्तम् । अरुषासः । इन्द्रम् । आ । च्यावयन्तु ।

गच्छ । प्राप्नुहि । **रोदसी** । अ० १ । ३२ । ३ । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति रुधिर् आवरणे-असुन् । गौरादित्वात् ङीष् । धकारस्य दकारः । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति पूर्वसवर्णः । आभ्यां हि रुद्धानि सर्वभूतानि । रोदस्यौ । द्यावापृथिव्यौ—निघ० ३ । ३० । भूमिस्वर्गौ । **उरूची** । उरु बहुनाम-निघ० ३ । १ । **ऋत्विग्दधृक्०** (पा० ३ । २ । ५९) इति उरु+अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन् अनलोपो दीर्घश्च । **अश्वतेश्चोपसंख्यानम्** (वा० पा० ४।१।६) इति ङीप् । ङीप उदात्तत्वम् । पूर्ववत् पूर्वसवर्णः । उरवो बहवः पदार्था अञ्चन्ति गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति याभ्यां ते उरूच्यौ । बहुपदार्थप्रापिके । **युञ्जन्तु** । प्राप्नुवन्तु । **त्वा** । त्वाम् । **मरुतः** । अ० १ । २० । १ । शूराः । विद्वांसः । **विश्ववेदसः** । विश्व+विद ज्ञाने, वा विदॢ लाभे-असुन् । सर्वविषयज्ञातारः । सर्वधनयुक्ताः । **अमुम्** । परिदृश्यमानं प्रजागणम् । **आ, नय** । समीपे प्रापय । **नमसा** । अन्नेन—निघ० २ । ७ । सत्कारेण । **रातहव्यम्** । हु दानादानप्रीणनेषु—यत् । हूयते हव्यम् । रात्तं दत्तं हव्यं देवान्नं देवपूजनं येन तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सख्याय । विप्रम् । यत् । गायत्रीम् । बृहतीम् । अर्कम् । अस्मै । सौत्रामण्या । दधृषन्त । देवाः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अरुषासः = ०-षाः) गति शील [उद्यमी] पुरुष (दूरे) दुर्गम वा दूर देश में (चित्) भी (सन्तम्) विद्यमान (विप्रम्) बुद्धिमान् (इन्द्रम्) बड़े प्रतापी राजा को (सख्याय) अपना सखा बनाने के लिये (आ, च्यावयन्तु) ले आवें । (यत्) क्योंकि (देवाः) व्यवहार कुशल महात्माओं ने (गायत्रीम्) गान क्रिया, (बृहतीम्) स्तुति क्रिया और (अर्कम्) अन्न वा सत्कार क्रिया को (अस्मै) इस [इन्द्र] के लिये (सौत्रामण्या) सुत्रामा [उत्तम रक्षक] के योग्य भक्ति के साथ (दधृषन्त) एकत्र किया है ॥ २ ॥

भावार्थः—उद्योगी प्रजागण प्रजापालक नीतिकुशल राजा को दूर देश से भी अपनी सहायता के लिये बुलावें, और अनेक प्रकार से उसका उत्साह और अपना आनन्द बढ़ाने के लिये उसका योग्य अभिनन्दन करें, और गायत्री, बृहती आदि छन्दों से भी उसका यश गावें ॥ २ ॥

२—**दूरे । दुरीणो लोपश्च** (उ० २ । २०) इति दुर्+इण गतौ—रक्, इणो लोपो दीर्घश्च । दुःखेनेयते प्राप्यते । दुर्गमे विप्रकृष्टे वा स्थाने । **चित् ।** अपि । **सन्तम् ।** अस-शतृ । विद्यमानम् । **अरुषासः । ऋहनिभ्यामूषन्** (उ० ४ । ७३) ऊषन्नेव उषन् । इति ऋ गतिप्रापणयोः—उषन् । जसि असुक् । अरुषः = अश्वः—निघ० १ । १४ । अरुष आरोचनात्—निरु० १२ । ७ । गतिशीलाः । ज्ञानिनः । उद्योगिनः पुरुषाः । **इन्द्रम् ।** ऐश्वर्यवन्तं सम्राजम् । **आ, च्यावयन्तु ।** च्यु हसने, सहने । वेदे च गतौ । आगमयन्तु । **सख्याय । सख्युर्यः** (पा० ५ । १ । १२६) इति सखि—य । सखिकर्मणे । साहाय्याचरणाय । **विप्रम् । ऋज्रेन्द्राग्रवज्रविप्र०** (उ० । २ । २८) इति डुवप बीजसन्ताने—रन् इत्वं गुणाभावश्च निपात्येते । वपति धर्ममिति । यद्वा । **आतोऽनुपसर्गे कः** (पा० ३ । २ । ३) इति वि+प्रा पूरणे—कः । विशेषेण पूरयति सद्विषयानिति विप्रः । विप्राणां व्यापनकर्मणामादित्यरश्मीनाम्—निरु० १४ । १३ । मेधाविनम्—निघ० ३ । १५ । **यत् ।** यस्मात् कारणात् । **गायत्रीम् । आतोऽनुपसर्गे कः** (पा० ३ । २ । ३) इति गायत्+त्रैङ् पालने—कः । ततो ङीष् । गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः—निरु० ७ : १२ । गानक्रियाम् स्तुतिम् । **बृहतीम् ।** वर्त्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छत्-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्भ्यस्त्वा राजा वरुणो ह्वयतु सोमस्त्वा ह्वयतु पर्वतेभ्यः। इन्द्रस्त्वा ह्वयतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ॥ ३ ॥

अत्ऽभ्यः। त्वा। राजा। वरुणः। ह्वयतु। सोमः। त्वा। ह्वयतु। पर्वतेभ्यः। इन्द्रः। त्वा। ह्वयतु। विट्ऽभ्यः। आभ्यः। श्येनः। भूत्वा। विशः। आ। पत। इमाः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे राजराजेश्वर !] (वरुणः) अति श्रेष्ठ (राजा) शासन कर्ता पुरुष (त्वा) तुझको (अद्भ्यः) प्राणों के लिये (ह्वयतु) बुलावे, (सोमः) औषधों का रस निकालने वाला [वैद्यराज] (त्वा) तुझको (पर्वतेभ्यः) [शरीर की] पुष्टियों के लिये (ह्वयतु) बुलावे। (इन्द्रः) बड़ा प्रतापी सेनापति

वच्च (उ० २। ८४) इति बृह बृद्धौ—अति, गौरादित्वात् ङीष्। बृहती परिबर्हणात्—निरु० ७। १२। वृद्धिम्। कीर्त्तिम्। **अर्कम्। कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः** (उ० ३। ४०) इति अर्च पूजायाम्—कः। यद्वा। अर्क स्तवने-अच्। अर्को देवो भवति यदेनमर्चन्त्यर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्त्यर्कमन्नभवत्यर्चति भूतान्यर्को वृक्षो भवति सवृत्तः कटुकिम्ना—निरु० ५। ४। सत्कारम्। अन्नम्। **अस्मै**। इन्द्राय। **सौत्रामण्या। सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उ० ४। १४५) इति सु+त्रैङ् पालने-मनिन्। **साऽस्य देवता** (पा० ४। २। २४) इति सुत्रामन् अण्। बाहुलकात् न टिलोपः, स्त्रियां ङीप्। महारक्षकयोग्यां भक्तिं पूजां वा। **दधृषन्त**। धृष संहतौ। संगृहीतवन्तः। अधारयन्। **देवाः**। व्यवहारकुशलाः। विद्वांसः॥

३—अद्भ्यः। आप्नोतेर्ह्रस्वश्च उ० २। ५८) इति आप्लृ व्याप्तौ—क्विप्। आपः=अन्तरिक्षम्—निघ० १। ३। उदकानि—निघ० १। १२। भूस्थानदेवताः, आप आप्नोतेः-निरु० ९। २६। प्राणा जलानि वा-यजु० ४। ७। **आभ्यः** प्रजाः—य० वे० ६। २७, दयानन्दभाष्ये। प्राणेभ्य। प्रजाभ्यः। **त्वा**। सम्राजम्। **राजा**। अ० १। १०। १। राजृ दीप्तौ, ऐश्वर्ये च-कनिन्। ऐश्वर्यवान्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा निधिपति(त्वा) तुझको (आभ्यः विड्भ्यः) इन प्रजाओं के लिये (ह्वयतु) बुलावे [हे महाराजाधिराज !] (श्येनः) शीघ्र गति वाला [वा बाज पक्षी के समान शीघ्रगति वाला] (भूत्वा) होकर (इमाः) इन (विशः) प्रजाओं में (आ, पत) उड़कर आ ॥ ३ ॥

भावार्थः—राजा वरुण, सोम, इन्द्रादि पदवी वाले बड़े २ अधिकारी अपने अधिकार की उन्नति के लिये राजाज्ञा का पालन करें और प्रधान राजा अपनी प्रजा के हित का उद्योग सदा करता रहे ॥ ३ ॥

श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् । अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं त इमं संजाता अभिसंविशध्वम् ॥ ४ ॥

श्येनः । हव्यम् । नयतु । आ । परस्मात् । अन्यऽक्षेत्रे । अपऽरुद्धम् । चरन्तम् । अश्विना । पन्थाम् । कृणुताम् ।

वरुणः । अ० १ । ३ । ३ । वृञ् वरणे—उनन् । वरणीयः पुरुषः । दुष्टनिवारकः । **ह्वयतु** । आकारयतु । **सोमः** । अ० १ । ६ । २ । षुञ् अभिषवे-मन् । सुनोति यः । ओषधिरसानां निःसारकः । वैद्यराजः । **पर्वतेभ्यः** । **भृमृदृशियजिपर्वि०** । (उ० ३ । ११) इति पर्व पूरणे—अतच् । पूर्त्तिभ्यः । पुष्टिभ्यः । **इन्द्रः** । ऐश्वर्यवान् । सेनापतिः । निधिपतिः । **विड्भ्यः** । अ० १ । २१ । १ । विश प्रवेशने—क्विप् । विशः, मनुष्याः—निघ० २ । ३ । प्रजाः । **आभ्यः** । परिदृश्यमानाभ्यः । **श्येनः** । **श्यास्त्याहृञ्भ्रिभ्य इनच्** (उ० २ । ४६) इति श्यैङ् गतौ - इनच् । श्येनासः = अश्वाः—निघ० १ । १४ । श्येनः शंसनीयं गच्छति—निरु० ४ । २४ । श्येन आदित्य आत्मा च भवति श्यायतेर्गतिकर्मणः—निरु० १४।१३ । शीघ्रगतिः । श्येनपक्षिवच्छीघ्रगामी । **भूत्वा** । **विशः** । प्रजाः । **आ पत** । शीघ्रमागच्छ **इमाः** । उपस्थिताः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुऽगम् । ते । इमम् । सऽजाताः । अभिऽसंविशध्वम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(श्येनः) शीघ्रगति वाले आप (अन्यक्षेत्रे) परदेश में (अपरुद्धम्) रोक दिये गये (चरन्तम्) उत्तम आचरण करते हुये (हव्यम्) बुलाने योग्य पुरुष को (परस्मात) दूर देश से (आ नयतु) समीप लावें। (अश्विना = ० - नौ) सूर्य और चन्द्रमा (ते) तेरे (पन्थाम् = पन्थानम्) मार्ग को (सुगम) सुगम (कृणुताम्) करें। (सजाताः) हे सजातीय लोगो ! (इमम्) इस [वीर पुरुष] से (अभि-सं-विशध्वम्) चारों ओर से मिलो ॥ ४ ॥

भावार्थः—यदि कोई सत्पुरुष प्रजागण परदेश में रोक दिया गया हो, राजा उसे प्रयत्न पूर्वक बुला लेवे। और सूर्य चन्द्रमा के समान नियम से प्रजा पालन करे जिससे सब प्रजागण उससे मिले रहें ॥ ४ ॥

ह्वयन्तु त्वा प्रतिऽजनाः प्रति मित्रा अवृषत ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ॥ ५ ॥

ह्वयन्तु । त्वा । प्रतिऽजनाः । प्रति । मित्राः । अवृषत ।

४---**श्येनः** । म० ३ । शीघ्रगतिः पुरुषः । **हव्यम्** । ह्वेञ्-यत् । आह्वातव्यम् । **नयतु** । प्रापयतु । **आ** । समीपे । **परस्मात्** । दूरदेशात् । **अन्यक्षेत्रे** । परभूमौ । **अपरुद्धम्** । निरुद्धम् । **चरन्तम्** । चर गतौ, भक्षणे, आचारे च—शतृ । शुभाचारवन्तम् । **अश्विना** । अ० २ । २९ । ६ । सूर्याचन्द्रमसौ—निरु० १२ । १ । **पन्थाम्** । छान्दसो नलोपः । पन्थानम् । **कृणुताम्** । कुरुताम् । **सुगम्** । **सुदुरोरधिकरणे** (वा० पा० ३ । २ । ४८) इति सु + गम्लृ-ड । सुखेन गन्तव्यम् । **ते** । तव । **इमम्** । प्रशंसितं राजानम् । **सजाताः** । हे समानजन्मानाः । सजातीयाः बान्धवः । **अभिसंविशध्वम्** । विशेश्छन्दस्यात्मनेपदम् । अभितः संगच्छध्वम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्राग्नी इति । विश्वे । देवाः । ते । विशि । क्षेमम् । अधदीरन् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(प्रतिजनाः) प्रतिकूल जन (त्वा) तुझे (ह्वयन्तु) बुलावें । (मित्राः) स्नेही पुरुषों ने (प्रति) प्रत्यक्ष (अवृषत) सेवा की है । (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि [के समान गुणवाले] (ते) उन (विश्वे देवाः) सब तेजस्वी पुरुषों ने (विशि) प्रजा में (क्षेमम्) कुशल (अदीधरन्) स्थापित की है ॥५॥

भावार्थः—जिस राजा को प्रजा गण चुनते हैं, बैरी लोग उस राजा के आधीन रहते हैं । और विद्वान् शूर वीर पुरुष प्रजा में उन्नति करते हैं ॥ ५ ॥

यस्ते हवं विवदत् सजातो यश्च निष्ट्यः ।
अपाञ्चमिन्द्र तं कृत्वाथेममिहाव गमय ॥ ६ ॥

यः । ते । हवम् । विऽवदत् । सऽजातः । यः । च । निष्ट्यः । अपाञ्चम् । इन्द्र । तम् । कृत्वा । अथ । इमम् । इह । अव । गमय ॥६॥

भाषार्थः—(अथ) और (इन्द्र) हे महाप्रतापी राजन् ! (यः) जो

५—**ह्वयन्तु** । आह्वयन्तु । **त्वा** । त्वां धर्मात्मानम् । **प्रतिजनाः** । प्रतिकूलजनाः । शत्रवः । **प्रति** । प्रत्यक्षम् । **मित्राः** । अ० १ । ३ । २ । स्नेहिनः । **अवृषत** । वृङ् संभक्तौ—छान्दसे लुङि रूपम् । सेचितवन्तः । **इन्द्राग्नी** । वायुपावकौ । तद्वदगुणवन्तः पुरुषाः । **विश्वे** । सर्वे । **देवाः** । तेजस्विनो व्यवहारिणो वा जनाः । **ते** । उदात्तोऽयंशब्दः । प्रसिद्धाः । **विशि** । प्रजायाम् । **क्षेमम्** । **अर्त्तिस्तुसुहुसृधृक्षिक्षु०** (उ० १ । १४०) इति क्षि क्षयैश्वर्ययोः—मन् । क्षयति दुःखं नाशयतीति, ऐश्वर्यवान् भवतीति वानेन । कुशलम् । ऐश्वर्यम् । **अदीधरन्** । धृञ् धारणे—ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् धृतवन्तः ॥

६—**यः** । यः पुरुषः । **ते** । तव । **हवम्** । ह्वेञ् आह्वाने—अप् । आवाहनम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सजातः) सजातीय, (च) और (यः) जो (निष्टचः) विजातीय पुरुष (ते) तेरे (हवम्) विज्ञापन में (विवदत्) विवाद करे, (तम्) उसको (अपाञ्चम्) बहिष्कृत [देश बाहिर] (कृत्वा) करके (इमम्) इस [विज्ञापन] को (इह) यहां पर (अव, गमय) जता दे ॥ ६ ॥

भावार्थः—राजा अपने और पराये का विचार छोड़ पक्षपात रहित होकर शान्तिनाशक विवादी पुरुष को देश बाहिर कर दे, और यह विज्ञापन राज्य भर में प्रसिद्ध कर दे जिससे फिर कोई धर्म विरुद्ध चेष्टा न करे ॥ ६ ॥

सूक्तम् ४ ॥

१----७ ॥ इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राज्याभिषेकोत्सवः—राज तिलक का उत्सव ।

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज । सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्यन्तूप सद्यो नमस्यो भवेह ॥ १ ॥

आ । त्वा । गन् । राष्ट्रम् । सह । वर्चसा । उत् । इहि । प्राङ् । विशाम् । पतिः । एकऽराट् । त्वम् । वि । राज ।

विज्ञापनम् । **विवदत्** । वि पूर्वाद् वदेर्लेटि अडागमः । विरुद्धं वदेत् । विवादयेत् । **सजातः** । समानजातीयः । बान्धवः । **निष्टचः** । **अव्ययात् त्यप्** (पा० ४। २। १०४) इत्यत्र **निसो गते** इति वार्त्तिकेन-निस् + त्यप् । **ह्रस्वात्तादौ तद्धिते** (पा० ८ । ३ । १०१) इति षत्वम् । निर्गतो वर्णाश्रमादिभ्यः । म्लेच्छः । चाण्डालः । **अपाञ्चम्** । अप + अञ्चु गतिपूजनयोः-क्विन् । अपगतम् । बहिर्गतम् । बहिष्कृतम् । **इन्द्र** । परमैश्वर्यवन् राजन् । **तम्** । विवादिनम् । **कृत्वा** । विधाय । **अथ** । तदनन्तरम् । **इमम्** । हवम् । **इह** । अस्मिन् राज्ये । **अव गमय** । बोधय । ज्ञापय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वाः । त्वा । राजन् । प्रऽदिशः । ह्वयन्तु । उपऽसद्यः । नमस्यः । भव । इह ॥ १ ॥

भाषार्थः—(राजन्) हे राजन् ! (राष्ट्रम्) यह राज्य (त्वा) तुझको (आ, गन्=अगमत्) प्राप्त हुआ है । (वर्चसा सह) तेज के साथ (उत्+इहि=उदिहि) उदय हो । (प्राङ्) अच्छे प्रकार पूजा हुआ, (विशाम्) प्रजाओं का (पतिः) रक्षक, (एकराट्) एक महाराजाधिराज (त्वम्) तू (वि, राज) विराजमान हो । (सर्वाः) सब (प्रदिशः) पूर्वादि दिशायें (त्वा) तुझको (ह्वयन्तु) पुकारें । (उपसद्यः) सबका सेवनीय और (नमस्यः) नमस्कार योग्य (इह) यहां पर [अपने राज्य में] (भव) तू हो ॥ १ ॥

भावार्थः—राजा सिंहासन पर विराज कर महाप्रतापी और प्रजापालक हो, सब दिशाओं में उसकी दुहाई फिरे, और सब प्रजागण उसकी न्यायव्यवस्था पर चलकर उसका सदा आदर और अभिनन्दन करते रहें ॥ १ ॥

१—त्वा । त्वां शूरवीरम् । **आ, गन्** । गमेर्लुङि । **मन्त्रेघस०** (पा० २ । ४ । ८०) इति च्लेर्लुक् । **मो नो धातोः** (पा० ८ । २ । ६४) इति नत्वम् । आगमत् । प्राप्तम् । **राष्ट्रम्** । अ० १ । २९ । १ । राज्यम् । **सह** । सहितम् । **वर्चसा** । तेजसा । **उदिहि** । उदितः प्रख्यातो भव । **प्राङ्** । **ऋत्विग्दधृक्०** (पा० ३ । २ । ५९) इति प्र+अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन् । सम्यक् पूजितः । **विशाम्** । प्रजानाम् । **पतिः** । पालकः । **एकराट्** । **सत्सूद्विष०** (पा० ३ । २ । ६१) इति एक+राज्—क्विप् । मुख्यो राजा । **वि राज** । विशेषेण दीप्यस्व, ईश्वरो भव । **सर्वाः** । निखिलाः । **राजन्** । हे नृपते । **प्रदिशः** । अ० १ । ११ । २ । प्रकृष्टा दिशः । प्राच्याद्याः । तत्रस्था जनाः । **ह्वयन्तु** । स्वामित्वेन अनुजानन्तु । **उपसद्यः** । उप+षदॢ गतौ—यत् । सर्वैरुपसदनीयः । सेवनीयः । **नमस्यः** । नमस्य नामधातुः+कर्मणि यत् । नमस्कारयोग्यः । **इह** । अस्मिन् राज्ये । **भव** । वर्त्तस्व ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः ।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥ २ ॥

त्वाम् । विशः । वृणताम् । राज्याय । त्वाम् । इमाः । प्रऽदिशः । पञ्च । देवीः । वर्ष्मन् । राष्ट्रस्य । ककुदि । श्रयस्व । ततः । नः । उग्रः । वि । भज । वसूनि ॥ २ ॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (त्वाम्) तुझको (राज्याय) राज्य के लिये (विशः) प्रजायें, और (त्वाम्) तुझको ही (इमाः) यह सब (पञ्च) विस्तीर्ण वा पांच (देवीः = ०—व्यः) दिव्य गुणवाली (प्रदिशः) महा दिशायें (वृणताम्) स्वीकार करें । (राष्ट्रस्य) राज्य के (वर्ष्मन् = ०—णि) ऐश्वर्ययुक्त वा ऊँचे (ककुदि) शिखर पर (श्रयस्व) आश्रय ले । (ततः) फिर

२—त्वाम् । राजानम् । विशः । प्रजाः । वृणताम् । वृङ् सम्भक्तौ—लोट् । संभजताम् । सेवन्ताम् । राज्याय । पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् (पा० ५ । १ । १२८) इति राजन्—यक् । राजकर्मणे । राष्ट्राय । इमाः । परिदृश्यमानाः । प्रदिशः । प्रधानदिशाः । पञ्च । अ० १ । ३० । ४ । पचि विस्तारे—कनिन् । विस्तीर्णाः । प्राच्याद्या मध्यदिशा सह पञ्चसंख्याकाः । देवीः । देव्यः । प्रकाशमानाः । दिव्याः । वर्ष्मन् । सर्वधातुभ्यो मनिन् (उ० ४ । १४५) इति वृष प्रजननैश्वर्ययोः—मनिन् । सप्तम्या लुक् । वर्ष्मन् शब्द उन्नवचनः स्थिरवचनो वा, इति सायणः, ऋग्वेदभाष्ये म० १० । २८ । २ । ऐश्वर्ययुक्ते । उन्नते । स्थिरे । राष्ट्रस्य । राज्यस्य । ककुदि । क+कु शब्दे—किप्, तुक् च, तस्य दः अन्तर्भावितण्यर्थः । कं सुखं कावयति गृहस्थस्य औन्नत्यं प्रापयतीति ककुद् । वृषस्कन्धपृष्ठस्थमांसपिण्डे । नृपचिह्ने । पर्वतशिखरे । श्रयस्व । श्रिञ् सेवने । आश्रितो भव । आस्व । ततः । तदनन्तरम् । नः । अस्मभ्यम् । वि, भज ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उग्रः) तेजस्वी तू (नः) हमारे लिये (वसूनि) धनों का (वि, भज) विभाग कर ॥ २ ॥

भावार्थः—राजा को सब प्रजा गण चुनें । और सब मनुष्यादि प्रजा और चारों पूर्वादि दिशाओं और पांचवी ऊपर नीचे की दिशा के पदार्थ [जैसे आकाश मार्ग और भूगर्भादि के पदार्थ] सब राजा के आधीन रहें और यह बड़ा ऐश्वर्यवान् होकर राजभक्त सुपात्रों को विद्या और सुवर्णादि धनों का दान करता रहे ॥ २ ॥

अच्छं त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्दूतो अजिरः सं-चरातै । जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः ॥ ३ ॥

अच्छं । त्वा । यन्तु । हविनः । सऽजाताः । अग्निः । दूतः । अजिरः । सम् । चरातै । जायाः । पुत्राः । सुऽमनसः । भवन्तु । बहुम् । बलिम् । प्रति । पश्यासै । उग्रः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(हविनः) पुकार करने वाले (सजाताः) सजातीय लोग (त्वा) तुझको (अच्छ) सन्मुख आकर (यन्तु) मिलें । (अग्निः) आग के

सांहितिको दीर्घः । यथाभागं देहि । **वसूनि** । धनानि ॥

३—**अच्छ** । अभिमुखम् । **यन्तु** । गच्छन्तु, प्राप्नुवन्तु । **हविनः** । हव+इनि । आह्वानशीलाः । **सजाताः** । समानजन्मानः । बान्धवाः । **अग्निः** । पावकवद् राजा । **दूतः** । अ० ३ । २ । १ । तापकारी । गतिशीलः । **अजिरः** । **अजिरशिशिरशिथिल०** (उ० १।५३) इति अज गतिक्षेपणयोः—किरच् । गमनशीलः । प्रजाप्रेरकः । **सम्** । सम्यक् । विधिवत् । **चरातै** । चरतेर्लेटि आडागमः । **नैतोऽन्यत्र** (पा० ३ । ४ । ९६) इत्यैकारः । आचरतु भवान् । **जायाः** । **जनेर्यक्** (उ० ४ । १११) इति जन जनने—यक्, आत्वम्, टाप् । जनयति वीरान् । भार्याः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान (दूतः) तापकारी और (अजिरः) वेगवान् [आप] (सम्) यथा-योग्य (चरातै) आचरण करें। (जायाः) हमारी धर्मपत्नियां और (पुत्राः) कुलशोधक वा बहुरक्षक सन्तान (सुमनसः) प्रसन्नमन (भवन्तु) रहें। (उग्रः) तेजस्वी तू (बहुं बलिम्) बहुत भेंट को (प्रति) संमुख (पश्यासै) देखे ॥३॥

भावार्थः—सब भाई बन्धु और प्रजागण राजा से मिले रहें, और प्रसन्न होके (बलि) राजग्राह्य भाग कर आदि देवें, और वह राजा भी उनकी रक्षा में सर्वथा तत्पर रहे ॥ ३ ॥

अश्विना त्वाग्ने मित्रावरुणोभा विश्वे देवा मरुतस्त्वा ह्वयन्तु। अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥ ४ ॥

अश्विना। त्वा। अग्ने। मित्रावरुणा। उभा। विश्वे। देवाः। मरुतः। त्वा। ह्वयन्तु। अध। मनः। वसुऽदेयाय। कृणुष्व। ततः। नः। उग्रः। वि। भज। वसूनि ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) अगले वा मुख्य पद पर [विराजमान] (त्वा) तुझ-

पुत्राः। अ० १। ११। ५। पूञ् पवने-क्त्र। पुत्रः पुरु त्रायते निपरणाद् [पालनात्] वा पुं नरकं ततस्त्रायत इति वा—निरु० २। ११। कुलशोधकाः। बहुरक्षका वा दुःखनाशका वा सन्तानाः। वीराः पुत्रपुत्र्यः। **सुमनसः।** शोभन-मनस्काः। प्रसन्नचित्ताः। **भवन्तु।** सन्तु। **बहुम्।** लङ्घिबंह्योर्नलोपश्च (उ० १। २९) बहि वृद्धौ-कुः, नलोपः। विपुलम्। **बलिम्।** सर्वधातुभ्य इन् (उ० ४। ११८) इति बल प्राणने, दाने-इन्। बल्यते दीयते स बलिः। राजग्राह्यं भागम्। करम्। उपहारम्। पूजासामग्रीम्। **प्रति।** अभिमुखम्। **पश्यास।** दृशेर्लेटि आडैत्वे, यथा 'चरातै' शब्दे। आत्मनेपदम्। पश्य। **उग्रः।** उत्कटः। तेजस्वी ॥

४—अश्विना। अ० २। २९। ६। सूर्याचन्द्रमसावित्येके—निरु०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (अश्विना=०-नौ) सूर्य और चन्द्र, और (उभा=उभौ) दोनों (मित्रावरुणा=०-णौ) प्राण और अपान वा दिन और रात और (विश्वे देवाः) सब व्यवहार कुशल (मरुतः) शूर पुरुष (त्वा) तुझको (ह्वयन्तु) पुकारें [मार्गदर्शक हों]। (अधा) और, तू (मनः) अपने मन को (वसुदेयाय) धन का दान करने के लिये (कृणुष्व) स्थिर कर। (ततः) फिर (उग्रः) तेजस्वी तू (नः) हमारे लिये (वसूनि) धनों का (वि, भज) विभाग कर ॥ ४ ॥

भावार्थः—जैसे सूर्य और चन्द्र परस्पर आकर्षण से, दिन और रात, प्राण और अपान अपने २ क्रम से, और शूर विद्वान् पुरुष नियम पर चलने से संसार का उपकार करते हैं इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा विचार पूर्वक सुपात्रों को दान देकर प्रजा की उन्नति करे ॥ ४ ॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद (ततो न उग्रो·····) मन्त्र २ में आ चुका है। ऋ० म० ५ सू० १५ म० १५। का भी मिलान करें ॥

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ॥

(सूर्याचन्द्रमसौ इव) सूर्य और चन्द्रमा के समान (स्वस्ति) कल्याणयुक्त (पन्थाम्) मार्ग पर (अनुचरेम) हम चलते रहें ॥

आ प्र द्रव परमस्याः परावतः शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्। तदुयं राजा वरुणस्तथाह स त्वायमह्वत् स उपेदमेहि ॥ ५ ॥

१२। १। सूर्यचन्द्रौ। **अग्रे**। मुख्यपदे वर्त्तमानम्। **मित्रावरुणा**। अ० १। २०। २। प्राणापानौ। अहोरात्रौ। **उभा**। उभौ। **विश्वे देवाः**। सर्वे व्यवहारिणः। **मरुतः**। अ० १। २०। १। शूराः पुरुषाः। **ह्वयन्तु**। आह्वयन्तु। **अधा**। =अथ। पुनः। **मनः**। चित्तम्। **वसुदेयाय**। **अचो यत्** (पा० ३।१।९७) इति वसु+डुदाञ् दाने-भावे यत्। **ईद्यति** (पा० ६। ४। ६५) ईकारादेशः। वसुनो धनस्य प्रदानाय। अन्यत् सुगमम्। **ततो न**। इत्यादि व्याख्यातं म० २ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ । प्र । द्रव । परमस्याः । परावतः । शिवे इति । ते । द्यावापृथिवी इति । उभे इति । स्ताम् । तत् । अयम् । राजा । वरुणः । तथा । आह । सः । त्वा । अयम् । अह्वत् । सः । उप । इदम् । आ । इहि ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(परमस्याः) अत्यन्त (परावतः) दूर देश से (आ, प्र, द्रव) आकर पधार । (ते) तेरे लिये (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी = ०—व्यौ) सूर्य और पृथिवी (शिवे) मङ्गलकारी (स्ताम्) होवें । (तथा) वैसा ही (अयम्) यह (राजा) राजा (वरुणः) सब में श्रेष्ठ परमेश्वर (तत्) वह (आह) कहता है । सो (सः अयम्) इस [वरुण परमेश्वर] ने (त्वा) तुझको (अह्वत्) बुलाया है । (सः = सः त्वम्) सो तू (इदम्) इस [राज्य] को (उप) आदर पूर्वक (आ) आकर (इहि) प्राप्त कर ॥ ५ ॥

भावार्थः—प्रजा गण श्रेष्ठ राजा को दूर देश से भी बुला लेवें, और वह अपने बुद्धिबल से ऐसा प्रबन्ध करे कि राज्य भर में दैवी और पार्थिव शान्ति रहे, अर्थात् अनावृष्टि और दुर्भिक्षादि में भी उपद्रव न मचे, और आकाश, पृथिवी और समुद्रादि के मार्ग अनुकूल रहें । यही आज्ञा परमेश्वर ने वेदों में दी है, उसको राजा यथावत् माने ॥ ५ ॥

५—**आ** । आगत्य । **प्र द्रव** । द्रु गतौ । प्रकर्षेण प्राप्नुहि । **परमस्याः** । स्याडागमः । अत्यन्तात् । **परावतः** । **उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे** (पा० ५ । १ । ११८) इति उपसर्गसाधने धात्वर्थे स्वार्थे वतिः प्रत्ययः । परावतः प्रेरितवतः परागताद्वा—निरु० ११ । ४८ । दूरदेशात् । **शिवे** । मङ्गलकारिण्यौ । **ते** । तुभ्यम् । **द्यावापृथिवी** । सूर्यभूमी । तत्रत्याः पदार्था इत्यर्थः । **स्ताम्** । भवताम् । **तत्** । प्रसिद्धं वचनम् । **अयम्** । सर्वव्यापकः । **राजा** । ईश्वरः । समर्थः । **वरुणः** । वरणीयः । परमेश्वरः । **तथा** । तेनैव प्रकारेण । **आह** । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि—लट् । **ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः** (पा० ३ । ४ । ८४) इति आहादेशः परस्मैपदे । ब्रवीति । कथयति । **अह्वत्** । ह्वेञ्—लुङ् । आहूतवान् । **उप** । पूजायाम् । **इहि** । इण् गतौ । प्राप्नुहि । अन्यत् सुगमम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रेन्द्र मनुष्या३ः परेहि सं ह्यज्ञास्था वरुणैः संविदानः । स त्वायमह्वत् स्वे सधस्थे स देवान् यक्षत् स उ कल्पयाद् विशः ॥ ६ ॥

इन्द्रऽइन्द्र । मनुष्याः । परा । इहि । सम् । हि । अज्ञास्थाः । वरुणैः । सम्ऽविदानः । सः । त्वा । अयम् । अह्वत् । स्वे । सधऽस्थे । सः । देवान् । यक्षत् । सः । ऊँ इति । कल्पयात् । विशः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(इन्द्रेन्द्र) हे राजराजेश्वर ! (मनुष्याः=मनुष्यान्) मनुष्यों को (परेहि) समीप से प्राप्त कर, (हि) क्योंकि (वरुणैः) श्रेष्ठ पुरुषों से (संविदानः) मिलाप करता हुआ तू (सम्) यथाविधि (अज्ञास्थाः) जाना गया है। (सः अयम्) सो इस [प्रत्येक मनुष्य] ने (त्वा) तुझको (स्वे सधस्थे) अपने समाज में (अह्वत्) बुलाया है। (सः=सः भवान्) सो आप (देवान्) व्यवहार कुशल पुरुषों का (यक्षत्) सत्कार करें, (सः उ=सः उ भवान्) वही आप (विशः) प्रजाओं को (कल्पयात्) समर्थ करें ॥ ६ ॥

६—**इन्द्रेन्द्र** । हे इन्द्राणामिन्द्र । राजराजेश्वर । **मनुष्याः** । **मनोर्जाताववत्यतौ षुक् च** (पा० ४ । १ । १६१) इति मनु-यत्-षुक् च । मनुर्मननम् । शसो नत्वाभावश्छान्दसः । मनुष्यजातीन् मनुष्यान् । मननशीलान् प्रजागणान् । **परा** । समीपे । **इहि** । गच्छ । प्राप्नुहि । **हि** । यस्मात् कारणात् । **सम्, अज्ञास्थाः** । ज्ञा अवबोधने-लुङि । **सम्प्रतिभ्यामनाध्याने** (पा० १।३।४६) इत्यात्मनेपदम् । सम्यक् यथाविधि ज्ञातोऽसि । **वरुणैः** । वरणीयैः । श्रेष्ठैः । वरयितृभिः । **संविदानः** । अ० २ । २८ । २ । सम्+विद ज्ञाने-शानच् । संगच्छमानः । **सः** । स प्रत्येकजनः । **अह्वत्** । आह्वयति स्म । **स्वे** । स्वकीये । **सधस्थे** । सह+ष्ठा गतिनिवृत्तौ-कः । **सध मादस्थयोश्छन्दसि** (पा० ६ । ३ । ९६) इति सहस्य सधादेशः । समाजे । **सः** । स भवान् राजा । **देवान्** । व्यवहारिणः पुरुषोत्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—प्रजापालक राजा विद्वान् चतुर मनुष्यों से मिलता रहे और सुपात्रों को योग्यतानुसार पदाधिकारी करे ॥ ६ ॥

पथ्या॑ रेवतीर्बहुधा विरूपाः सर्वाः संगत्य वरीयस्ते अक्रन् ।
तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह ॥ ७ ॥

पथ्याः । रेवतीः । बहुऽधा । विऽरूपाः । सर्वाः । सम्ऽगत्य । वरीयः । ते । अक्रन् । ताः । त्वा । सर्वाः । सम्ऽविदानाः । ह्वयन्तु । दशमीम् । उग्रः । सुऽमनाः । वश । इह ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(पथ्याः) मार्ग पर चलने वाली, (रेवतीः=०—त्यः) धन वाली, (बहुधा) प्रायः (विरूपाः) विविध आकार वा स्वभाव वाली (सर्वाः) सब [प्रजाओं] ने (संगत्य) मिलकर (ते) तेरे लिये (वरीयः) अधिक विस्तीर्ण वा श्रेष्ठ [पद] (अक्रन्) किया है । (ताः सर्वाः) वे सब [प्रजायें] (संविदानाः) एकमत होकर (त्वा) तुझको (ह्वयन्तु)

मान् । **यक्षत्** । यजतेर्लेटि अडागमः । **सिब् बहुलं लेटि** (पा० ३ । १ । ३४) इति सिप् । यजतु । सत्करोतु । **उ** । अवधारणे । **कल्पयात्** । कृपू सामर्थ्ये णिचि लेटि आडागमः । कल्पयतु । समर्थयतु । **विशः** । प्रजाः ॥

७—**पथ्याः** । **धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते** (पा० ४। ४। ९२) इति पथिन्-यत् पथोऽनपेताः । सुमार्गगामिन्यः । **रेवतीः** । **रयेर्मतौ बहुलम्** (वा० पा० ६।१।३७) इति रयि–मतुप् संप्रसारणं गुणश्च । **छन्दसीरः** (पा० ८ । २ । १५) इति मतुपो वत्वम् । ङीप् विभक्तौ पूर्वसवर्णदीर्घः । रेवत्यः । धनवत्यः । **बहुधा** । प्रायः । **विरूपाः** । विविधाकाराः । नानास्वभावाः । **सर्वाः** । अखिलाः प्रजाः । **संगत्य** । संभूय । **वरीयः** । **प्रियस्थिर०** (पा० ६ । ४ । १५७) इति उरु+ ईयसुनि वरादेशः । यद्वा, वर+ईयसुन् । उरुतरं वरतरं पदं सिंहासनं वा । **ते** । तुभ्यम् । **अक्रन्** । करोतेर्लुङि च्लेर्लुक् । कृतवत्यः । **संविदानाः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुकारें। (उग्रः) तेजस्वी और (सुमनाः) प्रसन्न चित्त तू (इह) इस [राज्य] में (दशमीम्) दसमी [नब्बे वर्ष से ऊपर] अवस्था को (वश) वश में कर ॥ ७ ॥

भावार्थः—सब प्रजा गण मिलकर और सुमार्ग में चलकर राजा को सिंहासन पर बिठलावें और अपना रक्षक बनावें। और वह राजा भी इस प्रकार से न्याय और आनन्द करता हुआ नीरोग पूर्ण आयु भोगे ॥ ७ ॥

सूक्तम् ५ ॥

१–८ ॥ पर्णमणिर्देवता। १, ४ त्रिष्टुप्। २, ३, ५—८ अनुष्टुप् ॥

तेजोबलायुर्धनादिपुष्टचुपदेशः—तेज, बल, आयु, धनादि बढ़ाने का उपदेश ॥

आयमगन् पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणन् त्सपत्नान्।
ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन् ॥१॥

आ। अयम्। अगन्। पर्णऽमणिः। बली। बलेन। प्रऽमृणन्। सऽपत्नान्। ओजः। देवानाम्। पयः। ओषधीनाम्। वर्चसा। मा। जिन्वतु। अप्रऽयावन् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (बली) बली (पर्णमणिः) पालन करने वालों में प्रशंसनीय [परमेश्वर] (बलेन) अपने बल से (सपत्नान्) हमारे बैरियों

म० ६। संगच्छमानाः। ऐकमत्यं प्राप्ताः सत्यः। **ह्वयन्तु** । आह्वयन्तु रक्षार्थम्। **दशमीम्**। नवतिसंवत्सरोर्ध्वभाविनी चरमावस्थाम्। **उग्रः**। पराक्रमी। **सुमनाः**। प्रसन्नचित्तः। दयालुः। **वश**। आयत्तीकुरु। **इह**। अस्मिन् राज्ये ॥

१—अयम्। सर्वत्र वर्त्तमानः। **आ, अगन्**। गमेर्लुङ्। आगतवान्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (प्रमृणन्) विध्वंस करता हुआ (आ अगन्) प्राप्त हुआ है (देवानाम्) इन्द्रियों का (ओजः) बल और (ओषधीनाम्) अन्नादि औषधों का (पयः) रस, (अप्रयावन् = ०—वा) भूल न करने वाला वह (मा) मुझको (वर्चसा) तेज से (जिन्वतु) सन्तुष्ट करे ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे अन्तर्यामी परम कारण परमेश्वर अपने सामर्थ्य से हमारे विघ्नों को हटाकर हमें ओजस्वी इन्द्रियां और पुष्टिकारक अन्नादि पदार्थ देकर उपकार करता है वैसे ही हम ओजस्वी, पराक्रमी होकर परस्पर उपकार करते रहें ॥ १ ॥

मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम् ।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः ॥ २ ॥

मयि । क्षत्रम् । पर्णऽमणे । मयि । धारयतात् । रयिम् ।
अहम् । राष्ट्रस्य । अभिऽवर्गे । निऽजः । भूयासम् । उत्ऽतमः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(पर्णमणे) हे पालन करने वालों में प्रशंसनीय ! तू (मयि)

प्राप्तवान् । **पर्णमणिः** । धापृवस्यज्यतिभ्यो नः (उ० ३ । ६) इति पॄ पालन-पूरणयोः, नः । **सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४ । १८) इति मण शब्दे-इन् । मण्यते स्तूयते स मणिः । पालकेषु स्तुत्यः । **बली** । शक्तिमान् । **बलेन** । शक्त्या । **प्रमृणन्** । विनाशयन् । **सपत्नान्** । शत्रून् । **ओजः** । सामर्थ्यम् । **देवानाम्** । इन्द्रियाणाम् । **पयः** । दुग्धम् । जलम् । रसः । सारः । **ओषधीनाम्** । अ० १ । २३ । १ । ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः । मनु० १ । ४६ । व्रीहियवादीनाम् । रोगनाशकद्रव्यानाम् । **वर्चसा** । तेजसा । **मा** । माम् । **जिन्वतु** । जिवि प्रीणने । इदित्त्वात् नुम् । प्रीणयतु । तर्पयतु । **अप्रयावन्** । यातेर्वनिप् । **सुपां सुलुक्** (पा० ७ । १ । ३९) इति सोर्लुक् । नलोपाभावश्छान्दसः । अप्रयावा । अप्रगन्ता । अनपगन्ता । अप्रमाशीलः सन् ॥

२—**मयि** । ईश्वरोपासके । **क्षत्रम्** । अ० २ । १५ । ४ । क्षतो हिंसनात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझ में (क्षत्रम्) बल, और (मयि) मुझ में ही (रयिम्) सम्पत्ति (धारयतात्) स्थापित कर। (अहम्) मैं (राष्ट्रस्य) राज्य के (अभीवर्गे) मण्डल में (निजः) आप ही (उत्तमः) उत्तम (भूयासम्) बना रहूँ ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का ध्यान करता हुआ अपने बुद्धिबल और बाहुबल से शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति और सुवर्णादि धन प्राप्त करके संसार भर में कीर्त्ति बढ़ावे और आनन्द भोगे ॥ २ ॥

यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम् ।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे ॥ ३ ॥

यम् । निऽदधुः । वनस्पतौ । गुह्यम् । देवाः । प्रियम् । मणिम् ।
तम् । अस्मभ्यम् । सह । आयुषा । देवाः । ददतु । भर्तवे ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (गुह्यम्) गुप्त, (प्रियम्) प्रिय वा हितकारी (मणिम्) प्रशंसनीय [परमेश्वर] को (देवाः) व्यवहार जानने वाले देवताओं ने (वनस्पतौ) वननीय अर्थात् सेवनीय गुणों के रक्षक [पुरुष] में (निदधुः) अवश्य दान किया है, (तम्) उस [परमेश्वर] को (अस्मभ्यम्)

त्रायते । **बलम्** । **पर्णमणे** । म० १ । हे पालकेषु प्रशंसनीया । **धारयतात्** । धारयतेर्हेस्तातङ् आदेशः । धारय । स्थापय । **रयिम्** । अ० १ । १५ । २ । रा दानादानयोः—इ, युक् । धनम्—निघ० २ । १० । सम्पत्तिम् । **राष्ट्रस्य** । अ० १ । २९ । १ । राज्यस्य । **अभीवर्गे** । अभि + वृजी वर्जने—घञ् । **उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्** (पा० ६ । ३ । १२२) इति दीर्घः । अभिगतो वर्गो मनुष्यादिः समूहो यस्मिन् । राज्यमण्डले । **निजः** । नि + जनी प्रादुर्भावे—डः । निश्चयेन जायते । स्वकीयः । **भूयासम्** । भू—आशीर्लिङ । अहं भवानि । **उत्तमः** । उत्कृष्टतमः ॥

३—यम् । प्रसिद्धम् । **निदधुः** । नि + डुधाञ् धारणपोषणदानेषु—लिट् । निहितवन्तः । स्थापितवन्तः । निश्चयेन दत्तवन्तः । **वनस्पतौ** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें (देवाः) तेजस्वी महात्मा पुरुष (आयुषा सह) बड़ी आयु के साथ (भर्तवे) हमारे पोषण करने के लिये (ददतु) दान करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—सूक्ष्मदर्शी देवताओं ने निश्चय किया है कि वह अन्तर्यामी, सर्वहितकारी परमेश्वर प्रत्येक शुभचिन्तक पुरुष में वर्तमान रहकर साहस बढ़ाता है, उसी परमात्मा का उपदेश विद्वान् महात्मा संसार में करें ॥ ३ ॥

सोमस्य पूर्णः सहं उग्रमाग्न्निन्द्रेण दुत्तो वरुणेन शिष्टः ।
तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ४ ॥

सोमस्य । पूर्णः । सहः । उग्रम् । आ । अगन् । इन्द्रेण । दत्तः । वरुणेन । शिष्टः । तम् । प्रियासम् । बहु । रोचमानः । दीर्घायुऽत्वाय । शतऽशारदाय ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्य वाले और (वरुणेन) स्वीकरणीय श्रेष्ठ, गुरु आदि करके (दत्तः) हमें दिया हुआ और (शिष्टः) सिखाया

अ० १ । १२ । ३ । वन सेवने—अच् । पारस्करादित्वात् सुट् । वन्यते सेव्यते वनः । वनानां वननीयानां गुणानां पत्यौ रक्षके पुरुषे । **गुह्यम् । तदर्हति** । (पा० ५ । १ । ६३) इति गुहा + यत् । गुहां गोपनमर्हतीति । यद्वा । **शंसि गुहि-दुहिभ्यो वा** (वा० पा० ३ । १ । १०९) इति गुहू संवरणे—कर्मणि क्यप् । गुहायां हृदये गुप्तम् । **प्रियम् ।** प्रीतिकरम् । हितकारम् । **मणिम् ।** म० १ । प्रशंसनीयं परमेश्वरम् । **तम् ।** मणिम् । तस्य परमेश्वरस्य बोधमित्यर्थः । **अस्मभ्यम् ।** अस्मदर्थम् । अस्माकं लाभाय । **सह ।** सहितम् । **आयुषा ।** चिरजीवनेन । **देवाः ।** तेजस्विनः पुरुषाः । **ददतु ।** डुदाञ् दाने—लोट् । प्रयच्छन्तु । **भर्तवे । तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्से०** (पा० ३ । ४ । ९) इति डुभृञ् धारणपोषणयोः—तवेन् । पालनाय । भरणाय ॥

४— सोमस्य । ऐश्वर्यस्य । अमृतस्य । मोक्षस्य । **पूर्णः ।** म० १ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ (सोमस्य) अमृत का (पर्णः) पूर्ण करने वाला परमेश्वर, (उग्रम्) पराक्रम वाला (सहः) बल [बलरूप], (आ) सब ओर से (अगन्) मिला है। (बहु) अनेक प्रकार से (रोचमानः) रुचि करता हुआ मैं (तम्) उस [अमृतपूरक परमेश्वर] को (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतु युक्त (दीर्घायुत्वाय) बड़े जीवन के लिए (प्रियासम्) प्रसन्न करूँ ॥ ४ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य विद्वानों की शिक्षा पाकर शुद्ध मुक्त स्वभाव परमेश्वर के ज्ञान से आत्मा में बल पाता है, तब वह धर्मात्मा बड़े उत्साह से परमात्मा की आज्ञा पालता हुआ बड़े अर्थात् यशस्वी जीवन के साथ आनन्द भोगता है ॥ ४ ॥

'इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः' यह पाद, अ० २ । २९ । ४ में और 'दीर्घायुत्वाय शतशारदाय' यह पाद, अ० १ । ३५ । १ । में आ चुके हैं ॥

आ मारुक्षत् पर्णमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः ॥ ५ ॥

आ । मा । अरुक्षत् । पर्णऽमणिः । मह्यै । अरिष्टऽतातये ।
यथा । अहम् । उत्तरः । असानि । अर्यम्णः । उत । सम्ऽविदः ॥ ५ ॥

पालकः । पूरकः । **सहः** । बलरूपः परमेश्वरः । **उग्रम्** । उत्कटम् । **आ** । समन्तात् । सम्यक्प्रकारेण । **अगन्** । अगमत् । प्राप्तः । **इन्द्रेण** । परमैश्वर्यवता तेजस्विना पुरुषेण । **दत्तः** । प्रापितः । **वरुणेन** । श्रेष्ठेन । **शिष्टः** । अ० २ । २९ । ४ । शिक्षितः । अनुज्ञातः । **तम्** । सोमस्य पर्णम् । **प्रियासम्** । प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च—आशीर्लिङ् । तर्पयामि । प्रसन्नीक्रियासम् । **बहु** । अनेकविधम् । **रोचमानः** । रुच दीप्तावभिप्रीतौ—शानच् । रोचिष्णुः । प्रसन्नः । दीप्यमानः । **दीर्घायुत्वाय** । अ० १ । ३५ । १ । चिरजीवनाय । **शतशारदाय** । अ० १ । ३५ । १ । शतशरदृतुयुक्ताय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(पर्णमणिः) पालन करने वालों में श्रेष्ठ परमेश्वर (मह्यै अरिष्टतातये) बड़ी कुशलता के लिए (मा) मेरे (आ, अरुक्षत्) ऊपर बैठा है। (यथा) जिससे (अहम्) मैं (अर्यम्णः) श्रेष्ठों के मान करने वाले, (उत) और (संविदः) ज्ञानी पुरुष से (उत्तरः) अधिक श्रेष्ठ (असानि) हो जाऊँ ॥ ५ ॥

भावार्थः—सर्वोपरि परमेश्वर अन्तर्यामी होकर हमें दुष्कर्मों से बचने की प्रेरणा करता है जिससे हम श्रेष्ठों में अति श्रेष्ठ और ज्ञानियों में अति ज्ञानी होवें ॥ ५ ॥

ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥ ६ ॥

ये। धीवानः। रथऽकाराः। कर्मारः। ये। मनीषिणः।
उपऽस्तीन्। पर्ण। मह्यम्। त्वम्। सर्वान्। कृणु। अभितः। जनान् ॥ ६ ॥

५—मा। माम्। **आ, अरुक्षत्**। रुह जन्मप्रादुर्भावयोः—लुङ्। आरूढवान्। उपरि विराजमानोऽभूत्। **पर्णमणिः**। म० १। पालकेषु श्रेष्ठः। **मह्यै**। महत्यै। **अरिष्टतातये**। रिष हिंसायाम्—क्तः। रिष्टं हिंसनम्। उपद्रवः। उत्पातः। नञ्समासः। **शिवशमरिष्टस्य करे** (पा० ४। ४। १४३) इति अरिष्ट-करोत्यर्थे तातिल्प्रत्ययः। **लिति** (पा० ६। १। १९३) इति प्रत्ययात् पूर्वस्य उदात्तः। रिष्टवर्जनाय अनुपद्रवाय। क्षेमकरणाय। **यथा**। येन प्रकारेण **अहम्**। परमेश्वरोपासकः। **उत्तरः**। उत्कृष्टः। **असानि**। अस्तेर्लोट्। भवानि। **अर्यम्णः**। **श्वनुक्षन्पूषन्प्लीहन्०** (उ० १। १५९) इति अर्य+माङ् माने शब्दे च—कनिन्। अर्यान् श्रेष्ठान् मातीति। श्रेष्ठानां सत्कारकात्। **उत**। अपि च। **संविदः**। सम्+विद ज्ञाने—क्विप्। ज्ञानिनः पुरुषात्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ये) जो (धीवानः) तीक्ष्ण बुद्धिवाले (रथकाराः) रथों के बनाने वाले, और (ये) जो (मनीषिणः) बड़े पण्डित (कर्माराः) कर्मों में गति रखनेवाले शिल्पी जन हैं। (पर्ण) हे पालन करनेवाले परमेश्वर! (त्वम्) तू (मह्यम्) मेरे लिये (सर्वान्) उन सब (जनान्) जनों को (अभितः) चारों ओर से (उपस्तीन्) समीपवर्ती (कृणु) कर ॥ ६ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों और विशेष कर राजा लोगों को चाहिये कि भूमिरथ, आकाशरथ, जलरथ आदि के बनाने वाले और अन्य शिल्पकर्मी विश्वकर्मा चतुर विद्वानों का सत्कार करते रहें जिससे अनेक व्यापारों से संसार में उन्नति होवे ॥ ६ ॥

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये ।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥ ७ ॥

ये । राजानः । राजऽकृतः । सूताः । ग्रामऽण्यः । च । ये ।

६—**ये** । प्रसिद्धाः । **धीवानः** । **ध्याप्योः सम्प्रसारणं च** (उ० ४ । ११५) इति ध्यै चिन्तने—कनिप् । ध्यानशीलाः । पण्डिताः । **रथकाराः** । **कर्मण्यण्** (पा० ३ । २ । १) इति रथ + कृञ्—अण् । विमानादिनिर्मातारः । **कर्माराः** । कर्म + ऋ गतौ—अण् पूर्ववत् । कर्माणि ऋच्छन्ति गच्छन्ति प्राप्नुवन्तीति । विश्वकर्माणः । कर्मकाराः अस्त्रशस्त्रकारिणः । **मनीषिणः** । **कृतभ्यामीषन्** (उ० ४ । २६) इति मनु अवबोधने—ईषन् । टाप् । मनीषा प्रज्ञाऽस्यास्ति इति व्रीह्यादित्वाद् इनिः । यद्वा । ईष गतौ—अः, टाप् । **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** (वा० पा० ६ । १ । ९४) इति पररूपम् । मनस् ईषा मनस ईषा मनीषा मनोगतिर्बुद्धिः, । पूर्ववद्—इनिः । मेधाविनः पुरुषाः—निघ० ३ । १५ । पण्डिताः । **उपस्तीन्** । उप + अस सत्तायाम्, यद्वा, आस उपवेशने-क्तिच् । आदिलोपश्छान्दसः । समीपे विद्यमानान् । उपासीनान् । **पर्ण** । म० १ । हे पालक, पूरक । **मह्यम्** । मदर्थम् । **सर्वान्** । अखिलान् । **कृणु** । कुरु । **अभितः** । सर्वतः । **जनान्** । लोकान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उप॒ऽस्तीन् । प॒र्ण॒ । म॒ह्य॒म् । त्वम् । सर्वा॑न् । कृ॒णु॒ । अ॒भितः॑ । जना॑न् ॥७॥

भाषार्थः—(ये) जो (राजानः) ऐश्वर्य वाले (राजकृतः) राजाओं के बनाने वाले, (च) और (ये) जो (सूताः) सर्वप्रेरक, (ग्रामण्यः) ग्रामों के नेता लोग हैं। (पर्ण) हे पालन करने वाले परमेश्वर ! (त्वम्) तू (मह्यम्) मेरे लिये (सर्वान्) उन सब (जनान्) जनों को (अभितः) चारों ओर से (उपस्तीन्) समीपवर्त्ती (कृणु) कर ॥ ७ ॥

भावार्थः—चक्रवर्ती राजा सबके राजाधिराज परमेश्वर का ध्यान करता हुआ अपने हितकारी माण्डलिक राजाओं और अन्य प्रधान पुरुषों को यथोचित व्यवहार से अपना इष्ट मित्र बनाये रक्खे ॥ ७ ॥

प॒र्णोऽसि॑ तनू॒पान॒: सयो॑नि॒र्वी॒रो वी॒रेण॒ मया॑ ।
सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तेज॑सा॒ तेन॑ बध्नामि॒ त्वा म॒णे ॥ ८ ॥

प॒र्णः । अ॒सि॒ । त॒नू॒ऽपान॑: । सऽयो॑निः । वी॒रः । वी॒रेण॑ । मया॑ । सम्ऽव॒त्स॒रस्य॑ । तेज॑सा । तेन॑ । ब॒ध्ना॒मि॒ । त्वा॒ । म॒णे॒ ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(मणे) हे प्रशंसनीय परमेश्वर ! तू (पर्णः) हमारा पूर्ण करने वाला, (तनूपानः) शरीर रक्षक और (वीरेण मया) मुझ वीर के

७—**ये** । हितकारिणः । **राजानः** । राजृ दीप्तौ, ऐश्वर्ये च-कनिन् । दीप्यमानाः । ऐश्वर्यवन्तः । **राजकृतः** । राजन्+डुकृञ् करणे-किप्, तुक् च । राज्ञां कर्तारः, अभिषेचकाः । **सूताः** । षू प्रेरणे, ऐश्वर्ये, प्रसवे च—क्तः । प्रेरकाः । ऐश्वर्यवन्तः । सूर्याः, सूर्यवत्तेजस्विनः । **ग्रामण्यः** । ग्राम+णीञ् प्रापणे-किप् । ग्रामं संवसथं तत्रत्यान् जनान् नयतीति ग्रामणीः । प्रधानाः । अधिपतयः । अन्यद् व्याख्यातं म० ६ ॥

८—**पर्णः** । पूरकः । पालकः । **असि** । भवसि । **तनूपानः** । शरीर-रक्षकः । **सयोनिः** । वहिश्रिश्रुयुद्रु० (उ० ४ । ५१) इति यु मिश्रणामिश्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ (सयोनिः) मिलने योग्य घर में रहने वाला (वीरः) वीर (असि) है। (संवत्सरस्य) सब में यथा नियम वास करने वाले [तेरे] (तेन तेजसा) उस तेज से (त्वा) तुझको (बध्नामि) मैं बांधता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्य उस उत्तम कामनाओं के पूरक, और शरीर रक्षक महा-पराक्रमी परमेश्वर को अपने साथ सब स्थानों में निवास करता हुआ जानकर, और उसके तेजोमय स्वरूप को हृदय में धारण करके पराक्रमी और तेजस्वी होकर आनन्द भोगे ॥ ८ ॥

ईश्वर का जीव के साथ नित्य सम्बन्ध है जैसे—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

ऋ० १ । १६४ । २०, अ० ९ । ९ । २० ॥

(द्वा) दो (सुपर्णा) सुन्दर पालन शक्ति वाले, (सयुजा) समान सम्बन्ध रखने वाले, (सखाया) मित्रों के समान वर्त्तमान [ईश्वर और जीव] (समानम्) एक (वृक्षम्) सेवनीय [संसार वा वृक्ष] से (परि) सब प्रकार (सस्वजाते) सम्बन्ध रखते हैं। (तयोः) उन दोनों में (अन्यः) एक [जीव, ईश्वराधीन होने से] (स्वादु) चखने योग्य (पिप्पलम् , फल [पुण्य पाप का] (अत्ति) खाता है (अन्यः) दूसरा [परमात्मा] (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभि) भले प्रकार [जीवों को] (चाकशीति) देखता है ॥

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

णयोः—निः । युतं सम्पृक्तं सर्वपदार्थैः । योनिः, गृहनाम-निघ० ३ । ४ । समान-गृहयुक्तः । **वीरः** । **स्फायितञ्चिवञ्चि०** (उ० २ । १३) इति अज गतिक्षेप-णयोः—रक् । अजेर्वीभावः । यद्वा । वीर विक्रान्तौ पचाद्यच् । यद्वा । वि+ईर गतौ-कः । वीरो वीरयत्यमित्रान् वेतेर्वा स्याद् गतिकर्मणो वीरयतेर्वा—निरु० १ । ७ । शूरः । **वीरेण** । पराक्रमिणा । **मया** । उपासकेन । **संवत्सरस्य** । अ० १।३५।३ । **संपूर्वाच्चित्** (उ० ३।७२) इति सम्+वस निवासे—सरन् । स च चित् । सम्यग् निवसन्ति लोका यत्र, निवसति लोकेषु यः । सम्यग्निवासस्थानस्य परमेश्वरस्य । **तेजसा** । प्रकाशेन । **तेन** । प्रसिद्धेन । **बध्नामि** । धारयामि । त्वदीयतेजोऽवाप्तये स्वहृदये स्थापयामीत्यर्थः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ६ ॥

१—८ ॥ अश्वत्थो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

उत्साहवर्धनायोपदेशः—उत्साह बढ़ाने के लिये उपदेश ॥

पुमान् पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि ।
स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥ १ ॥

पुमान् । पुंसः । परिऽजातः । अश्वत्थः । खदिरात् । अधि । सः ।
हन्तु । शत्रून् । मामकान् । यान् । अहम् । द्वेष्मि । ये । च । माम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(सः) वह (पुमान्) रक्षाशील (अश्वत्थः) अश्वत्थामा अर्थात् अश्वों, बलवानों में ठहरने वाला पुरुष, अथवा वीरों के ठहरने का स्थान पीपल का वृक्ष, (पुंसः) रक्षाशील (खदिरात् अधि) स्थिर स्वभाव वाले परमेश्वर से, अथवा खैर वृक्ष से (परिजातः) प्रकट होकर (मामकान् शत्रून्) मेरे उन शत्रुओं

१—**पुमान् । पातेर्डुमसुन्** (उ० ४ । १७८) इति पा रक्षणे-डुमसुन्, डित्वाट् टिलोपः । पातीति पुमान् [पुमस्] । रक्षकः पुरुषः । **पुंसः** । रक्षकात् । **परिजातः** । प्रादुर्भूतो भवति । **अश्वत्थः** । **अशूप्रुषिलटि०** (उ० १ । १५१) इति अशूङ् व्याप्तौ संघाते च—क्वन् । अश्नुते कार्याणि स अश्वः, बलवान् पुरुषः । **सुषि स्थः** (पा० ३ । २ । ४) इति अश्व + ष्ठा गतिनिवृत्तौ—कः । पृषोदरादित्वाद् रूपम् । अश्वेषु बलवत्सु तिष्ठतीति सः । अतिवीरपुरुषः । अश्वत्थामा । अथवा । अश्वा वीरास्तिष्ठन्ति यत्र स अश्वत्थः पिप्पलवृक्षः । **खदिरात् । अजिरशिशिरशिथिल०** (उ० १ । ५३) इति खद स्थैर्यहिंसयोः—किरच् । स्थिर-स्वभावात् परमेश्वरात् । वृक्षविशेषाद्वा । **अधि** । पञ्चम्यर्थानुवादी । **सः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा रोगों को (हन्तु) नाश करे (यान्) जिन्हें (अहम्) मैं (द्वेष्मि) बैरी जानता हूं (च) और (ये) जो (माम्) मुझे [बैरी जानते हैं] ॥ १ ॥

भावार्थः—जो पुरुष सर्वरक्षक दृढ़ स्वभावादि गुण वाले परमेश्वर को विचार करके अपने को सुधारते हैं, वे शूरों में महाशूर होकर कुकर्मी शत्रुओं से बचाकर संसार में कीर्त्ति पाते हैं ॥ १ ॥

२—अश्वत्थ, पीपल का वृक्ष दूसरे वृक्षों के खोखले, घरों की भीतों, और अन्य स्थानों में उगता है और बहुत गुणकारी है। खैर के वृक्ष पर उगने से अधिक गुणदायक हो जाता है। लोग बड़ा आदर करके पवित्र पीपल की चित्त-प्रसादक छाया और वायु में सन्ध्या, हवन, व्यायाम आदि करते, और इस के दूध, पत्ते, फल, लकड़ी से बहुत ओषधियाँ बनाते हैं। शब्दकल्पद्रुम कोष में इसको मधुर, कसैला, शीतल, कफ पित्त विनाशी, रक्तदाहशान्तिकारक आदि, और खदिर अर्थात् खैर को शीतल, तीखा, कसैला, दांतों का हितकारी, कृमि, प्रमेह, ज्वर फोड़े, कुष्ठ, शोथ, आम, पित्त, रुधिर पांडु और कफ का विनाशक आदि लिखा है ॥

पाद्मोत्तरखण्ड अध्याय १२६, २६०—१६१ में अश्वत्थ की कथा सविस्तार लिखी है ॥

तानश्वत्थ निः शृणीहि शत्रून् वैबाधदोधतः ।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च ॥ २ ॥

तान् । अश्वत्थ । निः । शृणीहि । शत्रून् । वैबाधऽदोधतः ।
इन्द्रेण । वृत्रऽघ्ना । मेदी । मित्रेण । वरुणेन । च ॥ २ ॥

स अश्वत्थः । **हन्तु** । नाशयतु । **शत्रून्** । शातयितॄन् । अरीन् । रोगान् । **मामकान्** । अ० १ । २९ । ५ । मदीयान् । **यान्** । अपकारिणः । **द्वेष्मि** । द्विष अप्रीतौ । प्रतिकूलान् जानामि । **ये** । अपकारिणः । **माम्** । उपासकं द्विषन्तीति विपरिणामेन सम्बन्धः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अश्वत्थ) हे बलवानों में ठहरने वाले शूर [वा पीपल वृक्ष !] (वृत्रघ्ना) अन्धकार मिटाने वाले (इन्द्रेण) सूर्य से, (मित्रेण) प्रेरणा करने वाले वायु से (च) और (वरुणेन) स्वीकार करने योग्य जल से (मेदी+सन्) स्नेही होकर (तान्) उन (वैबाधदोधतः) विविध बाधा डालने वाले क्रोधशील (शत्रून्) शत्रुओं वा रोगों को (निः) सर्वथा (शृणीहि) मार डाले ॥२॥

भावार्थः—राजा सूर्यादि के समान गुणयुक्त होकर भीतरी और बाहरी वैरियों का और सद्वैद्य पीपल के प्रयोग से रोगों का नाश करके प्रजा में शान्ति रक्खे ॥ २ ॥

यथाश्वत्थ निरभंनोऽन्तर्महत्यर्णवे ।
एवा तान्त्सर्वान्निर्भङ्ग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥ ३ ॥

यथा । अश्वत्थ । निःऽअभंनः । अन्तः । महति । अर्णवे । एव । तान् । सर्वान् । निः । भङ्ग्धि । यान् । अहम् । द्वेष्मि । ये । च । माम् ॥ ३ ॥

२—**तान्** । प्रसिद्धान् । **अश्वत्थ** । म० १ । हे अश्वेषु बलवत्सु स्थितिशील शूरराजन् । **निः** । निः शेषम् । **शृणीहि** । शृ हिंसायाम् । घातय । **शत्रून्** । अपकारिणः । **वैबाधदोधतः** । **तस्येदम्** (पा० ४ । ३ । १२०) इति विबाध+अण् । विविधं बाधः प्रतिरोधो यस्य स वैबाधः । दोधतिः क्रुध्यतिकर्मा—निघ० २ । १२ । नैरुक्तो धातुः—शतृप्रत्ययः । वैबाधान् विबाधकान् दोधतः क्रोधशीलान् । **इन्द्रेण** । ऐश्वर्यवता सूर्येण । **वृत्रघ्ना** । **ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्** (पा० ३ । २ । ८७) इति वृत्र+हन हिंसायाम्-क्विप् । अन्धकारं हतवतः । **मेदी** । **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** (पा० ३ । १ । १३४) इति ञिमिदा स्नेहने—णिनिः । घञन्ताद्वा मत्वर्थीय इनिः । स्नेही । **मित्रेण** । अ० १ । ३ । २ । डुमिञ् प्रक्षेपणे क्त्रः । यद्वा । ञिमिदा स्नेहने—त्रः । सर्वप्रेरकः । स्नेहवान् । वायुः । मध्यस्थानी देवता—निरु० १० । २१—२२ । **वरुणेन** । अ० १ । ३ । ३ । मध्यस्थानी देवता निरु० १० । ३ । वृष्टिजलेन ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अश्वत्थ) हे वीरों में ठहरने वाले राजन् ! [वा पीपल वृक्ष !] (यथा) जैसे (महति) बड़े (अर्णवे अन्तः) समुद्र के बीच में (निरभनः) निश्चय करके तू भद्र करने वाला हुआ है। (एव) वैसे ही (तान् सर्वान्) उन सब को (निर्) निरन्तर (भङ्ग्धि) नष्ट कर दे, (यान्) जिन्हें (अहम्) मैं (द्वेष्मि) बैरी जानता हूं, (च) और (ये) जो (माम्) मुझे [बैरी जानते हैं] ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को शूरवीर और सद्वैद्य होकर दुःख सागर में डूबे हुए प्रजागणों के उभारने में प्रयत्न करना चाहिये ॥ ३ ॥

यः सहमानश्चरसि सासहान इव ऋषभः ।
तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि ॥ ४ ॥

यः । सहमानः । चरसि । ससहानःऽइव । ऋषभः । तेन ।
अश्वत्थ । त्वया । वयम् । सऽपत्नान् । सहिषीमहि ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अश्वत्थ) हे शूरों में ठहरने वाले राजन् ! [वा पीपल वृक्ष] ! (यः) जो तू (सहमानः) [वैरियों को] दबाता हुआ, (सासहानः) महाबली (ऋषभः इव) श्रेष्ठ पुरुष वा बलीवर्द वा ऋषभ औषध के समान (चरसि) विचरता

३—यथा । येन प्रकारेण । **अश्वत्थ** । म० १। हे बलवत्सु स्थितिशील ! । पिप्पलवृक्ष ! **निरभनः** । भदि कल्याणे सुखे च—लङि हल्ङ्यादिना सिपो लोपः । **दश्च** (पा० ८।२।७५) इति धातुदकारस्य वैकल्पिकं रुत्वम् । निरन्तरं भद्रं कृतवानसि । **महति** । विशाले । **अर्णवे** । अ० १ । १० । ४ । समुद्रे । **निर्** । निश्चयेन । निरन्तरम् । **भङ्ग्धि** । भञ्जो आमर्दने—लोट् । भञ्जय । विदारय । अन्यत् सुगमं व्याख्यातं च म० १ ॥

४—यः । यस्त्वम् । **सहमानः** । षह मर्षणे—शानच् । शत्रून् अभिभवन् । **चरसि** । गच्छसि । वर्तसे । **सासहानः** । सहेर्लिट् । तस्य स्थाने **लिटः कानज्वा** (पा० ३ । २ । १०६) इति कानच् । **तुजादीनां०** (पा० ६ । १ । ७) इत्यभ्यासस्य दीर्घत्वम्[1] । अत्यर्थमभिभवन् । **इव** । यथा । **ऋषभः** ।

---

१. यहाँ सायणाचार्य निर्दिष्ट व्याकरण प्रक्रिया अशुद्ध है। क्योंकि सह धातु से यङ्लुक् मानने पर दीर्घोऽकितः (७ । ४ । ८३) से अभ्यास को दीर्घ हो जायेगा, तो पदपाठ में 'ससहानः' ह्रस्व नहीं हो सकेगा ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। (तेन त्वया) उस तेरे साथ (वयम्) हम (सपत्नान्) बैरियों को (सहिषीमहि) हरा देवें ॥ ४ ॥

भावार्थः—प्रजा गण शूरवीर नीतिनिपुण राजा और सद्वैद्य के सहाय से शत्रुओं को वश में करते रहें। ऋषभ औषध विशेष है। इसको शब्दकल्पद्रुम कोष में मीठा, शीतल, रक्त-पित्त विरेक नाशक, वीर्य-श्लेष्मकारी, और दाहक्षय ज्वरहारी आदि लिखा है ॥ ४ ॥

सिनात्वेनान् निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः ।
अश्वत्थ शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥ ५ ॥

सिनातु । एनान् । निःऽऋतिः । मृत्योः । पाशैः । अमोक्यैः ।
अश्वत्थ । शत्रून् । मामकान् । यान् । अहम् । द्वेष्मि । ये । च । माम् ॥५॥

भाषार्थः—(अश्वत्थ) हे शूरों में ठहरने वाले राजन् ! [वा पीपल वृक्ष !] (निर्ऋति) अलक्ष्मी (मृत्योः) मृत्यु के (अमोक्यैः) न खुल सकने वाले (पाशैः) पाशों से (एनान्) इन (मामकान् शत्रून्) मेरे शत्रुओं को (सिनातु) बांध लेवे, (यान्) जिन्हें (अहम्) मैं (द्वेष्मि) वैरी जानता हूं, (च) और (ये) जो (माम्) मुझे [बैरी जानते हैं] ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजा सत्पुरुषों के विरोधी दुराचारिओं को दृढ़ बन्धनों में डालकर निर्धन और नष्ट कर दे ॥ ५ ॥

ऋषिवृषिभ्यां कित् (उ० ३ । १२३) इति ऋषी गतौ दर्शने च—अभच्। ऋषिर्दर्शनात् निरु० २ । ११ । श्रेष्ठपुरुषो बलीवर्दो वा। औषधविशेषो वा। **तेन** । उक्तलक्षणेन । **त्वया** । अश्वत्थेन । **वयम्** । **सपत्नान्** । शत्रून्। **सहिषीमहि** । सहेराशीर्लिङि रूपम् । सहामहै । अभिभूयास्म ॥

५—**सिनातु** । षिञ् बन्धने । बध्नातु । **एनान्** । समीपवर्त्तिनः। **निर्ऋतिः** । अ० १ । ३१ । २ । निः+ऋ गतौ—क्तिन् । अलक्ष्मीः । **मृत्योः** । मरणस्य । **पाशैः** । बन्धनैः । **अमोक्यैः** । **ऋहलोर्ण्यत्** (पा० ३ । १ । १२४) इति मुच्लृ मोचने=त्यागे—ण्यत् । **चजोः कु घिण्ण्यतोः** (पा० ७ । ३ । ५२) इति कुत्वम् । अमोचनीयैः । अत्याज्यैः । **अश्वत्थ, शत्रून्** । इत्यादि व्याख्यातं म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथाश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन् कृणुषेऽधरान् ।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग् भिन्धि सहस्व च ॥ ६ ॥

यथा । अश्वत्थ । वानस्पत्यान् । आऽरोहन् । कृणुषे । अधरान् ।
एव । मे । शत्रोः । मूर्धानम् । विष्वक् । भिन्धि । सहस्व । च ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यथा) जिस प्रकार से (अश्वत्थ) हे शूरों में ठहरने वाले अश्वत्थामा राजन् ! [वा पीपल वृक्ष] ! (वानस्पत्यान्) सेवकों वा सेवनीय गणों के रक्षक [आप] से सम्बन्ध वाले पुरुषों [वा वृक्ष समूहों] पर (आरोहन्) ऊंचा होकर (अधरान्) नीचे (कृणुषे) तू करता है (एव) वैसे ही (मे शत्रोः) मेरे शत्रु के (मूर्धानम्) मस्तक को (विष्वक्) सब विधि से (भिन्धि) तोड़ दे (च) और (सहस्व) जीत ले ॥ ६ ॥

भावार्थः—समस्त और प्रत्येक प्रजागण समर्थ शूर वीर पुरुष वा सद्वैद्य को नायक बनाकर शत्रुओं और रोगों से अपने को बचावें ॥ ६ ॥

तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न वैबाधप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ ७ ॥

६—वानस्पत्यान् । वनति सेवते । अथवा । वन्यते सेव्यते स वनः । तेषां पतिः, वनस्पतिः । 'वनस्पते' वनस्य सम्भजनीयस्य शास्त्रस्य पालक—इति दयानन्दभाष्ये, यजु० २७ । २१ । ततः **दित्यदित्यादित्य०** (पा० ४ । १ । ८५) इति ण्यप्रत्ययः । सेवकानां सेव्यगुणानां वा पालकस्य सम्बन्धिनःपुरुषान् । स्वभक्तानित्यर्थः । यद्वा, समूहार्थे ण्यः । वृक्षान् । **आरोहन्** । रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च—शतृप्रत्ययः । आरूढः, अधिष्ठाता सन् । **कृणुषे** । करोषि । **अधरान्** । नीचान् । स्वशरणे रक्षितान् । **मूर्धानम्** । **श्वनुक्षन्पूषन्प्लीहन्०** (उ० १ । १५९) इति मुर्वी बन्धने-कनिन्[1] । मस्तकम् । **विष्वक्** । विषु अञ्चु-क्विन् । सर्वतः । **भिन्धि** । विदारय । **सहस्व** । अभिभव ॥

१. उकार को दीर्घत्व एवं वकार को धकार यहाँ निपातित है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ते । अधराञ्चः । प्र । प्लवन्ताम् । छिन्ना । नौःऽइव । बन्धनात् ।
न । वैबाधऽप्रनुत्तानाम् । पुनः । अस्ति । निऽवर्तनम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(ते) वे (अधराञ्चः) अधोगति वाले लोग वा रोग (बन्धनात्) बन्धन से (छिन्ना) छूटी हुयी (नौः इव) नाव के समान (प्र प्लवन्ताम्) बहते चले जावें, जिससे (वैबाधप्रणुत्तानाम्) विविध बाधा डालने वालों में पड़े हुये लोगों का (पुनः) फिर (निवर्तनम्) लौटना (न) नहीं (अस्ति) हो ॥७॥

भावार्थः—महादुष्ट रोग वा दुराचारियों के हटाने के लिये कठिन उपाय करने चाहियें, क्योंकि कोमलता से उनका सुधार नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

प्रैणान् नुदे मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा ।
प्रैणान् वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामहे ॥ ८ ॥

प्र । एनान् । नुदे । मनसा । प्र । चित्तेन । उत । ब्रह्मणा ।
प्र । एनान् । वृक्षस्य । शाखया । अश्वत्थस्य । नुदामहे ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(एनान्) इन [शत्रुओं] को (मनसा) मनन शक्ति से, (चि-

७—**ते** । शत्रवः । **अधराञ्चः** । अधर+अञ्चतेः—क्विन् । अधोगतिं प्राप्ताः । **प्रप्लवन्ताम्** । प्लुङ् गतौ । प्रवाहेण सह गच्छन्तु । न कदाचित् पारं प्राप्नुवन्तु । **छिन्ना** । भिन्ना । वियुक्ता । **नौः** । **ग्लानुदिभ्यां डौः** (उ० २ । ६४) इति णुद प्रेरणे - डौः । जलतरणसाधनम् । तरणिः । **बन्धनात्** । बन्ध-ल्युट् । रज्ज्वाः सकाशात् । **न** । निषेधे । **वैबाधप्रणुत्तानाम्** । वैबाधो यथा मन्त्रे २ । प्र+णुद प्रेरणे—क्तः, तस्य नः । वैबाधेषु विविधबाधकेषु प्रणुत्तानां प्रेरितानां क्षिप्तानाम् । **पुनः** । पश्चात् । **अस्ति** । भवति । **निवर्त्तनम्** । नि+वृत्-ल्युट् निवृत्य । आगमनम् ॥

८—**एनान्** । पूर्वोक्तान् शत्रून् । **नुदे** । णुद प्रेरणे । स्वरितेत्त्वाद् आत्मनेपदम् । प्रेरयामि । निःसारयामि । **मनसा** । मननशक्त्या । **चित्तेन** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्तेन) ज्ञान शक्ति से (उत) और (ब्रह्मणा) वेदशक्ति से (प्र प्र) सर्वथा (नुदे) मैं हटाता हूँ। (एनान्) इनको (वृक्षस्य) स्वीकार करने योग्य (अश्वत्थस्य) बलवानों में ठहरने वाले शूर [वा पीपल] की (शाखया) व्याप्ति [वा शाखा] से (प्र, नुदामहे) हम निकाले देते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थः—प्रत्येक व्यक्ति और सब लोग मिलकर शूरवीर वा पीपल के प्रभाव से आगा पीछा विचारकर शत्रुओं को नष्ट कर देते हैं ॥

सूक्तम् ७ ॥

१—७॥ १-३ हरिणो देवता, ४-७ मन्त्रोक्ताः देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ॥

रोगनाशनायोपदेशः—रोग नाश करने के लिये उपदेश ॥

हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम् ।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ॥ १ ॥

हरिणस्य । रघुऽस्यदः । अधि । शीर्षणि । भेषजम् । सः ।
क्षेत्रियम् । विऽसानया । विषूचीनम् । अनीनशत् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(रघुष्यदः) शीघ्रगामी (हरिणस्य) अन्धकार हरने वाले सूर्य रूप परमेश्वर के (शीर्षणि अधि) आश्रय में ही (भेषजम्) भय जीतने वाला औषध है, (सः) उस [ईश्वर] ने (विषाणया) विविध दोनों से (क्षेत्रियम्)

चिती संज्ञाने-क्तः । ज्ञानशक्त्या । **ब्रह्मणा** । वेदविज्ञानेन । **वृक्षस्य** । **इगुपधज्ञा-प्रीकिरः कः** (पा० ३ । १ । १३५) इति वृक्षवरणे-कः । वरणीयस्य । विटपस्य वा । **शाखया** । शाखृ व्याप्तौ अच्, टाप् । व्याप्त्या । पूर्णतया वृक्षावयवेन । **अश्वत्थस्य** । म० १ । बलवत्सु स्थितिशीलस्य शूरस्य पिप्पलस्य । **नुदामहे** । प्रेरयामः ॥

१—**हरिणस्य** । **श्यास्त्याहृञ्विभ्य इनच्** (उ० २ । ४६) इति हृञ् हरणे इनच् । दुःखहरणशीलस्य परमेश्वरस्य । सूर्यस्य । पशुविशेषस्य मृगस्य । **रघु-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर वा वंश के रोग को (विषूचीनम्) सब ओर से (अनीनशत्) नष्ट कर दिया है ॥ १ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने आदि सृष्टि में वेद द्वारा हमारे स्वाभाविक और शारीरिक रोगों की औषधि दी है उसी के आज्ञापालन में हमारा कल्याण है ॥

"हरिण" शब्दकल्पद्रुम कोष में विष्णु, शिव, सूर्य, हंस और पशु विशेष मृग का नाम है और पहिले चारों नाम प्रायः परमेश्वर के हैं ॥

दूसरा अर्थ

(रघुष्यदः) शीघ्रगामी (हरिणस्य) हरिण के (शीर्षणि अधि) मस्तक के भीतर (भेषजम्) औषध है । (सः) उस [हरिण] ने (विषाणया) [अपने] सींग से (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश के रोग को (विषूचीनम्) सब ओर (अनीनशत्) नष्ट कर दिया है ॥ १ ॥

भावार्थः—मृग के सींग आदि से मनुष्य बड़े २ रोग नष्ट करें । मृग के नाभि में प्रसिद्ध औषधि कस्तूरी होती है । उस का सींग पसली आदि की पीड़ा में लगाया जाता है, प्रायः घरों में रक्खा रहता है और उस में नौसादर भी होता है । विषाणम् = सींग कुष्ठ का औषध है ॥ १ ॥

ष्यदः । **लङ्घिबंह्योर्नलोपश्च** (उ० १।२९) इति लघि गतौ भोजननिवृत्तौ च—कुः, नलोपः । **बालमूललघ्वसुरालम०** (वा० पा० ८ । २ । १८) इति लस्य रत्वम् । स्यन्देः क्विप् । **अनिदिताम्०** (पा० ६ । ४ । २४) इति नलोपः । शीघ्रगामिनः । **अधि** । सप्तम्यर्थानुवादी । **शीर्षणि** । **श्रयतेः स्वाङ्गे शिरः किच्च** (उ० ४ । १९४) इति श्रिञ् सेवायाम्—असुन् । इति शिरः । **शीर्षश्छन्दसि** (पा० ६ । १ । ६०) इति शिरः शब्दस्य शीर्षन् इत्यादेशः । आश्रये । मस्तके । **भेषजम्** । अ० १ । ४ । ४ । भयजेतृसामर्थ्यम् । **सः** । पूर्वोक्तो हरिणः । **क्षेत्रियम्** । अ० २ । ८ । १ । क्षेत्र—घच् । क्षेत्रे देहे वंशे वा जातं रोगं दोषं वा । **विषाणया** । वि+षणु दाने, सेवने च—घञ् टाप् । विषाणं विशेषेण मदस्य दातारम्—इति सायणः—ऋ० ५ । ४४ । ११ । विषाणेन । विविधदानेन । शृङ्गेण । **विषूचीनम्** । विषु+अञ्चतेः—क्विन् । **अनिदितां हल उप०** (पा० ६ । ४ । २४) इति नलोपः । **विभाषाञ्चेरदिक् स्त्रियाम्** (पा० ५ । ४ । ८) इति स्वार्थे खः । **अचः** (पा० ६ । ४ । १३८) इत्यकारलोपे **चौ** (पा० ६ । ३ । १३८) इति दीर्घः । विष्वक्, सर्वतः । **अनीनशत्** । णश अदर्शने—णिच्, लुङ । नाशितवान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनु॑ त्वा हरि॒णो वृषा॑ प॒द्भिश्च॒तुर्भि॑रक्रमीत् ।
विषा॑णे॒ वि ष्य॑ गुष्पि॒तं यद॑स्य क्षेत्रि॒यं हृ॒दि ॥ २ ॥

अनु॑ । त्वा॒ । ह॒रि॒णः । वृषा॑ । प॒त्ऽभिः । च॒तुःऽभिः॑ । अ॒क्र॒मी॒त् ।
विऽसा॑ने । वि । स्य॒ । गु॒ष्पि॒तम् । यत् । अ॒स्य॒ । क्षे॒त्रि॒यम् । हृ॒दि ॥ २ ॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य] (वृषा) परम ऐश्वर्यवाला (हरिणः) विष्णु भगवान् (चतुर्भिः) मांगने योग्य [अथवा चार, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] (पद्भिः) पदार्थों के साथ (त्वा अनु) तेरे साथ २ (अक्रमीत्) पद जमाकर आगे बढ़ा है। (विषाणे) [परमेश्वर के] विविध दान में [उस रोग को] (विष्य) नाश कर दे (यत्) जो (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश का रोग (अस्य) इसके (हृदि) हृदय में (गुष्पितम्=गुफितम्) गुंथा हुआ है ॥ २ ॥

भावार्थः—परमेश्वर अनेक उत्तम २ पदार्थ देकर सदा सहायक रहता है। उसकी अनन्त दया से ओषधि द्वारा नीरोग रहकर अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥ २ ॥

दूसरा अर्थ

[हे मनुष्य !] (वृषा) बलवान् (हरिणः) हरिण (चतुर्भिः पद्भिः) चारों पैरों से (त्वा अनु) तेरे अनुकूल (अक्रमीत्) प्राप्त हुआ है।

२—**अनु**। सह। अनुकूलं व्याप्य। **त्वा**। त्वां मनुष्यम्। **हरिणः**। म०१। विष्णुः। परमेश्वरः। मृगः। **वृषा**। **कनिन् युवृषितक्षि०** (उ० १। १५६) इति वृषु सेचनप्रजननैश्वर्येषु-कनिन्। ऐश्वर्यवान्। इन्द्रः। **पद्भिः**। **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** (पा० ३।१।१३४) इति पद स्थैर्य्ये गतौ च-अच्। **पद्दन्नोमास्०** (पा० ६।१।६३) इति। पद् आदेशः। स्थातव्यैः, प्राप्तव्यैः। पदार्थैः। पादैः **चतुर्भिः**। **चतेरुरन्** (उ० ५। ५८) इति चते याचने-उरन्। याचनीयैः। चतुःसंख्याकैर्धर्मार्थकाममोक्षैर्वा। **अक्रमीत्**। क्रमु पादविक्षेपे,-लुङ्। पादविक्षेपेण प्राप्तवान्। **विषाणे**। म० १। वि+षणु दाने-घञ्। विविधदानेन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विषाणे) हे सींग ! [उस रोग को] (विष्य) नाश कर दे (यत्) जो (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश का रोग (अस्य हृदि) इसके हृदय में (गुष्पितम्) गुंथा हुआ है ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य हरिण के सींग आदि औषध से रोग निवृत्ति करें ॥ २ ॥

अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिवच्छदिः ।
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ॥ ३ ॥

अदः । यत् । अवऽरोचते । चतुष्पक्षम्ऽइव । छदिः । तेन । ते । सर्वम् । क्षेत्रियम् । अङ्गेभ्यः । नाशयामसि ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अदः) वह (यत्) जो [वा पूजनीय ब्रह्म] (चतुष्पक्षम्) याचनीय व्यवहारों से युक्त, अथवा चार पक्ष वाले (छदिः इव) घर के समान (अवरोचते) चमकता है । (तेन) उसके द्वारा (ते अङ्गेभ्यः) तेरे अङ्गों से

अथवा विषाणा' इत्यस्य संबोधनम् । हे शृङ्ग । **वि, स्य** । षो अन्त-कर्मणि-लोट् । विनाशय । **गुष्पितम्** । गुफ गुम्फ ग्रन्थे-क्तः । छान्दसं रूपम् । गुफितं गुम्फितं वा ग्रन्थितम् । **यत्** । यत्किंचित् । **अस्य** । समीपवर्त्तिनः । पुरुषस्य । **क्षेत्रियम्** । रोगजातम् । **हृदि** । हृदये ॥

३—**अदः** । न+दसु उपक्षये-क्विप् । एतत् । पुरोवर्त्ति । **यत्** । **त्यजित-नियजि०** (उ० १ । १३२) इति यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु अदिः, स च डित् । सर्वत्रसंगतं सर्वपूजनीयं ब्रह्म । अथवा, सर्वनामैतत् । **अवरोचते** । निश्चयेन व्याप्य वा दीप्यते । **चतुष्पक्षम्** । चते याचने उरन् । म० २ । **गृधिपण्योर्दकौ च** (उ० ३। ६९) इति पण व्यवहारे स्तुतौ च-सः, कश्चान्तादेशः । यद्वा । पक्ष परिग्रहे-घञ् । याचनीयव्यवहारयुक्तम् । चतुष्पक्षो वा । **छदिः** । **अर्चिशुचिहुसृपिछदिछर्दिभ्य इसिः** (उ० २ । १०८) इति छद संवरणे+णिच् इसिः । **इस्मन्त्रन्क्विषु च** (पा० ६ । ४ । ९७) इति ह्रस्वः । पटलम् । गृहम् । आच्छादनम् । **तेन** । ब्रह्मणा । **ते** । तव । **सर्वम्** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सर्वम्) सब (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश के रोग को (नाशयामसि=नाशयामः) हम नाश करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—ज्ञानी पुरुष उस सर्वत्र विराजमान परब्रह्म की रचनाओं में उत्तम कर्मों से युक्त घर के समान आनन्द पाकर अपने सब विघ्नों का सब जगह नाश करके आगे बढ़े चले जाते हैं ॥ ३ ॥

२—हरिण के सींग आदि औषध से रोग नष्ट करना चाहिये ॥ ३ ॥

अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥ ४ ॥

अमू इति । ये इति । दिवि । सुभगे इति सुऽभगे । विऽचृतौ । नाम । तारके इति । वि । क्षेत्रियस्य । मुञ्चताम् । अधमम् । पाशम् । उत्ऽतमम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अमू) वे (ये) जो (सुभगे) बड़े ऐश्वर्य वाले (विचृतौ) [अन्धकार से] छुड़ाने वाले (नाम) प्रसिद्ध (तारके) दो तारे [सूर्य और चन्द्रमा] (दिवि) आकाश में हैं, वे दोनों (क्षेत्रियस्य) शरीर वा वंश के दोष वा रोग के (अधमम्) नीचे और (उत्तमम्) ऊँचे (पाशम्) पाश को (वि+मुञ्चताम्) छुड़ा देवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जैसे सूर्य और चन्द्रमा परस्पर आकर्षण से प्रकाश, वृष्टि और पुष्टि आदि देकर संसार का उपकार करते हैं, इसी प्रकार मनुष्य सुमार्ग में चलकर सब विघ्नों को हटाकर स्वस्थ और यशस्वी हों ॥ ४ ॥

यह मन्त्र अ० २ । ८ । १ । में कुछ भेद से आ चुका है ।

अखिलम् । **क्षेत्रियम्** । नाशकरं रोगम् । **अङ्गेभ्यः** । शरीरावयवेभ्यः । **नाशयामसि** । वयं नाशयामः ॥

४—**अमू** । परिदृश्यमाने । **ये** । ज्ञाते । **दिवि** । द्युलोके । आकाशे । **सुभगे** । शोभनैश्वर्ययुक्ते । शिष्टं व्याख्यातम्—अ० २ । ८ । १ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप॒ इद् वा उ॑ भेष॒जीरापो॑ अमीव॒चात॑नीः ।
आपो॒ विश्व॑स्य भेष॒जीस्तास्त्वा॑ मुञ्चन्तु क्षेत्रि॒यात् ॥ ५ ॥

आप॑ः । इत् । वै । ऊँ इति॑ । भेष॒जीः । आप॑ः । अ॒मी॒व॒ऽचात॑नीः ।
आप॑ः । विश्व॑स्य । भेष॒जीः । ताः । त्वा॒ । मु॒ञ्च॒न्तु॒ । क्षेत्रि॒यात् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(आपः) सर्वव्यापक परमेश्वर वा जल (इत् वै उ) अवश्य ही (भेषजीः = ०—ज्यः) भय निवारक है, (आपः) परमेश्वर, वा जल (अमीवचातनीः = ०—न्यः) पीड़ानाशक है। (आपः) परमेश्वर वा जल (विश्वस्य) सब का (भेषजीः) भय निवारक है, (ताः) वह (त्वा) तुझ को (क्षेत्रियात्) शरीर वा वंश के दोष वा रोग से (मुञ्चन्तु) छुड़ावे ॥ ५ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने मनुष्य को बुद्धि, नेत्र हस्तादि, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि, और अन्नादि पदार्थ देकर बड़ा उपकार किया है, सो हम भी उसको धन्यवाद देते हुये सब के साथ उपकार करें, और खेती आदि में जल के सुप्रयोग से पुरानी और नवी दरिद्रता, और स्नान आदि में प्रयोगों से सब रोग नाश करें ॥ ५ ॥

'आपः' शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग बहुवचनान्त है, इसी से उस के विशेषण भी स्त्रीलिङ्ग बहुवचनान्त हैं। 'आपः' शब्द परमेश्वरवाची भी है, प्रमाण में अगला मन्त्र है। उसमें एकवचनान्त शब्दों के साथ प्रयोग से उसका अर्थ एक परमेश्वर का है ॥

५—**आपः** । अ० १।४।३ । सर्वव्यापकः परमेश्वरः । जलानि । **इत्, वै, उ** । इति सर्वेऽवधारणे । अत्यन्तनिश्चयेन । **भेषजीः** । भेषं भयं जयतीति भेषजम् । भेष+जि—डः । **केवलमामकभागधेय०** (पा०४।१।३०) इति । भेषजशब्दात्, ङीप्[1] । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति जसि पूर्वसवर्णदीर्घः । भेषज्यः । भयनिवारिकाः । **अमीवचातनीः** । अ० १ । २८ । १ । रोगाणां नाशयित्र्यः ।

---

१. भियः षुग्रस्वश्च (उ० १ । १३८) से अजि प्रत्यय करके भिषक् (वैद्य) शब्द बनता है। ततः भिषज इयम् ऐसा विग्रह करके तस्येदम् (पा० ४ । ३ । १२०) से अण् प्रत्यय करके 'भेषज' शब्द बनता है। यहाँ केवलमामक० (पा० ४ । १ । ३०) में ही भेषज शब्द पढ़ा होने से निपातन से आदि अच् को वृद्धि का अभाव एवं एकारादेश जानना चाहिये। द्र० पद० ४ । १ । ३०, उ० दया० व्याख्या। ङ प्रत्यय के कल्पना की अपेक्षा सिद्धि का यह क्रम अच्छा है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

(तत्) विस्तार करने वाले प्रसिद्ध ब्रह्म (एव) ही (अग्निः) ज्ञान-स्वरूप, (तत्) ब्रह्म ही (आदित्यः) प्रकाश स्वरूप, (तत्) ब्रह्म ही (वायुः) गतिशील बलवान्, और (तत् उ) ब्रह्म ही (चन्द्रमाः) आनन्द कारक है। (तत् एव) ब्रह्म ही (शुक्रम्) शुक्ल वा शुद्धस्वभाव, (तत्) सब में विस्तृत ब्रह्म (ब्रह्म) महान् (ताः) वही (आपः) सर्वव्यापक, और (सः) वही (प्रजापतिः) प्रजापालक है ॥

तनोति विस्तारयतीति तद् ब्रह्म। तनु विस्तारे अदिः, स च डित् (उ० १ । १३२)।

यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षैत्रियं नाशयामि त्वत् ॥ ६ ॥

यत् । आऽसुतेः । क्रियमाणायाः । क्षेत्रियम् । त्वा । विऽआनशे ।
वेद । अहम् । तस्य । भेषजम् । क्षेत्रियम् । नाशयामि । त्वत् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यत्) जो (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश का रोग (क्रियमाणायाः) बिगाड़े हुये (आसुतेः) काढ़े से (त्वा) तुझमें (व्यानशे) व्याप गया है। (अहम्) मैं (तस्य) उसका (भेषजम्) औषध (वेद) जानता हूँ। (क्षेत्रि-

---

पीडानाशिकाः। **विश्वस्य** । सर्वस्य । **त्वा** । त्वां मनुष्यम् । **मुञ्चन्तु** । मोचयन्तु । वियोजयन्तु, इत्यर्थः । **क्षेत्रियात्** । महारोगात् ।

६—यत् । यत्किञ्चित् । **आसुतेः** । आङ्=षुञ् अभिषवे क्तिन् । ओषधिपाकात् । काथात् । **क्रियमाणायाः** । कृञ् हिंसायाम् कर्मणि शानच् मुक् आगमः । बध्यमानायाः । नश्यमानायाः । **क्षेत्रियम्** । म० १ । महारोगः । **त्वा** । त्वां मनुष्यम् । **व्यानशे** । वि+अशूङ् व्याप्तौ—लिट् । **अश्नोतेश्च** (पा०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यम्) शरीर वा वंश के रोग को (त्वत्) तुम से (नाशयामि) नाश करता हूं ॥६॥

भावार्थः—विकृत औषध और विकृत अन्न के काढ़े वा पाक रस आदि से शरीर में भारी रोग व्याप जाते हैं, मनुष्य हितकारक पदार्थों का सेवन प्रयत्न करके किया करें ॥ ६ ॥

अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत ।
अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥ ७ ॥

अपऽवासे । नक्षत्राणाम् । अपऽवासे । उषसाम् । उत । अप । अस्मत् । सर्वम् । दुःऽभूतम् । अप । क्षेत्रियम् । उच्छतु ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों के (अपवासे) छिपने पर (उत) और (उषसाम्) प्रभात वेलाओं के (अपवासे) चले जाने पर (अस्मत्) हमसे (सर्वम्) सब (दुर्भूतम्) अनिष्ट (अप=अप उच्छतु) चला जावे, और (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश का रोग (अप) हट जावे ॥ ७ ॥

भावार्थः—यह मन्त्र उपसंहार है, अर्थात् जैसे प्रतापी सूर्य के चमकने पर तारे छिप जाते और उषाओं का रङ्ग फीका पड़ जाता है, वैसे ही उद्योगी पुरुष आलस्यादि अनिष्टों और रोगों को दबाकर आनन्द भोगता है ॥ ७ ॥

---

७ । ४ । ७२) इति दीर्घीभूताद् अभ्यासात् नुट् । व्याप्नोत् । **वेद** । जानामि । **अहम्** । उपासकः । **तस्य** । क्षेत्रियस्य । **भेषजम्** । भयनिवारकमौषधम् । **नाशयामि** । निवारयामि । **त्वत्** । त्वत्तः सकाशात् ॥

७—अपवासे । अप+वस निवासे, आच्छादने—भावे घञ् । अन्तर्धाने । अपगमने । **नक्षत्राणाम्** । **अमिनक्षियजि०** (उ० ३ । १०५) इति णक्ष गतौ—अत्रन् । नक्षत्राणि नक्षतेर्गतिकर्मणः—निरु० ३ । २० । तारकाणाम् । **उषसाम्** । **उषः किच्च** (उ० ४ । २३४) इति उष दाहे—असिः । प्रभातप्रकाशानाम् । **उत** । अपि । **अप** । अप उच्छतु । **अस्मत्** । अस्मत्तः । **सर्वम्** । निखिलम् । **दुर्भूतम्** । दुर्+भू—क्तः । दुर् दुःखेन भूतं युक्तम् । अनिष्टम् । दुःखम् । **क्षेत्रियम्** । महारोगजातम् । **अप उच्छतु** । उच्छी विवासे । अपगच्छतु । निवर्तताम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ८ ॥

१—६ । प्रजापतिर्मन्त्रोक्ता देवता वा । १--४, ६ त्रिष्टुप् ५ अनुष्टुप् ॥

प्रीतिजननायोपदेशः—प्रीति उत्पन्न करने का उपदेश ॥

आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन् पृथिवी-मुस्रियाभिः । अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्बृहद् राष्ट्रं संवेश्यं दधातु ॥ १ ॥

आ । यातु । मित्रः । ऋतुऽभिः । कल्पमानः । सम्ऽवेशयन् । पृथिवीम् । उस्रियाभिः । अथ । अस्मभ्यम् । वरुणः । वायुः । अग्निः । बृहत् । राष्ट्रम् । सम्ऽवेश्यम् । दधातु ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ऋतुभिः) ऋतुओं से (कल्पमानः) समर्थ होता हुआ और (उस्रियाभिः) किरणों से (पृथिवीम्) पृथिवी को (संवेशयन्) सुखी करता हुआ (मित्रः) मरण से बचाने वाला वा लोकों का चलाने वाला सूर्य (आयातु) आवे । (अथ) और (वरुणः) वृष्टि आदि का जल (वायुः)

१—**आयातु** । आगच्छतु । दीप्यतामित्यर्थः । **मित्रः** । अ० १ । ३ । २ । मित्रः प्रमीतेस्त्रायतेः संमिन्वानो द्रवतीति वा मेदयतेर्वा निरु० १० । २१ । **सुपि स्थः** (पा० ३ । २ । ४) इति प्रमीति+त्रैङ् पालने—कः, प्रमीतिशब्दस्य च मिद्भावः । यद्वा, डुमिञ् प्रक्षेपणे- क्त्रः । यद्वा, ञिमिदा स्नेहने क्त्रः । प्रमीतेर्मरणात् त्राता रक्षको वृष्टिदानेन । लोकान् सम्मिन्वानः प्रक्षिपन् प्रेरयन् आकर्षणेन । शस्यानि स्नेहयति जलेन । यद्वा मित्रवद् उपकारकः । सूर्यः । **ऋतुभिः** । वसन्ताद्यैः । **कल्पमानः** । कृपू सामर्थ्ये—लटः शानच् । **कृपो रो लः** (पा० ८ । २ । १८) इति लत्वम् । उपकाराय समर्थः सन् । **संवेशयन्** । संपूर्वाद् विश सुखीकरणे, णिच्, शतृ । सुखीकुर्वन् । **पृथिवीम्** । विस्तीर्णां भूमिम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवन और (अग्निः) अग्नि (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (बृहत्) विशाल (संवेश्यम्) शान्तिदायक (राष्ट्रम्) राज्य को (दधातु) स्थिर करे ॥ १ ॥

भावार्थः—राजा प्रयत्न करे कि उसके प्रजागण सब ऋतुओं से पृथिवी पर भानुताप [सूर्य की किरणों को कांच के दर्पणों से खींचने का यन्त्र] आदि यन्त्रों द्वारा सूर्य से, जल चक्र, जल नाली आदि द्वारा जल से, पवन चक्रादि द्वारा पवन से, और आग्नेय अस्त्र शस्त्र द्वारा अग्नि से, विमान, अग्निरथ, नौका आदि में अनेक विधि से उपकार लेकर राज्य की उन्नति करें ॥ १ ॥

धाता रातिः सविता इदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हर्यन्तु मे वचः । हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि ॥ २ ॥

धाता । रातिः । सविता । इदम् । जुषन्ताम् । इन्द्रः । त्वष्टा । प्रति । हर्यन्तु । मे । वचः । हुवे । देवीम् । अदितिम् । शूरऽपुत्राम् । सऽजातानाम् । मध्यमेऽस्थाः । यथा । असानि ॥ २ ॥

भाषार्थः—(धाता) पोषणकर्ता, (रातिः) दानकर्ता, (सविता) सर्व-

उस्रियाभिः । स्फायितञ्चिवञ्चि० (उ० २ । १३) इति वस निवासे—रक् । **वचिस्वपि०** (पा० ६ । १ । १५) इति सम्प्रसारणम् । ततः उस्राशब्दात् स्वार्थे पृषोदरादित्वेन[1] घप्रत्ययः । घस्य चेयादेशः । वसन्त्यत्र रसाः । **उस्रैः** किरणैः । **अथ** । अपि च । **अस्मभ्यम्** । अस्मदर्थम् । **वरुणः** । वरणीयं जलम् । **वायुः** । पवन । **अग्निः** । पावकः । **बृहत्** । महत् । **राष्ट्रम्** । अ० १ । २९ । १ राज्यम् । **संवेश्यम्** । संपूर्वाद् विश सुखीकरणे[2]—अर्हार्थे यत् । सुखीकरणयोग्यम् । शान्तिदायकम् । **दधातु** । धरतु । विदधातु । करोतु । स्थापयतु । प्रत्येकापेक्षयैकवचनम् ॥

२—**धाता** । धारकः । पोषकः । **रातिः** । रा दाने—कर्तरि क्तिच् ।

---

१. पा० ६ । ३ । १०९ ॥ सम्पा० ॥

२. धातुओं के अनेकार्थ होने से यहाँ 'सुखीकरणे' अर्थ दिया है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरक, (इन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान्, और (त्वष्टा) देवशिल्पी वा विश्वकर्मा [यह सब पुरुष] (मे) मेरे (इदम्) परम ऐश्वर्य के कारण (वचः) वचन को (जुषन्ताम्) विचारें और (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (हर्यन्तु) स्वीकार करें। (देवीम्) दिव्य गुणवाली, (शूरपुत्राम्) शूर पुत्रों वाली (अदितिम्) अदान वा अखण्ड व्रतवाली देव माता [चतुर स्त्री वा विद्या] को (हुवे) मैं आवाहन करता हूं, (यथा) जिससे मैं (सजातानाम्) अपने समान जन्मवाले भाई बन्धुओं में (मध्यमेष्ठाः) प्रधान मध्यस्थ [mediator] होकर (असानि) रहूं ॥ २ ॥

भावार्थः—राजा बड़े २ गुणवान् पुरुषों, बड़ी २ गुणवती स्त्रियों और विद्या की प्रतिष्ठा बढ़ावे, जिससे वह उनके सहाय से अपनी उन्नति करे ॥ २ ॥

हुवे सोमं सवितारं नमोभिर्विश्वानादित्याँ अहमुत्तरत्वे ।
अयमग्निर्दीदायद् दीर्घमेव संजातैरिद्धोऽप्रतिब्रुवद्भिः ॥३॥

दानशीलः । **सविता** । सर्वप्रेरकः । **इदम्** । इन्देः कमिन्नलोपश्च (उ० ४ । १५७) इति इदि परमैश्वर्ये—कमिन्, नलोपः । परमैश्वर्यकारणम् । **जुषन्ताम्** । जुष परितर्कणे, जुषी प्रीतिसेवनयोः । तर्कयन्तु । विचारयन्तु । सेवन्ताम् । **इन्द्रः** । परमैश्वर्यवान् । **त्वष्टा** । अ० २ । ५ । ६ । देवशिल्पी विश्वकर्मा । **प्रति** । प्रत्यक्षम् । **हर्यन्तु** । हर्य गतिकान्त्योः । कामयन्ताम् । सादरं शृण्वन्तु । स्वीकुर्वन्तु । **मे** । मदीयम् । **वचः** । वच परिभाषणे संदेशे च—असुन् । वचनम् । **हुवे** । ह्वेञ् आह्वाने । आह्वयामि । **देवीम्** । दानादिगुणयुक्ताम् । दिव्यगुणवतीम् । **अदितिम्** । अ० २ । २८ । ५ । अखण्डव्रताम् । अदीनां देवमातरम् । सुलक्षणां स्त्रियं विद्यां वा । **शूरपुत्राम्** । शूराः विक्रान्ताः शौर्योपेताः पुत्राः यस्याः सा तथोक्ता ताम् । वीरपुत्रवतीम् । **सजातानाम्** । समानजन्मनाम् बन्धूनाम् । **मध्यमेष्ठाः** । अ० २ । ६ । ४ । मध्यम + ष्ठा गतिनिवृत्तौ—विच् । सप्तम्या अलुक् । मध्यभवेषु प्रधानेषु स्थितः । **यथा** । यस्मात् कारणात् । **असानि** । असेर्लोटि । अहं भवानि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुवे । सोमम् । सवितारम् । नमःऽभिः । विश्वान् । आदित्यान् । अहम् । उत्तरऽत्वे । अयम् । अग्निः । दीदयत् । दीर्घम् । एव । सऽजातैः । इद्धः । अप्रतिब्रुवत्ऽभिः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (सोमम्) ऐश्वर्य वाले और (सवितारम्) सर्व-प्रेरक पुरुष को और (विश्वान्) सब (आदित्यान्) अदीन देवमाता के पुत्रों वा तेजस्वी शूर जनों को (उत्तरत्वे) श्रेष्ठता के निमित्त (नमोभिः) अनेक सत्कारों से (हुवे) आवाहन करता हूं । (अप्रतिब्रुवद्भिः) प्रतिकूल न बोलने वाले (सजातैः) समान जन्म वाले भाई बन्धुओं करके (इद्धः) प्रकाशित किया हुआ (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि [सदृश तेजस्वी पुरुष] (दीर्घम्) बहुत काल तक (एव) अवश्य (दीदयत्) ज्योति वाला रहे ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो राजा शूर वीर सत्यवादी पुरुषों और भाई बन्धुओं का सत्कार करता रहता है, वह उनकी सहायता से चिरकाल तक तेजस्वी होकर संसार में कीर्त्ति पाता है ॥ ३ ॥

इहेदसाथ न परो गमाथेयो गोपाः पुष्टपतिर्व आजत् ।

३—**हुवे** । आह्वयामि । **सोमम्** । ऐश्वर्यवन्तं पुरुषम् । **सवितारम्** । सर्वस्य प्रेरकं नायकम् । **नमोभिः** । सत्कारैः । **विश्वान्** । सर्वान् । **आदित्यान्** । अ० १ । ९ । १ । अदिति–ण्यः । यद्वा । आङ दीपी दीप्तौ यक् निपातनात् साधुः । अदितिपुत्रान् । देदीप्यमानान् शूरान् । **अहम्** । प्रधान-पुरुषः । **उत्तरत्वे** । निमित्ते सप्तमी । श्रेष्ठतार्थम् । **अयम्** । निर्दिष्टः । अह-मित्यर्थः । **अग्निः** । अग्निवत् तेजस्वी । **दीदयत्** । दीदेतिश्छान्दसो दीप्तिकर्मा लेटि । अडागमः दीर्घश्छान्दसः । दीप्यताम् । **दीर्घमेव** । चिरकालमेव । **सजातैः** । समानजन्मभिः । बन्धुभिः । **इद्धः** । इन्धी दीप्तौ क्तः । समिद्धः । अभिवर्धितः । **अप्रतिब्रुवद्भिः** । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि–शतृः । अप्रतिकूलवादिभिः । सत्यवादिभिः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु ॥ ४ ॥

इह । इत् । असाथ । न । परः । गमाथ । इर्यः । गोपाः । पुष्टपतिः । वः । आ । अजत् । अस्मै । कामाय । उप । कामिनीः । विश्वे । वः । देवाः । उपऽसंयन्तु ॥ ४ ॥

भाषार्थः—[हे प्रजाओ ! स्त्री पुरुषो !] (इह इत्) यहां पर ही (असाथ) रहो, (परः) दूर (न) मत (गमाथ) जाओ, (इर्यः) अन्नवान् वा विद्यावान् (गोपाः) भूमि, वा विद्या वा गौ का रक्षक, (पुष्टपतिः) पोषण का स्वामी पुरुष (वः) तुम को (आ, अजत्) यहां लावे । (अस्मै) इस [पुरुष] के अर्थ (कामाय) कामना [की पूर्त्ति] के लिये (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम २ गुण (कामिनीः) उत्तम कामना वाली (वः) तुम प्रजाओं को (उप) अच्छे प्रकार से (उपसंयन्तु) आकर प्राप्त हों ॥ ४ ॥

भावार्थः—राजा राज्य की वृद्धि के लिये प्रजा अर्थात् स्त्री पुरुषों को नगरों

४—इह । अस्मिन् राज्ये । **इत्** । एव । **असाथ** । अस्तेर्लेटि आडागमः । भवत । वर्तध्वम् । **न** । निषेधे । **परः** । पृधातोरच्प्रत्ययः । दूरे । **गमाथ** । गमेर्लेटि आडागमः । गच्छत । **इर्यः** । **ऋज्रेन्द्राग्र०** (उ० २।२८) इति इण् गतौ-रक्, टाप्, गुणाभावो निपात्यते । इरा, अन्ननाम-निघ० २।७ । सरस्वती । **तत्र साधुः** (पा०४।४।९८) इति इरा-यत् । अन्नवान् । विद्यावान् । **गोपाः** । **आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च** (पा० ३ । २ । ७४) इति गो+पा रक्षणे-विच् । **चितः** (पा० ६ । १ । १६३) इति अन्तोदात्तः । गां भूमिं वाचं धेनुं वा पातीति । भूपालः । विद्यारक्षकः । धेनुरक्षकः । **पुष्टपतिः** । पुष्टस्य पोषणस्य स्वामी । **वः** । युष्मान् । **आ, अजत्** । अज गतिक्षेपणयोः । आगमयतु, आनयतु । **अस्मै** । अस्य हिताय । **कामाय** । शुभकामनासिद्धये । इष्टप्राप्तये । **उप** । अधिके । पूजायाम् । **कामिनीः** । काम-इनिः, ङीप् । शुभकामवतीः प्रजाः । **विश्वे** । सर्वे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बसाये और अन्नादि से पोषण करके शुभ गुणों के उपार्जन में सदा प्रवृत्त रक्खे ॥ ४ ॥

सं वो मनाँसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ॥ ५ ॥

सम् । वः । मनांसि । सम् । व्रता । सम् । आऽकूतीः । नमामसि ।
अमी इति । ये । विऽव्रताः । स्थन । तान् । वः । सम् । नमयामसि ॥ ५ ॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (वः) तुम्हारे (मनांसि) मनों को (सम्) ठीक रीति से, (व्रता=व्रतानि) कर्मों को (सम्) ठीक रीति से, (आकूतीः) संकल्पों को (सम्) ठीक रीति से (नमामसि=०—मः) हम झुकते हैं। (अमी ये) यह जो तुम (विव्रताः) विरुद्ध कर्मी (स्थन) हो, (तान् वः) उन तुम को (सम्) ठीक रीति से (नमयामसि=०—मः) हम झुकाते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—प्रधान पुरुष सब के उत्तम विचारों, उत्तम कर्मों और उत्तम मनोरथों को माने और धर्म पथ में विरुद्ध मत वालों को भी सहमत कर लेवे ॥५॥

देवाः । दिव्यगुणाः । **उपसंयन्तु** । इण् गतौ—लोट् । समीपे सम्यक् प्राप्नुवन्तु ॥

५—**सम्** । षो अन्तकर्मणि—डम्[1] । स्यति अनर्थान् सम्यक् । यथाविधि । **वः** । युष्माकम् । **मनांसि** । मननानि । चेतांसि । **व्रताः** । अ० २ । ३० । २ । कर्माणि—निघ० २ । १ । **आकूतीः** । अ० ३ । २ । २ । सङ्कल्पान् । मनोरथान् । **नमामसि** । **इदन्तो मसि** (पा० ७ । १ । ४६) इति मसः स्थाने मसि । वयं नमामः । नम्रीभवामः । **अमी** । समीपस्थाः । **ये** । पुरुषाः । **विव्रताः** । विरुद्धकर्माणः । **स्थन** । अ० १ । ३१ । २ । यूयं स्थ । वर्तध्वे । **तान्** । पूर्वोक्तान् । **वः** । युष्मान् । **नमयामसि** । णम प्रह्वत्वे शब्दे च । णिच्, लट् । नामयामः । प्रह्वीकुर्मः । नम्रीकुर्मः ॥

---

१. समित्येकीभावम् । निरु० १ । ३ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥६॥

अहम् । गृभ्णामि । मनसा । मनांसि । मम । चित्तम् । अनु । चित्तेभिः । आ । इत । मम । वशेषु । हृदयानि । वः । कृणोमि । मम । यातम् । अनुऽवर्त्मानः । आ । इत ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (मनसा) अपने मन से (मनांसि) तुम्हारे मनों को (गृभ्णामि=गृह्णामि) थामता हूँ, (मम) मेरे (चित्तम् अनु) चित्त के पीछे २ (चित्तेभिः=चित्तैः) अपने चित्तों से (आ इत) आओ। (मम वशेषु) अपने वश में (वः हृदयानि) तुम्हारे हृदयों को (कृणोमि) मैं करता हूं, (मम यातम्) मेरी चाल पर (अनुवर्त्मानः) मार्ग चलते हुये (आ इत) यहां आओ ॥ ६ ॥

भावार्थः—प्रधान पुरुष अपने शुभ विचार और साहस से सब सभासदों और प्रजागणों को धर्म पथ पर चलाकर परस्पर मेल के साथ साहसी और उत्साही बनावे ॥ ६ ॥

६—अहम् । प्रधानपुरुषः । **गृभ्णामि** । भस्य हः । गृह्णामि । स्थिरीकरोमि । **मनसा** । मानसिकबलेन । **मनांसि** । मानसिकबलानि । **चित्तम्** । ज्ञानम् । **अनु** । अनुसृत्य । **चित्तेभिः** । चित्तैः । ज्ञानैः । **आ इत** । आगच्छत । **मम** । स्वकीयेषु । **वशेषु** । वश कान्तौ–अप् । आयत्तत्वेषु । प्रभुत्वेषु । **हृदयानि** । अन्तः करणानि । **वः** । युष्माकम् । **कृणोमि** । करोमि । **यातम्** । या प्रापणे–क्तः । गमनम् । **अनुवर्त्मानः** । अनु + वर्त्मन् । अनुसृतमार्गाः सन्तः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ९ ॥

१-६ । प्रजापतिर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

विघ्नशमनायोपदेशः—विघ्न की शान्ति के लिये उपदेश ॥

कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता ।
यथाभिचक्र देवास्तथाप कृणुता पुनः ॥ १ ॥

कर्शफस्य । विऽशफस्य [विशफस्य] । द्यौः । पिता । पृथिवी । माता । यथा । अभिऽचक्र । देवाः । तथा । अप । कृणुत । पुनः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(कर्शफस्य) निर्बल का और (विशफस्य) प्रबल का (द्यौः) प्रकाशमान परमेश्वर (पिता) पिता और (पृथिवी) विस्तीर्ण परमेश्वर (माता) निर्मात्री, माता है । (देवाः) हे विजयी पुरुषो ! (यथा) जैसे [शत्रुओं को] (अभिचक्र) तुम ने हराया था, (तथा) वैसे ही (पुनः) फिर [उन्हें] (अप कृणुत) हटा दो ॥ १ ॥

भावार्थः—जगत् के माता पिता परमेश्वर ने वृष्टि द्वारा सूर्य और पृथिवी के संयोग से सब निर्बल और प्रबल जीवों को उत्पन्न किया है, इसलिये

१—**कर्शफस्य** । **कृशृशलिकलिगर्दिभ्योऽभच्** (उ० ३ । १२२) इति कृश तनूकरणे, अल्पीभावे-अभच्, भस्य फः । कृशस्य निर्बलस्य । **विशफस्य** । **ऋषिवृषिभ्यां कित्** (उ० ३ । १२३) इति विश प्रवेशने—अभच् स च कित्, भस्य फः । विशः = मनुष्याः निघ० २ । ३ । विशालस्य । प्रबलस्य । **द्यौः** । **गमेर्डोः** (उ०२।६७) इति द्युत दीप्तौ—डोः । द्योतमानः परमेश्वरः । **पिता** । पालकः । जनकः । **पृथिवी** । विस्तीर्णा । भूमिः । परमेश्वरः । **माता** । अ० १ । २ । १ । मान पूजायाम्-माङ् माने वा तृच् । निपातितश्च[1] । मातरः = निर्मात्र्यः—निरु० १२ । ७ । मान्या । निर्मात्री । जननी । **यथा** । येन प्रकारेण । **अभिचक्र** । करोतेर्लिटि मध्यमबहुवचने रूपम् । यूयम् अभिभूतवन्तः । जितवन्तः । **देवाः** ।

---

१. उ० २ । ९५ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब सबल और निर्बल मिलकर अविद्या, निर्धनता आदि शत्रुओं को मिटाकर आनन्द से रहें ॥ १ ॥

अश्रेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम् ।
कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गवामिव ॥ २ ॥

अश्रेष्माणः । अधारयन् । तथा । तत् । मनुना । कृतम् ।
कृणोमि । वध्रिं । विऽस्कन्धम् । मुष्कऽआबर्हः । गवाम्ऽइव ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अश्रेष्माणः) दाह [डाह] न करने वाले पुरुषों ने [जगत् को] (अधारयन्) धारण किया है, (तथा) उसी प्रकार से ही (तत्) वह [जगत् का धारण] (मनुना) सर्वज्ञ परमेश्वर करके (कृतम्) किया गया है। (विष्कन्धम्) विघ्न को (वध्रि) निर्बल (कृणोमि) मैं करता हूं, (गवाम् इव) जैसे बैलों के (मुष्काबर्हः) अण्डकोष तोड़ने वाला [बैलों को निर्बल कर देता है ॥ २ ॥

भावार्थः—पक्षपातरहित परमेश्वर संसार का धारण पोषण करता है, उसी

दिवु विजिगीषायाम्-अच् । हे विजिगीषवः । विजयनिः । **तथा** । तेन प्रकारेण । **अप कृणुत** । कृवि हिंसाकरणयोः । अपकुरुत । निवारयत शत्रून् । **पुनः** । अवधारणे । द्वितीयवारे ॥

२—**अश्रेष्माणः** । **सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उ० ४ । १४५) इति श्रिषु दाहे-मनिन् । दाहशून्याः । अमत्सराः । **अधारयन्** । धृतवन्तः । **तथा** । तद्वदेव । **तत्** । धारणरूपं कर्म । **मनुना** । **शॄस्वृस्निहि०** (उ० १ । १०) इति मन ज्ञाने-उः । सर्वज्ञेन परमेश्वरेण । **कृतम्** । अनुष्ठितम् । **कृणोमि** । करोमि । **वध्रि** । **अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन्** (उ० ४।६५) इति बन्ध बन्धने क्रिन् बन्ध्यम् । विफलम् । निर्वीर्यम् । **विष्कन्धम्** । अ० १ । १६ । ३ । वि+स्कन्दिर् गतिशोषणयोः—अच् । विशेषेण शोषकम् । विघ्नजातम् । **मुष्का-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार धर्मात्मा पुरुष किसी से बैर न करके उपकार करते आये हैं, वैसे ही प्रत्येक मनुष्य विघ्नों को हटाकर उन्नति करे, जैसे दुर्दमनीय बैल को असह्य बल से हीन करते एवं कृषि आदि में चलाते हैं ।।

पिशङ्गे सूत्रे खृगलं तदा बध्नन्ति वेधसः ।
श्रवस्युं शुष्मं कावयं वध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः ॥ ३ ॥

पिशङ्गे । सूत्रे । खृगलम् । तत् । आ । बध्नन्ति । वेधसः ।
श्रवस्युम् । शुष्मम् । कावयम् । वध्रिम् । कृण्वन्तु । बन्धुरः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(वेधसः] बुद्धिमान् पुरुष (पिशङ्गे) व्यवस्था वा अवयवों से युक्त वा दृढ़ (सूत्रे) सूत में (तत्) विस्तीर्ण (खृगलम्) खनती वा छिद्र में गलाने वाले, विघ्न को (आ) सब ओर से (बध्नन्ति) बांधते हैं । (बन्धुरः = ०—राः) बन्धुजन (श्रवस्युम्), प्रसिद्ध, (शुष्मम्) सुखाने

बर्हः । सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक् (उ० ३ । ४१) इति मुष स्तेये, वधे च, कक् । ततः **कर्मण्यण्** (पा० ३ । २ । १) इति मुष्क + आङ्—बर्ह हिंसायां दीप्तौ च—अण् । मुष्कम् अण्डकोषम् आबृहति उन्मूलयतीति । अण्डकोषछेदकः । **गवाम्** । पुंगवानाम् । **इव** । यथा ।।

३—**पिशङ्गे** । **विडादिभ्यः कित्** (उ० १ । १२१) इति पिश व्यवस्थायाम्, अवयवे च—अङ्गच् । व्यवस्थायुक्ते । अवयवयुक्ते । दृढे । **सूत्रे** । **सिविमुच्योष्टेरूच** उ० ४ । १६३) इति षिवु तन्तुसन्ताने—ष्ट्रन् । यद्वा । सूत्र वेष्टने—अच् । तन्तौ । व्यवस्थायाम् । नियमे । **खृगलम्** । **नयतेर्डिच्च** (उ० २ । १००) इति खनु अवदारणे—ऋप्रत्ययः, टिलोपः । गल अदने, स्रवणे च—अच् । खृ खननं छिद्रम्, तत्र गलयतीति खृगलः । छिद्रे गलनशीलं विघ्नम् । **तत्** । **त्यजितनियजिभ्यो डित्** (उ० १ । १३२) इति तनु विस्तारे अदिः, स च डित् । विस्तृतम् । **आ** । समन्तात् । **बध्नन्ति** । नियमे कुर्वन्ति । **वेधसः** । अ० १ । ११ । १ । ब्राह्मणाः । मेधाविनः । **श्रवस्युम्** । **क्याच्छन्दसि** (पा० ३ । २ । १७०) इति श्रवस् क्यच्—उः श्रवः श्रवणम् इच्छन्तम् । महान्तम् । प्रसिद्धम् । **शुष्मम्** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले (काबवम्) स्तुतिनाशक शत्रु को (वध्रिम्) निर्वीर्य (कृण्वन्तु) कर देवें ॥ ३ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोग वेद द्वारा छोटे छोटों के मेल से बड़ी २ विपत्तियों को हटा देते हैं, इससे सब बान्धव मिलकर बाहरी और भीतरी दोषों को मिटाकर सुख भोगें ॥ ३ ॥

येना श्रवस्यवश्चरथ देवा इवासुरमायया ।
शुनां कपिरिव दूषणो बन्धुरा काबवस्य च ॥ ४ ॥

येन । श्रवस्यवः । चरथ । देवाःऽइव । असुरऽमायया ।
शुनाम् । कपिःऽइव । दूषणः । बन्धुरा । काबवस्य । च ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(येन) जिस [बल] के साथ (श्रवस्यवः) हे प्रसिद्ध महापुरुषो ! (देवाः इव) विजयी लोगों के समान (असुरमायया) प्रकाशमान ईश्वर की बुद्धि से (चरथ) तुम आचरण करते हो, [उसी बल के साथ] (शुनाम्) कुत्तों के (दूषणः) तुच्छ जानने वाले (कपिः इव) बन्दर के समान (बन्धुरा)

अविसिविसिशुषिभ्यः कित् (उ० १ । १४४) इति शुष शोषणे-मन् । शोषकम् । **काबवम्** । कबृ स्तुतौ वर्णे च घञ् । वा गतिगन्धनयोः—कः । स्तुतेर्वर्णस्य वा नाशकम् । शत्रुम् । **वध्रिम्** । म० २ । निर्वीर्यम् । असमर्थम् । **कृण्वन्तु** । कुर्वन्तु । **बन्धुरः** । **मधुरादयश्च** (उ० १ । ४१) इति बन्ध बन्धने-उरच् । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) इति जसः स्थाने सुः । बन्धुराः । नियमबद्धाः । बान्धवः ॥

४—येन । शास्त्रबलेन । **श्रवस्यवः** । म० ३ । प्रसिद्धाः । महान्तः कीर्त्तिमन्तः । **चरथ** । आचरणं कुरुथ । **देवाः इव** । विजयिनो पथा । **असुरमायया** । असुर इति व्याख्यातम्—अ० १ । १० । १ । **असेरुरन्** (उ०१।४२) इति असु क्षेपणे, यद्वा अस गतिदीप्त्यादानेषु उरन् । **माछासिभ्यो यः** । (उ० ४ । १०९) इति माङ् माने-यः, टाप् । माया प्रज्ञानाम—निघ० ३ । ९ । असुरस्य प्रकाशमानस्य परमेश्वरस्य मायया प्रज्ञया सह । **शुनाम्** । **श्वनुक्षन्-पूषन्०** (उ० १ । १५९) इति टुओश्वि गतिवृद्धयोः च—कनिन् । कुक्कुराणाम् । **कपिः** । **कुण्ठिकम्प्योर्नलोपश्च** (उ० ४ । १४४) इति कपि चलने—इप्रत्ययः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्धन शक्ति [नीति विद्या] (च) निश्चय करके (काववस्य) स्तुतिनाशक शत्रु की [तुच्छ करने वाली होती है] ॥ ४ ॥

भावार्थः—शास्त्र बल से प्रसिद्ध पुरुष अन्य महात्माओं का अनुकरण करके तीव्र बुद्धि के साथ उदाहरण बनते हैं, इसी प्रकार सब पुरुष नीति बल से शत्रुओं पर प्रबल रहें, जैसे बन्दर वृक्ष पर चढ़कर कुत्तों से निर्भय रहता है ॥ ४ ॥

दुष्टयै॒ हि त्वा॑ भ॒त्स्यामि॑ दूषयि॒ष्यामि॑ काव॒वम् ।
उद्ना॑शव॒ो रथा॑ इव श॒पथे॑भिः सरिष्यथ ॥ ५ ॥

दुष्टयै । हि । त्वा । भत्स्यामि । दूषयिष्यामि । काववम् ।
उत् । आशवः । रथाःऽइव । शपथेभिः । सरिष्यथ ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(दुष्टयै) दुष्टता [हटाने] के लिए (हि) ही (काववम्) स्तुति नाशक (त्वा) तुझ को (भत्स्यामि) मैं बाँधूंगा और (दूषयिष्यामि) दोषी ठहराऊँगा । (आशवः) शीघ्रगामी (रथाः इव) रथों के समान (शप-

---

वानरः । **इव** । यथा । **दूषणः** । **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** (पा० ३ । १ । १३४) इति दुष वैकृत्ये, णिच्—ल्युट् । दूषयति यः । दूषकः । दोषोत्पादकः । **बन्धुरा** । म० ३ । बन्ध-उरच्, टाप् । बध्यतेऽनया । बन्धनशीला । नीतिविद्या । **काववस्य** । म० ३ । स्तुतिनाशकस्य शत्रोः । दूषयित्री भवतीति शेषः । **च** । अवधारणे ॥

५—दुष्टयै । दुष वैकृत्ये-क्तिन् । दोषनिवारणाय । **हि** । निश्चयेन । **त्वा** । शत्रुम् । **भत्स्यामि** । बन्धेर्ल्रटि । **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** (पा० ७ । २ । १०) इति इट्प्रतिषेधः । नलोपश्छान्दसः । यद्वा । भस भर्त्सनदीप्त्योः । ल्रट् । छान्दस इडभावः । **सः स्यार्धधातुके** (पा० ७ । ४ । ४९) इति सस्य तः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थेभिः=०—थैः) हमारे शाप अर्थात् दण्ड वचनों से (उत् सरिष्यथ) तुम सब बन्धन में चले जाओगे ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजा नाम में धब्बा लगाने वाले दुष्ट को कारागार में रख कर उसके दोष प्रसिद्ध कर दे, और उसके सहायकों को भी उचित दण्ड देवे ॥ ५ ॥

एकंशतं विष्कंन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु ।
तेषां त्वामग्र उज्जहरुर्मणिं विष्कन्धदूषणम् ॥ ६ ॥

एकंऽशतम् । विऽस्कंन्धानि । विऽस्थिता । पृथिवीम् । अनु । तेषाम् । त्वाम् । अग्रे । उत् । जहरुः । मणिम् । विस्कन्धऽदूषणम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(एकशतम्) एक सौ एक (विष्कन्धानि) विघ्न (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर (विष्ठिता=०—तानि) फैले हुए हैं [हे शूर !] (तेषाम् अग्रे) उनके सन्मुख (विष्कन्बदूषणम्) विघ्न नाशक (मणिम्) प्रशंसनीय मणिरूप (त्वाम्) तुझको उन्होंने [देवताओं ने] (उत् जहरुः) ऊँचा उठाया है ॥ ६ ॥

बन्धे करिष्यामि । भर्त्सयिष्यामि । तिरस्करिष्यामि । **काव्यम्** । म० ३ । स्तुतिनाशकम् । **आशवः** । अशूङ् व्याप्तौ—उण् । शीघ्रगामिनः । **रथाः** । **हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्** (उ० २।२) इति रमु क्रीडायाम्—क्थन्, अनुनासिकलोपः । स्यन्दनाः । **इव** । यथा । **शपथेभिः** । अ० २ । ७ । १ । शपथैः । शापैः । क्रोधवचनैः । **उत् सरिष्यथ** । सृ—लृट् । उत् बन्धने चरिष्यथ । गमिष्यथ ।

६----एकशतम् । एकं च शतं चैकशतम् । एकोत्तरशतसंख्यानि । अपरिमितानि । **विष्कन्धानि** । म० २ । विघ्नाः । **विष्ठिता** । शेर्लोपः । विविधं स्थितानि । **पृथिवीम् अनु** । **अनुर्लक्षणे** (पा० १ । ४ । ८४) इत्यनोः कर्मप्रवचनीयत्वम् । **कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया** (पा० २ । ३ । ८) इति द्वितीया । भूमिं प्रति । **तेषाम्** । विघ्नानाम् । **अग्रे** । पूर्वम् । **उज्जहरुः** । हृञ् हरणे—लिट् उज्जहुः । उद्धृतवन्तः । उन्नीवन्तः । **मणिम्** । मण शब्दे—इन् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—प्रतिष्ठित लोग राजा को 'एकशतम्' अनेक विघ्नों से रक्षा के लिये अग्रगामी बनाते हैं, इसलिये राजा अपने धर्म का यथार्थ पालन करे ॥ ६ ॥

सूक्तम् १० ॥

१--१३ । रात्रिरेकाष्टका वा देवता । १-३, ८-११, १३ अनुष्टुप्; ४--६, १२ त्रिष्टुप्; ७ षट्पदानुष्टुप् ॥

पुष्टिवर्धनाय प्रकृतिवर्णनम्—पुष्टि बढ़ाने के लिये प्रकृति का वर्णन ॥

प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद् यमे ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ १ ॥

प्रथमा । ह । वि । उवास । सा । धेनुः । अभवत् । यमे ।
सा । नः । पयस्वती । दुहाम् । उत्तराम्ऽउत्तराम् । समाम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(सा) वह [ईश्वरी वा लक्ष्मी] (प्रथमा) प्रसिद्ध वा पहली शक्ति [प्रकृति] (ह) निश्चय करके (वि, उवास) प्रकाशित हुई । वह (यमे) नियम में (धेनुः) तृप्त करने वाली [वा गौ के समान] (अभवत्)

शब्दनीयं स्तुत्यम् । प्रशस्यम् मणिरूपं वा । **विष्कन्धदूषणम्** । विघ्ननाशकम् ॥

१—प्रथमा । प्रथेरमच् (उ० ५ । ६८) इति प्रथ प्रख्याने—अमच् । प्रख्याता । प्रधाना । आद्या । **ह** । खलु । **व्युवास** । वस आच्छादने, विपूर्वको वस तेजसि, दीप्तौ—लिट् । दिदीपे । **सा** । षो अन्तकर्मणि-ड: । स्यति दुःखानीति सः, ईश्वरः । विष्णुः । स्त्रियां टाप् । सा । ईश्वरी । लक्ष्मीः । प्रकृतिरित्यर्थः । यद्वा, सर्वनामैव । प्रसिद्धा इत्यर्थः । **धेनुः** । **धेट इच्च** (उ० ३ । ३४) इति धेट् पाने नुः । यद्वा, धि, धारणे, तर्पणे च—नुः । धेनुर्धयतेर्वा धिनोतेर्वा निरु० ११ । ४२ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई है। (सा) वह (पयस्वती) दुधेल [प्रकृति] (नः) हमको (उत्तराम्-उत्तराम्) उत्तम उत्तम (समाम्) सम [समान वा निष्पक्ष] शक्ति से (दुहाम्) भरती रहे ॥ १ ॥

भावार्थः—इस सूक्त में 'रात्रि' म० २ और 'एकाष्टका' म० ५ दोनों शब्द प्रकृति के वाचक हैं । प्रकृति ईश्वर शक्ति वा जगत् की सामग्री, सृष्टि से पहिले विद्यमान थी, उसने ईश्वरनियम से [मन्त्र २ वा ८ देखो] विविध पदार्थ सूर्य, अन्नादि उत्पन्न किये हैं। विद्वान् लोग प्रकृति के विज्ञान और प्रयोग से अधिक २ ऐश्वर्यवान् होते हैं ।

इस मन्त्र का उत्तरार्ध 'सा नः पयस्वती' ऋ० ४ । ५७ । ७ में हैं ॥

यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम् ।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥ २ ॥

याम् । देवाः । प्रतिऽनन्दन्ति । रात्रिम् । धेनुम् । उपऽआयतीम् ।
सम्ऽवत्सरस्य । या । पत्नी । सा । नः । अस्तु । सुऽमङ्गली ॥ २ ॥

भाषार्थः—(देवाः) महात्मा पुरुष, वा सूर्य, वायु चन्द्रादि दिव्य पदार्थ (उपायतीम्) पास आती हुई (धेनुम्) तृप्त करने वाली (याम्) जिस

दोग्ध्री तर्पयित्री । **अभवत्** । आसीत् । **यमे** । नियमे । **सा** । पूर्वोक्ता । **नः** । अस्मान् । **पयस्वती** । दुग्धवती । सारवती । **दुहाम्** । दुह प्रपूरणे—लोट् । स्वरितेत्वाद् आत्मनेपदम् । **अकथितं च** (पा० १ । ४ । ५१) इति द्विकर्मकता । यथा, मां दोग्धि पयः । दुग्धाम् । प्रपूरयतु । **उत्तरामुत्तराम्** । उद्+तॄ अप् । टाप् । **नित्यवीप्सयोः** (पा० ८ । १ । ४) इति द्विर्वचनम् । अतिशयेनोत्कृष्टाम् । **समाम्** । षम वैकृत्ये अच् अकथितं कर्मकत्वम् । पूर्णाम् । समक्रियाम् । समानाम् । साध्वीं शक्तिम् ॥

२—याम् । देवाः । विद्वांसः । सूर्यवायुचन्द्रादिदिव्यपदार्थाः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रात्रिम्) दानशीला और ग्रहणशीला शक्ति, वा रात्रि रूप [प्रकृति] को (प्रतिनन्दन्ति) अभिनन्दन करते [धन्य मानते] हैं और (या) जो (संवत्सरस्य) यथावत् निवास देने वाले [परमेश्वर] की (पत्नी) पालन शक्ति है, (सा = सा सा) वह ईश्वरी (नः) हमारे लिये (सुमङ्गली) बड़े २ मङ्गल करने वाली (अस्तु) होवे ॥ २ ॥

भावार्थः—प्रकृति ईश्वर नियम से पदार्थों को उत्पन्न करके जीवों को सुख देकर उनका दुःख हरती है, और अनन्त होने से वह रात्रि वा अन्धकार रूप है। विज्ञानी पुरुष खोज लगा २ कर उससे उपकार लेकर विविध उन्नति करते हैं ॥ २ ॥

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥ ३ ॥

सम्ऽवत्सरस्य । प्रतिऽमाम् । याम् । त्वा । रात्रि । उपऽस

प्रतिनन्दन्ति । टुनदि समृद्धौ । प्रतिनन्द अभिनन्दने, धन्यवादे । अभिनन्दयन्ति । स्तुवन्ति । **रात्रिम्** । **राशदिभ्यां त्रिप्** (उ० ४ । ६७) इति रा दाने ग्रहणे च—त्रिप् । यद्वा । रमतेः—त्रिप्, मकारस्याकारश्च । रात्रिः कस्मात् प्ररमयति भूतानि नक्तञ्चारीण्युपरमयतीतराणि ध्रुवीकरोति रातेर्वा स्याद् दानकर्मणः प्रदीयन्तेऽस्यामवश्यायाः—निरु० २ । १८ । रात्रिः—भूस्थानदेवता—निरु० ९ । २८ । सुखदात्रीम् । दुःखहर्त्रीम् । अनन्तत्वात् निशारूपाम् अन्वेषणीयां वा प्रकृतिमित्यर्थः । **धेनुम्** । प्रीणयित्रीम् । **उपायतीम्** । उप+आङ्+इण् गतौ—शतृः । **उगितश्च** (पा० ४ । १ । ६) इति ङीप् । समीपम् आगच्छन्तीम् । **संवत्सरस्य** । अ० ३ । ५ । ८ । **सः स्यार्धधातुके** (पा० ७ । ४।४९) इति सस्य तकारः । सम्यक् निवासकस्य । परमेश्वरस्य । **या** । रात्रिः । **पत्नी** । **पत्युर्नो यज्ञसंयोगे** । (पा० ४ । १ । ३३) इति इकारस्य नकारो ङीप् च । इन्द्राणीन्द्रस्य पत्नी—निरु० ११ । ३७ । इन्द्रस्य विभूतिः—इति दुर्गाचार्यस्य टीका । देवपत्न्यो देवानां पत्न्यः—निरु० १२ । ४४ । पालयित्र्यः पालनीया वा—इति तस्य टीका । पातीति पतिः पत्नी वा । पालयित्री शक्तिः । **सा** । सा सा । म० १ । पूर्वोक्तेश्वरी । **नः** । अस्मभ्यम् । **अस्तु** । भवतु । **सुमङ्गली** । **मङ्गेरलच्** (उ० ५ । ७०) इति मगि गतौ—अलच् । ङीप् । शोभनं मङ्गलं यस्याः । अत्यन्तकल्याणकरी । सुभद्रा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्महे । सा । नः । आयुष्मतीम् । प्रऽजाम् । रायः । पोषेण । सम् । सृज ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(रात्रि) हे सुखदात्री वा दुःखहर्त्री वा रात्रिरूप [प्रकृति] (संवत्सरस्य) यथावत् निवास देने वाले परमेश्वर की (प्रतिमाम्) प्रतिमा [प्रतिरूप वा, प्रतिनिधि] (याम्) सर्वत्र व्यापिनी (त्वा) तुझको (उपास्महे) हम भजते हैं। (सा) वह लक्ष्मी तू (नः) हमारे लिये (आयुष्मतीम्) चिरंजीविनी (प्रजाम्) प्रजा को (रायः) धन की (पोषेण) बढ़ती के साथ (संसृज) संयुक्त कर ॥ ३ ॥

भावार्थः—अनन्त परमेश्वरी प्रकृति के सूक्ष्म और स्थूल रूप के ज्ञान से उपकार लेकर हम अपनी सन्तान के सहित धनी, स्वस्थ और चिरंजीवी बने रहें ॥ ३ ॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥४॥

इयम् । एव । सा । या । प्रथमा । विऽऔच्छत् । आसु । इतरासु । चरति । प्रऽविष्टा । महान्तः । अस्याम् । महि-

---

३—**संवत्सरस्य** । म० २ । सम्यक् निवासकस्य परमेश्वरस्य । **प्रतिमाम्** । **आतश्चोपसर्गे** (पा० ३ । १ । १३६) इति प्रति + माङ् माने–अङ्, टाप् । प्रतिनिधित्वेन निर्मीयत इति प्रतिमा । प्रतिरूपाम् । प्रतिमूर्त्तिम् । **या** । या प्रापणे–ङः । यातीति यः, वायुः । स्त्रियां टाप् । सर्वत्रगन्त्रीम् । सर्वव्यापिनीम् । **त्वा** । त्वाम् । **रात्रि** । म० २ । विकल्पकत्वात् ङीप् । हे सुखदायिनि । हे रात्रिरूपे । अन्वेषणीये । **उपास्महे** । उप + आस उपवेशने । वयं सेवामहे । **सा** । म० १ । ईश्वरी त्वम् । **नः** । अस्मदर्थे । **आयुष्मतीम्** । चिर कालजीवनवतीम् । **प्रजाम्** । पुत्रपौत्रादिरूपाम् । **रायः** । अ० १ । ६ । ४ । धनस्य । **पोषेण** । पुष्टया । वृद्धया । **सं सृज** । संयोजय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानः । अन्तः । वधूः । जिगाय । नवऽगत् । जनित्री ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(इयम् एव) यही (सा) वह ईश्वरी, [रात्रि, प्रकृति] है (या) जो (प्रथमा) प्रथम (वि-औच्छत्) प्रकाशमान हुई है, और (आसु) इन सब और (इतरासु) दूसरी [सृष्टियों] में (प्रविष्टा) प्रविष्ट होकर (चरति) विचरती है। (अस्याम् अन्तः) इसके भीतर (महान्तः) बड़ी २ (महिमानः) महिमायें हैं। उस (नवगत्) नवीन २ गति वाली (वधूः) प्राप्ति योग्य (जनित्री) जननी ने [अनर्थों को] (जिगाय) जीत लिया है ॥ ४ ॥

भावार्थः—परमाणुरूपा प्रकृति जगत् के सब पदार्थों में प्रविष्ट है। विद्वान् लोग जैसे २ खोजते हैं उसकी नवीन २ शक्तियों का प्रादुर्भाव करके सुख पाते हैं ॥ ४ ॥

वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥५॥

४—**इयम्** । परिदृश्यमाना । **एव** । हि । **सा** । म० १ । ईश्वरी । **या** । रात्रिः, प्रकृतिः । **प्रथमा** । म० १ । आद्या । **व्यौच्छत्** । वि+उछी विवासे लङ् । अदीप्यत । **आसु** । परिदृश्यमानासु । **इतरासु** । इण् गतौ क्विप् **ऋदोरप्** (पा० ३ । ३ । ५७) इति इ+तॄ प्लवनसंतरणयोः अभिभवे च—अप्, टाप् । इः कामः । ईन् कामान् तरतीति इतरा । कामानां शुभकामानां तारयित्रीषु सृष्टिषु । अन्यासु । **चरति** । गच्छति । **प्रविष्टा** । अनुप्रविष्टा । **महान्तः** । विशालाः । **महिमानः** । **पृथ्वादिभ्य इमनिज् वा** (पा० ५ । १ । १२२) इति महत्—इमनिच् । टिलोपः । ऐश्वर्याणि । प्रभावाः । **अन्तः** । मध्ये । **वधूः** । **वहेर्धश्च** (उ० १ । ८३) इति वह प्रापणे—ऊप्रत्ययः । वहनयोग्या । प्राप्या । **जिगाय** । जि जये—लिट् । जितवती विघ्नान् । **नवगत्** । णु स्तुतौ—अप् । नवः स्तुत्यः नूतनः । नवपूर्वाद् गमेः क्विप् । **गमः क्वौ** (पा० ६ । ४ । ४०) इत्यनुनासिकलोपः । **ह्रस्वस्य पिति कृति०** (पा०६।१।७१) इति तुक् । प्रशस्यगतियुक्ता । नवीनगतिवती । **जनित्री** । अ० २ । १ । ३ । जनितृ-ङीप् । जनयित्री जगज्जननी ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वानस्पत्याः । ग्रावाणः । घोषम् । अक्रत । हविः । कृण्वन्तः । परिवत्सरीणम् । एकाऽष्टके । सुप्रजसः । सुवीराः । वयम् । स्याम । पतयः । रयीणाम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(वानस्पत्याः) वनस्पति अर्थात् सेवकों वा सेवनीय गुणों के रक्षक परमेश्वर से संबन्ध वाले (ग्रावाणः) सूक्ष्मदर्शी, स्तोता पुरुषों ने, (परिवत्सरीणम्) परिवत्सर, सब प्रकार निवास देने वाले परमेश्वर से सिद्ध किये हुये (हविः) ग्राह्य वस्तु को (कृण्वन्तः) उत्पन्न करते हुये, (घोषम्) ध्वनि (अक्रत) की है। "(एकाष्टके) हे अकेली व्याप्ति वाली वा अकेली भोजन स्थान शक्ति [प्रकृति]! (वयम्) हम लोग (सुप्रजसः) उत्तम सन्तान वाले, (सुवीराः) उत्तम वीरों वाले और (रयीणाम्) सब प्रकार के धनों के (पतयः) पति (स्याम) होवें" ॥ ५ ॥

५—**वानस्पत्याः** । अ० ३ । ६ । ६ । वनानां पतेः सेवकानां सेव्यगुणानां वा पालकस्य परमेश्वरस्य संबन्धिनः पुरुषाः । **ग्रावाणः** । **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** (पा० ३ । २ । ७५) इति हन गतिहिंसनयोः, ग्रह ग्रहणे वा, गॄ विज्ञाने, शब्दे, निगरणे वा,–कनिप् । पृषोदरादित्वात् साधुः । गृणातिः स्तुतिकर्मा । निरु० ३ । ५ । ग्रावाणो हन्तेर्वा गृणातेर्वा गृह्णातेर्वा–निरु० ९ । ८ । तथा च । गारयते सूक्ष्मार्थं सुधीः । शास्त्रविज्ञापकाः स्तोतारः । पण्डिताः । **घोषम्** । ध्वनिम् । **अक्रत** । कृञो लुङि । अकृषत । कृतवन्तः । **हविः** । अ० १ । ४ । ३ । ग्राह्यवस्तु । **कृण्वन्तः** । उत्पादयन्तः । आविष्कुर्वाणाः । **परिवत्सरीणम्** । **वसेश्च** (उ० ३ । ७१) इति परि+वस निवासे–सरन् । इति परिवत्सरः परितो निवासकः । परमेश्वरः । **संपरिपूर्वात् ख च** (पा० ५ । १ । ९२) इति निर्वृत्तार्थे खः । संवत्सरेण निर्वृत्तं साधितं रचितम् । **एकाष्टके** । **इष्यशिभ्यां तकन्** (उ० ३ । १४८) इति अशूङ् व्याप्तौ, यद्वा, अश भोजने–तकन् । टाप् । **अष्टका पितृदैवत्ये** (वा० पा० ७ । ३ । ४५), इति इत्वाभावः । अश्नुते व्याप्नोति सर्वं जगत् सा, यद्वा, अश्नन्ति सर्वे प्राणिनो यस्यां सा अष्टका । एका चासावष्टका एकाष्टका । हे एकमात्रव्यापनशीले । एकमात्रभोजनस्थाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—ऋषि मुनि प्रकृति द्वारा परमेश्वर रचित पदार्थों के गुणों के ज्ञान और प्रयोग से सब इसी प्रकार का सुख भोगते हैं। इसी प्रकार सब मनुष्य उद्योग करके आनन्द भोगें ॥ ५ ॥

इडायास्पदं घृतवत् सरीसृपं जातवेदः प्रति हव्या गृभाय ।
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु ॥६॥

इडायाः । पदम् । घृतऽवत् । सरीसृपम् । जातऽवेदः । प्रति । हव्या । गृभाय । ये । ग्राम्याः । पशवः । विश्वऽरूपाः । तेषाम् । सप्तानाम् । मयि । रन्तिः । अस्तु ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे उत्पन्न पदार्थों के ज्ञान वाले पुरुष ! (इडायाः) प्राप्ति योग्य [प्रकृति] के (घृतवत्) सारयुक्त और (सरीसृपम्) अत्यन्त रेंगते हुये (पदम् प्रति) पद से (हव्या = हव्यानि) देने लेने योग्य वस्तुओं को (गृभाय) ग्रहण कर। (ये) जो (ग्राम्याः) ग्राम निवासी, (विश्वरूपाः) नाना रूप वाले (पशवः) व्यक्त और अव्यक्त वाणी वाले जीव हैं, (तेषाम्) उन

प्रकृते । **सुप्रजसः** । **नित्यमसिच् प्रजामेधयोः** (पा० ५ । ४ । १२२) इति असिच् समासान्तः । शोभनपुत्रपौत्रादियुक्ताः । **सुवीराः** । अ० ३ । ५ । ८ । महाशूरयुक्ताः । **वयम्** । मनुष्याः । **स्याम** । भवेम । **पतयः** । स्वामिनः । **रयीणाम्** । धनानाम् ॥

६—इडायाः । **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** (पा० ३ । १ । १३५) इति इल स्वप्नगतिक्षेपणेषु-कः, लस्य डः । यद्वा । ईड स्तुतौ—घञ्, ईकारस्य ह्रस्वत्वम् । टाप् । इला, पृथिवी-निघ० १ । १ । वाक्, १ । ११ । अन्नम्-२ । ७ गौः-२ । ११ । प्राप्तव्यायाः स्तुत्यायाः प्रकृतेः । **पदम्** । पद स्थैर्ये गतौ च-पचाद्यच् । स्थानम् । गतिः । पादचिह्नम् । **घृतवत्** । सारोपेतम् । **सरीसृपम्** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब (सप्तानाम्) आपस में मिले हुये प्राणियों की (रन्तिः) प्रीति वा क्रीडा (मयि) मुझ में (अस्तु) होवे ॥ ६ ॥

भावार्थः—सृष्टि विद्या में निपुण पुरुष संसार के पदार्थों से विज्ञान द्वारा उपकार लेकर सब प्राणियों को सुखी रखकर आप सुखी रहते हैं ॥ ६ ॥

आ मा पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम ।
पूर्णा दर्वे परा पत सुपूर्णा पुनरा पत ।
सर्वान् यज्ञान्त्संभुञ्जतीषमूर्जं न आ भर ॥ ७ ॥

आ । मा । पुष्टे । च । पोषे । च । रात्रि । देवानाम् । सुऽमतौ । स्याम ।
पूर्णा । दर्वे । परा । पत । सुऽपूर्णा । पुनः । आ । पत । सर्वान् । यज्ञान् ।
सम्ऽभुञ्जती । इषम् । ऊर्जम् । नः । आ । भर ॥ ७ ॥

सृपेर्यङ्लुगन्तात्–पचाद्यच् । अत्यर्थं सर्पत् गच्छत् । **जातवेदः** । अ० १ । ७ । २ । हे जातप्रज्ञान ! । **प्रति** । प्रथ प्रख्यातौ–डतिः । व्याप्य । **हव्या** । हु दानादनयोः, आदाने च–यत् । शेर्लोपः । हव्यानि । दातव्यानि ग्राह्याणि वा वस्तूनि । दैवान्नानि । **गृभाय । छन्दसि शायजपि** (पा० ३ । १ । ८४) इति ग्रहेर्लोटि श्नः शायच् । तत्रैव वार्त्तिकं सिद्धान्तकौमुद्याम् । हृग्रहोर्भश्छन्दसि । इति हस्य भः । गृहाण । **ये । ग्राम्यः** । अ० २ । ३४ । ४ । ग्रामीणाः । **पशवः** । व्याख्यातम्–अ० २ । २६ । १ । व्यक्तवचनाश्चाव्यवचनाश्च मनुष्यगवादिप्राणिनः । **विश्वरूपाः** । नानाकाराः । **तेषाम् । सप्तानाम्** । अ० १ । १ । १ । षप समवाये–क्तः । समवेतानां परस्परसंबद्धानां संयुक्तानाम् । **मयि** । गृहस्वामिनि । **रन्तिः** । रमेः क्तिन्, अनुनासिकलोपाभावः । रतिः । रमणम् । प्रीतिः । **अस्तु** । भवतु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(रात्रि) हे सुख देने वाली वा दुःख हरने वाली, वा रात्री रूप [प्रकृति] (पुष्टे) धन की समृद्धि (च) और (पोषे) अन्नादि की वृद्धि में (च) निश्चय करके (मा) मुझको (आ=आ भर) भर दे, [जिससे] (देवानाम्) देवताओं की (सुमतौ) सुमति में (स्याम) हम रहें। (दर्वे) हे दुःख दलने वाली ! [वा चमसारूप !] (पूर्णा) भरी भराई (परापत) ऊपर आ, और (पुनः) बार २ (सुपूर्णा) भले प्रकार भरी भराई (आ पत) पास आ ! (सर्वान्) सब (यज्ञान्) पूजनीय गुणों का (सम्भुञ्जती) ठीक ठीक पालन करती हुई तू (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) बल (नः) हमें (आ भर) लाकर भर दे ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य सृष्टि के पदार्थों के गुण साक्षात् करके जितना २ आगे बढ़ता है, उतना २ ही वह धनी और बली होकर देवताओं का प्रिय होता और आनन्द भोगता है ॥ ७ ॥

'पूर्णा दर्वे···पुनरा पत' इतना भाग यर्जुर्वेद अ० ३ । ४९ में है, वहां 'दर्वे' के स्थान पर 'दर्वि' पद है ॥

७—आ । आ भर—इति मन्त्रस्थान्तपदेन सम्बन्धः । **मा** । माम् । **पुष्टे** । पुष पुष्टौ भावे क्तः । धनसमृद्धौ । **च** । समुच्चये । अवधारणे । **पोषे** । अन्नादिवृद्धौ । **रात्रि** । म० २ । हे सुखदात्रि । दुःखहर्त्रि, रात्रिरूपे, एकाष्टके प्रकृते । **देवानाम्** । विदुषाम् । **सुमतौ** । कल्याण्यां बुद्धौ । **स्याम** । भवेम । **पूर्णा** । पॄ पूरी वा पूर्त्तौ–क्तः । **वा दान्तशान्तपूर्णदस्त०** (पा० ७ । २ । २७) इति इडभावो निपात्यते । पूरिता । **दर्वे** । **वृदृभ्यां विन्** (उ० ४ । ५३) इति दृङ् आदरे, यद्वा, दॄ विदारणे—विन् । आद्रियते विदारयतीति वा । हे दुःखदलनशीले । हे चमसरूपे वा । **परा** । प्राधान्ये । त्यागे । विक्रमे । गतौ । भङ्गे । **पत** । पत्लृ गतौ, आगच्छ । **सुपूर्णा** । परिपूर्णा । **पुनः** । वारम्वारम् । **सर्वान्** । सकलान् । **यज्ञान्** । अ० १ । ९ । ४ । यष्टव्यान् पूज्यान् देवान् दिव्यगुणान् । **सम्भुञ्जती** । भुज पालनाभ्यवहारयोः–शतृः, ङीप् । सम्यक् पालयन्ती । **इषम्** । इषु इच्छायाम्, गतौ वा–क्विप् । अन्नम्–निघ० २ । ७ । **ऊर्जम्** । अ० २ । २९ । ३ । ऊर्ज बलप्राणनयोः—क्विप् । बलम् । पराक्रमम् । **नः** । अस्मभ्यम् । **आ भर** । आनीय धर ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयमगन्त्संवत्सरः पतिरेकाष्टके तव ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥८॥

आ । अयम् । अगन् । सम्ऽवत्सरः । पतिः । एकऽअष्टके । तव ।
सा । नः । आयुष्मतीम् । प्रऽजाम् । रायः । पोषेण । सम् । सृज ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(एकाष्टके) अकेली व्यापक रहने वाली, वा अकेली भोजन स्थान शक्ति ! [प्रकृति] (अयम्) यह (संवत्सरः) यथावत् निवास देने वाला, (तव) तेरा (पतिः) पति वा रक्षक [परमेश्वर] (आ अगन्) प्राप्त हुआ है। (सा) लक्ष्मी तू (नः) हमारे लिये (आयुष्मतीम्) बड़ी आयु वाली (प्रजाम्) प्रजा को (रायः) धन की (पोषेण) बढ़ती के साथ (सं सृज) संयुक्त कर ॥ ८ ॥

भावार्थः—विद्वान् साक्षात् कर लेते हैं कि परमेश्वर ही प्रकृति, जगत् सामग्री, का स्वामी अर्थात् उसके अंशों का संयोजक और वियोजक है, और प्रकृति के यथावत् प्रयोग से मनुष्य अपनी सन्तान सहित चिरंजीवी और धनी होते हैं ॥ ८ ॥

ऋतून् यज ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासान् भूतस्य पतये यजे ॥ ९ ॥

ऋतून् । यजे । ऋतुऽपतीन् । आर्तवान् । उत । हायनान् ।
समाः । सम्ऽवत्सरान् । मासान् । भूतस्य । पतये । यजे ॥ ९ ॥

८—अयम् । परिदृश्यमानः । आ, अगन् । गमेर्लुङ् । आगमत् । आगतः । संवत्सरः । म० २ । सम्यक् निवासकः । पतिः । रक्षकः । एकाष्टके । म० ५ । हे एकमात्रव्यापिके । एकमात्रभोजनस्थाने । तव । त्वदीयः । सा नः'''। इति गतं म० ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ऋतून्) ऋतुओं, (ऋतुपतीन्) ऋतुओं के स्वामियों [सूर्य वायु आदिकों], (आर्तवान्) ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले (हायनान्) पाने योग्य चावल आदि पदार्थों से (संवत्सरान्) यथा विधि निवास देने वाले, (मासान्) कर्मों के नापने वाले महीनों (उत) और (समाः) सब अनुकूल क्रियाओं को (भूतस्य) सत्ता में आये हुये जगत् के (पतये) पति के (यजे यजे) मैं बार बार अर्पण करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थः—तत्त्वज्ञानी पुरुष ग्रीष्म, वर्षा, शीतादि ऋतुओं, और उनके कारण सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथिवी आदि, एवं संसार के अन्य पदार्थों तथा क्रियाओं का आदि कारण जगत् पिता परमेश्वर को मानते और उसका धन्यवाद करते हैं ॥ ९ ॥

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो मादभ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥ १० ॥

ऋतुऽभ्यः । त्वा । । आर्तवेभ्यः । मात्ऽभ्यः । सम्ऽवत्सरेभ्यः ।

९—ऋतून् । अर्त्तेश्च तुः (उ० १ । ७२) इति ऋ गतौ—तुः, स च कित् वसन्तादिकालान् । **यजे** । यज देवपूजादानसङ्गतिकरणेषु । अहं समर्पयामि । **ऋतुपतीन्** । ऋतूनाम् अधिष्ठातॄन्, सूर्यचन्द्रवायुपृथिव्यादीन् देवान् । **आर्तवान्** । **ऋतोरण्** (पा० ५ । १ । १०५) इति ऋतु-अण् तदस्य प्राप्तमित्यर्थे । ऋतूद्भवान् । ऋतुजातान् । **उत** । अपि च । **हायनान्** । **हश्च व्रीहिकालयोः** (पा० ३ । १ । १४८) इति ओहाक् त्यागे, ओहाङ् गतौ च-ण्युट् । **आतो युक् चिण्कृतोः** (पा० ७ । ३ । ३३) इति युक् । दातव्यान् प्राप्तव्यान् व्रीह्यादीन् भोज्यपदार्थान् । **समाः** । अ० २ । ६ । १ । अनुकूलाः क्रियाः । **संवत्सरान्** । म० २ । सम्यग् वासयितॄन् द्वादशमासात्मकान् कालान् । **मासान्** । मसी परिमाणे—घञ् । शुक्लकृष्णपक्षद्वयात्मकान् कालान् । **भूतस्य** । भू सत्तायाम्—क्तः । सत्तां प्राप्तस्य चराचरात्मकस्य जगतः । **पतये**[1] । तादर्थ्ये चतुर्थी । पालकस्य स्वामिने ॥

---

१. यहाँ षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा (पा० १ । ४ । ९) से पति शब्द की घिसंज्ञा तथा घेर्ङिति (पा० ७ । ३ । १११) से गुण अयादेश करके पतये बनेगा ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धात्रे । विऽधात्रे । समूऽऋधे । भूतस्य । पतये । यजे ॥ १० ॥

भाषार्थः—[हे एकाष्टके प्रकृति !] (त्वा) तुझ को (ऋतुभ्यः) ऋतुओं के लिये, (आर्त्तवेभ्यः) ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थों के लिये, (माद्भ्यः) महीनों के लिये और (संवत्सरेभ्यः) यथावत् निवास देने वाले वर्षों के [सुधार के] लिये, (धात्रे) धारण करने वाले, (विधात्रे) रचने वाले, (समृधे) यथा नियम बढ़ाने वाले (भूतस्य) जगत् के (पतये) पति के लिये (यजे) मैं समर्पण करताहूँ ॥ १० ॥

भावार्थः—परमेश्वर नियम से जगत् की उत्पन्न करने वाली प्रकृति की चेष्टाओं को सब ऋतुओं में देखते हुये विद्वान् लोग अपने समय को उपकार में लगाते हैं ॥ १० ॥

इडया जुह्वतो वयं देवान् घृतवता यजे ।
गृहानलुभ्यतो वयं संविशेमोप गोमतः ॥ ११ ॥

इडया । जुह्वतः । वयम् । देवान् । घृतऽवता । यजे ।
गृहान् । अलुभ्यतः । वयम् । सम् । विशेम । उप । गोऽमतः ॥११॥

भाषार्थः—(इडया) स्तुति योग्य प्रकृति [की विद्या] से (घृतवता = घृतवता कर्मणा) सार युक्त [कर्म] के द्वारा (जुह्वतः) होम [आत्म दान] करने वाले (देवान्) देवताओं को (वयम्) हम (यजे = यजामहे) पूजते हैं

१०—**ऋतुभ्यः** । म० ६ । वसन्तादीनां प्रीत्यर्थम् । **त्वा** । त्वाम् । एकाष्टकाम् । प्रकृतिम् । **आर्तवेभ्यः** । म० ६ । ऋतून्द्भवेभ्यः । **माद्भ्यः** । **पद्नो-मास्०** (पा० ६ । ३ । ६३) इति मासशब्दस्य मास् इत्यादेशः । सस्य तः[1] । मासेभ्यः । **संवत्सरेभ्यः** । म० २ । वर्षेभ्यः । **धात्रे** । धारयित्रे । **विधात्रे** । सर्वस्य निर्मात्रे । **समृधे** । सम्+ऋधु वृद्धौ-क्विप् । समर्धयित्रे । अन्यद् गतम्—६ ॥

११—**इडया** । म० ६ । स्तुत्यया प्राप्तव्यया वा प्रकृत्या । **जुह्वतः** । हुदानादनयोः, आदाने च-शतृः । शसि रूपम् । होमम् आत्मसमर्पणं कुर्वतः । **वयम्** । पुरुषाः ।

---

१. स्ववःस्वतवसोमसोषसश्च त इष्यते (म० भा० वा० ७ । ४ । ४८) से यहाँ सकार को तकारादेश हुआ है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[जिससे] (अलुभ्यतः) तृष्णा रहित [सर्वथा भरे पूरे] और (गोमतः) बहुत सी उत्तम २ गौओं वाले (गृहान्) घरों में (उप=उपेत्य) आकर (वयम्) हम (संविशेम) सुख से रहें ॥ ११ ॥

भावार्थः—संसार के ज्ञान से उत्तम कामों में आत्मदान करने वाले महात्माओं के हम आदर पूर्वक अनुगामी बनें और सब कामनाओं तथा घृत दुग्धादि पोषक पदार्थों को प्राप्त करके आनन्द भोगें ॥ ११ ॥

एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् ।
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून् हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः ॥१२॥

एकऽअष्टका । तपसा । तप्यमाना । जजान । गर्भम् । महिमानम् । इन्द्रम् । तेन । देवाः । वि । असहन्त । शत्रून् । हन्ता । दस्यूनाम् । अभवत् । शचीऽपतिः ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(एकाष्टका) अकेली व्यापक रहने वाली वा अकेली भोजन स्थान शक्ति [प्रकृति] ने (तपसा) बड़े ऐश्वर्य वाले ब्रह्म द्वारा (तप्यमाना)

देवान् । विजिगीषून् व्यवहारकुशलान् वा पुरुषान् । **घृतवता** । दीप्तिमता सारयुक्तेन वा, कर्मणा-इति शेषः । **यजे । तिङां तिङो भवन्ति** (वा० पा० ७ । १ । ३९) इत्येकवचनं बहुवचने । यजामहे । पूजयामः । **गृहान्** । गृह ग्रहणे, कः । गेहानि । **अलुभ्यतः** । लुभ गार्ध्ये=आकाङ्क्षायाम् विमोहने च-शतृः, दिवादित्वात् श्यन् । शसि रूपम् । तृष्णारहितान् सर्वमनोरथयुक्तान् । **संविशेम** । सुखेन निवसेम । **उप** । उपेत्य । आगत्य । **गोमतः** । भूम्नि प्रशसायां च मतुप् । बहुभिः प्रशस्ताभिर्गोभिर्युक्तान् ॥

१२—एकाष्टका । म० ८ । **तपसा** । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति तप दाहैश्वर्ययोः—असुन् । तप्यते धनी, ईश्वरो भवतीत्यर्थः । ऐश्वर्यवता ब्रह्मणा । **तप्यमाना** । तप ऐश्वर्ये-शानच् । दिवादिः, आत्मनेपदी । ईशाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्य वाली होकर (गर्भम्) स्तुति योग्य, (महिमानम्) पूजनीय (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य वाले जीव को (जजान) प्रकट किया। (तेन) उस [इन्द्र, जीव] के द्वारा (देवाः) प्रकाशमान इन्द्रियों ने (शत्रून्) शत्रुओं [दोषों] को (वि) विविध प्रकार से (असहन्त) हराया है, और (शचीपतिः) वाणियों वा कर्मों वा बुद्धियों का पति [इन्द्र, जीव] (दस्यूनाम्) दस्युओं को (हन्ता) मारने वाला (अभवत्) हुआ है ॥ १२ ॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर नियम से प्रकृति के संयोग वियोग से शरीर पाकर इन्द्रियों द्वारा परीक्षा करके दोषों का त्याग और गुणों का ग्रहण करके आनन्द भोगते और भुगाते हैं ॥ १२ ॥

'तपस्' शब्द ब्रह्म वा परमेश्वर वाची है, जैसे—"ओं तपः। ओं सत्यम्" प्राणायाम मन्त्र में है। ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १९० मन्त्र १ में भी ऐसा वर्णन है।

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ॥

(ऋतम्) यथार्थ वेदशास्त्र (च) और (सत्यम्) सत्ता वाला जगत् (च) भी (अभीद्धात्) सर्वथा प्रकाशमान (तपसः अधि) तप अर्थात् ऐश्वर्य वाले ब्रह्म से ही (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥

समर्था सती। **जजान**। जनयामास। प्राकाशयत्। **गर्भम्**। **अर्त्तिगृभ्यां भन्** (उ० ३। १५२) इति गॄ शब्दे—भन्। गर्भो गृभेर्गृणात्यर्थे गिरत्यनर्थानिति वा यदा हि स्त्री गुणान् गृह्णाति गुणाश्चास्या गृह्यन्तेऽथ गर्भो भवति—निरु० १०। २३। गर्भं गर्भभूतं यद्वा गर्भं गरणीयं स्तुत्यं वन्दनीयम्—इति सायणः। **महिमानम्**। **हृभृधृसृस्तृशभ्य इमनिच्** (उ० ४। १४८) इति मह पूजायाम्—इमनिच्। पूजनीयम्। **इन्द्रम्**। ऐश्वर्यवन्तं जीवम्। **तेन**। इन्द्रेण सह। **देवाः**। द्योतनात्मकाश्चक्षुरादीन्द्रियाणि—इति महीधरो यजु० ४०। ४। चक्षुरादीनीन्द्रियाणि वा—तत्रैव दयानन्दभाष्ये। **वि**। विविधम्। विशेषेण। **असहन्त**। अभ्यभवन्। **शत्रून्**। शातयितॄन्। घातकान्। **हन्ता**। नाशकः। **दस्यूनाम्**। अ० २। १४। ५। उपक्षपयितॄणाम्। चौराणाम्। **अभवत्**। आसीत्। **शचीपतिः**। **सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४। ११८) इति शच व्यक्तायां वाचि—इन्। **कृदिकारादक्तिनः** (वा० पा० ४। १। ४५) इति ङीष्। शची=वाक्—निघ० १। ११। कर्म—२। १। प्रज्ञा—३। ९। शचीनां वाचां कर्मणां प्रज्ञानां वा पालकः यथार्थवक्ता यथार्थकर्मा यथार्थप्रज्ञो वा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः ।
कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः ॥ १३ ॥

इन्द्रऽपुत्रे । सोमऽपुत्रे । दुहिता । असि । प्रजाऽपतेः । कामान् ।
अस्माकम् । पूरय । प्रति । गृह्णाहि । नः । हविः ॥ १३ ॥

भाषार्थः—(इन्द्रपुत्रे) हे सूर्य जैसे पुत्रवाली ! (सोमपुत्रे) हे चन्द्रमा जैसे पुत्रवाली ! [प्रकृति] तू (प्रजापतेः) प्रजारक्षक परमेश्वर के (दुहिता) कार्यों की पूर्ण करने वाली (असि) है, (अस्माकम्) हमारे (कामान्) मनोरथों को (पूरय) पूर्ण कर, (नः) हमारी (हविः) भक्ति को (प्रति गृह्णाहि) स्वीकार कर ॥ १३ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने प्रकृति से सूर्य चन्द्रादि लोक और बड़े प्रतापी तथा उपकारी मनुष्य उत्पन्न किये हैं, उस प्रकृति की शक्तियों के ज्ञान और प्रयोग से संसार की भलाई चाहने वाले पुरुष अपनी कामनायें पूरी करते हैं ॥ १३ ॥

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

१३—**इन्द्रपुत्रे** । इन्द्रवत्पुत्रो यस्यास्तादृशि । हे सूर्यवत्पुत्रयुक्ते । **सोमपुत्रे** । हे चन्द्रवत्पुत्रयुक्ते प्रकृते ! **दुहिता** । नप्तृनेष्टृत्वष्टृ० (उ० २ । ९५) इति दुह प्रपूरणे-तृच् । दुहिता दुर्हिता दूरे हिता दोग्धेर्वा—निरु० ३ । ४ । पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः- निरु० ४ । २१ । अत्र पृथिव्येव दुहितृ-शब्देनोक्ता, सा हि द्युलोकात् 'दूरे निहिता' अथवा सा हि द्युलोकं "दोग्धीति" दुहिता-इति देवराजयज्वाटीकायाम् । दोग्धि कार्याणि प्रपूरयतीति सा । कार्याणां प्रपूरयित्री । **असि** । भवसि । **प्रजापतेः** । प्रजानां मनुष्यादीनां रक्षकस्य परमेश्वरस्य । **कामान्** । मनोरथान् । **अस्माकम्** । **पूरय** । समर्धय । **प्रति** । **गृह्णाहि** । प्रतिगृहाण । स्वीकुरु । **नः** । अस्माकम् । **हविः** । आत्मदानम् भक्तिम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ११ ॥

१—८ ॥ राजयक्ष्मघ्नं देवता । १--४ त्रिष्टुप् । ५, ६ अनुष्टुप्, ७ पथ्या पङ्क्तिः । ८ षट्पदानुष्टुप् ॥

रोगनाशनायोपदेशः—रोग नाश करने के लिए उपदेश ॥

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् । ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ १ ॥

मुञ्चामि । त्वा । हविषा । जीवनाय । कम् । अज्ञातऽयक्ष्मात् । उत । राजऽयक्ष्मात् । ग्राहिः । जग्राह । यदि । एतत् । एनम् । तस्याः । इन्द्राग्नी इति । प्र । मुमुक्तम् । एनम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—[हे प्राणी !] (त्वा) तुझ को (हविषा) भक्ति के साथ (कम्) सुख से (जीवनाय) जीवन के लिये (अज्ञातयक्ष्मात्) अप्रकट रोग से (उत) और (राजयक्ष्मात्) राज रोग से (मुञ्चामि) मैं छुड़ाता हूं । (यदि) जो (ग्राहिः) जकड़ने वाली पीड़ा [गठिया रोग] ने (एतत्) इस समय में (एनम्) इस प्राणी को (जग्राह) पकड़ लिया है, (तस्याः) उस [पीड़ा] से

१—**मुञ्चामि** । विश्लेषयामि । **त्वा** । प्राणिनम् । **हविषा** । आत्मदानेन । भक्त्या । उपायेन । **जीवनाय** । प्राणधारणाय । चिरकालयशोधारणाय-इत्यर्थः । **कम्** । अव्ययम् । सुखेन । **अज्ञातयक्ष्मात्** । **अर्त्तिस्तुसुहु०** (उ० १ । १४०) इति यक्ष पूजायाम्-मन् । अलक्षितमहारोगात् । **राजयक्ष्मात्** । **राजदन्तादिषु परम्** (पा० २ । २ । ३१) इति उपसर्जनस्य परनिपातः । यक्ष्माणां राजा राजयक्ष्मः, तस्मात् । क्षयरोगात् । **ग्राहिः** । अ० २ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इन्द्राग्नी) हे सूर्य और अग्नि ! (एनम्) इस [प्राणी] को (प्र मुमुक्तम्) तुम छुड़ाओ ॥ १ ॥

भावार्थः—सद्वैद्य गुप्त और प्रकट रोगों से विचार पूर्वक रोगी को अच्छा करता है, ऐसे ही प्रत्येक मनुष्य (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि अर्थात् सूर्य से लेकर अग्नि पर्यन्त अर्थात् दिव्य और पार्थिव सब पदार्थों से उपकार लेकर, अथवा सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी विद्वानों से मिलकर, अपने दोषों को मिटाकर यशस्वी होवे ॥ १ ॥

इस मन्त्र का मिलान अथर्व० का० २ सू० ६ मं० १ से करो ॥

मन्त्र १–४ ऋग्वेद १०। १६१। १–४ में कुछ भेद से, और फिर अथर्व० २०। ९६। ६–९ में हैं। ऋग्वेद में इस सूक्त का ऋषि "प्राजापत्यो यक्ष्मनाशनः" और देवता "राजयक्ष्मघ्नम्" है ॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥ २ ॥

यदि । क्षितऽआयुः । यदि । वा । पराऽइतः । यदि । मृत्योः । अन्तिकम् । निऽइतः । एव । तम् । आ । हरामि । निःऽऋतेः । उपऽस्थात् । अस्पार्षम् । एनम् । शतऽशारदाय ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यदि) चाहे [यह] (क्षितायुः) टूटी आयु वाला, (यदि

९। १। ग्रहणशीला पीडा। **जग्राह**। गृहीतवती। **यदि**। चेत्। **तस्याः**। ग्राह्याः, सकाशात्। **इन्द्राग्नी**। सूर्याग्नी। दिव्यपार्थिवपदार्थाः, यद्वा। तद्वत् तेजस्वी विद्वान् पुरुषः। **प्र मुमुक्तम्**। मुचेर्विकरणस्य श्लुः। प्रमोचयतम्। **एनम्**। शरीरस्थं प्राणिनम् ॥

२—**यदि**। चेत्। **क्षितायुः**। क्षीणजीवनः। **यदि वा**। अथवा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा) अथवा (परेतः) अंग भङ्ग है, (यदि) चाहे (मृत्योः) मृत्यु के (अन्तिकम्) समीप (एव) ही (नीतः=नि-इतः) आ चुका है। (तम्) उसको (निर्ऋतेः) महामारी की (उपस्थात्) गोद से (आ हरामि) लिये आता हूँ, (एनम्) इसको (शतशारदाय+जीवनाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले [जीवन] के लिये (अस्पार्षम्) मैंने प्रबल किया है ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे चतुर वैद्य यत्न करके भारी २ रोगियों को चङ्गा करता है, ऐसे ही मनुष्य शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कठिन संकट पड़ने पर अपने आत्मा को प्रबल रक्खे ॥ २ ॥

अथर्व० १ । ३५ । १ । में 'दीर्घायुत्वाय शतशारदाय' पाठ है, यहाँ 'जीवनाय' पद मन्त्र १ से लाया गया है ॥

अन्य दो संहिताओं, सायणभाष्य और ऋग्वेद में 'अस्पार्षम्' पाठ है, परन्तु बम्बई गवर्नमेंट संहिता में शोधा हुआ और अथर्व० का० २० सू० ९६ म० ७ में 'अस्पार्शम्' पाठ है। हमने 'अस्पार्षम्' लिया है।

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ३ ॥

सहस्रऽअक्षेण । शतऽवीर्येण । शतऽआयुषा । हविषा । आ । अहार्षम् ।

परेतः । परा भङ्गे+इण् गतौ-क्तः । भङ्गं प्राप्तः । **मृत्योः** । मरणस्य । **अन्तिकम्** । अन्त—मत्वर्थीयो ठन्, तस्य इकः । निकटम् । **नीतः** । नि+इतः । नीचैर्गतः । **एव** । अवश्यम् । **तम्** । रोगिणम् । **आ हरामि** । आ नयामि । **निर्ऋतेः** । अ० २ । १० । १ । निर्ऋतिः=कृच्छ्रापत्तिः—निरु० २ । ७ । महारोगस्य । अलक्ष्म्याः । **उपस्थात्** । उपस्थानात् । अङ्कात् । **अस्पार्षम्** । स्पृ प्रीतिबलनयोः, छान्दसो लुङ । प्रबलं कृतवानस्मि । **एनम्** । समीपस्थम् । आत्मानम् । **शतशारदाय** । अ० १ । ३५ । १ । शतशरदृतुयुक्ताय, जीवनाय, इति शेषः—म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एनम् । इन्द्रः । यथा । एनम् । शरदः । नयाति । अति । विश्वस्य । दुःऽइतस्य । पारम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(सहस्राक्षेण) सहस्रों नेत्र वाले, (शतवीर्येण) सैकड़ों सामर्थ्य वाले, (शतायुषा) सैकड़ों जीवन शक्ति वाले (हविषा) आत्मदान वा भक्ति से (एनम्) इस [आत्मा] को (आ अहार्षम्) मैंने उभारा है। (यथा) जिससे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् मनुष्य (एनम्) इस [देही] को (विश्वस्य) प्रत्येक (दुरितस्य) कष्ट के (पारम्) पार (अति = अतीत्य) निकाल कर (शरदः) [सौ] शरद् ऋतुओं तक (नयाति) पहुँचावे ॥ ३ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य एकाग्रचित्त होकर अनेक प्रकार से अपनी दर्शन शक्ति, कर्मशक्ति और जीविकाशक्ति बढ़ाकर अपने को सुधारता है, तब वह इन्द्र पुरुष सब उलझनों को सुलझा कर यशस्वी होकर चिरंजीवी होता है ॥ ३ ॥

३—**सहस्राक्षेण** । सहस्रम् बहुनाम–निघ० ३ । १ । सहो बलम्–निघ० २ । ९ । रो मत्वर्थीयः । सहस्रं सहस्वत्–निरु० ३ । १० । **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** (पा० ५ । ४ । ११३) इति षच् । सहस्रं बहूनि अक्षीणि चक्षूंषि दर्शनशक्तयो यस्य तेन तथोक्तेन । **शतवीर्येण** । शतम् । शो तनूकरणे–डतच् । बहुनाम निघ० ३ । १ । शतं दशदशतः–निरु० ३ । १० । बहुसामर्थ्योपेतेन । **शतायुषा** । बहुजीवनसाधनयुक्तेन । **हविषा** । आत्मदानेन । भक्त्या । **आ अहार्षम्** । हृञ् हरणे–लुङ् । समन्ताद् अनैषम् । उन्नीतवानस्मि । **एनम्** । आत्मानम् । देहिनम् । **इन्द्रः** । प्रतापी जीवः । **यथा** । येन प्रकारेण । **शरदः** । **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** (पा० २ । ३ । ५) इति द्वितीया । शतं शरदः संवत्सरान् । **नयाति** । णीञ् प्रापणे लेटि आडागमः । नयेत् । प्रापयेत् । **अति** । अतीत्य । **विश्वस्य** । सर्वस्य । प्रत्येकस्य । **दुरितस्य** । अ० २ । ६ । ५ । पापस्य । कष्टस्य । **पारम्** । पार कर्मसमाप्तौ–अच् । तीरम् । अन्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान्छतमु वसन्तान् । शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥ ४ ॥

शतम् । जीव । शरदः । वर्धमानः । शतम् । हेमन्तान् । शतम् । ऊँ इति । वसन्तान् । शतम् । ते । इन्द्रः । अग्निः । सविता । बृहस्पतिः । शतऽआयुषा । हविषा । आ । अहार्षम् । एनम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(वर्धमानः+त्वम्) बढ़ती करता हुआ तू (शतम् शरदः) सौ शरद् ऋतुओं तक (शतम् हेमन्तान्) सौ शीत ऋतुओं तक (उ) और (शतम् वसन्तान्) सौ वसन्त ऋतुओं तक (जीव) जीता रह । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (अग्नि) तेजस्वी विद्वान्, (सविता) सबका चलाने वाला, (बृहस्पतिः +अहं जीवः) बड़ों बड़ों के रक्षक मैंने (शतम्) अनेक प्रकार से (ते) तेरे लिये (शतायुषा) सैकड़ों जीवन शक्ति वाले (हविषा) आत्मदान वा भक्ति से (एनम्) इस [आत्मा] को (आ अहार्षम्) उभारा है ॥ ४ ॥

४—**शतम्** । बहुनाम । **जीव** । प्राणान् धारय । **शरदः** । शरदृतून् वर्षाकालान् इत्यर्थः । **वर्धमानः** । वृद्धिं कुर्वाणः । **हेमन्तान्** । **हन्तेर्मुट् हि च** (उ० ३।१२६) इति हन हिंसागत्योः—झच्, हन्तेर्हिः, मुडागमः । हन्ति उष्णत्वम् । शीतकालान् । **उ** । समुच्चये । **वसन्तान्** । **तॄभूवहिवसिभ्यामि** (उ० ३ । १२८) इति वस वासे, निवासे, आच्छादने च—झच् । पुष्पसमयान् । ग्रीष्मकालान् । **शतम्** । यथा तथा । बहुप्रकारेण । **ते** । तुभ्यम् । **इन्द्रः** । ऐश्वर्यवान् । **अग्निः** । अगि गतौ—निः । ज्ञानवान् । **सविता** । सर्वस्य प्रेरकः । **बृहस्पतिः** । अ० १ । ८ । २ । तथा २ । १३ । २ । बृहत्+पतिः, सुट्, तलोपः । बृहतां विदुषां कर्मणां वा पालकः । इन्द्रादीनि चत्वारि (अहम्) इति पदस्य विशेषणानि । अन्यद् व्याख्यातम्—म० ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य उचित रीति से वर्षा, शीत और उष्ण ऋतुओं को सह कर बहु प्रकार मन्त्रोक्त विधि पर विद्यादि बल से शक्तिमान् होकर जीविका उपार्जन करता हुआ आत्मा की उन्नति करे ॥ ४ ॥

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
व्य१न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥ ५ ॥

प्र । विशतम् । प्राणापानौ । अनड्वाहौऽइव । व्रजम् । वि ।
अन्ये । यन्तु । मृत्यवः । यान् । आहुः । इतरान् । शतम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(प्राणापानौ) हे श्वास और प्रश्वास तुम दोनों, [इस शरीर में] (प्र विशतम्) प्रवेश करते रहो, (अनड्वाहौ-इव) रथ ले चलने वाले दो बैल जैसे (व्रजम्) गोशाला में, (अन्ये) दूसरे (मृत्यवः) मृत्यु के कारण (वि यन्तु) उलटे चले जावें (यान्) जिन (इतरान्) कामना नाशक [मृत्युओं] को (शतम्) सौ प्रकार का (आहुः) बतलाते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्य प्राणायाम, व्यायामादि से अपने प्राण और अपान को

५—**प्र विशतम्** । अन्तः प्राप्नुतम् । **प्राणापानौ** । शरीरधारकौ श्वास-प्रश्वासौ । **अनड्वाहौ** । अनः शकटं वहतीति अनड्वान् । अनसि वहेः क्विप्, अनसो डकारः । अनसः शकटस्य रथस्य वोढारौ बलीवर्दौ । **इव** । यथा । **व्रजम्** । **गोचरसंचर०** (पा० ३ । ३ । ११९) इति व्रज गतौ-घञोऽपवादत्वेन घप्रत्ययान्तो निपातितः । गोष्ठम् । **वि यन्तु** । विमुखा गच्छन्तु । **अन्ये** । धार्मिकमरणाद् भिन्नाः । **मृत्यवः** । मरणकारणानि । **यान्** । मृत्यून् । **आहुः** । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि-लट् । ब्रुवन्ति । कथयन्ति विद्वांसः । **इतरान्** अ० ३ । १० । ४ । इ+तॄ प्लवनसंतरणयोः अभिभवे-अप् । सुकामनाशकान् । **शतम्** । बहून् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकूल रखकर शारीरिक अवस्था सुधारे रहें और दुराचारों से बचकर अपना जीवन शुभ कामों में लगावें ॥ ५ ॥

इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम् ।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ॥ ६ ॥

इह । एव । स्तम् । प्राणापानौ । मा । अप । गातम् । इतः ।
युवम् । शरीरम् । अस्य । अङ्गानि । जरसे । वहतम् । पुनः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(प्राणापानौ) हे श्वास प्रश्वास ! (युवम्) तुम दोनों (इह एव) इसमें ही (स्तम्) रहो, (इतः) इससे (मा अप गातम्) दूर मत जाओ । (अस्य) इस [प्राणी] के (शरीरम्) शरीर और (अङ्गानि) अंगों को (जरसे) स्तुति के लिये (पुनः) अवश्य (वहतम्) तुम दोनों ले चलो ॥ ६ ॥

भावार्थः—प्राण और अपान वायु का संचार ठीक न होने से रुधिर जमकर रोग उत्पन्न होता है इससे मनुष्य सब शरीर में वायु संचार ठीक रखकर दृढ़ शरीर वाले हों और स्तुति प्राप्त करें ॥ ६ ॥

जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा ।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥ ७ ॥

जरायै । त्वा । परि । ददामि । जरायै । नि । धुवामि । त्वा । जरा । त्वा ।

६—इह एव । अस्मिन्नेव शरीरे । स्तम् । भवतम् । प्राणापानौ । श्वासप्रश्वासौ । मा अप गातम् । इण् गतौ । इणो गा लुङि (पा० २।४।४५) इति गादेशः । मापगच्छतम् । इतः । अस्माच्छरीरात् । युवम् । युवाम् । शरीरम् । अ० २ । १२ । ८ । कायम् । अस्य । पुरुषस्य । अङ्गानि । देहावयवान् । जरसे । अ० १।३०।२। गृ शब्दे = स्तुतौ—असुन् । गस्य जः । स्तुत्यर्थम् । वहतम् । युवां प्रापयतम् । पुनः । अवधारणे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भद्रा । नेष्ट । वि । अन्ये । यन्तु । मृत्यवः । यान् । आहुः । इतरान् । शतम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—[हे प्राणी !] (त्वा) तुझे (जरायै) स्तुति पाने के लिये (परि) सब प्रकार (ददामि) दान करता हूँ । (जरायै) स्तुति के लिये (त्वा) तेरे (नि धुवामि) निहोरे करता हूँ [अथवा, तुझे झकझोरता हूँ] (जरा) स्तुति (त्वा) तुझे (भद्रा=भद्राणि) अनेक सुख (नेष्ट) पहुँचावे । (अन्ये) दूसरे (मृत्यवः) मृत्यु के कारण (वि यन्तु) उलटे चले जावें, (यान्) जिन (इतरान्) कामना नाशक [मृत्युओं] को (शतम्) सौ प्रकार का (आहुः) बतलाते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य कभी नम्र, कभी कठोर होकर स्तुति के लिये अपनी आत्मा लगावे, और निर्धनता, रोगादि मृत्यु के कारणों को हटाकर सुखी रहे ॥ ७ ॥

अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा ।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ॥ ८ ॥

अभि । त्वा । जरिमा । अहित । गाम् । उक्षणम्ऽइव । रज्ज्वा । यः । त्वा । मृत्युः । अभिऽअधत्त । जायमानम् । सुऽपाशया । तम् । ते ।

७—जरायै । षिद्भिदादिभ्योऽङ् (पा० ३ । ३ । १०४) इति जॄ स्तुतौ-[1] अङ्, टाप् । जरा स्तुतिर्जरतेः स्तुतिकर्मणः-निरु० १० । ८ । स्तुतिप्राप्तये । **परि ददामि** । अ० १ । ३० । २ । समर्पयामि । **नि** । आदरे । निश्चये । अधोभागे । **धुवामि** । धूञ् कम्पने, तुदादिः सकर्मकः । कम्पयामि । प्रेरयामि । **त्वा** । प्राणिनम् । **भद्रा** । भद्राणि । मङ्गलानि । **नेष्ट** । लेट् । नयतु प्रापयतु । अन्यद् गतम्-म० ५ ॥

---

१. जॄष् वयोहानौ धातु धातुपाठ में है । इस विषय में हमारी पृ० २४३ की टिप्पणी देखें ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यस्य । हस्ताभ्याम् । उत् । अमुञ्चत् । बृहस्पतिः ॥ ८ ॥

भाषार्थः—[हे प्राणी !] (जरिमा) निर्बलता ने (त्वा) तुझको (अभि अहित) बांधा है, (उक्षणम्) बलवान् (गाम् इव) बैल को जैसे (रज्ज्वा) रस्सी से (यः मृत्युः) जिस मृत्यु ने (जायमानम्) उत्पन्न वा प्रसिद्ध होते हुये (त्वा) तुझको (सुपाशया) दृढ़ फंदे से (अभि अधत्त) बन्धन में किया है, (तम्) उस [मृत्यु] को (सत्यस्य) सत्य के (ते) तेरे (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों के हित के लिये (बृहस्पतिः) बड़ों बड़ों के रक्षक [देवगुरु] परमेश्वर वा आचार्य ने [तुझ से] (उत् अमुञ्चत्) छुड़ा दिया है ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्य जन्म से लेकर भूख, पियास, रोग आदि विपत्तियों से ईश्वरदत्त ज्ञान और विद्वानों की रक्षा तथा शिक्षा द्वारा छूट कर दोनों हाथों अर्थात् सब प्रकार से धर्म आचरण के लिये आगे बढ़ता है ॥ ८ ॥

८—**अभि अहित** । अभिपूर्वो दधातिर्बन्धने । अश्वाभिधानी = अश्वबन्धनरज्जुः । ततो लुङ् । **स्थाघ्वोरिच्च** (पा० १ । २ । १७) इति इत्त्वकित्त्वे । बद्धं कृतवान् । **त्वा** । त्वां प्राणिनम् । **जरिमा** । **हृभृधृसृस्तृभृभ्य इमनिच्** (उ० ४ । १४८) इति जॄष् वयोहानौ—इमनिच् । जरा । निर्बलता । **गाम्** । वृषभम् । **उक्षणम्** । **श्वनुक्षन्पूषन्०** (उ० १ । १५९) इति उक्ष सेचने वृद्धौ च—कनिन् । उक्षण उक्षतेर्वृद्धिकर्मण.—निरु० १२ । ९ । **वा षपूर्वस्य निगमे** (पा० ६ । ४ । ९) इति दीर्घाभावः । उक्षाणम् । बलवन्तम् । **इव** । यथा । **रज्ज्वा** । **सृजेरसुम् च** (उ० १।१५) इति सृज विसर्गे-उः । रूपसिद्धिर्निपातः । सृज्यते रच्यते इति । बन्धनसाधनवस्तुना । **यः** । **त्वा** । **मृत्युः** । **अभि-अधत्त** । धाञो लङ् । अबध्नात् । **जायमानम्** । उत्पद्यमानम् । प्रसिद्धिं कुर्वन्तम् । **सुपाशया** । **सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेया०** (पा० ७ । १ । ३९) इति तृतीयाविभक्तौ या । सुपाशेन । दृढबन्धनेन । **तम्** । मृत्युम् । **ते** । तव । **सत्यस्य** । यथार्थनियमस्य । **हस्ताभ्याम्** । कराभ्याम् तयोर्हितार्थम् । **उत् अमुञ्चत्** । उदमोचयत् । **बृहस्पतिः** । म० ४ । बृहतां पतिः । देवगुरुः परमेश्वरः । आचार्यः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १२ ॥

१—९ । शाला देवता ॥ १, २, ४—६, ८ त्रिष्टुप् । ३ पथ्या पङ्क्तिः । ७, ९ अनुष्टुप ॥

नवशालानिर्माणं प्रवेशश्च—नवीन शाला का निर्माण और प्रवेश ॥

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा ।
तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम ॥१॥

इह । एव । ध्रुवाम् । नि । मिनोमि । शालाम् । क्षेमे । तिष्ठाति । घृतम् । उक्षमाणा । ताम् । त्वा । शाले । सर्वऽवीराः । सुऽवीराः । अरिष्टऽवीराः । उप । सम् । चरेम ॥ १ ॥

भाषार्थः (इह एव) यहां पर ही (ध्रुवाम्) ठहराऊ (शालाम्) शाला को (नि मिनोमि) जमाकर बनाता हूँ । वह (घृतम्) घी (उक्षमाणा) सींचती हुई (क्षेमे) लब्ध वस्तु की रक्षा में (तिष्ठाति) ठहरी रहे । (शाले) हे शाला (ताम् त्वा) उस तुझमें (उप = उपेत्य) आकर (सर्ववीराः) सब

---

१ **इह** । अस्मिन् विचारिते स्थाने । **एव** । अवधारणे । **ध्रुवाम्** । ध्रुव स्थैर्ये गतौ च—कः । स्थिराम् । निश्चिताम् । **नि मिनोमि** । डुमिञ् प्रक्षेपणे । नितरां प्रक्षिपामि स्थापयामि । **शालाम्** । **तमिविशिविडि** । (उ० १ । ११८) इति शो निशाने तनूकरणे—कालन् । अथवा, शाल कथने—अच्[1] । टाप् । गृहम् । **क्षेमे** । लब्धवस्तुनो रक्षणे । कुशले । **तिष्ठाति** । लेटि आडागमः । तिष्ठेत् । **घृतम्** । आज्यम् । दीप्तिम् । **उक्षमाणा** । सिञ्चन्ती । प्रयच्छन्ती । **ताम** । तादृशीम् । **त्वा** । **शाले** । **सर्ववीराः** । अनेकशूरोपेताः । **सुवीराः** । शुभगुणवीरैर्युक्ताः । **अरिष्टवीराः** । रिष हिंसायाम्—क्तः ।

---

१. शाल कथने धातु आप्टे आदि कोषों में पठित है, पर धातुपाठ क्षीरतरङ्गिणी आदि में कहीं नहीं है । धातुवृत्ति में 'शलगतौ' (द्र० मा० धा० वृ० पृ० २०९, १४१) से शाला शब्द बनाया है, जो कि घञ् करके ही सिद्ध होगा इस प्रकार शाल धातु के अभाव में कोषानुसारी व्युत्पत्ति ठीक नहीं है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर पुरुषों वाले (सुवीराः) अच्छे २ पराक्रमी पुरुषों वाले और (अरिष्टवीराः) नीरोग पुरुषों वाले (संचरेम) हम चलते फिरते रहें ॥ १ ॥

भावार्थः—हम अपने घर दृढ़ और उचित विभाग वाले बनावें जिससे वायु घाम आदि के यथावत् सेवन से सब गृहस्थ स्त्री पुरुष सदा हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ रहें ॥ १ ॥

इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २ ॥

इह । एव । ध्रुवा । प्रति । तिष्ठ । शाले । अश्वऽवती । गोऽमती । सूनृताऽवती । ऊर्जस्वती । घृतऽवती । पयस्वती । उत् । श्रयस्व । महते । सौभगाय ॥ २ ॥

भाषार्थः—(शाले) हे शाला ! तू (इह एव) यहाँ पर ही (अश्वावती) बहुत घोड़ों वाली, (गोमती) बहुत गौओं वाली और (सूनृतावती) बहुत प्रिय सत्य वाणियों वाली होकर (ध्रुवा) ठहराऊ (प्रति तिष्ठ) जमी रह । (ऊर्जस्वती) बहुत अन्न वाली, (घृतवती) बहुत घी वाली और (पय-

---

अहिंसितवीराः । स्वस्थशूरयुक्ताः । उप । उपेत्य । **संचरेम** । व्यवहरेम ॥

२—**ध्रुवा** । दृढा । **प्रति तिष्ठ** । स्थिता भव । वर्तस्व । **शाले** । हे गृह । **अश्वावती** । **मादुपधायाश्च०** (पा० ८ । २ । ९) इति मतुपो वत्वम् । **मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रिय०** (पा० ६ । ३ । १३१) इति मतौ दीर्घः । **भूमिनिन्दाप्रशंसासु०** । इति सर्वत्र भूम्नि मतुप् । बहुभिरश्वैरुपेता । **गोमती** । बहुभिर्गोभिर्युक्ता । **सूनृतावती** । सु+नृती गात्रविक्षेपे—घञर्थे कः । यद्वा । सु+नृ+तनु विस्तारे-डः । **अन्येषामपि दृश्यते** (पा० ६ । ३ । १३७) इति दीर्घः । वा टाप् । सुष्ठु नृत्यतेऽनेन, यद्वा, सूनृषु शोभननरेषु तायते विस्तीर्यते । सूनृ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वती) बहुत दूध वाली होकर (महते) बड़ी (सौभगाय) सुन्दर सौभाग्य के लिये (उत् श्रयस्व) ऊँची हो ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य शाला में योग्य योग्य स्थान बनाकर उनको आवश्यक पदार्थों से भरपूर रक्खे ॥ २ ॥

धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या । आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः ॥ ३ ॥

धरुणी । असि । शाले । बृहत्ऽछन्दाः । पूतिऽधान्या । आ । त्वा । वत्सः । गमेत् । आ । कुमारः । आ । धेनवः । सायम् । आऽस्पन्दमानाः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(शाले) हे शाला ! तू (बृहच्छन्दाः) विशाल छतवाली, वा बहुत से छन्द वा वेद मन्त्रों वाली, (पूतिधान्या) शुद्ध धान्य वाली (धरुणी) भण्डार (असि) है । (त्वा) तुझमें (वत्सः) बछड़ा (आ) और

ता, अन्ननाम-निघ० २ । ७ । सूनृतम्, सत्यप्रियवाक्यम् इति कोषे । सत्यप्रियवाग्भिर्बालादीनां वाणीभिर्युक्ता । **ऊर्जस्वती** । ऊर्ज बलप्राणनयोः—असुन् । प्रभूतान्नवती । **घृतवती** । बहुघृतयुक्ता । **पयस्वती** । बहुदुग्धा । **उच्छ्रयस्व** । उद्गता, उत्कृष्टा भव । **महते** । प्रभूताय । **सौभगाय** । अ० १ । १८ । २ । सुभग-अञ् । सुभगत्वाय । ऐश्वर्यवत्त्वाय ॥

३—**धरुणी** । **कृवृदारिभ्य उनन्** (उ० ३ । ५३) इति धृञ्-उनन् । ङीप् । भोगजातस्य धारयित्री । **शाले** । **बृहच्छन्दाः** । **चन्देरादेश्च छः** (उ० ४ । २१९) इति बृहत्+चदि आह्लादने दीप्तौ च—असुन् । चस्य छः । यद्वा । छदि संवरणे—असुन् । प्रभूताच्छादना । महद्भिश्छन्दोभिर्वेदमन्त्रैरुपेता । **पूतिधान्या** । **क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्** (पा ३ । ३ । १७४) इति पूञ् पवने-क्तिच् । पूतीनि पवित्राणि धान्यानि यस्यां सा तथोक्ता । शुद्धधान्ययुक्ता । **वत्सः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कुमारः) बालक (आ गमेत्) आवे । (सायम्) सायंकाल में (आस्पन्दमानाः) कूदती हुई (धेनवः) दुधैल गौयें (आ = आगच्छन्तु) आवें ॥ ३ ॥

भावार्थः—स्पष्ट है । और २ स्थानों के साथ घरों में वैदिकभवन भी होवे ॥ ३ ॥

इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।
उक्षन्तूदना मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥४॥

इमाम् । शालाम् । सविता । वायुः । इन्द्रः । बृहस्पतिः । नि । मिनोतु । प्रऽजानन् । उक्षन्तु । उदना । मरुतः । घृतेन । भगः । नः । राजा नि । कृषिम् । तनोतु ॥ ४ ॥

भावार्थः—(इमाम् शालाम्) इस शाला को (सविता) सब का चलाने वाला पुरुष [वा सूर्य,] (वायुः) वेगवान् पुरुष [वा पवन] (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष [वा मेघ] और (प्रजानन् ज्ञानवान् (बृहस्पतिः) बड़े बड़े कामों का रक्षक पुरुष [प्रत्येक] (नि मिनोतु) जमाकर बनावे । (मरुतः) शूर देवता

वृतृवदिवचिवसि० (उ० ३ । ६२) इति वद व्यक्तायां वाचि-सप्रत्ययः । वदतीति वत्सः । **आगमेत्** । आगच्छेत् । **आ** । समुच्चये । **कुमारः** । **कमेः किदुच्चोपधायाः** (उ० ३ । १३८) इति कमु कान्तौ-आरन् । यद्वा । कुमार क्रीडायाम्-अच् । कमनीयः क्रीडको वा बालकः । **आ** । आगच्छेयुः । **धेनवः** । दोग्ध्र्यो गावः । **सायम्** । सायंकाले । **आस्पन्दमानाः** । स्पदि ईशच्चलने शानच् । कूर्दमानः । क्रीडां कुर्वाणाः ॥

४—इमाम् । रच्यमानाम् । **शालाम्** । गृहम् । **सविता** । सर्वस्य प्रेरकः पुरुषः सूर्यो वा । **वायुः** । वेगवान् पुरुषः पवनो वा । **इन्द्रः** । ऐश्वर्यवान् पुरुषो मेघो वा । **बृहस्पतिः** । अ० १ । ८ । २ । बृहतां कर्मणां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[विद्वान् लोग] (उद्ना) जल से और (घृतेन) घी से (उक्षन्तु) सींचें, और (भगः) भाग्यवान् (राजा) राजा [प्रधान पुरुष] (नः) हमारे लिए (कृषिम्) खेती को (नि) सदैव (तनोतु) बढ़ावे ॥ ४ ॥

भावार्थः—शाला निर्माण में प्रधान पुरुष और सब कार्यकर्ता कर्म-कुशल हों, घाम, वायु और मेघ, तथा जल, घी आदि सामग्री के लिये यथावत् अवकाश रहे । और निर्वाह के लिए खेती विद्या का विस्तार करें ॥ ४ ॥

मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निमिता स्यग्रे । तृणं वसाना सुमना असस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥ ५ ॥

मानस्य । पत्नि । शरणा । स्योना । देवी । देवेभिः । निऽमिता । असि । अग्रे । तृणम् । वसाना । सुऽमनाः । असः । त्वम् । अथ । अस्मभ्यम् । सहऽवीरम् । रयिम् । दाः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(मानस्य) हे मान अर्थात् प्रतिष्ठा की (पत्नि) रक्षा करने वाली, (शरणा) शरण देने वाली, (स्योना) सुखदायिनी, (देवी) उजियाले वाली

रक्षकः पुरुषः । **नि मिनोतु** । डुमिञ् प्रक्षेपणे । स्थापयतु । दृढां करोतु । **प्रजानन्** । शालानिर्माणप्रकारं प्रकर्षेण जानन् । **उक्षन्तु** । सिञ्चन्तु । **उद्ना । पद्दन्नोमास्** (पा० ६ । १ । ६३) इति उदकशब्दस्य उदन् आदेशः । भसंज्ञायाम् अकारलोपः । उदकेन । **मरुतः** । अ० १ । २० । १ । शत्रूणां मारणशीलाः शूराः । **घृतेन** । घृ सेचने दीप्तौ क्तः । आज्येन । **भगः** । अ० १ । २६ । २ । भजनीयः । भाग्यवान् । **नः** । अस्मभ्यम् । **राजा** । प्रतापी प्रधानः । **कृषिम् । इगुपधात् कित्** (उ० ४ । १२०) इति कृष विलेखने-इन् । स च कित् । भूमिकर्षणविद्याम् । **नि** । नितराम् । **तनोतु** । विस्तारयतु ॥

५—मानस्य । मान पूजायाम्-घञ् । चित्तसमुन्नतेः । सत्कारस्य । **पत्नि** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू (देवेभिः = ०–वैः) देवताओं [विश्वकर्मा पुरुषों] करके (निमिता) मायी हुई (अग्रे) हमारे सम्मुख (असि) वर्त्तमान है। (तृणम्) घास को (वसाना) पहिने हुये (त्वम्) तू (सुमनाः) प्रसन्न मन वाली (असः) हो, (अथ) और (अस्मभ्यम्) हमें (सहवीरम्) वीर पुरुषों के सहित (रयिम्) धन (दाः) दे ॥ ५ ॥

भावार्थः—सब मनुष्य गृहनिर्माण विद्या में कुशल पुरुषों से सम्मति लेकर बाहिर और भीतर से मनोरम घर बनावें, जिससे संसार में सम्मान हो, और सब गृहस्थ स्वस्थ वीर और उद्योगी होकर धनवान् होवें ॥ ५ ॥

'अथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः' यह पाद अ० २ । ६ । ५ । में आया है ॥

ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून्। मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥ ६ ॥

ऋतेन । स्थूणाम् । अधि । रोह । वंश । उग्रः । विऽराजन् । अप । वृङ्क्ष्व । शत्रून् । मा । ते । रिषन् । उपऽसत्तारः । गृहाणाम् । शाले । शतम् । जीवेम । शरदः । सर्वऽवीराः ॥६॥

भाषार्थः—(वंश) हे बांस तू (ऋतेन) अपने सत्य से (स्थूणाम्)

अ० ३ । १० । २ । हे पालयित्रि । **शरणा** । **अर्शआदिभ्योऽच्** (पा० ५ । २ । १२७) इति शरण–अच् मत्वर्थे । टाप् शरणवती । आश्रयवती । **स्योना** । स्योनं सुखं व्याख्यातम् । अ० २ । १० । ७ । पूर्ववत् अच् टाप् च । सुखवती । **देवी** । द्योतमाना । **देवेभिः** । देवैः । विश्वकर्मभिः । निर्माणविद्याकुशलैः । **निमिता** । डुमिञ् प्रक्षेपणे–क्तः । दृढीकृता । **असि** । वर्तसे । **अग्रे** । अस्माकमभिमुखम् । **तृणम्** । अ० २ । ३० । १ । तृह हिंसायाम्–क्तः, हलोपः । गवादिभक्ष्यम् । **वसाना** । वस आच्छादने–शानच् । आच्छादयन्ती । **सुमनाः** । शोभनमनस्का । **असः** । अस्तेर्लेटि अडागमः । भव । **अथ . . . दाः** । इति गतम्, अ० २ । ६ । ५ । **दाः** । दद्याः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थूनी [टेक वा खूंटी] पर (अधि रोह) चढ़ जा, और (उग्रः) दृढ़ वा प्रचंड होकर (विराजन्) विशेष रूप से प्रकाशित होता हुआ तू (शत्रून्) शत्रुओं को (अप वृङ्क्ष्व) दूर हटा दे। (शाले) हे शाला ! (ते) तेरे (गृहाणाम्) घरों के (उपसत्तारः) रहने वाले पुरुष (मा रिषन्) दुःखी न होवें। (सर्ववीराः) सब वीरों को रखते हुये हम लोग (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं तक (जीवेम) जीते रहें ॥ ६ ॥

भावार्थः मनुष्य अपने घर ऊंचे, दृढ़ और प्रकाशयुक्त बनावें जिससे चोर डाकू सिंहादि हिंसक और रोग न सता सकें तथा सब लोग स्वस्थ होकर वीर रहें ॥ ६ ॥

एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह ।
एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ॥ ७ ॥

आ । इमाम् । कुमारः । तरुणः । आ । वत्सः । जगता । सह । आ । इमाम् । परिऽस्रुतः । कुम्भः । आ । दध्नः । कलशैः । अगुः ॥ ७ ॥

६ **ऋतेन** । सत्यधर्मेण । दृढभावेन । **स्थूणाम्** । **रास्नासास्नास्थूणावीणाः** (उ० ३ । १५) इति ष्ठा—नप्रत्ययः, आकारस्य ऊकारः । गृहस्तम्भम । **अधि रोह** । अधितिष्ठ । **वंश** । वन सेवनशब्दयोः—शप्रत्ययः । यद्वा । वश कान्तौ अच् घञ वा, नुम् च । हे वेणु स्तम्भ । **उग्रः** । प्रचण्डः । सुदृढः । **विराजन्** । विशेषेण दीप्यमानः सन् । **अप वृङ्क्ष्व** । वृजी वर्जने, रुधादिः । अपवर्जय । **शत्रून्** । हिंसकान् सिंहादीन् रोगान् वा । **ते** । तव । **मा रिषन्** । रिष हिंसायाम् । हिंसिता मा भूवन् । **उपसत्तारः** । षद्लृ गतिविषादयोः—तृच् । उपसदनशीलाः । निवासिनः । **गृहाणाम्** । सदनानाम् । **शाले** । हे भवन । **शतम्** । **शरदः** । **जीवेम** । प्राणान् धरेम । **सर्ववीराः** । सर्ववीरपुरुषसमेताः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इमाम्) इस [शाला] में (कुमारः) बालक, (आ) और (तरुणः) युवा, (आ) और (जगता सह) चलने वाले गौ आदि के साथ (वत्सः) बछड़ा, (आ) और (इमाम्) इस [शाला] में (परिस्रुतः) पिघलते हुए रस का (कुम्भः) घड़ा (दध्नः) दही के (कलशैः) कलसों के साथ (आ अगुः) आये हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—गृहस्थ लोग सब प्रकार की आवश्यक सामग्री अपने घरों में रक्खें ॥ ७ ॥

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धारामृतेन संभृताम् ।
इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥ ८ ॥

पूर्णम् । नारि । प्र । भर । कुम्भम् । एतम् । घृतस्य । धाराम् । अमृतेन । सम्ऽभृताम् । इमाम् । पातॄन् । अमृतेन । सम् । अङ्ग्धि । इष्टापूर्तम् । अभि । रक्षाति । एनाम् ॥ ८ ॥

७—आ । समुच्चये । **इमाम्** । परिदृश्यमानां शालाम् । **कुमारः** । म० ३ बालकः । **तरुणः** । **त्रो रश्च लो वा** (उ० ३ । ५४) इति तॄ प्लवनसंतरणयोः अभिभवे च-उनन् । युवा । **वत्सः** । म० ३ । गोशिशुः । **जगता** । अ० १।३१।४। गमनशीलेन । गवादिना सह । **परिस्रुतः** । स्रु गतौ-क्विप्, तुक् आगमः । परिस्रवणशीलस्य रसस्य । **कुम्भः** । कुं भूमिं उम्भति पूरयति जलेन । कु + उम्भ पूरणे-अच् । शकन्ध्वादिरूपम् । घटः । **दध्नः** । **भाषायां धाञ्कृञ्सृजनिगमिनमिभ्यः किकिनौ** (वा०पा० ३।२।१७१) इति डुधाञ् धारणपोषणयोः-किः, लिड्वच्च । दुग्धविकृतभेदस्य । **कलशैः** । कल शब्दं शवति प्राप्नोति । कल + शु गतौ—डः । यद्वा । कला + शीङ् शयने-डः । कलशः कस्मात् कला अस्मिञ्छेरते मात्राः। कलिश्च कलाश्च किरतेर्विकीर्णमात्राः-निरु० ११।१२। कलशैः घटैः । **आ अगुः** । इण् गतौ-लुङ् । आगमन् । आगताः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(नारि) हे नर का हित करने वाली गृहपत्नी ! (एतम्) इस (पूर्णम्) पूरे (कुम्भम्) घड़े में से (अमृतेन) अमृत [हितकारी पदार्थ] से (संभृताम्) भरी हुयी (घृतस्य घी की (धाराम्) धारा को (प्र, भर= हर) अच्छे प्रकार ला। (इमाम्) इस [शाला] को और (पातॄन्) पानकर्ताओं वा रक्षकों को (अमृतेन) अमृत से (सम्) अच्छे प्रकार (अङ्ग्धि) पूर्ण कर। (इष्टापूर्तम्) यज्ञ और वेदों का अध्ययन, अन्नदानादि पुण्य कर्म (एनाम्) इस [शाला] की (अभि) सब ओर से (रक्षाति) रक्षा करे ॥८॥

भावार्थः—गृहपत्नी घर को घृत, दुग्ध आदि अमृत पदार्थों से परिपूर्ण रखकर सब कुटुम्बियों को स्वस्थ और पुष्ट रक्खे। और सब स्त्री पुरुष धार्मिक, पुरुषार्थी तथा धनी होकर चोर उचक्के सिंहादि दुष्टों से रक्षा करते हुए बस्ती को बसाये रक्खें ॥ ८ ॥

मनु भगवान् ने कहा है—

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ मनु० ५ । १५० ॥

स्त्री सदा प्रसन्नचित्त और घर के कामोंमें चतुर हो और (सुसस्कृतोपस्करया) घर की सामग्री बासन भांड़े भली भांति ठीक रखती हुई, व्यय करने में हाथ सकोड़े रहे ॥

८---**पूर्णम्** । पूरितम् । **नारि** । अ० १ । ११ । १ । हे नरस्य धर्म्ये हितकारिणि ! **प्रभर** । हस्य भः । आहर । द्विकर्मकत्वात् 'कुम्भम्, धाराम्' इत्येतयोः कर्मता । **कुम्भम्** । म० ७ । अपादाने द्वितीया । घट त्—इत्यर्थः । **एतम्** । **घृतस्य** । आज्यस्य । **धाराम्** । धृ-णिच्-अङ्, टाप् । सन्तत्या पतनम् । **अमृतेन** । मरणाद्रक्षकेण स्वास्थ्यवर्धकेन पदार्थसमूहेन । **संभृताम्** । संपादिताम् । **इमाम्** । **पातॄन्** । पा पाने, पा रक्षणे वा—तृच् । पानकर्तॄन् । रक्षकान् । **सम्** । सम्यक् । **अङ्ग्धि** । अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु—लोट् म्रक्ष, संयोजय । **इष्टापूर्तम्** । अ २ । २ । ४ । यज्ञवेदाध्ययनान्नदानादि पुण्यकर्म **अभि** । सर्वतः । **रक्षाति** । लेट् । रक्षेत् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥ ९ ॥

इमाः । आपः । [आ । अपः] प्र । भरामि । अयक्ष्माः । यक्ष्मऽनाशनीः ।
गृहान् । उप । प्र । सीदामि । अमृतेन । सह । अग्निना ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(इमाः) इस (अयक्ष्माः) रोगरहित (यक्ष्मनाशनीः) रोग-नाशक (अपः) जल को (प्र) अच्छे प्रकार (आ भरामि) मैं लाता हूं। (अमृतेन) मृत्यु से बचाने वाले अन्न, घृत,दुग्धादि सामग्री और (अग्निना सह) अग्नि के सहित (गृहान्) घरों में (उप = उपेत्य) आकर (प्र) अच्छे प्रकार (सीदामि) मैं बैठता हूं ॥ ९ ॥

भावार्थः—गृहपति रोगों से बचने और स्वास्थ्य बढ़ाने के लिये अपने घर में शुद्ध जल, अग्नि आदि पदार्थों का सदा उचित प्रयोग करें ॥ ९ ॥

सूक्तम् १३ ॥

१–७॥ आपो देवताः । १–४, ५ अनुष्टुप्, ५, ६ त्रिष्टुप् ।

अपां गुणा उपदिश्यन्ते—जल के गुणों का उपदेश ॥

यदुदः संप्रयतीरहावनदता हते । तस्मादा
नद्यो३ नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ॥ १ ॥

यत् । अदः । सम्ऽप्रयतीः । अहौ । अनदत । हते । तस्मात् ।

९----**इमाः** । दृश्यमानाः । **आ** । समन्तात् । **अपः** । जलानि । **प्र** । **भरामि** । हरामि । **अयक्ष्माः** । यक्ष्मरहिताः । **यक्ष्मनाशनीः** । यक्ष्मनाशिकाः । स्वास्थ्यवर्धयित्रीः । **गृहान्** । भवनानि । **उप** । उपेत्य । **सीदामि** । उपविशामि । **अमृतेन** । नास्ति मृतं येन तेन । पौष्टिकेन । अन्नघृतदुग्धादिपदार्थसमूहेन **अग्निना** । पावकेन । **सह** । सहितः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ । नद्यः । नाम । स्थ । ता । वः । नामानि । सिन्धवः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(सिन्धवः) हे बहने वाली नदियो ! (संप्रयतीः=संप्रयत्यः+यूयम्) मिलकर आगे बढ़ती हुई तुमने (अहौ हते) मेघ के ताड़े जाने पर (अदः) वह (यत्) जो (अनदता) नाद किया है । (तस्मात्) इसलिये (आ) ही (नद्यः) नाद करने वाली, नदी (नाम) नाम (स्थ) तुम हो, (ता=तानि) वह [वैसे ही] (वः) तुम्हारे (नामानि) नाम हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—जब मेघ आपस में टकराकर गरजकर बरसते हैं, तब वह जल पृथिवी पर एकत्र होकर नाद करता हुआ बहता है, इससे उसका नदी नाम है । इसी प्रकार वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति समझकर अर्थ करना चाहिये ॥ १ ॥

अजमेर पुस्तक में 'संप्रयतिः' है हमने अन्य पुस्तकों से 'संप्रयतीः' पाठ लिया है ॥

यत् प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत ।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनु ष्ठन ॥ २ ॥

यत् । प्रऽइषिताः । वरुणेन । आत् । शीभम् । सम्ऽअवल्गत । तत् । आप्नोत् । इन्द्रः । वः । यतीः । तस्मात् । आपः । अनु । स्थन ॥ २ ॥

१—**यत्** । यत् किञ्चित् । **अदः** । तत् । **संप्रयतीः** । इण् गतौ—शतृ, ङीप् । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति पूर्वसवर्णदीर्घः । संभूय, प्रयान्त्यः । **अहौ** । अ० २ । ५ । ५ । मेघे । **अनदता** । णद अव्यक्ते शब्दे—लङ् । सांहितिको दीर्घः । यूयं ध्वनिं कृतवत्यः **हते** । ताडिते । **तस्मात्** । तस्मात् कारणात् । **आ** । अवधारणे । **नद्यः** । नदट् पचाद्यच्[1] । **टिड्ढाणञ्०** (पा० ४ । १ । १५) इति ङीप् । नद्यः कस्मान्नदना इमा भवन्ति शब्दवत्यः—निरु० २ । २४ । नदनशीलाः । सरितः । **नाम** । अ० १ । २४ । ३ । नामधेयम् । **स्थ** । भवथ । **ता** । तानि । **वः** । युष्माकम् । **सिन्धवः** । अ० १ । १५ । १ । स्यन्दनशीलाः । नद्यः ॥

---

१. पचादि गण (काशि० ३ । १ । १३४) में नदट् पढ़ा है, अर्थात् णद धातु को टित् पढ़ा है, जिससे टित् मानकर ङीप् हो सके ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्) जब (आत्) फिर (वरुणेन) सूर्य करके (प्रेषिताः) भेजे हुये तुम (शीभम्) शीघ्र (समवलगत) मिलकर चलो, (तत्) तब (इन्द्रः) जीव ने [वा सूर्य ने] (यतीः) चलते हुये। (वः) तुमको (आप्नोत्) प्राप्त किया (तस्मात्) उससे (अनु) पीछे (आपः) प्राप्ति योग्य जल [नाम] (स्थन) तुम हो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में 'आप्नोत्' और 'आपः' शब्द एक ही धातु आप्लृ व्याप्तौ से सिद्ध है। जब सूर्य की शक्ति से जल भूमि पर आकर फैलता है, तब जीव उसे पाता है, [और सूर्य भी फिर ले लेता है] इससे जल का नाम 'आपः' पाने योग्य वस्तु है[1]। 'आपः' शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग बहुवचनान्त है ॥ २ ॥

अपक्कामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम् ।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद् वार्नाम वो हितम् ॥ ३ ॥

अपऽक्कामम् । स्यन्दमानाः । अवीवरत । वः । हि । कम् । इन्द्रः । वः । शक्तिऽभिः । देवीः । तस्मात् । वाः । नाम । वः । हितम् ॥ ३ ॥

२—**यत्** । यदा । **प्रेषिताः** । इष गतौ-क्तः । प्रेरिताः । **वरुणेन** । वरणीयेन सूर्येण । **आत्** । अनन्तरम् । **शीभम्** । शीभृ कत्थने—घञ् । क्षिप्रम्-निघ० २ । १५ । **समवलगत** । वल्गु गतौ—लङ्, भौवादिकः । यूयं सम्भूय गतवत्यः । **तत्** । तदा । **आप्नोत्** । आप्लृ व्याप्तौ—लङ । प्राप्तवान् । **इन्द्रः** । जीवः । सूर्यः । **वः** । युष्मान् । **यतीः** । इण् गतौ—शतृ: । गमनं कुर्वतीः । **तस्मात्** । **आपः** । **आप्नोतेर्ह्रस्वश्च** (उ० २ । ५८) इति आप्लृ व्याप्तौ—क्विप् । **अप्तृन्तृच्०** (पा० ६ । ४ । ११) इति सर्वनामस्थाने दीर्घः । आप आप्नोतेः—निरु० ९ । २६ । प्राप्तव्यानि जलानि । **अनु** । पश्चात् । **स्थन**[2] । यूयं स्थ ॥

---

१. 'अद्भिर्वाऽइदं सर्वमाप्तम्' (श० ब्रा० १ । १ । १० । ४) इति आपः ऐसा शतपथ ब्राह्मण में भी कहा है ॥ सम्पा० ॥

२. तप्तनप्तनथनाश्च (पा० ७ । १ । ४५) से यहाँ लोट् मध्यम पुरुष बहुवचन को थन आदेश हुआ है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वः) वेगवान् वा वरणीय (इन्द्रः) जीव [वा सूर्य्य] ने (हि) ही (अपकामम्) व्यर्थ (स्यन्दमानाः) बहते हुये (वः) तुमको (शक्तिभिः) अपनी शक्तियों द्वारा (कम्) सुख से (अवीवरत) वरण [स्वीकार] अथवा, वारण [रोकना] किया, (तस्मात्) इससे (देवीः = देव्यः) हे दिव्य गुण वाली वा खेलवाली जल धाराओ ! (वः) तुम्हारा (नाम) नाम (वार्) वरण योग्य वा वारण योग्य जल (हितम्) रक्खा गया है ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्य भूमि पर अन्नादि के लिये और सूर्य्य आकाश में वृष्टि के लिये जल को चाहता है वा रोकता है, इसलिये जल का नाम 'वार्' है। 'अवीवरत' क्रिया और 'वार्' शब्द दोनों 'वृञ्' चाहना वा रोकना धातु से बनते हैं ॥ ३ ॥

एकॊ वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम् ।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥ ४ ॥

एकः । वः । देवः । अपि । अतिष्ठत् । स्यन्दमानाः । यथाऽवशम् ।
उत् । आनिषुः । महीः । इति । तस्मात् । उदकम् । उच्यते ॥४॥

भाषार्थः—(एकः) अकेला (देवः) जयशील परमात्मा (यथावशम्)

३—**अपकामम्** । विनैव कामेन, व्यर्थम् । **स्यन्दमानाः** । स्यन्दनं कुर्वाणाः । **अवीवरत** । वृञ् वरणे, वारणे वा, स्वार्थिको णिच् । वृतवान् । वारितवान् । **वः** । युष्मान् । **हि** । निश्चयेन । **कम्** । सुखेन । **इन्द्रः** । जीवः । सूर्य्यः । **वः** । वा गतौ, वृञ् वरणे वा डः । वायुः, वरुणः । वेगवान् । वरणीयः । **शक्तिभिः** । स्वसामर्थ्यैः । **देवीः** । दिवु दीप्तौ, क्रीडायां च—अच्, ङीप् । हे देव्यः । दिव्यगुणाः । देवनशीलाः । **वार्** । वृञ् वरणे, वृ वारणे वा—णिच् क्विप् । व्रियते वार्यते वा यत्तद् । जलम् । **वः** । युष्माकम् । **हितम्** । डुधाञ् धारणे—क्तः । धृतम् ॥

४—**एकः** । अद्वितीयः । **वः** । युष्मान् । **देवः** । दिवु विजिगीषायाम्—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छानुसार (स्यन्दमानाः) बहते हुये (वः) तुम्हारा (अपि अतिष्ठत्) अधिष्ठाता हुआ। (महीः=महत्यः) शक्ति वाले [आप जल] ने (इति) इस प्रकार (उत्+आनिषुः) ऊपर को श्वास ली, (तस्मात्) इस लिये (उदकम्) ऊपर को श्वास लेने वाला उदक वा जल (उच्यते) कहा जाता है ॥ ४ ॥

भावार्थः—ईश्वर की सामर्थ्य से सूर्य्य द्वारा जल आकाश में चढ़ता है इस लिये 'उदक' जल का नाम है। 'उत् आनिषुः' और 'उदकम्' उत्+अन, श्वास लेना—धातु से बनते हैं ॥ ४ ॥

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत् ताः ।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥ ५ ॥

आपः । भद्राः । घृतम् । इत् । आपः । आसन् । अग्नीषोमौ । बिभ्रति । आपः । इत् । ताः । तीव्रः । रसः । मधुऽपृचाम् । अरम्ऽगमः । आ । मा । प्राणेन । सह । वर्चसा । गमेत् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(आपः) जल (भद्राः) मंगलमय, और (आपः) जल

अच्। जेता। **अपि अतिष्ठत्।** अपि=अधि। अधिष्ठितवान्। शासितवान्। **स्यन्दमानाः।** स्यन्दनशीलाः। **यथावशम्।** यथेच्छम्। **उत् आनिषुः।** अन प्राणने-लुङ्। उच्छ्वासितवत्यः। **महीः।** महत्यः। **इति।** एवम्। **तस्मात्। उदकम्। कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः।** (उ० ३। ४०) इति उत्+अन प्राणने-कः। नलोपः। यद्वा। **उदकं च** (उ० २। ३९) इति उन्दी क्लेदने—क्वुन्। उदकं कस्मादुनत्तीति सतः-निरु० २। २४। उच्छ्वासकम्। उन्दनशीलम्। जलम्। **उच्यते।** कथ्यते ॥

५—**आपः।** प्रापणीयं जलम्। **भद्राः।** भदि कल्याणे सुखे च—रक्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इत्) ही (घृतम्) घृत (आसन्) था। (ताः) वह (इत्) ही (आपः) जल (अग्नीषोमौ) अग्नि और चन्द्रमा को (बिभ्रति) पुष्ट करता है। (मधु-पृचाम्) मधुरता से भरी [जल धाराओं] का (अरंगमः) परिपूर्ण मिलने वाला, (तीव्रः) तीव्र [तीक्ष्ण, शीघ्र प्रवेश होने वाला] (रसः) रस (मा) मुझ को (प्राणेन) प्राण और (वर्चसा सह) कान्ति वा बल के साथ (आ गमेत्) आगे ले चले ॥ ५ ॥

भावार्थः—जल से घृत सारमय पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जल अग्नि अर्थात् जठराग्नि, बिजुली, बड़वानल आदि और चन्द्र लोक से मिलकर हमें पुष्टि देता है और कृषि आदि में प्रयुक्त होकर अन्नादि उत्पन्न करके प्राणियों का बल और तेज बढ़ाता है ॥ ५ ॥

आदित् पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ् मासाम्। मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ॥ ६ ॥

आत् । इत् । पश्यामि । उत । वा । शृणोमि । आ । मा । घोषः । गच्छति । वाक् । मा । आसाम् । मन्ये । भेजानः । अमृतस्य । तर्हि । हिरण्यऽवर्णाः । अतृपम् । यदा । वः ॥ ६ ॥

मङ्गलप्रदाः । **घृतम्** । घृतवत् सारवस्तु । **इत्** । एव । **आसन्** । अभवन् । **अग्नीषोमौ** । **ईदग्नेः सोमवरुणयोः** (पा० ६ । ३ । २७) इति ईत्वम् । **अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः** (पा० ८ । ३ । ८२) इति षत्वम् । अग्निं च सोमं=चन्द्रं च । **बिभ्रति** । धारयन्ति । **तीव्रः** । **ऋज्रेन्द्राग्र०** (उ० २ । २८) इति बाहुलकात् । तिज निशाने—रन्, जस्य वो दीर्घत्वं च । तीक्ष्णम् । **रसः** । सारः । **मधु-पृचाम्** । पृची संपर्के—क्विप् । मधुना रसेन संपृक्तानाम् । **अरंगमः** । अलंगमः । पर्याप्तगमनः । अक्षीणाः । **प्राणेन** । जीवनेन । **मा** । माम् । **वर्चसा** । तेजसा । बलेन । **आ गमेत्** । आगमयेत्, प्रापयेत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(आत्) तब (इत्) ही (पश्यामि) मैं देखता हूँ, (उत) और (वा) अथवा (शृणोमि) मैं सुनता हूँ, (आसाम्) इसकी [जल के रस की] (घोषः) ध्वनि (मा) मुझे (आ गच्छति) आती है और (वाक्) वाक् शक्ति (मा) मुझे [आती है]। (हिरण्यवर्णाः) हे कमनीय पदार्थ वा सुवर्ण का विचार करने वाले [जल] ! (तर्हि) तभी (अमृतस्य) अमृत का (भेजानः) भोग करता हुआ मैं (मन्ये) अपने को मानूं, (यदा) जब (वः) तुम्हारी (अतृपम्) तृप्ति मैंने पायी हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—जल के यथावत् प्रयोग से प्राणी में दर्शन शक्ति और श्रवण शक्ति, और 'घोष' ध्वन्यात्मक शब्द और 'वाक्' वर्णात्मक शब्द बोलने की शक्ति होती है, और तभी वह इष्ट सुवर्णादि धन की प्राप्ति से भूख आदि से मृत्यु दुःख का त्याग करके अमृत अर्थात् आनन्द भोगता है ॥ ६ ॥

इदं वं आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः ।
इहेत्थमेतं शकरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ॥ ७ ॥

इदम् । वः । आपः । हृदयम् । अयम् । वत्सः । ऋतऽवरीः । इह ।
इत्थम् । आ । इत । शक्वरीः । यत्र । इदम् । वेशयामि । वः ॥ ७ ॥

६—आत् इत् । अनन्तरमेव । **पश्यामि** । ईक्षे । **उत वा** । अपि वा । **शृणोमि** । आकर्णयामि । **मा** । माम् । **घोषः** । घुषिर् अविशब्दने—घञ् । ध्वन्यात्मकशब्दः । ध्वनिः । **आ गच्छति** । प्राप्नोति । **वाक्** । वर्णात्मकशब्दः । वाणी । **आसाम्** । अपाम् । जलस्य । **मन्ये** । जाने । तर्कयामि । **भेजानः** । भज सेवायां लिटः कानच् । **तृफलभजत्रपश्च** (पा० ६ । ४ । १२२) इति लिटि अकारस्य एत्वम् अभ्यासलोपश्च । भजमानाः सेवमानाः । **अमृतस्य** । मरणनाशकस्य । सुखस्य । **तर्हि** । तदा । **हिरण्यवर्णाः** । अ० १ । ३३ । १ । वर्ण क्रियाविस्तारगुणवचनेषु—घञ् । हिरण्यस्य कमनीयपदार्थस्य सुवर्णस्य वा वर्ण विस्तारो याभिस्तास्तथाभूताः । तत्सम्बुद्धौ । **अतृपम्** । तृप तृप्तौ—लङ् । तृप्तिं प्राप्तवानस्मि । **यदा** । **वः** । युष्माकम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(आपः) हे प्राप्ति के योग्य जल धाराओं ! (इदम्) यह (वः) तुम्हारा (हृदयम्) स्वीकार योग्य हृदय वा कर्म है। (ऋतावरीः) हे सत्यशील [जल धाराओं !] (अयम्) यह (वत्सः) निवास देने वाला, आश्रय है। (शक्वरीः) हे शक्ति वालियो ! (इत्थम्) इस प्रकार से (इह) यहां पर (आ इत) आओ, (यत्र) जहां (वः) तुम्हारे (इदम्) जल को (वेशयामि) प्रवेश करूं ॥ ७ ॥

भावार्थः—कृषि, यन्त्र, औषधादि में जल के यथायोग्य प्रयोग से प्राणियों को सुख मिलता है ॥ ७ ॥

सूक्तम् १४ ॥

१--६ ॥ गावो देवताः । १-५ अनुष्टुप्, ६ त्रिष्टुप् ॥

गोरक्षोपदेशः—गोरक्षा का उपदेश ॥

सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या ।
अहंजातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि ॥ १ ॥

७—इदम् । उपरोक्तम् । वः । युष्माकम् । आपः । हे प्राप्तव्या जलधारा । हृदयम् । वृहोः घुग्दुकौ च (उ० ४ । १००) इति हृञ् हरणे-कयन् दुक् च, हरणं प्रापणं स्वीकारः स्तेयं नाशनं च । हरणीयं प्राप्तव्यं हृदयं कर्म वा । वत्सः । वृतृवदिवचिवसि० (उ० ३ । ६२) इति वस निवासे—सः । निवासकः । आश्रयः । ऋतावरीः । छन्दसीवनिपौ च (वा० पा० ५ । २ । १०९) इति मत्वर्थीयो वनिप् । वनो र च (पा० ४ । १ । ७) इति ङीब्रेफौ । अन्येषामपि दृश्यते (पा० ६ । ३ । १३७) इति सांहितको दीर्घः । वा छन्दसि (पा० ३ । ४ । ८८) इति जसः पूर्वसवर्णदीर्घः । हे ऋतवर्यः । सत्योपेताः । इत्थम् । अनेन प्रकारेण । आ इत । आगच्छत । शक्वरीः । अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते (पा० ३ । २ । ७५) इति शक्लृ शक्तौ—वनिप् । पूर्ववद् ङीब्रेफपूर्वसवर्णदीर्घः । शक्वर्यः शक्ताः । समर्थाः । यत्र । इदम् । इन्देः कमिन्नलोपश्च (उ० ४ । १५७) इति इदि परमैश्वर्ये—कमिन् । उदकम्-निघ० १ । १२ । वेशयामि । प्रवेशयामि । अन्तः स्थापयामि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम् । वः । गोऽस्थेन । सुऽसदा । सम् । रय्या । सम् । सुऽभूत्या ।
अहःऽजातस्य । यत् । नाम । तेन । वः । सम् । सृजामसि ॥ १ ॥

भाषार्थः—[हे गौओ !] (वः) तुम को (सुषदा) सुख से बैठने योग्य (गोष्ठेन) गोशाला से (सम्) मिलाकर (रय्या) धन से (सम्) मिलाकर और (सुभूत्या) बहुत सम्पत्ति से (सम्) मिलाकर और (अहर्जातस्य) प्रतिदिन उत्पन्न होने वाले [प्राणी] का (यत् नाम) जो नाम है, (तेन) उस [नाम] से (वः) तुमको (सम्, सृजामसि = ०—मः) हम मिलाकर रखते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्य गौओं को स्वच्छ निरोग गोशाला में रखकर पालें, और उनको अपने धन और संपत्ति का कारण जानकर अन्य प्राणियों के समान उनके नाम बहुला, कामधेनु, नन्दिनी आदि रक्खें ॥ १ ॥

सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यतु यद् वसु ॥ २ ॥

सम् । वः । सृजतु । अर्यमा । सम् । पूषा । सम् । बृहस्पतिः ।
सम् । इन्द्रः । यः । धनम्ऽजयः । मयि । पुष्यतु । यत् । वसु ॥२॥

१—**सम्** । सृजामसि इति व्यवहितक्रियापदेन सर्वत्र संबन्धः । **वः** । युष्मान् । **गोष्ठेन** । गोशालया । **सुषदा** । षद्लृ गतौ—क्विप् । सुखेन सीदन्ति यत्रेति सुषत् । सुखसदनयोग्येन । **रय्या** । धनेन । **सुभूत्या** । भू सत्तायां प्राप्तौ च—क्तिन् । बहुसम्पत्त्या । **अहर्जातस्य** । **नञि जहातेः** (उ० १ । १५८) इति नञ् + ओहाक् त्यागे, कनिन्, आतो लोपः । न जहाति न त्यजति सर्वथा परिवर्त्तनम् इत्यहः, दिनम् । जनी प्रादुर्भावे—क्तः । अहन्यहनि जातस्य उत्पन्नस्य प्राणिनः । **संसृजामसि** । संसृजामः, संयोजयामः । अन्यत् सुगमम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वः) तुमको (अर्यमा) अरि अर्थात् हिंसकों का नियामक [गोपाल] (सम्) मिलाकर (पूषा) पोषण करने वाला [गृहपति] (सम्) मिलाकर और (बृहस्पतिः) बड़े बड़ों का रक्षक [विद्वान् वैद्यादि पुरुष] (सम्) मिलाकर, और (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला राजा, (यः धनंजयः) जो धनों का जीतने वाला है, (सम् सृजतु) मिलाकर रक्खे । (मयि) मुझमें (यत्) पूजनीय (वसु) धन को (पुष्यत) तुम पुष्ट करो ॥ २ ॥

भावार्थः—सब प्रजागण और प्रजापालक राजा राज नियम से गौओं की वृद्धि करें जिससे कृषि, व्यापारादि द्वारा संसार में धन बढ़े ॥ २ ॥

संजग्माना अबिभ्युषी रस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः ।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥ ३ ॥

सम्ऽजग्मानाः । अबिभ्युषीः । अस्मिन् । गोऽस्थे । करीषिणीः । बिभ्रतीः । सोम्यम् । मधु । अनमीवाः । उपऽएतन ॥ ३ ॥

२—वः । युष्मान् । **सं सृजतु** । संयोज्य पालयतु । **अर्यमा** । **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** (पा० ३ । २ । ७५) इति ऋ हिंसायाम्-विच् । **पुगन्तलघूपधस्य च** (पा० ७ । ३ । ८६) इति गुणः । ऋणोति हिनस्तीति अर् अरिः । **श्वनुक्षन्पूषन्प्लीहन्क्लेदन्स्नेहन्मज्जन्मूर्धन्नर्यमन्०** (उ० १ । १५९) इति अर् + यम नियमे-कनिन् । अर्यमादित्योऽरीन्नियच्छतीति-निरु० ११ । २३ । अराम् अरीणां हिंसकानां नियामकः । गोपालः । **पूषा** । अ० १ । ९ । १ । पुष पुष्टौ-कनिन् । पोषकः । गृहपतिः । **बृहस्पतिः** । अ० १ । ८ । २ । बृहतां वेदादिशास्त्राणां पालकः । वैद्यादिविद्वान् पुरुषः । **इन्द्रः** । परमैश्वर्यवान् राजा । **धनंजयः** । **संज्ञायां भृतृवृजिधा०** (पा० ३ । २ । ४६) इति धन+जि जये खच् । **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्** (पा० ६ । ३ । ६७) इति मुम् । धनानां जेता । **पुष्यत** । पोषयत । वर्धयत । **यत्** । **त्यजितनियजिभ्यो डित्** (उ० १ । १३२) इति यज पूजायाम्-अदिः, स च डित् । यजनीयं पूजनीयम् । **वसु** । धनम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अस्मिन् गोष्ठे) इस गोशाला में (संजग्मानाः) मिलकर चलती हुई, (अबिभ्युषीः = ०ष्यः) निर्भय रहती हुई, (करीषिणीः = ०—ण्यः) गोबर करने वाली, (सोम्यम्) अमृतमय (मधु) रस (बिभ्रतीः = ०—त्यः) धारण करती हुई, (अनमीवाः) नीरोग तुम (उपेतन = उप, आ, इत) चली आओ ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्य गौओं को हिंसक जीवों से बचाकर नीरोग रक्खें जिससे वे रोगनाशक, अमृतमय दूध, घृत आदि पदार्थ देती रहें। गौ के मूत्र, गोबर, दूध आदि के गुण और प्रयोग बहुत हैं ॥ ३ ॥

शब्दकल्पद्रुम कोष में गौ के गुण वर्णन करते हुए कहा है—

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं सर्पिर्दधि च रोचना ।
षडङ्गमेतन्मङ्गल्यं पवित्रं सर्वदा गवाम् ॥

गोमूत्र, गोबर, दूध, घी, दही और गोरोचना, गौओं के यह छह प्रकार के सर्वदा मङ्गलकारी शुद्ध पदार्थ हैं ॥

मनु भगवान् का वचन है—

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥ मनु० ११ । २१२ ॥

गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशा का पानी, एक दिन [खावे] फिर एक दिन रात उपवास करे। यह कृच्छ्र सान्तपन कहाता है ॥

३—**संजग्मानाः** । **समो गम्यृच्छिभ्याम्** (पा० १ । ३ । २९) इति सं-पूर्वाद् गमेरात्मनेपदत्वात् लिटः कानच् । संगच्छमानाः । **अबिभ्युषीः** । त्रिभी भये—लिटः क्वसुः, ङीप् । **वसोः संप्रसारणम्** (पा० ६ । ४ । १३१) इति संप्रसारणम् । जसः पूर्वसवर्णदीर्घः । अबिभ्यत्यः । **करीषिणीः** । **कृतृभ्यामीषन्** (उ० ४ । २६) इति कॄ विक्षेपे, विज्ञाने—ईषन् । **अत इनिठनौ** (पा० ५ । २ । ११५) इति इनिः । करीषिण्यः करीषेण गोमयेन युक्ताः । **बिभ्रतीः** । भृञ् भरणे—शतृः । बिभ्रत्यः । धारयन्त्यः । **सोम्यम्** । **मये च** (पा० ४ । ४ । १३८) इति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत ।
इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥ ४ ॥

इह । एव । गावः । आ । इतन । इहो इति । शकाऽइव । पुष्यत । इह । एव । उत । प्र । जायध्वम् । मयि । सम्ऽज्ञानम् । अस्तु । वः ॥ ४ ।

भाषार्थः—(गावः) हे गौओं ! (इह एव) यहां ही (एतन) आओ (इहो=इह—उ) यहां ही (शका इव) समर्था [गृहपत्नी] के समान (पुष्यत) पोषण करो । (उत) और (इह एव) यहां पर ही (प्रजायध्वम्) बच्चों से बढ़ो । (मयि) मुझ में (वः) तुम्हारा (संज्ञानम्) प्रेम (अस्तु) होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जैसे समर्थ गृहपत्नी घर वालों का पोषण करके प्रसन्न रखती है, ऐसे ही गौयें अपने दूध, घी आदि से अपने रक्षकों को पुष्ट और स्वस्थ करती हैं । इससे सब मनुष्य प्रीति पूर्वक उनका पालन करें और उन का वंश बढ़ावें ॥ ४ ॥

शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत ।
इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ॥ ५ ॥

सोम—यप्रत्ययः । अमृतमयम् । **मधु** । मधुरं दुग्धघृतादि । **अनमीवाः** । अ० २ । ३० । ३ । रोगरहिताः । **उपेतन** । इण् गतौ-लोट् । तस्य तनादेशः । उपागच्छत ॥

४—**आ इतन** । एत । आगच्छत । **इहो** । इह—उ । अत्रैव । **शका** । शक्लृ शक्तौ—पचाद्यच्, टाप् । शक्नोतीति शका[1] । समर्था राजपत्नी गृहपत्नी वा । **पुष्यत** । पोषयत । **उत** । अपि च । **प्रजायध्वम्** । प्रजया प्रवर्धध्वम् । **मयि** । गोरक्षके । **संज्ञानम्** । सम्यग् ज्ञानम् । प्रीतिभावः । **वः** । युष्माकम् ॥

---

१. 'शका' यहाँ प्रत्यय में स्थित ककार न होने से प्रत्ययस्थात्कात्० (पा० ७ । ३ । ४४) से इत्व नहीं होता ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवः । वः । गोऽस्थः । भवतु । शारिशाकाऽइव । पुष्यत । इह ।
एव । उत । प्र । जायध्वम् । मया । वः । सम् । सृजामसि ॥ ५ ॥

भाषार्थः---(वः) तुम्हारी (गोष्ठः) गोशाला (शिवः) मङ्गलदायक (भवतु) होवे । (शारिशाका इव) शालि [साठी चावल] की शाखा [उपज] के समान (पुष्यत) पोषण करो । (उत) और (इह एव) यहां ही (प्रजायध्वम्) बच्चों से बढ़ो । (मया=अस्माभिः) अपने साथ (वः) तुमको (संसृजामसि=०—मः) हम मिलाकर रखते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—जैसे 'शारि, शालि' साठी चावल की शाखा 'शाका' थोड़े प्रयत्न से साठ दिन में ही पक जाती है, वैसे ही मनुष्य यत्न पूर्वक थोड़े परिश्रम से पालन करके गौओं से दूध, घी, और खेती के लिये बैल आदि पाकर बहुत लाभ उठाते हैं ॥ ५ ॥

मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः ।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ॥ ६ ॥

मया । गावः । गोऽपतिना । सचध्वम् । अयम् । वः । गोऽस्थः । इह ।
पोषयिष्णुः । रायः । पोषेण । बहुलाः । भवन्तीः । जीवाः । जीवन्तीः ।
उप । वः । सदेम ॥ ६ ॥

५—**शिवः** । सुखकरः । **वः** । युष्माकम् । **गोष्ठः** । गोशालाः । **शारिशाका** । **जनिघसिभ्यामिण्** (उ० ४ । १३०) इति शल गतौ—इण् । लस्य रत्वम् । शल्यते प्राप्यतेऽसौ शालिः । षष्टिकादिधान्यम् । शक्ल शक्तौ—घञ्, टाप् । शक्नोति कर्षको यया सा शाका, साखा, इति भाषा । अन्नोत्पत्तिः । **पुष्यत** । पोषयत । **मया** । एकवचनं बहुवचने । अस्माभिः । अन्यद् व्याख्यातं म० ४, ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(गावः) हे गौओं ! (मया गोपतिना) मुझ गोपति से (सचध्वम्) मिली रहो। (इह) यहाँ (अयम्) यह (पोषयिष्णुः) पोषण करने वाली (वः) तुम्हारी (गोष्ठः) गोशाला है। (रायः) धन (पोषेण) पुष्टि से (बहुलाः) बहुत पदार्थ देने वाली अथवा वृद्धि करने वाली (भवन्तीः) होती हुई और (जीवन्तीः) जीती हुई (वः) तुमको (जीवाः) जीते हुये हम लोग (उप) आदर से (सदेम) प्राप्त करते रहें ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य गौओं की सेवा से दुग्ध, घृत, कृषि आदि की उन्नति करके बहुत काल तक जीते और सुख भोगते रहें ॥ ६ ॥

सूक्तम् १५ ॥

१—८ ॥ इन्द्रो देवता। १—६, त्रिष्टुप्, ७ अनुष्टुप्, ८ पूर्वार्धो-नुष्टुप्, द्वितीयार्धस्त्रिष्टुप् ॥

व्यापारलाभायोपदेशः—व्यापार के लाभ का उपदेश ॥

इन्द्रंमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु ।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥१॥

इन्द्रम् । अहम् । वणिजम् । चोदयामि । सः । नः । आ । एतु । पुरःऽएता ।

६—**गावः** । हे धेनवः। **गोपतिना** । गोरक्षकेण । **सचध्वम्** । षच समवाये । समवेता भवत । संगच्छध्वम् । **पोषयिष्णुः** । **णेश्छन्दसि** (पा० ३।२।१३७) इति पोषयतेः-इष्णुच् । पोषकः । **बहुलाः** । बहु+ला आदाने कः, टाप् । यद्वा । **हृषेरुलच्** (उ० १ । ९६) इति बाहुलकात् बहि वृद्धौ—उलच् । नलोपः । यद्वा, वह प्रापणे—उलच् । टाप् । बहुपदार्थदात्रीः । वृद्धिशीलाः । **भवन्तीः** । भू सत्तायाम्-शतृः, ङीप् । वर्त्तमानाः । **जीवाः** । चिरजीविनो वयम् । **जीवन्तीः** । बहुकालजीवनोपेताः । **उप** । आदरेण । **वः** । युष्मान् । **सदेम** । सदेराशीर्लिङि । गच्छेम । प्राप्नुयाम । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नः । अस्तु । नुदन् । अरातिम् । परिपन्थिनम् । मृगम् । सः । ईशानः । धनदाः । अस्तु । मह्यम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य वाले (वणिजम्) वणिक् को (चोदयामि) आगे बढ़ाता हूँ, (सः) वह (नः) हम में (एतु) आवे, और (नः) हमारा (पुरएता) अगुआ (अस्तु) होवे। (अरातिम्) बैरी, (परिपन्थिनम्) डाकू और (मृगम्) बनैले पशु को (नुदन्) रगेदता हुआ (सः) वह (ईशानः) समर्थ पुरुष (मह्यम्) मुझे (धनदाः) धन देने वाला (अस्तु) होवे ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्य व्यापारकुशल पुरुष को अपना मुखिया बनाकर वाणिज्य और मार्ग की ऊँच नीच समझकर वाणिज्य में धन लगाने से लाभ उठाते हैं ॥१॥

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि ॥ २ ॥

१—**इन्द्रम्** । ऐश्वर्यवन्तं पुरुषम् । **वणिजम्** । **पणेरिञ्यादेश्च वः** (उ० २।७०) इति पण व्यवहारे—इजिः, पस्य वः । व्यापारिणम् । **चोदयामि** । प्रेरयामि । प्रवर्त्तयामि । **नः** । अस्मान् । **एतु** । आगच्छतु । **पुरएता** । पुरस्+इण् गतौ—तृच् । पुरोगन्ता । अग्रगामी । **नः** । अस्माकम् । **नुदन्** । णुद प्रेरणे-शतृः । प्रेरयन् । अपगमयन् । **अरातिम्** अ० १ । १८ । १ । शत्रुम् । **परिपन्थिनम्** । अ० १ । २७ । १ । पर्यवस्थातारं मार्गनिरोधकं चौरम् । **मृगम्** । मृग अन्वेषणे—कः । मृगयते अन्वेषयति तृणादिकम् पशुम् । वन्यपशुम् । **ईशानः** । ईश ऐश्वर्ये-शानच् । ईश्वरः । नियन्ता । **धनदाः** । **आतो मनिन्क्वनि०** (पा० ३ । २ । ७४) इति धन+दा—विच् । वाणिज्य-लाभरूपधनप्रदाता । **मह्यम्** । वणिजे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये । पन्थानः । बहवः । देवयानाः । अन्तरा । द्यावापृथिवी इति । समञ्चरन्ति । ते । मा । जुषन्ताम् । पयसा । घृतेन । यथा । क्रीत्वा । धनम् । आऽहराणि ॥ २ ॥

भाषार्थः—(ये) जो (देवयानाः) विद्वान् व्यापारियों के यानों रथादिकों के योग्य (बहवः) बहुत से (पन्थानः) मार्ग (द्यावापृथिवी=०—द्यौ) सूर्य और पृथिवी के (अन्तरा) बीच (संचरन्ति) चलते रहते हैं, (ते) वे [मार्ग] (पयसा) दूध से और (घृतेन) घी से (मा) मुझको (जुषन्ताम्) तृप्त करें, (यथा) जिससे (क्रीत्वा) मोल लेकर [व्यापार करके] (धनम्) धन (आहराणि) मैं लाऊँ ॥ २ ॥

भावार्थः—व्यापारी लोग विमान, रथ, नौकादि द्वारा आकाश भूमि समुद्र, पर्वत, आदि से देश देशान्तरों में जाकर अनेक प्रकार व्यापार करके मूलधन बढ़ावें और धनाढ्य होकर घर आवें ॥ २ ॥

इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥३॥

२—**पन्थानः** । मार्गाः । **बहवः** । बहुदेशसंबन्धिनः । **देवयानाः** । दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यहारादिषु-अच् । या गतौ-ल्युट् । देवानां विदुषां व्यवहारिणां यानानि गमनसाधनानि विमानरथादीनि चरन्ति येषु ते तथाभूताः । **अन्तरा** । **अन्तरान्तरेण युक्ते** (पा० २ । ३ । ४) इति द्वितीया । मध्ये । **द्यावापृथिवी** । अ० २ । १ । ४ । सूर्यभूमी । तयोर्मध्य इत्यर्थः । **संचरन्ति** । वर्त्तन्ते । **ते** । पन्थानः । **मा** । मां वणिजम् । **जुषन्ताम्** । जुषी प्रीतिसेवनयोः । प्रीणन्तु । तर्पयन्तु । **पयसा** । दुग्धेन । **घृतेन** । आज्येन । **यथा** । येन प्रकारेण । **क्रीत्वा** । डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये । विनिमयेन गृहीत्वा । **धनम्** । लाभसहितं मूलधनम् । **आहराणि** । स्वगृहं प्रापयाणि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इध्मेन । अग्ने । इच्छमानः । घृतेन । जुहोमि । हव्यम् । तरसे । बलाय । यावत् । ईशे । ब्रह्मणा । वन्दमानः । इमाम् । धियम् । शतऽसेयाय । देवीम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि सदृश तेजस्वी विद्वान् ! (इच्छमानः) [लाभ की] इच्छा करता हुआ मैं (इध्मेन) इन्धन और (घृतेन) घृत से (तरसे) तराने वाले वा जिताने वाले (बलाय) बल के लिए (हव्यम्) हवन सामग्री का (जुहोमि) होम करता हूं, (यावत्) जहाँ तक (ब्रह्मणा) ब्रह्मा द्वारा [दी हुई] (इमाम्) इस (देवीम्) व्यवहार कुशल (धियम्) निश्चल बुद्धि की (वन्दमानः) वन्दना करता हुआ मैं (शतसेयाय) सैकड़ों उद्यम के लिए (ईशे) समर्थ हूँ ॥३॥

भावार्थः—जैसे समिधा और घृतादि से अग्नि का तेज बढ़ कर अन्धकार हटाता है, वैसे ही मनुष्य सर्वोत्तम वेदविद्या को प्रीति पूर्वक ग्रहण करके

३—**इध्मेन** । **इषियुधीन्धि०** (उ० १ । १४५) इति ञिइन्धी दीप्तौ-मक् । इन्धनेन । **अग्ने** । हे अग्निवत् तेजस्विन् । विद्वन् । **इच्छमानः** । इषु इच्छायाम्—शानच् । वाणिज्यलाभं कामयमानः । **जुहोमि** । हु दानादनयोः—लट् । ददामि । **हव्यम्** । हु दानादनयोः—यत् देवयोग्यान्नम् । हवनीयद्रव्यम् । **तरसे** । तॄ तरणे, प्लवने, अभिभवे च-असुन् । तारकाय । जयसाधनाय । वेगाय । **बलाय** । पराक्रमाय । **यावत्** । **यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्** (पा० ५।२।३९) इति यत्-शब्दात् वतुप् । **आ सर्वनाम्नः** (पा० ६।३।९१) इति आत्वम् । यत्परिमाणम् । **ईशे** । ईश्वरः शक्तो भवामि । **ब्रह्मणा** । वेदद्वारा दत्ताम् । **वन्दमानः** । स्तुवन् । **इमाम्** । उपस्थिताम् । **धियम्** । अ० २ । ५ । ४ । धृञ् यद्वा, डुधाञ् धारणे-क्विप् । **घुमास्थागापाजहातिसां हलि** (पा० ६ । ४ । ६६) इति ईत्वम्, क्विब्लोपश्च । यद्वा ध्यै चिन्तने-क्विप् संप्रसारणं च । वेदोक्तं कर्म । धारणावतीं बुद्धिम् । **शतसेयाय** । **अचो यत्** (पा० ३ । १ । ९७) इति षो अन्तकर्मणि—यत् । **आदेच उपदेशेऽशिति** (पा० ६ । १ । ४५) इति आत्वम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामर्थ्य भर वाणिज्य में उद्योग करके प्रभूत धन पावें और दरिद्रतादि को मिटावें ॥ ३ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद म० ३ सू० १८ म० ३ में है ॥

इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम् । शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु । इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च ॥ ४ ॥

इमाम् । अग्ने । शरणिम् । मीमृषः । नः । यम् । अध्वानम् । अगाम । दूरम् । शुनम् । नः । अस्तु । प्रऽपणः । विऽक्रयः । च । प्रतिऽपणः । फलिनम् । मा । कृणोतु । इदम् । हव्यम् । सम्ऽविदानौ । जुषेथाम् । शुनम् । नः । अस्तु । चरितम् । उत्थितम् । च ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि सदृश तेजस्वी विद्वान् ! (नः) हमारी (इमाम्) इस (शरणिम्) पीड़ा को [उस मार्ग में] (मीमृषः) तूने सहा है (यम् दूरम् अध्वानम्) जिस दूर मार्ग को (अगाम) हम चले गये हैं ।

ईद्यति (पा० ६ । ४ । ६५) इति ईत्वम् आर्धधातुकत्वे गुणः । शतादिसंख्यापरिमितव्यवसायाय बहूद्यमाय । **देवीम्** । व्यवहारकुशलाम् ॥

४—अग्ने । म० ३ । **शरणिम्** । अर्त्तिसृधृ० (उ० २ । १०२) इति शृ हिंसायाम्–अनिः । हिंसाम् । प्रमादरूपां पीडाम् । **मीमृषः** । मृष तितिक्षायाम् लुङ् अडभावः । स्वार्थिको णिच् । त्वं क्षमितवानसि । **नः** । अस्माकम् । **अध्वानम्** । **अदेर्धश्च** (उ० ४ । ११६) इति अद भक्षणे । यद्वा, अदि बन्धने क्वनिप्, दस्य धः । मार्गम् । **अगाम** । इण् गतौ—लुङ् । वयं गतवन्तः । **दूरम्** । अ० ३ । ३ । २ । विप्रकृष्टदेशम् । **शुनम्** । अव्ययम् । **गेहे कः**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नः) हमारा (प्रपणः) क्रय [मोल लेना] (च) और (विक्रयः) बिक्री (शुनम्) सुखदायक (अस्तु) हो, (प्रतिपणः) वस्तुओं का लौट फेर (मा) मुझ को (फलिनम्) बहुत लाभ वाला (कृणोतु) करे ।

(संविदानौ) एक मत होते हुये तुम दोनों [हम और तुम] (इदम् हव्यम्) इस भेंट को (जुषेथाम्) सेवें । (नः) हमारा (चरितम्) व्यापार (च) और (उत्थितम्) उठान [लाभ] (शुनम्) सुखदायक (अस्तु) होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विनय पूर्वक अपनी चूक मानकर विद्वानों की सम्मति से अपना सुधार करते हैं, वे व्यापार में अधिक लाभ उठाकर आनन्द पाते हैं ॥ ४ ॥

इस मन्त्र की प्रथम पंक्ति कुछ भेद से ऋ० म० १ सू० ३१ म० १६ में है ॥

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः । तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा नि षेध ॥ ५ ॥

येन । धनेन । प्रऽपणम् । चरामि । धनेन । देवाः । धनम् । इच्छमानः । तत् । मे । भूयः । भवतु । मा । कनीयः । अग्ने । सातऽघ्नः । देवान् । हविषा । नि । सेध ॥ ५ ॥

(पा० ३ । १ । ६४४) इति शुन गतौ–कः । सुखनाम–निघ० ३ । ६ । सुखप्रदः । **प्रपणः** । पण व्यवहारे–अच् । क्रयः । व्यापारः । **विक्रयः** । **एरच्** (पा० ३ । ३ । ५६) इति वि+डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये–अच् । विक्रयणम् । विपणनम् । **प्रतिपणः** । पण–अच् । सलाभमूल्यस्वीकारेण परेभ्यः प्रदानम् । **फलिनम्** । बहुलाभयुक्तम् । **मा** । माम् । **कृणोतु** । करोतु । **हव्यम्** । हविः । **संविदानौ** । अ० २ । २८ । २ । संगच्छमानौ । ऐकमत्यं प्राप्तौ । अहं च त्वं च । **जुषेथाम्** । युवां सेवेथाम् । **चरितम्** । चर्–क्तः । अनुष्ठानम् । विक्रयादिकर्म । **उत्थितम्**[1] । उद्+ष्ठा–क्तः । सलाभं धनम् ॥

---

१. उदः स्थास्तम्भोः० (पा० ८ । ४ । ६१) से यहाँ सकार को पूर्वसवर्णादेश हुआ है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(देवाः) हे व्यवहार कुशल व्यापारियो ! (धनेन) मूल धन से (धनम्) धन (इच्छमानः) चाहने वाला मैं (येन धनेन) जिस धन से (प्रपणम्) व्यापार (चरामि) चलाता हूं, (तत्) वह धन (मे) मेरे लिये (भूयः) अधिक २ (भवतु) होवे, (कनीयः) थोड़ा (मा) न [होवे]। (अग्ने) हे अग्नि सदृश तेजस्वी विद्वान् ! (सातघ्नः) लाभ नाश करने वाले (देवान्) मूर्खों को (हविषः) हमारी भक्ति द्वारा (निषेध) रोक दे ॥ ५ ॥

भावार्थः—नवशिक्षित व्यापारी बड़े बड़े व्यापारियों से लाभ हानि की रीतें समझकर अपने मूल धन को बढ़ाते रहें और कुव्यवहारियों के फंदे में न पड़े ॥५॥

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।
तस्मिन् म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ॥ ६ ॥

येन । धनेन । प्रऽपणम् । चरामि । धनेन । देवाः धनम् । इच्छमानः । तस्मिन् । मे । इन्द्रः । रुचिम् । आ ।

५—**प्रपणम्** । म० ४ । व्यापारम् । **चरामि** । करोमि । **धनेन** । मूलधनेन । **धनम्** । सलाभं धनम् । **इच्छमानः** । कामयमानः । **तत्** । धनम् । **मे** । मह्यम् । **भूयः** । **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** (पा० ५ । ३ । ५७) इति बहु—ईयसुन् । **बहोर्लोपो भू च बहोः** (पा० ६ । ४ । १५८) इति ईलोपो भू च बहोः । बहुतरम् । **मा** । न । **कनीयः** । **युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्** (पा० ५ । ३ । ६४) इति अल्प—ईयसुन् कनादेशः । अल्पतरम् । **अग्ने** । म० ३ । **सातघ्नः** । षणु दाने—क्तः भावे । सातं लाभः । हन हिंसागत्योः च—क्विप् । शसि रूपम् । लाभहन्तॄन् । लाभनाशकान् । **देवान्** । दिवु क्रीडास्तुतिमोद-मदादिषु, अत्र मदे—अच् । मत्तान् मूर्खान् । **हविषा** । भक्त्या । **निषेध** । षिधु गत्याम् । **उपसर्गात् सुनोति०** (पा० ८ । ३ । ६५) इति षत्वम् । निवारय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दधातु । प्रजाऽपतिः । सविता । सोमः । अग्निः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(देवाः) हे व्यवहारकुशल व्यापारियो ! (धनेन) मूल धन से (धनम्) धन (इच्छमानः) चाहता हुआ मैं (येन धनेन) जिस धन से (प्रपणम्) व्यापार (चरामि) चलाता हूं (तस्मिन्) उस [धन] में (मे) मुझे (प्रजापतिः) प्रजापालक (सविता) ऐश्वर्यवान् (सोमः) चन्द्र [समान शान्त स्वभाव] (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी], (इन्द्रः) बड़ा समर्थ प्रधान पुरुष (रुचिम्) रुचि (आदधातु) देवे ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम स्वभाव वाले अनुभवी पुरुषों की सम्मति से व्यापार में मन लगाकर लाभ के साथ मूल धन को बढ़ावें ॥ ६ ॥

उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः ।
स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ॥ ७ ॥

उप । त्वा । नमसा । वयम् । होतः । वैश्वानर । स्तुमः ।
सः । नः । प्रऽजासु । आत्मऽसु । गोषु । प्राणेषु । जागृहि ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(होतः) हे दानशील ! (वैश्वानर) हे सब नरों के हितकारक,

---

६—**तस्मिन्** । पूर्वोक्ते धने । **मे** । मह्यम् । **इन्द्रः** । प्रधानः पुरुषः । **रुचिम्** । रुच दीप्तावभिप्रीतौ च—किः । अभिप्रीतिम् । **आ दधातु** । स्थापयतु । ददातु । **प्रजापतिः** । पुत्रभृत्यादीनां पालकः । **सविता** । परमैश्वर्यवान् । **सोमः** । चन्द्रसमानशान्तस्वभावः । **अग्निः** । म० ३ । अन्यद् यथा म० ५ ॥

७—**उप** । पूजायाम् । **त्वा** । त्वाम् । इन्द्रम् । **नमसा** । नमस्कारेण । **वयम्** । व्यापारिणः । **होतः** । हु दाने—तृच् । हे दातः । **वैश्वानर** । अ० १ । १० । ४ । हे सर्वनरहित ! हे सर्वनायक ! **स्तुमः** । प्रशंसामः । **सः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा सब के नायकपुरुष ! (वयम्) हम लोग (नमसा) नमस्कार के साथ (त्वा) तुझको (उप) आदर से (स्तुमः) सराहते हैं। (सः=सः त्वम्) सो तू (नः) हमारी (प्रजासु) प्रजाओं पर, (आत्मसु) आत्माओं वा शरीरों पर (गोषु) गौओं पर और (प्राणेषु) प्राणों वा जीवनों पर (जागृहि) जागता रह ॥ ७ ॥

भावार्थः—व्यापारी लोग सर्वहितकारी, कर्मकुशल पुरुष को प्रधान बना कर अपने धनादि की रक्षा करें ॥ ७ ॥

विश्वाहा ते सदमिद् भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥८॥

विश्वाहा । ते । सदम् । इत् । भरेम । अश्वायऽइव । तिष्ठते । जातऽवेदः । रायः । पोषेण । सम् । इषा । मदन्तः । मा । ते । अग्ने । प्रतिऽवेशाः । रिषाम ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे उत्तम धन वाले पुरुष ! (विश्वाहा=०—हानि) सब दिनों (ते) तेरे [उद्देश्य के] लिये (इत्) ही (सदम्) समाज को (भरेम) भरते रहें, (इव) जैसे (तिष्ठते) थान पर ठहरे हुए (अश्वाय) घोड़े को [घास अन्नादि भरते हैं]। (अग्ने) हे अग्नि समान तेजस्वी विद्वान् ! (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से और (इषा) अन्न से (सम्) अच्छे प्रकार

सत्वम् । **नः** । अस्माकम् । **प्रजासु** । पुत्रपौत्रभृत्यादिषु । **आत्मसु** । अ० १ । १८ । ३ । जीवेषु । शरीरेषु । **गोषु** । धेनुषु । प्राणेषु । जीवनेषु जागृहि । बुध्यस्व । सावधानो वर्त्तस्व ॥

८—**विश्वाहा** । सर्वाण्यहानि । **ते** । तुभ्यम् । **सदम्** । षदॢ गतौ—अच् । समाजम् । वणिक्मण्डलीम् । **इत्** । एव । **भरेम** । भृञ्—विधिलिङ् । पोषयेम । **अश्वाय, इव** । घोटकाय यथा । **तिष्ठते** । ष्ठा—शतृः । स्वस्थाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मदन्तः) आनन्द करते हुये (ते) तेरे (प्रतिवेशाः) सन्मुख रहने वाले हम लोग (मा रिषाम) न दुःखी होवें ॥ ८ ॥

भावार्थः—जैसे मार्ग से आये घोड़े को अन्न घासादि से पुष्ट करते हैं, इसी प्रकार सब व्यापारी बड़ी बड़ी वणिक् मंडली बना कर प्रधान पुरुष की शक्ति बढ़ावें, जिससे सब लोग बहुतसा धन और अन्नादि पाकर आनन्द भोगें ॥ ८ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १६ ॥

१–७ । वसिष्ठर्षिः । १ लिङ्गोक्तदेवताः, २–६ भगः, ७ उषाः । १ जगतीछन्दः । २, ३, ५—७ त्रिष्टुप्, ४ पङ्क्तिः ॥

बुद्धिवर्धनाय प्रभातगीतिः—बुद्धि बढ़ाने के लिये प्रभाती गीत ॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥१॥

प्रातः । अग्निम् । प्रातः । इन्द्रम् । हवामहे । प्रातः । मित्रा-वरुणा । प्रातः । अश्विना । प्रातः । भगम् । पूषणम् । ब्रह्मणः ।

वर्त्तमानाय । **जातवेदः** । अ० १ । ७ । २ । जातानि प्रशस्तानि वेदांसि धनानि यस्य स जातवेदाः । तत्संबुद्धौ । **रायः** । धनस्य । **पोषेण** । वर्धनेन **सम्** । सम्यक् । **मदन्तः** । मदी हर्षग्लेपनयोः—शतृः । हृष्टा भवन्तः । **अग्ने** । म० ३ । **प्रतिवेशाः** । प्रति+विश-घञ् । आसन्नवर्त्तिनः । **मा रिषाम** । रिष हिंसायाम् कर्मणि कर्तृप्रयोगः । हिंसिता विनष्टा मा भूम ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतिम् । प्रातः । सोमम् । उत । रुद्रम् । हवामहे ॥ १ ॥

भाषार्थः—(प्रातः) प्रातःकाल (अग्निम्) [पार्थिव] अग्नि को, (प्रातः) प्रातःकाल (इन्द्रम्) बिजुली वा सूर्य को, (प्रातः) प्रातःकाल (मित्रावरुणा =०—णौ) प्राण और अपान को, (प्रातः) प्रातःकाल (अश्विना) कामों में व्याप्ति रखने वाले माता पिता को (हवामहे) हम बुलाते हैं। (प्रातः) प्रातःकाल (भगम्) ऐश्वर्यवान्, (पूषणम्) पोषण करने वाले (ब्रह्मणः) वेद, ब्रह्माण्ड, अन्न वा धन के (पतिम्) पति, परमेश्वर को, (प्रातः) प्रातःकाल (सोमम्) ऐश्वर्य कराने वाले वा मथन किये हुये पदार्थ वा आत्मा [अपने बल] वा अमृत [मोक्ष, वा अन्न, दुग्ध, घृतादि] को (उत) और (रुद्रम्) दुःख नाशक वा ज्ञान दाता आचार्य को (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्य प्रातःकाल [सूर्य निकलने से छः घड़ी पहिले] परमेश्वर का ध्यान करता हुआ, मन्त्र में वर्णित पार्थिव और सौर अग्नि के प्रयोग आदि अन्य आवश्यक कर्मों का विचार करके आत्मा को बढ़ाता हुआ अपने कर्त्तव्य में लगे ॥ १ ॥

यह पूरा सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद ७ । ४१ । १-७ और यजुर्वेद अध्याय ३४ मन्त्र ३४-५० में है ।

१—**प्रातः** । प्रततेररन् (उ० ५ । ५६) इति प्र+अत सातत्यगमने-अरन् । सूर्योदयादधित्रिमुहूर्त्तकाले । प्रभातकाले । **अग्निम्** । पार्थिवाग्निम् । **इन्द्रम्** । विद्युतं सूर्यः वा । **हवामहे** । आह्वयामः । **मित्रावरुणा** । अ० १ । २०।३ । प्राणापानौ । **अश्विना** । अ० २ । २९। ६। अश्वो व्याप्तः—इनिः । कार्येषु व्याप्तिमन्तौ मातापितरौ । **भगम्** । अ० १ । १४ । १ । भगो धनम्, ततो अर्श-आद्यच् । ऐश्वर्यवन्तम् । **पूषणम्** । अ० १ । ६ । १ । सर्वपोषकम् । **ब्रह्मणः** । अ० १। ८ । ४ । वेदस्य । ब्रह्माण्डस्य । अन्नस्य—निघ० २ । ७ । धनस्य-निघ० २ । १० । **पतिम्** । रक्षकम् । स्वामिनम् । **सोमम्** । अ० १ । ६ । २ । षु प्रसवैश्वर्ययोः, यद्वा, षुञ् अभिषवे-मन् । सोमः सूर्यः प्रसवनात् ..... सोम आत्माप्येतस्मादेवेन्द्रियाणां जनितेत्यर्थः—निरु० १४ । १२ । ऐश्वर्यवन्तम् । अभिषुतं मथितम् । आत्मानम् । अमृतम् । **उत** । अपि च । **रुद्रम्** । अ० २ । २७ । ६ । रुत्+रः दुःखनाशकं ज्ञानदातारं वाचार्यम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता। आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥

प्रातःऽजितम्। भगम्। उग्रम्। हवामहे। वयम्। पुत्रम्। अदितेः। यः। विऽधर्ता। आध्रः। चित्। यम्। मन्यमानः। तुरः। चित्। राजा। चित्। यम्। भगम्। भक्षि। इति। आह ॥ २ ॥

भाषार्थः—(वयम्) हम (प्रातर्जितम्) प्रातः काल में [अन्धकारादि को] जीतने वाले (भगम्) सूर्य [समान] (उग्रम्) तेजस्वी (पुत्रम्) पवित्र, अथवा बहुविधिसे रक्षा करने वाले, अथवा नरक से बचाने वाले [परमेश्वर] को (हवामहे) बुलाते हैं, (यः) जो [परमेश्वर] (अदितेः) प्रकृति वा भूमि का (विधर्त्ता) धारण करनेवाला और (यम्) जिस [परमेश्वर] को (मन्यमानः) पूजता हुआ (आध्रः) सब प्रकार धारण योग्य कंगाल, (चित्) भी, और (तुरः) शीघ्रकारी बलवान् (चित्) भी, और (राजा) ऐश्वर्यवान् राजा

२—प्रातर्जितम्। सत्सूद्विष० (पा० ३।२।६१) इति प्रातर्+जि जये-क्विप्, तुक्। प्रातःकाले जयशीलम् अन्धकारादिकस्य। **भगम्।** सूर्यं यथा। **उग्रम्।** तेजस्विनम् **हवामहे।** म० १। **पुत्रम्।** अ० १।११।५। पूङ् पवने क्त्रः। यद्वा। पुरु यद्वा, पुत्+त्रैङ् पालने-डः। पवित्रं बहुत्रातारं पुतो नरकात् त्रातारं वा परमेश्वरम्। **अदितेः।** अ०२।२८।४। प्रकृतेः पृथिव्या वा। **विधर्ता।** विविधं धारकः पोषकः। **आध्रः।** आङ्+धृङ्-कः। आधारयितव्यो दरिद्रः। **चित्।** अपि च। **यम्।** परमेश्वरम्। **मन्यमानः।** मन्यतेः, अर्चतिकर्मा-निघ० ३। १४। अर्चन्। पूजयन्। स्तुवन्। **तुरः।** तुर वेगे, इगुपधलक्षणः कः। त्वरमाणः बलवान्। **राजा।** अ०१।१०।२। ऐश्वर्यवान् पुरुषः। **यम्।** या प्रापणे यज देवपूजने, वा, यम परिवेषणे-डः यशः। कीर्तिम्। **भगम्।** धनम्, निघ० २। १०। **भक्षि।** भज सेवायाम्, आत्मनेपदस्य आशीर्लिङि उत्तमैकवचने छान्दसं रूपम्। अहं भक्षीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चित्) भी (इति) इस प्रकार (आह) कहता है, "(यम्) यश और (भगम्) धन को (भक्षि=अहं भक्षीय) मैं सेवूं" ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे सूर्य प्रातः काल अन्धकार, आलस्यादि मिटाकर जीवों में नयी शक्ति देता है, ऐसे ही सब छोटे बड़े जीव और पृथिवी आदि लोक भी परमात्मा की शक्ति से अपनी २ शक्ति बढ़ाते हैं, उसी का धन्यवाद हम सब पिता पुत्रादि मिलकर गावें ॥ २ ॥

'हवामहे' के स्थान पर ऋग्वेद और यजुर्वेद में 'हुवेम' पद है ॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥

भग । प्रऽनेतः । भग । सत्यऽराधः । भग । इमाम् । धियम् । उत् । अव । ददत् । नः । भग । प्र । नः । जनय । गोभिः । अश्वैः । भग । प्र । नृऽभिः । नृऽवन्तः । स्याम ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(भग) हे भगवान् ! (प्रणेतः) हे बड़े नेता ! (भग) हे सेवनीय ! (सत्यराधः) हे सत्य धनी ! (भग) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (इमाम्) इस [वेदोक्त] (धियम्) बुद्धि को (ददत्) देता हुआ तू (नः) हमारी (उत्) उत्तमता से (अव) रक्षा कर । (भग) हे ज्योति.स्वरूप ! (नः) हम को (गोभिः) गौओं से और (अश्वैः) घोड़ों से (प्र जनय) अच्छे प्रकार

सेवेय । **इति** । अनेन प्रकारेण । **आह** । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि—लट् । ब्रवीति । प्रार्थयते, आध्रादीनां प्रत्येकम् ॥

३—भग । भज सेवायाम्–घञ् । हे विभाजक । सेवनीय । ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानस्वरूप । प्रकाशस्वरूप । शिव । आदिकारण । **प्रणेतः** । णीञ् प्रापणे तृच् । हे प्रकृष्टनायक । **सत्यराधः** । राध संसिद्धौ—असुन् । राध इति धननाम राध्नुवन्त्यनेन—निरु० ४ । ४ । सत्यानि अनश्वराणि राधांसि धनानि यस्य स सत्यराधाः । तत्सम्बुद्धौ । इमाम् । धियम् । प्रज्ञाम् । **उत् अव** । उत्तमतया रक्ष, सफलां कुरु । **ददत्** । डु दाने—शतृः । प्रयच्छन् । **नः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ा। (भग) हे शिव (नृभिः) नेता पुरुषों के साथ हम (नृवन्तः) नेता पुरुषों वाले होकर (प्र स्याम) समर्थ होवें ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर की प्रार्थना और आज्ञा पालन करते और नेता वा वीर पुरुषों को अपनाते हैं, वे संसार में उन्नति करके यशस्वी और ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥ ३ ॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥

उत । इदानीम् । भगऽवन्तः । स्याम । उत । प्रऽपित्वे । उत । मध्ये । अह्नाम् । उत । उत्ऽइतौ । मघऽवन् । सूर्यस्य । वयम् । देवानाम् । सुऽमतौ । स्याम ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(उत) और (इदानीम्) इस समय (उत उत) और भी (अह्नाम्) दिनों के (मध्ये) मध्य (प्रपित्वे) पाये हुये [ऐश्वर्य] में हम (भगवन्तः) बड़े ऐश्वर्य वाले (स्याम) होवें। (उत) और (मघवन्) हे

अस्मान्। **प्र जनय** । प्रादुर्भावय। प्रवर्धय। **गोभिः** । धेनुभिः। **अश्वैः** । अ० १। १६। ४। तुरङ्गैः। **नृभिः** । **नयतेर्डिच्च** (उ० २। १००) इति णीञ् प्रापणे—ऋप्रत्ययः, डित्त्वाट् टिलोपः। नेतृभिः। वीरैः। **नृवन्तः** । प्रशस्तशूरोपेताः। **प्र स्याम** । प्रभवेम ॥

४ - **उत** । समुच्चये। **इदानीम्** । इदम्-दानीम्। **इदम इश्** (पा० ५। ३। ३) इति इदम इश्आदेशः **दानीं च** (पा० ५। ३। १८) इति वर्तमाने दानीम् प्रत्ययः। अस्मिन् काले। **भगवन्तः** । सकलैश्वर्ययुक्ताः। **स्याम** । भवेम। **उत, उत** । **नित्यवीप्सयोः** (पा० ८। १। ४) इति द्विर्वचनम्। अपि च। **प्रपित्वे अन्येऽपि दृश्यन्ते** (उ० ४। १०५) प्र+आप्लृ व्याप्तौ-इत्वन्, आकारलोपः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाधनी ईश्वर ! (सूर्यस्य) सूर्य के (उदितौ) उदय में (देवानाम्) विद्वानों की (सुमतौ) सुमति में (वयम्) हम (स्याम) रहें ॥ ४ ॥

भावार्थः—मन्त्र ३ के अनुसार पाये हुये ऐश्वर्य को हम सब और आगे भी बढ़ावें, और जैसे सूर्य के उदय में प्रकाश बढ़ा जाता है वैसे ही देवताओं के अनुकरण से हम अपनी धार्मिक बुद्धि का अभ्युदय करें ॥ ४ ॥

'उदितौ' के स्थान पर ऋग् और यजुर्वेद में 'उदिता' है ।

भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुरएता भवेह ॥५॥

भगः । एव । भगऽवान् । अस्तु । देवः । तेन । वयम् । भगऽवन्तः । स्याम । तम् । त्वा । भग । सर्वः । इत् । जोहवीमि । सः । नः । भग । पुरःऽएता । भव । इह ॥ ५ ॥

भाषार्थः—"(भगः) सेवनीय (देवः) विद्वान् विजयी पुरुष (एव) ही (भगवान्) भगवान् [भाग्यवान्, बड़े ऐश्वर्य वाला] (अस्तु) होवे" (तेन) इसी [कारण] से (वयम्) हम (भगवन्तः) भाग्यवान् (स्याम) होवें । (तम् त्वा) उस तुझ को, (भग) हे ईश्वर ! (सर्वः = सर्वः अहम्) मैं सब

प्रपित्वेऽभीक इत्यासन्नस्य प्रपित्वे प्राप्ते—निरु० ३ । २० । प्राप्ते सौभाग्ये । **अह्नाम् मध्ये** । दिनानां मध्ये । भविष्यत्काले । । **उदितौ** । उद् + इण् गतौ—क्तिन् । उदये । उद्गमने । **मघवन्** । अ० २ । ५ । ७ । महि वृद्धौ, दाने च—घञर्थे कः, मतुप् । मघमिति धननामधेयं महंतेर्दानकर्मणः—निरु० १ । ७ । हे प्रशस्त-धनवन् । **सूर्यस्य** । आदित्यस्य । **देवानाम्** । आप्तविदुषाम् । **सुमतौ** । कल्याण्यां बुद्धौ ॥

५—**भग** । सेवनीयः श्रेष्ठः पुरुषः । **भगवान्** । ऐश्वर्यवान् । **देवः** । विद्वान् । विजयी । **तेन** । तेन कारणेन । **तम्** । तादृशम् । **सर्वः** । सर्वा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इत्) ही (जोहवीमि) बार बार पुकारता हूँ। (सः=सः त्वम्) सो तू, (भग) हे शिव ! (इह) यहाँ पर (नः) हमारा (पुरएता) अगुआ (भव) हो ॥५॥

भावार्थः—"सुकर्मी पुरुषार्थी पुरुष ही भाग्यवान् होवें" यह ईश्वर आज्ञा है, इस से सब लोग धार्मिक पुरुषार्थी होकर भाग्यवान् बनें। ईश्वर ही अपने ध्यानी आज्ञापालकों का मार्गदर्शक होता है ॥ ५ ॥

'देवः, जोहवीमि' के स्थान पर ऋग् और यजुर्वेद में 'देवा, जोहवीति' पद हैं ॥

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६॥

सम्। अध्वराय। उषसः। नमन्त। दधिक्रावाऽइव। शुचये। पदाय। अर्वाचीनम्। वसुऽविदम्। भगम्। मे। रथम्ऽइव। अश्वाः। वाजिनः। आ। वहन्तु ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(उषसः) उषायें [प्रभात बेलायें] (अध्वराय मार्ग देने के लिये, अथवा हिंसारहित यज्ञ के लिये (सम् नमन्त=०—न्ते) झुकती हैं, (दधिक्रावा इव) जैसे चढ़ाकर चलने वाला, वा हींसने वाला घोड़ा (शुचये)

त्मना सहितोऽहम्। **जोहवीमि**। अ० २। १२। ३। पुनः पुनराह्वयामि। सः। स त्वम्। **पुरएता**। अ० ३। १५। १। अग्रगामी। अन्यद् गतम् ॥

६—**अध्वराय**। अ०१।४।१। अध्वन्+रा—कः। यद्वा, न+ध्वृ हूर्छने—अच्। अध्वर इति यज्ञ नाम ध्वरतिर्हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः—निरु० १। ८। मार्गदानाय। अहिंसामयाय व्यवहाराय यज्ञाय। **उषसः**। प्रभाताः। **सम्नमन्त**। छान्दसो लट्। संनमन्ते। प्रह्वीभवन्ति। **दधिक्रावा**। **आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च** (पा० ३। २। १७१) इति डुधाञ् धारणपोषणयोः—किः, स च लिड्वत्। इति दधिः। **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** (पा० ३। २। ७५) इति दधि+क्रमु, पादविक्षेपे क्रदि आह्वाने, क्रन्द सातत्ये वा-वनिप्। **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** (पा०६।४।४१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध [अचूक] (पदाय) पद रखने के लिये। वाजिनः) अन्नवान् वा बलवान् वा ज्ञानवान् (अर्वाचीनम्) नवीन २ और (वसुविदम्) धन प्राप्त कराने वाले (भगम्) ऐश्वर्य को (मे) मेरे लिये (आ वहन्तु) लावें (अश्वाः इव) जैसे घोड़े (रथम्) रथ को [लाते हैं] ॥ ६ ॥

भावार्थः—जैसे उषा देवी अन्धकार हटाकर मार्ग खोलती चलती है अथवा, जैसे बली और वेगवान् घोड़ा अपने अश्ववार वा रथको मार्ग चलकर ठिकाने पर शीघ्र पहुंचाता है, इसी प्रकार पुरुषार्थी पुरुष बड़े बड़े महात्माओं के सत्सङ्ग और अनुकरण से अपना ऐश्वर्य बढ़ाते रहें ॥ ६ ॥

'मे' के स्थान पर ऋग् और यजुर्वेद में 'नः' पद है ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

अश्वऽवतीः । गोऽमतीः । नः । उषसः । वीरऽवतीः । सदम् । उच्छन्तु । भद्राः ।
घृतम् । दुहानाः । विश्वतः । प्रऽपीताः । यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः ।
सदा । नः ॥ ७ ॥

इत्यात्त्वम् । दधिक्रावा=अश्वः—निघ० १ । १४ । दधत् क्रामतीति वा दधत् क्रन्दतीति वा दधदाकारी भवतीति वा दधिक्रावा । दधिक्राः । अश्वः । **शुचये** । शुद्धाय । प्रमादशून्याय । **पदाय** । गमनाय । **अर्वाचीनम्** । अर्वाच्[1]—खः । इदानीन्तनम् । नूतनम् । **वसुविदम्** । **इगुपध०** (पा० ३।१।१३५) इति वसु+विदॢ लाभे-कः । धनानां लम्भकं प्रापकम् । **भगम्** । ऐश्वर्यम् । **मे** । मह्यम् । **रथमिव** । **हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्** (उ० २ । २) इति रमु क्रीडायाम्-क्थन् । यानं यथा । **अश्वाः** । घोटाः । **वाजिनः** । वज गतौ-घञ् । वाजः=अन्नम्, निघ० २ । ७ । बलम्, निघ० २ । ९ । **अत इनिठनौ** (पा० ५ । २ । ११५) इति इनिः । अन्नवन्तः । बलवन्तः । ज्ञानवन्तः । **आ वहन्तु** । आगमयन्तु ॥

---

१. अवरे काले देशे वा अञ्चतीति अर्वाच् । पृषोदरादिनि० (पा० ६ । ३ । १०९) से यहाँ अवर को अर्व आदेश हुआ है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अश्ववतीः = ०-त्यः) उत्तम २ घोड़ों वाली, (गोमतीः) उत्तम २ गौओं वाली, (वीरवतीः) बहुत वीर पुरुषों वाली और (भद्राः) मङ्गल करने वाली (उषासः = उषसः) उषायें (नः सदम्) हमारे समाज पर (उच्छन्तु) चमकती रहें। (घृतम्) घृत [सार पदार्थ] को (दुहानाः) दुहते हुए और (विश्वतः) सब प्रकार से (प्रपीताः) भरे हुये (यूयम्) तुम [वीर पुरुषो !] (स्वस्तिभिः) अनेक सुखों से (सदा) सदा (नः) हमारी (पात) रक्षा करो ॥ ७ ॥

भावार्थः— सब स्त्री पुरुष प्रयत्न करके अपने घरों को घोड़ों, गौओं और वीर पुरुषों से भरे रक्खें, और सब मिलकर तत्त्व ग्रहण करके सदा परस्पर रक्षा करें ॥ ७ ॥

'यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः' यह पाद प्रायः ऋग्वेद मण्डल ७ के सब सूक्तों के अन्त में है ॥

सूक्तम् १७ ॥

१—९ ॥ कृषीवला देवताः । १ गायत्री; २, ५, ९ त्रिष्टुप् ३ पङ्क्तिः, ४, ६, ८ अनुष्टुप्; ७ पुर उष्णिक्छन्दः ॥

कृषिविद्योपदेशः—खेती की विद्या का उपदेश ॥

---

७ **अश्ववतीः** । प्रशस्ताश्ववत्यः । **गोमतीः** । प्रशस्तगोमत्यः । **नः** । अस्माकम् । **उषासः** । उषसः । प्रभाताः । **वीरवतीः** । बहुवीरवत्यः । **सदम्** । षदॢ विशरणगत्यावसादनेषु-अच् । **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** (पा० २।३।५) इति द्वितीया । समाजं प्रति । **उच्छन्तु** । उच्छी विवासे, अकर्मकः । अत्र दीप्तौ । समाप्ता व्युष्टा प्रदीप्ता भवन्तु । **भद्राः** । मङ्गलकारिण्यः । **घृतम्** । सारपदार्थम् । **दुहानाः** । दुह प्रपूरणे-शानच् । प्रपूरयन्तः । **विश्वतः** । सर्वतः । **प्रपीताः** । **प्यायः पी** (पा० ६ । १ । २८) इति ओप्यायी वृद्धौ-क्तः, पी आदेशः । प्रवृद्धाः । **यूयम्** । वीरपुरुषाः । **पात** । रक्षत । **स्वस्तिभिः** । अनेकसुखैः । **सदा** । सर्वस्मिन् काले । **नः** । अस्मान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥ १ ॥

सीरा । युञ्जन्ति । कवयः । युगा । वि । तन्वते । पृथक् ।
धीराः । देवेषु । सुम्नऽयौ ॥ १ ॥

भाषार्थः—(धीराः) धीर (कवयः) बुद्धिमान् [किसान] लोग (देवेषु) व्यवहारी पुरुषों पर (सुम्नयौ) सुख पाने [की आशा] में (सीरा=सीराणि) हलों को (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं, और (युगा=युगानि) जुओं को (पृथक्) अलग अलग करके [दोनों ओर] (वि तन्वते) फैलाते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे किसान लोग खेती करके अन्य पुरुषों को सुख पहुंचाते और आप सुखी रहते हैं, इसी प्रकार सब मनुष्यों को परस्पर उपकारी होकर सुख भोगना चाहिये ॥ १ ॥

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् ।

१—**सीरा** । **शुसिचिमीनां दीर्घश्च** (उ० २ । २५) इति षिन् बन्धने—क्रन् । दीर्घश्च । सीराणि लाङ्गलानि । **युञ्जन्ति** । योजयन्ति कर्षणार्थम् । **कवयः** । मेधाविन—निघ० ३ । १५ । कुशलाः कृषीवलाः । **युगा** । **उञ्छादीनां च** (पा० ६ । १ । १६०) इति युज संयमने, युतौ—घञ् । अगुणत्वं निपातनात् । युगानि । रथहलादेरङ्गभेदान् । **वि तन्वते** । प्रसारयन्ति । **पृथक्** । **प्रथेः कित् सम्प्रसारणं च** (उ० १ । १३७) इति प्रथ ख्यातौ अजिः । भिन्ने भिन्ने स्कन्धदेशे । **धीराः** । अ० २ । ३५ । ३ । ध्यानवन्तः । **देवेषु** । विद्वत्सु । व्यवहारिषु पुरुषेषु । **सुम्नयौ** । **रास्नासास्ना०** (उ० ३ । १५) इति सु+म्ना अभ्यासे, मा माने वा—नप्रत्ययः । निपातनात् सिद्धिः । सुम्नं सुखम्—निघ० ३ । ६ । **मृगय्वादयश्च** (उ० १ । ३७) इति सुम्न+या प्रापणे भावे कुः । सुखस्य गतौ प्राप्तौ प्रापणे वा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन् ॥ २ ॥

युनक्त । सीरा । वि । युगा । तनोत । कृते । योनौ । वपत । इह । बीजम् । विऽराजः । श्नुष्टिः । सऽभराः । असत् । नः । नेदीयः । इत् । सृण्यः । पक्वम् । आ । यवन् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(विराजः) हे शोभायमान [किसानो !] (सीरा = सीराणि) हलों को (युनक्त) जोड़ो, (युगा = युगानि) जूओं को (वितनोत) फैलाओ, और (कृते) बने हुए (योनौ) खेत में (इह) यहां पर (बीजम्) बीज (वपत) बोओ । (श्नुष्टिः) [तुम्हारी] अन्न की उपज (नः) हमारे लिये (सभराः) भरी पूरी (असत्) होवे, (सृण्यः) हंसुये वा दरांत (इत्) भी (पक्वम्) पके अन्न को (नेदीयः) अधिक निकट (आ यवन्) लावें ॥ २ ॥

२—**युनक्त** । योजयत । **सीरा** । म० १ । **वि तनोत** । विस्तारयत । **कृते** । सम्पादिते । कृष्टे । **योनौ** । क्षेत्रे । **वपत** । निक्षपत । **बीजम्** । **उपसर्गे च संज्ञायाम्** (पा० ३ । २ । ९९) इति वि + जन जनने–डः, उपसर्गस्य दीर्घः । यद्वा, वी प्रजनकान्त्यसनखादनेषु–क्विप् जनधातोः डः इति शब्दकल्पद्रुमे । उत्पत्तिमूलम् । अपत्यम्–निघ० २ । २ । **इह** । अत्र । **विराज** । वि + राजृ दीप्तौ–क्विप् । हे विराजमानाः शोभायमानाः कृषीवलाः । **श्नुष्टिः** । ष्णुसु अदने, आदाने च–क्तिन् । छान्दसं रूपम् । अन्नोत्पत्तिः । उपलब्धिः । **सभराः** । सह + भृञ्–असुन् । सभरा भरणेन सहिता । **नेदीयः** । भवेत् । **नः** । अस्मभ्यम् । **असत्** । अन्तिक–ईयसुन् । **अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ** (पा० ५ । ३ । ६३) इति नेदादेशः । समीपतरम् । **इत्** । एव । **सृण्य** । **सृवृषिभ्यां कित्** (उ० ४ । ४९) इति सृ गतौ–निः, ङीष् । अङ्कुशाः । लवणसाधनशस्त्राणि । **पक्वम्** । पच्–क्तः । **पचो वः** (पा० ८ । २ । ५२) इति तस्य वः । प्राप्तपाकम् अन्नम् । **आ यवन्** । यु मिश्रणामिश्रणयोः—लेट् । आयुवन्तु । प्रापयन्तु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—चतुर किसान यथाविधि खेत जोत कर उत्तम बीज आदि साधनों से उत्तम अन्न आदि पाते हैं, इसी सिद्धान्त पर विद्वान् बलवान् स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य सेवन से यथावत् क्रिया के साथ बलवान् बुद्धिमान् और आयुष्मान् सन्तान उत्पन्न करते हैं देखो—श्रीमद्दयानन्दकृत संस्कारविधि गर्भाधान प्रकरण ॥ २ ॥

यह मन्त्र कुछ पद भेद से ऋ० १०। १०१। ३ और य० १२। ६८ में है ॥

लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु। उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम् ॥ ३ ॥

लाङ्गलम्। पवीरऽवत्। सुऽशीमम्। सोमसत्ऽसरु। उत्। इत्। वपतु। गाम्। अविम्। प्रस्थाऽवत्। रथऽवाहनम्। पीवरीम्। च। प्रऽफर्व्यम् ॥३॥

भाषार्थः—(पवीरवत्) अच्छे फाले वाला, (सुशीमम्) बहुत सुख देने वाला, और (सोमसत्सरु=सोमसत्+सृ, यद्वा, स–ऊम, [1]उम वा, +सत्सरु) ऐश्वर्य युक्त व अमृत युक्त मूठ वाला, अथवा रस्सी वाला और मूठ वाला (लाङ्गलम्) हल (इत्) ही (अविम्) रक्षा करने वाली, और (पीवरीम्) वृद्धि वाली (गाम्) भूमि को (च) और (प्रस्थावत्) प्रस्थान वा चढ़ाई के

३—**लाङ्गलम्**। अ० २। ८। ४। हलम्। **पवीरवत्**। कृशपकटिपटि० (उ० ४। ३०) इति पूङ् पवने–ईरन्। मतुप्। पवीर एव पविः, वज्र लाङ्गले प्रोतं लोहमयं शल्यम्। फालयुक्तम्। **सुशीमम्**। इषियुधीन्धि० (उ० १। १४५) इति सु+शीङ् स्वप्ने–मक्। शेवम्=सुखम्–निघ० ३। ६। सुशेवम्। बहु सुखकरम्। **सोमसत्सरु**। सोमसत्+सरु। सोमे ऐश्वर्ये अमृते वा सीदतीति सोमसत्। षदॢ गतौ–क्विप्। सरतीति सरुः। सृ गतौ–उन्। खड्गादिमुष्टिः। ऐश्वर्यवन्मुष्टियुक्तम्। अमृतमयमुष्टियुक्तम्। यद्वा। स–ऊम, [1]उम वा+स–त्सरु। **अविसिवि०** (उ० १। १४४) इति अव रक्षणे–मन्। ऊम रक्षासाधनम्। रज्ज्वादिकं तेन सह सोमम्। **भृमृशीङ्तृच-**

---

१. दशपादी उणादि (द्र० दश० उ० ७। ३) में इस सूत्र का उदाहरण 'उमः' ह्रस्वान्त है जो कि बाहुलक से 'ऊठ्' को ह्रस्व होकर बनेगा, तथा कुछ वृत्तिकार 'ऊम' दीर्घान्त ही पढ़ते हैं, अतः यहाँ दोनों ही दर्शाये हैं ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य और (प्रफर्व्यम्) शीघ्र गति वाले (रथवाहनम्) रथयान [गाड़ी] को (उत्) उत्तमता से (वपतु) उत्पन्न करे ॥ ३ ॥

भावार्थः—उत्तम साधनों से खेती में अधिक धान्य उत्पन्न होता है, उस से राज्य की और अश्व, बैल आदि की वृद्धि से राजा और प्रजा सुख भोगते हैं ॥ ३ ॥

यह मन्त्र कुछ शब्द भेद से यजुर्वेद १२ । ७१ में है ॥

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ४ ॥

इन्द्रः । सीताम् । नि । गृह्णातु । ताम् । पूषा । अभि । रक्षतु ।
सा । नः । पयस्वती । दुहाम् । उत्तराम्ऽउत्तराम् । समाम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) भूमि जोतने वाला (सीताम्) हल की रेखा [जुती धरती] को (नि) नीचे (गृह्णातु) दबावे, (पूषा) पोषण करने वाला [किसान] (ताम्) उस [जुती धरती] की (अभिरक्षतु) सब ओर से रखवाली करे । (सा)

रित्सरि० (उ० १।७) इति त्सर छद्मगतौ, कौटिल्ये-उः, त्सरुः, मुष्टिः । तेन सह सत्सरु । सोमं च सत्सरु च सोमसत्सरु[1] । रज्ज्वादिकेन मुष्टिना च सहितम् । **उत्** । उत्तमतया । **इत** । एव । **वपतु** । डुवप बीजसन्ताने, उत्पादयतु । **गाम्** । भूमिम् । **अविम्** । **सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४ । ११८) इति अव रक्षादिषु-इन् । रक्षिकाम् । **प्रस्थावत्** । प्रस्थानस्य, विजिगीषोः प्रयाणस्य योग्यम् । **रथवाहनम्** । वह णिच्-ल्युट् । रथयानम् । **पीवरीम्** । **ध्याप्योः सम्प्रसारणं च** (उ०४।११५) इति प्यैङ् वृद्धौ—क्वनिप् । **वनो र च** (पा० ४ । १ । ७) इति ङीब्रेफौ । वृद्धिशालाम् । **प्रफर्व्यम्** । फर्व गतौ—अच् । **तस्मै हितम्** (पा० ५ । १ । ५) इति यत् । शीघ्रगमनयोग्यम् । फर्वतिर्गतिकर्मा—इति महीधरः, य० १२ । ७१ । प्रफर्व्यम्, प्रफर्वितुं गमयितुं योग्यम् इति—तत्रैव दयानन्दभाष्ये ॥

४—इन्द्रः । ऋज्रेन्द्राग्रवज्र० (उ० २।२८) इति इरा+दृ विदारणे रक् । इन्द्रः, इरां दृणातीति वा-निरु०१०।८ । इराया भूमेर्विदारकः । कर्षकः । **सीताम्** ।

---

१. सोमसत् + उपपद रहते सृ से 'उ' करने पर 'सोमसत्ऽसरुः' यह ऐसा उपरि प्रदर्शित पदपाठ ठीक है, किन्तु त्सर धातु से उ करने पर 'सोमऽसत्सरुः' ऐसा पदपाठ होगा, सोमसत्ऽसरुः ऐसा नहीं, जो कि विचारणीय है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह (पयस्वती) पानी से भरी [जुती धरती] (नः) हमको (उत्तराम्—उत्तराम्) उत्तम उत्तम (समाम्) अनुकूल क्रिया से (दुहाम्) भरती रहे ॥ ४ ॥

भावार्थः—किसान बीज बोने के पीछे जुती धरती को पटेले से चौरस करके रक्षा करे और यथा समय पानी देता रहे जिससे खेतों में ठीक ठीक उपज होवे ॥ ४ ॥

यह मंत्र कुछ भेद से ऋ० ४ । ५७ । ७ में है और इसका उत्तरार्ध अ० ३ । १० । १ । में आ चुका है ॥ ४ ॥

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनुयन्तु वाहान्। शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥ ५ ॥

शुनम् । सुऽफालाः । वि । तुदन्तु । भूमिम् । शुनम् । कीनाशाः । अनु । यन्तु । वाहान् । शुनासीरा । हविषा । तोशमाना । सुऽपिप्पलाः । ओषधीः । कर्तम् । अस्मै ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(सुफालाः) सुन्दर फाले (शुनम्) सुख से (भूमिम्) भूमि को (वि तुदन्तु) जोतें । (कीनाशाः) क्लेश सहने वाले किसान (वाहान्अनु) बैलादि वाहनों के पीछे पीछे (शुनम्) सुख से (यन्तु) चलें । (हविषा) जल से (तोशमाना = तोषमानौ) सन्तुष्ट करने वाले (शुनासीरा = ० रौ) हे पवन

दुतनिभ्यां दीर्घश्च (उ० ३।९०) इति बाहुलकात्षित्र् बन्धने-क्तः[1] । क्षेत्रे हलेन कृता रेखा । कर्षितभूमिरित्यर्थः । **नि** । नीचैः । **गृह्णातु** । सम्पादयतु । **पूषा** । पोषकः कृषीवलः । **अभि** । सर्वतः । **रक्षतु** । पालयतु । **पयस्वती** । उदकवती सती । **नः** । अस्मान् । **दुहाम्** । द्विकर्मकः । दुग्धाम् । प्रपूरयतु । **उत्तराम्, उत्तराम्** । अतिशयेनोत्कृष्टाम् । **समाम्** । अ० ३ । १० । १ । समक्रियाम् । अनुकूलक्रियाम् ॥

५—**शुनम्** । सुखेन । **सुफालाः** । फल निष्पत्तौ–घञ् । फल्यते निष्पाद्यते कृषिरनेन । शोभनाः फला लाङ्गलस्थलौहभेदाः । **वि तुदन्तु** । तुद व्यथने । वि-

---

१. पृषोदरादीनि० (पा० ६ । ३ । १०९) से 'सि' को दीर्घ हुआ है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सूर्य तुम दोनों ! (अस्मै) इस पुरुष के लिए (सुपिप्पलाः) सुन्दर फल वाली (ओषधीः) जौ, चावल आदि औषधियां (कर्तम्) करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—चतुर किसान लोग उत्तम कृषिशस्त्रों, उत्तम बैल आदिकों, और पानी आदि की सुधि रखने से उत्तम अन्नादि पदार्थ उत्पन्न करते हैं, इसी प्रकार विद्वान् लोग विद्याबल से अनेक शिल्पों का आविष्कार करके संसार को सुख पहुँचाते और आप सुख भोगते हैं ॥ ५ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० ४ । ५७ । ८ और य० १२ । ६९ में है ॥

यजुर्वेद अ० २२ म० २२ में वर्णन है—

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् ॥

कामना के अनुसार ही हमारे लिये मेह बरसे, हमारे लिये उत्तम फलवाली जौ आदि ओषधियाँ पकें ॥

दारयन्तु । विकृषन्तु । **भूमिम्** । पृथिवीम् । **कीनाशाः** । **क्लिशेरीच्चोपधायाः कन् लोपश्चलो नाम् च** (उ० ५ । ५६) इति क्लिशू विबाधने, बधे वा—कन्, उपधाया ईत्वं ललोपो नामागमश्च । क्लेशसहनशीलाः । कर्षकाः । **अनु** । अनुसृत्य । **यन्तु** । गच्छन्तु । **वाहान्** । वहनशीलान् बलीवर्दादीन् । **शुनासीरा** । **इगुपधज्ञा०** (पा० ३ । १ । १३५) इति शुन गतौ—कः । **कृशपकटिपटि०** (उ० ४ । ३०) इति सृ गतौ—ईरन्, टिलोपः । शुनश्च सीरश्च । **देवताद्वन्द्वे च** (पा० ६ । ३ । २६) इति पूर्वपददीर्घः । शुनासीरौ शुनो वायुः शु एत्यन्तरिक्षे, सीर आदित्यः सरणात् । निरु० ९ । ४० । हे वाय्वादित्यौ । **हविषा** । अ० १ । ४ । ३ । उदकेन—निघ० १ । १२ । **तोशमाना** । षस्य शः । तोषमाणौ । सन्तोषकौ । **सुपिप्पलाः** । **कलस्तृपश्च** (उ० १ । १०४) इति पॄ पालनपूरणयोः—कलप्रत्ययः । पृषोदरादित्वात् साधुः । पिप्पलम्, उदकम्—निघ० १ । १२ । पिप्पलं पालकं संसारतः उद्धारकं ज्ञानम् इति सायणः—ऋग्वेदभाष्ये म० १ । १६४ । २२ । शोभनफलोपेताः । **ओषधीः** । अ० १ । २३ । १ । व्रीहियवाद्याः । **कर्तम्** । युवां कुरुतम् । **अस्मै** । उद्योगिने पुरुषाय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥ ६ ॥

शुनम् । वाहाः । शुनम् । नरः । शुनम् । कृषतु । लाङ्गलम् ।
शुनम् । वरत्राः । बध्यन्ताम् । शुनम् । अष्ट्राम् । उत् । इङ्गय ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(वाहाः) बैल आदि पशु (शुनम्) सुख से रहें । (नरः) हांकने वाले किसान (शुनम्) सुख से रहें । (लाङ्गलम्) हल (शुनम्) सुख से (कृषतु) जोते । (वरत्राः) हल की रस्सियां (शुनम्) सुख से (बध्यन्ताम्) बांधी जावें । (अष्ट्राम्) पैना [आर वा कांटे] को (शुनम्) सुख से (उत् इङ्गय) ऊपर चला ॥ ६ ॥

भावार्थः—किसान लोग सब सामग्री उत्तम रीति से बनाकर रखने से अपने सब काम सुख से चलावें ॥ ६ ॥

मन्त्र ६-८ कुछ भेद से ऋ० ४ । ५७ । ४—६ में है ।

शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम् ।
यद् दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥ ७ ॥

शुनासीरा । इह । स्म । मे । जुषेथाम् । यत् । दिवि । चक्रथुः । पयः ।
तेन । इमाम् । उप । सिञ्चतम् ॥ ७ ॥

६—**शुनम्** । सुखेन । **वाहाः** । वृषभादयः । **नरः** । अ० ३ । १६ । ३ । नयतीति ना । नेतारः । कर्षकाः । **कृषतु** । विलिखतु । **लाङ्गलम्** । हलम् । **वरत्राः** । **वृञश्चित्** (उ० ३ । १०७) इति वृञ् वरणे-अत्रन् । टाप् । बन्धन-रज्जवः । **बध्यन्ताम्** । बद्धा भवन्तु । **अष्ट्राम्** । **अमिचिमिशसिभ्यः क्तः** (उ० ४ । १६४) इति अशूङ् व्याप्तौ-क्तृ, टाप् । प्रतोदम् । ताडनीयम् । **उत् इङ्गय** । उपरि गमय । प्रेरय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(शुनासीरा=०-रौ) हे वायु और सूर्य तुम दोनों ! (इह स्म) यहां पर ही (मे) मेरी [विनय] (जुषेथाम्) स्वीकार करो, (यत् पयः) जो जल (दिवि) आकाश में (चक्रथुः) तुम दोनों ने बनाया है, (तेन) उससे (इमाम्) इस [भूमि] को (उप सिञ्चतम्) सींचते रहो ॥ ७ ॥

भावार्थः—पवन और सूर्य के द्वारा पृथिवी का जल आकाश में जाकर फिर पृथिवी पर बरसता है, वह खेती के लिये बहुत उपयोगी होता है ॥ ७ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से निरु० ९ । ४१ में भी है ।

सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव ।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥ ८ ॥

सीते । वन्दामहे । त्वा । अर्वाची । सुऽभगे । भव । यथा । नः । सुऽमनाः । असः । यथा । नः । सुऽफला । भुवः ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(सीते) हे जुती धरती ! [लक्ष्मी, खेती] (त्वा) तेरी (वन्दामहे) हम वन्दना करते हैं, (सुभगे) हे सौभाग्यवती [बड़े ऐश्वर्य वाली] (अर्वाची) हमारे सन्मुख (भव) रह, (यथा) जिससे तू (नः) हमारे लिये

७—शुनासीरा । म० ५ । हे पवनादित्यौ । **इह स्म** । अत्रैव । **जुषेथाम्** । युवां सेवेथाम् । स्वीकुरुतम् । **दिवि** । आकाशे । **चक्रथुः** । डुकृञ् करणे, लिट् । युवां कृतवन्तौ । **पयः** । उदकम्-निघ० १ । १२ । **इमाम्** । दृश्यमानां भूमिम् । **उप सिञ्चतम्** । व्याप्य आर्द्रीकुरुतम् ॥

८—सीते । म० ४ । लाङ्गलपद्धतिरूपा कृषिक्रिया लक्ष्मीः । तत्सम्बुद्धौ । **वन्दामहे** । वदि अभिवादनस्तुत्योः । अभिवादयामः । स्तुमः । **त्वा** । त्वाम् । **अर्वाची** । अवर+अञ्चु गतिपूजनयोः-क्विन्, ङीप् । अर्वादेशः । निकटस्था । अभिमुखी । **सुभगे** । हे सौभाग्ययुक्ते । ऐश्वर्यवति । **नः** । अस्मभ्यम् । **सुमनाः** । प्रसन्नमनस्का । **असः** । लेट् । त्वं स्याः । **सुफला** । शोभनफलोपेता । **भुवः** । लेट् । त्वं भवेः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सुमनाः) प्रसन्न मन वाली (असः) होवे, और (यथा) जिससे (नः) हमारे लिये (सुफला) सुन्दर फल वाली (भुवः) होवे ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्य खेती को मन लगा करके चौकसी रक्खें जिससे अन्नवान् और धनवान् होकर सदा आनन्द भोगें ॥ ८ ॥

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः । सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वतो घृतवत् पिन्वमाना ॥ ९ ॥

घृतेन । सीता । मधुना । सम्ऽअक्ता । विश्वैः । देवैः । अनुऽमता । मरुत्ऽभिः । सा । नः । सीते । पयसा । अभिऽआववृत्स्व । ऊर्जस्वती । घृतऽवत् । पिन्वमाना ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(घृतेन) घी से और (मधुना) मधु [शहद] से (समक्ता) यथाविधि सानी हुई (सीता) जुती धरती (विश्वैः) सब (देवैः) व्यवहार कुशल (मरुद्भिः) विद्वान् देवताओं करके (अनुमता) अङ्गीकृत है । (सीते) हे जुती धरती ! (सा) सो (ऊर्जस्वती) बलवती और (घृतवत्) घृतयुक्त [अन्न आदि] से (पिन्वमाना) सींचती हुई तू (पयसा) दूध के साथ (नः) हमारे (अभ्यावववृत्स्व) सब ओर से सन्मुख वर्तमान हो ॥ ९ ॥

९—**घृतेन** । आज्येन । **सीता** । म० ४ । कृष्टा भूमिः । **मधुना** । क्षौद्रेण । **समक्ता** । अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु-क्तः । सम्यक् मिश्रिता । **विश्वैः** । सर्वैः । **देवैः** । दिवु व्यवहारे-अच् । व्यवहारकुशलैः । **अनुमता** । अङ्गीकृता । **मरुद्भिः** । अ० १।२०।१ । देवैः । ऋत्विग्भिः, निघ० ३ । १८ । **सा** । सा त्वम् । **नः** । अस्मान् । **पयसा** । दुग्धेन । **अभ्यावववृत्स्व** । **बहुलं छन्दसि** (पा० २ । ४ । ७६) इति वृतेः । शपः श्लुः । अभित आगत्य वर्त्तस्व । **ऊर्जस्वती** । बलवती । **घृतवत्** । यथा तथा घृतयुक्तेन अन्नेन । **पिन्वमाना** । पिवि सेचने—शानच् । आत्मनेपदं छान्दसम् । सिञ्चन्ती । वर्धयन्ती ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—चतुर किसान युक्ति से बीज में वा धरती में घी और मधु आदि मिलाकर धा-य आदि को पुष्ट और मधुर बनावें, जैसे क्रिया विशेष से, माली लोग आम, दाख, केसर, फूल आदि को उत्तम बनाते और मनुष्य उत्तम सन्तान उत्पन्न करते हैं ॥ ६ ।

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद अ० १२ म० ७० में है ॥

सूक्तम् १८ ॥

१--६ ॥ ऋषिः--इन्द्राणी । देवता—उपनिषत्सपत्नीबाधनम् । १--५ अनुष्टुप्, ६ पङ्क्तिः ॥

उपनिषत्सपत्नीबाधनोपदेशः—ब्रह्मविद्या की सपत्नी अविद्या के नाश का उपदेश ॥

इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम् ।
ययां सपत्नीं बाधते ययां संविन्दते पतिम् ॥ १ ॥

इमाम् । खनामि । ओषधिम् । वीरुधाम् । बलवत्ऽतमाम् ।
ययां । सऽपत्नीम् । बाधते । ययां । सम्ऽविन्दते । पतिम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(वीरुधाम्) उगती हुई लताओं [सृष्टि के पदार्थों] में (इमाम्) इस (बलवत्तमाम्) बड़ी बल वाली (ओषधिम्) रोग नाशक ओषधि [ब्रह्मविद्या] को (खनामि) मैं खोदता हूँ, (यया) जिस [ओषधि] से [प्राणी] (सपत्नीम्) विरोधिनी [अविद्या] को (बाधते) हटाता है, और (यया)

१—**इमाम्** । प्रत्यक्षाम् । **खनामि** । खनु अवदारणे । खननेन अन्वेषणेन संपादयामि । **ओषधिम्** । अ० १ । २३ । १ । रोगनाशिकां ब्रह्मविद्याम् । **वीरुधाम्** । अ० १ । ३२ । १ । विरोहणशीलानां लतारूपानां प्रजानां मध्ये । **बलवत्तमाम्** । बलवत्-तमप्, टाप् । अतिशयेन बलवतीम् । **यया** । ओषध्या । **सपत्नीम्** । पाति रक्षतीति पतिः । **पातेर्डतिः** (उ० ४ । ५७) समानः पतिः यस्याः सा सपत्नी । **नित्यं सपत्न्यादिषु** (पा० ४ । १ । ३५) इति ङीप् नकारान्तादेशश्च । ब्रह्मविद्याविरोधिनीं अविद्याम् । **बाधते** । विहन्ति ।

---

१. सपत्नी से अभिप्राय यहाँ सपत्नी के समान दुःख देने वाली है । स्वामी जी महाराज ने ऋग्वेदभाष्य में सपत्नी इव वर्त्तमाने (ऋ०, द० भा० ३ । ६ । ४) यथा अनेकाः पत्न्यः समानमेकपतिं दुःखयन्ति (ऋ०, द० भा० १ । १०५ । ८) ऐसा ही अर्थ किया है, सो यहाँ लुप्तोपमालङ्कार से अर्थ होगा-सपत्नी के समान कष्ट देने वाली जो ब्रह्मविद्या विरोधिनी अविद्या ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे (पतिम्) सर्वरक्षक वा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को (संविन्दते) यथावत् पाता है ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्मविद्या परिश्रम पूर्वक प्राप्त करें। ईश्वर ज्ञान से ही विज्ञान बढ़कर मिथ्याज्ञान का नाश होकर परम ऐश्वर्य वा मोक्ष मिलता है ॥१॥

यह सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद म० १० । १४५ । १–६ में है। अजमेर वैदिक यन्त्रालय की ऋग्वेदसंहिता, मोहमयी [मुम्बई] की शाकलऋक्संहिता, और ऋग्वेदीय सायणभाष्य में "उपनिषत्सपत्नीबाधनम्" इस सूक्त का देवता लिखा है, इससे इस सूक्त में ब्रह्मविद्या का ही उपदेश है ॥

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे परा णुद पतिं मे केवलं कृधि ॥ २ ॥

उत्तानऽपर्णे । सुऽभगे । देवऽजूते । सहस्वति । सऽपत्नीम् । मे । परा । नुद । पतिम् । मे । केवलम् । कृधि ॥ २ ॥

भाषार्थः—(उत्तानपर्णे) हे विस्तृत पालन वाली ! (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली ! (देवजूते) हे विद्वानों करके प्राप्त की हुई ! (सहस्वति) हे बलवती [ब्रह्मविद्या] ! (मे) मेरी (सपत्नीम्) विरोधिनी [अविद्या] को (परा नुद) दूर हटा दे और (पतिम्) सर्वरक्षक वा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर

संविन्दते । सम्यक् लभते । **पतिम्** । **पातेर्डतिः** (उ० ४ । ५७) इति पा रक्षणे डतिः । यद्वा । **सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४ । ११८) इति पत गतौ–इन् सर्वरक्षकम् । ऐश्वर्यवन्तं परमेश्वरम् ॥

२—**उत्तानपर्णे** । उत्+तनु विस्तारे–घञ् । **धापृवस्यज्यतिभ्यो नः** (उ० ३ । ६) इति पॄ पालनपूरणयोः–नः । हे उत्तमतया विस्तृतपालनयुक्ते । **सुभगे** । हे सौभाग्यहेतुभूते । **देवजूते** । जु[1] गतौ–क्तः । विद्वद्भिः प्राप्ते । **सहस्वति** । हे बलवति ब्रह्मविद्ये । **सपत्नीम्** । म० १ । विरोधिनीम् । अविद्याम् । **मे** । मम । **परा णुद** । पराङ्मुखीं गमय । **पतिम्** । म० १ । **केवलम्** । **वृषादिभ्यश्चित्** (उ० १ । १०६) इति केवृ सेवने–कलच् । निर्णीतम् । सेवनीयम् ।

---

१. जु सौत्र पाठ की धातु है । द्र० काशि० ३ । २ । १५ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (मे) मेरा (केवलम्) सेवनीय (कृधि) कर ॥ २ ॥

भावार्थः—अनन्यवृत्ति पुरुष ब्रह्मविद्या से अविद्या को हटाकर आनन्द स्वरूप जगदीश्वर को जानकर आनन्द भोगता है ॥ २ ॥

नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन् रमसे पतौ ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥ ३ ॥

नहि । ते । नाम । जग्राह । नो इति । अस्मिन् । रमसे । पतौ । पराम् । एव । पराऽवतम् । सऽपत्नीम् । गमयामसि ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे सपत्नी अविद्या] (ते) तेरा (नाम) नाम (नहि) कभी नहीं (जग्राह) मैंने लिया है, (अस्मिन्) इस (पतौ) जगत् पति परमेश्वर में (नो) कभी नहीं (रमसे) तू रमण करती है । (पराम्) बैरिनि (सपत्नीम्) विरोध डालने वाली [अविद्या] को (परावतम् एव) बहुत दूर ही (गमयामसि) हम पहुँचाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोग अविद्या का मान न करके अविद्या रहित सर्वविद्यायुक्त परमात्मा का ध्यान करते, और अविद्या को हटाकर सत्यज्ञान पाते हैं ॥३॥

उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।
अधः सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ॥ ४ ॥

कृधि । कुरु ॥

३—**नहि** । न । **ते** । तव । **नाम** । **नामन्सीमन्व्योमन्०** (उ० ४ । १५१) इति ष्ना अभ्यासे-मनिन् । नामधेयम् । **जग्राह** । अहं गृहीतवान् । **नो** । नैव । **अस्मिन्** । प्रसिद्धे । **रमसे** । त्वं क्रीडसि । **पतौ** । म० १ । छान्दसी घिसंज्ञा । पत्यौ । परमेश्वरे । **पराम्** । **ऋदोरप्** (पा० ३ । ३ । ५७) इति पॄ पालनपूरणयोः—अपादाने अप् । टाप् । शत्रुम् । वैरिणीम् । **एव** । अवश्यम् । **परावतम्** । अ० ३ । ४ । ५ । दूरदेशगतम् । **सपत्नीम्** । म० १ । विरोधिनीम् । **गमयामसि** । गमयामः । प्रापयामः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्ऽतरा । अहम् । उत्ऽतरे । उत्ऽतरा । इत् । उत्ऽतराभ्यः ।
अधः । सऽपत्नी । या । मम । अधरा । सा । अधराभ्यः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(उत्तरे) हे अति उत्तम [ब्रह्मविद्या] (अहम्) मैं [प्रजा] (उत्तरा) अधिक उत्तम [भूयासम्=हो जाऊँ], (उत्तराभ्यः) अन्य उत्तम [पशु आदि प्रजाओं] से (इत्) तो (उत्तरा) अधिक उत्तम [प्रजा अस्मि=प्रजा हूँ] (मम) मेरी (या) जो (अधरा) नीच (सपत्नी) विरोधिनी [अविद्या है], (सा) वह (अधराभ्यः) नीच [विपत्तियों] से (अधः) नीची है ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य सब पशु आदि प्राणियों से उत्तम है, इससे वह सब उत्तम विद्याओं में परम उत्तम ब्रह्मविद्या प्राप्त करके सर्वोत्कृष्ट होवे, और सब विपत्तियों वा क्लेशों के मूल अविद्या को निकालता रहे ॥ ४ ॥

भगवान् पतञ्जलि का वचन है—

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥
अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ यो०द० २ । ३, ४ ॥

१—(अविद्या) मिथ्याज्ञान, २—(अस्मिता) अहंकार, ३—(राग) राग, वा तृष्णा, ४—(द्वेष) द्वेष वा घृणा, और ५—(अभिनिवेश) शरीर से प्रीति वा मरण से भय, यह पांच क्लेश हैं ॥

अविद्या पिछले चार [अस्मिता आदि] का खेत है, चाहे वे १—सोते हुए २—सूक्ष्म, ३—दबे हुये, वा ४—फैले हुये हों ॥

४—उत्तरा । उत्कृष्टतरा । **अहम्** । मनुष्यरूपी प्रजा । **उत्तरे** । हे उत्कृष्टतरे ब्रह्मविद्ये । **उत्तराभ्यः** । अन्यपश्वादिप्रजाभ्य उत्कृष्टतराभ्यः । **अधः** । अधस्तात् । **सपत्नी** । म० १ । विरोधिनी । अविद्या । **अधरा** । अन्यनिकृष्टाभ्यो विपत्तिभ्यः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः ।
उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै ॥ ५ ॥

अहम् । अस्मि । सहमाना । अथो इति । त्वम् । असि । ससहिः[1] । उभे इति । सहस्वती इति । भूत्वा । सऽपत्नीम् । मे । सहऽआवहै ॥ ५ ॥

भाषार्थः—[हे विद्या] (अहम्) मैं (सहमाना) जयशील [प्रजा] (अस्मि) हूँ, (अथो) और (त्वम्) तू भी (सासहिः = ससहिः) जयशील (असि) है । (उभे) दोनों हम [तू और मैं] (सहस्वती = ०–त्यौ) जयशील (भूत्वा) होकर (मे) मेरी (सपत्नीम्) विरोधिनी [अविद्या] को (सहाव) जीत लें ॥ ५ ॥

भावार्थः—योगी जन ब्रह्मविद्या में एकवृत्ति होकर अविद्या को जीतकर आनन्द भोगते हैं ॥ ५ ॥

अभि तेऽधां सहमानामुप तेऽधां सहीयसीम् । माम्नु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥ ६ ॥

अभि । ते । अधाम् । सहमानाम् । उप । ते । अधाम् । सहीयसीम् । माम् । अनु । प्र । ते । मनः । वत्सम् । गौःऽइव । धावतु । पथा । वाःऽइव । धावतु ॥ ६ ॥

५----**सहमाना** । षह मर्षणे—शानच् । अभिभवित्री प्रजा । **अथो** । अपि च । **सासहिः** । **सहिवहिचलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ** (वा० पा० ३ । २ । १७१) इति यङन्तात् षहधातोः किप्रत्ययः । अभिभवित्री । **उभे** । त्वं च अहं च, आवाम् । **सहस्वती** । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) इति विभक्तेः पूर्वसवर्णदीर्घः । अभिभवनवत्यौ । जयशीले । **सपत्नीम्** । म० १ । विरोधिनीम्, अविद्याम् । **सहावहै** । षह अभिभवे लोट् । आवाम् अभिभवाव ॥

१, यङन्त षह धातु से 'सासहिः' बनाने पर इसका पदपाठ सासहिः ही होना चाहिये, ससहिः नहीं । सायणानुसारी कतिपय पुस्तकों में 'सासहिः' ही पदपाठ दिखाया है । ऋग्वेद सायणभाष्य में वावहिः (ऋ० ९ । ९ । ६) का पदपाठ भी दीर्घ ही रखा है, अतः यहाँ 'ससहिः' ह्रस्व पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे जीव !] (ते) तेरे लिये (सहमानाम्) प्रबल [अविद्या] को (अभि=अभिभूय) हराकर (अधाम्) मैंने रक्खा है, और (ते) तेरे लिये (सहीयसीम्) अधिक प्रबल [ब्रह्मविद्या] को (उप) आदर से (अधाम्) मैंने रक्खा है, सो (ते मनः) तेरा मन (माम् अनु) मेरे पीछे पीछे [योगी के स्वरूप में] (प्रधावतु) दौड़ता रहे और (धावतु) दौड़ता रहे, (गौः इव) जैसे गौ (वत्सम्) अपने बछड़े के पीछे, और (वाः इव) जैसे जल (पथा) अपने मार्ग से [दौड़ता है] ॥ ६ ॥

भावार्थः—योगी वृत्तियों के निरोध से अविद्या को जीतकर स्वरूप अर्थात् अपनी और परमात्मा की शक्ति को जानकर परोपकार में आगे बढ़ता है, जैसे स्वभाव से गौ अपने छोटे बच्चे के पीछे दौड़ती फिरती है और पानी नीचे मार्ग से समुद्र को चला जाता है ॥ ६ ॥

भगवान् पतञ्जलि ने कहा है—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ यो० द० १ । २, ३ ॥

योग चित्त की वृत्तियों का रोकना है ॥ १ ॥

तब देखने वाले को अपने रूप में चित्त का ठहराव होता है ॥ २ ॥

सूक्तम् १९ ॥

१—८ ॥ पुरोहितो देवता । १, २, ४ अनुष्टुप्, ३ पूर्वार्धस्त्रिष्टुप्, द्वितीयोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप् ६, उद्धर्षन्तां मघवन् इति त्रिष्टुप्, पृथग् घोषा-

---

६—**अभि** । अभिभूय । जित्वा । **ते** । तव हिताय । **अधाम्** । डुधाञ् धारणपोषणयोः—लुङ् । अहम् अधार्षम् । **सहमानाम्** । म० ५ । प्रबलाम् अविद्याम् । **उप** । पूजायाम् । **सहीयसीम्** । सोढृ—ईयसुन् । सोढृतराम् । बलवत्तरां ब्रह्मविद्याम् । **माम्** । योगिनम् । **अनु** । अनुसृत्य । **ते** । तव । **मनः** । चित्तम् । **वत्सम्** । गोशिशुम् । **गौः इव** । धेनुर्यथा । **प्रधावतु** । प्रकर्षेण शीघ्रं गच्छतु । **पथा** । मार्गेण । **वाः** । अ० ३ । १३ । ३ । जलम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यनुष्टुप्, ७ पूर्वार्धोऽनुष्टुप्, द्वितीयस्त्रिष्टुप्, ८ पङ्क्तिः ॥

युद्धविद्याया उपदेशः—युद्धविद्या का उपदेश ॥

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं१ बलम् ।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः ॥ १ ॥

सम्ऽशितम् । मे । इदम् । ब्रह्म । सम्ऽशितम् । वीर्यम् । बलम् ।
सम्ऽशितम् । क्षत्रम् । अजरम् । अस्तु । जिष्णुः । येषाम् । अस्मि ।
पुरःऽहितः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये [इन वीरों को] (इदम्) यह (ब्रह्म) वेदज्ञान वा अन्न वा धन (संशितम्) यथाविधि सिद्ध किया गया है, और (वीर्यम्) वीरता और (बलम्) सेना दल (संशितम्) यथाविधि सिद्ध किया गया है, (संशितम्) यथाविधि सिद्ध किया हुआ (क्षत्रम्) राज्य (अजरम्) अटल (अस्तु) होवे, (येषाम्) जिनका मैं (जिष्णुः) विजयी (पुरोहितः) पुरोहित अर्थात् प्रधान (अस्मि) हूँ ॥ १ ॥

१—**संशितम्** । सम्+शो तनूकरणे—क्तः । सम्यक् सम्पादितं साधितम् । **मे** । मदर्थम् । **इदम्** । प्रसिद्धम् । **ब्रह्म** । प्रवृद्धं वेदज्ञानम् । अन्नम्, निघ० २ । ७ । धनम्, निघ० २ । १० । **वीर्यम्** । वीर—भावे यत् । वीरता । **बलम्** । सैन्यम् । **क्षत्रम्** । अ० २ । १५ । ४ । क्षत्रियकुलम् । राज्यम् । **अजरम्** । जरारहितम् । **जिष्णुः** । **ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः** (पा० ३ । २ । १३९) इति जि जये—ग्स्नुः । विजयी । **येषाम्** । योद्धृणाम् । **पुरोहितः** । पुरस्+डुधाञ् धारणपोषणयोः—क्तः । **पूर्वाधरावराणामसि०** (पा० ५ । ३ । ३९) इति पूर्व-असिः, पुर् आदेशः । **दधातेर्हिः** (पा० ७ । ४ । ४२) इति हिः । पुरोहितः पुरः एनं दधति । होत्राय वृतः कृपायमाणोऽन्वध्यायत्—निरु० २ । १२ । पूर्वम् अग्रे कर्मसु धीयते, आरोप्यते यः । प्रधानः । अग्रसरः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सेनापति राजा विद्या, अन्न, और धन आदि की यथावत् वृद्धि करके अपने वीरों और सेना का उत्साह बढ़ाता रहे, जिससे राज्य चिर-स्थायी हो ॥ १ ॥

सम॒हमे॒षां रा॒ष्ट्रं स्या॑मि॒ समोजो॑ वी॒र्यं१॑ बल॑म् ।
वृ॒श्चामि॒ शत्रू॑णां बा॒हून॑नेन॑ ह॒विषा॒हम् ॥ २ ॥

सम् । अ॒हम् । ए॒षाम् । रा॒ष्ट्रम् । स्या॒मि॒ । सम् । ओजः॑ । वी॒र्य॑म् । बल॑म् । वृ॒श्चामि॑ । शत्रू॑णाम् । बा॒हून् । अ॒नेन॑ । ह॒विषा॑ । अ॒हम् ॥२॥

भाषार्थः (अहम्) मैं (एषाम्) इन [अपने वीरों] के (राष्ट्रम्) राज्य (ओजः) शारीरिक बल, (वीर्यम्) वीरता और (बलम्) सेना दल को (सम्) भले प्रकार (संस्यामि) जोड़ता हूं । (अहम्) मैं (शत्रूणाम्) शत्रुओं की (बाहून्) भुजाओं को (अनेन) इस (हविषा) अन्न वा आवाहन से (वृश्चामि) काटता हूं ॥ २ ॥

भावार्थः—राजा सत्कार पूर्वक अपने वीरों को, सामाजिक शारीरिक और 'हविषा' आर्थिक दशा के सुधार से, सन्तुष्ट रखकर शत्रुओं का नाश करे ॥ २ ॥

नी॒चैः प॑द्यन्तामध॑रे भवन्तु॒ ये नः॑ सू॒रिं म॒घवा॑नं पृत॒न्यान् ।
क्षि॒णामि॒ ब्रह्म॑णामि॒त्रान॒न्न॑यामि॒ स्वान॒हम् ॥ ३ ॥

२—**सम्** । सम्यक् प्रकारेण । **अहम्** । पुरोहितः । राजा । **एषाम्** । स्ववीराणाम् । **राष्ट्रम्** । अ० ३ । ४ । १ । राज्यम् । **संस्यामि** । षो अन्त-कर्मणि । सम्+षो संयोजने । संयोजयामि । वर्धयामि । दृढीकरोमि । **ओजः** । अ० १ । १२ । १ । शारीरिकबलम् । **वीर्यम्** । वीरताम् । **बलम्** । सैन्यम् । **वृश्चामि** । ओव्रश्चू छेदने । छिनद्मि । **बाहून्** । भुजान् । पराक्रमान् । **हविषा** अ० १ । ४ । ३ । अन्नेन आवाहनेन ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचैः । पद्यन्ताम् । अधरे । भवन्तु । ये । नः । सूरिम् । मघऽवानम् । पृतन्यान् । क्षिणामि । ब्रह्मणा । अमित्रान् । उत् । नयामि । स्वान् । अहम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—वे [शत्रु] (नीचैः) नीचे (पद्यन्ताम्) गिरें और (अधरे) नीचे (भवन्तु) रहें, (ये) जो (नः) हमारे (मघवानम्) धनी (सूरिम्) सूरमा राजा पर (पृतन्यान्) सेना चढ़ावें ।

(अहम्) मैं (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान से (अमित्रान्) शत्रुओं को (क्षिणामि) मारे डालता हूँ और (स्वान्) अपने लोगों को (उन्नयामि) ऊँचा करता हूँ ॥३॥

भावार्थः—सैनिक लोग ललकार कर वैरियों पर धावा करके मार गिरावें, और राजा उन अपने वीरों को ऊँची २ पदवी देवें ॥ ३ ॥

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत ।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥ ४ ॥

तीक्ष्णीयांसः । परशोः । अग्नेः । तीक्ष्णऽतराः । उत । इन्द्रस्य । वज्रात् । तीक्ष्णीयांसः । येषाम् । अस्मि । पुरःऽहितः ॥ ४ ॥

३—**नीचैः** । अवाङ्मुखाः । **पद्यन्ताम्** । पतन्तु । **अधरे** । निकृष्टाः । पादाक्रान्ताः । **नः** । अस्माकम् । **सूरिम्** । सूङः क्रिः (उ० ४ । ६४) इति षूङ् प्राणिप्रसवे, षू प्रेरणे वा—क्रिः । सूते अर्थान् । सुवति शत्रून् । शूरम् । राजानम् । पण्डितम् । **मघवानम्** । मघम् = धनम् । निघ० २ । १० । मत्वर्थीयो वनिप् । प्रभूतधनवन्तम् । **पृतन्यान्** । **सुप आत्मनः क्यच्** (पा० ३ । १ । ८) इति पृतना—क्यच् । **कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः** (पा० ७ । ४ । ३९) इति क्यचि पृतना-शब्दस्य अन्त्यलोपः । लेटि आडागमः । पृतन्यन्तु पृतनां सेनाम् आत्मन इच्छन्तु । **क्षिणामि** । क्षि हिंसायाम् । नाशयामि । **ब्रह्मणा** । वेदज्ञानेन । शास्त्रबोधेन । **अमित्रान्** । अ० १ । १९ । २ । पीडकान् । **उत् नयामि** । उन्नतान् करोमि । **स्वान्** । स्वकीयान् वीरान् । **अहम्** । सेनापतिः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—वे वीर (परशोः) परसे [कुल्हाड़ी] से (तीक्ष्णीयांसः) अधिक तीक्ष्ण, (अग्नेः) अग्नि से (तीक्ष्णतराः) अधिक तीक्ष्ण (उत) और (इन्द्रस्य) मेघ के (वज्रात) वज्र [बिजुली] से (तीक्ष्णीयांसः) अधिक तीक्ष्ण हैं, (येषाम्) जिनका मैं (पुरोहितः) पुरोहित वा मुखिया (अस्मि) हूं ॥ ४ ॥

भावार्थः—सेनापति अपनी सेना का आत्मबल बढ़ावे। आत्मबल से अस्त्र शस्त्र आदि की अपेक्षा अधिक कार्य सिद्ध होता है ॥ ४ ॥

एषामहमायुधा सं स्यामेषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्वेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥५॥

एषाम् । अहम् । आयुधा । सम् । स्यामि । एषाम् । राष्ट्रम् । सुऽवीरम् । वर्धयामि । एषाम् । क्षत्रम् । अजरम् । अस्तु । जिष्णु । एषाम् । चित्तम् । विश्वे । अवन्तु । देवाः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (एषाम्) इन [वीरों] के (आयुधा = ०—नि)

४—**तीक्ष्णीयांसः** । तीक्ष्ण—ईयसुन् । आत्मबले तीक्ष्णतराः । **परशोः** । **आङ्परयोः खनिशृभ्यां डिच्च** (उ० १।३३) इति शृ हिंसायाम्—कुः, स च डित् । परान् शत्रून् शृणाति येन । अस्त्रविशेषात् । कुठारात् । **अग्नेः** । पावकात् । **तीक्ष्णतराः** । तीक्ष्ण—तरप् । निशिततराः । **उत्** । अपि च । **इन्द्रस्य** । वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः—निरु० ७ । ५ । मेघस्य । **वज्रात्** । विद्युतः । अन्यद्गतम्—म० १ ॥

५—**एषाम्** । स्ववीराणाम् । **अहम्** । पुरोहितः, सेनापतिः । **आयुधा** । आङ् + युध संप्रहारे-करणे घञर्थे कः । प्रहरणसाधनानि । बाणखड्गकुन्तादीनि । **संस्यामि**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हथियारों को (संस्यामि) जोड़ता हूँ [दृढ़ करता हूँ], (एषाम्) इनके (सुवीरम्) साहसी वीरों वाले (राष्ट्रम्) राज्य को (वर्धयामि) बढ़ाता हूँ, (एषाम्) इनका (क्षत्रम्) क्षत्रियपन (अजरम्) अजर [अटल] और (जिष्णु) विजयी (अस्तु) होवे। (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य [विजयी, कमनीय, वा प्रशंसनीय धार्मिक] गुण (एषाम्) इनके (चित्तम्) चित्त को (अवन्तु) तृप्त करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—चतुर सेनापति अपने योधाओं के बाण [तोप, तुपक, धनुषादि,] तरवारि, शक्ति, भाले आदि अस्त्र शस्त्र धनुर्वेद की रीति से दृढ़ बनवावे, और प्रसिद्ध वीरों का पद बढ़ाकर उत्साह बढ़ावे ॥ ५ ॥

उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः। पृथग् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम्। देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥ ६ ॥

उत्। हर्षन्ताम्। मघऽवन्। वाजिनानि। उत्। वीराणाम्। जयताम्। एतु। घोषः। पृथक्। घोषाः। उलुलयः। केतुऽमन्तः। उत्। ईरताम्। देवाः। इन्द्रऽज्येष्ठाः। मरुतः। यन्तु। सेनया ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे बड़े धनी राजन्! (वाजिनानि) सेना दल

राष्ट्रम्। म० २। **सुवीरम्**। शोभनवीरयुक्तम्। **वर्धयामि**। समर्धयामि। **क्षत्रम्**। क्षतात् त्रायकं क्षत्रियत्वम्। **अजरम्**। जरारहित सुदृढ़म्। **जिष्णु**। म० १। **चित्तम्**। अन्तःकरणम्। **विश्वे**। सर्वे। **अवन्तु**। तर्पयन्तु। **देवाः**। दिवु विजिगीषाकान्तिस्तुत्यादिषु-अच्। दिव्यानि विजयशीलानि, काम्यानि, स्तुत्यानि, धार्मिककर्माणि ॥

६—**उत् हर्षन्ताम्**। उत्कर्षेण हर्षयुक्तानि भवन्तु। **मघवन्**। म० ३। हे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उत् हर्षन्ताम्) मन को ऊंचा उठावें और (जयताम्) जीतते हुये (वीराणाम्) वीरों का (घोषः) जयजयकार वा सिंहनाद (उत् एतु) ऊंचा उठे।

(उलुलयः) जलाने वालों के जलाने वाले, (केतुमन्तः) ऊंचे झण्डा वाले (घोषाः) जयजयकार शब्द (पृथक्) नाना रूप में (उत् ईरताम्) ऊपर चढ़ें।

(इन्द्रज्येष्ठाः) इन्द्र प्रतापी पुरुष को ज्येष्ठ वा स्वामी रखने वाले (मरुतः) शूर (देवाः) जय चाहने वाले देवता लोग (सेनया) सेना के साथ (यन्तु) चलें ॥ ६ ॥

भावार्थः—समस्त सेनादल बड़ी उमंग से व्यूह बनाकर नानारूप में मारू बाजे गाजे के साथ "जय जय" करते हुए आगे बढ़ें और सब दलपति लोग प्रधान सेनापति की आज्ञानुसार अपनी २ टुकरी लेकर धावा करें ॥ ६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद १०। १०३। १० और यजुर्वेद १७।४२। में है ॥

प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः। तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ॥ ७ ॥

प्र। इत। जयत। नरः। उग्राः। वः। सन्तु। बाहवः।

बहुधनवन्। **वाजिनानि। महेरिणण् च** (उ० २। ५६) इति वज गतौ—इनण्। बलानि हस्त्यश्वरथादीनि। वाजः=बलम्। निघ० २। ९। **वीराणाम्।** शूराणाम्। **जयताम्।** जि—शतृ। जयं प्राप्नुवताम्। **उत् एतु।** उद्गच्छतु। **घोषः।** जयजयकारः। सिंहनादः। **पृथक्।** नानारूपे। **उलुलयः।** उल्+उलयः। उल दाहे—किप्। **इगुपधात् कित्** (उ० ४। १२०) इति उल दाहे—इन्, स च कित्। इति उलुलिः। उलां दाहकानाम् उलयो दाहकाः शत्रुनाशकाः। **केतुमन्तः।** पताकायुक्ताः। **उत् ईरताम्।** ईर गतौ, अदादिः, उद्गच्छन्तु। **देवाः।** विजिगीषवः। **इन्द्रज्येष्ठाः।** इन्द्रः, ऐश्वर्यवान् पुरुषो ज्येष्ठः श्रेष्ठो वृद्धो वा स्वामी येषां ते तथाविधाः। **मरुतः।** अ० १। २०। १। मारयन्ति दुष्टान् शूरा देवाः। **यन्तु।** गच्छन्तु। **सेनया।** स्वस्वसेनया सार्धम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीक्ष्णऽइषवः । अबलऽधन्वनः । हत । उग्रऽआयुधाः । अबलान् । उग्रऽबाहवः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(नरः) हे नरो (प्र इत) धावा करो, (जयत) जीतो। (वः) तुम्हारी (बाहवः) भुजायें (उग्राः) प्रचण्ड [कट्टर] (सन्तु) होवें। (तीक्ष्णेषवः) हे तीखे बाण वाले ! (उग्रायुधाः) हे कट्टर हथियारों वाले (उग्रबाहवः) हे कट्टर भुजाओं वाले वीरो ! (अबलधन्वनः) निर्बल धनुष वाले (अबलान्) निर्बल [शत्रुओं] को (हत) मारो ॥ ७ ॥

भावार्थः—'प्रेता जयता' पदों में दीर्घत्व उत्साह के लिये है। सेनापति की आज्ञा से सब सैनिक लोग उमंग के साथ मारू बजाते गाते धावा करके तुच्छ बैरियों को मारें ॥ ७ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद १०। १०३। १३। और यजुर्वेद १७।४६ में है।

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते। जयामित्रान् प्र पद्यस्व जह्येषां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन ॥ ८ ॥

अवऽसृष्टा। परा। पत। शरव्ये। ब्रह्मऽसंशिते। जय। अमित्रान्। प्र। पद्यस्व। जहि। एषाम्। वरम्ऽवरम्। मा। अमीषाम्। मोचि। कः। चन ॥ ८ ॥

७—**प्र इत**। प्रक्रम्य रणक्षेत्रं गच्छत। **जयत**। अभिभवत। उभयत्र बलवर्धनाय सांहितिको दीर्घः। **नरः**। अ० ३। १७। ६। हे नेतारः। **उग्राः**। प्रचण्डाः। **वः**। युष्माकम्। **बाहवः**। भुजाः। **तीक्ष्णेषवः**। निशितबाणाद्यायुधयुक्ताः। **अबलधन्वनः**। निर्बलधनुराद्यायुधोपेतान्। **हत**। नाशयत। **उग्रायुधाः**। निशिततरवारिशक्त्याद्यायुधयुक्ताः। **अबलान्**। निर्बलान्। **उग्रबाहवः**। दृढभुजाः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ब्रह्मसंशिते) हे ब्रह्माओं, वेदवेत्ताओं से प्रशंसित वा यथावत् तीक्ष्ण की हुई (शरव्ये) बाण विद्या में चतुर सेना ! (अवसृष्टा) छोड़ी हुई तू (परा) पराक्रम के साथ (पत) झपट । (अमित्रान्) बैरियों को (जय) जीत, (प्र पद्यस्व) आगे बढ़, (एषाम्) इनमें से (वरंवरम्) एक एक बड़े वीर को (जहि) मार डाल, (अमीषाम्) इनमें से (कश्चन) कोई भी (मा मोचि) न छुटे ॥ ८ ॥

भावार्थः—धर्मज्ञ और युद्ध विद्या में कुशल आचार्यों से शिक्षा पाकर सेना के स्त्री पुरुष सेनापति की आज्ञा पाते ही उमंग से धावा करके शत्रुओं को मार गिरावें ॥ ८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद ६।७५।१६ । और यजुर्वेद १७ । ४५ । में है ॥

सूक्तम् २० ॥

१–१० ॥ १, २, ५, अग्निर्देवता, अन्यत्र मन्त्रोक्ता देवताः । १–५, ७, ९, १० अनुष्टुप्, ६ पङ्क्तिः, ८ जगती ॥

ब्रह्मज्ञानोपदेशः—ब्रह्मविद्या का उपदेश ॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ रोहाधा नो वर्धया रयिम् ॥ १ ॥

अयम् । ते । योनिः । ऋत्वियः । यतः । जातः । अरोचथाः ।

८—**अवसृष्टा** । सृज्–क्तः । प्रेरिता । **परा** । पराक्रमेण । **पत** । शीघ्रं गच्छ । **शरव्ये** । अ० १ । १९ । १ । शरु–यत् । हे शरौ बाणविद्यायां कुशले सेने । **ब्रह्मसंशिते** । ब्रह्मभिर्वेदवेत्तृभिः प्रशंसिते वा सम्यक् शिते तीक्ष्णीकृते सुशिक्षिते । **एषाम्** । शत्रूणां मध्ये । **वरंवरम्** । अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते–निरु० १० । ४२ । प्रत्येकं श्रेष्ठं वीरम् । **अमीषाम्** । दूरे दृश्यमानानां वैरिणां मध्ये । **कश्चन** । कोऽपि । **मा मोचि** । मुच्लृ मोचने–कर्मणि माङि लुङि रूपम् । मुक्तो मा भूत् । अन्यत् सुगमम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तम् । जानन् । अग्ने । आ । रोह । अथ । नः । वर्धय । रयिम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (अयम्) यह [सर्वव्यापी परमेश्वर] (ते) तेरा (ऋत्वियः) सब ऋतुओं [कालों] में मिलने वाला (योनिः) कारण है, (यतः) जिससे (जातः) प्रकट होकर (अरोचथाः) तू प्रकाशमान हुआ है, (तम्) उस [योनि] को (जानन्) पहिचान कर (आ रोह) ऊंचा चढ़, (अथ) और (नः) हमारे लिये (रयिम्) धन (वर्धय) बढ़ा ॥ १ ॥

भावार्थः—परमात्मा ने अपनी सर्वशक्तिमत्ता और सर्वव्यापकता से हमें बड़ा समर्थ और उपकारी मनुष्य देह दिया है । ऐसा जानकर हम अपना ऐश्वर्य बढ़ावें ॥ १ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद ३ । २९ । १० । और यजुवद ३ । १४ और १२ । ५२ एवं १५ । ५६ । में है ॥

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् ॥ २ ॥

अग्ने । अच्छ । वद । इह । नः । प्रत्यङ् । नः । सुऽमनाः । भव ।
प्र । नः । यच्छ । विशाम् । पते । धनऽदाः । असि । नः । त्वम् ॥ २ ॥

१—**अयम्** । सर्वत्र दृश्यमानः । **ते** । तव । **योनिः** । अ० १ । ११ । ३ । कारणम् । **ऋत्वियः** । **अर्तेश्च तुः** (उ० १ । ७२) ऋ गतौ–तुः, चकारात् कित् । **छन्दसि घस्** (पा० ५ । १ । १०६) इति ऋतुशब्दात् तदस्य प्राप्तमित्यर्थे घस् । इयादेशः । सर्वेषु ऋतुषु कालेषु प्राप्तः । **यतः** । यस्माद् योनेः । **जातः** । उत्पन्नः । प्रकटः सन् । **अरोचथाः** । रुच दीप्तावभिप्रीतौ च लङ् । त्वम् अदीप्यथाः । दीप्तोऽभवः । **तम्** । योनिम् । **जानन्** । अवगच्छन् । **अग्ने** । अगि गतौ–निः । हे विद्वन् । **आ रोह** । उन्नतिं प्राप्नुहि । **अथ** । अनन्तरम् । **नः** । अस्मभ्यम् । **वर्धय** । समर्धय । **रयिम्** । धनम् । ऐश्वर्यम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (अच्छ) अच्छे प्रकार से (इह) यहां पर (नः) हमसे (वद) बोल, और (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष होकर (नः) हमारे लिये (सुमनाः) प्रसन्न मन (भव) हो। (विशाम् पते) हे प्रजाओं के रक्षक ! (नः) हमें (प्र यच्छ) दान दे, (त्वम्) तू (नः) हमारा (धनदाः) धन दाता (असि) है ॥ २ ॥

भावार्थः—सब मनुष्य विद्वानों से विद्या ग्रहण करके संसार में ऐश्वर्य प्राप्त करें ॥ २ ॥

मन्त्र २-७ ऋग्वेद म० १० सू० १४१ म० १-५ में कुछ भेद से हैं। यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद अ० २८ में है ॥

प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ॥ ३ ॥

प्र । नः । यच्छतु । अर्यमा । प्र । भगः । प्र । बृहस्पतिः ।
प्र । देवीः । प्र । उत । सूनृता । रयिम् । देवी । दधातु । मे ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अर्यमा) वैरियों का नियन्ता वीर पुरुष, (प्र) अच्छे प्रकार (भगः) ऐश्वर्यवान् धनी पुरुष (प्र) अच्छे प्रकार, और (बृहस्पतिः) बड़ी बड़ी विद्याओं का स्वामी, प्रधान आचार्य (प्र) अच्छे प्रकार (नः) हमें (देवीः)

२—अग्ने । हे विद्वन् । **अच्छ** । सम्यक् । **वद** । ब्रूहि । उपदिश । **इह** । अत्र समाजे । **प्रत्यङ्** । प्रत्यञ्चन् अभिमुखं गच्छन् । **नः** । अस्मान् । अस्मभ्यम् । **सुमनाः** । प्रीतिमनाः । **प्र यच्छ** । दानं कुरु । **विशांपते** । हे प्रजानां पालक । **धनदाः** । धन+दा-विच् । ऐश्वर्यस्य दाता । अन्यत् सुगमम् ॥

३—नः । अस्मभ्यम् । **प्र यच्छतु** । ददातु । **अर्यमा** । अ० १ । ११ । १ । अ० ३ । १४ । २ । शत्रुनियन्ता । **प्र** । प्रकर्षेण । **भगः** । ऐश्वर्यवान् पुरुषः । **बृहस्पतिः** । अ० १ । ८ । २ । बृहतां बोधानां पालकः । आचार्यः । **देवीः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य शक्तियाँ (प्र यच्छतु) प्रदान करे। (उत) और (सूनृता) प्रिय सत्य वाणी (देवी) देवी [दिव्य गुण वाली] (मे) मुझे (रयिम्) ऐश्वर्य (प्र) अच्छे प्रकार (दधातु) देवे ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्य, विशेष गुणी आचार्यों से विशेष शिक्षायें पाकर, सत्यवादी सत्यकर्मी होकर ऐश्वर्यवान् होवें ॥ ३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद ९ । २९ । में है ॥

सोमं॒ राजा॑न॒मव॑से॒ऽग्निं गी॒र्भिर्ह॑वामहे ।
आ॒दि॒त्यं विष्णुं॒ सूर्यं॑ ब्र॒ह्माणं॑ च॒ बृह॒स्पति॑म् ॥ ४ ॥

सोम॑म् । राजा॑नम् । अव॑से । अ॒ग्निम् । गी॒ःऽभिः । ह॒वा॒म॒हे॒ ।
आ॒दि॒त्यम् । विष्णु॑म् । सूर्य॑म् । ब्र॒ह्माण॑म् । च॒ । बृह॒स्पति॑म् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अवसे) रक्षा के लिये (गीर्भिः) स्तुतियों से (सोमम्) ऐश्वर्य के कारण, (राजानम्) सबके शासक (अग्निम्) विद्वान् (आदित्यम्) बड़े दीप्यमान, (विष्णुम्) सबमें व्यापक, (सूर्यम्) सबके चलाने वाले, (ब्रह्माणम्) सबमें बड़े वेद प्रकाशक ब्रह्मा (च) और (बृहस्पतिम्) बड़े बड़ों के

व्यावहारिका शक्तीः। **सूनृता**। अ० ३ । १२ । २ । सत्यप्रियात्मिका वाक्। सरस्वती। **रयिम्**। ऐश्वर्यम्। **देवी**। शोभनगुणवती। **दधातु**। ददातु। **मे**। मह्यम् ॥

४—सोमम्। अ० १ । ६ । २ । ऐश्वर्यहेतुम्। **राजानम्**। अ० १ । १० । १ । सर्वशासकम्। **अवसे**। रक्षाय। **अग्निम्**। विद्वांसम्। **गीर्भिः**। वाणीभिः। स्तुतिभिः। **हवामहे**। आह्वयामः। **आदित्यम्**। अ० १ । ९ । १ । आदीप्यमानम्। **विष्णुम्**। **विषेः किच्च** (उ० ३ । ९) इति विष्लृ व्याप्तौ-णुः। विष्णुः, यज्ञः। निघ० ३ । १७ । पदनाम, निघ० ४ । २ । यद्विषितो भवति तद्विष्णुर्भवति। विष्णुर्विशतेर्वा। व्यश्नोतेर्वा-निरु० १२ । १८ । व्यापकम्। **सूर्यम्**। अ० १ । ३ । ५ । सर्वप्रेरकम्। **ब्रह्माणम्**। अ० २ । ६ । २ सर्ववृद्धम्। वेदप्रका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षक बृहस्पति [परमेश्वर वा मनुष्य] को (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—सब मनुष्य जगदीश्वर के गुण, कर्म स्वभाव के ज्ञान और बड़े लोगों के आश्रय से अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥ ४ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद ९ । २६ में है ॥

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ॥ ५ ॥

त्वम् । नः । अग्ने । अग्निऽभिः । ब्रह्म । यज्ञम् । च । वर्धय ।
त्वम् । नः । देव । दातवे । रयिम् । दानाय । चोदय ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् ! [परमेश्वर वा पुरुष] (अग्निभिः) विद्वानों के द्वारा (त्वम्) तू (नः) हमारे (ब्रह्म) वेद ज्ञान वा ब्रह्मचर्य (च) और (यज्ञम्) यज्ञ [१—विद्वानों के पूजन, २—पदार्थों के संगतिकरण, और ३—विद्यादि के दान] को (वर्धय) बढ़ा, (देव) हे दानशील ! (त्वम्) तू (नः) हममें से (दातवे) दानशील पुरुष को (दानाय) दान के लिये (रयिम्) धन (चोदय) भेज ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के ज्ञान से अपना ज्ञान और कर्मकौशल्य बढ़ावें और उपकारी कामों में आप सहायक बनें और दूसरों को सहायक बनावें ॥ ५ ॥

शकम् । **बृहस्पतिम्** । अ० १ । ८ । २ । बृहतां महतां पालकम् ॥

१—नः । अस्माकम् । अस्माकं मध्ये । **अग्ने** । हे विद्वन्, परमेश्वर, राजन् वा । **अग्निभिः** । म० १ । विद्वद्भिः सह । **ब्रह्म** । वेदज्ञानम् । ब्रह्मचर्यम् । **यज्ञम्** । देवपूजनम् । पदार्थसंगतिकरणम् । विद्यादिदानम् । **वर्धय** । उन्नय । **देव** । देवो दानाद्वा दीपनाद्वा—निरु० ७ । १५ । हे दानशील । **दातवे** । **सितनिगमिमसि०** (उ० १ । ६९) इति डुदाञ् दाने-तुन् । दात्रे पुरुषाय । **रयिम्** । धनम् । **दानाय** । त्यागाय । **चोदय** । प्रेरय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे ।
यथा न सर्व इज्जन संगत्यां सुमना असद् दानकामश्च नो भुवत् ॥ ६ ॥

इन्द्रवायू इति । **उभौ** । **इह** । **सुऽहवा** । **इह** । **हवामहे** । **यथा** । **नः** । **सर्वः** । **इत्** । **जनः** । **सम्ऽगत्याम्** । **सुऽमनाः** । **असत्** । **दानऽकामः** । **च** । **नः** । **भुवत्** ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(उभौ) दोनों (सुहवा=०—वौ) सुख से बुलाने योग्य (इन्द्रवायू) सूर्य और पवन [के समान स्त्री पुरुष] को (इह इह) यहाँ पर ही (हवामहे) हम बुलाते हैं, (यथा) जिससे (सर्वः इत्) सभी (जनः) जने (नः) हमारी (संगत्याम्) संगति में (सुमनाः) प्रसन्न चित्त वाले (असत्) होवें, (च) और (नः) हमारी (दानकामः) दान के लिये कामना (भुवत्) होवे ॥ ६ ॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष प्रयत्न करके घर में और सभा में परस्पर परोपकारी, प्रसन्न चित्त, धार्मिक और धर्मकार्यों में दानशील हों, जैसे सूर्य अपने प्रकाश और वृष्टि आदि से और पवन अपने चेष्टादान और शीघ्रगमन आदि से असंख्य लाभ पहुँचाते हैं ॥ ६ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद ३३ । ६ में है ॥

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥ ७ ॥

---

६ – **इन्द्रवायू । ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** (पा० १ । १ । ११) इति उभौ परे प्रकृतिभावः । सूर्यपवनसदृशौ स्त्रीपुरुषौ । **उभौ** । द्वौ । **इह इह** । अस्मिन्नेव गृहे समाजे वा । **सुहवा** । **ईषद्दुःसुषु०** (पा० ३ । ३ । १२६) सु+ह्वयतेः–खल् । सुहवौ सुखेन ह्वातुं शक्यौ । **हवामहे** । आह्वयामः । **यथा** । यस्मात् । **नः** । अस्माकम् । **इत्** । एव । **जनः** । लोकः । **संगत्याम्** । समितौ । सभायाम् । **सुमनाः** । प्रसन्नचित्तः । **असत्, भुवत्** । लेटि रूपम् । भवेत् । **दानकामः** । दानाय कामः, अभिलाषः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्यमणम् । बृहस्पतिम् । इन्द्रम् । दानाय । चोदय । वातम् । विष्णुम् । सरस्वतीम् । सवितारम् । च । वाजिनम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] (अर्यमणम्) बैरियों के रोकने वाले राजा, (बृहस्पतिम्) बड़े बड़ों के रक्षक गुरु और (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष और (वातम्) पवन, (विष्णुम्) यज्ञ, (च) और (वाजिनम्) वेग वाले, वा अन्नवाले, वा बलवाले (सवितारम्) लोकों के चलाने वाले सूर्य से (सरस्वतीम्) विज्ञानों के भंडार सरस्वती, वेद विद्या को (दानाय) दान के लिये (चोदय) प्रवृत्त कर ॥ ७ ॥

भावार्थः—ईश्वर भक्त (अर्यमा) राजा वा सेनापति, (बृहस्पति) प्रधान आचार्य और (इन्द्र) दण्डनेता वा कोषाध्यक्ष आदि अधिकारी अपने २ पदों पर दृढ़ रह कर, पवन, सूर्य, अग्नि, जल, पृथिवी आदि अद्भुत पदार्थों द्वारा वेद-विज्ञान फैलावें ॥ ७ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद अ० ९ म० २७ में है ॥

मनु महाराज ने लिखा है—

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ मनु० १२ । १०८ ॥

वेद शास्त्र का जानने वाला पुरुष, सेनापति के पद, राजा के पद, और दण्ड दाताके पद और सब लोगोंपर आधिपत्य [चक्रवर्त्ति राज्य] के योग्य होता है ॥७॥

७—**अर्यमणम्** । म० ३ । अरिनियन्तारम् । **बृहस्पतिम्** । म० ४ । बृहतां पालकम् । **इन्द्रम्** । ऐश्वर्यवन्तं पुरुषम् । **दानाय** । त्यागाय । **चोदय** । नय । प्रवर्त्तय । अस्य धातोः—णीञ् इत्येतेन सह अर्थनिबन्धनायां द्विकर्मकत्वम् । **अकथितं च** (पा० १ । ४ । ५१) इति अर्यमणमादीनां सप्तपदानाम् अपादाने कर्मत्वम् । **वातम्** । पवनम् । **विष्णुम्** । म० ४ । यज्ञम् । **सरस्वतीम्** । सरोभिर्विज्ञानैर्युक्तां वेदविद्याम् । **सवितारम्** । अ० १ । १८ । २ । लोकानां प्रेरकम् । **वाजिनम्** । अ० १ । ४ । ४ । वाज—इनिः । वेगवन्तम् । अन्नवन्तम् । बलवन्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्य-न्तः। उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्व-वीरं नि यच्छ ॥ ८ ॥

वाजस्य । नु । प्रऽसवे । सम् । बभूविम् । इमा । च । विश्वा । भुवनानि । अन्तः । उत । अदित्सन्तम् । दापयतु । प्रऽजानन् । रयिम् । च । नः । सर्वऽवीरम् । नि । यच्छ ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(वाजस्य) बल के (प्रसवे) उत्पत्ति में (नु) ही (संबभूविम) हम समर्थ हुए हैं, (च) और (इमा = इमानि) यह (विश्वा = विश्वानि) सब (भुवनानि) लोक (अन्तः) [उसी के] भीतर हैं। (प्रजानन्) ज्ञानवान् ईश्वर (अदित्सन्तम्) देने की इच्छा न करने वाले से (उत) भी (दापयतु) दिलावे। (च) और [हे ईश्वर] (नः) हमें (सर्ववीरम्) सर्ववीरों से युक्त (रयिम्) धन (नि) नित्य (यच्छ) दे ॥ ८ ॥

भावार्थः—सब चराचर जगत् अन्न के आश्रित ठहरा है। सर्वज्ञ परमेश्वर अदानी पुरुषों को भी सुपात्रों के लिये दान शक्ति देवे, और हमें और हमारे वीरों को धनी बनावे ॥ ८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद १९ । २५ व २४ में है ॥

८—**वाजस्य** । बलस्य । **नु** । एव । **प्रसवे** । ऋदोरप् (पा० ३ । ३ । ५७) इति प्र + षू प्रेरणे, यद्वा, षूङ् प्राणिगर्भविमोचने—अप् । उत्पत्तौ । **संबभूविम** । भू सत्तायाम्—लिट् । वयं समर्था बभूविम । **इमा** । इमानि । परिदृश्यमानानि । **विश्वा** । सर्वाणि । **भुवनानि** । अ० २ । १ । ४ । भू—क्युन् । लोकाः । **अन्तः** । वाजप्रसवस्य मध्ये वर्त्तन्ते । **उत** । अपि । **अदित्सन्तम्** । नञ् + दा, सन्—शतृः । **सनि मीमाघुरभ०** (पा० ७ । ४ । ५४) इति इसादेशः । **सः स्यार्धधातुके** (पा० ७ । ४ । ४९) इति सस्य तकारः । दातुमनिच्छन्तम् । **दापयतु** । दानाय प्रवर्तयतु । **प्रजानन्** । अवगच्छन् परमेश्वरः । **रयिम्** । धनम् । **नः** । अस्मभ्यम् । **सर्ववीरम्** । सर्ववीरोपेतम् । **नि** । नियमेन । नित्यम् । **यच्छतु** । **पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्०** (पा० ७ । ३।७८) इति दाण् दाने यच्छादेशः । ददातु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुहां मे पञ्च प्रदिशो दुहामुर्वीर्यथाबलम् ।
प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ॥ ९ ॥

दुहाम् । मे । पञ्च । प्रऽदिशः । दुहाम् । उर्वीः । यथाऽबलम् । प्र । आपेयम् । सर्वाः । आऽकूतीः । मनसा । हृदयेन । च ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(पञ्च) फैली हुई [वा पांच] (प्रदिशः) उत्तम दान क्रियायें [वा प्रधान दिशायें] (मे) मेरे लिये (उर्वीः) फैली हुई शक्तियों को (यथाबलम्) यथाशक्ति (दुहाम्) भरती रहें, (दुहाम्) भरती रहें। (मनसा) मन [मनन शक्ति] से (च) और (हृदयेन) हृदय [ग्रहण शक्ति] से (सर्वाः) सब (आकूतीः) संकल्पों को (प्र, आपेयम्) मैं पाता रहूं ॥ ९ ॥

भावार्थः—मनुष्य विद्या आदि के दान से अपना सामर्थ्य बढ़ावें और सब दिशाओं से उत्तम गुण प्राप्त करें तथा श्रवण, मनन और निदिध्यासन [ध्यान देकर विचार] से अपने मनोरथ सिद्ध करें ॥ ९ ॥

९—**दुहाम् दुहाम्** । दुह प्रपूरणे—लोट् । आत्मनेपदम् । **बहुलं छन्दसि** (पा० ७ । १ । ८) इति झप्रत्ययस्य अतो रुडागमः । **लोपस्त आत्मनेपदेषु** (पा० ७ । १ । ४१) इति तलोपः । **नित्यवीप्सयोः** (पा० ८ । १ । ४) इति द्विर्वचनम् । अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते—निरु० १० । ४२ । नित्यं दुहताम् । प्रपूरयन्तु । **पञ्च** । अ० १ । ३० । ४ । पचि विस्तारवचने—कनिन् । विस्तृताः । संख्यावाची वा । **प्रदिशः** । अ० १ । ३० । ४ । दिश दाने—किप् । प्रकृष्टा दानक्रियाः । अथवा । प्राच्याद्याश्चतस्रः शिरोबिन्दुश्चेति पञ्च प्रदिशः । **उर्वीः** । **वोतो गुणवचनात्** (पा० ४ । १ । ४४) इति उरु—ङीष् । विस्तीर्णा शक्तीः । **यथाबलम्** । यथाशक्ति । **प्र, आपेयम्** । आप्लृ व्याप्तौ—आशिषि लिङि । अहं प्राप्नवानि । **सर्वाः** । समस्ताः । **आकूतीः** । अ० ३ । २ । ३ । संकल्पान् **मनसा** । मननेन । **हृदयेन** । अ० २ । २९ । ६ । हृञ् हरणे—कयन्, दुक् च । ग्रहणेन । निदिध्यासनेनेत्यर्थः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि ।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥ १० ॥

गोऽसनिम् । वाचम् । उदेयम् । वर्चसा । मा । अभिऽउदिहि ।
आ । रुन्धाम् । सर्वतः । वायुः । त्वष्टा । पोषम् । दधातु । मे ॥ १० ॥

भाषार्थः—(गोसनिम्) गोलोक [गौओं वा स्वर्ग] की देने वाली (वाचम्) वाणी को (उदेयम्) मैं बोलूं। [हे ईश्वर !] (वर्चसा) तेज के साथ (मा = माम्) मेरे ऊपर (अभ्युदिहि) सब ओर से उदय हो। (वायुः) प्राण वायु [मुझको] (सर्वतः) सब प्रकार से (आ रुन्धाम्) घेरे रहे। (त्वष्टा) विश्वकर्मा परमेश्वर वा सूर्य (मे) मेरे लिये (पोषम्) पोषण (दधातु) देता रहे ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर के ध्यान से सत्यवादी और सत्यकर्मी होकर अपने प्राणों को वश में रक्खे और पुरुषार्थी होकर सूर्य से वृष्टि द्वारा अपना पोषण प्राप्त करे ॥ १० ॥

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

॥ अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २१ ॥

१--१० ॥ १-७ अग्नयो देवताः, ८-१० मन्त्रोक्तादेवताः ॥ १-४,

१०—गोसनिम् । छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् (पा० ३ । २ । २७) इति षणु दाने-इन् । गां धेनुं स्वर्गं वा सनोति ददातीति गोसनिः । गोलोकस्य धेनुसमूहस्य स्वर्गलोकस्य वा दात्रीम् । **वाचम्** । वाणीम् । **उदेयम्** । **लिङ्याशिष्यङ्** (पा० ३ । १ । ८६) इति वद व्यक्तायां वाचि-अङ् । उद्यासम् । **वर्चसा** । तेजसा । अन्नेन-निघ० २ । ७ । **मा** । माम् । **अभ्युदिहि** । अभितः उद्गच्छ । प्राप्नुहि । **आ रुन्धाम्** । रुधिर् आवरणे-लोट् । आवृणोतु । आच्छादयतु । **सर्वतः** । सर्वाभ्यो दिग्भ्यः । **वायुः** । सूत्रात्मा । प्राणः । **त्वष्टा** । अ० २ । ५ । ६ । सूक्ष्मकर्ता । विश्वकर्मा परमेश्वरः । सूर्यः । **पोषम्** । पुष्टिम् । **दधातु** । धारयतु । ददातु । **मे** । मह्यम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७, ८ त्रिष्टुप्, ५ जगती; ६, ९, १० अनुष्टुप् छन्दः ॥

परमेश्वरस्य गुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

ये अग्नयो अप्स्व१न्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु ।
य आविवेशोषधीर्यो वनस्पतींस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥१॥

ये । अग्नयः । अप्सु । अन्तः । ये । वृत्रे । ये । पुरुषे । ये । अश्मसु । यः । आविवेश । ओषधीः । यः । वनस्पतीन् । तेभ्यः । अग्निभ्यः । हुतम् । अस्तु । एतत् ॥ १ ॥

भाषार्थः- (ये) जो (अग्नयः) अग्नियाँ [ईश्वर के तेज] (अप्सुअन्तः) जल के भीतर, (ये) जो (वृत्रे) मेघ में, (ये) जो (पुरुषे) पुरुष [मनुष्य शरीर] में और (ये) जो (अश्मसु) शिलाओं में हैं। (यः) जिस [अग्नि] ने (ओषधीः) औषधियों [अन्न, सोम लता आदि] में, और (यः) जिसने (वनस्पतीन्) वनस्पतियों [वृक्ष आदि] में (आ विवेश) प्रवेश किया है, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्म समर्पण] (अस्तु) होवे ॥ १ ॥

भावार्थः—इस सूक्त में गुणों के वर्णन से गुणी परमेश्वर का ग्रहण है, अर्थात् जिस परमेश्वर की शक्ति से समुद्र में बड़वानल, मेघ में बिजुली, मनुष्य में अन्न पाचक अग्नि और पत्थर में चकमक, औषधियों में फलपाक अग्नि आदि अद्भुत उपकारी शक्तियाँ वर्त्तमान हैं, उनके प्रेरक परमेश्वर को हमारा प्रणाम है ॥ १ ॥

१—अग्नयः । ईश्वरतेजांसि । **अप्सु ।** उदकेषु । **अन्तः ।** मध्ये । **वृत्रे ।** अ० २ । ५ । ३ । वृत्रो वृणोतेर्वा वर्ततेर्वा वर्द्धतेर्वा—निरु० २ । १७ । मेघे निघ० १।१० । **पुरुषे ।** अ० १ । १६ । ४ । मानुषशरीरे । **अश्मसु ।** अ० १ । २ । २ । पाषाणशिलासु । **आविवेश ।** प्रविष्टवान् । **ओषधीः ।** व्रीहियवादिरूपाः । **वनस्पतीन् ।** अ० १ । १२ । ३ । सेवकरक्षकान् । वृक्षान् । **हुतम् ।** हु दाने क्तः । हविः । आत्मसमर्पणम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु। य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ २ ॥

यः । सोमे । अन्तः । यः । गोषु । अन्तः । यः । आऽविष्टः । वयःऽसु । यः । मृगेषु । यः । आऽविवेश । द्विऽपदः । यः । चतुःऽपदः । तेभ्यः । अग्निऽभ्यः । हुतम् । अस्तु । एतत् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यः) जो [अग्नि] (सोमे) सोम [चन्द्र अमृत वा दूध, घी, आदि] के (अन्तः) भीतर, (यः) जो (गोषु अन्तः) गौ आदि पालतू पशुओं में, (यः) जो (वयःसु) पक्षियों में और (यः) जो (मृगेषु) बनैले जीवों में (आविष्टः) प्रविष्ट है, और (यः) जिसने (द्विपदः) दोपायों, और (यः) जिसने (चतुष्पदः) चौपायों में (आविवेश) प्रवेश किया है, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥ २ ॥

भावार्थः—जो अग्नि चन्द्रमा में सूर्य से है और जो सोमलता वा दूध आदि में रस पकाकर पौष्टिक बनाता है, और जो प्राणियों में वेग, बलवत्ता, जंगलीपन, और अन्य विशेषता का कारण है, उस अग्नि के संयोजक, वियोजक परमात्मा को हमारा नमस्कार है ॥ २ ॥

य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः। यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ३ ॥

२----**यः** । अग्निः । **सोमे** । चन्द्रे । अमृते । सोमलतादुग्धघृतादौ । **अन्तः** । मध्ये । **गोषु** । ग्राम्यपशुषु । **आविष्टः** । प्रविष्टः । **वयःसु** । पक्षिषु । **मृगेषु** । अ० २ । ३६ । ४ । आरण्यपशुषु । **आविवेश** । म० १ । **द्विपदः** । अ० २ । ३४ । १ । पादद्वययुक्तान् मनुष्यादीन् । **चतुष्पदः** । अ० २ । ३४ । १ । पादचतुष्टययोपेतान् प्राणिनः । अन्यद्गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः । इन्द्रेण । सऽरथम् । याति । देवः । वैश्वानरः । उत । विश्वऽदाव्यः । यम् । जोहवीमि । पृतनासु । सऽसहिम् । तेभ्यः । अग्निऽभ्यः । हुतम् । अस्तु । एतत् ॥ ३ ॥

भाषार्थः---(यः) जो (देवः) प्रकाशमान वा जय चाहने वाला [अग्नि] (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् शूर के साथ (सरथम्) एक रथ पर चढ़कर (याति) चलता है, और [जो हमारे] (वैश्वानरः) सब नरों का हितकारी, (उत) और [जो शत्रु का] (विश्वदाव्यः) सब कुछ जलाने वाला है, और (यम्) जिस (सासहिम्) विजयी [अग्नि] को (पृतनासु) संग्रामों में (जोहवीमि) बारंबार आवाहन करता हूँ, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥ ३ ॥

भावार्थः---जिस परमात्मा के तेज को हृदय में धारण करके साहसी शूर आग्नेय अस्त्र शस्त्रधारी सेना के द्वारा शत्रुओं को शीघ्र जीत लेता है, उस जगदीश्वर को हमारा नमस्कार है ॥ ३ ॥

यो देवो विश्वाद् यमु काममाहुर्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः ।
यो धीरः शक्रःपरिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥४॥

३---यः । अग्निः । इन्द्रेण । ऐश्वर्यवता शूरेण । सरथम् । समानरथम् । एकरथमारुह्य । याति । गच्छति । देवः । दीप्यमानः । विजिगीषुः । वैश्वानरः । अ० १ । १० । ४ । सर्वनरहितः । विश्वदाव्यः । दुन्योरनुपसर्गे (पा० ३ । १ । १४२) इति टुदु उपतापे--णः । दावः = उपतापः । तत्र साधुः (पा० ४ । ४ । ९८) इति यत् । शत्रूणां सर्वोपतापने साधुः । सर्वदाहकुशलः । जोहवीमि । अ० २ । १२ । ३ । पुनः पुनराह्वयामि । पृतनासु । विपतिभ्यां तनन् (उ० ३ । १५०) इति पृङ् व्यायामे-तनन्, स च कित् । टाप् । संग्रामेषु--निघ० २ । १७ । सासहिम् । अ० ३ । १८ । ५ । ससहिम् । अभिभवितारम् । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः । देवः । विश्वऽअत् । यम् । ऊँ इति । कामम् । आहुः । यम् । दातारम् । प्रतिऽगृह्णन्तम् । आहुः । यः । धीरः । शक्रः । परिऽभूः । अदाभ्यः । तेभ्यः । अग्निऽभ्यः । हुतम् । अस्तु । एतत् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(यः) जो (देवः) प्रकाशमान अग्नि, [बैरियों में] (विश्वात्) सबका खाने वाला है, (यम्) जिसको (उ) ही (कामम्) कमनीय वा कामना पूरी करने वाला (आहुः) लोग कहते हैं, (यम्) जिसको (दातारम्) देने वाला और (प्रतिगृह्णन्तम्) लेने वाला (आहुः) बताते हैं। (यः) जो (धीरः) पुष्टि करने वाला, (शक्रः) शक्तिमान् (परिभूः) सर्वव्यापक और (अदाभ्यः) न दबने योग्य है, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जिस परमात्मा को विद्वान् लोग आनन्द दाता और प्रार्थना का मानने वाला जानते हैं, और जिसके ध्यान से पुरुषार्थी लोग शत्रुओं को जीतते हैं, उसको हमारा प्रणाम है ॥ ४ ॥

यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस्त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः । वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ५ ॥

४—**देवः** । प्रकाशमानोऽग्निः । **विश्वात्** । **अदोऽनन्ने** (पा० ३ । २ । ६८) इति विश्व+अद भक्षणे-विट् । शत्रूणां सर्वभक्षकः । **कामम्** । कमु इच्छायाम्-घञ् । कमनीयम् । कामयितारम् । **आहुः** । ब्रूञ्-लट् । ब्रुवन्ति । **दातारम्** । इष्टफलस्य प्रदातारम् । **प्रतिगृह्णन्तम्** । ग्रह-शतृ । प्रार्थनायाः स्वीकर्तारम् । **धीरः** । अ० २ । ३५ । ३ । धाञ्-क्रन्, ईत्वम् । दधाति पोषयतीति । धारकः । पोषकः । **शक्रः** । अ० २ । ५ । ४ । शक्तिमान् । **परिभूः** । परि+भू सत्तायाम्, प्राप्तौ-क्विप् । सर्वव्यापकः । **अदाभ्यः** । **ऋहलोर्ण्यत्** (पा० ३ । १ । १२४) इति दम्भु दम्भने-ण्यत् । दभ्नोतिर्बधकर्मा-निघ० २।१९ । अहिंस्यः । अजेयः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यम् । त्वा । होतारम् । मनसा । अभि । सम्ऽविदुः । त्रयःऽदश । भौवनाः । पञ्च । मानवाः । वर्चःऽधसे । यशसे । सूनृताऽवते । तेभ्यः । अग्निऽभ्यः । हुतम् । अस्तु । एतत् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(त्रयोदश) तेरह [दो कान, दो नथनें, दो आंखें और एक मुख यह सात शिर के, और दो हाथ, दो पद, एक उपस्थेन्द्रिय, और एक गुदास्थान, यह छः शिर के नीचे] (भौवनाः) भुवनों से संबन्ध वाले प्राणी, और (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन पांच तत्त्व] से संबन्ध वाले (मानवाः) मनुष्य (मनसा) मनन शक्ति से (वर्चोधसे) तेज धारण कराने वाले और (सूनृतावते) प्रिय सत्य वाणी वाले (यशसे) यश के लिये (यम्) जिस (त्वा) तुझ [अग्नि] को (होतारम्) दानी (अभि) सब प्रकार (संविदुः) ठीक ठीक जानते हैं, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥ ५ ॥

५—**यम्** । **त्वा** । अग्निम् । **होतारम्** । दातारम् । **मनसा** । मननेन । चित्तेन । **अभि** । अभितः । सर्वतः । **संविदुः** । विद ज्ञाने-लट् । सम्यग् विदन्ति जानन्ति । **त्रयोदश** । त्रयश्च दश च । सप्त शीर्षण्याः षड् अधोभागस्थाः । पाणिपादोपस्थगुदावयवाः । **भौवनाः** । भू सत्तायाम्—क्युन्, इति भुवनम् । अ० २ । १ । ३ । भुवन—अण् । भुवनानि भवनानि गृहाणि इन्द्रियाणि येषां ते भौवनाः प्राणिनः । **पञ्च, मानवाः** । तस्येदम् (पा० ४ । ३ । १२०) इति मनु—अण् । मनुर्मननं येषां ते मानवाः । पञ्चभूतसम्बन्धिनो मनुष्याः । अथवा, पञ्च—मानवा एव पञ्चजनाः । पञ्चजनाः, मनुष्यनाम—निघ० २ । ३ । पञ्चजनाः . . . गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसीत्येके चत्वारो वर्णा निषादः पञ्चम इत्यौपमन्यवः । निषादः कस्मान्निषण्णमस्मिन् पापकमिति नैरुक्ताः—निरु० ३ । ८ । **वर्चोधसे** । दधातेरसुन् । तेजसां दात्रे । **यशसे** । अशेर्देवने युट् च (उ० ४।१९१) इति अशूङ् व्याप्तौ—असुन्, युडागमश्च, देवनं स्तुतिः । यशःप्राप्तये । **सूनृतावते** । अ० ३ । १२ । २ । प्रियसत्यात्मिका वाक् सूनृता, तद्वते । एवंभूताय यशसे । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः---सब शरीरधारी उस परमपिता की महिमा विचार पूर्वक गाकर तेजस्वी, सत्यवादी और यशस्वी होते हैं, उसको यह हमारा नमस्कार है ॥ ५ ॥

'पञ्च मानवाः' शब्द 'पञ्चजनाः' शब्द का पर्यायवाची है जिसका अर्थ "मनुष्य" है–निघ० २ । ३ । उसकी व्याख्या, निरु० ३ ।८ में इस प्रकार की है "पञ्चजनाः ' 'गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस, ऐसा कोई २ मानते हैं, चारों वर्ण और निषाद पाँचवां, यह औपमन्यव ऋषि का मत है निषाद किस लिये, इसमें पाप स्थित है ॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ६ ॥

उक्षऽअन्नाय । वशाऽअन्नाय । सोमऽपृष्ठाय । वेधसे । वैश्वानरऽज्येष्ठेभ्यः । तेभ्यः । अग्निऽभ्यः । हुतम् । अस्तु । एतत् ॥ ६ ॥

भाषार्थः–(उक्षान्नाय) प्रबलों के अन्नदाता, (वशान्नाय) वशीभूत निर्बल प्रजाओं के अन्नदाता, (सोमपृष्ठाय) अमृत सींचने वाले और (वेधसे) उत्पन्न करने वाले, (तेभ्यः) उन [चार प्रकार के] (वैश्वानरज्येष्ठेभ्यः) सब नरों के हितकारी [परमेश्वर] को प्रधान रखने वाले (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥६॥

६---**उक्षान्नाय** । **श्वनुक्षन्पूषन्०** (उ० १ । १५९) इति उक्ष सेचने वृद्धौ च–कनिन् । उक्षा महन्नाम-निघ० ३ । ३ । उक्षण उक्षतेर्वृद्धिकर्मणः । निरु० १२ । ६ । **कृवृजसिद्रूपन्यनि०** (उ० ३ । १० ।) इति अन प्राणने-नः । इति अन्नम् । उक्षाभ्यो महद्भ्यः प्रबलेभ्योऽन्नं यस्मात् तस्मै । प्रबलानां भोजनदात्रे । **वशान्नाय** । **वशिरण्योरुपसंख्यानम्** (वा०पा० ३ । ३ । ५८) इति वश कान्तौ––अप्, टाप् । वशाभ्यो वशीभूताभ्यः प्रजाभ्योऽन्न यस्मात् तस्मै । निर्बलप्रजानां भोजनदात्रे । **सोमपृष्ठाय** । **तिथपृष्ठगूथयूथप्रोथाः** (उ० २ । १२) इति पृषु सेचने-थक् । अमृतसेचकाय । **वेधसे** । अ० १ । ११ । १ । विधात्रे । विधानकर्त्रे । **वैश्वानरज्येष्ठेभ्यः** । वैश्वानर इति व्याख्यातम् । अ० १ । १० । ४ । विश्वनरहितः परमेश्वरो ज्येष्ठो वृद्धः प्रधानो येषां तेभ्यः । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस (वैश्वानर) सब मनुष्य आदि के हितकारी परमेश्वर की शक्ति से सब प्राणी पुष्ट होते हैं, उसको हमारा नमस्कार है ॥ ६ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध ऋग्वेद ८ । ४३ । ११ में है ॥

दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति ।
ये दिक्ष्व१न्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥७॥

दिवम् । पृथिवीम् । अनु । अन्तरिक्षम् । ये । विऽद्युतम् । अनुऽसंचरन्ति । ये । दिक्षु । अन्तः । ये । वाते । अन्तः । तेभ्यः । अग्निऽभ्यः । हुतम् । अस्तु । एतत् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(ये) जो [तेज] (दिवम्) सूर्य लोक में, (पृथिवीम्) पृथिवी में और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (अनु) लगातार और (विद्युतम्) बिजुली में (अनुसंचरन्ति) लगातार चलते रहते हैं, (ये) जो (दिक्षु अन्तः) दिशाओं के भीतर और (ये) जो (वाते अन्तः) पवन के भीतर हैं, (तेभ्यः) उन (अग्निभिः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥ ७ ॥

भावार्थः—जिस परमात्मा के तेज सब लोकों, सब पदार्थों और सब दिशाओं में हैं, उस जगदीश्वर को हमारा नमस्कार है ॥ ७ ॥

हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम् ।
विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम् ॥८॥

हिरण्यऽपाणिम् । सवितारम् । इन्द्रम् । बृहस्पतिम् । वरुणम् । मित्रम् ।

७—दिवम् । सूर्यलोकम् । **पृथिवीम्** । भूमिम् । **अनु** । अनुप्रविश्य । **ये** । अग्नयः । **विद्युतम्** । अ० १ । १३ । १ । विद्योतमानं तडितम् । **अनुसंचरन्ति** । अनुप्रविश्य सम्यग् गच्छन्ति व्याप्नुवन्ति । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निम् । विश्वान् । देवान् । अङ्गिरसः । हवामहे । इमम् । क्रव्यऽअदम् । शमयन्तु । अग्निम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(हिरण्यपाणिम्) सूर्य आदि तेजों से स्तुति किये हुए (सवितारम्) सबके प्रेरक (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य वाले (बृहस्पतिम्) बड़े लोकों के रक्षक (वरुणम्) सबमें श्रेष्ठ, (मित्रम्) हितकारी (अग्निम्) ज्ञान-स्वरूप परमेश्वर से (विश्वान्) सब (देवान्) विजय कराने वाले (अङ्गिरसः) ज्ञानों वा पुरुषार्थों को (हवामहे) हम मांगते हैं (इमम्) इस (क्रव्यादम्) मांस खाने वाले (अग्निम्) अग्नि [समान दुःख] को (शमयन्तु) वे शान्त कर दें ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर के अनुपम गुणों का अनुभव करके पुरुषार्थी बनें और अग्नि समान तापकारी और शरीर शोषक दुःखों का नाश करें ॥ ८ ॥

शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः ।
अथो यो विश्वद्राव्य१ स्तं क्रव्यादमशीशमम् ॥ ९ ॥

शान्तः । अग्निः । क्रव्यऽअत् । शान्तः । पुरुषऽरेषणः । अथो इति । यः । विश्वऽद्राव्यः । तम् । क्रव्यऽअदम् । अशीशमम् ॥ ९ ॥

८—**हिरण्यपाणिम्** । हिरण्यम्-इति व्याख्यातम् । अ० १ । ६ । २ । **अशिपणाय्योरुडायलुकौ च** (उ० ४ । १३३) इति पण व्यवहारे, पन स्तुतौ च—इण् । इति पाणिः । हिरण्यपाणिम्—हिरण्यानि सूर्यादीनि तेजांसि पाणौ स्तवने यस्य तम्-इति दयानन्दभाष्ये य० २२ । १० । **सवितारम्** । सर्वप्रेरकम् । **इन्द्रम्** । परमैश्वर्यवन्तम् । **बृहस्पतिम्** । बृहतां लोकानां रक्षकम् । **वरुणम्** । वरणीयम् । **मित्रम्** । स्नेहिनम् । **अग्निम्** । ज्ञानस्वरूपं परमेश्वरम् । **देवान्** । विजिगीषून् । **अङ्गिरसः** । अ० २ । १२ । ४ । अगि गतौ—भावे असिः, रुट् च । ज्ञानानि । पुरुषार्थान् । **हवामहे** । आह्वयामः । याचामहे । द्विकर्मकत्वात् अग्निम्—इत्यस्य, अङ्गिरसः इत्यस्य च कर्मत्वम् । **क्रव्यादम्** । **क्रव्ये च** (पा० ३ । २ । ६९) इति अदेर्विट् । मांसभक्षकम् । **शमयन्तु** । शान्तं कुर्वन्तु । **अग्निम्** । अग्निवत्तापकं दुःखम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(क्रव्यात्) मांस खाने वाला (अग्नि) अग्नि [समान तापकारी दुःख] (शान्तः) शान्त हो, (पुरुषरेषणः) पुरुषों का सताने वाला [कष्ट] (शान्तः) शान्त हो। (अथो) और भी (यः) जो (विश्वदाव्यः) सब [सुखों] का जलाने वाला है (तम्) उस (क्रव्यादम्) मांस खाने वाले [अग्निरूप दुःख] को (अशीशमम्) मैंने शान्त कर दिया है ॥ ९ ॥

भावार्थः—दूरदर्शी पुरुष विघ्नों को हटाकर आप सुखी रहते और सब को सुखी रखते हैं ॥ ९ ॥

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आपं उत्तानशीवरीः।
वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन् ॥ १० ॥

ये। पर्वताः। सोमऽपृष्ठाः। आपः। उत्तानऽशीवरीः। वातः। पर्जन्यः। आत्। अग्निः। ते। क्रव्यऽअदम्। अशीशमन् ॥ १० ॥

भाषार्थः—(ये) जो (पर्वताः) पहाड़ (सोमपृष्ठाः) सोम [अमृत-अर्थात् ओषधि वा जल] को पीठ पर रखने वाले हैं, [उन्होंने और] (उत्तानशीवरीः—०—वर्यः] ऊपर को मुख करके सोने वाले [सूर्य की ओर चढ़ने वाले] (आपः) जल, (वातः) पवन, (पर्जन्यः) मेघ, (आत्) और (अग्निः)

९—**शान्तः**। सुखकरः। **अग्निः**। अग्निवत्तापकरं दुःखम्। **क्रव्यात्**। म० ८। मांसभक्षकः। **पुरुषरेषणः**। रिष बधे-ल्युट्। पुरुषहिंसकः। **विश्वदाव्यः**। म० ३। सर्वसुखनाशनसमर्थः। **अशीशमम्**। शमु उपशमे—ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम्। अहं शान्तं कृतवान्। अन्यद् गतम्॥

१०—**पर्वताः**। पर्व पूरणे—अतच्। शैलाः। **सोमपृष्ठाः**। सोमः, अमृतम् ओषधिर्जलं वा पृष्ठे उपरिभागे येषां ते तथाभूताः। **आपः**। जलानि। **उत्तानशीवरीः**। उत्+तनु विस्तारे—घञ्। **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** (पा० ३।२। ७५) इति शीङः क्वनिप्। **वनो र च** (पा० ४। १। ७) इति ङीब्रेफौ। **वा**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि, (ते) उन सब ने (क्रव्यादम्) मांस भक्षक [अग्नि रूप दुःख] को (अशीशमन्) शान्त कर दिया है ॥ १० ॥

भावार्थः---मनुष्य प्रयत्न करें कि सोमलता आदि औषध उत्पन्न करने वाले पर्वत, जल, वायु, मेघ, अग्नि आदि सब पदार्थ शुद्ध रहकर सुखदायक होवें ॥ १० ॥

सूक्तम् २२ ॥

१--६ ॥ विश्वेदेवा देवताः । १, ३ त्रिष्टुप्, २, ४-६ अनुष्टुप् ॥

कीर्तिप्राप्त्युपदेशः--कीर्ति पाने के लिये उपदेश ॥

हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो अदित्या यत् तन्वः संबभूव । तत् सर्वे समदुर्मह्यमेतद् विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥ १ ॥

हस्तिऽवर्चसम् । प्रथताम् । बृहत् । यशः । अदित्याः । यत् । तन्वः । सम्ऽबभूव । तत् । सर्वे । सम् । अदुः । मह्यम् । एतत् । विश्वे । देवाः । अदितिः । सऽजोषाः ॥ १ ॥

भाषार्थः---(हस्तिवर्चसम्) हाथी के बल से युक्त (बृहत्) बड़ा (यशः) यश (प्रथताम्) फैले, (यत्) जो (अदित्याः) अदीन वेद वाणी वा प्रकृति के

छन्दसि (पा० ६ । १ । १०६) इति जसि पूर्वसवर्णदीर्घः । ऊर्ध्वमुखशयाः । सूर्याभिमुखवर्त्तमानाः । **वातः** । वायुः । **पर्जन्यः** । सेचको मेघः । **आत्** । अपि च । **अग्निः** । पावकः । **क्रव्यादम्** । मांसभक्षकं रोगम् । **अशीशमन्** । शमु णिच्, लुङि । शान्तं कृतवन्तः ॥

१--**हस्तिवर्चसम्** । **हस्ताज्जातौ** (पा० ५ । २ । १३३) इति हस्त-इनिः । **अर्श आदिभ्योऽच्** (पा० ५ । २ । १२७) इति वर्चस्—अच् मत्वर्थे । गजस्य बल-युक्तम् । **प्रथताम्** । प्रथ प्रख्याने--लोट् । प्रख्यातं भवतु । **बृहत्** । महत् । **यशः** । कीर्त्तिः । **अदित्याः** । अ० २ । २८ । ४ । अदितिः, वाक्—निघ० १ । ११ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तन्वः) विस्तार से (संबभूव) उत्पन्न हुआ है, (तत्) सो (एतत्) यह [यश] (मह्यम्) मुझको (सजोषाः) समान प्रीति वाली (अदितिः) अखण्ड वेदवाणी वा प्रकृति और (विश्वे) सब (देवाः) प्रकाशमान गुणों ने (सर्वे) सर्वव्यापक विष्णु भगवान् में (सम्) ठीक प्रकार से (अदुः) दिया है ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्य वेद विद्या और प्रकृति के यथावत् ज्ञान से (जिस सब का केन्द्र परमेश्वर है) हाथी आदि का सामर्थ्य पाकर यशस्वी होता है। म० ६ देखो ॥ १ ॥

भगवान् पतञ्जलि का वचन है—

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ यो० द० ३ । २३ ॥

बलों में [संयम करने से] हाथी के से बल हो जाते हैं ॥

मित्रश्च॒ वरु॑णश्चेन्द्रो॑ रु॒द्रश्च॑ चेतति ।
दे॒वासो॑ वि॒श्वधा॑यस॒स्ते मा॑ऽजन्तु॒ वर्च॑सा ॥ २ ॥

मि॒त्रः । च॒ । वरु॑णः । च॒ । इन्द्रः॑ । रु॒द्रः । च॒ । चे॒त॒तु॒ ।
दे॒वासः॑ । वि॒श्वऽधा॑यसः । ते । मा॒ । अ॒ज॒न्तु॒ । वर्च॑सा ॥२॥

भाषार्थः—(मित्रः) सबका मित्र, (च) और (वरुणः) अति श्रेष्ठ,(च) और (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् (च) और (रुद्रः) ज्ञान दाता वा दुःखनाशक

अदीनाया वेदवाण्याः, प्रकृतेर्वा । **यत्** । यशः । **तन्वः** । अ० १ । १ । १ । शरीरात् । विस्तृतेः । **संबभूव** । उत्पन्नमभवत् । **सर्वे** । **सर्वनिघृष्व०** (उ० १ । १५३) इति सृ गतौ–वन्, सरति गच्छति व्याप्नोतीति सर्वः, शिवः, विष्णुः । तस्मिन् व्यापके परमेश्वरे । **सम्** । सम्यक् । **अदुः** । दाञो लुङ् । दत्तवन्तः । **मह्यम्** । मदर्थम् । **विश्वे** । सर्वे । **देवाः** । दिव्यगुणाः । **अदितिः** । अदीना, अखण्डिता वा वेदवाणी प्रकृतिर्वा । **सजोषाः** । समान+जुषी प्रीति-सेवनयोः—असुन् । समानप्रीतिः ॥

२—**मित्रः** । सर्वप्रेरकः । सर्वहितकारी । **वरुणः** । वरणीयः । श्रेष्ठः । **इन्द्रः** । परमैश्वर्यवान् । **रुद्रः** । अ० २ । २७ । ६ । रुत्–रः । ज्ञानदाता । दुःख-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमेश्वर (चेततु) चेताता रहे, और (ते) वे [प्रसिद्ध] (विश्वधायसः) सब जगत् के पोषण करने वाले (देवासः=देवाः) दिव्य पदार्थ [पृथिवी, जल, वायु, तेज, आकाश आदि] (मा) मुझको (वर्चसा) तेज वा बल से (अञ्जन्तु) कान्ति वाला करें ॥ २ ॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष परमेश्वर की महिमा को जानें और विज्ञान पूर्वक सब पदार्थों से उपकार लेकर तेजस्वी और यशस्वी होवें ॥ २ ॥

येनं हुस्ती वर्चसा संबभूव येन राजा मनुष्येष्वप्स्व-
१ न्तः येनं देवा देवतामग्रं आयन् तेन मामद्य वर्च-
सागनें वर्चस्विनं कृणु ॥ ३ ॥

येनं । हुस्ती । वर्चसा । सम्ऽबभूवं । येनं । राजा । मनुष्येषु । अप्ऽसु । अन्तः । येनं । देवाः । देवताम् । अग्रं । आयन् । तेनं । माम् । अद्य । वर्चसा । अग्नें । वर्चस्विनम् । कृणु ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(येन) जिस (वर्चसा) तेज से (हस्ती) हाथी, और (येन) जिस [तेज] से (राजा) ऐश्वर्यवान् राजा (मनुष्येषु) मनुष्यों और (अप्सु अन्तः) जल और अन्तरिक्ष के भीतर (संबभूव) पराक्रमी हुआ है, और

नाशकः परमेश्वरः । **चेततु** । चिती संज्ञाने । चेतयतु । **देवासः** । असुगागमः । पृथिव्यादिदेवाः । **विश्वधायसः** । **वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि** (उ० ४ । २२१) इति विश्व + दधातेरसुन् । **आतो युक् चिण्कृतोः** (पा० ७ । ३ । ३३) इति युक् । सर्वस्य जगतो धातारः पोषयितारः । **ते** । प्रसिद्धाः । **अञ्जन्तु** । अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु । प्रकाशयन्तु । संयोजयन्तु । **वर्चसा** । तेजसा । बलेन ॥

३—हस्ती । म० १ । गजः । **वर्चसा** । तेजसा । **संबभूव** । समर्थो बभूव । **राजा** । राजति ईष्टे स राजा । ऐश्वर्यवान् पुरुषः । **मनुष्येषु** । अ० ३ । ४ । ६ । मनु-यत्, षुगागमः । मननशीलेषु । स्थलप्राणिषु, इत्यर्थः । **अप्सु** । उदकेषु—निघ० १ । १२ । अन्तरिक्षे-निघ० १ । ३ । **अन्तः** । मध्ये । **देवाः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(येन) जिस [तेज] से (देवाः) देवताओं [महात्मा पुरुषों] ने (अग्रे) पहिले काल में (देवताम्) देवतापन (आयन्) पाया है, (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर ! (तेन वर्चसा) उस तेज से (माम्) मुझको (अद्य) आज (वर्चस्विनम्) तेजस्वी (कृणु) कर ॥ ३ ॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष हाथी आदि पशुओं, और पूर्वज शूर वीर ऋषि महात्माओं के बुद्धिबल का अनुभव करके (अद्य) आज अर्थात् शीघ्र उपाय से जल, थल, और आकाश में, (अग्नि) परमेश्वर की भक्ति के साथ, अपनी गति बढ़ावें और अग्नि के समान तेजस्वी होकर संसार में कीर्त्तिमान् होवें ॥३॥

योगेश्वर पतञ्जलि का वचन है—

तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ यो. द. १ । २१ ॥

[समाधि लाभ] उग्र अच्छे वेग वालों के समीप होता है ॥

यत् ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्याहुतेः ।
यावत् सूर्यस्य वर्च आसुरस्य च हस्तिनः ।
तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्रजा ॥ ४ ॥

यत् । ते । वर्चः । जातऽवेदः । बृहत् । भवति । आऽहुतेः । यावत् । सूर्यस्य । वर्चः । आसुरस्य । च । हस्तिनः । तावत् । मे । अश्विना । वर्चः । आ । धत्ताम् । पुष्करऽस्रजा ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(यत्) जिस कारण से (जातवेदः) उत्पन्न संसार के

विजिगीषवो महात्मानः । **देवताम्** । देवत्वम् । माहात्म्यम् । **अग्रे** । पूर्वकाले । **आयन्** । इण् गतौ—लङ् । प्राप्नुवन् । **माम्** । उपासकम् । **अद्य** । अ० १ । १ । १ । अस्मिन् दिने । तत्कालम् । **अग्ने** । हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् । **वर्चस्विनम्** । तेजस्विनम् । **कृणु** । कुरु ॥

४—**यत्** । यस्मात् कारणात् । **ते** । तुभ्यम् । **वर्चः** । तेजः । बलम् । **जात-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान वाले परमेश्वर ! (ते) तेरे लिये (आहुतेः) आहुति [आत्मदान] से [हमारा] (वर्चः) तेज (बृहत्) बड़ा (भवति) होता है, (यावत्) जितना (वर्चः) तेज वा बल (आसुरस्य) प्राणियों वा मेघों के हितकारक (सूर्यस्य) सूर्य का (च) और (हस्तिनः) हाथी का है, (तावत्) उतना (वर्चः) तेज वा बल (मे) मेरे लिये (पुष्करस्रजा--०—औ) पोषण देने वाले (अश्विना = ०---नौ) माता पिता वा सूर्य्य चन्द्रमा (आधत्ताम्) सब प्रकार देवें ॥ ४ ॥

भावार्थः---सब स्त्री पुरुष माता पिता की सुशिक्षा और सूर्य चन्द्रमा के समान नियम से परमेश्वर की आज्ञा पालनमें मन लगाकर अपना बल बढ़ावें और सूर्य आदि दूरस्थ और हाथी आदि पृथिवीस्थ पदार्थों का बल, विज्ञान द्वारा जानकर उन्नति करें ॥ ४ ॥

यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत् समश्नुते ।
तावत् समैत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ॥ ५ ॥

यावत् । चतस्रः । प्रऽदिशः । चक्षुः । यावत् । सम्ऽअश्नुते ।
तावत् । सम्ऽऐतु । इन्द्रियम् । मयि । तत् । हस्तिऽवर्चसम् ॥ ५ ॥

वेदः । अ० १ । ७ । २ । हे जातस्य उत्पन्नस्य संसारस्य ज्ञातः परमेश्वर ! **बृहत्** । महत् । **आहुतेः** । दानात् । आत्मसमर्पणात् । **यावत्** । अ० ३ । १५ । ३ । यत्परिमाणम् । **सूर्यस्य** । आदित्यस्य । **आसुरस्य** । असुर इति व्याख्यातम् अ० १ । १० । १ । असुः प्राणः—रो मत्वर्थीयः । असुरः प्राणी, ततो अण्प्रत्ययः । प्राणिभ्यो हितस्य । यद्वा, असुरो मेघः—निघ० १।१० । तेभ्यो हितस्य । **हस्तिनः** । गजस्य । **तावत्** । तत्परिमाणम् । **मे** । मह्यम् । **अश्विना** । अ० २ । २९ । ६ । मातापितरौ । सूर्याचन्द्रमसौ । **आ धत्ताम्** । समन्तात् स्थापयताम् । प्रयच्छताम् । **पुष्करस्रजा** । **पुषः किद्** (उ०४ । ४) इति पुष पुष्टौ—करन् । पुष्णातीति पुष्करम् । **ऋत्विग्दधृक्स्रग्०** (पा० ३ । २ । ५९) इति सृज विसर्गे = दाने क्विन् । पोषणदातारौ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यावत्) जितनी दूर (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) महादिशायें हैं, और (यावत्) जितनी दूर (चक्षुः) आंख [दर्शन शक्ति] (समश्नुते) फैलती है, (तावत्) वहां तक (मयि) मुझमें (तत्) वह (हस्तिवर्चसम्) हाथी के बल वाला (इन्द्रियम्) परम ऐश्वर्य (समैतु) आकर मिले ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्य सब पार्थिव और दिव्य पदार्थों के यथावत् ज्ञान से सामर्थ्य बढ़ाकर उन्नति करें ॥ ५ ॥

हस्ती मृगाणाँ सुषदामतिष्ठावान् बभूव हि ।
तस्य भगेन वर्चसाभि षिञ्चामि मामहम् ॥ ६ ॥

हस्ती । मृगाणाम् । सुऽसदाम् । अतिस्थाऽवान् । बभूव । हि ।
तस्य । भगेन । वर्चसा । अभि । सिञ्चामि । माम् । अहम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(हि) क्योंकि (सुषदाम्) सुख से चढ़ने योग्य (मृगाणाम्) पशुओं में (हस्ती) हाथी (अतिष्ठावान्) प्रतिष्ठा वाला (बभूव) हुआ है, (तस्य) उसके (भगेन) सेवनीय (वर्चसा) कान्ति से (अहम्) मैं (माम्) अपने को (अभिषिञ्चामि) भले प्रकार सींचूँ [शुद्ध करूं] ॥ ६ ॥

५—**चतस्रः** । चतुः संख्याकाः । **प्रदिशः** । महादिशः । **चक्षुः** । अ० १ । ३३ । ४ । नेत्रम् । दर्शनसामर्थ्यम् । **समश्नुते** । सम्यग् व्याप्नोति । **समैतु** । सम् + आ एतु । सम्यग् आगच्छतु । **इन्द्रियम्** । अ० १ । ३५ । ३ । इन्द्र-घच् । इन्द्रस्य परमैश्वर्ययुक्तस्य लिङ्गम् । परमैश्वर्यम् । **मयि** । ईश्वरभक्ते । **तत्** । प्रसिद्धम् । **हस्तिवर्चसम्** । म० १ । गजस्य बलयुक्तम् ॥

६—**हस्ती** । गजः । **मृगाणाम्** । पशूनां मध्ये । **सुषदाम्** । अ० ३ । १४ । १ । सुखेन सदनयोग्यानाम् । **अतिष्ठावान्** । **आतश्चोपसर्गे** (पा० ३ । १ । १३६) इति अति + ष्ठा—अङ्, टाप्, मतुप् । प्रतिष्ठावान् । **हि** । यस्मात् कारणात् । **तस्य** । गजस्य । **भगेन** । भजनीयेन । सेवनीयेन । **वर्चसा** । तेजसा । **अभि** । सर्वतः । **सिञ्चामि** । शोधयामि । **माम्** । आत्मानम् । **अहम्** । उपासकः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे हाथी में अन्य पशुओं से अधिक बुद्धि बल होता है, वैसे ही प्रधान पुरुष अन्य पुरुषों से अधिक बुद्धिबल वाला होवे ॥ ६ ॥

सूक्तम् २३ ॥

१—६ ॥ माता देवता । १—४ अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः, ६ पूर्वार्ध-स्त्रिष्टुप्, उत्तरार्धोऽनुष्टुप् ।

वीरसन्तानोत्पादनोपदेशः—वीर सन्तान उत्पन्न करने के उपदेश ॥

येन॑ वे॒हद् ब॒भूवि॑थ ना॒शया॑मसि॒ तत् त्वत् ।
इ॒दं तद॒न्यत्र॒ त्वद॑प॑ दू॒रे नि द॑ध्मसि ॥ १ ॥

येन॑ । वे॒हत् । ब॒भूवि॑थ । ना॒शया॑मसि । तत् । त्वत् ।
इ॒दम् । तत् । अ॒न्यत्र॑ । त्वत् । अप॑ । दू॒रे । नि । द॒ध्म॒सि॒ ॥ १ ॥

भाषार्थः—[हे स्त्री] (येन) जिस कारण से तू (वेहत्) बन्ध्या [बांझ] (बभूविथ) हुई है, (तत्) उस कारण को (त्वत्) तुझसे (नाशयामसि) हम नष्ट करते हैं । (इदम्=इदानीम्) अभी (तत्) उसको (त्वत्) तुझसे (अन्यत्र) और कहीं (दूरे) दूर (अप=अपहृत्य) हटाकर (नि दध्मसि=०—ध्मः) हम रखते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—सद्वैद्य पुत्रेष्टि यज्ञ करके ओषधि द्वारा बांझपन मिटाकर वीर सन्तान उत्पन्न करते हैं, देखो—श्रीमद् दयानन्दकृत संस्कार विधि—गर्भाधान प्रकरण ॥ १ ॥

१—येन । येन पापजन्यरोगादिना । **वेहत्** । **संश्वत्तृपद्वेहत्** (उ० २।८५) इति वि+हन हिंसागत्योः-अति । इकारस्य एकारो नलोपश्च निपात्येते । विशेषेण हन्ति गर्भं या गर्भघातिनी । बन्ध्या । **नाशयामसि** । नाशयामः । चिकित्सया अपहन्मः । **त्वत्** । त्वत्तः सकाशात् । **इदम्** । इदानीम् । **दूरे** । दूरदेशे । **अप नि दध्मसि** । अपहृत्य निक्षिपामः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ ते॒ योनिं॒ गर्भ॑ एतु॒ पुमा॒न् बाण॑ इवेषु॒धिम् ।
आ वी॒रोऽत्र॑ जायतां पु॒त्रस्ते॒ दश॑मास्यः ॥ २ ॥

आ । ते॒ । योनि॑म् । गर्भः॑ । ए॒तु॒ । पुमा॑न् । बाणः॑ऽइव । इ॒षु॒ऽधिम् ।
आ । वी॒रः । अत्र॑ । जा॒य॒ता॒म् । पु॒त्रः । ते॒ । दश॑ऽमास्यः ॥ २ ॥

भाषार्थः—[हे सुभगे] (पुमान्) रक्षा करने वाला, पराक्रमी (गर्भः) गर्भ (ते) तेरे (योनिम्) गर्भाशय में (आ एतु) आवे, (बाणः इव) जैसे बाण (इषुधिम्) तूणीर [तीरों के थैले] में । (अत्र) इस घर में (दशमास्यः) दश महीने तक पुष्ट हुआ, (ते) तेरा (वीरः) वीर, (पुत्रः) कुलशोधक बालक (आ जायताम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न हो ॥ २ ॥

भावार्थः—वधू और वर यथाविधि ब्रह्मचारी रहकर युक्त आहार विहार करके सन्तान उत्पन्न करें, जिससे गर्भ अवश्य स्थिर रहे और पूर्ण रीति से पुष्ट होकर वीर सन्तान उत्पन्न हो ॥ २ ॥

यहां पर अथर्ववेद का० १ सू० ११ मन्त्र ६ का मिलान करो ।

ऋग्वेद में ऐसा वर्णन है—

दश॒ मासा॑ञ्छशया॒नः कु॑मा॒रो अधि॑ मा॒तरि॑ ।
नि॒रैतु॑ जी॒वो अक्ष॑तो जी॒वो जीव॑न्त्या॒ अधि॑ ॥ ऋ० ५ । ७८ । ९ ॥

२—**योनिम्** । अ० १ । ११ । ३ । गर्भाशयम् । **गर्भः** । अ० १ । ११ । २ । भ्रूणः । उदरस्थबालकः । **आ, एतु** । आगच्छतु । **पुमान्** । अ० १ । ८ । १ । पा रक्षणे—डुमसुन् । रक्षणसमर्थः सन्तानः । **बाणः** । बण शब्दे गतौ वा—घञ् । शरः । नाराचः । **इषुधिम्** । **कर्मण्यधिकरणे च** (पा० ३ । ३ । ९३) इति इषु + धा—किः । निषङ्गम् । **वीरः** । शूरः । **अत्र** । अस्मिन् कुले । **जायताम्** । उत्पद्यताम् । **पुत्रः** । अ० १ । ११ । ५ । कुलशोधकः, पुरुत्राता । पुतो नरकात् त्राता सन्तानः । यथा तनयः, सूनुः, इति अपत्यनामसु पठितम्—निघ० २ । २ । **दशमास्यः** । अ० १ । ११ । ६ । दशमासान् भृतः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मातरि अधि) माता के गर्भ में जो (कुमारः) बालक (दश मासान्) दस महीनों तक (शशयानः) सोता रहा है, वह (जीवः) जीता हुआ (अक्षतः) घाव से रहित (जीवः) जीव (जीवन्त्याः अधि) जीवती हुई माता से (निरैतु) बाहिर आवे ॥

सायणाचार्य ने यह मन्त्र इस प्रकार श्लोक में लिखा है—

दश मासानुषित्वासौ जननीजठरे सुखम् ।
निर्गच्छतु सुखं जीवो जननी चापि जीवतु ॥ ऋ०/सा० भा० ५ । ७८ । ९ ॥

(जननीजठरे) माता के पेट में (सुखम्) सुख से (दश मासान्) दस महीनों तक (उषित्वा) सोकर (असौ जीवः) वह जीव (निर्गच्छतु) बाहिर आवे, (च) और (जननी अपि) माता भी (जीवतु) जीवित रहे ॥ २ ॥

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् ।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ॥ ३ ॥

पुमांसम् । पुत्रम् । जनय । तम् । पुमान् । अनु । जायताम् ।
भवासि । पुत्राणाम् । माता । जातानाम् । जनयाः । च । यान् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे वधू] (पुमांसम्) रक्षा करने वाला (पुत्रम्) बहुरक्षक, वीर सन्तान (जनय) उत्पन्न कर, (तम् अनु) उसके पीछे (पुमान्) रक्षा करने वाला वीर बालक (जायताम्) उत्पन्न होवे । (जातानाम्) उत्पन्न हुये (पुत्राणाम्) नरक से बचाने वाले सन्तानों की (माता) माननीय माता (भ-

---

३—**पुमांसम्** । म० २ । रक्षणसमर्थम् । **पुत्रम्** । म० २ । पुरुत्रातारम् । नरकात् त्रातारम् । सन्तानम् । **जनय** । उत्पादय । **तम् अनु** । तमनुसृत्य । तत्पश्चात् । **भवासि** । लेटि आडागमः । त्वं भूयाः । **माता** । अ० १ । २ । १ । माननीया । जननी । **जातानाम्** । उत्पन्नानाम् । **जनयाः** । जनेर्ण्यन्तात् लेटि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासि) हो, (च) और [उनकी भी] (यान्) जिनको (जनयाः) तू उत्पन्न करे ॥ ३ ॥

भावार्थः—माता पिता ब्रह्मचर्य और इष्ट भोजन, छादन, व्यायाम आदि से प्रयत्न करें कि उनके सब पुत्र पुत्री सदैव पराक्रमी उत्पन्न होवें, और माता पिता तथा संसार की सेवा करके 'पुमान्' रक्षक बने रहें ॥ ३ ॥

यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च ।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ॥ ४ ॥

यानि । भद्राणि । बीजानि । ऋषभाः । जनयन्ति । च ।
तैः । त्वम् । पुत्रम् । विन्दस्व । सा । प्रऽसूः । धेनुका । भव ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(च) और (यानि) जैसे (भद्राणि) मङ्गल दायक (बीजानि) बालकों को (ऋषभाः) सूक्ष्मदर्शी ऋषि लोग, अथवा, ऋषभ ओषधि के रस (जनयन्ति) उत्पन्न करते हैं, (तैः) वैसे ही [सन्तानों] के साथ (त्वम्) तू (पुत्रम्) कुलशोधक वा बहुरक्षक बालक को (विन्दस्व) प्राप्त कर, (सा=सा त्वम्) सो तू (प्रसूः) जनने वाली (धेनुका) दूध पिलाने वाली माता [अथवा दुधैल गौ के समान] (भव) हो ॥ ४ ॥

आडागमः । त्वं जनयेः । **यान्** । पुत्रान्, तेषामपि—इति शेषः । अन्यद् गतम् ॥

४—**यानि** । यादृशानि । **भद्राणि** । मङ्गलप्रदानि । अमोघवीर्याणि । **बीजानि** । अ० ३ । १७ । २ । अपत्यानि–निघ० २।२ । **ऋषभाः** । अ० ३ । ६ । ४ । सूक्ष्मदर्शिनः । ऋषयः । ऋषभौषधविशेषस्य रसाः । तस्य गुणाः । मधुरत्वम् । शीतत्वम् । रक्तपित्तविरेकनाशित्वम् । शुक्रश्लेष्मकारित्वम् । दाहक्षयज्वरहरत्वं च इति शब्दकल्पद्रुमे । **जनयन्ति** । उत्पादयन्ति । **तैः** । तथाविधैः । **विन्दस्व** । विदॢ लाभे । लभस्व । **सा** । सा त्वम् । **प्रसूः** । **सत्सूद्विष०** (पा० ३ । २ । ६१) इति प्र+षूङ् प्राणिप्रसवे–क्विप् । सन्तानोत्पादिका । **धेनुका** । अ० ३ । १० । १ । धेनुरेव धेनुका । स्वार्थिकः कः । दुग्धदात्री । तर्पयित्री । धेनुवत् पोषयित्री ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य बड़े लोगों से ब्रह्मचर्य विद्या और ओषधि विद्या प्राप्त करके बली धर्मात्मा सन्तान उत्पन्न करें। और बलवती माता अपने बच्चों को अपना दूध पिला कर बलवान् करे, जैसे गौ दूध पिला कर बच्चे को पुष्ट बनाती है ॥ ४ ॥

शब्दकल्पद्रुम कोष में ऋषभ औषध को मधुर, शीतल, रक्तपित्तविरेकनाशी, वीर्य श्लेष्मकारी, और दाहज्वरहारी लिखा है ॥

कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते । विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वं भव ॥ ५ ॥

कृणोमि । ते । प्राजाऽपत्यम् । आ । योनिम् । गर्भः । एतु । ते । विन्दस्व । त्वम् । पुत्रम् । नारि । यः । तुभ्यम् । शम् । असत् । शम् । ऊँ इति । तस्मै । त्वम् । भव ॥ ५ ॥

भाषार्थः— (ते) तेरे लिये (प्राजापत्यम्) सन्तान रक्षक कर्म [गर्भाधान, पुंसवनादि संस्कार] (कृणोमि) मैं करता हूँ, (ते) तेरा (गर्भः) गर्भ (योनिम्) गर्भाशय में (आ एतु) आवे। (नारि) हे नर की हितकारिणी ! (त्वम्) तू (पुत्रम्) कुलशोधक सन्तान (विन्दस्व) प्राप्त कर, (यः) जो (तुभ्यम्) तुझको (शम्) सुखदायक (असत्) होवे, (उ) और (त्वम्) तू (तस्मै) उसको (शम्) सुख दायक (भव) हो ॥ ५ ॥

भावार्थः—सब मनुष्य वैद्यक शास्त्र के अनुसार उचित काल में उचित रीति से अमोघ गर्भाधानादि संस्कार करके सन्तान उत्पन्न करें, जिससे उस सन्तान का जन्म, आप उसको और माता पिता आदि सबको सुखदायक हो ॥ ५ ॥

५- **कृणोमि** । करोमि । **ते** । तुभ्यम् । **प्राजापत्यम्** । **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** (पा० ४ । १ । ८५) इति प्रजापति-ण्यः । प्रजापतेर्गृहस्थस्य कर्म धर्म वा । गर्भाधानपुंसवनादिसंस्कारम् । **नारि** । अ० १ । ११ । १ । हे नरस्य धर्म्ये । **शम्** । सुखहेतुः । **उ** । अपि च । अन्यद् गतम्—म० २, ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ।
तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोषधयः ॥ ६ ॥

यासाम् । द्यौः । पिता । पृथिवी । माता । समुद्रः । मूलम् । वीरुधाम् । बभूव । ताः । त्वा । पुत्रऽविद्याय । दैवीः । प्र । अवन्तु । ओषधयः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यासाम् वीरुधाम्) जिन उगने वाली अन्नादि ओषधियों का (द्यौः) सूर्य (पिता) पालने वाला, (पृथिवी) पृथिवी (माता) उत्पन्न करने वाली, और (समुद्रः) समुद्र [जल] (मूलम्) जड़ (बभूव) हुआ है, (ताः) वे (देवीः) दिव्य गुणवाली (ओषधयः) औषधें (पुत्रविद्याय) सन्तान पाने के लिये (त्वा) तेरी (प्र) अच्छे प्रकार (अवन्तु) रक्षा करें ॥ ६ ॥

भावार्थः—अन्न आदि अनेक ओषधियां सूर्य द्वारा वृष्टि और प्रकाश पाकर पृथिवी और जल के संयोग से उत्पन्न होती हैं, उनमें से उत्तम २ बलवर्धक औषधों के उचित खान पान से माता पिता उत्तम सन्तान उत्पन्न करें ॥ ६ ॥

सूक्तम् २४ ॥

१–७ ॥ प्रजापतिर्देवता । १, ३–७ अनुष्टुप्, २ पङ्क्तिः ॥

धान्यसमृद्धिकर्मोपदेशः—धान्य बढ़ाने के कर्म का उपदेश ॥

६—**द्यौः** । अ० २ । १२ । ६ । द्योतमानः सूर्यः । **पिता** । अ० १ । २ । १ । वृष्टिदानेन रक्षको जनयिता । **पृथिवी** । अ० १ । २ । १ । विस्तृता भूमिः । **माता** । अ० ३ । ९ । १ । निर्मात्री । जननी । **समुद्रः** । अ० १ । १३ । ३ । समुन्दनशीलः सागरः । **मूलम्** । अ० २ । ७ । ३ । मुख्यकारणम् । **वीरुधाम्** । अ० १ । ३२ । १ । विरोहणस्वभावानाम् । ओषधीनाम् । **पुत्रविद्याय** । **संज्ञायां समजनिषदनिपत०** (पा० ३ । ३ । ९९) इति विद्लृ लाभे, छन्दसि भावे क्यप् । सन्तानलाभाय । **दैवीः** । अ० १ । १९ । २ । दैव्यः । दिव्याः । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः ।
अथो पयस्वतीनामा भरेऽहं सहस्रशः ॥ १ ॥

पयस्वतीः । ओषधयः । पयस्वत् । मामकम् । वचः । अथो इति । पयस्वतीनाम् । आ । भरे । अहम् । सहस्रऽशः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ओषधयः) ओषधियाँ, चावल जौ आदि वस्तुयें (पयस्वतीः =०—त्यः) सारवाली होवें, और (मामकम्) मेरा (वचः) वचन (पयस्वत्) सार वाला होवे । (अथो) और भी (अहम्) मैं (पयस्वतीनाम्) सारवाली [ओषधियों] का (सहस्रशः) सहस्रों प्रकार से (आ) यथा विधि (भरे) धारण करूँ ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्य विद्या पूर्वक अन्न आदि पदार्थों को उत्तम बनावें और दृढ़ सत्य वचन बोलें । ऐसा करने से शारीरिक और आत्मिक उन्नति होती है ॥ १ ॥

मनु महाराज का वचन है—

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ।
ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ मनु० १ । ४६ ॥

भूमि को फोड़कर उपजने वाले, और बीज वा शाखा से उगने वाले सब वृक्ष हैं, फल पाक के साथ नष्ट होने वाली और बहुत फूल फल वाली ओषधियां [चावल, जौ आदि] हैं ॥ १ ॥

वेदाहं पयस्वन्तं चकारं धान्यं बहु । संभृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे यो योऽयज्वनो गृहे ॥ २ ॥

१—**पयस्वतीः** । पयस्वत्यः । सारवत्यः । **ओषधयः** । अ० १ । २३ । १ । व्रीहियवाद्याः । **पयस्वत्** । सारयुक्तम् । **मामकम्** । मदीयम् । **वचः** । वचनम् । **अथो** । अपि च । **पयस्वतीनाम्** । कर्मणि षष्ठी । सारवतीनामोषधीनाम् । **आ** । समन्तात् । **भरे** । भरामि । **सहस्रशः** । **बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्** (पा० ५ । ४ । ४२) इति सहस्र—शस् । बहुप्रकारेण ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद । अहम् । पयस्वन्तम् । चकार । धान्यम् । बहु । सम्ऽभृत्वा । नाम । यः । देवः । तम् । वयम् । हवामहे । यःऽयः । अयज्वनः । गृहे ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (पयस्वन्तम्) सार वाले परमेश्वर को (वेद) जानता हूँ । (बहु) बहुत सा (धान्यम्) धान्य (चकार) उसने उत्पन्न किया है । (यः) जो (देवः) दानशील ईश्वर (संभृत्वा) यथावत् पोषक (नाम) नाम (अयज्वनः) यज्ञ न करने वाले के (गृहे) घर में (योयः = यस्-यः) गति वाला है, (तम्) उस [परमात्मा] का (वयम्) हम (हवामहे) आवाहन करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—प्रत्येक प्राणी उस उत्तम पदार्थों के भण्डार परमात्मा को जानता है जो अनेक अन्न उपजा कर [धर्मात्माओं का तो क्या कहना है] पापियों तक के घर भोजन पहुँचाता है । हम उसकी उपासना नित्य किया करें ॥ २ ॥

शेख सादी शीराजी ने अपनी पुस्तक पुष्पवाटिका [गुलिस्ताँ] में इस मन्त्र का आशय इस प्रकार दिखलाया है—

२—**वेद** । वेद्मि । जानामि । **अहम्** । मनुष्यः । **पयस्वन्तम्** । सारवन्तं परमात्मानम् । **चकार** । स उत्पादयामास । **धान्यम्** । अ० २ । २६ । ५ । धारणसाधनम् । अन्नम् । **बहु** । अधिकम् । **संभृत्वा** । **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** (पा० ३ । २ । ७५) इति सम् + भृञ् भरणे—क्विप् । **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** (पा० ६ । १ । ७१) इति तुक् । संभरणशीलः । सम्यक् पोषकः । **नाम** । एतत्संज्ञः **देवः** । दानशीलः । **हवामहे** । आह्वयामः । **योयः** । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति या प्रापणे-असुन् = यस् । या—डः । यस् गमनं याति प्राप्नोतीति योयः । गतियुक्तः । **अयज्वनः** । **सुयजोर्ङ्वनिप्** (पा० ३ । २ । १०३) इति यज—ङ्वनिप् । अकृतयागस्य । देवपूजासंगतिकरणदानरहितस्य । **गृहे** । गेहे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ऐ करीमे कि अज खजानै गैब । गब्रो तर्सा वजीफा खुरदारी ।। १ ।।

दोस्तां रा कुजा कुनी महरूम् । तो कि बा दुश्मनां नजरदारी ।। २ ।।"

हे ऐसे उदार कि तू गुप्त कोष से विरोधी और नास्तिक को पेटियाँ खिलाता है। मित्रों को तू कब निराश करे, जब कि तू द्वेषियों पर आँख रखता है ।।

इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः ।
वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान् ।। ३ ।।

इमाः । याः । पञ्च । प्रऽदिशः । मानवीः । पञ्च । कृष्टयः ।
वृष्टे । शापम् । नदीःऽइव । इह । स्फातिम् । सम्ऽआवहान् ।। ३ ।।

उदुत्सं शतऽधारं सहस्रधारमक्षितम् ।
एवास्माकेदं धान्यꣳ सहस्रधारमक्षितम् ।। ४ ।।

उत् । उत्सम् । शतऽधारम् । सहस्रऽधारम् । अक्षितम् ।
एव । अस्माकं । इदम् । धान्यम् । सहस्रऽधारम् । अक्षितम् ।। ४ ।।

भाषार्थः—(इमाः) यह (याः) जो (मानवीः=c—व्यः) मानुषी (पञ्च) पांच भूत [पृथिवी आदि] से संबन्ध वाली (कृष्टयः) प्रजायें (पञ्च प्रदिशः) पांच फैली हुई दिशाओं में हैं, वे प्रजायें (शापम्) अनिष्ट वा मलिनता हटा कर (इह) यहाँ पर (स्फातिम्) बढ़ती को (समावहान्) यथावत् लावें,

---

३, ४—**इमाः** । परिदृश्यमानाः । **याः** । **पञ्च** । पञ्चसंख्याकाः । **प्रदिशः** । **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** (पा० २ । ३ । ५) इति द्वितीया । चतस्रः प्राच्याद्याः, पञ्चमी ध्रुवा दिग्, ऊर्ध्वा दिग् वा । **मानवीः** । अ० ३ । २१ । ५ । मानव—ङीप् । मानव्यः मानुष्यः । **पञ्च** । पञ्चभूतसंबन्धिन्यः । **कृष्टयः** । **क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्** (पा० ३ । ३ । १७४) इति कृष विलेखने—क्तिच् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (नदीः इव नद्यः इव) जैसे नदियाँ (वृष्टे) बरसने पर [अनिष्ट वा मलिनता हटा कर] (शतधारम्) सैकड़ों धाराओं वाले और (सहस्रधारम्) सहस्रों विधि से धारण करने वाले, (अक्षितम्) अक्षय (उत्सम्) सींचने के साधन [झरना, कूप आदि] को (उत्=उदावहन्ति) निकालती हैं (एव=एवम्) ऐसे ही (अस्माक=अस्माकम्) हमारा (इदम्) यह (धान्यम्) धान्य (सहस्रधारम्) सहस्रों प्रकार से धारण करने वाला और (अक्षितम्) अक्षय [होवे] ॥ ३, ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य खेती व्यापार आदि द्वारा पूर्वादि चार दिशाओं और ऊपर नीचे की दिशा [वायु मण्डल वा पाताल] से बहुत धन प्राप्त करें और अनेक प्रयोगों से उसकी यथावत् वृद्धि करें, जैसे बरसा का जल नदियों में एकत्र होकर और झरनों, कूपों नालियों से खेती आदि में पहुँच कर दरिद्रता आदि मिटा कर ससार को लाभ पहुँचाता है ॥ ३, ४ ॥

मन्त्र ३ व ४ युग्मक छन्द हैं।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥५॥

प्रजाः। मनुष्याः—निघ० २। ३। **वृष्टे**। भावे—क्तः। वर्षणे सति। **शापम्**। **अकथितं च** (पा० १। ४। ५१) इति अपादाने द्वितीया। शापात्। शापम् अनिष्टं मलं वा वर्जयित्वा। **नदीः इव**। नद्यो यथा। **इह**। अत्र। **स्फातिम्**। स्फायी वृद्धौ—क्तिन्। **लोपो व्योर्वलि** (पा० ६। १। ६६) इति यलोपः। धनधान्यवृद्धिम्। **समावहान्**। सम्+आङ्+वहेर्लेटि आडागमः। सम्यग् आनयन्तु। वहेर्द्विकर्मकत्वात्, शापं स्फातिम्, इत्येतयोः कर्मत्वम्। **उत्**। तृतीयमन्त्रसंबन्धात्, उत्+आङ्+वहन्तु। **उत्सम्**। अ० १। १५। ३। सेचनसाधनम्। निर्झरम्। कूपम्। **शतधारम्**। बहुधारायुक्तम्। **सहस्रधारम्**। बहु प्रकारेण धारकम्। **अक्षितम्**। अक्षीणम्। अनश्वरम्। **एव**। एवम्। **अस्माक**। मलोपश्छान्दसः। अस्माकम्। **इदम्**। परिदृश्यमानम्। अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतऽहस्त । सम्ऽआहर । सहस्रऽहस्त । सम् । किर ।
कृतस्य । कार्यस्य । च । इह । स्फातिम् । सम्ऽआवह ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(शतहस्त) हे सैकड़ों हाथों वाले ! [मनुष्य !] [धान्य को—म० ४] (समाहर) बटोर कर ला, और (सहस्रहस्त) हे सहस्रों हाथों वाले (सम्) अच्छे प्रकार से (किर) फैला । (च) और (कृतस्य) किये हुये और (कार्यस्य) कर्तव्य कर्म की (स्फातिम्) बढ़ती को (इह) यहाँ पर (समावह) मिलकर ला ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्य सैकड़ों तथा सहस्रों प्रकार से कर्मकुशल होकर, और सहस्रों कर्मकुशलों से मिल कर धन धान्य एकत्र करे और उत्तम कर्मों में व्यय करके आगा पीछा सोच कर सदैव उन्नति करता रहे ॥ ५ ॥

तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्याः ।
तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभिमृशामसि ॥ ६ ॥

तिस्रः । मात्राः । गन्धर्वाणाम् । चतस्रः । गृहऽपत्न्याः । तासाम् । या ।
स्फातिमत्ऽतमा । तया । त्वा । अभि । मृशामसि ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(तिस्रः) तीन (मात्राः) मात्रायें [भाग] (गन्धर्वाणाम्)

५—**शतहस्त** । हे बहुप्रकारेण हस्तक्रियाकुशल । हे बहुक्रियाकुशलपुरुषैर्युक्त मनुष्य ! **समाहर** समाहृत्य प्राप्नुहि । **सहस्रहस्त** । असंख्यहस्तक्रियाकुशल-पुरुषैर्युक्त ! **सम्** । सम्यक् । शोभनरीत्या । **किर** । कॄ विक्षेपे । **ऋत इद्धातोः** । (पा० ७ । १ । १००) इति इत्त्वम् । विक्षिप । प्रयच्छ । **कृतस्य** । निष्पन्नस्य । **कार्यस्य** । **ऋहलोर्ण्यत्** (पा० ३ । १ । १२४) इति कृञ्-ण्यत् । कर्त्तव्यस्य कर्मणः । **स्फातिम्** । म० ४ । समृद्धिम् । **समावह** । सम्यग् आनय ॥

६—**तिस्रः** । त्रिसंख्याकाः । **मात्राः** । **हुयामाश्रुभसिभ्यस्त्रन्** (उ० ४।१६८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या वा पृथिवी धारण करने वालों की, और (चतस्रः) चार (गृहपत्न्याः) गृहपत्नी [घर की पालन शक्ति] की [होवें], (तासाम्) उन सब [मात्राओं] में से (या) जो (स्फातिमत्तमा) अत्यन्त समृद्धि वाली है, (तया) उस [मात्रा] से (त्वा) तुझको (अभि) सब ओर से (मृशामसि=०--मः) हम छूते [संयुक्त करते] हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—सब कुटुम्बी लोग जो धन धान्य कमावें, उसमें से उत्तम अधिकांश अनदेखे विपत्ति समय के लिये प्रधान पुरुष को सौंपें, और शेष के सात भाग करके तीन भाग विद्यावृद्धि और राजप्रबंध आदि और चार भाग सामान्य निर्वाह खान पान वस्त्र आदि में व्यय करें । यह वैदिक शिक्षा सब मनुष्यों के सुख का मूल है ॥ ६ ॥

उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते ।
ताविहा वहतां स्फातिं बहुं भूमानमक्षितम् ॥ ७ ॥

उप॑ऽऊहः । च । सम्ऽऊहः । च । क्षत्तारौ । ते । प्रजाऽपते । तौ । इह । आ । वहताम् । स्फातिम् । बहुम् । भूमानम् । अक्षितम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(प्रजापते) हे प्रजापालक गृहस्थ ! (उपोहः) योग [प्राप्ति] (च) और (समूहः) संग्रह [क्षेम वा रक्षा] दोनों (च) निश्चय करके

इति माङ् माने—त्रन्, टाप् । परिमाणानि । **गन्धर्वाणाम्** । अ० २ । १ । २ । गो+धृञ्—वः । गोर्विद्यायाः पृथिव्या वा धारकाणाम् । **चतस्रः । गृहपत्न्याः** । गृहपालनशक्तेः । **तासाम्** । सर्वमात्राणाम् । **स्फातिमत्तमा** । स्फाति+मतुप्+तमप्+टाप् । अतिशयेन समृद्धियुक्ता । **त्वा** । प्रधानम् । **अभि** । सर्वतः । **मृशामसि** । मृशामः । स्पृशामः । संयोजयामः ॥

७--उपोहः । उप+ऊह वितर्के—घञ् । योगः । अलब्धलाभः । **समूहः** । सम्+ऊह—घञ् । समुदायः । क्षेमः । लब्धस्य रक्षणम् । **क्षत्तारौ** । क्षणु हिंसायाम्-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ते) तेरे (क्षत्तारौ) क्षत्रिय [क्षति वा हानि से बचाने वाले] हैं। (तौ) वे दोनों (इह) यहाँ पर (स्फातिम्) बढ़ती और (बहुम्) बहुत (अक्षितम्) अचूक (भूमानम्) अधिकाई (आ वहताम्) लावें ॥ ७ ॥

भावार्थः—गृहस्थ लोग पुरुषार्थ करके विद्या, धन, धान्य आदि जीवन सामग्री की १—प्राप्ति, २—रक्षा और ३—वृद्धि वा ऋद्धि सिद्धि करके आनन्द भोगें ॥ ७ ॥

यजुर्वेद में आया है—

योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ य० २२ । २२ ॥

(नः) हमारा (योगक्षेमः) योग-अप्राप्त वस्तु का लाभ, और क्षेम-प्राप्त पदार्थ की रक्षा (कल्पताम्) समर्थ अर्थात् पर्याप्त होवे ॥

सूक्तम् २५ ॥

१—६ ॥ कामो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।

अविद्यानाशेन विद्यालाभायोपदेशः—अविद्या के नाश से विद्या की प्राप्ति का उपदेश ।

उत्तुदस्त्वोत् तुदतु मा धृथाः शयने स्वे ।
इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥ १ ॥

उत्ऽतुदः । त्वा । उत् । तुदतु । मा । धृथाः । शयने । स्वे । इषुः ।

क्विप् इति क्षत् । तॄ तरणे, णिच्—अच् । तारयतीति तारः । क्षतः क्षतात् रक्षकौ । क्षत्रियौ । **ते** । तव । **प्रजापते** । हे सन्तानपालक गृहस्थ । **तौ** । तादृशौ । उपोहसमूहौ । **आ वहताम्** । आनयताम् । **स्फातिम्** । म० ४ । समृद्धिम् । **बहुम्** । विपुलम् । **भूमानम्** । बहु-इमनिच् । **बहोर्लोपो भू च बहोः** (पा० ६।४। १५८) इति इमनिच् इकारलोपो बहोर्भूभावश्च । धनधान्यविषयं बहुभावम् । **अक्षितम्** । क्षयरहितम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामस्य । या । भीमा । तया । विध्यामि । त्वा । हृदि ॥ १ ॥

भाषार्थः—[हे अविद्या !] (उत्तुदः) तेरा उखाड़ने वाला [विद्वान्] (त्वा) तुझको (उत् तुदतु) उखाड़ दे । (स्वे शयने) अपने शयन स्थान [हृदय] में (मा धृथाः) मत ठहर । (कामस्य) सुकामना का (या) जो [तेरे लिये] (भीमा) भयानक (इषुः) तीर है, (तया) उससे (त्वा) तुझको (हृदि) हृदय में (विध्यामि) बेधता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्यादि तपोबल द्वारा अविद्या को हृदय से मिटावें, जैसे शूर वीर योद्धा शत्रु सेना को अस्त्र शस्त्रों से मार गिराता है ॥ १ ॥

इस सूक्त में स्त्रीलिङ्ग शब्द अविद्या और विद्या के लिये आये हैं । पहले तीन मन्त्र अविद्यापरक, और पिछले तीन विद्यापरक हैं । अलङ्कार से अविद्या को दुःख दायिनी और विद्या को सुखदायिनी मानकर संबोधन किया है ॥

आधीपर्णां कामशल्यामिषुं संकल्पकुल्मलाम् ।
तां सुसंनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ॥ २ ॥

आधीऽपर्णाम् । कामऽशल्याम् । इषुम् । संकल्पऽकुल्मलाम् ।

१—**उत्तुदः** । उत्+तुद व्यथने—कः । ऊर्ध्वमुखं व्यथयिता । अविद्यायाः सर्वनाशको विद्वान् । **त्वा** । अविद्याम् । **उत् तुदतु** । उत्कृष्य व्यथयतु, नाशयतु । **मा धृथाः** । धृञ् धारणे—लुङ् । माङ्योगे अडभावः । स्थिता मा भूः । **शयने** । शीङ्—ल्युट् । निद्रास्थाने । ब्रह्मचारिहृदये—इत्यर्थः । **स्वे** । स्वकीये । **इषुः** । तीरम् । **कामस्य** । सुकामस्य । विद्याभिलाषस्य । **भीमा** । **भियःषुग् वा** (उ०१ । १४८) इति भिभी—अपादाने मक्, टाप् । भयानका । **तया** । इष्वा । **विध्यामि** । व्यध ताडने । ताडयामि । **हृदि** । हृदये ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताम् । सुऽसंनताम् । कृत्वा । कामः । विध्यतु । त्वा । हृदि ॥ २ ॥

भाषार्थः—(आधीपर्णाम्) अधिष्ठान वा प्रतिष्ठा के पंख वाले, (कामशल्याम्) वीर्य [तपोबल] की अणि वाले (संकल्पकुल्मलाम्) संकल्प के दंड छिद्र वाले (ताम्) उस [प्रसिद्ध, बुद्धि रूपी] (इषुम्) तीर को (सुसंनताम्) ठीक २ लक्ष्य पर सीधा (कृत्वा) करके (कामः) सुन्दर मनोरथ (त्वा) तुझ [अविद्या] को (हृदि) हृदय में (विध्यतु) बेधे ॥ २ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी योगी बुद्धि बल से अविद्या को हटाकर प्रतिष्ठावान्, बलवान्, और सत्यसंकल्पी होता है ॥ २ ॥

मुण्डकोपनिषद् का वचन है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ मुण्ड० उ० २ । २ । ४ ॥

(प्रणवः) ओ३म् (धनुः) धनुष् (आत्मा हि) आत्मा ही (शरः) तीर, और (ब्रह्म) ब्रह्म (तल्लक्ष्यम्) उसका लक्ष्य (उच्यते) कहा जाता है, (अप्रमत्तेन) अप्रमत्त, अति सावधान मनुष्य (वेद्धव्यम्) बेधे, और वह (शरवत्) तीर के समान (तन्मयः) उसमें लय (भवेत्) हो जावे ॥

२—आधीपर्णाम् । आ+डुधाञ् धारणपोषणयोः—किः, ङीप् । **धापृवस्यज्यतिभ्यो नः** (उ० ३ । ६) इति पॄ पालनपूरणयोः—नः । आधी अधिष्ठानं प्रतिष्ठा पर्णं पत्रमिव यस्यास्तां तथाविधाम् । **कामशल्याम्** । शल्यः । अ० २ । ३० । ३ । कामं वीर्यं तपोबलं शल्यो बाणाग्रभाग इव यस्यास्तां तथोक्ताम् । **इषुम्** । तीरम् । **संकल्पकुल्मलाम्** । सम्+कृपू सामर्थ्ये—घञ्, रस्य लः । **कुल्मलाम्** । अ० २ । ३० । ३ । संकल्पो दृढविचारः कुल्मलं बाणदण्डछिद्रमिव यस्यास्तां तथोक्ताम् । **ताम्** । प्रसिद्धाम् । **सुसंनताम्** । सु+सम्+णम प्रह्वत्वे शब्दे-क्तः । सुष्ठु सम्यङ्नतां लक्ष्यीकृताम् । **कृत्वा** । विधाय । **कामः** । कमु-घञ् । सुमनोरथः, यथा धर्मार्थकाममोक्षः । **विध्यतु** । म० १ । ताडयतु । **त्वा** । त्वामविद्याम् । **हृदि** । हृदये ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसंनता ।
प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥ ३ ॥

या । प्लीहानम् । शोषयति । कामस्य । इषुः । सुऽसंनता ।
प्राचीनऽपक्षा । विऽओषा । तया । विध्यामि । त्वा । हृदि ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(कामस्य) सुन्दर मनोरथ का (सुसंनता) ठीक २ लक्ष्य पर चलाया हुआ, (प्राचीनपक्षा) प्राचीन [वेदविज्ञान] का पँख रखने वाला, (व्योषा) विविध प्रकार से [अविद्या का] दाह करने वाला [बुद्धिरूपी] (या) जो (इषुः) तीर [अविद्या की] (प्लीहानम्) गति [वा तिल्ली नाम मर्मस्थान] को (शोषयति) सुखा देता है, (तया) उससे (त्वा) तुझ [अविद्या] को (हृदि) हृदय में (विध्यामि) बेधता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य और दृढ़ प्रतिज्ञा से वेदविज्ञान द्वारा अविद्या मिटाकर आनन्द भोगे, जैसे शूर बैरी का मर्मस्थान छेद कर सुखी होता है ॥३॥

शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याभि सर्प मा ।
मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ॥ ४ ॥

शुचा । विद्धा । विऽओषया । शुष्कऽआस्या । अभि । सर्प ।
मा । मृदुः । निऽमन्युः । केवली । प्रियऽवादिनी । अनुऽव्रता ॥ ४ ॥

३—**प्लीहानम्** । अ० २। ३३। ३ । प्लिह गतौ-कनिन् । गमनम् । कुक्षिवाम-पार्श्वस्थमांसखण्डम् । **शोषयति** । दहति । **कामस्य** । सुमनोरथस्य । **इषुः** । तीरम् । **सुसंनता** । सुष्ठु सम्यक् लक्ष्यीकृता । **प्राचीनपक्षा** । प्राचीनं वेदविज्ञानं पक्ष इव यस्याः सा तथोक्ता । **व्योषा** । वि + उष दाहे पचाद्यच्, टाप् । विशेषेण दाह-शीला । अन्यद् गतम् म० १ ॥

४—**शुचा** । शुच शोके-क्विप् । शोकेन । पीडया । **विद्धा** । ताडिता । **व्योषया** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे विद्या,] (व्योषया) विशेष दाह करने वाली (शुचा) पीड़ा से (विद्धा) बंधी हुई, (शुष्कास्या) सूखे मुखे वाली, (मृदुः) कोमल स्वभाव वाली (निमन्युः) निरभिमान, (केवली) सेवनीया, (प्रियवादिनी) प्रिय बोलने वाली और (अनुव्रता) अनुकूल आचरण वाली [पतिव्रता स्त्री के समान] तू (मा अभि) मेरी ओर (सर्प) चली आ ॥ ४ ॥

भावार्थः—यहां से तीन मन्त्र विद्यापरक हैं। मन्त्र का आशय यह है, जो ब्रह्मचारी विद्या के लिए पूरी लालसा से यत्नपूर्वक परिश्रम करता है, विद्या शीघ्र ही उसको मिल कर हितकारिणी होती है, जैसे सती गुणवती स्त्री मन, वचन, और कर्म से अपने पति की सेवा करती है ॥ ४ ॥

ऋग्वेद के परमब्रह्मज्ञान सूक्त वा विद्यासूक्त में भी विद्या की उपमा पतिव्रता स्त्री से दी है।

उत त्वः पश्यन्नददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं१ विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥ ऋ० १०।७१।४ ॥

(त्वः) एक पुरुष ने (पश्यन् उत) देखते हुये भी (वाचम्) वेद वाणी को (न ददर्श) नहीं देखा है, (त्वः) एक पुरुष (शृण्वन् उत) सुनता हुआ भी (एनाम्) इसको (न शृणोति) नहीं सुनता है। (उतो) किन्तु (त्वस्मै) एक पुरुष को [अपना] (तन्वम्) स्वरूप [परमज्ञान] (विसस्रे) उसने दिखाया है, (इव) जैसे (उशती) अनुरागवती (सुवासाः) सुन्दर वस्त्र वाली (जाया) पत्नी [अपने] (पत्ये) पति को ॥

म० ३। विशेषेण दाहशीलया। **शुष्कास्या**। शुष्कमुखयुक्ता। **अभि**। अभिगत्य। उपेत्य। **सर्प**। गच्छ। **मृदुः**। **प्रथिम्रदिभ्रस्जां०** (उ०१।२८) इति म्रद मर्दने-कुः। संप्रसारणं च। कोमलस्वभावा। **निमन्युः**। **यजिमनिशुन्धि०** (उ० ३।२०) इति मन ज्ञाने-युच्। निरभिमाना। **केवली**। अ० ३। १८। २। **केवलमामक०** (पा० ४। १। ३०) इति ङीप्। सेवनीया वा। **प्रियवादिनी**। हितभाषिणी **अनुव्रता**। अनुकूलाचरणपरा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः ।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ ५ ॥

आ । अजामि । त्वा । आऽअजन्या । परि । मातुः । अथो इति । पितुः । यथा । मम । क्रतौ । असः । मम । चित्तम् । उपऽआयसि ॥ ५ ॥

भाषार्थः—[हे विद्या !] (त्वा) तुझ को (आजन्या) पूरे उपाय से [अपनी] (मातुः) माता से (अथो) और (पितुः) पिता से (परि) सब ओर (आ) यथानियम (अजामि) प्राप्त करता हूँ, (यथा) जिससे (मम) मेरे (क्रतौ) कर्म वा बुद्धि में (असः) तू रहे, (मम चित्तम्) मेरे चित्त में (उपायसि) तू पहुँचती है ॥ ५ ॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष माता-पिता आदि से विद्या पाकर परीक्षा द्वारा साक्षात् करके हृदय में दृढ़ करें ॥ ५ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्ध कुछ भेद से अथर्व० १ । ३४ । २ में आया है ॥

व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् ।
अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ॥ ६ ॥

वि । अस्यै । मित्रावरुणौ । हृदः । चित्तानि । अस्यतम् ।

५—**आ** । समन्तात् । **अजामि** । अज गतिक्षेपणयोः । गच्छामि । प्राप्नोमि । **आजन्या** । आ+अज गतौ-ल्युट्, ङीप् । समन्ताद् गत्या । पूर्णोपायेन । **परि** । सर्वतः । **मातुः** । जनन्याः सकाशात् । **अथो** । अपि च । **पितुः** । पालकात् । जनकात् । **यथा** । येन प्रकारेण । अन्यद् व्याख्यातम्—अ० १ । ३४ । २ ॥

६—**अस्यै** । अस्या विद्यायाः प्राप्तये । **मित्रावरुणौ** । अ० १।२०।२। हे प्राणा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ । एनाम् । अक्रतुम् । कृत्वा । मम । एव । कृणुतम् । वशे ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(मित्रावरुणौ) हे प्राण और अपान (अस्यै) इस [विद्या] के लिये [मेरे] (हृदः) हृदय के (चित्तानि) विचारों को (वि अस्यतम्) फैलाओ । (अथ) और (एनाम्) इसको (अक्रतुम्) अहिंसिका [हितकारिणी] (कृत्वा) करके (मम एव) मेरे ही (वशे) वश में (कृणुतम्) करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—सब ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी प्राण और अपान अर्थात् इन्द्रियों को जीतकर अपने विचारों को बढ़ाकर महाहितकारिणी विद्या को उपयोगी बनावें ॥ ६ ॥

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

॥ अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

—:०:—

सूक्तम् २६ ॥

१—६ ॥ मन्त्रोक्ता देवताः । जगती त्रिष्टुब् वा छन्दः ॥

युद्धगीतिः—मारूगीत ॥

ये ३ स्यां स्थ प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः । तेनो मृडत ते नोऽधिब्रूत तेभ्यो वो नम-

---

पानौ । **हृदः** । मम हृदयस्य । **चित्तानि** । ज्ञानानि । विचारान् । **वि+अस्यतम्** । असु क्षेपणे । विस्तारयतम् । **अथ** । अनन्तरम् । **एनाम्** । निर्दिष्टाम् । **अक्रतुम्** । **कृञः कतुः** (उ० १ । ७६) इति कृञ् हिंसायाम्—कतुः । अहिंसाशीलाम् । सुखप्रदाम् । **कृत्वा** । विधाय । **कृणुतम्** । कुरुतम् । **वशे** । आयत्तत्वे । प्रभुत्वे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ १ ॥

ये । अस्याम् । स्थ । प्राच्याम् । दिशि । हेतयः । नाम । देवाः । तेषाम् । वः । अग्निः । इषवः । ते । नः । मृडत । ते । नः । अधि । ब्रूत । तेभ्यः । वः । नमः । तेभ्यः । वः । स्वाहा ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (प्राच्याम्) पूर्व वा सन्मुख (दिशि) दिशा में (हेतयः) वज्र रूप (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् वः) उन तुम्हारी (अग्निः) अग्नि [अग्नि विद्या] (इषवः) तीर हैं (ते) वे तुम (नः) हमें मृडत) सुखी करो, (ते) वे तुम (नः) हमारे लिये (अधि) अधिकार पूर्वक (ब्रूत बोलो, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिये (नमः) सत्कार वा अन्न होवे, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी [प्रशंसा] होवे ॥ १ ॥

भावार्थः—सेनानी अपनी सेना का व्यूह करके आग्नेय अस्त्र वाले शूर

१—**ये** । ये यूयं शूराः । **अस्याम्** । निर्दिष्टायाम् । **स्थ** । भवथ । **प्राच्याम्** । **ऋत्विग्दधृक्स्रग्०** (पा० ३ । २ । ५९) इति प्र+अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन् । **अनिदितां हल उप०** (पा० ६ । ४ । २४) इति नलोपः । **उगितश्च** (पा० ४ । १ । ६) अत्र वार्त्तिकम् । **अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्** । इति ङीप् । **अचः** (पा० ६ । ४ । १३८) इति अकारलोपे । **चौ** (पा० ६ । ३ । १३८) इति पूर्वपदस्य दीर्घः । स्वस्थानात् पूर्वस्याम् । स्वाभिमुखीभूतायाम् । **दिशि** । दिशायाम् । **हेतयः** । अ० १ । १३ । ३ । वज्ररूपाः । हन्तारः । **नाम** । प्रसिद्धाः । **देवाः** । विजिगीषवः । **तेषाम्** । पूर्वदिक्स्थानानाम् । **वः** । युष्माकम् । **अग्निः** । पावकः । **इषवः** । अ० १ । १३ । ४ । बाणाः । तीराणि । **ते** । ते यूयम् । **नः** । अस्मान् । **मृडत** । सुखयत । **नः** । अस्मदर्थम् । **अधि** । अधिकारेण । ऐश्वर्येण । **ब्रूत** । वदत । विज्ञापयत । **तेभ्यः** । तथाविधेभ्यः । **वः** । युष्मभ्यम् । **नमः** । सत्कारः । अन्नम्-निघ० २ । ७ । **स्वाहा** । अ० २ । १६ । १ । वाङ्नाम-निघ० १ । ११ । सुवाणी । प्रशंसा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरों को पूर्व दिशा में वा अपने सन्मुख स्थान में रक्खें, वे लोग शत्रुओं को जीत कर अपने राजा की दुहाई वा जयघोषणा फेरें, और राजा सत्कार पूर्वक ऊंचे २ अधिकार देकर उनका उत्साह बढ़ावे ॥ १ ॥

ये ३ स्यां स्थ दक्षिणायां दिश्यविष्यवो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः । ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ २ ॥

ये । अस्याम् । स्थ । दक्षिणायाम् । दिशि । अविष्यवः । नाम । देवाः । तेषाम् । वः । कामः । इषवः । ते । नः । मृडत । ते । नः । अधि । ब्रूत । तेभ्यः । वः । नमः । तेभ्यः । वः । स्वाहा ॥ २ ॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (दक्षिणायाम्) दक्षिण वा दाहिनी (दिशि) दिशा में (अविष्यवः) रक्षा की इच्छा वाले (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् वः) उन तुम्हारा (कामः) मनोरथ (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमें .. [म० १] ॥ २ ॥

भावार्थः—दक्षिण दिशा वा दाहिनी ओर वाले रक्षक विजयी वीर दृढ़ मनोरथ से शत्रुओं को जीतकर .....[म० १] ॥ २ ॥

२—**दक्षिणायाम्** । स्याडभावश्छान्दसः । दक्षिणस्याम् । दक्षिणहस्तस्थितायाम् । **अविष्यवः** । **अर्चिशुचि.....इसिः** (उ० २ । १०८) इति अव रक्षणे-इसि । इति अविः, रक्षणम् । **छन्दसि परेच्छायाम्** (वा० पा० ३ । १ । ८) इति क्यच् । **क्याच्छन्दसि** (पा० ३ । २ । १७०) इति उप्रत्ययः । अवनेच्छवः । पररक्षणेच्छवः । **कामः** । दृढमनोरथ । इष्टविषयोऽभिलाषः । अन्यद्गतम्—म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये ३॑ स्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां व आप इषवः। ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ३ ॥

ये। अस्याम्। स्थ। प्रतीच्याम्। दिशि। वैराजाः। नाम। देवाः। तेषाम्। वः। आपः। इषवः। ते। नः। मृडत। ते। नः। अधि। ब्रूत। तेभ्यः। वः। नमः। तेभ्यः। वः। स्वाहा ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (प्रतीच्याम्) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशि) दिशा में (वैराजाः) विविध ऐश्वर्य वाले क्षत्रिय (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् वः) उन तुम्हारा (आपः) जल [जल विद्या] (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमें .....[म० १] ॥ ३ ॥

भावार्थः—पश्चिम वा पीछे वाली दिशा के क्षत्रिय लोग वारुणेय वा जलास्त्रों से शत्रूओं को जीतकर.....[म० १] ॥ ३ ॥

ये ३॑ स्यां स्थोदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इषवः। ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो

३—**प्रतीच्याम्**। प्राच्याम्, म० १। इत्यत्रोक्तप्रकारेण रूपसिद्धिः। पश्चिमायाम्। पश्चाद्भागे स्थितायाम्। **आपः**। जलानि। **वैराजाः**। राजति, ऐश्वर्यकर्मसु-निघ० २। २१। वि+राजृ दीप्तौ—भावे क्विप्। **तस्येदम्** (पा० ४। ३। १२०) इति अण्। विराट्, विविधं राज्यं येषां ते वैराजाः। क्षत्रियाः। विविधैश्वर्यवन्तः। अन्यद् गतं म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ४ ॥

ये । अस्याम् । स्थ । उदीच्याम् । दिशि । प्रऽविध्यन्तः । नाम । देवाः । तेषाम् । वः । वातः । इषवः । ते । नः । मृडत । ते । नः । अधि । ब्रूत । तेभ्यः । वः । नमः । तेभ्यः । वः । स्वाहा ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (उदीच्याम्) उत्तर वा बायीं ओर वाली (दिशि) दिशा में (प्रविध्यन्तः) वेधने वाले (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् वः) उन तुम्हारा (वातः) पवन (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमें.....[म० १] ॥ ४ ॥

भावार्थः—उत्तर वा बायीं ओर वाली दिशा में बरछी, भाले, गोली आदि से छेदने वाले वायु विद्या में कुशल योद्धा, वायव्य अस्त्र शस्त्र, विमानों द्वारा बैरियों को जीत कर... [म० १] ॥ ४ ॥

ये ३ स्यां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधीरिषवः । ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ५ ॥

ये । अस्याम् । स्थ । ध्रुवायाम् । दिशि । निऽलिम्पाः ।

४—**उदीच्याम्** । उत्पूर्वादञ्चतेः पूर्ववत् क्विनादि-म० १ । **उद ईत्** (पा० ६ । ४ । १३९) इति धात्वकारस्य ईकारः । उत्तरस्याम् । वामभागवर्त्तमानायाम् । **वातः** । पवनः । वायुविद्या । **प्रविध्यन्तः** । व्यध ताडने-शतृः । प्रकर्षेण वेधनं कुर्वन्तः । अन्यद्गतम्-म० १ ॥

५—**ध्रुवायाम्** । अ २।२६।४। स्थिरायाम् । निश्चितायाम् । **निलिम्पाः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम॑ । दे॒वाः । तेषा॑म् । व॒ः । ओष॑धीः । इष॑वः । ते । न॒ः । मृ॒ड॒त॒ । ते । न॒ः । अधि॑ । ब्रू॒त॒ । तेभ्य॑ः । व॒ः । नम॑ः । तेभ्य॑ः । व॒ः । स्वाहा॑ ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (ध्रुवायाम्) स्थिर वा निश्चित (दिशि) दिशा में (निलिम्पाः) लेप करने वाले वैद्य (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् वः) उन तुम्हारी (ओषधीः) अन्न, सोमलतादि ओषधियां (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमें ...[म० १] ॥ ५ ॥

भावार्थः—लेप, पट्टी आदि करने वाले सद्वैद्य दृढ़ निश्चित स्थान में औषधालय बना कर सैनिकों को स्वस्थ रखकर शत्रुओं को जीत कर.. ...[म० १] ॥ ५ ॥

ये ३॑ स्यां स्थोर्ध्वायां॑ दि॒श्यव॑स्वन्तो॒ नाम॑ दे॒वास्तेषां॑ वो बृहस्पति॒रिष॑वः । ते नो॑ मृडत॒ ते नोऽधि॑ ब्रूत॒ तेभ्यो॑ वो नम॒स्तेभ्यो॑ वः स्वाहा॑ ॥ ६ ॥

ये । अ॒स्याम् । स्थ । ऊ॒र्ध्वायां॑म् । दि॒शि । अव॑स्वन्तः । नाम॑ । दे॒वाः । तेषा॑म् । व॒ः । बृहस्पतिः॑ । इष॑वः । ते । न॒ः । मृ॒ड॒त॒ । ते । न॒ः । अधि॑ । ब्रू॒त॒ । तेभ्य॑ः । व॒ः । नम॑ः । तेभ्य॑ः । व॒ः । स्वाहा॑ ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (ऊर्ध्वायाम्) ऊपर

नौ लिम्पेरिति वक्तव्यम् (वा०पा० ३।१।१३८) इति नि + लिप उपदेहे मुचादि-शप्रत्ययः । नितरां लेपनकर्तारः सद्वैद्याः । **ओषधीः** । अ० १। ३०। ३। ओषधयः । व्रीहियवसोमलताद्याः । अन्यद् गतम् म० १ ॥

६—ऊर्ध्वायाम् । उत् उपरि ध्वन्यते । ध्वन शब्दे ड । आदेरूरादेशः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली (दिशि) दिशा में (अवस्वन्तः) रक्षा के अधिकारी (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् वः) उन तुम्हारा (बृहस्पतिः) बड़ों का स्वामी, मुख्य सेनापति (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमें (मृडत) सुखी करो, (ते) वे तुम (नः) हमारे लिए (अधि) अधिकार पूर्वक (ब्रूत) बोलो, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिये (नमः) सत्कार वा अन्न होवे, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी [प्रशंसा] होवे ॥ ६ ॥

भावार्थः—बड़े साहसी रक्षाधिकारी, युद्ध विद्या में कुशल योधा लोग ऊँचे स्थान पर रहकर मुख्य सेनापति की सहायता से वैरियों को जीत कर अपने राजा की दुहाई वा जय घोषणा फेरें और राजा सत्कार पूर्वक ऊँचे २ अधिकार देकर उनका उत्साह बढ़ावे ॥ ६ ॥

सूक्तम् २७ ॥

१-–६ ॥ मन्त्रोक्ता देवताः । प्रथमा पङ्क्तिः–द्विपदा त्रिष्टुप्, द्वितीया द्विपदा भुरिग् जगती, तृतीया द्विपदानुष्टुप् ॥

सेनाव्यूहोपदेशः—सेना व्यूह का उपदेश ॥

प्राची॒ दिग॒ग्निर॑धि॒पति॑रसि॒तो र॑क्षि॒तादि॒त्या इष॑वः । तेभ्यो॒ नमोऽधि॑पतिभ्यो॒ नमो॑ रक्षि॒तृभ्यो॒ नम॒ इषु॑भ्यो॒ नम॑ एभ्यो अस्तु । यो३॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मस्तं वो॒ जम्भे॑ दध्मः ॥१॥

प्राचीं । दिक् । अ॒ग्निः । अधि॑ऽपतिः । अ॒सि॒तः । र॒क्षि॒ता ।

टाप्, उपरि वर्त्तमानायाम् । **अवस्वन्तः** । अव रक्षणगतिस्पृहादिषु—असुन्, मतुप् च । अवनवन्तः । रक्षाधिकारिणः । **बृहस्पतिः** । अ० १ । ८ । २ । बृहतां महतां योद्धणां पतिः । मुख्यसेनापतिः । अन्यद् गतम्—म० १ ॥

१—प्राची । प्राच्याम् । म० १ सू० २६ । इत्यत्रोक्तप्रकारेण रूपसिद्धिः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदित्याः । इषवः । तेभ्यः । नमः । अधिपतिभ्यः । नमः । रक्षितृभ्यः । नमः । इषुभ्यः । नमः । एभ्यः । अस्तु । अस्मान् । यः । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः । तम् । वः । जम्भे । दध्मः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(प्राची=प्राच्याः) पूर्व वा सन्मुख वाली (दिक्=दिशः) दिशा का (अग्निः) अग्नि [अग्नि विद्या में निपुण सेनापति] (अधिपतिः) अधिष्ठाता हो, (असितः) कृष्ण सर्प [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक हो, (आदित्याः) सूर्य से संबन्ध वाले (इषवः) बाण हों। (तेभ्यः) उन (अधिपतिभ्यः) अधिष्ठाताओं और (रक्षितृभ्यः) रक्षकों के लिये (नमो नमः) बहुत बहुत सत्कार वा अन्न और (एभ्यः) इन इषुभ्यः) बाणों [बाण वालों] के लिये (नमोनमः) बहुत २ सत्कार वा अन्न (अस्तु) होवे। (यः) जो [बैरी] (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) बैर करता है, [अथवा] (यम्) जिस [बैरी] से (वयम् हम (द्विष्मः) बैर करते हैं, [हे शूरो] (तम्) उसको (वः) तुम्हारे (जम्भे) जबड़े में (दध्मः) हम धरते हैं ॥ १ ॥

सुपां सुलुक्० (पा० ७ । १ । ३९) इति विभक्तिलोपः । प्राच्याः । पूर्वायाः । अभिमुखीभूतायाः । **दिक्** । विभक्तिलोपः । दिशः । **अग्निः** । अग्निविद्यायां कुशलः पुरुषः । **अधिपतिः** । अधिष्ठाता । स्वामी । **असितः** । अ० १।२३।३ । अबद्धः । कृष्णवर्णः सर्पः—इति सायणः । कृष्णसर्पवत् सेनाव्यूहः । **रक्षिता** । रक्षकः । **आदित्याः** । अ० १ । ९ । १ । **दित्यदित्यादित्य०** (पा० ४ । १ । ८५) इति अदितिशब्दात् ण्यप्रत्ययः । आदित्यस्य सूर्यस्य सम्बन्धिनः । सूर्यविद्युदग्निप्रयोगेण सिद्धाः । **इषवः** । अ० १ । १३ । ४ । आयुधानि—इति सायणः । इषुरिषतेर्गतिकर्मणो वधकर्मणो वा—निरु० ९ । १८ । बाणाः । अस्त्रशस्त्राणि । इषुधारिणः । शूराः । **तेभ्यः** । दूरस्थभ्यः । **नमः नमः** । अतिशयेन सत्कारोऽन्नं वा । नमः=अन्नम्—निघ० २ । ७ । **एभ्यः** । समीपस्थेभ्यः । **यः** । दुष्टः । शत्रुः । **द्वेष्टि** । बाधते । **द्विष्मः** । बाधामहे । **वः** । युष्माकम् । शूराणाम् । **जम्भे** । जभि नाशने घञ् । हनौ [Jaw] । **दध्मः** । धारयामः । अन्यत् सुगमम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(आदित्याः इषवः) बाण अर्थात् सब अस्त्र शस्त्र सूर्य वा बिजुली वा अग्नि के प्रयोग चलने वाले हों। शत्रु दो प्रकार के होते हैं, एक वे जो अपनी दुष्टता से धर्मात्माओं को बुरा जानते हैं, दूसरे वे जिनको धर्मात्मा लोग उनकी दुष्टता के कारण बुरा समझते हैं। उक्त दिशा में (अग्नि) पद वाला सेनापति (असित) नाम काले साँप के समान सेना व्यूह से ऐसे दुष्टों को जीतकर सैनिकों सहित यशस्वी होकर धर्मात्माओं की रक्षा करे ॥ १ ॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ २ ॥

दक्षिणा। दिक्। इन्द्रः। अधिऽपतिः। तिरश्चिऽराजिः। रक्षिता। पितरः। इषवः। तेभ्यः। नमः। अधिपतिऽभ्यः। नमः। रक्षितृऽभ्यः। नमः। इषुऽभ्यः। नमः। एभ्यः। अस्तु। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः। तम्। वः। जम्भे। दध्मः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(दक्षिणा—०—णायाः) दक्षिण वा दाहिनी ओर वाली

२—**दक्षिणा**। दक्षिणायाः। **दिक्**। दिशः। दिशायाः। उभयत्र विभक्तेर्लुक्। **तिरश्चिराजिः**। ऋत्विग्दधृक्० (पा० ३। २। ५९) इति तिरस्+अञ्चु गति-पूजनयोः—क्विन्। **अनिदितां हल उप०** (पा० ६। ४। २४) इति नलोपः। **उगितश्च** (पा० ४। १। ६) अत्र वार्त्तिकम् **अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्** इति ङीप्। छान्दसो ह्रस्वः। **वसिवपियजिराजि०** (उ० ४। १२५) इति राजृ दीप्तौ—इञ्। तिरश्च्यः तिर्यग् अवस्थिता राजयः, आवलयः, यस्य तथाविधः सर्पः-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दिक्=दिशः) दिशा का (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला इन्द्र [अधिकारी सेनापति] (अधिपतिः) अधिष्ठाता हो, (तिरश्चिराजिः) तिरछी धारी वाले सांप यद्वा पशु पक्षी आदि की पंक्ति [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक हो, (पितरः) रक्षा करने हारे (इषवः) बाण होवें । (तेभ्यः) उन (अधिपतिभ्यः) अधिष्ठाताओं और..... [म० १] ॥ २ ॥

भावार्थः—उक्त दिशा में [इन्द्र पदधारी सेनापति] (तिरश्चिराजिः) नाम सेना व्यूह करके शत्रुओं को जीतकर..... [म० १] ॥ २ ॥

प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ३ ॥

प्रतीची । दिक् । वरुणः । अधिऽपतिः । पृदाकुः । रक्षिता । अन्नम् । इषवः । तेभ्यः । नमः । अधिपतिऽभ्यः । नमः । रक्षितृऽभ्यः । नमः । इषुऽभ्यः । नमः । एभ्यः । अस्तु । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः । तम् । वः । जम्भे । दध्मः ॥ ३ ॥

इति सायणः । तथाविधसर्पवत् सेनाव्यूहः । यद्वा तिरश्चीनां तिर्यग्जातीनां पशुपक्ष्यादीनां पङ्क्तिवत् पङ्क्तिर्यस्य तथाविधः सेनाव्यूहः । **पितरः** । अ० १ । २ । १ । रक्षकाः । इषवः, इत्यस्य विशेषणम् । अन्यद् गतम् ॥

३—**प्रतीची** । प्रतीच्याः पश्चिमायाः पश्चाद्भागस्थाया वा । **दिक्** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(प्रतीची=०—च्याः) पश्चिम वा पीछे की (दिक्=दिशः) दिशा का (वरुणः) शत्रुओं का रोकने वाला, वरुण [पद वाला सेनापति] (अधिपतिः) अधिष्ठाता हो, (पृदाकुः) अजगर, बिच्छू बाघ, चीता वा हाथी [के समान सेनाव्यूह] (रक्षिता) रक्षक हो, और (अन्नम्) अन्न (इषवः) बाण होवें। (तेभ्यः अधिपतिभ्यः) उन अधिष्ठाताओं और... .. [म० १]॥ ३ ॥

भावार्थः—उक्त दिशा में (वरुण) नाम अधिकारी सेनापति (पृदाकुः) नाम सेनाव्यूह बना कर, और अन्न आदि सामग्री एकत्र रखकर शत्रुओं को जीत कर ...[म० १]॥ ३ ॥

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता शनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ४॥

उदीची। दिक्। सोमः। अधिऽपतिः। स्वजः। रक्षिता। अशनिः। इषवः। तेभ्यः। नमः। अधिपतिऽभ्यः। नमः। रक्षितृऽभ्यः। नमः। इषुऽभ्यः। नमः। एभ्यः। अस्तु। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः। तम्। वः। जम्भे। दध्मः॥ ४॥

दिशः। **वरुणः**। वारयति शत्रूनिति। शत्रुनिवारकः सेनापतिः। **पृदाकुः**। अ० १। २७।१। अजगरः। वृश्चिकः। व्याघ्रः। चित्रकः। गजः। तद्वत् सेनाव्यूहः। **अन्नम्**। अद भक्षणे—क्तः। सेनारक्षासाधनं भोजनम्। अन्यद् गतम्॥

४—उदीची। उदीच्याम्-सू० २६ म० ४। तद्वद् रूपसिद्धिः। उदीच्याः। उत्तर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(उदीची=०—च्याः) उत्तर वा बाईं ओर वाली (दिक्=दिशः) दिशा का (सोमः) प्रेरक वा उत्तेजक [सोम पद वाला सेनापति] (अधिपतिः) अधिष्ठाता हो, (स्वजः) आप उत्पन्न होने वाले वा बहुत दौड़ने वाले साँप [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक होवे, और (अशनिः) बिजुली (इषवः) बाण होवें। (तेभ्यः अधिपतिभ्यः) उन अधिष्ठाताओं और..... [म० १] ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस दिशा में (सोम) नाम अधिकारी सेनापति (स्वज) नाम सेना व्यूह रच कर बिजुली के अस्त्र शस्त्रों से शत्रुओं को जीतकर..... [म० १] ॥ ४ ॥

ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ५ ॥

ध्रुवा। दिक्। विष्णुः। अधिऽपतिः। कल्माषऽग्रीवः। रक्षिता। वीरुधः। इषवः। तेभ्यः। नमः। अधिपतिऽभ्यः। नमः। रक्षितृऽभ्यः। नमः। इषुऽभ्यः। नमः। एभ्यः। अस्तु। यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्।

भागस्थितायाः। वामभागवर्त्तमानायाः। **सोमः**। अ० ३। १६। १। षू प्रेरणे-मन्, तुदादिः। प्रेरकः, उत्तेजकः। सेनापतिः। **स्वजः**। स्व+जः। यद्वा। सु+अज गतिक्षेपणयोः—अच्। स्वयमेवोत्पन्नः स्वजनशीलो वा सर्पः स्वजः—इति सायणः। तथाविधसर्पवत् सेनाव्यूहः। **अशनिः**। **अर्त्तिसृधृधम्यम्यश्य०** (उ० २। १०२) इति अश भोजने; अशूङ् व्याप्तौ वा—अनिः। विद्युद्विद्या। अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विष्मः । तम् । वः । जम्भै । दध्मः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(ध्रुवा=ध्रुवायाः) स्थिर (दिक्=दिशः) दिशा का (विष्णुः) कामों में व्यापक [सद्वैद्य] (अधिपतिः) अधिष्ठाता होवे, (कल्माषग्रीवः) चितकबरे वा काले गले वाले सांप [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक होवे, और (वीरुधः) जड़ी बूटी औषधें (इषवः) बाण होवें। (तेभ्यः अधिपतिभ्यः) उन अधिष्ठाताओं और.....[म० १] ॥ ५ ॥

भावार्थः—सद्वैद्य दृढ़ वा निश्चित स्थान में औषधालय से सैनिकों को स्वस्थ रक्खे और उसके साथ सेना 'कल्माषग्रीवा' नाम व्यूह बनाकर रहे, और सब मिलकर शत्रुओं को जीतकर .....[म० १] ॥ ५ ॥

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भै दध्मः ॥ ६ ॥

ऊर्ध्वा । दिक् । बृहस्पतिः । अधिऽपतिः । श्वित्रः । रक्षिता । वर्षम् । इषवः । तेभ्यः । नमः । अधिपतिऽभ्यः । नमः । रक्षितृऽभ्यः । नमः । इषुऽभ्यः । नमः । एभ्यः । अस्तु ।

५—**ध्रुवा** । अ० २ । २६ । ४ ध्रुवायाः । स्थिरायाः । **दिक्** । दिशः । **विष्णुः** । अ० ३।२०।४ । वेवेष्टि कार्याणि स विष्णुः सद्वैद्यः । **कल्माषग्रीवः** । कल गतौ । क्विप्, मष हिंसायाम्—अण् । शेवायह्वजिह्वाग्रीवा० (उ० १।१५४) इति गॄ निगरणे—वन् । धातोर्ग्रीभावः । कल्माषः कृष्णवर्णः ग्रीवासु यस्य स कल्माषग्रीवः, एतदाख्यः सर्प—इति सायणः, चित्रग्रीवायुक्तः कृष्णग्रीवायुक्तो वा सर्प इव सेनाव्यूहः । **वीरुधः** । अ० १ । ३२ । १ । विरोहणशीला ओषधय । शिष्टं स्पष्टम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः । तम् । वः । जम्भे । दध्मः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(ऊर्ध्वा—ऊर्ध्वायाः) ऊपर वाली (दिक्=दिशः) दिशा का (बृहस्पतिः) बड़े २ शूरों का स्वामी, बृहस्पति [पद वाला सेनापति] (अधिपतिः) अधिष्ठाता हो, (श्वित्रः) श्वेत वर्ण वाले सांप [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक होवे, (वर्षम्) वर्षा [वृष्टि विद्या] (इषवः) बाण होवें । (तेभ्यः अधिपतिभ्यः रक्षितृभ्यः) उन अधिष्ठाताओं और रक्षकों के लिये (नमो नमः) बहुत २ सत्कार वा अन्न, और (एभ्यः इषुभ्यः) इन बाणों [बाण वालों] को (नमो नमः) बहुत २ सत्कार वा अन्न (अस्तु) होवे । (यः) जो [बैरी] (अस्मान् द्वेष्टि) हमसे बैर करता है, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम् द्विष्मः) हम बैर करते हैं, [हे शूरो !] (तम्) उसको (वः जम्भे) तुम्हारे जबड़े में (दध्मः) हम धरते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—(बृहस्पति) मुख्य सेनापति पर्वत आदि उच्च स्थान में (श्वित्र) नाम सेना व्यूह रचकर ठहरे और वारुणेय अर्थात् जल संबन्धी अस्त्र शस्त्रों से, अथवा अस्त्र शस्त्रों की वर्षा करके बैरियों को मिटाकर संसार में सैनिकों समेत कीर्ति पावे ॥ ६ ॥

---

६ **ऊर्ध्वा** । सू० २६ म० ६ । ऊर्ध्वायाः । उपरिवर्तमानायाः । **दिक्** । दिशः । दिशायाः । **बृहस्पतिः** । बृहतां शूराणां स्वामी । मुख्यसेनापतिः । **श्वित्रः** । **स्फायितञ्चिवञ्चि०** (उ० २ । १३) इति श्विता वर्णे—रक् । श्वित्रः श्वेतवर्णः, एतत्संज्ञः सर्पः—इति सायणः । श्वेतसर्पवत् सेनाव्यूहः । **वर्षम्** । वृष्टिः जलविद्या । वृष्टिवदायुधवृष्टिः । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिप्पणी—यही मन्त्र [अथर्व का० ३सू० २७ म० १-६] महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत पुस्तक "पञ्चमहायज्ञविधिः" में "मनसा परिक्रमा मन्त्राः" के नाम से ईश्वर परक अर्थ में आये हैं, वह अर्थ इस प्रकार होता है ॥

भाषार्थः—(प्राची = प्राच्याः) पूर्व वा सन्मुख वाली (दिक् = दिशः) दिशा का (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता और (असितः) बन्धन रहित (रक्षिता) रक्षक है, [जिसके] (आदित्याः) प्राण और किरणें (इषवः) बाण [के समान] हैं। (तेभ्यः) उन (अधिपतिभ्यः) अधिष्ठाता, (रक्षितृभ्यः) रक्षा करने वाले ईश्वरीय गुणों को (नमो नमः) बार-बार नमस्कार, और (एभ्यः) इन (इषुभ्यः) बाणों [पापियों के लिए बाणरूप गुणों] को (नमो नमः) बारम्बार नमस्कार (अस्तु) होवे। (यः) जो [अज्ञानी] (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) बैर करता है, [अथवा] (यम्) जिस [अज्ञानी] से (वयम्) हम (द्विष्मः) बैर करते हैं, [हे ईश्वर गुणों !] (तम्) उसको (वः) तुम्हारे (जम्भे) मुख वा वश में (दध्मः) हम धरते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्य अपने सन्मुख और पूर्व दिशा में जगद्रक्षक परमात्मा को साक्षात् जानकर पापों से बचें और सब प्राणी अज्ञान और बैर छोड़ कर परस्पर मित्रवत् रहें। यही भावार्थ अगले मन्त्रों में लगालें ॥ १ ॥

भाषार्थः—(दक्षिणा = दक्षिणस्याः) दक्षिण वा दाहिनी (दिक् = दिशः) दिशा का (इन्द्रः) पूर्ण ऐश्वर्य वाला परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता और (तिरश्चिराजिः = ० जेः) तिरछे चलने वाले कीट, पतङ्ग बिच्छू आदि की पंक्ति से (रक्षिता) बचाने वाला है, और (पितरः) ज्ञानी लोग (इषवः) बाण [के समान] हैं। (तेभ्यः) उन... [म० १] ॥ २ ॥

१—अग्निः। ज्ञानस्वरूपः परमेश्वरः। **असितः**। षिञ् बन्धने—क्तः। बन्धनरहितः। **आदित्याः**। प्राणाः किरणाश्च। **तेभ्यः**। ईश्वरगुणेभ्यः। अन्यद् गतं स्पष्टं च ॥

२—इन्द्रः। परमैश्वर्ययुक्तः परमेश्वरः। **तिरश्चिराजिः**। पञ्चम्यर्थे प्रथमा। तिर्यग्गतीनां कीटपतङ्गवृश्चिकादीनां पङ्क्तेः सकाशात् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् २८ ॥

१—६॥यमिनी देवता ॥ भुरिग् जगती २, ३ अनुष्टुप्, ४ स्वराड् गायत्री । ५ त्रिष्टुप् । ६ पूर्वार्धः स्वराड् गायत्री, द्वितीयस्त्रिष्टुप् ॥

सुनियमेन सुखं भवति=उत्तम नियम से सुख होता है ।

एकैकयैषा सृष्ट्या सं बभूव यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः । यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती ॥ १ ॥

एकंऽएकया । एषा । सृष्ट्या । सम् । बभूव । यत्र । गाः । असृजन्त । भूतऽकृतः । विश्वऽरूपाः । यत्र । विऽजायते । यमिनी । अपऽऋतुः । सा । पशून् । क्षिणाति । रिफती । रुशती ॥ १ ॥

भाषार्थः—(एषा) यह [साधारणी सृष्टि] (एकैकया) एक एक (सृष्ट्या) सृष्टि [सृष्टि के परमाणु] से (सम् = संभूय) मिलकर (बभूव) हुई है, (यत्र) जिसमें (भूतकृतः) पृथ्वी आदि भूतों से बनाने वाले (विश्वरूपाः) नाना रूप वाले [ईश्वर गुणों] ने (गाः) भूमि, सूर्य आदि लोकों को

१- **एकैकया** । भिन्नभिन्नया । व्यस्तरूपया । **सृष्ट्या** । सृज विसर्गे—क्तिन् । सृजमानया । **एषा** । समस्तिरूपा सृष्टिः । **सम्** । संभूय । **यत्र** । यस्मिन् स्थाने । **गाः** । गौः, पृथिवी—निघ० १।१। गौरिति पृथिव्या नामधेयं यद् दूरङ्गता भवति यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति—निरु० २ । ५ । गौरित्यादित्यो भवति गमयति रसान् गच्छत्यन्तरिक्षे - निरु० २ । १४ । भूमिसूर्यादीन् लोकान् । **असृजन्त** । उदपादयन् । **भूतकृतः** । डुकृञ् करणे—क्विप् । पृथिवीजलतेजोवायुगगनभूतैर्निर्मातारः । **विश्वरूपाः** । नानारूपाः परमेश्वरगुणाः । **विजायते** । विविधं प्रादुर्भवति । **यमिनी** । **अत इनिठनौ** (पा० ५।२।११५) इति यम-इनिः । **ऋत्वेभ्यो**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(असृजन्त) सृजा है। (यत्र) जहाँ पर (यमिनी) उत्तम नियम वाली [बुद्धि] (अपर्तुः) ऋतु अर्थात् क्रम वा व्यवस्था से विरुद्ध (विजायते) हो जाती है [वहाँ] (सा) वह [व्यवस्था विरुद्ध बुद्धि] (रिफती) पीड़ा देती हुई और (रुशती) सताती हुई (पशून्) व्यक्त वाणी वाले और अव्यक्त वाणी वाले जीवों को (क्षिणाति) नष्ट कर देती है ॥ १ ॥

भावार्थः—ईश्वर ने अपनी सर्वशक्तिमत्ता से एक एक परमाणु के संयोग से नियमानुसार यह इतनी बड़ी सृष्टि रची है। जो प्राणी ईश्वरीय नियम तोड़ता है, वह दुःख उठाता है ॥ १ ॥

एषा पशून् सं क्षिणाति क्रव्याद् भूत्वा व्यद्वरी ।
उतैनां ब्रह्मणे दद्यात् तथा स्योना शिवा स्यात् ॥ २ ॥

एषा । पशून् । सम् । क्षिणाति । क्रव्यऽअत् । भूत्वा । विऽअद्वरी । उत । एनाम् । ब्रह्मणे । दद्यात् । तथा । स्योना । शिवा । स्यात् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(एषा) यह [व्यवस्था विरुद्ध बुद्धि] (क्रव्याद्) मांस

ङीप् (पा० ४ । १ । ५) इति ङीप् । **भूमिनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने । संबन्धेऽस्ति विवक्षायां भवन्ति मतुबादयः** [म. भा. कारिका ५ । २ । ९४] प्रशस्तव्रतयुक्ता सृष्टिः प्रजा बुद्धिर्वा । **अपर्तुः** । अपगतो वर्जितः ऋतुर्नियमितकालः क्रमो व्यवस्था यस्याः सा तथाभूता । **सा** । अपर्तुर्बुद्धिः । **पशून्** । पशवो वदन्ति व्यक्तवाचश्चाव्यक्तवाचश्च—निरु० ११ । २९ । मनुष्यगवादीन् जीवान् । **क्षिणाति** । क्षि हिंसायाम् । नाशयति । **रिफती** । रिफ हिंसायाम्-शतृः । पीडां कुर्वती । **रुशती** । रुश हिंसायाम्—शतृः । दुःखं प्रापयन्ती ॥

२—एषा । अपर्तुर्बुद्धिः । **पशून्** । द्विपदश्चतुष्पदः प्राणिनः । **संक्षिणाति** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाने वाली और (व्यद्वरी) अनेक विधि से भक्षणशीला (भूत्वा) होकर (पशून्) दोपाये और चौपाये जीवों को (संक्षिणाति) सर्वथा नष्ट करती है। (उत) इसलिए (एनाम्) इस [अनिष्ट बुद्धि को] (ब्रह्मणे) ब्रह्म [ईश्वर, वेद, वा ब्राह्मण को] (दद्यात्) वह सौंपे, (तथा) तो वह (स्योना) सुखदायिनी और (शिवा) कल्याणी (स्यात्) हो जावे ॥ २ ॥

भावार्थः—कुबुद्धि पापी मनुष्य परमात्मा वा वेद वा उत्तम विद्वान् की शरण लेकर उत्तम कर्म करने से सुधर जाता है ॥ २ ॥

शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा ।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि ॥ ३ ॥

शिवा । भव । पुरुषेभ्यः । गोभ्यः । अश्वेभ्यः । शिवा ।
शिवा । अस्मै । सर्वस्मै । क्षेत्राय । शिवा । नः । इह । एधि ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(हे यमिनी, उत्तम नियम वाली बुद्धि !) (पुरुषेभ्यः) पुरुषों के लिये (शिवा) कल्याणी, और (गोभ्यः) गौओं को और (अश्वेभ्यः) घोड़ों को (शिवा) कल्याणी (भव) हो, (इह) यहाँ (अस्मै सर्वस्मै क्षेत्राय) इस सब खेत को (शिवा) कल्याणी और (नः) हमको (शिवा) कल्याणी (एधि) हो ॥३॥

सर्वथा नाशयति । **क्रव्याद्** । अ० २ । २५ । ५ । मांसभक्षिका । **व्यद्वरी** । **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** (पा० ३।२।७५) इति वि+अद भक्षणे—वनिप् । **वनो र च** (पा० ४ । १ । ७) इति ङीब्रेफौ । विविधं भक्षणशीला **उत्** । एवंविधे । **एनाम्** । अपर्तुं बुद्धिम् । **ब्रह्मणे** । ईश्वरस्य वेदस्य ब्राह्मणस्य वा शरणाय । **दद्यात्** । समर्पयेत् । **तथा** । तेन प्रकारेण । **स्योना** । अ० १।३३।१ । सुखकरी । **शिवा** । कल्याणी । **स्यात्** । भवेत् ॥

३—**क्षेत्राय** । अ० २ । ८ । ५ । शालिगोधूमादिकेदारवर्धनाय । **एधि** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर ज्ञान से उत्तम बुद्धि पाकर सब संसार को सुखदायी होता है ॥ ३ ॥

इह पुष्टिरिह रसं इह सहस्रसातमा भव ।
पशून् यमिनि पोषय ॥ ४ ॥

इह । पुष्टिः । इह । रसः । इह । सहस्रऽसातमा । भव ।
पशून् । यमिनि । पोषय ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(इह) यहाँ पर (पुष्टिः) पुष्टि, और (इह) यहां पर ही (रसः) रस होवे । (यमिनि) हे उत्तम नियम वाली बुद्धि ! (इह) यहाँ पर (सहस्र-सातमा) अत्यन्त करके सहस्रों प्रकार से धन देने वाली (भव) हो, और (पशून्) व्यक्त और अव्यक्त वाणी वाले जीवों को (पोषय) पुष्ट कर ॥ ४ ॥

भावार्थः—उत्तम नियम युक्त बुद्धि से मनुष्य अनेक प्रकार की वृद्धि, और दूध, घी, आदि रस, और बहुत सा धन पाकर सब जीवों की रक्षा करता है ॥ ४ ॥

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः । तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत्

अस्तेर्लोटि रूपम् । भव । अन्यत् स्पष्टम् ॥

४—**पुष्टिः** । वृद्धिः । समृद्धिः । **रसः** । क्षीरदुग्धादिरूपः । **सहस्रसातमा** । **जनसनखनक्रमगमो विट्** (पा० ३।२।६७) इति सहस्र+षणु दाने-विट् । **विड्व-नोरनुनासिकस्यात्** (पा० ६।४।४१) इति आत्त्वम् । **अतिशायने तमबिष्ठनौ** (पा० ५।३।५५) इति तमप् । टाप् । अतिशयेन सहस्रधनस्य दात्री । **पोषय** । समर्धय । अन्यद् व्याख्यातं म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषान् पशूंश्च ॥ ५ ॥

यत्र । सुऽहार्दः । सुऽकृतः । मदन्ति । विऽहाय । रोगम् । तन्वः । स्वायाः । तम् । लोकम् । यमिनी । अभिऽसंबभूव । सा । नः । मा । हिंसीत् । पुरुषान् । पशून् । च ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(यत्र) जहां पर (सुहार्दः) सुन्दर हृदय वाले (सुकृतः) सुकर्मी लोग (स्वायाः तन्वः) अपने शरीर का (रोगम्) रोग (विहाय) त्याग कर (मदन्ति) आनन्द भोगते हैं। (तम्) उस (लोकम्) लोक [जनसमूह] को (यमिनी) उत्तम नियम वाली [सुमति] (अभिसंबभूव) साक्षात् आकर मिली है। (सा) वह [सुमति] (नः) हमारे (पुरुषान्) पुरुषों (च) और (पशून्) ढोरों को (मा हिंसीत्) न पीड़ा दे ॥ ५ ॥

भावार्थः---जिस घर में परस्पर हितैषी पुण्यात्मा स्त्री पुरुष नीरोग रहकर विद्या और धन को भोगते हैं, वह उनकी नियमवती सुमति देवी का

५--**यत्र** । यस्मिन् लोके, गृहे । **सुहार्दः** । हृदये भवं हार्दम् । **प्राग्दीव्यतोऽण्** (पा० ४ । १ । ८३) इति हृदय-अण् । **हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु** (पा० ६ । ३ । ५०) इति हृदयस्य हृत् । यद्वा । हार्दम् आनुकूल्यं करोति हार्दयति । हार्दयतेः क्विपि णिलोपे रूपम् । शोभनहार्दः । सुहृदयः । अनुकूलकारिणः । **सुकृतः** । **सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः** (पा० ३ । २ । ८९) डुकृञ् करणे-क्विप् । शोभनकर्माणः । **मदन्ति** । मदी हर्षे । हृष्यन्ति । **विहाय** । ओहाक् त्यागे-ल्यप् । त्यक्त्वा । **रोगम्** । व्याधिम् । **तन्वः** । शरीरस्य । **स्वायाः** । स्वकीयस्य । **लोकम्** । लोकृ दर्शने To look घञ् । जनसमूहम् । **यमिनी** । म० १ । नियमवती सुमतिः । **अभिसंबभूव** । भू सत्तायाम् प्राप्तौ च-लिट्, आभिमुख्येन सम्यक् प्राप्तवती । **मा हिंसीत्** । मा हिनस्तु । **नः** । अस्माकम् । **पुरुषान्** । कलत्रपुत्रपौत्रभृत्यादीन् । **पशून्** । गवश्वादीन् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात् फल है । वहाँ पर सब मनुष्य और गौ, घोड़े आदि बहुत काल तक जीकर आपस में उपकारी होते हैं ॥ ५ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध अ० का० ६ सू० १२० म० ३ में इस प्रकार है—

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः । अश्लोणा अङ्गैरहृताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥

जहाँ पर सुन्दर हृदय वाले सुकर्मी लोग अपने शरीर का रोग त्याग कर आनन्द भोगते हैं, (तत्र) वहाँ पर (स्वर्गे) स्वर्ग में (अश्लोणाः) बिना लँगड़े हुये और (अङ्गैः अहृताः) अंगों से बिना टेढ़े हुये हम (पितरौ) माता पिता (च) और (पुत्रान्) सन्तानों को (पश्येम) देखते रहें ॥

यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः । तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥६॥

यत्र । सुऽहार्दाम् । सुऽकृताम् । अग्निहोत्रऽहुताम् । यत्र । लोकः । तम् । लोकम् । यमिनी । अभिऽसंबभूव । सा । नः । मा । हिंसीत् । पुरुषान् । पशून् । च ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यत्र) जहाँ पर (सुहार्दाम्) सुन्दर हृदय वाले (सुकृताम्) सुकर्मियों का और (यत्र) जहाँ पर (अग्निहोत्रहुताम्) अग्निहोत्र

६—सुहार्दाम् । म० ५ । शोभनहृदयानां शोभनज्ञानानाम् । **सुकृताम्** । म० ५ । शोभनं कर्म कृतवताम् । **अग्निहोत्रहुताम्** । अग्निहोत्र +हु दानादनयोः क्विप्, तुक् च । अग्नौ होमादिकं जुह्वतां कुर्वताम् । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वालों का (लोकः) लोक [जन समूह] है, (तम् लोकम्) उस लोक को (यमिनी) उत्तम नियम वाली [सुमति] (अभिसम्बभूव) साक्षात् आकर मिली है। (सा) वह [सुमति] (नः पुरुषान्) हमारे पुरुषों (च) और (पशून्) ढोरों को (मा हिंसीत्) न पीड़ा दे ॥ ६ ॥

भावार्थः—जहां सब स्त्री पुरुष एक मन रह कर पुण्यात्मा पुरुषार्थी होकर अग्निहोत्र करते अर्थात् वेद मन्त्रों से अग्नि में मिष्ट सुगन्ध द्रव्य चढ़ा कर वायुशुद्धि करते और अग्निविद्या द्वारा अग्निनौका, अग्नियान, विमान आदि रचते, वहां (यमिनी) नियमवती सुमति के निवास से सब जने आनन्द भोगते हैं ॥ ६ ॥

सूक्तम् २९ ॥

१—८ ॥ १-६ अग्निर्देवता, ७, ८ कामो देवता ॥ १ प्रस्तारपङ्क्तिः। २, ४-६ अनुष्टुप् । ३ पङ्क्तिः, ७ साम्नी गायत्री । ८ पूर्वार्धो द्विपदानुष्टुप्, उत्तरार्धो द्विपदा त्रिष्टुप् ॥

मनुष्यः परमेश्वरभक्त्या सुखं लभते=मनुष्य परमेश्वर की भक्ति से सुख पाता है ॥

यद्ध राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः । अविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दुत्तः शितिपात् स्वधा ॥ १ ॥

यत् । राजानः । विऽभजन्ते । इष्टापूर्तस्य । षोडशम् । यमस्य । अमी इति । सभाऽसदः । अविः । तस्मात् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र । मुञ्चति । दत्तः । शितिऽपात् । स्वधा ॥ १ ॥

भाषार्थः—(यत्) जिस कारण से (यमस्य) नियमकर्ता परमेश्वर के (अमी सभासदः) यह सभासद् (राजानः) ऐश्वर्य वाले राजा लोग (इष्टापूर्तस्य) यज्ञ, वेदाध्ययन, अन्न दानादि पुण्यकर्म के [फल], (षोडशम्) सोलहवें पदार्थ मोक्ष को [चार वर्ण, चार आश्रम, सुनना, विचारना, ध्यान करना, अप्राप्त की इच्छा, प्राप्त की रक्षा, रक्षित का बढ़ाना, बढ़े हुए का अच्छे मार्ग में व्यय करना, इन पन्द्रह प्रकार के अनुष्ठान से पाये हुए सोलहवें मोक्ष को]

१—यद् । यस्मात् कारणात् । **राजानः** । अ० १ । १० । १ । ईश्वराः । समर्थाः । **विभजन्ते** । विशेषेण सेवन्ते । **इष्टापूर्तस्य** । अ० २।१२।४ । यज्ञवेदाध्ययनान्नदानादिपुण्यकर्मणः । **षोडशम्** । षट् च दश च इति षोडश । **षष उत्वं दतृदशधासूत्तरपदादेः ष्टुत्वं च** (वा० पा० ६ । ३ । १०९) इति उत्वष्टुत्वे ततः । **तस्य पूरणे डट्** (पा० ५ । २ । ४८) इति षोडश—डट् । षोडशानां पूरकम् । चत्वारो वर्णाश्चत्वार आश्रमाः श्रवणमननिदिध्यासनानि त्रीणि कर्माणि, अलब्धस्य लिप्सा, लब्धस्य यत्नेन रक्षणं, रक्षितस्य वृद्धिः, वृद्धस्य सन्मार्गे व्ययकरणमेष चतुर्विधः पुरुषार्थः । एतैः पञ्चदशभिः प्राप्तं षोडशं मोक्षम् यथा दयानन्दभाष्ये, यजुर्वेदे ९ । ३४ । **यमस्य** । यमयतीति यमः । यम परिवेषणे—अच् । नियन्तुः । नियामकस्य । धर्मराजस्य । परमेश्वरस्य । **अमी** । परिदृश्यमानाः । **सभासदः** । सभा + षद्लृ गतौ, उपवेशने—क्विप् । सभेयाः । **अविः** । अ० ३ । १७ । ३ । अव रक्षणगतिकान्तिप्रीत्यादिषु—इन् । रक्षकः । गतिवान् । प्रभुः । सूर्यः, सूर्यरूपः परमात्मा । **तस्मात्** । पूर्वोक्तात् कारणात् । **प्र** । प्रकर्षेण । **मुञ्चति** । दुःखात् मुक्तं करोति । **दत्तः** । आत्मने समर्पितः । **शितिपात्** । **क्रमितमिशतिस्तम्भामत इच्च** (उ०४।१२२) इति शति, हिंसायाम्, सौत्रो धातुः—इन् । स च कित्, अत इकारः । **पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः** (पा० ५ । ४ । १३८) इति अकारलोपः । शिति शुक्लः, कृष्णश्च । तयोर्मध्ये पादो गमनं यस्य स तथाभूतः । प्रकाशान्धकारयोः समानगमनः । **स्वधा** । अ० २ । २९ । ७ । स्वम् अस्माकमात्मानं पुष्णाति धनं ददातीति वा । अमृतरूपः । अन्नरूपो भूत्वा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विभजन्ते) विशेष करके भोगते हैं, (तस्मात्) उसी कारण से [आत्मा को] (दत्तः) दिया हुआ, (शितिपात्) उजियाले और अन्धेरे में गति वाला, (अविः) प्रभु (स्वधा) हमारे आत्मा को पुष्ट करने वाला वा धन का देने वाला अमृत रूप वा अन्न रूप होकर [पुरुषार्थी को] (प्र) अच्छे प्रकार से (मुञ्चति) मुक्त करता है ॥ १ ॥

भावार्थः—धर्मराज परमेश्वर की आज्ञा मानने वाले पुरुषार्थी स्त्री पुरुष मोक्ष सुख भोगते रहते हैं, इसी से सब लोग उस अन्तर्यामी को हृदय में रख कर पुरुषार्थ से (स्वधा) अमृत अर्थात् आत्मबल और धनधान्य पाकर मोक्ष आनन्द भोगें ॥ १ ॥

सर्वान् कामान् पूरयत्याभवन् प्रभवन् भवन् ।
आकूतिप्रोऽविर्दत्तः शितिपान्नोप दस्यति ॥ २ ॥

सर्वान् । कामान् । पूरयति । आऽभवन् । प्रऽभवन् । भवन् । आकूतिऽप्रः । अविः । दत्तः । शितिऽपात् । न । उप । दस्यति ॥ २ ॥

भाषार्थः—(आकूतिप्रः) संकल्पों का पूरा करने वाला, [आत्मा को] (दत्तः) दिया हुआ, (शितिपात्) प्रकाश और अप्रकाश में गति वाला (अविः) रक्षक प्रभु (आभवन्) व्यापक, (प्रभवन्) समर्थ और (भवन्) वर्तमान होता हुआ (सर्वान् कामान्) सब सुन्दर कामनाओं को (पूरयति) पूरा करता है, और (न) नहीं (उप दस्यति) घटता है ॥ २ ॥

२—**सर्वान्** । समस्तान् । **कामान्** । शुभाभिलाषान् । **पूरयति** । संपूर्णान् करोति । **आभवन्** । भू सत्तायां व्याप्तौ च-शतृ । आ समन्ताद् भवन् व्याप्नुवन् । **प्रभवन्** । समर्थः प्रबलः सन् । **भवन्** । वर्त्तमानः सन् । **आकूतिप्रः** । आकूति+प्रा पूरणे—कः । संकल्पपूरकः । **नोपदस्यति** । दसु उपक्षये । नोपक्षीयते । अपितु वर्धते । अन्यद् गतम् म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा का इतना बड़ा कोश है कि सब सृष्टि की शुभ कामनाओं को पूरा करते २ भी भरपूर ही बना रहता है ॥२॥

बृहदारण्यकोपनिषद् में पाठ है—

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ बृहदा० ५ । १ । १ ॥

ओ३म् । वह [ब्रह्म] पूर्ण [भरपूर] है, यह [जगत्] पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण उदय होता है, पूर्ण से पूर्ण लेकर पूर्ण ही बच रहता है ॥ १ ॥

यो ददाति शितिपादुमविं लोकेन संमितम् ।
स नाकमभ्यारोहति यत्र शुल्को न क्रियते अबलेन बलीयसे ॥ ३ ॥

यः । ददाति । शितिऽपादम् । अविम् । लोकेन । सम्ऽमितम् । सः । नाकम् । अभिऽआरोहति । यत्र । शुल्कः । न । क्रियते । अबलेन । बलीयसे ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(यः) जो कोई (लोकेन) संसार कर के (संमितम्) सम्मान किये गये, (शितिपादम्) प्रकाश और अन्धकार में गति वाले (अविम्)

३—**यः** । यः कश्चित् । **ददाति** । स्वात्मने प्रयच्छति, समर्पयति । **शिति-पादम्** । म० १ । प्रकाशान्धकारगतिवन्तम् । **अविम्** । म० १। प्रभुम् । **लोकेन** । संसारेण । **संमितम्** । माङ् माने—क्तः । **द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति** (पा० ७।४।४०) इति इकारः । सम्मानितः । **नाकम्** । अ० १ । ६ । २, न+अकम् । स्वर्गम् । सुखम् । **अभ्यारोहति** । अभित आरूढो भवति । अभिप्राप्नोति । **यत्र** । स्वर्गे । **शुल्कः** । शुल्क अतिस्पर्शने, सर्जने, वर्जने च—घञ् । करः । **न** । निषेधे । **क्रियते** । दीयते । **अबलेन** । निर्बलेन । **बलीयसे** । बलवत्—ईयसुन् । **विन्मतोर्लुक्** (पा० ५ । ३ । ६५) इति मतोर्लुक् । बलवत्तराय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षक प्रभु का [अपने आत्मा में] (ददाति) दान करता है, (सः) वह पुरुष (नाकम्) दुःख रहित स्वर्ग को (अभ्यारोहति) चढ़ जाता है, (तत्र) जहाँ पर (अबलेन) निर्बल करके (बलीयसे) अधिक बलवान् को (शुल्कः) शुल्क [कर] (न) नहीं (क्रियते) किया जाता है ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो कोई सर्वश्रेष्ठ परब्रह्म को अपने में ग्रहण करता है, वह सन्मार्गी बड़ों और छोटों के साथ एक सा न्याय करता हुआ सदा आनन्द भोगता है ॥ ३ ॥

पञ्चापूपं शितिपादुमविं लोकेन संमितम् ।
प्रदातोप जीवति पितृणां लोकेऽक्षितम् ॥ ४ ॥

पञ्चऽअपूपम् । शितिऽपादम् । अविम् । लोकेन । सम्ऽमितम् । प्रऽदाता । उप । जीवति । पितृणाम् । लोके । अक्षितम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(पञ्चापूपम्) विस्तीर्ण वा [पूर्वादि चार और ऊपर नीचे

४—पञ्चापूपम् । सप्यशूभ्यां तुट् च (उ० १ । १५७) इति पचि व्यक्तीकरणे विस्तारे च—कनिन् । इति पञ्च विस्तीर्णः संख्यावाचको वा । **पानीविषिभ्यः पः** (उ० ३।२३) इति पूयी विशरणे दुर्गन्धे च पप्रत्ययः, यलोपः । अपूपः, अविशरणम्, अहानिः गोधूमादिपिष्टकं वा । विस्तीर्णा विशरणम् । संपूर्णवृद्धियुक्तम् । यद्वा मध्यपदलोपः । पञ्चसु दिक्षु अपूपः, अविशरणम् अहानिः पूर्णता यस्य, यद्वा, दुर्गन्धरहितं पिष्टकं यस्मात् तं तथाभूतम् । **प्रदाता । न लोकाव्ययनिष्ठा०** (पा० २।३।६९) इति तृन्नन्तत्वात् कर्मणि षष्ठ्या निषेधे द्वितीयैव । प्रदायकः । **उपजीवति** । उपभुङ्क्ते । **पितृणाम्** । रक्षकाणाम् । जननीजनकादिमान्यानां विदुषां शूराणाम् । **लोके** । जनसमूहे । **अक्षितम् । नपुंसके भावे क्तः** (पा० ३ । ३ । ११४) इति क्षि क्षये—भावे क्तः । अक्षयत्वम् । सम्यग्वृद्धिम् । अन्यत्र गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पांचवीं] पाँचों दिशाओं में अटूट शक्ति वाले, अथवा बिना सड़ी रोटी देने वाले (शितिपादम्) प्रकाश और अन्धकार में गति वाले, (लोकेन) संसार करके (संमितम्) सम्मान किए गये (अविम्) रक्षक प्रभु का [अपने आत्मा में] (दाता) अच्छे प्रकार दान करने वाला (पितृणाम्) रक्षक पुरुषों [बलवान् और विद्वानों] के (लोके) लोक में (अक्षितम्) अक्षयता [नित्य वृद्धि] को (उपजीवति) भोगता है ॥ ४ ॥

भावार्थः—अक्षय शक्ति वाले, सृष्टि भर को नित्य नवीन भोजन देने वाले सर्वद्रष्टा परमेश्वर का उपासक माता पिता आदि विद्वान् वीर पितरों के साथ अक्षय (नित्य नवीन) सुख पाता है ॥ ४ ॥

पञ्चापूपं शितिपादविं लोकेन संमितम् ।
प्रदातोप जीवति सूर्यामासयोरक्षितम् ॥ ५ ॥

पञ्चऽअपूपम् । शितिऽपादम् । अविम् । लोकेन । सम्ऽमितम् । प्रऽदाता । उप । जीवति । सूर्यामासयोः । अक्षितम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(पञ्चापूपम्) विस्तीर्ण वा [पूर्वादि चार और ऊपर नीचे की पांचवीं] पांचों दिशाओं में अटूट शक्ति वाले, अथवा बिना सड़ी रोटी देने वाले, (शितिपादम्) प्रकाश और अन्धकार में गति वाले, (लोकेन) संसार करके (संमितम्) सम्मान किये गये (अविम्) रक्षक प्रभु का [अपने आत्मा में] (प्रदाता) अच्छे प्रकार दान करने वाला (सूर्यामासयोः) सूर्य और चन्द्रमा

५—**सूर्यामासयोः** । सुवति प्रेरयति लोकान् कर्मणि स सूर्यः । अ० १ । ३ । ५ । मसी परिमाणे- घञ् । मस्यते परिमीयते गगनं येन स मासः; चन्द्रमाः । सूर्यश्च मासश्च सूर्यामासौ । **देवताद्वन्द्वे च** (पा० ६ । ३ । २६) इति आनङ् । सूर्याचन्द्रमसोर्नियमेन । अन्यदुपरि व्याख्यातम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में [उनके नियम में] (अक्षितम्) अक्षयता [नित्यवृद्धि] को (उप जीवति) भोगता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—सूर्य आकर्षण और वृष्टि आदि से पृथिवी आदि लोकों का धारण करता और चन्द्रमा सूर्य से प्रकाश पाकर हमें पुष्टि पहुँचाता है। इसी प्रकार जो मनुष्य मन्त्रोक्त ईश्वर को अपने हृदय में रखकर परोपकार करता है उसका सुख नित्य बढ़ता है ॥ ५ ॥

इरेव॒ नोप॑ दस्यति समु॒द्र इ॑व॒ पयो॒ म॒हत् ।
दे॒वौ स॑वा॒सिना॑विव शिति॒पान्नोप॑ दस्यति ॥ ६ ॥

इरा॑ऽइव । न । उप॑ । दस्यति । स॒मु॒द्रःऽइ॑व । पयः॑ । म॒हत् । दे॒वौ । स॒वा॒सिनौ॑ऽइव । शि॒ति॒ऽपात् । न । उप॑ । दस्यति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(शितिपात्) प्रकाश और अन्धकार में गतिवाला परमेश्वर (इरा इव) भूमि वा विद्या के समान और (समुद्रः) समुद्र, अर्थात् (महत्) बड़े (पयः इव) जलराशि के समान (न) नहीं (उप दस्यति) घटता है, और (देवौ) दिव्य गुण वाले (सवासिनौ इव) साथ साथ निवास करने वाले दोनों [प्राण और अपान वा दिनरात] के समान वह (न) नहीं (उप दस्यति) घटता है ॥ ६ ॥

भावार्थः—जैसे भूमि, विद्या, जल, वायु आदि उचित प्रयोग से अधिक अधिक उपकारी होते हैं, इसी प्रकार ईश्वर का उपकारी कोश विज्ञान द्वारा मनुष्य को बढ़ाता चला जाता है। ६ ॥

६—**इरा**। ऋज्रेन्द्राग्रवज्र० (उ० २। २८) इति इण् गतौ-रक्। अथवा, इं कामं सुकामनां राति ददाति। रा दाने-क। टाप्। भूमिः। विद्या। **नोप-दस्यति**। म० २। नोपक्षीयते। **समुद्रः**। जलधिः। अन्तरिक्षं वा। **पयः**। जलौघः। **महत्**। विशालम्। **देवौ**। दिव्यगुणयुक्तौ। **सवासिनौ**। सह समानं वा निवसन्तौ। अश्विनौ प्राणापानौ। अन्यद् व्याख्यातम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क इदं कस्मा अदात् कामः कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रही । कामः समुद्रमा विवेश ।
कामेन त्वा प्रति गृह्णामि कामैतत् ते ॥ ७ ॥

कः । इदम् । कस्मै । अदात् । कामः । कामाय । अदात् । कामः । दाता । कामः । प्रतिऽग्रहीता । कामः । समुद्रम् । आ । विवेश । कामेन । त्वा । प्रति । गृह्णामि । काम । एतत् । ते ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(कः) किसने (इदम्) यह [कर्मफल] (कस्मै) किसको (अदात्) दिया है ? [इसका उत्तर] (कामः) मनोरथ [वा कामना योग्य परमेश्वर] ने (कामाय) मनोरथ [वा कामना करने वाले जीव] को (अदात्) दिया है ।

(कामः) मनोरथ [वा कमनीय ईश्वर] (दाता) देने वाला और (कामः) मनोरथ [वा कामना वाला जीव] (प्रतिग्रहीता) लेने वाला है । (कामः) मनोरथ ने (समुद्रम्) समुद्र [पार्थिव समुद्र वा अन्तरिक्ष] में (आ विवेश) प्रवेश किया है ।

(काम) हे मनोरथ ! [वा कमनीय ईश्वर] (त्वा) तुझको (प्रति गृह्णामि) मैं जीव ग्रहण करता हूँ, (एतत्) यह [सब काम] (ते) तेरा है ॥ ७ ॥

भावार्थः—संसार में देना लेना अर्थात् सब उपकारी काम कामना

७—**इदम्** । कर्मफलम् । **अदात्** । दत्तवान् । **कामः** । कमु-घञ् । कामना । सर्वैः कमनीयः परमेश्वरः । कामयमानो जीवः । **दाता** । कर्मफलस्य प्रदायकः । **प्रतिग्रहीता** । स्वीकर्ता । **समुद्रम्** । अगम्यस्थानम् । जलधिम् । अन्तरिक्षम् । **आ विवेश** । प्रविष्टवान् । प्राप्तवान् । **त्वा** । कामम् । **प्रति** । **गृह्णामि** । अङ्गीकरोमि । **एतत्** । कर्म । **ते** । तुभ्यम् । अन्यत् सुगमम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सिद्ध होते हैं, कामना से ही प्रयत्न के साथ मन देने पर मनुष्य के सब कठिन कामों को परमेश्वर सुगम कर देता है ॥ ७ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद ७ । ४८ में है। उसका अर्थ यहाँ श्रीमद् दयानन्द सरस्वती के भाष्य के आधार पर किया है।

कोऽदात् कस्मा अदात् कामोऽदात् कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥ य० ७ । ४८ ॥

(कः) किसने [कर्मफल] (अदात्] दिया है, और [कस्मै] किसको [अदात्] दिया है। इन दो प्रश्नों के उत्तर, (कामः) कामना योग्य परमेश्वर ने (अदात्) दिया है, और (कामाय) कामना करने वाले जीव को (अदात्) दिया है। (कामः) योगीजनों के कामना योग्य परमेश्वर [दाता] देने वाला है। (कामः) कामना करने वाला जीव (प्रतिग्रहीता) लेने वाला है। (काम) हे कामना करने वाले जीव ! (ते) तेरे लिये (एतत्) यह सब है ॥

भूमिष्ट्वा प्रति गृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत् ।
माहं प्राणेन मात्मना मा प्रजया प्रतिगृह्य वि रा-
धिषि ॥ ८ ॥

भूमिः । त्वा । प्रति । गृह्णातु । अन्तरिक्षम् । इदम् । महत् । मा । अहम् । प्राणेन । मा । आत्मना । मा । प्रऽजया । प्रतिऽगृह्य । वि । राधिषि ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(हे) काम (भूमिः) भूमि और (इदम्) यह (महत्) बड़ा

८—**भूमिः** । भूमिस्थपदार्थाः, इत्यर्थः । **त्वा** । कामम् । **प्रतिगृह्णातु** । अङ्गीकरोतु । **अन्तरिक्षम्** । अन्तरिक्षस्थपदार्थाः । **मा** । निषेधे । **प्राणेन** । मुखना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष भी (त्वा) तुझको (प्रति गृह्णातु) स्वीकार करे। (अहम्) मैं जीव, (प्रतिगृह्य) पाकर, (मा) न (प्राणेन) प्राण से, [शरीर बल] से, (मा) न (आत्मना) आत्मबल से, और (मा) न (प्रजया) प्रजा से, (वि राधिषि) अलग हो जाऊं ॥ ८ ॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य सत्य कामना से भूमि और आकाश का राज्य हस्तगत कर लेता है, और शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक बल दृढ़ करके संसार में सुखी रहता है ॥ ८ ॥

सूक्तम् ३० ॥

१-७ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १-४ अनुष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् जगती वा । ६ प्रस्तारपङ्क्तिः । ७ त्रिष्टुप् ।

परस्परप्रीत्युपदेशः—परस्पर मेल का उपदेश ॥

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ १ ॥

सऽहृदयम् । सामऽमनस्यम् । अविऽद्वेषम् । कृणोमि । वः । अन्यः । अन्यम् । अभि । हर्यत । वत्सम् । जातम्ऽइव । अघ्न्या ॥ १ ॥

भाषार्थः—(सहृदयम्) एक हृदयता, (सांमनस्यम्) एकमनता और (अविद्वेषम्) निर्वैरता (वः) तुम्हारे लिये (कृणोमि) मैं करता हूँ। (अन्यो अन्यम्) एक दूसरे को (अभि) सब ओर से (हर्यत) तुम प्रीति से चाहो

सिकाभ्यां संचरता जीवस्थितिलिङ्गेन वायुना, शारीरिकबलेन । **आत्मना** । आत्मिकबलेन । **प्रजया** । सामाजिकबलेन । **मा+वि+राधिषि** । अ० १ । १ । ४ । अहं विराद्धो वर्जितो वियुक्तो मा भूवम् ॥

१—**सहृदयम्** । **वृहोः षुग्दुकौ च** (उ० ४ । १००) इति हृञ् हरणे—स्वीकारे कयन्, दुक् च । सहस्य सभावः । सहग्रहणम् । सहवीर्यम् । **सांमनस्यम्** । सम्+मनस्—भावे ष्यञ् । समानमननत्वम् । ऐकमत्यम् । **अवि-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अघ्न्या इव) जैसे न मारने योग्य, गौ (जातम्) उत्पन्न हुए (वत्सम्) बछड़े को [प्यार करती है] ॥ १ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है, सब मनुष्य वेदानुगामी होकर सत्य ग्रहण करके एकमता करें और आपा छोड़ कर सच्चे प्रेम से एक दूसरे को सुधारें, जैसे गौ आपा छोड़ कर तद्रूप होकर पूर्ण प्रीति से उत्पन्न हुए बच्चे को जीभ से चाट कर शुद्ध करती और खड़ा करके दूध पिलाती और पुष्ट करती है ॥ १ ॥

१—तैत्तिरीयारण्यक मेंपाठ है—

ओ३म् । सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि-नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ तैत्ति० आ० १० । १ ॥

ओ३म् । (सह) वही (नौ) हम दोनों को (अवतु) बचावे । (सह) वही (नौ) हम दोनों को (भुनक्तु) पाले । हम दोनों (सह) मिलकर (वीर्यम्) उत्साह (करवावहै) करें । (नौ) हम दोनों का (अधीतम्) पढ़ा हुआ (तेजस्वि) तेजस्वी (अस्तु) होवे । (मा विद्विषावहै) हम दोनों झगड़ा न करें ॥

२—भगवान् यास्क मुनि कहते हैं ।

(अघ्न्या) गौ का नाम है—निघ० २।११। वह अहन्तव्या, [अवध्या न मारने योग्य] अथवा, अघघ्नी [पाप अर्थात् शारीरिक दुःख अथवा दुर्भिक्षादि पीड़ा नाश करने वाली] होती है—निरुक्त ११ । ४३ ॥

द्वेषम् । द्विष वैरे-घञ् । अशत्रुताम् । सख्यम् । **कृणोमि** । उत्पादयामि । **वः** । युष्मभ्यम् । **अन्यो अन्यम् ।** छान्दसं द्विपदत्वम् । परस्परम् । **अभि** । सर्वतः । **हर्यत** । हर्य गतिकान्त्योः । कामयध्वम् । **वत्सम् ।** अ० ३ । १२ । ३ । गोशि-शुम् । **जातम् ।** नवोत्पन्नम् । **इव** । यथा । **अघ्न्या । अघ्न्यादयश्च** (उ० ४।११२) इति नञि अधे वोपपदे हन्तेर्यगन्तो निपातः । गौः-निघ०२।११। अघ्न्याऽ हन्तव्या भवत्यघघ्नीति वा—निरु० ११।४३। अघ्न्याः गावः । गोवधस्योपपात-करूपत्वाद्धन्तुमयोग्या अघ्न्या उच्यन्ते—इति श्रीमन्महीधरो यजुर्वेदभाष्ये १।१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमान् महीधर यजुर्वेदभाष्य अ० १ म० १ में लिखते हैं—अघ्न्या गौएं हैं। गोवध उपपातक 'भारी पाप' है, इसलिये वे न मारने योग्य 'अघ्न्या' कही जाती हैं ॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥ २ ॥

अनुऽव्रतः । पितुः । पुत्रः । मात्रा । भवतु । सम्ऽमनाः । जाया । पत्ये । मधुऽमतीम् । वाचम् । वदतु । शन्तिऽवाम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(पुत्रः) कुल शोधक पवित्र, बहुरक्षक वा नरक से बचाने वाला पुत्र [सन्तान] (पितुः) पिता के (अनुव्रतः) अनुकूल व्रती होकर (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) एक मन वाला (भवतु) होवे। (जाया) पत्नी (पत्ये) पति से (मधुमतीम्) जैसे मधु में सनी और (शन्तिवाम्) शान्ति से भरी (वाचम्) वाणी (वदतु) बोले ॥ २ ॥

भावार्थः—सन्तान माता पिता के आज्ञाकारी, और माता पिता सन्तानों के हितकारी, पत्नी और पति आपस में मधुरभाषी तथा सुखदायी हों। यही वैदिक कर्म आनन्द मूल है। मन्त्र १ देखो ॥ २ ॥

२—**अनुव्रतः । पृषिरञ्जिभ्यां कित्** (उ० ३ । १११) इति वृञ् वरणे अतच्—कित्त्वाद् गुणाभावे यणादेशः । व्रतमिति कर्मनाम वृणोतीति सतः—निरु० २ । १३ । अनुकूलकर्मा । **पितुः** । रक्षकस्य । जनकस्य । **पुत्रः** । अ० १ । ११ । ५ । पुनातीति पुत्रः कुलशोधकः । पवित्रः पुरुत्राता पुतो नरकात् त्राता वा । सन्तानः । **मात्रा** । अ० १ । २ । १ । माननीयया जनन्या सह । **संमनाः** । समानमनस्कः । **जाया** । अ० ३ । ४ । ३ । जनयति वीरान् । भार्या । पत्नी । **पत्ये** । भर्त्रे । **मधुमतीम्** । क्षौद्रयुक्तां यथा । माधुर्यवतीम् । **शन्तिवाम्** । शमु उपशमे—क्तिन् । छान्दसो ह्रस्वः । **वप्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यते** (वा० पा० ५ । २ । १०९) इति मत्वर्थे वप्रत्ययः । टाप् । शान्तियुक्ताम् । सुखोपेताम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ ३ ॥

मा । भ्राता । भ्रातरम् । द्विक्षत् । मा । स्वसारम् । उत । स्वसा । सम्यञ्चः । सऽव्रताः । भूत्वा । वाचम् । वदत । भद्रया ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(भ्राता) भ्राता (भ्रातरम्) भ्राता से (मा द्विक्षत्) द्वेष न करे, (उत) और (स्वसा) बहिन (स्वसारम्) बहिन से भी (मा) नहीं। (सम्यञ्चः) एक मत वाले और (सव्रताः) एक व्रती (भूत्वा) होकर (भद्रया) कल्याणी रीति से (वाचम्) वाणी (वदत) बोलो ॥ ३ ॥

भावार्थः—भाई भाई, बहिन बहिन, और सब कुटुम्बी नियम पूर्वक मेल से वैदिक रीति पर चल कर सुख भोगें ॥ ३ ॥

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ ४ ॥

येन । देवाः । न । वियन्ति । नो इति । च । विऽद्विषते । मिथः ।
तत् । कृण्मः । ब्रह्म । वः । गृहे । सम्ऽज्ञानम् । पुरुषेभ्यः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(येन) जिस [वेद पथ] से (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (न) नहीं (वियन्ति) विरुद्ध चलते हैं (च) और (नो) न कभी (मिथः) आपस

३—**भ्राता** । अ० १ । १४ । २ । भ्राजते[1] यः । सहोदरः । **मा द्विक्षत्** । मा द्विष्यात् । **स्वसारम्** । अ० १ । २८ । ४ । भगिनीम् । **सम्यञ्चः** । **ऋत्विग्दधृक्०** (पा० ३ । २ । ५९) इति सम्+अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन् । **समः समि** (पा० ६ । ३ । ९३) इति समि इत्यादेशः । समञ्चनाः, सङ्गताः । समानज्ञानाः । सम्यक् पूजनशीलाः । **सव्रताः** । सहकर्माणः । **वाचम्** । वाणीम् । **वदत** । कथयत । **भद्रया** । कल्याण्या रीत्या । अन्यत् स्पष्टम् ॥

४—**देवाः** । विजिगीषवः । **वियन्ति** । इण् गतौ । विरुद्धं गच्छन्ति । **विद्विषते** । द्विष अप्रीतौ-अदादिः । विद्वेषं कुर्वते । **मिथः** । परस्परम् । **कृण्मः** ।

---

१. डुभृञ् से बिभर्त्तीति भ्राता (म०भा०१।२।६८) महाभाष्य में बनाया है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में (विद्विषते) विद्वेष करते हैं। (तत्) उस (ब्रह्म) वेद पथ को (वः) तुम्हारे (गृहे) घर में (पुरुषेभ्यः) सब पुरुषों के लिये (संज्ञानम्) ठीक ठीक ज्ञान का कारण (कृण्मः) हम करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—सार्वभौम हितकारी वेद मार्ग पर चलकर घर के सब लोग आनन्द भोगें ॥ ४ ॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥ ५ ॥

ज्यायस्वन्तः । चित्तिनः । मा । वि । यौष्ट । सम्ऽराधयन्तः । सऽधुराः । चरन्तः । अन्यः । अन्यस्मै । वल्गु । वदन्तः । आ । इत । सध्रीचीनान् । वः । सम्ऽमनसः । कृणोमि ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(ज्यायस्वन्तः) बड़ों का मान रखने वाले (चित्तिनः) उत्तम चित्त वाले, (संराधयन्तः) समृद्धि [धन धान्य की वृद्धि] करते हुए और (सधुराः) एक धुरा होकर (चरन्तः) चलते हुये तुम लोग (मा वि यौष्ट) अलग २ न होओ, और (अन्यो अन्यस्मै) एक दूसरे से (वल्गु) मनोहर (वदन्तः) बोलते हुये (एत) आओ। (वः) तुमको (सध्रीचीनान्) साथ साथ गति [उद्योग वा विज्ञान] वाले और (संमनसः) एक मन वाले (कृणोमि) मैं करता हूँ ॥ ५ ॥

कृवि हिंसाकरणयोः। कुर्मः। **ब्रह्म** । वेदज्ञानम्। **संज्ञानम्** । सम्यग् ज्ञानम्। अन्यत् सुगमम् ॥

५—ज्यायस्वन्तः । ज्यायस्-वन्तः । **ज्य च । वृद्धस्य च** (पा० ५।३।६१, ६२) इति प्रशस्यस्य वृद्धस्य वा ज्य इत्यादेशः, ईयसुनि प्रत्यये । **ज्यादादीयसः** (पा० ६ । ४ । १६०) इति ईकारस्य आकारः। ततो मतुप् प्रशंसायाम् । ज्यायांसो प्रशस्या वृद्धा वा प्रशंसनीया येषां ते तथोक्ताः। **चित्तिनः** । उत्तमचित्तवन्तः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—वेदानुयायी मनुष्य विद्यावृद्ध, धनवृद्ध, आयुवृद्धों का आदर करके उत्तम गुणों की प्राप्ति, और मिलकर उद्योग से, धन धान्य राज आदि बढ़ाते और आनन्द भोगते हैं ॥ ५ ॥

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ ६ ॥

समानी । प्रऽपा । सह । वः । अन्नऽभागः । समाने । योक्त्रे । सह । वः । युनज्मि । सम्यञ्चः । अग्निम् । सपर्यत । अराः । नाभिम्ऽइव । अभितः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(वः) तुम्हारी (प्रपा) जल शाला (समानी) एक हो, और (अन्नभागः) अन्न का भाग (सह) साथ साथ हो, (समाने) एक ही [योक्त्रे] जोते में (वः) तुमको (सह) साथ साथ (युनज्मि) मैं जोड़ता हूँ। (सम्यञ्चः) मिलकर गति [उद्योग वा ज्ञान] रखने वाले तुम (अग्निम्) अग्नि [ईश्वर

मा वि यौष्ट । यु मिश्रणामिश्रणयोः, माङि लुङि रूपम् । इडभावश्छान्दसः । मा पृथग् भूत । वियुक्ता मा भवत । **संराधयन्तः** । राध संसिद्धौ, णिच्-शतृ । सम्यग् संसिद्धिकाः । समानकार्याः । **सधुराः** । **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** (पा० ५ । ४ । ७४) इति सह+धुर—अकारः समासान्तः । सहकार्योद्वहनाः । **चरन्तः** । गच्छन्तः । **वल्गु** । अ० २ । ३६ । १ । मनोहरम् । प्रियवाक्यम् । **वदन्तः** । भाषमाणाः । **एत** । आ+इत । आगच्छत । **सध्रीचीनान् ऋन्विग्दधृक्०** (पा० ३ । २ । ५९) इति सह+अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन् **सहस्य सधिः** (पा० ६ । ३ । ९५) इति सधिः । **विभाषाञ्चेरदिक् स्त्रियाम्** (पा० ५ । ४ । ८) इति स्वार्थिकः खः । अकारलोपे दीर्घत्वम् । सहाञ्चतः कार्येषु सह प्रवृत्तान् । **समनसः** । समानमनस्कान् । **कृणोमि** । करोमि ॥

६—समानी । अ० २ । १ । ५ । साधारणा । एका । **प्रपा** । प्रपीयतेऽस्याम् । पा पाने—डः, टाप् । पानीयशाला । **सह** । मिलित्वा । **वः** । युष्माकम् । युष्मान् । **अन्नभागः** । भोजनस्य अंशः । **समाने** । एकस्मिन् । **योक्त्रे** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा भौतिक अग्नि] को (सपर्यत) पूजो (इव) जैसे (अराः) अरा [पहिये के दंडे] (नाभिम्) नाभि [पहिये के बीच वाले काठ] में (अभितः) चारों ओर से [सटे होते हैं] ॥ ६ ॥

भावार्थः—जैसे अरे एक नाभि में सटकर पहिये को रथ का बोझ सुगमता से ले चलने योग्य करते हैं, ऐसे ही मनुष्य एक वेदानुकूल धार्मिक रीति पर चल कर अपना खान पान मिलकर करें मिलकर रहें और मिलकर ही (अग्नि) को पूजें अर्थात् १—परमेश्वर की उपासना करें, २—शारीरिक अग्नि को, जो जीवन और वीरपन का चिह्न है, स्थिर रक्खें ३—हवन करके जलवायु शुद्ध रक्खें, और ४—शिल्प व्यवहार में प्रयोग करके उपकार करें और सुख से रहें ॥ ६ ॥

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् । देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥ ७ ॥

सध्रीचीनान् । वः । सम्ऽमनसः । कृणोमि । एकऽश्नुष्टीन् । सम्ऽवननेन । सर्वान् । देवाःऽइव । अमृतम् । रक्षमाणाः । सायम्ऽप्रातः । सौमनसः । वः । अस्तु ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(संवननेन) यथावत् सेवन वा व्यापार से (वः सर्वान्) तुम सबको (सध्रीचीनान्) साथ साथ गति [उद्योग वा ज्ञान] वाले, (संम-

---

दाम्नीशसयुयुज० (पा० ३।२।१८२) इति युजिर् योगे—ष्ट्रन् । युगेन सह युज्यते आबध्यतेऽनेन तस्मिन् । योत्रे । बन्धने । स्नेहपाशे । **युनज्मि** । युजिर् योगे । बध्नामि । **सम्यञ्चः** । म० ३ । सङ्गताः । **अग्निम्** । परमेश्वरं भौतिकं वा । **सपर्यत** । सपर पूजायाम् । कण्ड्वादित्वात् यक् । पूजयत । **अराः** । ऋ गतौ—अच । चक्रकीलकाः । **नाभिम्** । अ० १।१३।३। रथचक्रस्य मध्यभागम् । **अभितः** । सर्वतः । **अभितःपरितःसमया०** (वा० पा० २ । ३ । २) इति नाभिम् इत्यत्र द्वितीया ॥

७—**एकश्नुष्टीन्** । ष्णुसु अदने, आदाने च—क्तिन् । एकभुक्तीन् । समान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नसः) एक मन वाले और (एकश्नुष्टीन्) एक भोजन वाले (कृणोमि) मैं करता हूँ। (देवाः इव) विजय चाहने वाले पुरुषों के समान (अमृतम्) अमरपन [जीवन की सफलता] को (रक्षमाणाः) रखते हुये तुम [बने रहो] (सायं प्रातः) सायंकाल और प्रातः काल में (सौमनसः) चित्त की प्रसन्नता (वः) तुम्हारे लिये (अस्तु) होवे ॥ ७ ॥

भावार्थः—'देव' पुरुषार्थी विजयी पुरुष मिलकर मृत्यु के कारण आलस्य आदि छोड़ने से अमर अर्थात् यशस्वी होते हैं। इसी प्रकार सब मनुष्य आपस में मिलकर उद्योग करके सुखी रहें और सायं प्रातः दो काल परमेश्वर की आराधना करके चित्त प्रसन्न करें ॥ ७ ॥

सूक्तम् ३१ ॥

१—११ ॥ प्रजापतिर्देवता। १—४, ६—११ अनुष्टुप्, ५ बृहती ॥

आयुर्वर्धनायोपदेशः—आयु बढ़ाने का उपदेश ॥

वि देवा जरसावृतन् वि त्वमग्ने अरात्या।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ १ ॥

वि । देवाः । जरसा । अवृतन् । वि । त्वम् । अग्ने । अरात्या ।
वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा ॥ १ ॥

भाषार्थः—(देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (जरसा) आयु के घटाव से (वि) अलग (अवृतन्) रहे हैं। (अग्ने) हे विद्वान् पुरुष (त्वम्) तू

भोजनान्। **संवननेन**। वन संभक्तौ—ल्युट्। सम्यक् सेवनेन व्यापारेण। **देवाः**। विजिगीषवः। पुरुषार्थिनः। **अमृतम्**। अमरत्वम्। जीवनसाफल्यम्। **रक्षमाणाः**। पालयन्तः। **सायंप्रातः**। उभयसंध्याकाले। **सौमनसः**। **तस्येदम्** (पा० ४। ३। १२०) इति सुमनस्—भावे अण्। सुमनसो भावः। सुहृद्भावः। चित्तप्रसादः। अन्यद्गतम्—म० ५ ॥

१—**देवाः**। विजिगीषवः। **जरसा**। **षिद्भिदादिभ्योऽङ्** (पा० ३। ३। १०४) इति जॄष् वयोहानौ—अङ्। **ऋदृशोऽङि गुणः** (पा० ७। ४। १६) इति गुणः। टाप्। **जराया**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अरात्या) कंजूसी वा शत्रुता से (वि=वि वर्तस्व) अलग रह। (अहम्) मैं (सर्वेण) सब (पाप्मना) पाप कर्म से (वि) अलग और (यक्ष्मेण) राजरोग, क्षयी आदि से (वि=विवर्त्तै) अलग रहूँ और (आयुषा) जीवन [उत्साह] से (सम्=सम्वर्तै) मिला रहूँ ॥ १ ॥

भावार्थः—पुरुषार्थी लोग ब्रह्मचर्य आदि के सेवन से सदा बलवान् रहते हैं, इसी प्रकार सब मनुष्य मानसिक पाप और शारीरिक रोग के त्याग और शुभ गुणों के सेवन से बल बढ़ाकर अपना जीवन सफल करें ॥ १ ॥

व्यार्त्या पवमानो वि शक्रः पापकृत्यया ।
व्य१ हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ २ ॥

वि । आर्त्या । पवमानः । वि । शक्रः । पापऽकृत्यया । वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा ॥२॥

भाषार्थः—(पवमानः) शोधन करने वाला पुरुष (आर्त्या) पीड़ा से (वि) अलग, और (शक्रः) शक्तिमान् पुरुष (पापकृत्यया) पाप क्रिया से (वि=वि वर्तताम्) अलग रहे। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से .....[म० १] ॥ २ ॥

जरसन्यतरस्याम् (पा० ७ । २ । १०१) इति जरस् । वयोहान्या । **वि** । पृथग्भूय । **अवृतन्** । वृतु वर्त्तने, भावे—लुङ्, अभूवन् । **वि** । वि वर्तस्व । पृथग्भव । **अग्ने** । हे विद्वन् पुरुष । **अरात्या** । अ० १।२।२। अदानेन । शत्रुतया । **पाप्मना** । **नामन्सीमन्व्योमन्०** (उ० ४ । १५१) इति पा रक्षणे - अपादाने मनिन्, पुक् च । मानसेन पापेन । दुष्टकर्मणा । **वि** । विवर्तै । पृथग् भवानि । **यक्ष्मेण** । अ० २ । १० । ५ । शारीरेण राजरोगेण । क्षयादिना । **सम्** । संवर्तै । सम्भूय भवानि । **आयुषा** । चिरकालजीवनेन ॥

२—**वि** । विवर्तताम् । वियुक्तो भवतु । **आर्त्या** । आङ्+ऋ हिंसनेक्तिन् । पीडया । रोगेन । **पवमानः** । **पूङ्यजोः शानन्** (पा० ३ । २ । १२८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य शुद्ध आचरण से सामाजिक आत्मिक और शारीरिक पीड़ा मिटावें और बलवान् होकर पाप को हटावें ॥ २ ॥

वि ग्रा॒म्याः प॒शव॑ आर॒ण्यैर्व्या॑प॒स्तृष्ण॑यासरन् ।
व्य १॒॑ हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा ॥ ३ ॥

वि । ग्रा॒म्याः । प॒शवः॑ । आ॒र॒ण्यैः । वि । आपः॑ । तृष्ण॑या । अ॒स॒र॒न् ।
वि । अ॒हम् । सर्वे॑ण । पा॒प्मना॑ । वि । यक्ष्मे॑ण । सम् । आयु॑षा ॥ ३ ॥

भाषार्थ :—(ग्राम्याः) ग्राम वाले (पशवः) जीव (आरण्यैः) जङ्गली जीवों से (वि) अलग, और (आपः) जल (तृष्णया) पियास से (वि) अलग, (असरन्) चले हैं । (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से .....[म० १] ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे ग्राम्य पशु जङ्गली जीवों से अलग रहकर प्रसन्न रहते हैं और जल की उपस्थिति में पियास से निवृत्ति होती है, इसी प्रकार मनुष्य पाप से निवृत्त होकर सब के सुख में प्रवृत्त हों ॥ ३ ॥

वी॒३॒॑मे द्यावा॑पृथि॒वी इ॒तो वि पन्था॑नो॒ दिशं॑दिशम् ।
व्य१॒॑हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा ॥ ४ ॥

इति पूञ् पवने—शानन् । **आने मुक्** (पा० ७ । २ । ८२) इति मुक् । संशोधकः । **शक्रः** । अ० २ । ५ । ४ । शक्तः । इन्द्रः । **पापकृत्यया** । पापम् इति व्याख्यातम्-अ० २।१२।५ । **कृञः श च** (पा० ३ । ३ । १००) इति डुकृञ् करणे, यद्वा, कृञ् हिंसायाम्-क्यप् तुक् । पापक्रियया महाहिंसया । अन्यद् गतम्—म० १ ॥

३—**ग्राम्याः** । अ० २ । ३४ । ४ । ग्राम—य । ग्रामीणाः । **आरण्यैः** । अरण्य-ष्यञ् । अरण्यजातैः । **आपः** । जलानि । **तृष्णया** । **तृषिशुषिरसिभ्यः कित्** (उ० ३।१२) इति ञितृष पिपासायाम्—नः, स च कित् । टाप्, पानेच्छया पिपासया । **वि असरन्** । सृ गतौ -लुङ् । विगता अभूवन् । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि । इमे इति । द्यावापृथिवी इति । इतः । वि । पन्थानः । दिशंऽदिशम् । वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा ॥ ४ ॥

भाषार्थः- (इमे) यह दोनों (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (वि) अलग अलग (इतः) चलते हैं, (पन्थानः) सब मार्ग (दिशंदिशम्) दिशा दिशा को (वि=वियन्ति) अलग अलग जाते हैं। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से... .[म० १] ॥ ४ ॥

भावार्थः—सूर्य पृथिवी और मार्ग अलग अलग रहकर संसार का क्लेश हरते हैं, ऐसे ही सब मनुष्य दुःख का नाश करके सुख भोगें ॥ ४ ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वियाति ।
व्य१ंहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ५ ॥

त्वष्टा । दुहित्रे । वहतुम् । युनक्ति । इति । इदम् । विश्वम् । भुवनम् । वि । याति । वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी पिता (दुहित्रे) बेटी को (वहतुम्) दायज [स्त्री धन] (युनक्ति=वि युनक्ति) अलग करके देता है। (इति) इसी प्रकार (इदम् विश्वम्) यह प्रत्येक (भुवनम्) लोक (वि याति) अलग २ चलता है। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से.....[म० १] ॥ ५ ॥

४—इमे । परिदृश्यमाने । **द्यावापृथिवी** । अ० २ । १ । ४ । सूर्यभूमी । **इतः** । गच्छतः । **पन्थानः** । मार्गाः । **वि** । वियन्ति । अन्यद् गतम् ॥

५—त्वष्टा । अ० २ । ५ । ६ । व्यवहाराणां तनूकर्ता, पिता । **दुहित्रे** । अ० २ । १४ । २ । दोग्धि प्रपूरयति कार्याणीति दुहिता । तस्यै[1] पुत्र्यै । **वहतुम्** ।

---

१. दुहिता दुर्हिता, दूरे हिता । दोग्धेर्वा (निरु० ३ । ४) ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे पिता पुत्री को दायज देकर सदा हित करता रहता है, सब लोक और पदार्थ अलग अलग रहकर परस्पर उपकार करते हैं, इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य आत्मिक और शारीरिक दोष हटाकर परस्पर सुख बढ़ावें ॥ ५ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध ऋग्वेद १० । १७१ । १ । में इस प्रकार है—

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ॥

(त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी पिता (दुहित्रे) बेटी के लिये (वहतुम्) दायज (कृणोति) करता है, (इति) इस प्रकार (इदम् विश्वम् भुवनम्) यह सब जगत् (समेति) मिलकर चलता है ॥

अग्निः प्राणान्त्सं दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ६ ॥

अग्निः । प्राणान् । सम् । दधाति । चन्द्रः । प्राणेन । सम्ऽहितः । वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(अग्निः) अग्नि (प्राणान्) प्राणों, जीवन शक्तियों को (सम्= सम्भूय) मिलकर (दधाति) पुष्ट करता है, और (चन्द्रः) चन्द्र (प्राणेन) प्राण के साथ (संहितः) सन्धि वाला है। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से ..... [म० १] ॥ ६ ॥

एधिवह्योश्च तुः (उ० १ । ७७) इति वह प्रापणे—तुः । विवाहकाले कन्यायै देयवस्तु । **युनक्ति** । वियुनक्ति पृथग् बध्नाति । **इति** । अनेन प्रकारेण । **भुवनम्** । अ० २ । १ । ३ । भूतजातम । लोकः । **वि याति** । पृथग् गच्छति । अन्यद् गतम् ॥

६—**अग्निः** । अशितपीतपरिणामहेतुर्जाठररूपः सूर्यतापः । **प्राणान्** । अ० २ । १२ । ७ । जीवनहेतून् श्वासप्रश्वासादीन् । चक्षुरादीन्द्रियाणि वा । **संदधाति** । संभूय पोषयति, स्वस्वकार्यसमर्थान् करोति । **चन्द्रः** । अ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सूर्य का ताप श्वास प्रश्वास द्वारा शरीर में प्रविष्ट होकर नेत्र आदि इन्द्रियों को अन्न रस पहुँचाता है, और चन्द्रमा की शीतलता प्राण द्वारा रुधिर आदि में प्रणित रस से इन्द्रियों को पुष्ट करती है। ऐसे ही मनुष्य अपने दोष मिटा कर शुभ गुणों से युक्त होवे ॥ ६ ॥

मन्त्र १—५ में दोषों से (वि) वियोग के और मन्त्र ६—१० में पुरुषार्थ से (सम्) संयोग के वर्णन से आयु बढ़ाने का उपदेश है।

प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन्।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ७ ॥

प्राणेन। विश्वतःऽवीर्यम्। देवाः। सूर्यम्। सम्। ऐरयन्।
वि। अहम्। सर्वेण। पाप्मना। वि। यक्ष्मेण। सम्। आयुषा ॥७॥

भाषार्थः—(देवाः) विजय चाहने वाले महात्माओं ने (विश्वतोवीर्यम्) सब ओर से वीर्यवान् (सूर्यम्) सर्वप्रेरक वा सर्वत्रगति परमेश्वर वा सूर्य को (प्राणेन) प्राण से (सम्) मिलकर (ऐरयन्) पाया है। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से ..... [म० १] ॥ ७ ॥

भावार्थः—जितेन्द्रिय वीरों ने आत्मा के सहारे, अर्थात् आत्मज्ञान और आत्मबल से, परमात्मा को पाकर और सूर्य आदि लोकों तक गति करके परम पद पाया है। मनुष्य आत्मिक और शारीरिक दोष मिटाकर जीवन सफल करें ॥ ७ ॥

१। ३। ४। चदि आह्लादने दीप्तौ च—रक्। आह्लादकः। सोमः। चन्द्रमाः। **प्राणेन**। जीवनहेतुना सह। **संहितः**। सम्+धा—क्तः। सन्धियुक्तः। संश्लिष्टः। अन्यद्गतम् ॥

७—प्राणेन। जीवनहेतुना। **विश्वतोवीर्यम्**। सर्वतःसामर्थ्यम्। सर्वशक्तिमन्तम्। **देवाः**। विजिगीषवो जितेन्द्रिया योगिनः। **सूर्यम्**। अ० १।३।५। सुवति प्रेरयति लोकान् कर्मणि स सूर्यः। यद्वा सरति सर्वत्र स सूर्यः। लोकप्रेरकम्। सर्वत्रगतिं परमात्मानम्। **सम्**। सम्भूय। **ऐरयन्**। अ० १। ११। २। ईर गतौ कम्पने च—लङ्। अगच्छन्। प्राप्नुवन्। अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ८ ॥

आयुष्मताम् । आयुःऽकृताम् । प्राणेन । जीव । मा । मृथाः ।
वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(आयुष्मताम्) बड़ी आयु वाले, और [दूसरों की] (आयुष्कृताम्) बड़ी आयु करने वाले [देवताओं] के (प्राणेन) प्राण के साथ (जीव) जीता रह, (मा मृथाः) मरा मत जा । (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से.....[म० १] ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्य अपने और दूसरों के सुधारने वाले वीर योगियों [देवताओं—म०] के अनुकरणी होकर पुरुषार्थ करें और आलस्य आदि में व्यर्थ जन्म न खोवें ॥ ८ ॥

प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव मा मृथाः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ९ ॥

प्राणेन । प्राणताम् । प्र । अन । इह । एव । भव । मा । मृथाः ।
वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(प्राणताम्) जीते हुओं के (प्राणेन) श्वास से (प्राण) श्वास ले, (इह) यहां पर (एव) ही (भव) रह, (मा मृथाः) मरा मत जा । (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से.....[म० १] ॥ ९ ॥

८—**आयुष्मताम्** । प्रशस्तेन दीर्घेणायुषा, तद्वताम् । **आयुष्कृताम्** । अन्येषां प्रशस्तदीर्घायुषः कर्तॄणां देवानाम्—म० ७ । **प्राणेन** । अ० २ । १५ । १ । जीवनबलेन । **जीव** । प्राणान् धारय । **मा मृथाः** । मृङ् प्राणत्यागे—लुङ्, माङि अडभावः । प्राणान् मा त्याक्षीः । अन्यद् गतम् ॥

९—**प्राणेन** । प्रकृष्टजीवनेन । श्वासप्रश्वासव्यापारेण । **प्राणताम्** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य पुरुषार्थियों के समान अपने श्वास-श्वास पर कर्तव्य करे और संसार में रहकर भूल, आलस्य आदि दोष छोड़कर कीर्ति पावे ॥ ९ ॥

उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ १० ॥

उत् । आयुषा । सम् । आयुषा । उत् । ओषधीनाम् । रसेन । वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा ॥ १० ॥

भाषार्थः—(आयुषा) जीवन [उत्साह] के साथ (उत् = उद्भव) खड़ा हो (आयुषा) जीवन के साथ (सम् = सम् भव) पराक्रमी हो। (ओषधीनाम्) औषधियों अन्न आदि के (रसेन) रस [भोग] से (उत् = उद्भव) ऊँचा हो। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब कर्म से·····[म० १] ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्य जीवन भर उद्योगी तथा पराक्रमी रहे, और अन्न आदि पदार्थों के भोगों के अनुसार उपकार का प्रतिफल देकर जीवन सुफल करे ॥१०॥

इस मन्त्र में 'भव' पद की अनुवृत्ति मन्त्र ९ से आती है ॥

आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थाममृता वयम् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ११ ॥

आ । पर्जन्यस्य । वृष्ट्या । उत् । अस्थाम् । अमृताः । वयम् । वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा ॥११॥

प्र+अन प्राणने-शतृः । श्वसताम् । आत्मवताम् । **प्राण** । प्राणान् धारय । **इह एव** । अस्मिन्नेव जन्मनि लोके वा । **भव** । वर्त्तस्व । अन्यद् गतम् ॥

१०—**उत्** । अत्र पूर्वमन्त्राद् भव इति क्रियापदम् अनुवर्तते । उद्भव । ऊर्ध्वं वर्त्तस्व । **आयुषा** । जीवनेन । उत्साहेन । **सम्** । सम्भव । पराक्रमी भव । **ओषधीनाम्** । अ० ३ । ५ । १ । व्रीहियवादीनाम् । **रसेन** । आयुष्करेण सारेण । अन्यत् स्पष्टम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वयम्) हम (अमृताः) अमर होकर (पर्जन्यस्य) सींचने वाले मेघ की (वृष्ट्या) बरसा से [जैसे] (आ) सब ओर से (उत् अस्थाम) उठ खड़े हुए हैं, (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से (वि) अलग, और (यक्ष्मेण) राजरोग, क्षयी आदि से (वि=विवर्त्तै) अलग रहूं, और (आयुषा) जीवन [उत्साह] से (सम्==सम् वर्त्तै) मिला रहूं ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्य इस सूक्त में वर्णित उपदेश के अनुसार ब्रह्मज्ञान के श्रवण मनन, और निदिध्यासन [विचार] से ऐसे हर्ष में बढ़े हैं जैसे अन्न आदि औषधें जल की बरसा से नवीन जीवन पाकर उगती हैं, इसलिए प्रत्येक मनुष्य आत्मिक और शारीरिक दोष छोड़कर अपना जीवन का लाभ उठावें ॥ ११ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

इति तृतीयं काण्डम् ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिम श्री **सयाजीराव गायकवाडा-**
धिष्ठित बड़ोदे पुरीगतश्रावणमासदक्षिणायाम् ऋक्सामाथर्ववेद-
भाष्येषु लब्धदक्षिणेन श्रीपण्डित **क्षेमकरणदास त्रिवेदिना**
कृते अथर्ववेदभाष्ये तृतीयं काण्डं समाप्तम् ॥

इदं काण्डं प्रयागनगरे चैत्रमासे रामनवम्याम् [शुक्लनवम्याम्] १९७१ तमे विक्रमीये संवत्सरे सुसमाप्तिमगात् ॥

मुद्रितम्—आषाढ़ शुक्ल पूर्णमास्यां संवत् १९७१ ता० ७ जुलाई १९१४, प्र० सं० की तिथि ॥

११—**आ** । समन्तात् । **पर्जन्यस्य** । अ० १ । २ । १ । सेचकस्य । मेघस्य । **वृष्ट्या** । वर्षजलेन । **उत् अस्थाम** । तिष्ठतेर्लुङ् । उत्थिता अभूम । **अमृताः** । मरणरहिता अमृतत्वं जीवनत्वं प्राप्ताः सन्तः । **वयम्** । उपासकाः । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

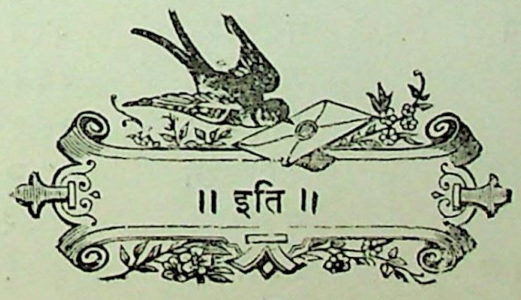

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षेप सूची

काशि०	काशिका
क्षीर०	क्षीरतरङ्गिणी
टि०	टिप्पणी
तैत्ति० आ०	तैत्तिरीयारण्यक
द० भा०	दयानन्द भाष्य
दया०	दयानन्द
दश० उ०	दशपादी उणादि
दिवा०	दिवादि गण
द्र०	द्रष्टव्य
धा० पा०	धातुपाठ
न्या०	न्यास
पद०	पदमञ्जरी
पृ०	पृष्ठ
बृहदा०	बृहदारण्यकोपनिषद्
मनु०	मनुस्मृति
म० भा०	महाभाष्य (गुरुप्रसाद सं०)
मा० धा०	माधवीय धातुवृत्ति
मुण्ड० उ०	मुण्डकोपनिषद्
यो० द०	योगदर्शन
श० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण

शुद्धिपत्रम्

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठे	पङ्क्तौ
अराद्	आराद्	२००	३
प्राण	प्रण	२०५	११
चित्तो	चित्ती	२२१	२
यावानम्	पावानम्	३०५	२
भुवनस्य	भुवनस्य	३६१	१२
मुमोक्त	मुमोक्तु	३६२	१२
विषुचः	विषूचः	३९१	७
अघदीरन्	अदीधरन्	४०२	२
सुवीरा	सुवीराः	४७३	९
अश्वावतो	अश्वावती	५११	११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञापन

श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी जी की अन्य पुस्तकें भी सुलभ। शीघ्र मंगाइये, प्रतियाँ सीमित हैं।

(१) **अथर्ववेद भाष्य**—२० काण्ड सहित, सरल हिन्दी और संस्कृत भाष्य, विषय सूची, मन्त्र सूची, पद सूची आदि सहित। मूल्य ६५) रु० डाक व्यय पृथक्।

(२) **गोपथ ब्राह्मण भाष्य**—अथर्ववेद के ब्राह्मण का सरल हिन्दी और संस्कृत भाष्य, अनेक टिप्पणियों, व्याकरणादि और विषय सूची आदि सहित सम्पूर्ण—मूल्य ७।) डाक व्यय पृथक्।

(३) **हवनमन्त्राः**—धर्मशिक्षा की उपकारी पुस्तक, चारों वेदों से संगृहीत मन्त्र, ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण, हवनमन्त्र, वामदेव्यगान सरल हिन्दी में शब्दार्थ सहित, गुरुकुलों डी० ए० वी० कालिजों और स्कूलों में प्रचलित संशोधित, पांचवीं बार मूल्य।—), डाक व्यय पृथक्।

(४) **रुद्राध्यायः**—प्रसिद्ध यजुर्वेद अध्याय १६ (नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः) ब्रह्मनिरूपक अर्थ संस्कृत हिन्दी और अंग्रेजी में मूल्य।=) डाक व्यय पृथक्।

(५) **रुद्राध्यायः**—मूल मात्र बढ़िया रायल अठपेजी, पृष्ठ १४ मूल्य)॥, डाक व्यय पृथक्।

(६) **वेदविद्यायें**—कांगड़ी गुरुकुल में हिन्दी व्याख्यान। वेदों में विमान, नौका, अस्त्र शस्त्र, व्यापार, अतिथि, सभा, ब्रह्मचर्य्यादि का वर्णन, मूल्य —)॥ डाक व्यय पृथक्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

॥ अथर्ववेदः ॥

चतुर्थं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ।

सूक्तम् ॥ १ ॥

मन्त्राः १—७ ॥ वेनो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

सृष्टिविद्यया ब्रह्मविचारः—सृष्टि विद्या से ब्रह्म का विचार ।

ब्रह्म॑ जज्ञा॒नं प्र॑थ॒मं पु॒रस्ता॒द् वि सी॑म॒तः सु॒रुचो॑ वे॒न आ॑वः ।
स बु॒ध्न्या॒ उप॒मा अ॑स्य वि॒ष्ठाः स॒तश्च॒ योनि॒मस॑तश्च॒ वि वः॑ ॥१॥

ब्रह्म॑ । ज॒ज्ञा॒नम् । प्र॒थ॒मम् । पु॒रस्ता॑त् । वि । सी॒म॒तः । सु॒ऽरुचः॑ । वे॒नः । आ॒वः॒ । सः । बु॒ध्न्याः॑ । उ॒प॒ऽमाः । अ॒स्य॒ । वि॒ऽस्थाः । स॒तः । च॒ । योनि॑म् । अस॑तः । च॒ । वि । वः॒ ॥ १ ॥

सान्वयभाषार्थः—(वेनः) प्रकाशमान वा मेधावी परमेश्वर ने (पुरस्तात्) पहिले काल में (प्रथमम्) प्रख्यात (जज्ञानम्) उपस्थित रहने वाले (ब्रह्म) वृद्धि के कारण अन्न को और (सुरुचः) बड़े रुचिर लोकों को (सीमतः)

१— शब्दार्थव्याकरणादिप्रक्रिया—**ब्रह्म** । अ० १ । ८ । ४ । वृद्धिकारणम् । अन्नम्—निघ० २ । ७ । **जज्ञानम्** । जनी प्रादुर्भावे—शानचि शपः श्लौ सति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीमाओं वा छोरों से (वि आवः) फैलाया है। (सः) उसने (बुध्न्याः) अन्तरिक्ष में वर्तमान (उपमाः) [परस्पर आकर्षण से] तुलना करने वाले (विष्ठाः) विशेष विशेष स्थानों, अर्थात् (अस्य) इस (सतः) विद्यमान [स्थूल] के (च) और (असतः) अविद्यमान [सूक्ष्म जगत्] के (योनिम्) घर को (च) निश्चय करके (वि वः) खोला है ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे उत्पन्न होने से पहिले बालक के लिये माता के स्तनों में दूध हो जाता है, ऐसे ही जगत् के जननी जनक परमेश्वर ने सृष्टि से पूर्व प्रत्येक शरीरी के लिये प्रभूत (ब्रह्म) अन्न वा पालन शक्ति और पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, आदि को बनाया, जो परस्पर आकर्षण से स्थिर हैं। यही सब

रूपम्। जायमानम्। दृश्यमानम्। **प्रथमम्** । अ० १। १२। १। प्रख्यातम्। **पुरस्तात्** । **दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** (पा० ५। ३। २७) इति पूर्वशब्दात् अस्तातिः। **अस्ताति च** (पा० ५।३।४०) इति पूर्वस्य पुरादेशः। अतीते प्रथमे काले वा। सृष्ट्यादौ। **वि** । **व्यवहिताश्च** (पा० १।४।८२) इति व्यवधानेन उपसर्गसम्बन्धः। **सीमतः**। **नामन्सीमन्व्योमन्०** (उ० ४। १५१) इति षिञ् बन्धने-मनिन्। **अपादाने चाहीयरुहोः** (पा० ५। ४। ४५) इति तसिः। सीम्नः सीमतः सीमातो मर्यादातः। सीमा मर्यादा विषीव्यति देशाविति-निरु० १।७। सीमभ्यः। लोकमर्यादाभ्यः। **सुरुचः**। रुच दीप्तावभिप्रीतौ च-क्विप्। सुष्ठु रोचमानान् लोकान्। **वेनः**। अ०। २। १। १। दीप्यमानः परब्रह्मात्मकः-इति सायणोऽपि। मेधावी-निघ० ३। १५। **वि आवः**। वृञ् वरणे लुङ्। **मन्त्रे घस०** (पा० २।४।८०) इति च्लेर्लुक्। हल्ङ्यादिलोपे। **छन्दस्यपि दृश्यते** (पा० ६।४।७३) इति आडागमः। विवृतानकरोत्। **सः**। वेनः। **बुध्न्याः**। **बन्धेर्ब्रधिबुधी च** (उ० ३। ५) इति बन्ध बन्धने-नक् तस्य च बुध आदेशः। बुध्नो मेघो मूलमन्तरिक्षं वा। **भवे छन्दसि** (पा० ४। ४। ११०) इति यत्। बुध्नमन्तरिक्षे बद्धा अस्मिन् धृता आप इति वा इदमपीतरद् बुध्नमेतस्मादेव बद्धा अस्मिन् धृताः प्राणा इति। योऽहिः स बुध्न्यो बुध्नमन्तरिक्षं तन्निवासात्। निरु० १०। ४४। बुध्नेऽन्तरिक्षे भवाः सूर्यचन्द्रपृथिवीतारकादयो लोकाः। **उपमाः**। **आतश्चोपसर्गे** (पा० ३। ३। १०६) इति उप+माङ् माने-अङ्, टाप्। उपमीयमानाः। मानं प्राप्ताः। **अस्य**। दृश्यमानस्य जगतः। **विष्ठाः**। **आतश्चोपसर्गे** (पा० ३। ३। १०६) वि+ष्ठा गतिनिवृत्तौ-अङ्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक कार्य वा मूर्त और कारण वा अमूर्त दो प्रकार के जगत् के भण्डार हैं ॥ १ ॥

यह मन्त्र यजुर्वेद अ० १३ म० ३ और सामवेद पूर्वार्चिक प्र० ४ द० ३ म० ९ में है ॥

इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः ।
तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे ॥२॥

इयम् । पित्र्या । राष्ट्री । एतु । अग्रे । प्रथमाय । जनुषे । भुवनेऽस्थाः । तस्मै । एतम् । सुऽरुचम् । ह्वारम् । अह्यम् । घर्मम् । श्रीणन्तु । प्रथमाय । धास्यवे ॥ २ ॥

भाषार्थः—(पित्र्या) पिता [जगत् पिता परमेश्वर] से आई हुई, (भुवनेष्ठाः) सब जगत् में ठहरी हुई (इयम्) यह (राष्ट्री) राजराजेश्वरी शक्ति [वेद वाणी] (प्रथमाय) सबसे उत्तम (जनुषे) जन्म के लिये (अग्रे) हमारे आगे (एतु) आवे, [अर्थात्] "(तस्मै) उस (प्रथमाय) सबसे ऊपर विराजमान (धास्यवे) संसार का धारण पोषण चाहने वाले परमात्मा के लिए (एतम्) इस (सुरुचम्) बड़े रुचिर (ह्वारम्) अनिष्ट को झुका देने वाले (अह्यम्) प्राप्ति के योग्य, वा प्रति दिन वर्तमान (घर्मम्) यज्ञ को (श्रीणन्तु) सब लोग परिपक्व करें" ॥ २ ॥

टाप् । **उपसर्गात् सुनोतिसुवति०** (पा० ८ । ३ । ६५) इति षत्वम् । **सतः** । विद्यमानस्य । मूर्त्तस्य । स्थूलस्य । **च** । समुच्चये । अवधारणे । **योनिम्** । अ० १ । ११ । ३ । गृहम्-निघ० ३ । ४ । आकाशम् । कारणम् । **वि वः** । वि+वृञ् वरणे-लङ् । **मन्त्रे घस०** (पा० २ । ४ । ८०) इतिच्लेर्लुक् । **बहुलं छन्दस्यमाङ्-योगेऽपि** (पा० ६ । ४ । ७५) इति अडभावः । विवृतमकरोत् ।

२—इयम् । परिदृश्यमाना । **पित्र्या** । **पितुर्यच्च** (पा० ४ । ३ । ७९) इति पितृ-यत्, टाप् । पितृसकाशाद् आगता । पैतृका । **राष्ट्री** । राजतिः, ऐश्वर्य-कर्मा—निघ० २ । २१ । **सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्** (उ० ४ । १५९) इति राजृ दीप्तौ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे पैतृक धन सब सन्तानों को यथावत् मिलता है वैसे ही जगत् पिता परमेश्वर की सर्वव्यापिनी, सर्वनियन्त्री यह वेदवाणीरूप शक्ति सबके हृदय में बसे कि सब मनुष्य अपना यज्ञ अर्थात् पुरुषार्थ परमात्मा को समर्पण करें जिससे मनुष्य जन्म सफल होवे ॥ २ ॥

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ ॥३॥

प्र । यः । जज्ञे । विद्वान् । अस्य । बन्धुः । विश्वा । देवानाम् । जनिम । विवक्ति । ब्रह्म । ब्रह्मणः । उत् । जभार । मध्यात् । नीचैः । उच्चैः । स्वधा । अभि । प्र । तस्थौ ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(यः विद्वान्) जो विद्वान् परमेश्वर (अस्य) इस [जगत्]

ऐश्वर्ये–ष्ट्रन् । **व्रश्चभ्रस्ज०** (पा० ८।२।३६) इति षत्वम् । षित्त्वात् ङीष् (पा० ४ । १ । ४१) राष्ट्री, ईश्वरनामसु । निघ० २ । २२ । राज्ञी । ईश्वरी । सर्वजगद्-व्यवहारस्य नियन्त्री शक्तिः । **एतु** । गच्छतु । प्राप्नोतु । **अग्रे** । अभिमुखम् । **प्रथमाय** । म० १ । प्रख्याताय । प्रधानाय । **जनुषे । जनेरुसिः** (उ० २ । ११५) इति जनी प्रादुर्भावे–उसिः । जन्मने । जीवनाय । **भुवनेष्ठाः** अ० २ । १ । ४ । सर्वलोके स्थिता व्याप्ता । **तस्मै** । वेनाय । **एतम्** । समीपस्थम् । **सुरुचम्** । म० १ । सुष्ठु रोचमानम् । **हारम्** । ह्वृ कौटिल्ये–ण्यन्तात् पचाद्यच् । अनिष्टस्य कुटिली कारकम् । **अह्यम्** । अहि गतौ–ण्यत् । संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः—इति परिभाषया वृद्धेरभावः । गन्तव्यम् । प्राप्यम् । यद्वा । **भवे छन्दसि** (पा० ४ । ४ । ११०) इति अहन्–यत् । **नस्तद्धिते** (पा० । ६ । ४ १४४) इति टिलोपः । अहनि भवम् । **घर्मम् । घर्मग्रीष्मौ** (उ० १ । १४९) इति घृ सेचनदीप्त्योः–मक् । आतपम् । ग्रीष्मम् । स्वेदम् । यज्ञम, निघ० ३ । १७ । **श्रीणन्तु** । श्रीञ् पाके । पचन्तु । पक्वं कुर्वन्तु । संस्कुर्वन्तु । **धास्यवे** । अ० २ । १ । ४ । जगतो धारणपोषणेच्छवे ॥

३—**प्र** । प्रकर्षेण । सर्वोपरि । **यः** । वेनः परमेश्वरः । **जज्ञे** । जनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का (बन्धुः) बन्धन वा नियम करने वाला, अथवा, बन्धु हितकारी (प्र) अच्छे प्रकार (जज्ञे) प्रकट हुआ था, और जो (देवानाम्) भूमि, सूर्य आदि दिव्य पदार्थों वा महात्माओं के (विश्वा=विश्वानि) सब (जनिमा) जन्मों को (विवक्ति) बतलाता है। उसने (ब्रह्मणः) ब्रह्म [अपने परब्रह्म स्वरूप] के (मध्यात्) मध्य से (ब्रह्म) वेद को (उज्जहार) उभारा था, वही (नीचैः) नीचे और (उच्चैः) ऊँचे (स्वधाः) अनेक अमृतों वा अन्नों को (अभि = अभिलक्ष्य) सन्मुख करके (प्र) उत्तमता से (तस्थौ) स्थित हुआ था ॥ ३ ॥

भावार्थः—अनादि, सर्वज्ञ सर्वोत्तम परमात्मा ने सब चराचर जगत् को यथानियम रचा और वेद विद्या को अपने में से प्रकट करके नीचे ऊँचे लोकों की सृष्टि के अनुकूल अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न किये हैं, सब मनुष्य उस जगत् नियन्ता की उपासना द्वारा पुरुषार्थ करके आनन्द भोगें ॥ ३ ॥

इस मन्त्र का 'विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति' यह पाद अ० २ । २८ । २ । में आया है ।

स हि द्युवः स पृथिव्या ऋतस्था महो चेमं रोदसी अस्कभायत् ।
महान् महो अस्कभायद् वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः ॥४॥

प्रादुर्भावे - लिट् । **यद्वृत्तान्नित्यम्** (पा० ८ । १ । ६६) इति निघातप्रतिषेधः । प्रादुर्बभूव । **विद्वान्** । अ० २ । १ । २ । ज्ञानी । **अस्य** । दृश्यमानस्य जगतः । **बन्धुः** । अ० २ । १ । ३ । बन्धकः । नियामकः । बान्धवः । **विश्वा** । विश्वानि । सर्वाणि । **देवानाम्** । पृथिवीसूर्यादीनां दिव्यपदार्थानाम् । महात्मनाम् । **जनिमा=जनिमानि** । अ० १ । ८ । ४ । जन्मविधानानि । **विवक्ति** । अ० २ । २८।२ । वच परिभाषणे । अदादिकः । शपः श्लुः । कथयति । उपदिशति । **ब्रह्म** । वेदम् । **ब्रह्मणः** । स्वपरब्रह्मस्वरूपस्य । **उज्जभार** । हृञ् हरणे-लिट् । **हृग्रहोर्भश्छन्दसि** (वा० पा० ३।१।८४) इत्यनेन वार्त्तिकेन भकारः । उज्जहार । उद्धृतवान् । उत्थापितवान् । **मध्यात्** । मध्यभागात् । **नीचैः** । अ० २ । ३ । ३ । अधोदेशे । **उच्चैः** । **उदि चेडैसिः** (उ० ५ । १२) इति उत्+चिञ् चयने—डैसिः । उपरिभागे । **स्वधाः** । अ० २ । २९ । ७ । अन्नानि । पोषकद्रव्याणि । **अभि** । अभिलक्ष्य । **तस्थौ** । स्थितवान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सः । हि । दिवः । सः । पृथिव्याः । ऋतऽस्थाः । मही इति । क्षेमम् । रोदसी इति । अस्कभायत् । महान् । मही इति । अस्कभायत् । वि । जातः । द्याम् । सद्म । पार्थिवम् । च । रजः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(सः) उस (सः) विष्णु वा शिव ने (हि) ही (दिवः) सूर्य के और (पृथिव्याः) पृथिवी के (ऋतस्थाः+सन्) सत्य वा कारण में स्थित होकर (मही = महत्यौ) विशाल (रोदसी = ०-स्यौ) सूर्य और पृथिवी को (क्षेमम्) क्षेम के साथ (अस्कभायत्) ठहराया । (महान्) उस विशाल परमेश्वर ने (जातः+सन्) प्रकट होकर (मही = महत्यौ) दोनों विशालों, अर्थात् (द्याम्) सूर्यरूप (सद्म) घर (च) और (पार्थिवम्) पृथिवी वाले (रजः) लोक को (वि) अलग अलग (अस्कभायत्) स्थिर किया ॥ ४ ॥

४—सः । प्रसिद्धः । **हि** । अवश्यम् । **दिवः** । द्युलोकस्य । सूर्यस्य । **सः** । षो अन्तकर्मणि-डः । स्यति नाशयति दुष्टानिति सः । विष्णुः । ईश्वरः । शिवः । **पृथिव्याः** । भूलोकस्य । **ऋतस्थाः** । **अश्विघृसिभ्यः क्तः** (उ० ३ । ८९) इति ऋ गतौ-क्तः । ऋतं सत्यनाम-निघ० ३ । १० । उदकम्-निघ० १ । १२ । **आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च** (पा० ३ । २ । ७४) इति ऋत+ष्ठा गति-निवृत्तौ-विच् । ऋते सत्ये कारणे स्थितः । कारणस्य कारणमित्यर्थः । **मही** । मह पूजायाम्-क्विप् । **इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम्** (वा० पा० ७। १। ३९) इति ईकारो विभक्तौ । महत्यौ । विशाले । **क्षेमम्** । अ० ३ । ३ । ५, कुशलम् । **रोदसी** । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति रुधेरसुन् । धस्य दकारः, **उगितश्च** (पा० ४ । १ । ६) इति ङीप् । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति पूर्वसवर्णः । आभ्यां हि रुद्धानि सर्वभूतानि । रोदस्यौ । द्यावापृथिव्यौ-निघ० ३ । ३० । **अस्कभायत्** । स्कन्भु गतिप्रतिबन्धे-लङ् । **छन्दसि शायजपि** (पा० ३ । १ । ८४) इति श्नः शायच् । अस्कभ्नात् । स्थापितवान् । **महान्** । विशालः । **मही** । पूर्ववत् । महत्यौ । **वि** । पृथक् पृथक् । **जातः** । प्रादुर्भूतः । **द्याम्** । अ० १ । २ । ४ । द्योतमानं सूर्यात्मकम् । **सद्म** । **सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उ० ४ । १४५) इति षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु-मनिन् । संग्रामनाम-निघ० २ । १७ । गृहनाम-निघ० ३ । ४ । उदकनाम-निघ० १ । १२ । सदनम् । गृहम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सूर्य आदि के (ऋतस्थाः) कारण के कारण परमेश्वर ने सूर्य आदि लोकों को रचा, और परस्पर आकर्षणरूप डोरी लगाकर उनको पृथक् पृथक् कर दिया। उस परमेश्वर की ऐसी बड़ी महिमा देखकर हम सदा पुरुषार्थ करें ॥ ४ ॥

स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट्।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः ॥५॥

सः। बुध्न्यात्। आष्ट्र। जनुषः। अभि। अग्रम्। बृहस्पतिः। देवता। तस्य। सम्ऽराट्। अहः। यत्। शुक्रम्। ज्योतिषः। जनिष्ट। अथ। द्युऽमन्तः। वि। वसन्तु। विप्राः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(सः) ईश्वर (जनुषः) उत्पन्न जगत् के (बुध्न्यात्) मूल देश से लेकर (अग्रम् अभि) उपरि भाग तक (आष्ट्र = आष्ट) व्याप्त हुआ। (बृहस्पतिः) बड़े बड़ों का स्वामी (देवता) प्रकाशमान परमेश्वर (तस्य) उस [जगत्] का (सम्राट्) सम्राट् [राजराजेश्वर] है। (यत्) क्योंकि (ज्योतिषः) ज्योतिः स्वरूप परमेश्वर से (शुक्रम्) चमचमाता हुआ (अहः) दिन [सूर्य] (जनिष्ट = अजनिष्ट) उत्पन्न हुआ, (अथ) तभी (विप्राः) इन्द्रियां वा बुद्धिमान् लोग (द्युमन्तः) प्रकाशमान् होकर (वि) विविध प्रकार से (वसन्तु) निवास करें ॥ ५ ॥

पार्थिवम्। अ० २। २८। ३। भौमम्। **रजः**। **भूरञ्जिभ्यां कित्** (उ० ४। २१७) इति रञ्ज रागे–असुन्। रजो रजतेर्ज्योतीं रज उच्यते, उदकं रज उच्यते, लोका रजांस्युच्यन्तेऽसृगहनी रजसी उच्येते–निरु० ४। १९। लोकम् ॥

५—**सः**। म० ४। ईश्वरः। **बुध्न्यात्**। म० १। मूले भवाद् देशात्। **आष्ट्र**। अशूङ् व्याप्तौ–छान्दसो लुङ्। आष्ट। आश्नुत। व्याप्नोत्। **जनुषः**। म० २। प्रादुर्भूतस्य संसारस्य। **अभि**। अभितः सर्वतः। **अग्रम्**। उपरिभागम्। **बृहस्पतिः**। बृहतां लोकानां स्वामी। **देवता**। **देवात् तल्** (पा० ५। ४। २७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर इस सब जगत् के आदि अन्त में विराजमान है, वही सार्वभौम शासक है, उसी ने सूर्य को बनाया है जिससे इन्द्रियां प्रकाश पाकर अपना व्यापार करती हैं। उसी से पंडित जन विद्या प्रकाश करके कीर्तिमान होते हैं ॥ ५ ॥

पं० सेवकलाल कृष्णदास की संहिता और सायणभाष्य में 'आष्ट्र' के स्थान में 'आष्टृ' है।

नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु ॥६॥

नूनम्। तत्। अस्य। काव्यः। हिनोति। महः। देवस्य। पूर्व्यस्य। धाम। एषः। जज्ञे। बहुऽभिः। साकम्। इत्था। पूर्वे। अर्धे। विऽसिते। ससन्। नु ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(काव्यः) स्तुति योग्य परमेश्वर[वेनः,म० १] (अस्य)इस(पूर्व्यस्य) समग्र जगत् के हित करने वाले (देवस्य) प्रकाशमान सूर्य के (तत्) उस (महः)

इति स्वार्थे तल्। देवः प्रकाशमानः परमेश्वरः। **तस्य**। जनुषो जगतः। **सम्राट्**। **सत्सूद्विष०** (पा० ३। २। ६१) इति सम्+राजृ दीप्तौ—क्विप्। **मो राजि समः क्वौ** (पा० ८। ३। २५) इति समो मस्य अनुस्वाराभावः सम्यक् राजमानः। राजाधिराजः चक्रवर्त्ती। **अहः**। दिनम्। **यत्**। यस्मात् कारणात्। **शुक्रम्**। अ०। २। ११। ५। दीप्यमानम्। **ज्योतिषः**। अ० १। ९। १। द्योतमानात् परमेश्वरात्। **जनिष्ट**। जनी प्रादुर्भावे, लुङ् अडभावः। प्रादुरभूत्। **अथ**। अनन्तरम्। तस्मात् कारणात्। **द्युमन्तः**। दीप्तिमन्तः। **वि वसन्तु**। विविधं वर्तन्ताम्। **विप्राः**। अ० ३। ३। २। विप्राणां व्यापनकर्मणामिन्द्रियाणाम्–निरु० १४। १३। इन्द्रियाणि। मेधाविनः पुरुषाः॥

६–**नूनम्**। निश्चयेन। **तत्**। प्रसिद्धम्। **अस्य**। दृश्यमानस्य। **काव्यः**। **ऋहलोर्ण्यत्**। (पा० ३। १। १२४) इति कवृ वर्णे-ण्यत्। बवयोरैक्यम्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल (धाम) तेज को (नूनम्) अवश्य (हिनोति) भेजता है। (ससन्) सोता हुआ (एषः) यह परमेश्वर (पूर्वे) समस्त (अर्धे) प्रवृद्ध जगत् के (विषिते) खुलने पर (इत्था) इस प्रकार से [जैसे सूर्य] (बहुभिः साकम्) बहुत [लोकों] के साथ (नु) शीघ्र (जज्ञे) प्रकट हुआ है ॥ ६ ॥

भावार्थः—परमेश्वर प्रलय की अवस्था में सोता हुआ सा था, उसने सृष्टि उत्पन्न करने पर, आकर्षण, आतप वृष्टि आदि द्वारा संसार के हित के लिये सूर्य, पृथिवी, बृहस्पति, शुक्र आदि असंख्य लोक रचे। उस जगदीश्वर का सामर्थ्य विचार कर हम अपना सामर्थ्य बढ़ाकर उपकार करें ॥ ६ ॥

योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात्।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत् स्वधावान् ॥७॥

यः। अथर्वाणम्। पितरम्। देवऽबन्धुम्। बृहस्पतिम्। नमसा। अव। च। गच्छात्। त्वम्। विश्वेषाम्। जनिता। यथा। असः। कविः। देवः। न। दभायत्। स्वधाऽवान् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(यः) गतिवाला, पुरुषार्थी पुरुष (अथर्वाणम्) निश्चल, (पितरम्) पिता, (देवबन्धुम्) विद्वानों वा सूर्यादि दिव्य लोकों का बन्धु वा

यथा, काव्या = बुद्धिः। स्तुत्यः परमेश्वरः। **हिनोति**। हि गतौ वृद्धौ च। प्रेरयति। **महः**। विशालम्। **देवस्य**। प्रकाशमानस्य सूर्यस्य। **पूर्व्यस्य। तस्मै हितम्** (पा० ५। १। ५) इति पूर्व-यत्। पूर्वाय समस्ताय जगते हितम्। **धाम**। अ० १। १३। ३। प्रभावम्। लोकम्। तेजः। **एषः**। पुरोवर्त्ती परमेश्वरः। **जज्ञे**। प्रादुर्बभूव। **बहुभिः**। असंख्यैर्देवैर्लोकैः। **साकम्**। सार्धम्। **इत्था**। **था हेतौ च च्छन्दसि** (पा० ५। ३। २६) इति इदम्-था। अनेन प्रकारेण यथा, सूर्यः। **पूर्वे**। पुर्व पूर्व पूरणे-अच्। समस्ते। **अर्धे**। ऋधु वृद्धौ-घञ्। प्रवृद्धे संसारे। **विषिते**। वि विरोधे। षिञ् बन्धने-क्तः। विवृत्ते प्रकाशिते सति। **ससन्**। षस स्वप्ने-शतृः। निद्रां गच्छन् सन्। प्रलयकालेऽज्ञातदशायां वर्तमान इत्यर्थः ॥

७—**यः**। यातीति यः। या प्रापणे-डः। याता। गतिवान्। उद्योगी पुरुषः। **अथर्वाणम्**। अथर्वाणोऽथनवन्तस्थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः—निरु० ११।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियामक, (बृहस्पतिम्) बड़े बड़ों के स्वामी परमेश्वर को (नमसा) नमस्कार के साथ (च) निश्चय करके (अव गच्छात्) पहिचाने। [हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (विश्वेषाम्) सब [सुखों] का (जनिता) उत्पादक (असः) हो, (यथा) क्योंकि (कविः) मेधावी, (स्वधावान्) अन्नवान् वा स्वयं धारण सामर्थ्य वाला (देवः) परमेश्वर (न) कभी नहीं (दभायत्) ठगता है ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य विश्वास करके सत्य स्वभावरूप परमेश्वर से प्रार्थना करें—"हे ईश्वर आप दुःखों से मुक्ति दाता हैं और आप कभी किसी को नहीं सताते" और पुरुषार्थ से पाप कर्मों को त्यागकर सुख प्राप्त करें ॥ ७ ॥

१८। **स्नामदिपद्यर्त्तिपृशकिभ्यो वनिप्** (उ० ४।११३) इति अ+थर्व चरणे=गतौ—वनिप्। वकारलोपो विकल्पेन। न थर्वति न चरतीति अथर्वा निश्चलः परमेश्वरः। यद्वा अथ + ऋ गतौ–वनिप्। अथ लोकमङ्गलाय ऋच्छति गच्छति व्याप्नोतीति अथर्वा। निश्चलं मङ्गलाय व्यापकं वा परमात्मानम्। **पितरम्।** अ० १।२।१। पातारं पालयितारं वा–निरु० ४।२१। **देवबन्धुम्।** देवानां विदुषां सूर्यादिदिव्यलोकानां वा बन्धुं हितकारं बन्धकं नियामकं वा। **बृहस्पतिम्।** बृहतां लोकानां रक्षकम्। **नमसा।** नमस्कारेण। कराभ्यां-शिरः संयोगविशेषेण स्वापकर्षसूचकेन व्यापारभेदेन। **च।** अवधारणे। **अव गच्छात्।** अवगच्छेत्। जानीयात्। **त्वम्।** अथर्वा वेनो वा परमेश्वरः। **विश्वेषाम्।** सर्वेषां सुखानाम्। **जनिता।** अ० २।१।३। जनयिता। **यथा।** यस्मात् कारणात्। **असः।** भवेः। **कविः। सर्वधातुभ्य इन्।** (उ० ४।११८) इति कबृ वर्णे-इन्। यद्वा। **अच इः** (उ० ४।१३९) इति कु शब्दे–इः। कविः क्रान्तदर्शनो भवति कवतेर्वा। निरु० १२।१३। अतीतानागतविप्रकृष्टविषयं युगपत् ज्ञानं यस्य स क्रान्तदर्शनः–इति देवराजयज्वा निरुक्तटीकाकारः–निघ० ३।१५ मेधावी–निघ० ३।१५ ब्रह्मा, पण्डितः। **देवः।** दीप्यमानः। **न।** न हि। **दभायत्।** दम्भु दम्भने=वञ्चने। **छन्दसि शायजपि** (पा० ३।१।८४) इति श्नः शायच्। इकारलोपश्च। दभ्नोति वञ्चति। **स्वधावान्।** अन्नवान्। स्वयं धारणवान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥ २ ॥

१—८॥ कः प्रजापतिर्देवता । १—७ त्रिष्टुप्छन्दः, ८ आपो वत्समिति अनुष्टुप्, कस्मै देवायेति त्रिष्टुप् पादः ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यो ३ स्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

यः । आत्मऽदाः । बलऽदाः । यस्य । विश्वे । उपऽआसते । प्रऽशिषम् । यस्य । देवाः । यः । अस्य । ईशे । द्विऽपदः । यः । चतुःऽपदः । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ १ ॥

भाषार्थः—(यः) जो (आत्मदाः) प्राण [आत्मबल] का देने वा शुद्ध करने वाला और (बलदाः) शारीरिक बल का देने वा शुद्ध करने वाला है, (यस्य) जिस (यस्य) व्यापक वा पूजनीय के (प्रशिषम्) उत्तम शासन को (विश्वे) सब (देवाः) देवता [सूर्य चन्द्रादि सब लोक] (उपासते) सेवते हैं, (यः) जो (यः) व्यापक वा पूजनीय (अस्य) इस (द्विपदः) दुपाये और (चतुष्पदः) चौपाये जीव समूह का (ईशे=ईष्टे) ईश्वर है, उस (कस्मै=काय) प्रजापति सुखदाता परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये मैं (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥ १ ॥

१—**यः** । कः परमेश्वरः । **आत्मदाः** । **आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च** (पा० ३ । २ । ७४) इति आत्मन्+डुदाञ् दाने, दैप् शोधने वा-विच् । आत्मनः प्राणस्य आत्मबलस्य दाता शोधयिता वा । **बलदाः** । इति पूर्ववत् सिद्धिः । शरीरबलस्य दाता शोधयिता वा । **यस्य** । ईश्वरस्य । **विश्वे** । सर्वे । **उपासते** । आस उपवेशने-अदादिः । सेवन्ते । भजन्ते । **प्रशिषम्** । **क्वौ च शास इत्वं भवतीति वक्तव्यम्** (वा० पा० ६ । ४ । ३४) इति शासु अनुशिष्टौ, इति क्विबन्तस्य उपधाया इत्वम् । **शासिवसिघसीनां च** (पा० ८ । ३ । ६०) इति षत्वम् । प्रकृष्टं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस परमात्मा की आज्ञा में अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा आदि सब देवता [यजु० १४ । २०] और मनुष्य गौ आदि सब प्राणी चलते हैं, उस जगदीश्वर की उपासना करके हम लोग आत्मिक और शारीरिक बल बढ़ाकर सुख भोगें ॥ १ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १० । १२१ । २, और य० २५ । १३, में है ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

यः । प्राणतः । निऽमिषतः । महिऽत्वा । एकः । राजा । जगतः । बभूव । य ईशे । अस्य । द्विऽपदः । चतुःऽपदः । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यः) जो महित्वा = ०—त्वेन) अपनी महिमा से (प्राणतः)

शासनम् । आज्ञाम् । **यस्य** । या प्रापणे वा यज पूजायाम्—डः । याति व्याप्नोति यद्वा इज्यते पूज्यते स यः । व्यापकस्य । पूज्यस्य । **देवा** । अग्निवायुसूर्यादयः—यथा यजु० १४।२०। **अस्य** । दृश्यमानस्य । **ईशे** । ईश ऐश्वर्ये । **लोपस्त आत्मनेपदेषु** (पा० ७ । १ । ४१) इति तलोपः । ईष्टे । ईश्वरो भवति । **द्विपदः** । अ० २।३४।१ । पादद्वययुक्तस्य मनुष्यादेः । **यः** । व्यापकः । यजनीयः । **चतुष्पदः** । अ० २ । ३४ । १ । पादचतुष्टयोपेतस्य गवाश्वादेः । **कस्मै** । **अन्येष्वपि दृश्यते** (पा० ३ । २ । १०१) इति कचि दीप्तिबन्धनयोः कमु कान्तौ वा क्रमु पादविक्षेपे वा गतौ च—डप्रत्ययः । छान्दसी सर्वनामता[1] । द्वितीयार्थे चतुर्थी । कः कमनो वा क्रमणो वा । दीप्यमानाय प्रजापतये । **देवाय** । दिव्यगुणाय—यथा दयानन्दभाष्ये, यजु० ४।३५। **हविषा** । अ० १ । ४ । ३ । आत्मदानेन । भक्त्या । **विधेम** । अ० १ । १२ । २ । परिचरेम । सेवेमहि । परिचरणं कुर्याम ॥

२—यः । प्रजापतिः कः । **प्राणतः** । अन प्राणने—शतृः । प्रश्वसतः । चेतनस्य

---

१. प्रजापति के पर्यायवाची 'क' शब्द की सर्वनाम संज्ञा छन्द में 'सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते' आदि नियमों एवं शतपथ (श० ब्रा० ७ । ३ । १ । २०) महाभाष्यादि (म० भा० ४ । २ । २५) के प्रमाण से सिद्ध है । एकस्मै के अर्थ में भी कस्मै का प्रयोग कतिपय प्राचीन ग्रन्थों (मी०/शाबरभाष्य १० । ३ । १५) में प्राप्त होता है, सो छान्दस एकार लोट् एवं स्वर व्यत्यय से 'क' को उदात्त मानकर वह माना जा सकता है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वास लेते हुए, चेतन और (निमिषतः) आंख मूदे हुए, अचेतन (जगतः) जगत् का (एकः) एक (राजा) राजा (बभूव) हुआ है । (यस्य) जिसकी (छाया) छाया [छाया समान अनुगामी अथवा आश्रय वा कान्ति अर्थात् ज्ञान] (अमृतम्) अमरपन [जीवन वा पुरुषार्थ वा जीवन की सफलता, मोक्ष पद] है और (यस्य=यस्यच्छाया) जिसकी [छाया अर्थात् छाया समान अनुगामी अथवा अनाश्रय, वा प्रकाश का ढकना, अज्ञान] (मृत्युः) मरण [शरीर त्याग वा निरुत्साह, वा जीवन की विफलता, नरक] है, उस (कस्मै) प्रजापति सुखदाता परमेश्वर की (देवाय) श्रेष्ठ गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) सेवा किया करें ।। २ ।।

भावार्थः—जो मनुष्य सब चेतन और अचेतन जगत् के एक स्वामी परमेश्वर की आज्ञा में चलता है, वह जीते जागते हृदय वाला पुरुष पुरुषार्थ करके अमर [यशस्वी वा मुक्त] हो जाता है और इसके विपरीत मरे मन वाला निरुत्साही मृतक सा होकर नरक भोगता है ।। २ ।।

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १० । १२१ । ३, और यजु० २५ । ११, में है ।।

यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वयेथाम् ।
यस्यासौ पन्था रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

निमिषतः । मिष स्पर्धायाम्—शतृः । तुदादित्वात् शः । निमेषणं निमीलनं चक्षुर्मुद्रणं कुर्वतः । अचेतनस्य । **महित्वा । सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४ । ११८) इति मह पूजायाम्—इन् । महेर्महतो भावो महित्वम् । यद्वा । **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** (पा० ३ । २ । ७५) इति मह—भावे इत्वन् । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) इति तृतीयायाः आकारः । महित्वेन । महत्त्वेन । **एकः** । अद्वितीयः । **राजा** । शासकः अधिपतिः । **जगतः** । संसारस्य । **बभूव** । **यस्य** । कस्य । प्रजापतेः । **छाया । माछापसिभ्यो यः** (उ० ४ । १०९) इति छो छेदने—यः टाप्, गृहनाम—निघ० ३ । ४ । आश्रयः इत्यर्थः । कान्तिः प्रकाशः । प्रतिबिम्बम् । प्रकाशावरणम् अज्ञानमित्यर्थः । यद्वा । छायेव अनुगामी वशीभूतः । **अमृतम्** । भावे—क्तः । अमरणम् । जीवनम् । जीवनसाफल्यम् । **यस्य** । यस्यच्छाया । **मृत्युः** । मरणम् । जीवनवैफल्यम् अन्यद् गतम् ।। म० १ ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यम् । क्रन्दसी इति । अवतः । चस्कभाने इति । भियसाने इति । रोदसी इति । अह्वयेथाम् । यस्य । असौ । पन्थाः । रजसः । विऽमानः । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(यम्) जिसको (चस्कभाने) परस्पर रोकती हुई (क्रन्दसी) ललकारती हुई दो सेनायें (अवतः) प्राप्त होती हैं, और [जिसको] (भियसाने) हे डरती हुई (रोदसी) सूर्य और भूमि ! (अह्वयेथाम्) तुम दोनों ने पुकारा है । (यस्य) जिसका (असौ पन्थाः) यह मार्ग (रजसः) संसार का (विमानः) विविध प्रकार नापने वाला वा विमान रूप है, उस (कस्मै) प्रजापति सुखदाता परमेश्वर की (देवाय) उत्तम गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—परमेश्वर को ही दो लड़ती हुई सेनायें पुकारती हैं, उसी की आज्ञा में सूर्य आदि लोक रहते हैं, उसी की व्याप्ति संसार भर में है, उसी परब्रह्म की भक्ति करके सब मनुष्य पुरुषार्थ करें ॥ ३ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध कुछ भेद से ऋ० १० । १२१ । ६ और यजु० ३२ । ७ और उत्तरार्ध यजु० ३२ । ६ में है ॥

३—यम् । प्रजापतिम् । **क्रन्दसी ।** **सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४ । ११८) इति क्रदि आह्वाने रोदने च—असुन् । **उगितश्च** (पा० ४ । १ । ६) इति ङीप् । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति पूर्वसवर्णः । क्रन्दस्यौ । आक्रोशन्त्यौ । आह्वानं शब्दं वा कुर्वाणे द्वे सेने । **अवतः ।** अव रक्षणगतिकान्तिप्रीत्यादिषु । अव गतौ प्राप्तौ—लट् । गच्छतः । प्राप्नुतः । **चस्कभाने ।** स्कभि प्रतिबन्धे—कानच् । प्रतिबन्धं कुर्वाणे । **भियसाने ।** **छन्दस्यसानच् शुजभ्याम्** (उ० २ । ८६) इति भिभी भये—असानच् । बिभ्यत्यौ । **रोदसी ।** अ० ४ । १ । ४ । भूतानां निरोधनशीले । द्यावापृथिव्यौ । **अह्वयेथाम् ।** ह्वेञ् आह्वाने, स्पर्धायां शब्दे च—लङ् । युवाम् आहूतवत्यौ । **यस्य ।** कस्य । प्रजापतेः । **असौ ।** प्रसिद्धः । दृश्यमानः । **पन्थाः ।** **पतःस्थ च** (उ० ४ । १२) इति पत्लृ गतौ—इन् । मार्गः । **रजसः ।** अ० ४ । १ । ४ । लोकस्य । **विमानः ।** वि+माङ् माने ल्युट् । परिच्छेदकः सर्वमानः । देवरथः । व्योमयानम् । विमानवत् । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्वन्तरिक्षम् ।
यस्यासौ सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

यस्य । द्यौः । उर्वी । पृथिवी । च । मही । यस्य । अदः । उरु । अन्तरिक्षम् । यस्य । असौ । सूरः । विऽततः । महिऽत्वा । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(यस्य) जिसकी (महित्वा=०त्वेन) महिमा से (उर्वी) विस्तीर्ण (द्यौः) सूर्य (च) और (मही) विशाल (पृथिवी) पृथिवी है, (यस्य) जिसकी [महिमा से] (अदः) यह (उरु) चौड़ा (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक है। (यस्य) जिसकी [महिमा से] (असौ) यह (सूरः) धर्म प्रचारक विद्वान् मनुष्य (विततः) विस्तार वाला है, उस (कस्मै) प्रजापति सुखदाता परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥ ४ ॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने सूर्य आदि अनेक लोकों को रचकर परस्पर आकर्षण द्वारा स्थिर किया है, और जिसने मनुष्य को अद्भुत शक्तियां देकर ऐश्वर्यवान् और प्रतापी बनाया है, उसकी भक्ति करके हम पुरुषार्थ के साथ अपनी उन्नति करें ॥ ४ ॥

४—**यस्य** । कस्य । प्रजापतेः । **द्यौः** । अ० २।१२।६। द्योतमानः सूर्यः । **उर्वी** । अ० ३ । २० । ९ । विस्तीर्णा । **पृथिवी** । भूलोकः । **मही** । महती । विशाला । **अदः** । एतत् दृश्यमानम् । **उरु** । अ० २ । १२ । १ । विस्तीर्णम् । **अन्तरिक्षम्** । अ० १ । ३० । ३ । मध्यलोकः । **असौ** । प्रत्यक्षं दृश्यमानः । **सूरः** । **सुसूधाञ्गृधिभ्यः क्रन्** । (उ० २ । २४) इति षू प्रेरणे वा षूङ् प्राणिगर्भविमोचने, क्रन् । सुवति प्रेरयति, यद्वा, सूते उत्पादयति लोकं धर्मं वा । सूर्यः । पण्डितः **महित्वा** । म० २ । महित्वेन । अन्यद् गतम्—म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहुः ।
इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

यस्य । विश्वे । हिमऽवन्तः । महिऽत्वा । समुद्रे । यस्य । रसाम् । इत् । आहुः । इमाः । च । प्रऽदिशः । यस्य । बाहू इति । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(यस्य) जिसकी (महित्वा=०—त्वेन) महिमा से (विश्वे) सब (हिमवन्तः) हिम वाले पहाड़ हैं, और (यस्य) जिसकी [महिमा से] (समुद्रे) समुद्र [अन्तरिक्ष,वा पार्थिव समुद्र] में (रसाम्) नदी को (इत्) भी (आहुः) बताते हैं। (च) और (इमाः) यह (प्रदिशः) बड़ी दिशायें (यस्य) जिसकी (बाहू) दो भुजायें हैं, उस (कस्मै) सुख दायक प्रजापति सुखदाता परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥ ५ ॥

भावार्थः— जैसे मनुष्य अपनी दो भुजाओं के बल से अर्थात् शारीरिक और आत्मिक सामर्थ्य से प्रजा पालन आदि बड़े २ बोझ उठाते हैं, उसी प्रकार परमेश्वर ने दिशाओं अर्थात् अवकाश के भीतर सब लोकों को रचकर परस्पर आकर्षण द्वारा स्थापित किया है, उस जगदीश्वर की आज्ञा में चलकर हम यज्ञ से उत्तम गुण प्राप्त करें ॥ ५ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १० । १२१ । ४ और यजु० २५ । १२ में है ॥

५—**यस्य** । कस्य । ईश्वरस्य । **विश्वे** । सर्वे । **हिमवन्तः** । भूम्नि मतुप्, मस्य वः । बहुहिमयुक्ता महागिरयः । **महित्वा** । म० २ । महित्वे । **समुद्रे** । अ० १ । ३ । ८ । अन्तरिक्षे । पार्थिवसागरे । **रसाम्** । **नन्दिग्रहि०** पा० ३ । १ । १३४) इति रस शब्दे—पचाद्यच् । यद्वा । रस उदक इ—निघ० १ । १२ । रसोऽस्त्यस्यामिति रसा । **अर्श आदिभ्योऽच्** (पा० ५ । २ । १२७) इति रस—अच् । रसा नदी रसतेः शब्दकर्मणः—निरु० ११ । २५ । नदीम् । जलधाराम् । **इत्** । एव । **आहुः** । ब्रुवन्ति । **इमाः** । दृश्यमानाः । **प्रदिशः** । प्रकृष्टा दिशाः । **बाहू** । अ० २ । २७ । ३ । भुजद्वयवद् वर्त्तमानाः । अन्यद् गतम्—म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपो अग्रे विश्वमावन् गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः ।
यासु देवीष्वधि देव आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

आपः । अग्रे । विश्वम् । आवन् । गर्भम् । दधानाः । अमृताः । ऋतऽज्ञाः । यासु । देवीषु । अधि । देवः । आसीत् । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥६॥

भाषार्थः—(गर्भम्) बीज को (दधानाः) धारण करते हुए, (अमृताः) मरण रहित [जीवन शक्ति वाले] (ऋतज्ञाः) सत्य नियम को जानने वाले (आपः) उन व्यापक जलों [वा तन्मात्राओं] ने (अग्रे) पहिले (विश्वम्) जगत् की (आवन्) रक्षा की थी, (यासु देवीषु अधि) जिन दिव्य गुण वालों के ऊपर (देवः) परमेश्वर (आसीत्) था उस (कस्मै) सुखदायक प्रजापति परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥ ६ ॥

भावार्थः—सृष्टि की आदि में ईश्वर नियम से जल [वा तन्मात्रा] के भीतर जगत् का बीज और जीवन सामर्थ्य था, जिससे यह सृष्टि हुई है। उसी परमात्मा के नियम पर चलकर हम अपने जीवन को पुरुषार्थ करके सुधारें ॥६॥

६—**आपः** । अ० १ । ४ । ३ । जलानि । व्यापिकास्तन्मात्राः—इति दयानन्दो यजुर्वेदभाष्ये २७।२५ । **अग्रे** । सृष्ट्यादौ । **विश्वम्** । सर्वं जगत् । **आवन्** । अव रक्षणगत्यादिषु—लङ् । अरक्षन् । **गर्भम्** । अ० ३ । १० । १२ । बीजम् । मूलम् । प्रधानम् । **दधानाः** । दधातेः शानच् । धारयन्त्यः । धरन्त्यः सत्यः । **अमृताः** । नास्ति मृतं मरणं याभिस्ताः । मरणरहिताः । प्राप्तजीवनशक्तयः । **ऋतज्ञाः** । **आतोऽनुपसर्गे कः** (पा० ३ । २ । ३) इति ऋत + ज्ञा अवबोधने कः । टाप् । ऋतं सत्यं नियमं जानानाः । **यासु** । अप्सु । **देवीषु** । दिव्यगुणसंपन्नासु । **अधि** । अधिकम् । उपरि । **देवः** । परमेश्वरः । **आसीत्** । अभवत् । अन्यद् व्याख्यातम् म० १ ॥

---

१. यद्वृत्तोपपदाच्च (यजु० प्रा० ६ । १४) के नियम से आसीत् यहाँ आद्युदात्त है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १० । १२१ । ७, ८ और यजु० २७ । २५, २६ में है । मनु महाराज ने भी ऐसा कहा है--

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ मनु० १ । ८ ॥

उस परमात्मा ने सब ओर ध्यान करके अपने शरीर [अध्याकृत रूप वा सामर्थ्य] से नानाविध प्रजायें उत्पन्न करने की इच्छा करते हुये जल ही पहिले उत्पन्न किया और उसमें बीज छोड़ दिया ॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७ ॥

हिरण्यऽगर्भः । सम् । अवर्तत । अग्रे । भूतस्य । जातः । पतिः । एकः । आसीत् । सः । दाधार । पृथिवीम् । उत । द्याम् । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(हिरण्यगर्भः) तेज वाले लोकों का आधार (अग्रे) पहिले ही (सम्) ठीक ठीक (अवर्तत) वर्त्तमान था । वही (जातः) प्रकट होकर (भूतस्य) पृथिवी आदि पंचभूत का (एकः) एक (पतिः) पति, ईश्वर (आसीत्) हुआ, (सः) उसने (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) सूर्य को (दाधार) धारण किया, उस (कस्मै) सुखदायक प्रजापति परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥ ७ ॥

---

७ - हिरण्यगर्भः । हिरण्यं व्याख्यातम्—अ० १ । ९ । २ । गर्भश्च, अ० ३ । १० । १२ । हिरण्यगर्भो हिरण्यमयो गर्भो हिरण्यमयो गर्भोऽस्येति वा निरु० १० । २३ । हिरण्यानि सूर्यादितेजांसि गर्भे यस्य स परमात्मा—इति दयानन्द-भाष्ये यजु० २५ । १० । **सम्** । प्रकर्षेण । **अवर्तत** । वृतु वर्तने—लङ् । वर्तमान आसीत् । **अग्रे** । सृष्टेः प्राक् । **भूतस्य** । पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशपञ्चकस्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् अविनाशी परमात्मा प्रलय काल में विद्यमान था। उसके कर्मों से ज्ञात होता है कि उस अकेले ने सूक्ष्म पंचभूत का यथावत् संयोग वियोग करके पृथिवी, सूर्य आदि सृष्टि को रचा और धारण किया है, उसकी उपासना से उत्तम गुण प्राप्त करके आनन्द भोगें ॥ ७ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १० । १२१ । १, यजु० १३ । ४ तथा २५ । १० और निरु० १० । २३ में है ॥

आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन् ।
तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्धिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥

आपः । वत्सम् । जनयन्तीः । गर्भम् । अग्रे । सम् । ऐरयन् । तस्य । उत । जायमानस्य । उल्बः । आसीत् । हिरण्ययः । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(अग्रे) पहिले ही पहिले (वत्सम्) निवास स्थान संसार को वा बालक रूप संसार को (जनयन्तीः = ०-न्त्यः) उत्पन्न करते हुए (आपः) जल-धाराओं [वा तन्मात्राओं] ने (गर्भम्) बालक [रूप संसार] को (समैरयन्) यथावत् प्रकट किया, (उत) और (तस्य) उस (जायमानस्य)

वस्तुतत्त्वस्य । उदकस्य—निघ० १ । १२ । **जातः** । उत्पन्नः । प्रादुर्भूतः । प्रसिद्धः सन् । **पतिः** । अ० १ । १ । १ पाता । रक्षिता । ईश्वरः । स्वतन्त्रः । **एकः** । मुख्यः । अद्वितीयः । **आसीत्** । अभवत् । **दाधार** । धृञ् धारणे—लिट् । धृतवान् । **पृथिवीम्** । भूमिम् । **उत** । अपि च । **द्याम्** । अ० २ । १२ । ६ । प्रकाशम् । सूर्यम् । अन्यद् गतम् ॥

८—**आपः** । जलानि । तन्मात्राः । **वत्सम्** । अ० ३ । १२ । ३ । **वृतृवदिवचि-वसि०** (उ० ३।६२) इति वद व्यक्तायां वाचि यद्वा वस निवासे—सः । वसन्ति भूतान्यस्मिंस्तं संसारम् । वदति सततमिति वत्सो बालस्तं वा—इति दयानन्दभाष्ये यजु० ३३ । ५ । **जनयन्तीः** । जनयतेः शतृः । जसि पूर्वसवर्णदीर्घः । जनयन्त्यः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न होते हुए [बालक, संसार] का (उल्बः) जरायु [गर्भ की झिल्ली] (हिरण्ययः) तेजोमय परमात्मा (आसीत्) था, इस (कस्मै) सुखदायक प्रजापति परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥ ८ ॥

भावार्थः—जल [वा तन्मात्राओं] की उत्पादन शक्ति से यह संसार उत्पन्न हुआ है और सृष्टि का आदिकारण परमेश्वर है, जो सृष्टि को सब ओर से गर्भ की झिल्ली के समान ढके हुए है और बीज में भी उत्पादन शक्ति देने वाला वही है—मन्त्र ६ देखो ॥ ८ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १०। १२१। ७ और यजु० २७। २५ में है ॥

मनु भगवान् ने इस प्रकार कहा है—

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ मनु० १ । ६ ॥

वह [बीज] सूर्य के समान प्रकाशवाला चमकीला अंडा हो गया, उस [अण्डे] में ब्रह्मा [परमात्मा] सब लोकों का पितामह [दादा] अपने आप प्रकट हुआ [अर्थात् उसमें परमात्मा की महिमा जान पड़ी] ॥

सूक्तम् ॥ ३ ॥

१–७॥ इन्द्रो देवता । १ पथ्या पङ्क्तिः, २–४–७ अनुष्टुप्, ३ गायत्री ।

शत्रुनाशोपदेशः—बैरी के नाश का उपदेश ॥

उद्वितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः । हिरुग्धि यन्ति सिन्धवो हिरुग् दुवो वनस्पतिर्हिरुङ् नमन्तु शत्रवः ॥१॥

उत्पादयन्त्यः । **गर्भम्** । मूलं प्रधानम् । वीर्यम् । शिशुम् । **अग्रे** । प्राक्काले । **सम्** । सम्यक् । यथावत् । **ऐरयन्** । ईर गतौ कंपने च ण्यन्ताल्लङ् । प्रेरितवत्यः । प्रकाशितवत्यः । **तस्य** । प्रसिद्धस्य । **उत** । अपि च । **जायमानस्य** । उत्पद्यमानस्य गर्भस्य । **उल्बः** । **उल्वादयश्च** (उ० ४ । ९५) इति उच समवाये—वन् चस्य लत्वं गुणाभावश्च । यद्वा । वल संवरणे—वन्प्रत्ययः संप्रसारणं च । जरायुः । गर्भवेष्टनः । **आसीत्** । अभवत् । **हिरण्ययः** । मलोपः । हिरण्यमयः । तेजोमयः । अन्यद् गतम् म० ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत् । इतः । त्रयः । अक्रमन् । व्याघ्रः । पुरुषः । वृकः । हिरुक् । हि । यन्ति । सिन्धवः । हिरुक् । देवः । वनस्पतिः । हिरुक् । नमन्तु । शत्रवः ॥१॥

भाषार्थः—(त्रयः) तीनों, (व्याघ्रः) सूंघकर पकड़ने वाला, बाघ, (पुरुषः) आगे बढ़ने वाला, [चोर] मनुष्य, और (वृकः) हुंडार वा भेड़िया (इतः) यहां से (उदक्रमन्) फलांगकर निकल गये। (सिन्धवः) नदियां (हि) अवश्य (हिरुक्) नीचे को (यन्ति) जाती हैं, (देवः) दिव्य गुण वाला (वनस्पतिः) सेवकों का रक्षक, वृक्ष भी (हिरुक्) नीचे को, [इसी प्रकार] (शत्रवः) हमारे बैरी (हिरुक्) नीचे को (नमन्तु) झुकें ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करे कि हिंसक मनुष्य और अन्य प्राणी वशीभूत होकर झुके रहें, जैसे नदी और वृक्ष नीचे को झुकते हैं । ॥१॥

परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥ २ ॥

१—**उत्** । **उपसर्गाः क्रियायोगे** (पा० १।४।५९) **इतः** । अस्मात् स्थानात् । **त्रयः** । त्रिसंख्यकाः । **उदक्रमन्** । क्रमु पादविक्षेपे—लङ् । **क्रमः परस्मैपदेषु** (पा० ७ । ३ । ७६) इति दीर्घाभावश्छान्दसः । उदक्रामन् । उत्क्रान्ता उत्थिता अभवन् । **व्याघ्रः** । **आतश्चोपसर्गे** (पा० ३ । १ । १६) इति वि + आङ् + घ्रा गन्धोपादाने कः । व्याजिघ्रति विशिष्टाघ्राणमात्रेण प्राणिनो हन्तीति । हिंसकजन्तुविशेषः । **पुरुषः** । अ० १ । १६ । ४ । पुर—कुषन् । पुरति अग्रेऽगच्छतीति[1] । चौरः । परमेणोत तस्करः । इति उत्तरत्र म० २ तस्यैवानुकीर्तनात् । **वृकः** । **सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक्** (उ०३।४१) इति वृञ् वरणे-कक् । यद्वा । वृक आदाने-कः । कुक्कुराकारो हरिणादिघातको जन्तुविशेषः । हुण्डार इति भाषा । **हिरुक्** । हि गतौ—रुकक् । वर्जने । त्यागे । अधमे । विना । निर्णीतान्तर्हितनाम-निघ० ३ । २५ । अन्तर्हितम् । **हि** । प्रसिद्धौ । **यन्ति** । गच्छन्ति । **सिन्धवः** । **स्यन्देः सम्प्रसारणं धश्च** (उ०१। ११) इति स्यन्दू प्रस्रवणे—उः । दस्य धः । सिन्धुः स्यन्दनात्—निरु० ९ । २६ । स्यन्दनशीलाः नद्यः । **देवः** । दिव्यगुणयुक्तः । **वनस्पतिः** । वनानां सेवकानां पाता रक्षकः । वृक्षः । **नमन्तु** । प्रह्वी भवन्तु । **शत्रवः** । शातनशीलाः । विरोधिनः ॥

१. पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः पूरतेर्वा (निरु० २ । ३, १ । १२) ऐसा निरुक्त में कहा है । अर्थात् पूः शरीरं बुद्धिर्वा तयोः सीदतीति पुरिषादः=पुरुषः । अथवा पुरि शेते इति पुरुषः । पुरुषस्य सर्वगतत्वाद्वा पूरयतेः पुरुषः ॥सम्पा०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परेण । एतु । पथा । वृकः । परमेण । उत । तस्करः । परेण । दत्वती । रज्जुः । परेण । अघऽयुः । अर्षतु ॥ २ ॥

भावार्थः—(वृकः) हुण्डार वा भेड़िया (परेण) दूर (पथा) मार्ग से (एतु) चला जावे, (उत) और (तस्करः) पीड़ा देने वाला चोर (परमेण) अधिक दूर मार्ग से (दत्वती) दान्त वाली (रज्जुः) रसरी अर्थात् साँप (परेण) दूर से, और (अघायुः) बुरा चीतने वाला पापी (परेण) दूर से (अर्षतु) भाग जावे ॥२॥

भाषार्थः—मनुष्य अपने घर ऐसे बनावें और ऐसा प्रबन्ध करें जिससे दुष्ट मनुष्य और हिंसक जीवों से रक्षा रहे ॥२॥

अक्ष्यौ॑ च ते मुखं॑ च ते व्याघ्र जम्भयामसि ।
आत् सर्वान् विंशतिं नखान् ॥ ३ ॥

अक्ष्यौ॑ । च । ते । मुखम् । च । ते । व्याघ्र । जम्भयामसि । आत् । सर्वान् । विंशतिम् । नखान् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(व्याघ्र) हे बाघ ! (ते) तेरी (अक्ष्यौ) दोनों [हृदय और

२—**परेण** । अन्येन, दूरेण । **एतु** । गच्छतु । **पथा** । मार्गेण । **वृकः** । म० १ । अरण्यश्वा । **परमेण** । दूरतरेण । **उत** । अपि । **तस्करः** । **त्यजितनियजिभ्यो डित्** । (उ० १ । १३२) इति तनु विस्तारे श्रद्धोपकरणयोः वा—अदिः । तनुते विस्तृतो भवतीति तद्, **दिवाविभानिशा०** (पा० ३ । २ । २१) इति तत् इत्युपपदे कृञ् करणे—टप्रत्ययः । **तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च** (वा० पा० ६ । १ । १५७) इति सुट्तलोपौ । तत् करोतीति तस्करः[1] । चोरः । **दत्वती** । दन्त—मतुप् ङीप् । **पदद्दन्नोमास्०** (पा० ६ । १ । ६३) इति दत् । दन्त—वती । **दत्वती रज्जुः** । दन्तयुक्तो रज्वाकृतिः सर्पः । **अघायुः** । अ० १ । २० । २ । अनिष्टचारी । पापात्मा । **अर्षतु** । ऋषी गतौ । गच्छतु ॥

३—**अक्ष्यौ** । अ० १ । २७ । २ । अक्षिणी । उभे मानसिकमस्तिष्कनेत्रे ।

---

१. तस्कर शब्द स्तेन = चोर (निन्दित) के अर्थ में यहाँ रूढि है ऐसा जानना चाहिये । निरुक्त में तस्करस्तत्करो भवति, करोति यत् पापकमिति नैरुक्ताः, तनोतेर्वा स्यात् सन्ततकर्मा (अहर्निशम्) भवति (निरु० ३ । १४) ऐसा आया है । सायणाचार्य ने यहाँ वार्त्तिक से अच् किया है जो कि चिन्त्य है, क्योंकि स्त्रीलिङ्ग में चोर वाची तस्कर शब्द से ङीवन्त प्रयोग ही मिलते हैं । चोराभिधेय से अन्यत्र अच् होकर 'तत्कारा' होगा ॥सम्पा०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्तक की] आंखों को (च) और (च) भी (ते मुखम्) तेरे मुख को, (आत्) और भी (सर्वान्) सब (विंशतिम्) बीसों (नखान्) नखों को (जम्भयामसि = ०—मः) हम नष्ट करते हैं ॥३॥

भावार्थः जैसे हिंसक जन्तुओं को अंग भंग करके नष्ट कर देते हैं, इसी प्रकार मनुष्य अपने अपने शत्रुओं को सेनादि और शरीर के अंगों से नष्ट करके प्रजा में शान्ति रक्खें ॥ ३ ॥

व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि ।
आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ॥ ४ ॥

व्याघ्रम् । दत्वताम् । वयम् । प्रथमम् । जम्भयामसि । आत् । ऊँ इति । स्तेनम् । अथो इति । अहिम् । यातुऽधानम् । अथो इति । वृकम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(दत्वताम्) दाँत वालों में से (प्रथमम्) पहिले (व्याघ्रम्) बाघ, (आत् उ) और भी (अहिम्) साँप, (अथो) और भी (वृकम्) भेड़िये, (स्तेनम्) चोर (अथो) और भी (यातुधानम्) पीड़ा देने वाले राक्षस को (वयम्) हम (जम्भयामसि) नष्ट करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न पूर्वक दुष्ट जन्तुओं और उनके समान दुष्ट स्वभाव वाले चोर डाकुओं और रोगों तथा दोषों को नष्ट करें ॥४॥

मुखम् । अ० २ । ३५ । ५ । आस्यम् । **ते ।** तव । **व्याघ्र ।** म० १ हे व्याघ्रवद् हिंसक पुरुष । **जम्भयामसि ।** म० ३ । नाशयामः । **आत् ।** अनन्तरम् । **सर्वान् ।** सकलान् । **विंशतिम् । षड्क्तिविंशति०** (पा० ५ । १ । ५९) इति विन्शब्दात्[1] शति प्रत्ययान्तो निपातः । द्वे दशती । पादचतुष्टये पञ्चशोऽवस्थितान् । **नखान् ।** अ० २ । ३३ । ६ । नखरान् ।

४—व्याघ्रम् । म० १ । हिंसकजन्तुविशेषं शार्दूलम् । **दत्वताम् ।** म० २ । दन्तवतां दंशनशीलानां हिंस्राणां मध्ये । **वयम् ।** मनुष्याः । **प्रथमम् ।** अग्रे । **जम्भयामसि ।** म० ३ । नाशयामः । **आत् उ ।** अनन्तरमेव । **स्तेनम् ।** स्तेन चौर्ये—पचाद्यच् । चोरम् । **अथो ।** अनन्तरमेव । **अहिम् ।** अ० २ । ५ । ५ । आहन्तारम् । सर्पम् । **यातुधानम् ।** अ० १ । ७ । १ । पीडाप्रदं राक्षसम् । **वृकम् ।** म० १ । अरण्यश्वानम् ॥

---

१. द्वयोर्दशतोर्विन् भावः शतिश्च प्रत्ययः इति काशिका (काशि० ५।१।५९) ॥सम्पा०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति ।
पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ॥ ५ ॥

यः । अद्य । स्तेनः । आऽअयति । सः । सम्ऽपिष्टः । अप ।
अयति । पथाम् । अपऽध्वंसेन । एतु । इन्द्रः । वज्रेण । हन्तु । तम् ॥५॥

भाषार्थः—(यः स्तेनः) जो कोई चोर (अद्य) आज (आयति) आवे, (संपिष्टः) चूर चूर किया हुआ (सः) वह (अप अयति) हट जावे, और (पथाम्) मार्गों के (अपध्वंसेन) विनाश से (एतु) चला जावे, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रतापी मनुष्य (वज्रेण) वज्र से (तम्) उसको (हन्तु) मार डाले ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य घर और रक्षकों का ऐसा प्रबन्ध करें कि यदि चोर आदि आ भी जावें तो मार्ग भूलकर निराश होकर भागने लगे, और राजा पकड़ कर उसे यथोचित दंड देवे ॥ ५ ॥

मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः ।
निम्रुक् ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ॥ ६ ॥

मूर्णाः । मृगस्य । दन्ताः । अपिऽशीर्णाः । ऊं इति । पृष्टयः ।
निऽम्रुक् । ते । गोधा । भवतु । नीचा । अयत् । शशयुः । मृगः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—[रे चोर !] (मृगस्य) पशु [अर्थात् तेरी गाह] के (दन्तः) दान्त (मूर्णा) बन्द वा मोंथरे (उ) और (पृष्टयः) पसलियां (अपि शीर्णाः)

५—**यः अद्य** । अस्मिन् दिने । **स्तेनः** । म० ४ । चोरः । **आ-अयति** । अय गतौ । आगच्छतु । **सः** । चोरः । **संपिष्टः** । पिष्लृ संचूर्णने-क्तः । सर्वथा चूर्णीकृतः । **अप-अयति** । निर्गच्छतु । **पथाम्** । मार्गाणाम् । **अपध्वंसेन** । ध्वन्सु गतौ, अधः पतने—घञ् । विनाशेन । **एतु** । गच्छतु । **इन्द्रः** । ऐश्वर्यवान् पुरुषः । **वज्रेण** । अस्त्रभेदेन । **हन्तु** । मारयतु । **तम्** । चोरम् ।

६—**मूर्णाः** । मुर्वी बन्धने । **रात्लोपः** (पा०६।४ । २१) इति वकारलोपः । **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** (पा० ८ । २ । ४२) इति तस्य नः । बद्धाः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चूर चूर [हो जावें], (ते) तेरी (गोधा) गोह (निम्रुक्) नीचे (भवतु) हो जावे, और (मृगः) वह पशु (शशयुः) सोता हुआ [निरुद्यमी होकर] (नीचा) नीचे (अयात्) आ जावे ॥ ६ ॥

भावार्थः—(गोधा) गोह वा गोसांप एक छपकली जाति का जन्तु होता है, चोर उसकी पूंछ में डोरी बांधकर ऊंचे घरों पर फेंक देते, और उसे पकड़ कर ऊपर चढ़ जाते हैं। मनुष्य घर ऐसे चिकने और दृढ़ बनावें और सावधानी रक्खें कि चोर, डाकुओं की गोह आदि फंदे घरों पर न चिपट सकें किन्तु निकम्मे होकर नीचे फिसल पड़ें ॥ ६ ॥

यत् संयमो न वि यंमो वि यंमो यन्न संयमः ।
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ॥ ७ ॥

यत् । सम्ऽयमः । न । वि । यमः । वि । यमः । यत् । न । सम्ऽयमः ।
इन्द्रऽजाः । सोमऽजाः । आथर्वणम् । असि । व्याघ्रऽजम्भनम् ॥७॥

भाषार्थः—(यत्) जिससे (इन्द्रजाः) परमेश्वर से प्रकट हुआ, और (सोमजाः) मंथन करने वाले तत्ववेत्ताओं अथवा सर्वप्रेरक शूरवीर पुरुषों से

कुण्ठिताः । **मृगस्य** । अ० २ । ३६ । ४ । अन्वेषणशीलस्य । पशोः । गोधायाः । **दन्ताः । हसिमृग्रिण्वामिदमि०** (उ० ३ । ८६) इति दमु उपशमे-तन् । रदनाः । दशनाः । **अपि-शीर्णाः** । शॄ हिंसायाम्-क्तः । हिंसिताः । विदीर्णाः । त्रोटिताः । **उ** । अपि । **पृष्टयः** । पृषु सेचने-क्तिच् । पर्शवः । पार्श्वस्थीनि । **निम्रुक्** । नि+म्रुचु गतौ-क्विप् । नीचगतिः । **ते** । तव । चोरस्य । **गोधा** । **हलश्च** (पा०३।३।१२१) इति गुध परिवेष्टने-घञ् । टाप् । धनुर्गुणाघातवारणाय प्रकोष्ठबद्धा चर्मपट्टिका । जन्तुविशेषः । **भवतु । नीचा । सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) इति नीचैः डा । नीचैः । **अयत्** । अय गतौ लेट् । अडागमः । अयता । गच्छतु । **शशयुः । भृमृशीङ्तॄ०** (उ० १ । ७) इति शीङ् स्वप्ने-उः । बाहुलकाद् द्विर्वचनम् । शयुः शयानः । निरुद्यमः । **मृगः** । पशुः ॥

७—यत् । यस्मात् कारणात् । **संयमः** । सम्यक् नियमः सुनियमः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित हुआ (संयमः) यथावत् नियम (वि यमः) विरुद्ध नियम (न) नहीं होता, और (यत्) जिससे (वि यमः) विरुद्ध नियम (संयमः) यथावत् नियम (न) नहीं होता है, [इसलिये हे मनुष्य तू] (आथर्वणम्) निश्चल वा मंगलप्रद परमेश्वर से आया हुआ (व्याघ्रजम्भनम्) व्याघ्रों [व्याघ्र स्वभाववाले शत्रुओं और विघ्नों] के नाश का सामर्थ्य (असि) है ॥ ७ ॥

भावार्थः—ईश्वर ने, और वेदवेत्ता आप्त पुरुषों ने जिन कर्मों को सत्य, और जिनको विरुद्ध वा असत्य बताया है, वे सर्वदा वैसे ही हैं, इसलिये मनुष्य विवेक पूर्वक विघ्नों को निर्मूल करके सदा आनन्द भोगें ॥ ७ ॥

उक्तम् ॥ ४ ॥

१—८ ॥ वृषेन्द्रश्च देवते । अनुष्टुप् छन्दः ॥

मनुष्यो बलं वर्धयेत्—मनुष्य बल को बढ़ावे ।

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे ।
तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् ॥ १ ॥

याम् । त्वा । गन्धर्वः । अखनत् । वरुणाय । मृतऽभ्रजे ।
ताम् । त्वा । वयम् । खनामसि । ओषधिम् । शेपःऽहर्षणीम् ॥ १ ॥

प्रबन्धः । **वि यमः** । विरुद्धनियमः । **इन्द्रजाः** । **जनसनखनक्रमगमो विट्** (पा० ३ । २ । ६७) इति इन्द्र + जनी प्रादुर्भावे–विट् । **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** (पा० ६ । ४ । ४१) इति आत्वम् । इन्द्रात् परमेश्वराज्जातः प्रादुर्भूतः । **सोमजाः** । पूर्ववद् विट् प्रत्यये सिद्धिः । षुञ् अभिषवे, यद्वा षू प्रेरणे-मन् । सोमेभ्यो मन्थन-शीलेभ्यः सर्वप्रेरकेभ्यो वा पुरुषेभ्यः प्रकाशितः । **आथर्वणम्** । अथर्वा, इति व्याख्यातः अ० ४ । १ । ७ । **तत आगतः** (पा० ४।३।७४) इति अथर्वन्–अण् । **अन्** (पा० ६।४।१६७) इति अणि प्रकृतिभावः । अथर्वणो निश्चलात् मङ्गल-प्रदाद् वा परमेश्वराद् आगतं प्राप्तम् । **असि** । हे मनुष्य त्वं भवसि । **व्याघ्रजम्भनम्** । व्याघ्रस्वभावानां हिंसकानां शत्रूणां नाशसामर्थ्यम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(याम् त्वा) जिस तुझको (गन्धर्वः) वेद विद्या धारण करने वाले पुरुष ने (मृतभ्रजे) नष्ट बल वाले (वरुणाय) उत्तम गुणयुक्त मनुष्य के लिये (अखनत्) खना है, (ताम् त्वा) उस तुझ (शेपहर्षणीम्) सामर्थ्य बढ़ाने वाली (ओषधिम्) ओषधि को (वयम्) हम (खनामसि) खनते हैं ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार पूर्व ऋषियों ने मनुष्य के हित के लिये परीक्षा करके श्रेष्ठ औषधियों को प्राप्त किया है, उसी प्रकार हम उत्तम औषधियों की परीक्षा और सेवन से बलवान् होकर सुखी रहें ॥१॥

उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः।
उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना ॥ २ ॥

उत् । उषाः । उत् । ऊँ इति । सूर्यः । उत् । इदम् । मामकम् ।
वचः । उत् । एजतु । प्रजाऽपतिः । वृषा । शुष्मेण । वाजिना ॥ २ ॥

भाषार्थः—(वाजिना) वेग रखने वाले (शुष्मेण) बल वा प्रभाव से (उषाः) प्रभात बेला (उत्=उदेजतु) ऊँची होवे, (उ) और (सूर्यः) सूर्य

१—याम् त्वा । यां त्वाम् ओषधिम् । **गन्धर्वः ।** अ० २ । १ । २ । गां वाणीं पृथिवीं गतिं वा धरति धारयति वा सः । वेदवेत्ता पुरुषः । **अखनत् ।** विदारितवान् । **वरुणाय ।** अ० १ । ३ । ३ । वरेण्याय वरणीयाय जीवाय । **मृतभ्रजे ।** भ्रस्ज पाके–क्विप्, सलोपः । नष्टपाकसामर्थ्याय । नष्टबलाय । **वयम् ।** आयुर्वेदज्ञाः । **खनामसि ।** खनामः । विदारयामः । **ओषधिम् ।** अ० १ । ३० । ३ । भेषजम् । **शेपहर्षणीम् । वृङ्शीङ्भ्यां रूपस्वाङ्गयोः पुट् च** (उ० ४।२०१) इत्यनेन स्वाङ्गेऽभिधेये असुन् प्रत्ययः पुट् आगमश्च । शेते येन तत् शेपः [1]सामर्थ्यम्, वीर्यम् । हृष्यतेः करणे ल्युट्, टित्वाद् ङीप् । शेपस्य वीर्यस्य वर्धनीम् ॥

२—उत् । उदेजतु । **उषाः । उषः क्किच्च** (उ० ४ । २३४) इति उष दाहे बधे च, यद्वा, उछी विवासे, यद्वा, वश कान्तौ असिः । उषाः कस्मादुच्छतीति

---

१. शाखान्तरों में 'शेपो' मन्त्र पाठ है । यहां छान्दस सकार लोप जानें ॥सम्पा०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उत्) ऊंचा चढ़े, (इदम्) यह (मामकम्) मेरा (वचः) वचन (उत्) ऊंचा होवे, (प्रजापतिः) प्रजाओं की पालन करनेवाली (वृषा) बल बढ़ाने वाली [कोई औषधि वा मूसाकन्नी औषधि विशेष] (उदेजतु) ऊंची होवे ॥२॥

भावार्थः - मनुष्य प्रभात समय उठकर ईश्वर चिन्तनादि, सूर्य के उदय होने पर जीविकादि की प्राप्ति, और आप्त पुरुषों से वेद अध्ययनादि, और बल वर्द्धक वृषा आदि औषधि सेवन से बलवृद्धि करके आनन्द भोगें ॥२॥

वृषा 'स्त्रीलिंग' औषधि के नाम अमरकोश में ये हैं—

चित्रोपचित्रा न्यग्रोधी द्रवन्ती शम्बरी वृषा ।
प्रत्यक्श्रेणी सुतश्रेणी रण्डा मूषिकपर्ण्यपि ॥ अम० को० २ । ५ ॥

चित्रा, उपचित्रा, न्यग्रोधी, द्रवन्ती, शम्बरी, वृषा, प्रत्यक्श्रेणी, सुतश्रेणी, रण्डा, मूषिकपर्णी, ये दस नाम मूषापर्णी के हैं ॥

यथा॑ स्म ते वि॒रोह॑तो॒ऽभित॑स्त॒म्वा॑न॑ति ।
तत॑स्ते शुष्म॑वत्त॒रमि॒यं कृ॑ण्वो॒त्वोष॑धिः ॥ ३ ॥

सत्या रात्रेरपरकालः—निरु० २ । १८ । उषा वष्टेः कान्तिकर्मण उच्छतेरितरा माध्यमिका—निरु० १२ । ५ । कल्यम् । प्रभातकालः । **उ** । अपि । **सूर्यः** । रविः । **इदम्** । मन्त्रात्मकम् । **मामकम्** । अ० १ । २९ । ५ । मदीयम् । **वचः** । वचनम् । **उदेजतु** । एजृ कम्पने । उत्कम्पयतु । उदेतु । **प्रजापतिः** । प्रजायन्ते इति प्रजाः । **उपसर्गे च संज्ञायाम्** (पा०३।२।९९) इति प्र+जनी प्रादुर्भावे—डः । प्रजानां पालयित्री । **वृषा** । अ० १ । १२ । १ । वृषु सेचने—कनिन् । यद्वा कप्रत्ययः, टाप् स्त्रियाम् । बलसेचिका । ओषधिविशेषः । तत्पर्यायाः । चित्रा । उपचित्रादयः—अमरकोशे २ । ५ । **शुष्मेण** । **अविसिविसिशुषिभ्यः कित्** । (उ० १ । १४४) इति शुष शोषणे—मन् । शुष्ममिति बलनाम शोषयतीति सतः—निरु० २ । २४ । बलेन । प्रभावेण । **वाजिना** । वज गतौ—घञ् । वाजो वेगः । अन्नम्—निघ० २ । ७ । बलम्—निघ० २ । ९ । **अत इनिठनौ** (पा० ५।२।११५) इति इनिः । वेगवता अन्नवता ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा॑ । स्म॒ । ते॒ । वि॒ऽरोह॑तः । अ॒भि॒ऽत॑प्तम्ऽइव । अन॑ति ।
तत॑ः । ते॒ । शु॒ष्म॑वत्ऽतरम् । इ॒यम् । कृ॒णो॒तु॒ । ओष॑धिः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य] (यथा स्म) जिस प्रकार से ही (ते विरोहतः) तुझ वृद्धिशील का [मन विद्या से] (अभितप्तमिव) प्रतापयुक्त सा (अनति) चेष्टा करता है, (ततः) उस प्रकार से ही (ते=त्वाम्) तुझे (इयम् ओषधिः) यह ओषधि (शुष्मवत्तरम्) अधिक बलयुक्त (कृणोतु) करे ॥ ३ ॥

भावार्थः— जिस प्रकार विद्याभ्यास से मनुष्यों का मन बढ़ता जावे उसी प्रकार परीक्षित उत्तम उत्तम बलवर्धक वृषा आदि ओषधि और यथावत् आहार विहार से अपना शरीर बल भी बढ़ावें ॥ ३ ॥

उच्छु॒ष्मौष॑धीनां॒ सार॑ ऋ॒ष॒भाणा॑म् ।
सं पुं॒सामि॑न्द्र वृष्ण्य॒म॒स्मिन् धे॑हि तनू॒वशिन् ॥ ४ ॥

उत् । शु॒ष्मा॑ । ओष॑धीनाम् । सारा॑ । ऋ॒ष॒भाणा॑म् । सम् ।
पुं॒साम् । इ॒न्द्र॒ । वृ॒ष्ण्य॒म् । अ॒स्मिन् । धे॒हि॒ । त॒नू॒ऽव॒शि॒न् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(ऋषभाणाम्) श्रेष्ठ [अथवा कांकड़ासिंगी आदि] (ओषधीनाम्) ओषधियों में से (शुष्मा) बल वाली (सारा) श्रेष्ठ [वा वृषा नाम ओषधि] (उत्=उदेजतु) उदय हो । (तनूवशिन्) हे शरीरों को वश में

३—**यथा** । येन प्रकारेण । **स्म** । खलु । **ते** । तव मनः । **विरोहतः** । रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च-शतृः । वृद्धिशीलस्य । **अभितप्तम् इव** । तप दाहैश्वर्ययोः-क्तः । प्रतापयुक्तं यथा । **अनति** । अनिति, चेष्टते । **ततः** । तेनैव प्रकारेण । **ते** । द्वितीयार्थे षष्ठी । त्वाम् । **शुष्मवत्तरम्** । अधिकबलयुक्तम् । **इयम्** । पूर्वोक्तां वृषाम् । **कृणोतु** । करोतु । **ओषधिः** । औषधम् ॥

४—**उत्** । उदेजतु- म० २ । **शुष्मा** । म० २ । बलवती । **ओषधीनाम्** । वीरुधां मध्ये । **सारा** । सृ-घञ्, टाप् । श्रेष्ठा । यद्वा । सृ णिच्—अच्, टाप् दूर्वा । शातला—यथा । शातला सप्तला सारा विमला विदुला च सा । तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखने वाले (इन्द्र) बड़े ऐश्वर्य वाले सद्वैद्य ! (पुंसाम्) रक्षाशील पुरुषों के मध्य (वृष्ण्यम्) बल (अस्मिन्) इस मनुष्य में (संधेहि) यथावत् धारण कर दे ॥४॥

भावार्थः—सद्वैद्य प्रयत्न करें कि उत्तम सारवती बलवर्धक [वृषा आदि] औषधियों के सेवन से मनुष्य ऐसे वीर्यवान् हों कि शूरवीरों के मध्य उनके बल की प्रशंसा होवे ॥४॥

'ऋषभ' और 'सारा' श्रेष्ठ वाचक हैं और औषधि विशेष भी हैं ॥

अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम् ।
उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ॥ ५ ॥

अपाम् । रसः । प्रथमऽजः । अथो इति । वनस्पतीनाम् । उत ।
सोमस्य । भ्राता । असि । उत । आर्शम् । असि । वृष्ण्यम् ॥ ५॥

भाषार्थः—[हे औषध !] तू (अपाम्) व्यापन शील जलों का (अथो) और भी (वनस्पतीनाम्) अपने सेवा करने वालों के पालक वृक्षों का (प्रथमजः) प्रथम उत्पन्न होने वाला (रसः) रस, (उत) और (सोमस्य) अमृत वा

निगदिता भूरिरेका चर्मकषेत्यपि इति शब्दकल्पद्रुमः। **ऋषभाणाम्** । अ० ३ । २३ । ४ । ऋषी गतौ–अभच् । टाप् । श्रेष्ठानाम् । ऋषभौषधादिरसानाम् । **सार ऋषभाणाम्** । **ऋत्यकः** (पा० ६ । १ । १२८) इति प्रकृतिभावः । **पुंसाम्** । अ० १। ८ । १ । पा रक्षणे–डुमसुन् । रक्षणशीलानां पुरुषाणां मध्ये । **इन्द्र** । परमैश्वर्यवन् सद्वैद्य । **वृष्ण्यम्** । **खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च** (पा० ५ । १ । ७) इति वृषन्—यत् । वृष्णे—इन्द्राय जीवाय हितं बलम् । वीर्यम् । **अस्मिन्** । पुरुषे । **संधेहि** । सम्यग् धारय । **तनूवशिन्** । अ० १ । ७ । २ । हे तनूनां शरीराणां वशयितः ॥

५—**अपाम्** । व्यापनशीलानां जलानाम् । **रसः** । सारः । **प्रथमजः** । प्रथमं जातः प्रादुर्भूतः । **अथो** । अपि च । **वनस्पतीनाम्** । अ० १ । १२ । ३ । वनानां सेवकानां पतीनां पालकानां वृक्षाणाम् । **उत** । अपि । **सोमस्य** । अमृत-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्य का (भ्राता) प्रकाशक वा धारक और पोषक (असि) है, (उत) और (आर्शम्) शूरों का हितकारक (वृष्ण्यम्) बल (असि) है ॥ ५ ॥

भावार्थः—उत्तम जल और उत्तम वृक्षों और अन्न आदिकों के यथावत् सेवन से मनुष्य ऐश्वर्यवान् और बलवान् होते हैं ॥ ५ ॥

अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति ।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥ ६ ॥

अद्य । अग्ने । अद्य । सवितः । अद्य । देवि । सरस्वति । अद्य ।
अस्य । ब्रह्मणः । पते । धनुःऽइव । आ । तानय । पसः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(अद्य) आज (अग्ने) हे भौतिक अग्नि ! (अद्य) आज (सवितः) हे लोकप्रेरक सूर्य ! (अद्य) आज (देवि) दिव्य गुण वाली (सरस्वति) विज्ञानवति विद्या ! (अद्य) आज (ब्रह्मणस्पते) हे अन्न, वा धन, वा वेद, वा ब्राह्मण के रक्षक परमेश्वर ! (अस्य) इसके (पसः) राज्य को (धनुः इव) धनुष के समान (आ) भले प्रकार (तानय) फैला ॥ ६ ॥

स्य । ऐश्वर्यस्य । **भ्राता** । अ० १ । १४ । २ । भ्राजृ दीप्तौ-तृन् । प्रकाशकः अथवा । डुभृञ् धारणपोषणयोः—तृन् । अन्योऽन्यभरणशीलः । भ्राता भरतेर्हरति-कर्मणो हरतेर्भागं भर्त्तव्यो भवतीति वा-निरु० ४ । २६ । भ्रातृसमानगुणः । **असि** । भवसि । **आर्शम्** । **इगुपधज्ञा०** (पा० ३ । १ । १३५) इति ऋश हिंसायामु-कः । सौत्रो धातुः । ऋशति शीर्यते हिनस्ति शत्रूनिति ऋशः शूरः । **तस्मै हितम्** (पा० ५ । १ । ५) इति अण् । ऋशाय शूराय हितम् । **वृष्ण्यम्** । म० ४ । बलम् ॥

६—**अद्य** । वर्तमानदिने । **अग्ने** । भौतिकाग्ने । **सवितः** । हे लोकप्रेरक सूर्य । **देवि** । हे दिव्यगुणे । **सरस्वति** । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति सृ गतौ—असुन् । मतुप्, मस्य वः, ङीष् । सरो नीरं विज्ञानं वा विद्यतेऽस्यां सा सरस्वती । वाक्—निघ० १ । ११ । सरस्वतीत्येतस्य नदीवद्देवतावच्च निगमा भवन्ति-निरु० २ । २३ । हे विज्ञानवति विद्ये । **अस्य** । शूरपुरुषस्य । **ब्रह्मणस्पते** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य यथावत् औषधि सेवन से अपना शारीरिक और मानसिक बल बढ़ाकर अग्नि, सूर्य आदि पदार्थों और अनेक उत्तम विद्याओं से नित्य उपकार करता हुआ, ईश्वर के आश्रय से अन्न आदि प्राप्त करके अपना राज्य और सुख फैलावे, जैसे धनुष को लक्ष्य के लिये दृढ़ तानते हैं ॥६॥

आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्शं इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥ ७ ॥

आ । अहम् । तनोमि । ते । पसः । अधि । ज्याम्ऽइव । धन्वनि ।
क्रमस्व । ऋशःऽइव । रोहितम् । अनवऽग्लायता । सदा ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं [हे मनुष्य !] (ते) तेरे (पसः) राज्य को (आ) यथावत् (तनोमि) फैलाता हूं (ज्याम् इव) जैसे डोरी को (धन्वनि अधि) धनुष में । (अनवग्लायता) बिना ग्लानि वा थकावट के (सदा) सदा [शत्रुओं पर] (क्रमस्व) धावा कर, (ऋशःइव) जैसे हिंसकजन्तु, सिंह आदि (रोहितम्) हरिण पर ॥७॥

अ० १ । २९ । २ । ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मणः पाता वा पालयिता वा । ब्रह्म, अन्नम्० निघ० २ । ७ । धनम्—निघ० २ । १० । हे ब्रह्मणोऽन्नस्य, धनस्य, वेदस्य विप्रस्य वा पालक परमेश्वर । **धनुरिव । अर्त्तिपॄवपियजि०** (उ० २ । ११७) इति धन धान्ये—उसिः । चापं यथा । **आ** । समन्तात् । **तानय** । तनु विस्तारे-णिच् विस्तारय । **पसः** । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति पस बन्धे[1] बाधे च-असुन् । राज्यप्रबन्धम् । राष्ट्रम्-इति दयानन्दभाष्ये, यजु० २३ । २२ ॥

७ - आ । समन्तात् । **अहम्** । नीतिज्ञः । **तनोमि** । विस्तारयामि । **ते** । तव । **पसः** । म० ६ । राष्ट्रम् । **अधि** । सप्तम्यर्थानुवादी । **ज्यामिव** । मौर्वीमिव । **धन्वनि** । **कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्विः** (उ० १ । १५६) इति धवि गतौ[2] कनिन् । धनुषि । **क्रमस्व** । **वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः** (पा० १ । ३ । ३८) इति आत्मनेपदम् । आक्रमस्व । **ऋशः** । **इगुपधज्ञा०** (पा० ३ । १ । १३५) इति ऋश-

---

१. पस दन्त्य सकारान्त धातु का बन्धे बाधे अर्थ वाचस्पत्यम् आदि कोषों के अनुसार दर्शाया गया है । क्षीरतरंगिणी आदि में तो कहीं यह अर्थ नहीं है । पस का राष्ट्रम् अर्थ श.ब्रा. १३।२।६।६ में आया है ॥ सम्पा० ॥

२. इदितो नुम्धातोः (पा० ७ । १ । ५८) से यहां नुम् होकर 'धन्व' बना है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे लक्ष्य वेधने के लिये धनुष में डोरी को दृढ़ कसते हैं, वैसे ही बलवान् पुरुष राज्य प्रबन्ध को प्रजा के सुख के लिये यथाशास्त्र दृढ़ रक्खे, और जैसे सिह आदि हरिण आदि को दबोच लेते हैं, वैसे ही शत्रुओं पर धावा करके कुरीतियों को मिटावे ॥७॥

अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च ।
अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥ ८ ॥

अश्वस्य । अश्वतरस्य । अजस्य । पेत्वस्य । च । अथ । ऋषभस्य ।
ये । वाजाः । तान् । अस्मिन् । धे हि । तनूऽवशिन् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(अश्वस्य) घोड़े के, (अश्वतरस्य) खच्चर के, (अजस्य) बकरे के, (च) और (पेत्वस्य) मेढ़े के, (अथ) और भी (ऋषभस्य) बलीवर्द के (ये वाजाः) जो बल हैं, (तान्) उनको, (तनूवशिन्) हे शरीरों को वश में रखने वाले शूर ! (अस्मिन्) इस पुरुष में (धेहि) धारण कर ॥ ८ ॥

हिंसायाम्[1]–कः । ऋशति शीर्यते हिनस्ति शत्रूनिति ऋशः । शूरो हिंसको जन्तुर्वा । **रोहितम् । हसृरुहियुषिभ्य इतिः** (उ० १ । ९७) इति रुह प्रादुर्भावे–इतिः । मृगं हरिणम्—यथा- शार्दूलाय रोहित् । य० २४ । ३० एको रोहिद ऋष्यः शार्दूलाय—इति तद्भाष्ये महीधरः । शार्दूलाय महासिंहाय रोहित् रक्तगुणविशिष्टो मृगः—इति तत्रैव दयानन्दभाष्ये । **अनवग्लायता । संश्चत्तृपद्वेहत्** (उ० २ । ८५) इति अन्+अव+ग्लै हर्षक्षये–अतिप्रत्ययः, स च शतृवत्, अहर्षक्षयेण । अग्लानेन । आनन्देन । **सदा** । सर्वदा ॥

८—अश्वस्य । अ० १ । १६ । ४ । अश्वःकस्मादश्नुतेऽध्वानं महाशनो भवतीति वा–निरु० २ । २७ । घोटस्य । **अश्वतरस्य । वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे** (पा० ५ । ३ । ९१) इति अश्व-ष्टरच्, तनुत्वे । अश्वायां गर्दभेन जातस्य पशुविशेषस्य वेशरस्य । खच्चर इति भाषायाम् । **अजस्य** । अज गतिक्षेपणयोः—अच् । छागस्य । **पेत्वस्य । अन्येऽपि दृश्यन्ते** (उ०४।१०५) इति पा पाने, वा पतॢ

---

१. यह धातु धातुपाठादि में कहीं नहीं है । इसको वाचस्पत्यम् में सौत्र धातु माना है । पर यह सूत्र पठित भी नहीं है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः--शूरवीर पुरुष अश्व आदि उपकारी पशुओं को पालकर खेती, वाणिज्य, सेना आदि के यथायोग्य कामों में लगाकर संसार में सुख बढ़ावें ॥ ८ ॥

सूक्तम् ५ ॥

१--७ ॥ इन्द्रो देवता । १--६ अनुष्टुप्, ७ पथ्या पङ्क्तिः ॥

प्रजास्वापनार्थं गीतम्--बच्चों के सुलाने का गीत अर्थात् लोरी ।

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥ १ ॥

सहस्रऽशृङ्गः । वृषभः । यः । समुद्रात् । उत्ऽआचरत् ।
तेन । सहस्येन । वयम् । नि । जनान् । स्वापयामसि ॥ १ ॥

भाषार्थः--(यः) जो (वृषभः) सुख बरसाने वाला (सहस्रशृङ्गः) सहस्रों तेज अर्थात् नक्षत्रों वाला चन्द्रमा [अथवा सहस्रों किरणों वाला सूर्य] (समुद्रात्) आकाश से (उदाचरत्) उदय हुआ है, (तेन) उस (सहस्येन) बल के लिये हितकारक [चन्द्रमा] से (वयम्) हम लोग (जनान्) सब जनों को (नि स्वापयामसि) सुला दें ॥ १ ॥

गतौ--त्वन्, पृषोदरादिरूपम् । पेत्वः पतनशीलो वेगवान् पशुः--इति महीधरो यजुर्वेदभाष्ये--२९ । ५८ । मेषस्य । **अथ** । अपि च । **ऋषभस्य** । **ऋषिवृषिभ्यां कित्** (उ० ३ । १२३) इति ऋषी गतौ-अभच् । वलीवर्दस्य । **वाजाः** । बलानि । अन्यत् सुगमं व्याख्यातं च म० ४ ॥

१- **सहस्रशृङ्गः** । सहो बलम्--निघ० २ । ९ । रो मत्वर्थे । सहस्रं बहुनाम--निघ० ३ । १ । **शृणातेर्ह्रस्वश्च** (उ० १ । १२६) इति शॄ हिंसायाम्-गन्, स च कित्, नुडागमः । शृङ्गाणि ज्वलतो नामसु-निघ० १ । १७ । शृङ्गं श्रयतेर्वा शृणातेर्वा शमनातेर्वा शरणायोद्गतमिति वा शिरसो निर्गतमिति वा निरु० २ । ७ । सहस्राणि बहूनि शृङ्गाणि तेजांसि नक्षत्राणि किरणा वा यस्य सः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः--माता पिता आदि बच्चों को चन्द्रमा के दर्शन कराते हुये सुलावें, जिससे उनके शरीर की पुष्टि और नेत्रों की ज्योति बढ़े [(सहस्रशृङ्गः) का अर्थ सूर्य भी है, अर्थात् सूर्य का प्रकाश आने से यह घर स्वास्थ्यकारक है। हम सब सोवें] ॥१॥

इस सूक्त के चार मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद म० ७। सू० ५५ के हैं जिनका इन्द्र देवता है, इससे यहां भी सूक्त का इन्द्र ही देवता है। यह मन्त्र उक्त सूक्त का मन्त्र ७ है ॥

न भूमिं वातो अति वाति नातिं पश्यति कश्चन।
स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् ॥ २ ॥

न। भूमिम्। वातः। अति। वाति। न। अति। पश्यति। कः। चन। स्त्रियः। च। सर्वाः। स्वापय। शुनः। च। इन्द्रसखा। चरन्। २॥

भाषार्थः--(न) न (वातः) पवन (भूमिम्) भूमि पर (अति) अत्यन्त (वाति) चलता है, और (न) न (कश्चन) कोई जन (अति) ऊपर से (पश्यति) देखता है [हे पवन !] (इन्द्रसखा) इन्द्र अर्थात् जीवात्मा को अपना सखा

बहुतेजाः। असंख्यातनक्षत्रः। चन्द्रः। सूर्यः। **वृषभः। ऋषिवृषिभ्यां कित्** (उ० ३। १ २३) इति वृषु सेचने--अभच्। यद्वा, वृह वृद्धौ--अभच्, हस्य षकारः। वृषभः प्रजां वर्षतीति वाति वृहति रेत इति वा तद् वृषकर्मा वर्षणाद् वृषभः--निरु० ९। २२। किरणद्वारा सुखस्य वर्षकः। **यः। समुद्रात्।** अ० १। ३। ८। अन्तरिक्षात्--निघ० १। ३। **उत्+आ+अचरत्।** उदागात्। **तेन।** प्रसिद्धेन। तादृशेन। **सहस्येन। तस्मै हितम्** (पा० ५। १। ५) इति सहस्--यत्। सहसे बलाय हितेन, चन्द्रेण। **वयम्। नि।** नित्यम् सर्वथा। **जनान्।** गृहस्थप्राणिनः। **स्वापयामसि।** स्वापयामः। निद्रापयामः॥

२ न। निषेधे। **भूमिम्।** पृथिवीम्। **वातः।** अ० १। ११। ६। पवनः। **अति।** अतिशयेन। **वाति।** गच्छति। **पश्यति।** प्रेक्षते। **कश्चन।** कोऽपि-जनः। **स्त्रियः।** अ० १। ८। १। स्त्यायति स्तौति वा गुणान् स्त्यूयते वा सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखने वाला तू, (चरन्) चलता हुआ, (सर्वाः स्त्रियः) सब स्त्रियों (च) और (शुनः) कुत्तों को (च) भी (स्वापय) सुला दे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करे कि रात्रि को सोते समय तीव्र वायु वा अन्य किसी तुच्छ कारण से निद्रा भंग न हो और न बाहिरी पुरुष गुप्त बातें सुने ॥२॥

प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ता सर्वाः स्वापयामसि ॥ ३ ॥

प्रोष्ठेऽशयाः । तल्पेऽशयाः । नारीः । याः । वह्यऽशीवरीः ।
स्त्रियः । याः । पुण्यऽगन्धयः । ताः । सर्वाः । स्वापयामसि ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(प्रोष्ठेशयाः[1]) बड़े घर वा बड़े आंगन में सोने वाली, (तल्पेशयाः) खाटों पर सोने वाली, और (वह्यशीवरीः—०-र्यः) हिंडोला आदि में सोने वाली (याः) जो (नारीः=नार्यः) नारियाँ हैं, और (याः) जो (स्त्रियः) स्त्रियाँ (पुण्यगन्धयः) पुण्य गति वाली हैं, (ताः सर्वाः) उन सबको (स्वापयामसि=०—मः) हम सुलाते हैं ॥३॥

स्त्री । नारीः । **सर्वाः** । **स्वापय** । निद्रापय । **शुनः** । **श्वनुक्षन्पूषन्०** (उ० १ । १५९) इति टुओश्वि गतिवृद्ध्योः—कनिन् । श्वयतीति श्वा । कुक्कुरान् । **च** । **इन्द्रसखा** । **इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्ट०** (पा० ५ । २ । ९३) इति इन्द्र आत्मा । "इन्द्रः आत्मा । स सखा यस्य प्राणवायोस्तदात्मकः"—इति सायणः । आत्मप्रियः । वातः । **चरन्** । देहे वर्तमानः ॥

३—**प्रोष्ठेशयाः** । **उषिकुषिगार्त्तिभ्यस्थन्** (उ० २ । ४) इति उष दाहे—थन् इति ओष्ठः । **एङि पररूपम्** (पा० ६ । १ । ९४) अत्र वार्त्तिकम् । **ओत्वोष्ठयोः समासे वा** । इति पररूपम् । **अधिकरणे शेतेः** (पा० ३ । २ । १५) इति प्रोष्ठे + शीङ् स्वप्ने अच् । **शयवासवासिष्वकालात्** (पा० ६ । ३ । १८) इति सप्तम्या अलुक् । प्रोष्ठे अतिशयेन प्रौढे गृहे प्राङ्गणे वा शयानाः । **तल्पेशयाः** । **खष्पशिल्पशष्प०** (उ० ३ । २८) इति तल प्रतिष्ठायाम्—प प्रत्ययः । शेषे पूर्ववत् सिद्धिः । खट्वासु शयानाः । **नारीः** । नार्यः । **वह्यशीवरीः** । **वह्यं करणम्** (पा० ३ । १ । १०२) इति वह प्रापणे - यत् । **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** (पा० ३ । २ ।

---

१. द्र० ऋ० ७ । ५५ । ८ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः - गृहस्थ लोग स्त्रियों के रहने के घर ऐसे उत्तम बनावें जिससे रात्रि को वे सुखपूर्वक सोया करें ॥ ३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० ७ । ५५ । ८ में है ॥

एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम् ।
अङ्गान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे ॥ ४ ॥

एजत्ऽएजत् । अजग्रभम् । चक्षुः । प्राणम् । अजग्रभम् ।
अङ्गानि । अजग्रभम् । सर्वा । रात्रीणाम् । अतिऽशर्वरे ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(एजदेजत्) इधर उधर पड़ी हुई प्रत्येक वस्तु को (अजग्रभम्) मैंने संग्रह करलिया है, (चक्षुः) नेत्र और (प्राणम्) प्राण मार्ग [नासिका] को (अजग्रभम्) मैंने ग्रहण कर लिया है, और (रात्रीणाम्) रात्रियों के मध्य (अतिशर्वरे) अत्यन्त अन्धकार में (सर्वा = सर्वाणि) सब (अङ्गानि) अंगों को (अजग्रभम्) मैंने थाम लिया है ॥४॥

भावार्थः - मनुष्य इन्द्रिय निग्रह करके शान्त चित्त होकर रात्रि में सोवें ॥४॥

---

७५) इति वह्य + शीङ्—क्वनिप् । **वनो र च** (पा०४।१।७) इति ङीब्रेफौ । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति जसि पूर्वसवर्णदीर्घः । वह्ये वहनसाधने आन्दोलिकादौ शयनस्वभावाः । **पुण्यगन्धयः** । **पूञो यण् णुग्ह्रस्वश्च** । (उ० ५ । १५) इति पूञ् पवने-यत्, णुक् ह्रस्वश्च । **सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४।११८) इति गन्ध गतिहिंसायाचनेषु[1]-इन् । पुण्यं पवित्रं गन्धिगमनं यासां ताः पवित्रगतयः । अन्यद् गतम् ॥

४ - **एजदेजत्** । एजृ कम्पने - शतृ । इतस्ततः पतत् प्रत्येकं वस्तु । **अजग्रभम्** । ग्रह उपादाने—लङ् । हस्य भत्वम् । अहं संगृहीतवानस्मि । **चक्षुः** । दर्शनसाधनं नेत्रम् । **प्राणम्** । प्राणसंचारमार्गं घ्राणम् । **अजग्रभम्** । निद्रया सह गृहीतवानस्मि । **अङ्गानि** । हस्तपादादीनि । **अजग्रभम्** । **सर्वा** । सर्वाणि । **रात्रीणाम्** । रात्रीणां मध्ये । **अतिशर्वरे** । **कृगृशवश्चतिभ्यः ष्वरच्** (उ०२ । १२१) इति शृ हिंसायाम्-ष्वरच् । शर्वरं तमः । अत्यन्ततमसि ॥

---

१. धातुवृत्ति आदि में 'गन्ध अर्दने' धातु पठित है । सो अर्द गतौ याचने च (भ्वा०) अर्द हिंसायाम् (चुरा०) ये धातुयें पठित होने से अर्दन के गति, हिंसा एवं याचन ये तीन अर्थ होकर गन्ध धातु के भी ये तीन अर्थ दिखाये हैं, ऐसा जानना चाहिये । इस विषय में (काशि० १।३।३२) भी देखें ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति ।
तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ५ ॥

यः । आस्ते । यः । चरति । यः । च । तिष्ठन् । विऽपश्यति ।
तेषाम् । सम् । दध्मः । अक्षीणि । यथा । इदम् । हर्म्यम् । तथा ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(यः) जो कोई (आस्ते) बैठता है, (यः) जो (चरति) चलता है, (च) और (यः) जो (तिष्ठन्) खड़े होकर (विपश्यति) विविध प्रकार से देखता है, (तेषाम्) उनकी (अक्षीणि) आंखों को (तथा) उस प्रकार से (संदध्मः) हम मूंदते हैं, (यथा) जैसे (इदम्) इस (हर्म्यम्) हर्म्य [धनियों के मनोहर घर] को ॥५॥

भावार्थः - जैसे धनिक लोगों के घर सुरक्षित होते हैं, जिन्हें बन्ध करके सुख पूर्वक वे सोते हैं वैसे ही घर सब गृहस्थ बनावें, जिनमें निर्भय होकर रात्रि को आनन्द से सोवें ॥५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद म० ७ । ५५ । ६ । में है ॥

स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः ।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ॥ ६ ॥

स्वप्तु । माता । स्वप्तु । पिता । स्वप्तु । श्वा । स्वप्तु । विश्पतिः ।
स्वपन्तु । अस्यै । ज्ञातयः । स्वप्तु । अयम् । अभितः । जनः ॥ ६ ॥

---

५ - **यः, आस्ते** । उपविशति । **यः** । **चरति** । संचरति । **यः च** । **तिष्ठन्** । स्थितः सन् । **विपश्यति** । विविधम् इतस्ततः पश्यति । **तेषाम्** । **संदध्मः** । संहितानि निमीलितानि अदर्शकानि कुर्मः । **अक्षीणि** । चक्षूंषि । **यथा** । येन प्रकारेण । **इदम्** । दृश्यमानम् । **हर्म्यम्** । **अघ्न्यादयश्च** (उ० ४ । ११२) इति हृञ् हरणे - यक्, मुट् च । हरति मनांसि । धनिनां वासम् । मनोहरं गृहम् । **तथा** । तेन प्रकारेण ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अस्यै) इस [सन्तति, पुत्री वा पुत्र के हित] के लिये (माता) माता (स्वप्तु) सोवे, (पिता) पिता (स्वप्तु) सोवे, (श्वा) कुत्ता (स्वप्तु) सोवे, (विश्पतिः) प्रजापालक गृहपति (स्वप्तु) सोवे। (ज्ञातयः) ज्ञाति के लोग (स्वपन्तु) सोवें, और (अयम्) यह (जनः) सब जने (अभितः) चारों ओर (स्वप्तु) सोवें ॥६॥

भावार्थः—अब रात्रि में सब लोग चुप चाप सो जावें खलबल न मचावें जिससे यह बालक सुख पूर्वक सो जावे ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद ७। ५५। ५ में है ॥

स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम्। ओत्सूर्यमुन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्रइवारिष्टो अक्षितः ॥७॥

स्वप्न। स्वप्नऽअभिकरणेन। सर्वम्। नि। स्वापय। जनम्। आऽउत्सूर्यम्। अन्यान्। स्वापय। आऽव्युषम्। जागृतात्। अहम्। इन्द्रःऽइव। अरिष्टः। अक्षितः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(स्वप्न) हे निद्रा ! (स्वप्नाभिकरणेन) नींद के उपाय वा साधन से (सर्वं जनम्) सब जनों को (नि, स्वापय) सुलादे। (अन्यान्) दूसरे

६—**स्वप्तु**। ञिष्वप् शये। इडभावश्छान्दसः। स्वपितु। निद्रातु। **माता**। जननी। **पिता**। जनकः। **श्वा**। म० २। गमनशीलः। वृद्धिशीलः। कुक्कुरः। **विश्पतिः**। विशां प्रजानां पालको गृही। गृहाधिपतिः। **स्वपन्तु**। निद्रान्तु। **अस्यै**। दृश्यमानायै प्रजायै सन्तत्यै। कन्यायाः पुत्रस्य वा हिताय। **ज्ञातयः**। **क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्** (पा० ३। ३। १७४) इति ज्ञा अवबोधने-क्तिच्। जानाति कुलस्थितिं स ज्ञातिः। एककुलोत्पन्नाः पितृव्यादयः। बान्धवाः। सम्बन्धिनः। **अभितः**। परितः स्थितः। **जनः**। लोकः, मनुष्यसमूहः ॥

७—**स्वप्न**। ञिष्वप् शये **स्वपो नन्** (पा० ३। ३। ९१) इति नन्। हे निद्रे। **स्वप्नाभिकरणेन**। निद्राजनकेन साधनेन कर्मणा द्रव्येण वा। **सर्वम्**।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषों को (ओत्सूर्यम्) सूर्य उदय तक (स्वापय) सुला, (अहम्) मैं (इन्द्रः इव) प्रतापी मनुष्य के समान (अरिष्टः) नाश रहित और (अक्षितः) हानि रहित (आव्युषम्) प्रभात तक (जागृतात्=जागराणि) जागरण करूँ ॥ ७ ॥

भावार्थः---घर के अन्य सब स्त्री पुरुष अपने अपने स्थानों पर सो जावें और गृहपति यथावत् जागकर सावधानी रक्खे ॥ ७ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः

सूक्तम् ६ ॥

१-८ ॥ विषं देवता । १, ३—८ अनुष्टुप्, २ यावतीति त्रिष्टुप्, वाचमित्यनुष्टुप् ॥

विषनिवारणायोपदेशः—विष दूर करने के लिये उपदेश ॥

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ॥ १ ॥

ब्राह्मणः । जज्ञे । प्रथमः । दशऽशीर्षः । दशऽआस्यः । सः ।
सोमम् । प्रथमः । पपौ । सः । चकार । अरसम् । विषम् ॥ १ ॥

सकलम् । **नि स्वापय** । सर्वथा निद्रापय । **जनम्** । मनुष्यसमूहम् । **ओत्सूर्यम्** । उद्यन् सूर्य्यो यस्मिन् काले स उत्सूर्यः कालः । सूर्योदयपर्यन्तम् । **अन्यान्** । इतरान् मनुष्यान् । **आव्युषम्** । उष दाहे—कः, वा टाप् । उषः, उषा वा रात्रिशेषः । उषः कालावधि । रात्र्यवसानपर्यन्तम् । **जागृतात्** । जागृ निद्राक्षये लोट्, उत्तमपुरुषस्य छन्दसि प्रथमपुरुषः । अहं जागराणि । जागृतो भवानि । **अहम्** । गृहपतिः । **इन्द्रः इव** । प्रतापी पुरुषो यथा । **अरिष्टः** । अहिंसितः । **अक्षितः** । क्षयरहितः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः— (प्रथमः) सब वर्णों में प्रधान, (दशशीर्षः) दस प्रकार के [१—दान, २—शील, ३—क्षमा, ४—वीर्य, ५—ध्यान, ६-बुद्धि, ७-सेना, ८-उपाय, ९—गुप्त दूत, और १०—ज्ञान] बलों में शिर रखने वाला और (दशास्यः) दस दिशाओं में मुख के समान पोषण शक्ति वाला वा दस दिशाओं में स्थिति वाला (ब्राह्मणः) ब्राह्मण अर्थात् वेदवेत्ता पुरुष (जज्ञे) उत्पन्न हुआ। (सः प्रथमः) उस प्रधान पुरुष ने (सोमम्) सोम नाम ओषधि का रस (पपौ) पिया, और (सः) उसने (विषम्) विष को (अरसम्) निर्गुण कर दिया ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे वेदवेत्ता सद्वैद्यों ने पूर्ण विद्या प्राप्त करके सब दिशाओं में खोजकर संसार के उपकार के लिये सोम रस को पाया और आरोग्यनाशक और शरीरविकारक विष को हटाया है, हम लोग उसीप्रकार सोमलता आदि औषधों की प्राप्ति और परीक्षा करके संसार का कष्ट मिटाकर सबको सुख पहुंचावें और ब्राह्मण अर्थात् वेदवेत्ता होकर अगुआ बनें ॥ १ ॥

सोम का विशेष वर्णन ऋग्वेद मण्डल ९, और सामवेद उत्तरार्चिक प्रपाठक १ आदि में है, यहां दो मन्त्र लिखते हैं।

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥
रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम्।
द्रुणा सधस्थमासदत् ॥ २ ॥

ऋग्वेद ९ । १ । १, २ ॥ यजु० २६ । २५, २६ ॥ साम उत्तरा० प्र० १ अ० १ त्रिक १५ ॥

(सोम) हे सोम रस (स्वादिष्ठया) बड़ी स्वादिष्ट और (मदिष्ठया) अति आनन्द कारक (धारया) धारा से (इन्द्राय) बड़े प्रतापी इन्द्र, पुरुष के लिये (पातवे) पीने को (सुतः) छनकर (पवस्व) शुद्ध हो ॥ १ ॥

१—**ब्राह्मणः। तदधीते तद्वेद** (पा० ४ । २ । ५९) इति ब्रह्मन्—अण्। **ब्राह्मोऽजातौ** (पा० । ६ । ४ । १७१) इति अपत्ये जातौ टिलोपः न भवति। वेदपाठी। वेदवेत्ता पुरुषः। **जज्ञे।** जनी—लिट्। प्रादुर्बभूव। **प्रथमः।** सर्ववर्णेषु प्रधानः। अग्रिमः। **दशशीर्षः। श्रयतेः स्वाङ्गे शिरः किच्च** (उ० ४ । १९४) श्रिञ् सेवायाम्-असुन्, शिरादेशः। पृषोदरादित्त्वात् शिरः शब्दस्य शीर्ष वा आदेशः। उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रक्षोहा) रोगादि दुष्ट राक्षसों के नाश करने वाले (विश्वचर्षणिः) सब मनुष्यों के हितकारक उस [सोम] ने (अयोहतम्) सुवर्ण से बने हुये (सधस्थम्) एक साथ ठहरने योग्य (योनिम्) स्थान (द्रुणा=द्रोणे) द्रोण कलश में (अभि) व्याप कर (आ असदत्) पाया है ॥ २ ॥

सोम का वृत्तांत सुश्रुत चरक आदि वैद्यक ग्रन्थों में सविस्तार है वहां देख लेवें ॥

यावंती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत् सप्त सिंधवो वितष्ठिरे ।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् ॥ २ ॥

यावंती इति । द्यावापृथिवी इति । वरिम्णा । यावत् । सप्त । सिंधवः । विऽतस्थिरे । वाचम् । विषस्य । दूषणीम् । ताम् । इतः । निः । अवादिषम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी = द्यौ - व्यौ) सूर्य और पृथिवी लोक (वरिम्णा)

इत्यमरः, (का० २, व० ६, श्लो० ९४) दानशीलक्षमावीर्य्यध्यानप्रज्ञा बलानि च । उपायः प्रणिधिर्ज्ञानं दश बुद्धबलानि च । इति शब्दकल्पद्रुमवचनाद् दशसु बलेषु शीर्षं शिरोबलं यस्य स तथाभूतः पुरुषः । **दशास्यः । ऋहलोर्ण्यत्** (पा० ३।१।१२४) इति असु क्षेपणे-ण्यत् । अस्यतेऽन्नमस्मिन्निति आस्यं मुखम् । यद्वा । आस उपवेशने-ण्यत्, टाप् । आस्या स्थितिः, आसनम् । दशसु दिक्षु आस्यं मुखवत् पोषणं यस्य । यद्वा । दशसु दिक्षु आस्या स्थितिर्यस्य स तथाभूतः । **सः** । ब्राह्मणः । **सोमम् ।** अ० १ । ६ । २ । सोमलतारसम् । औषधिः सोमः सुनोतेर्यदेनमभिषुण्वन्ति । बहुलमस्य नैघण्टुकं वृत्तमाश्चर्य्यमिव प्राधान्येन— निरु० ११ । २ । **प्रथमः** । प्रधानः । **पपौ** । पीतवान् । **चकार** । कृतवान् । **अरसम्** । रसरहितं निर्वीर्यम् । **विषम्** । विष विप्रयोगे, यद्वा, विष्लृ व्याप्तौ—कः । विषमित्युदक-नाम, विष्णातेर्विपूर्वस्य स्नातेः शुद्ध्यर्थस्य विपूर्वस्य वा सचतेः—निरु० १२।२६। आरोग्यस्य शरीरस्य वा नाशकं द्रव्यम् ॥

२—**यावती । यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्** (पा० ५ । २ । ३९) इति यत्—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने विस्तार से (यावती = ०—त्यौ) जितने हैं, और (सप्त) जीव से मिली हुई वा गमन शील, वा सात (सिन्धवः) बहने वाली नदी रूप इन्द्रियां [दो कान, दो नथने, दो आंखे और एक मुख] (यावत्) जितने (वितष्ठिरे) फैलकर स्थित हैं। (इतः) इस स्थान से (विषस्य) विष की (दूषणीम्) खंडन करने वाली (ताम्) उस (वाचम्) वाणी को (निरवादिषम्) मैंने कह दिया है ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य उपाय करें कि आकाश और पृथिवी के सब गोचर पदार्थों में विष का संसर्ग न हो और पुष्टिकारक और बलवर्धक वस्तुओं के स्पर्श, दर्शन, श्रवण, मनन, संभोग आदि से आनन्द प्राप्त हो ॥ २ ॥

सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विषं प्रथममावयत् ।
नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः ॥ ३ ॥

सुऽपर्णः । त्वा । गरुत्मान् । विषं । प्रथमम् । आवयत् । न ।
अमीमदः । न । अरूरुपः । उत । अस्मै । अभवः । पितुः ॥ ३ ॥

वतुप् । ङीप् । **आ सर्वनाम्नः** (पा० ६ । ३ । ९१) इति आत्वम् । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति विभक्तेः पूर्वसवर्णदीर्घः । यावत्यौ । यावत्परिमाण-युक्ते । **द्यावापृथिवी** । पूर्वसवर्णदीर्घः । सूर्यपृथिव्यौ । **वरिम्णा** । **पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा** (पा० ५ । १ । १२२) इति उरु—इमनिच् । **प्रियस्थिर०** (पा० ६ । ४ । १५७) इति वर् आदेशः । उरुत्वेन । विस्तारेण । **सप्त** । **सप्यशूभ्यां तुट् च** (उ० १ । १५७) इति षप समवाये, यद्वा, सृप्ल्ह गतौ कनिन्, तुट् च, ऋकारस्य अकारः । सप्तपुत्रं सप्तमपुत्रं सर्पणपुत्रमिति वा सप्त सृप्ता सङ्ख्या सप्तादित्यरश्मय इति निरु० ४ । २६ । जीवेन सह समवेताः सर्पणा गमनशीला वा सप्तसङ्ख्याका वा । **सिन्धवः** । अ० ४ । ३ । १ । स्यन्दनशीलानि नदी-रूपाणि शीर्षण्यानि कर्णनासिकाचक्षुर्द्वयमुखानि-व्याख्यातम् । अ० २ । १२ । ७ । **वितष्ठिरे** । ष्ठा गतिनिवृत्तौ- लिट् । **समवप्रविभ्यः स्थः** (पा० १ । ३ । २२) इति आत्मनेपदम् । विस्तारेण स्थिताः । **वाचम्** । वाणीम् । **दूषणीम्** । दुष वैकृत्ये-ण्यन्तात् ल्युट् । ङीष् । नाशनीम् । **ताम्** । तादृशीम् । **इतः** । अस्माद् देशात् । **निः अवादिषम्** । वद व्यक्तायां वाचि लुङ् । **वदव्रजहलन्तस्याचः** (पा०७ । २ । ३) इति वृद्धिः । अहं निर्गमय्य उच्चारितवानस्मि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(विष) हे विष ! (सुपर्णः) शीघ्रगामी (गरुत्मान्) सुन्दर पंख वाले गरुड़ ने (प्रथमम्) प्रसिद्ध (त्वा) तुझको (आवयत्) खाया, तूने [उसे] (न) न तो (अमीमदः) मत्त किया और (न) न (अरूरुपः) घबरा दिया, (उत) किन्तु तू (अस्मै) उसके लिये (पितुः) अन्न (अभवः) हुआ है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे गरुड़, मोर आदि पक्षी अपनी विष पाचक शक्ति से विषधारी सर्प को खाकर अपना शरीर पुष्ट करते हैं, इसी प्रकार सद्वैद्य औषधि द्वारा विष-जनक रोगों का नाश करके संसार में निरोगता फैलाते हैं ॥ ३ ॥

यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः ।
अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम् ॥ ४ ॥

यः । ते । आस्यत् । पञ्चऽअङ्गुरिः । वक्रात् । चित् । अधि । धन्वनः ।
अपऽस्कम्भस्य । शल्यात् । निः । अवोचम् । अहम् । विषम् ॥ ४ ॥

३—सुपर्णः । अ० १ । २४ । १ । सुपर्णाः सुपतना आदित्यरश्मयः, सुपर्णाः सुपतनानीन्द्रियाणि—निरु० ३ । १२ । शीघ्रगतिः । शोभनपक्षयुक्तः । **त्वा** । त्वां विषम् । **गरुत्मान् । मृग्रोरुतिः** (उ० १ । ९४) इति गृ शब्दे–उतिः । गृणाति शब्दायते वायुवेगात् स गरुत् पक्षः । ततो मतुप् । उरगाशनः पक्षि-विशेषः । गरुड़ः । **विष । प्रथमम्** । प्रधानम् । अतिप्रभावयुक्तमित्यर्थः । **आवयत्=आ अवयत्** । वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु—लङ् । आवयतिः, अत्तिकर्मा—निघ० २ । ८ । अभक्षयत् । **न** । निषेधे । **अमीमदः** । मदी हर्षग्लेपनयोः । ग्लेपनं दैन्यम् । ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् । मत्तं ज्ञान—विकलम् अकार्षीः । **अरूरुपः** । रुप विमोहने ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् । विमूढम् अकार्षीः । **उत** । अपि तु । **अस्मै** । गरुत्मते । **अभवः** । लङ् । **पितुः** । **कमिमनि०**[1] (उ० १।७३) इति पा रक्षणे, वा पा पाने, अथवा ओप्यायी वृद्धौ तु प्रत्ययः । धातोः पिभावः । पितुरित्यन्ननाम पातेर्वा पिबतेर्वा प्यायतेर्वा—निरु० ९ । २४ । अन्नम्[2] ॥

१. बाहुलक से यहाँ 'पा' धातु से तु प्रत्यय होगा ॥ सम्पा० ॥
२. अन्नं वै पितुः (श.ब्रा. १ । ९ । २ । २०) शतपथ में कहा है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यः) जिस किसी पुरुष ने (पञ्चाङ्गुरिः) पांचों अंगुली जमा कर (वक्रात्) टेढ़े (चित्) ही (धन्वनः अधि) धनुष पर से (अपस्कम्भस्य) तीर के बन्धन की (शल्यात्) अणि व पैनी कील से (ते) तेरे लिये [विष] (आस्यत्) चलाया है, (अहम्) मैंने (विषम्) उस विष को (निः) निकाल कर (अवोचम्) वचन बोला है ॥४॥

भावार्थः—यदि शत्रु अपने छल बल से दृढ़ हाथ से छोड़े हुये विष में बुझे तीर से किसी वीर मनुष्य के शरीर में विष प्रवेश कर दे, चतुर वैद्य उसकी चिकित्सा करके यश प्राप्त करे ॥४॥

शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः ।
अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम् ॥ ५ ॥

शल्यात् । विषम् । निः । अवोचम् । प्रऽअञ्जनात् । उत । पर्णऽधेः ।
अपाष्ठात् । शृङ्गात् । कुल्मलात् । निः । अवोचम् । अहम् । विषम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(शल्यात्) बाण की अणि से, (प्राञ्जनात्) लेप से (उत) और (पर्णधेः) पंख वाले तीर के भाग से (विषम्) विष को (निः) निकाल

४—**यः** । कश्चित् पुरुषः । **ते** । तुभ्यम् । **आस्यत्** । असु क्षेपणे लङ् । प्राक्षिपत् । **पञ्चाङ्गुरिः** । **बालमूललघ्वसुरालमङ्गुलीनां वा रो लमापद्यत इति वक्तव्यम्** (वा० पा०८।२।१८) इति लस्य रत्वम् । बाणारोपणे पञ्च अङ्गुरयः अङ्गुलयो यस्य स तथोक्तः । दृढ़हस्तः सन् । **वक्रात्** । **स्फायितञ्चिवञ्चि०** (उ० २।१३) इति वञ्चु प्रलम्भने—रक् । कुटिलात् । क्रूरात् । **चित्** । अपि । **अधि** । उपरिभावे । **धन्वनः** । अ० १ । ३ । ९ । चापात् । **अपस्कम्भस्य** । स्कभि प्रतिबन्धे—घञ् । शरबन्धनात् । **शल्यात्** । अ० २ । ३० । ३ । शल गतौ—यः । बाणाग्रभागात् । **निः** । औषधिबलेन निःसार्य । **अवोचम्** । उक्तवानस्मि । **विषम्** । हलाहलम् ॥

५—**शल्यात्** । **विषम्** । **निः** । **अवोचम्** । गतम्—म० ४ । **प्राञ्जनात्** । अञ्जू व्यक्तिगतिम्रक्षणेषु—ल्युट् । प्रलेपात् । **उत** । अपि । **पर्णधेः** । पत्रयुक्तशरकाण्डात् । **अपाष्ठात्** । अप + आङ् + ष्ठा—क । उपस्थिताद्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर (अवोचम्) मैंने वचन बोला है। (शृङ्गात्) तीक्ष्ण (अपाष्ठात्) बाण के फल से और (कुल्मलात्) बाण छिद्र से (विषम्) विष को (निः=निर्गमय्य) निकाल कर (अहम्) मैंने (अवोचम्) वचन कहा है ॥५॥

भावार्थः—विषैले बाण के जिस जिस खंड से जहाँ जहां शरीर में घाव हों, बुद्धिमान् वैद्य वहां वहां से सावधानी के साथ विष निकालकर घायल पुरुष को स्वस्थ करे ॥५॥

अरसस्ते इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम् ।
उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ॥ ६ ॥

अरसः । ते । इषो इति । शल्यः । अथो इति । ते । अरसम् । विषम् ।
उत । अरसस्य । वृक्षस्य । धनुः । ते । अरस । अरसम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(इषो) हे हिंसक बैरी ! (ते) तेरे (शल्यः) बाण की अणि (अरसः) निर्बल, (अथो) और भी (ते) तेरा (विषम्) विष (अरसम्) निर्बल [हो जावे]। (उत) और (अरस) हे निर्बल शत्रु ! (अरसस्य) निर्बल (वृक्षस्य) वृक्ष का (ते धनुः) तेरा धनुष (अरसम्) निकम्मा [हो जावे] ॥६॥

बाणफलात्। **शृङ्गात्** । अ० २ । ३२ । ६ । शृ हिंसायाम्—गन्, नुट् च । शृणातीति शृङ्गं तीक्ष्णम् । तीक्ष्णात् । **कुल्मलात्** । अ० २ । ३० । ३ । बाणदण्डच्छिद्रात् । गतमन्यत् ॥

६—अरसः । निर्बलः । **ते** । तव । **इषो** । **ईषेः किच्च** (उ० १ । १३) ईषति हिनस्तीति इषुः । हे हिंसक ! हे बाण ! हे बाणधारिन्—इत्यर्थः । **शल्यः** । म० ४ । बाणाग्रभागः । **अथो** । अपि च । **अरसम्** । निर्वीर्यम् । निष्प्रभावम् । **विषम्** । **उत** । अपि च । **अरसस्य** । निःसारस्य । **वृक्षस्य** । अ० १ । २ । ३ । अ० ३।६।८ । वृक्ष वरणे—कः । स्वीकरणीयस्य । विटपस्य वृक्षकाष्ठस्येत्यर्थः । **धनुः** । अ० ४ । ४ । ६ । चापः । **ते** । तव । **अरस** । निर्वीर्यशत्रो ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—चिकित्सक लोग ऐसी उत्तम संजीवनी औषधें उपस्थित रक्खें जिनसे शत्रुओं के अस्त्र शस्त्रों के घाव योधाओं के अंगों में भर कर तुरन्त अच्छे हो जावें ॥ ६ ॥

ये अपीषन् ये अदिहन् य आस्यन् ये अवास्रजन् ।
सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विषगिरिः कृतः ॥ ७ ॥

ये । अपीषन् । ये । अदिहन् । ये । आस्यन् । ये । अव-अस्रजन् ।
सर्वे । ते । वध्रयः । कृताः । वध्रिः । विष-गिरिः । कृतः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(ये) जिन शत्रुओं ने [विष को] (अपीषन्) पीसा है, (ये) जिन्होंने (अदिहन्) लेप किया है, (ये) जिन्होंने (आस्यन्) दूर से फेंका है, और (ये) जिन्होंने (अवासृजन्) पास से छोड़ा है। (ते सर्वे) वे सब (वध्रयः) असमर्थ (कृताः) कर दिये गये, और (विषगिरिः) विष पर्वत भी (वध्रिः) निर्वीर्य (कृतः) कर दिया गया है ॥७॥

भावार्थ.—राजा विष प्रयोगी पुरुषों को यथावत् दंड देकर सर्वथा बल-हीन कर देवे, और विष के उत्पत्ति स्थानों को भी नियम बद्ध रक्खे ॥७॥

वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे ।
वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम् ॥ ८ ॥

वध्रयः । ते । खनितारः । वध्रिः । त्वम् । असि । ओषधे ।
वध्रिः । सः । पर्वतः । गिरिः । यतः । जातम् । इदम् । विषम् ॥ ८ ।

भाषार्थः—(ओषधे) हे दाह [जलन] के धारण करने वाले विष ! (ते)

७—ये । जनाः । **अपीषन् ।** पिष्लृ संचूर्णने लङि छान्दसरूपम् । अपिंषन् । पिष्टवन्तः । विषमिति शेषः । **अदिहन् ।** दिह उपचये = वृद्धौ—लङ् । लिप्तवन्तः । **आस्यन् ।** म० ४ । दूरात् क्षिप्तवन्तः । **अव—असृजन् ।** सृज विसर्गे—लङ् । अवसृष्टवन्तः समीपे त्यक्तवन्तः । **सर्वे । ते ।** पूर्वोक्ता जनाः । **वध्रयः ।** अ० ३ । ९ । २ । बन्ध बन्धने क्रिन् । विफलाः । निर्वीर्याः । **कृताः ।** निष्पादिताः । **वध्रिः ।** निर्वीर्यः । **विषगिरिः ।** विषोत्पत्तिहेतुः पर्वतः ॥

८—वध्रयः म० ७ । असमर्थाः । **ते ।** तव । **खनितारः ।** खननकर्तारः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरे (खनितारः) खोदने वाले (वध्रयः) असमर्थ [हो जावें] और (त्वम्) तू भी (वध्रिः) निर्वीर्य (असि) है। (सः) वह (पर्वतः) अवयव वाला (गिरिः) पहाड़ (वध्रिः) असमर्थ [हो जावे] (यतः) जिससे (इदम् विषम्) यह विष (जातम्) उत्पन्न हुआ है ॥ ८ ॥

भावार्थः—राजा विष व्यापारियों और विष स्थानों को नीति विधान से अपने वश में रक्खे ॥ ८ ॥

सूक्तम् ॥ ७ ॥

१—७ ॥ विषो देवता। अनुष्टुप् छन्दः ॥

विषनाशायोपदेशः—विष नाश करने का उपदेश ॥

वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि।
तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम् ॥ १ ॥

वाः। इदम्। वारयातै। वरणऽवत्याम्। अधि। तत्र। अमृतस्य। आऽसिक्तम्। तेन। ते। वारये। विषम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(वरणावत्याम् अधि) उत्तम गुण वाली क्रिया में [अथवा वरुण नाम वाली ओषधि में] वर्तमान (इदम्) यह (वाः) जल (वारयातै) [विष को] हटावे। (तत्र) उस [जल] में (अमृतस्य) अमृत अर्थात्

वध्रिः। निर्वीर्याः,निर्वीर्यः। **त्वम् असि। ओषधे।** अ० १। २३। ३। उष दाहे—घञ्+डुधाञ् धारणपोषणयोः—किः। हे दाहधारक विष। **सः। पर्वतः।** अ० १। १२। ३। पर्व पूरणे अतच्। पर्वति पूरयति भूमिम्। यद्वा। **पर्वमरुद्भ्यां तप् वक्तव्यः** (वा० पा० ५। २। १२२) इति पर्वन्—तप् मत्वर्थे। पर्ववान्। अवयवयुक्तः। **गिरिः।** अ० २। २५। ४। शैलः। **यतः।** यस्माद् गिरेः। **जातम्।** उत्पन्नम्। **इदम्, विषम् ॥**

१—वाः। अ० ३। १३। ३। वारि। जलम्। **इदम्। वारयातै।** वारयतेर्लेटि आडागमः। निवारयतु विषम्। **वरणावत्याम्। सुयुरुवृञो युच्** (उ० २। ७४) इति वृञ् वरणे—युच्। **शरादीनां च** (पा० ६। ३। १२०) इति मतौ पूर्वपदस्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वास्थ्य का (आसिक्तम्) रस है। (तेन) उस [जल] से (ते विषम्) तेरे विष को (वारये) मैं हटाता हूं ॥ १ ॥

भावार्थः—(१) यथावत् क्रिया से किये हुये जल के अभिषेक आदि से और (२) वरुण नाम औषध के रस प्रयोग से विष और विष जनक रोगों की निवृत्ति होती है ॥ १ ॥

अरसं प्राच्यं विषमरसं यदुदीच्यम् ।
अथेदमधराच्यं करम्भेण वि कल्पते ॥ २ ॥

अरसम् । प्राच्यम् । विषम् । अरसम् । यत् । उदीच्यम् ।
अथ । इदम् । अधराच्यम् । करम्भेण । वि । कल्पते ॥ २ ॥

भाषार्थः—(प्राच्यम्) पूर्व वा सन्मुख दिशा का (विषम्) विष (अरसम्) अरस होवे, और (यत्) जो (उदीच्यम्) उत्तर वा बांयी दिशा में

दीर्घः। वरणीयगुणयुक्तायां क्रियायाम्। अथवा वरणो वरुणो वृक्षविशेषः। वरुणरसवत्यां ओषधौ वर्तमानम्। वरुणस्य गुणाः। कटुत्वम्, उष्णत्वम् रक्तदोषशीतवातहरत्वम्, स्निग्धत्वम्, दीपनत्वं च—इति शब्दकल्पद्रुमात्। **अधि।** सप्तम्यर्थानुवादी। **तत्र।** तस्मिन् जले। **अमृतस्य।** अमरणस्य, स्वास्थ्यस्य। **आसिक्तम्।** षिच क्षरणे—भावे क्तः। आसेचनम्। समन्ताद् वर्षणम्। रसः। **तेन।** उदकेन। **वारये।** अहं निवारयामि। **विषम्।** विषप्रभावम् ॥

२—**अरसम्।** नीरसम्। निष्प्रभावम्, भवतु। **प्राच्यम्। द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्** (पा० ४। २। १०१) इति प्राच्—यत्। पूर्वदिग्भवम्। स्वाभिमुखदिशि भवम्। यत्। यद् विषमस्ति तदपि। **उदीच्यम्।** उदच्—यत् पूर्ववत् उत्तरदिशि भवम् वामदिशि भवम्। **अथ।** अनन्तरम्। **इदम्। अधराच्यम्।** अधराच्—यत्। अधस्ताद् वर्तमानायां दिशि भवम्। **करम्भेण। अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** (पा० ३। ३। १९) इति क+रभि शब्दे, अत्र सेचने—घञ्। **रभेरशव्लिटोः** (पा० ७। १। ६३) इति नुम्। केन जलेन रभ्यते सिच्यते मिश्रीक्रियते वा स करम्भः तेन, जलसेचनकर्मणा। यद्वा दधिमिश्रितसक्तुभिः। **विकल्पते।** कृपू सामर्थ्ये। **कृपो रो लः** (पा० ८। २। १८) इति लत्वम्। विगतसामर्थ्यं भवति ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है [वह भी] (अरसम्) अरस होवे । (अथ) और (इदम्) यह (अधराच्यम्) नीचे की दिशा का [विष] (करम्भेण) जल सेचन से [वा दही मिले सत्तुओं से] (विकल्पते) असमर्थ हो जाता है ॥ २ ॥

भावार्थः—चिकित्सक लोग विष और विषैले रोगों को यथावत् जल सेचन से अथवा सत्तुओं के प्रयोग से हटावें ॥ २ ॥

'करम्भ' शब्द का अर्थ जल क्रिया वा जल सेचन अथवा दही मिले हुये सत्तुओं का है [करम्भो दधिसक्तवः—इत्यमरः, २ । ९ । ४८]

करम्भं कृत्वा तिर्यं[1] पीवस्पाकमुदारथिम् ।
क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरुपः ॥ ३ ॥

करम्भम् । कृत्वा । तिर्यम् । पीवःऽपाकम् । उदारथिम् । क्षुधा । किल । त्वा । दुस्तनो इति दुःऽतनो । जक्षिऽवान् । सः । न । रूरुपः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(दुष्टनो) हे शरीर के दुःख दायक [विष !] (किल) तिरस्कार के साथ (त्वा) तेरे लिये [तेरे हटाने के लिये] (तिर्यम्) रोग जीतने में समर्थ, (पीवस्पाकम्) मुटाई वा चर्बी रोग पचाने वाले और

३—**करम्भम् ।** म० २ । जलसेचनम् । दधिसक्तून् । **कृत्वा ।** विधाय । **तिर्यम् । सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति तॄ प्लवनसंतरणयो—असुन् । गुणविषये ईर् । तरतीति तिरः । **तत्र साधुः** (पा० ४ । ४ । ९८) इति यत् । **अव्ययानां च०** (वा० पा० ६।४।१४४) इति टिलोपः । तरणे रोगजये समर्थम् । रोगतिरस्कारे कुशलम् । **पीवस्पाकम् । सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति पीव स्थौल्ये—असुन् । पचतेः करणे—घञ् । पीवः स्थौल्यं मेदो वा रोगविशेषः पच्यते येन तम् । **उदारथिम् । उद्यर्त्तेश्चित्** (उ० ४ । ८८) इति उत् + ऋ गतौ—घथिन् । छान्दसो दीर्घः । उदरथिम् । उद्गमयितारम् जाठराग्नेरुद्दीपयितारम् । **क्षुधा ।** बुभुक्षया । **किल ।** तिरस्कारेण । निश्चयेन । **त्वा । सुपां सुपो भवन्ति** (वा० पा० ७।१।३९) इति चतुर्थ्यर्थे द्वितीया, त्वदर्थम् । तवनिवारणायेत्यर्थः । **दुष्टनो ।** दुर्—तनो । हे शरीरदूषक ! **जक्षिवान् ।** अदेर्लिटः क्वसुः ।

---

१. ऋत इद्धातोः (७ । १ । १००) ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उदारथिम्) जाठर अग्नि बढ़ाने वाले (करम्भम्) जल सेचन [वा दही सत्तुओं] को (कृत्वा) बनाकर (क्षुधा) भूख के कारण (जक्षिवान्=यः जक्षिवान् तम्) जिसने खा लिया, उसको (सः=स त्वम्) उस तूने (न) नहीं (रूरुपः) मूर्छित किया है ॥ ३ ॥

भावार्थः—जल सेचन और सत्तुओं के सेवन से विषैले रोगों का नाश होता है ॥ ३ ॥

वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि ।
प्र त्वा चरुमिव येषन्तं वचसा स्थापयामसि ॥ ४ ॥

वि । ते । मदम् । मदऽवति । शरम्ऽइव । पातयामसि ।
प्र । त्वा । चरुम्ऽइव । येषन्तम् । वचसा । स्थापयामसि ॥४॥

भाषार्थः—(मदावति) हे मूर्छा करने वाली [विष पीड़ा] (ते) तेरे (मदम्) मद्यपन को (शरमिव) तीर के समान (वि) अलग (पातयामसि=०-मः) हम फेंके देते हैं । और (येषन्तम्) खदबदाते हुये (चरुमिव) चरुये [बासन] के समान (त्वा) तुझको (वचसा) वचन मात्र से [शीघ्र] (प्रस्थापयामसि=०—मः) हम हटाते हैं ॥ ४ ॥

लिट्यन्यतरस्याम् (पा० २ । ४ । ४०) इति घस्लृ आदेशः । **वस्वेकाजाद्-घसाम्** (पा० ७ । २ । ६७) इति इटि कृते उपधालोपे स्थानिवद्भावाद् द्विर्वचनादिः । भक्षितवान् यः पुरुषः, तम् इति शेषः । **सः** । स त्वम् । **न** । न हि । **रूरुपः** । रुप विमोहने । ण्यन्ताल् लुङि चङि रूपम् अडभावः । अरूरुपः । अमूमुहः । मूर्छितम् अकार्षीः ॥

४—**वि** । वियोगे । **ते** । त्वदीयम् । **मदम्** । मदी हर्षग्लेपनयोः—अच् । मद्यम् । मत्ताम् । विकलताम् । **मदावति** । **शरादीनां च** (पा० ६ । ३ । १२०) इति मतौ दीर्घः । हे मूर्छाकरगुणयुक्ते विषपीडे । **शरमिव** । शॄ हिंसायाम्—अप् । चापाद् विमुक्तं तीरमिव । **वि पातयामसि** । शरीराद् विश्लेषयामः । **त्वा** । त्वाम् । **चरुमिव** । **भृमृशीङ्तृचरि०** (उ० १ । ७) इति चर गतिभक्षणयोः उः । चर्यते भक्ष्यते अग्निना, अन्नपाकभाण्डं यथा । **येषन्तम्** । **जृविशिभ्यां झच्**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—वैद्य लोग विषैली, मदकरी पीडाओं को बहुत शीघ्र प्रयत्न करके हटावें, जैसे धनुष से तीर को फेंकते अथवा अतितप्त बरतन को आग पर से हटाते हैं ॥ ४ ॥

परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि ।
तिष्ठा वृक्षइव स्थाम्न्यभ्रिखाते न रूरुपः ॥ ५ ॥

परि । ग्रामम्ऽइव । आऽचितम् । वचसा । स्थापयामसि ।
तिष्ठ । वृक्षःऽइव । स्थाम्नि । अभ्रिऽखाते । न । रूरुपः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(आचितम्) एकत्र हुए (ग्रामम् इव) जन समूह [शत्रु वृन्द] के समान [तुझको] (वचसा) वचन मात्र से (परि स्थापयामसि = ०—मः) हम घेरते हैं । (वृक्षः इव) वृक्ष के समान (स्थाम्नि) अपने स्थान पर (तिष्ठ) ठहर । (अभ्रिखाते) हे कुदाल से खोदी हुई ! तूने (न) नहीं (रूरुपः) मूर्छित किया है ॥ ५ ॥

भावार्थः—विद्वान् वैद्य विचार पूर्वक उपाय के साथ विष को प्रभाव रहित करके निकाल देते हैं जैसे शूर पुरुष शत्रुसेना को घेरकर हरा देते हैं ॥ ५ ॥

(उ० ३ । १२६) इति येषृ प्रयत्ने—झच् । येषमाणम् । प्रयतमानम् अङ्ग-प्रत्यङ्गानि व्याप्नुवन्तम् प्रतप्तं वा । **वचसा** । वचनमात्रेण । **प्र स्थापयामसि** । दूरी कुर्मः ॥

५—**परि** । परितः सर्वतः । **ग्रामम् । ग्रसेरा च** (उ० १ । १४३) इति ग्रस ग्रहणे - मन्, धातोराकारः । जनसमूहम् । शत्रुवृन्दम् । **इव** । यथा । **आचितम्** । आङ् + चि—क्तः । आकीर्णम् । व्याप्तम् । **वचसा** । वचनमात्रेण । **स्थापयामसि** । दध्मः । **तिष्ठ** । स्थिता भव । **वृक्ष इव** । यथा वृक्षो निश्चलो भूत्वा । **स्थाम्नि । सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उ० ४ । १४५) इति ष्ठा गतिनिवृत्तौ—मनिन् । स्वस्थाने । मूले । **अभ्रिखाते । सर्वधातुभ्य इन्** (उ०४।११८) इति अभ्र गतौ-इन् अपादाने । अभ्रिः काष्ठकुदालः । तीक्ष्णाग्रो लोहदण्डः । खनु अवदारणे—क्तः । हे खननसाधनेन अभ्रि विदारिते ओषधे । **न** । न हि । **रूरुपः** । म० ३ । अमूमुहः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत ।
प्रक्रीरसि त्वमोषध्येऽभ्रिखाते न रूरुपः ॥ ६ ॥

पवस्तैः । त्वा । परि । अक्रीणन् । दूर्शेभिः । अजिनैः । उत ।
प्रऽक्रीः । असि । त्वम् । ओषधे । अभ्रिऽखाते । न । रूरुपः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(त्वा) तुझसे (पवस्तैः) मंडप वा घरों के लिये, (दूर्शेभिः=दूर्शैः) वस्त्र गृहों के लिये, (उत) और (अजिनैः) चर्म के लिये (परि अक्रीणन्) उन्होंने [पुरुषों ने] व्यापार किया है। (ओषधे) हे दाहधारण करने वाली ! (त्वम्) तू (प्रक्रीः) बिकाऊ वस्तु (असि) है। (अभ्रिखाते) हे कुद्दाल से खोदी हुई ! तूने (न) नहीं (रूरुपः) मूर्छित किया है ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य अपने लाभ के लिये विष का व्यापार भी करते हैं, विद्वान् लोग अपनी योग्यता से विष को निर्बल करके रखते हैं ॥ ६ ॥

अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ॥ ७ ॥

अनाप्ताः । ये । वः । प्रथमाः । यानि । कर्माणि । चक्रिरे ।
वीरान् । नः । अत्र । मा । दभन् । तत् । वः । एतत् । पुरः । दधे ॥ ७ ॥

६—पवस्तैः । पवतेः गतिकर्मा—निघ० २ । १४ । अस्माद् औणादिको अस्तप्रत्ययः । पवन्ते गच्छन्ति यत्र । मण्डपैः । गृहैः । अत्र सर्वत्र निमित्ते तृतीया । पवस्तशब्दो द्यावापृथिव्योर्वाचको दृष्टः । ऋ० १० । २७ । ७ । **त्वा ।** त्वां विषरूपाम् । **परि अक्रीणन् ।** डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये—लङ् । परिक्रीतवन्तः पुरुषाः । **दूर्शेभिः ।** दुर्—शो तनूकरणे—डः । दुर् दुःखं श्यतीति दूर्शम् । दूर्शैः । दूश्यैः । दूष्यैः । वस्त्रनिर्मितगृहैः । **अजिनैः । अर्जेरज च** (उ० २ । ४८) इति अज गतिक्षेपणयोः—इनच् । चर्मभिः । **उत ।** अपि च । **प्रक्रीः ।** प्रपूर्वात् क्रीणातेः कर्मणि संपदादित्वात् क्विप् । प्रकर्षेण क्रीता । **असि ।** भवसि । **त्वम् । ओषधे ।** हे तापधारिणि । अन्यद् गतम्—म० ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ये) जिन (प्रथमाः) प्रधान (अनाप्ताः) अत्यन्त यथार्थ ज्ञानी पुरुषों ने (वः) तुम्हारे लिये (यानि) पूजनीय (कर्माणि) कर्म (चक्रिरे) किये हैं, वे (नः) हम (वीरान्) वीरों को (अत्र) यहां पर (मा दभन्) न मारें (तत्) सो (एतत्) इस कर्म को (वः) तुम्हारे (पुरः) आगे (दधे) मैं धरता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करें कि जगत् हितकारी महात्मा लोग आनन्द प्राप्त करके सब की यथावत् रक्षा करते रहें ॥ ७ ॥

यह मन्त्र अ० ५ । ६ । २ । में भी है ।

सूक्तम् ॥ ८ ॥

१—७ ॥ भूतानामधिपतिर्देवता ॥ १, ३, ७ त्रिष्टुप्, शिष्टानुष्टुप् ॥

राजसूययज्ञोपदेशः—राजतिलक यज्ञ का उपदेश ॥

भूतो भूतेषु पर्य् आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव ।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम् ॥ १ ॥

भूतः । भूतेषु । पर्यः । आ । दधाति । सः । भूतानाम् । अधिऽपतिः । बभूव । तस्य । मृत्युः । चरति । राजऽसूयम् । सः । राजा । राज्यम् । अनु । मन्यताम् । इदम् ॥ १ ॥

७—अनाप्ताः । आप्लृ व्याप्तौ—क्तः । आप्ता यथार्थज्ञातारः । न सन्ति आप्ता येभ्यस्ते अनाप्ताः, अनुत्तमाः । अतिशयेन आप्ताः । **ये** । पुरुषाः । **वः** । युष्मभ्यम् । **प्रथमाः** । प्रधानाः । **यानि** । यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु—डः । यजनीयानि । पूज्यानि । **कर्माणि** । कर्तव्यानि । आचरणानि । **चक्रिरे** । कृतवन्तः । **वीरान्** । शूरान् । **नः** । अस्मान् । **अत्र** । अस्मिन् संसारे विषनिवारणकर्मणि वा । **मा दभन्** । दम्भु दम्भने = कपटे । मा हिंसन्तु ते शत्रवः । **तत्** । तस्मात् । **वः** । युष्माकम् । **एतत्** । क्रियमाणं कर्म । **पुरः** । पुरस्तात् । **दधे** । धारयामि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(भूतः) विभूति वा ऐश्वर्य वाला पुरुष (भूतेषु) सब स्थावर जंगम पदार्थों में (पयः) दूध, अन्न जल आदि (आ) अच्छे प्रकार (दधाति) धारण करता है, (सः) वही (भूतानाम्) प्राणी और अप्राणियों का (अधिपतिः) अधिष्ठाता (बभूव) हुआ है। (मृत्युः) मृत्यु [मारणसामर्थ्य] (तस्य) उसके (राजसूयम्) राजतिलक यज्ञ में (चरति) अनुचर होता है। (सः राजा) वह राजा (इदम् राज्यम्) इस राज्य को (अनु मन्यताम्) अङ्गीकार करे ॥ १ ॥

भावार्थः—जिस प्रतापी पुरुष को विद्वान् पुरुषों ने राजा बनाया है, वह अपनी बुद्धि, नीति और वीरता से प्रजा के प्राण और धन की रक्षा करता है, और वही शिष्टों का पालन करके मृत्यु से बचाता और दुष्टों को दण्ड देकर मारता है ॥ १ ॥

अभि प्रेहि मा पं वेन उग्रश्चेत्ता संपत्नहा ।
आ तिष्ठ मित्रवर्धन् तुभ्यं देवा अधि ब्रुवन् ॥ २ ॥

१—भूतः । भू सत्तायां प्राप्तौ च, यद्वा, शुद्धिचिन्तनमिश्रणेषु—क्तः । भवति विद्यते भूयते प्राप्यते वा भूतः प्राणी । भूतिवान्, ऐश्वर्यवान् राजा । **भूतेषु** । सत्तां प्राप्तेषु स्थावरजङ्गमद्रव्येषु । **पयः । रपेरत एच्च** (उ०४।१९०) इति पय गतौ, पीङ् पाने पा पाने—वा असुन् । पयः पिबतेर्वा प्यायतेर्वा—निरु० २।५ । पयः, रात्रिनाम—निघ० १ । ७ । उदकनाम—निघ० १ । १२ । अन्ननाम—निघ० २ । ७ । दुग्धान्नजलादिपदार्थजातम् । **आ** । सम्यक् । **दधाति** । स्थापयति । **सः** । राजा । **भूतानाम्** । प्राणिनाम् । **अधिपतिः** । अधिष्ठाता । स्वामी । **बभूव** । **तस्य** । राज्ञः । **मृत्युः** । **भुजिमृडभ्यां युकृत्युकौ** (उ० ३ । २१) इति मृङ् प्राणत्यागे—त्युक् । अन्तर्भावितण्यर्थः । मृत्युर्मारयतीति सतो मृतं च्यावयतीति वा शतबलाक्षो मौद्गल्यः—निरु० ११ । ६ । मारणसामर्थ्यम्, दुष्टनिग्रहेण शिष्टपरिपालनेन च । **चरति** । अनुचरति । सेवते । **राजसूयम्** । **राजसूयसूर्य०** (पा० ३ । १ । ११४) इति राजन्+षुञ् अभिषवे—क्यप् । अभिषवः स्नपनं पीडनं स्नानं सुरासंधानं च । राजा सूयते अभिषिच्यते यत्र । राजाभिषेकयज्ञम् । **सः** । कृताभिषेकः । **राजा** । ऐश्वर्यशाली । प्रतापवान् । **राज्यम्** । **पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्** (पा० ५ । १ । १२८) इति राजन्—यक् । राज्ञः कर्म प्रजारक्षणादिकम् । **अनुमन्यताम्** । अनुजानातु । अङ्गीकरोतु । **इदम्** । प्रत्यक्षम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभि । प्र । इहि । मा । अप । वेनः । उग्रः । चेत्ता । सपत्नऽहा ।
आ । तिष्ठ । मित्रऽवर्धन् । तुभ्यम् । देवाः । अधि । ब्रुवन् ॥ २ ॥

भाषार्थः—[हे राजन्] (उग्रः) तेजस्वी, (चेत्ता) चैतन्य स्वभाव और (सपत्नहा) शत्रुनाशक तू (अभि) सब ओर से (प्रेहि) आगे बढ़, (मा अप वेनः) पीछे न हट । (मित्रवर्धन) हे मित्रों के बढ़ाने हारे ! (आतिष्ठ) [सिंहासन वा हाथी आदि पर] आकर बैठ । (देवाः) विजय चाहने वाले वीर विद्वानों ने (तुभ्यम्) तेरे लिये (अधिब्रुवन्) यह अनुग्रह वचन दिया है ॥ २ ॥

भावार्थः—(देवाः) मुख्य मुख्य शूर विद्वान् लोग राजा को सहाय वचन के साथ अभिनन्दन करके राजसिंहासन और हाथी आदि यान पर बिठलावें और (मित्रवर्धन) राजा माननीय पुरुषों का आदर मान करे ॥ २ ॥

आ तिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ् छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥ ३ ॥

आऽतिष्ठन्तम् । परि । विश्वे । अभूषन् । श्रियम् । वसानः । चरति । स्वऽरोचिः । महत् । तत् । वृष्णः । असुरस्य । नाम । आ । विश्वऽरूपः । अमृतानि । तस्थौ ॥ ३ ॥

२—अभि । अभितः सर्वतः । **प्रेहि ।** प्रगच्छ । **मा अप वेनः ।** वेनतिः कान्तिकर्मा—निघ० २ । ६ । गतिकर्मा०—२ । १४ । अर्चतिकर्मा—३ । १४ । मापगच्छ । **उग्रः ।** तीव्रस्वभावः । **चेत्ता ।** चिती संज्ञाने—तृन् । चेतिता । ज्ञानवान् । **सपत्नहा ।** अ० १ । २९ । ५ । शत्रूणां हन्ता । **आतिष्ठ ।** राजासनं हस्त्यश्वादियानं च आरोह । **मित्रवर्धन । नन्दिग्रहिपचादि०** (पा० ३ । १ । १३४) इति वृधेर्ण्यन्तात्—ल्युः । हे मित्राणां वर्धयितः । **तुभ्यम् देवाः ।** विजिगीषवो विद्वांसः । **अधि ब्रुवन् ।** ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि—लङ् । अधि अब्रुवन् । अधिवचनम् अनुग्रहवचनम् उच्चारितवन्तः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(विश्वे) सब जनों ने (आतिष्ठन्तम्) [सिंहासन आदि पर] बैठते हुये राजा को (परि अभूषन्) सब प्रकार से अलंकृत वा प्राप्त किया है। (श्रियम्) राजलक्ष्मी को (वसानः) धारण करता हुआ, (स्वरोचिः) स्वयं प्रकाशमान वह (चरति) वर्त्तमान होता है। (वृष्णः) उस ऐश्वर्य वाले (असुरस्य) प्राणदाता का (तत्) वह (महत्) विशाल (नाम) नाम है। (विश्वरूपः) अनेक प्रकार के स्वभाव वाले उसने (अमृतानि) अनश्वर सुखों को (आ तस्थौ) प्राप्त किया है ॥ ३ ॥

भावार्थः—प्रजा गण सिंहासन पर बैठे हुये राजा को भेंट आदि देकर सेवा करें, और राजा यथायोग्य सबसे बर्त्ताव करके आनन्द प्राप्त करे ॥ ३ ॥

व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो महीः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥ ४ ॥

व्याघ्रः । अधि । वैयाघ्रे । वि । क्रमस्व । दिशः । महीः । विशः ।
त्वा । सर्वाः । वाञ्छन्तु । आपः । दिव्याः । पयस्वतीः ॥ ४ ॥

३ - **आतिष्ठन्तम् ।** सिंहासनादिकम् आरोहन्तम् । **परि** । परितः सर्वतः । **विश्वे** । विश्वे देवाः । सर्वे शूरविद्वांसः । **अभूषन् ।** भूष अलंकारे—लुङ् । यद्वा, भू प्राप्तौ छान्दसो लुङि सिप् । अलंकृतवन्तः । प्राप्तवन्तः । **श्रियम् ।** **क्विब् वचिप्रच्छिश्रिस्रु०** (उ० २ । ५७) इति श्रिञ् सेवायाम् - क्विप् दीर्घश्च । श्रयति पुरुषार्थिनं सा श्रीः । राजलक्ष्मीम् । सम्पत्तिम् । **वसानः ।** वस आच्छादने—लटः शानच् । धारयन् । **चरति ।** राज्यपालने वर्तते । **स्वरोचिः । वसो रुचेः संज्ञायाम्** (उ०२।१११) इति रुच दीप्तौ अभिप्रीतौ च—इसिः । स्वयं रोचमानो दीप्यमानः । स्वरुचिः, स्वतन्त्रः । **महत् ।** अधिकम् । विशालम् । **तत् ।** प्रसिद्धम् । **वृष्णः ।** अ० १ । १२ । १ । वर्षकस्य । ऐश्वर्ययुक्तस्य । इन्द्रस्य । **असुरस्य ।** अ० १ । १० । १ । दीप्यमानस्य । प्राणप्रदस्य । शूरस्य । **नाम ।** अ० १ । २४ । ३ । म्ना अभ्यासे—मनिन् । नामधेयम्, संज्ञा । **आ ।** समन्तात् । **विश्वरूपः ।** शत्रुमित्रकलत्रादिषु नानास्वभावः । यथायोग्यं वर्त्तमानः । **अमृतानि ।** अनश्वरसुखानि । **आ तस्थौ ।** आरूढवान् । प्राप्तवान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे राजन्] (व्याघ्रः) बाघ के समान पराक्रमी तू (वैयाघ्रे अधि) बाघ के स्वभाव में [स्थित होकर] (महीः दिशः) बड़ी दिशाओं को (वि क्रमस्व) विक्रम से जीत । (सर्वाः) सब (विशः) प्रजायें, और (दिव्याः) उत्तम (पयस्वतीः = ०—त्यः) सार वाली (आपः) जल धारायें (त्वा) तुझको (वाञ्छन्तु) चाहें ॥ ४ ॥

भावार्थः—राजा व्याघ्र के समान पराक्रमी और जल के समान उपकारी होवे, सब प्रजागण उससे प्रीति करें और राज्य में अनावृष्टि आदि न हो ॥ ४ ॥

या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम् ।
तासाँ त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वर्चसा ॥ ५ ॥

याः । आपः । दिव्याः । पयसा । मदन्ति । अन्तरिक्षे । उत । वा ।
पृथिव्याम् । तासाम् । त्वा । सर्वासाम् । अपाम् । अभि । सिञ्चामि । वर्चसा ॥५॥

भाषार्थः—(अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में की (उत वा) और भी (पृथिव्याम्) पृथिवी पर की (याः) जो (दिव्याः) दिव्य (आपः) जल धारायें (पयसा) अपने रस से (मदन्ति) [प्राणियों को] तृप्त करती हैं, (तासाम्)

४—व्याघ्रः । अ० ४ । ३ । १ । व्याघ्रो व्याघ्राणाद् व्यादाय हन्तीति वा निरु० ३ । १८ । लुप्तोपममेतत् । व्याघ्रवद् दुष्प्रधर्षः । **अधि** । उपरि उपविष्टः सन् । **वैयाघ्रे** । **तस्येदम्** (पा० ४ । ३ । १२०) इति व्याघ्र—अण् । **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां०** (पा० ७ । ३ । ३) इति यकारात् पूर्वम् ऐच् । व्याघ्रस्यायं स्वभावस्तस्मिन् । **विक्रमस्व** । **वेः पादविहरणे** (पा० १ । ३ । ४१) इति क्रमेरात्मनेपदम् । विक्रमेण शौर्येण व्याप्नुहि विजयस्व । **दिशः** । प्राच्याद्याः । **महीः** । महतीः । **विशः** । प्रजाः । **त्वा** । त्वां राजानम् । **सर्वाः** । **वाञ्छन्तु** । वाछि इच्छायाम् । स्वामित्वेन इच्छन्तु । **आपः** । जलानि । **दिव्याः** । दिवि भवः—यत् । उत्तमगुणयुक्ताः । **पयस्वतीः** । पयस्वत्यः । सारवत्यः ।

५—याः । **आपः** । जलधाराः । **दिव्याः** । श्रेष्ठाः । **पयसा** । रसेन । सारेण । **मदन्ति** । मद तृप्तियोगे । तर्पयन्ति प्राणिनः । **अन्तरिक्षे** । आकाशे वर्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन (सर्वासाम्) सब (अपाम्) जल धाराओं के (वर्चसा) बलदायक सार से (त्वा) तुझको (अभि षिञ्चामि) अभिषेक कराता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजगद्दी पर बैठने के समय राजा को औषधियों के रस से मिले हुये वृष्टि, नदी, कूप आदि के उत्तम जलों से स्नान करावें, जिससे उसका शरीर पुष्ट रहे और जल के समान वह अपने प्रजा को सुख पहुंचावे ॥ ५ ॥

अभि त्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याः पयस्वतीः ।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत् ॥ ६ ॥

अभि । त्वा । वर्चसा । असिचन् । आपः । दिव्याः । पयस्वतीः ।
यथा । असः । मित्रऽवर्धनः । तथा । त्वा । सविता । करत् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (त्वा) तुझको (दिव्याः) दिव्य (पयस्वतीः = ०—त्यः) सारयुक्त (आपः) जल धाराओं ने (वर्चसा) अपने बलदायक सार से (अभि असिचन्) सब प्रकार सींचा है, (यथा) जिससे तू (मित्रवर्धनः) मित्रों की वृद्धि करने वाला (असः) होवे। (सविता) सर्वप्रेरक परमेश्वर (त्वा) तुझको (तथा) वैसे गुण वाला [जैसा जल] (करत्) करे ॥ ६ ॥

भावार्थः—अभिषेक के उपरान्त सब लोग आशीर्वाद दें, हे राजन् ! तुझे यह अभिषेक वा स्नान इसलिये कराया है कि जैसे जल अन्न आदि उत्पन्न

माना: । **उत वा** । अपि वा । **पृथिव्याम्** । भूम्याम् अवस्थिताः । **तासाम्** । तथाविधानाम् । **त्वा** । राजानम् । **सर्वासाम्** । सर्वत्र व्याप्तानाम् । **अपाम्** । जलधाराणाम् । **अभि षिञ्चामि** । अभिषेकयुक्तं करोमि । **वर्चसा** । तेजसा । बलकरेण सारेण ॥

६—**अभि असिचन्** । षिच क्षरणे—लुङ् । अभिषेकयुक्तं कृतवत्यः । **त्वा** । राजानम् । **वर्चसा** । स्वकीयेन सारेण । **आपः** । **दिव्याः** । **पयस्वतीः** । पयस्वत्यः । सारवत्यः । **यथा** । येन प्रकारेण । **असः** । अस्तेर्लेटि अडागमः । त्वं भवेः । **मित्रवर्धनः** । म० २ । मित्राणां वर्धयिता । **तथा** । तेन प्रकारेण । जलवत्स्वभावेन । **सविता** । सर्वप्रेरको देवः परमेश्वरः । **करत्** । लेट् । कुर्यात् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके संसार का उपकार करता है, वैसे ही सर्वप्रेरक परमेश्वर के अनुग्रह से तू प्रजाप्रेरक होकर अपने हितैषी जनों की सदा उन्नति करता रहे ॥ ६ ॥

एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभगाय ।
समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्व १ न्तः ॥७॥

एना । व्याघ्रम् । परिऽसस्वजानाः । सिंहम् । हिन्वन्ति । महते । सौभगाय । समुद्रम् । न । सुऽभुवः । तस्थिऽवांसम् । मर्मृज्यन्ते । द्वीपिनम् । अप्ऽसु । अन्तः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(परिषस्वजानाः) सब ओर से चिपटे हुये लोग (एना = एनम्) इस (व्याघ्रम्) व्याघ्ररूप और (सिंहम्) सिंह समान [पराक्रमी राजा] को (महते) बहुत ही (सौभगाय) बड़े ऐश्वर्य के लिये (हिन्वन्ति) तृप्त करते हैं, और (सुभुवः) सुन्दर जन्म वा बड़ी भूमिवाले पुरुष (अप्सु अन्तः) जलों के भीतर (तस्थिवांसम्) स्थित हुये, (समुद्रम् न) समुद्र के समान [गम्भीर स्वभाव] और (द्वीपिनम्) चीते [के तुल्य पराक्रमी राजा] को (मर्मृज्यन्ते) अनेक प्रकार से शुद्ध करते वा सजाते हैं ॥ ७ ॥

७—एना । द्वितीयाटौस्स्वेनः (पा० २ । ४ । ३४) इति एतच्छब्दस्य एनादेशो द्वितीयायाम्[1] । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) इति विभक्तेः आच् । **चितः** (पा० ६ । १ । १६३) इति चित्वाद् अन्तोदात्तः । एनम् । **व्याघ्रम्** । व्याघ्रवत् पराक्रमयुक्तम् । **परिषस्वजानाः** । ष्वञ्ज परिष्वङ्गे–लिटः कानच् । आलिङ्गन्तः । परितः संगच्छमानाः पुरुषाः । **सिंहम् । सिचेः संज्ञायां हनुमौ कश्च** (उ० ५ । ६२) इति षिच क्षरणे कप्रत्ययः, चस्य हकारो नुम् च । यद्वा । आद्यन्तविपर्यये । हिंसि हिंसायाम्–अच् । हिनस्तीति सिंहः । पञ्चास्यः । सिंहः सहनाद्धिंसेर्वा स्याद् विपरीतस्य सम्पूर्वस्य वा हन्तेः संहाय हन्तीति वा–निरु० ३ । १८, सिंहतुल्यपराक्रमवन्तं राजानम् । **हिन्वन्ति** । हिवि प्रीणने । इदित्त्वान्नुम् । प्रीणयन्ति । तर्पयन्ति । **महते** । अधिकाय । **सौभगाय । सुभग मन्त्रे**[2], इति उदगात्रादिषु पाठाद् भावे अञ् । **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** (पा० ६ । १ । १९७) इति आद्युदात्तः ।

१. यहाँ सायणाचार्य ने जस् के स्थान में आच् आदेश लिखा है, जो कि अशुद्ध है ॥ सम्पा० ॥

२. द्र० काशि० ५ । १ । १२९ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—अभिषेक विधि के समाप्त हो चुकने पर सब बड़े बड़े लोग प्रशंसा करके राजा का उत्साह बढ़ावें और अलंकार आदि से उसको यथावत् शोभायमान करें ॥ ७ ॥

सूक्तम् ९ ॥

१—१० ॥ आञ्जनं देवता ॥ १, २, ४–१० अनुष्टुप् । ३ पथ्या पङ्क्तिः ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यारय्क्ष्यम् ।
विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥ १ ॥

आ । इहि । जीवम् । त्रायमाणम् । पर्वतस्य । असि । अक्ष्यम् ।
विश्वेभिः । देवैः । दत्तम् । परिऽधिः । जीवनाय । कम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(एहि) आ । (जीवम्) जीव को (त्रायमाणम्) पालता हुआ (पर्वतस्य) पूर्ति करने वाले वा अवयवों वाले मेघ के (अक्ष्यम्) व्यवहार के लिये हितकारक, (विश्वेभिः) सब (देवैः) दिव्य गुणों के साथ (दत्तम्) दिया हुआ (कम्) तू सुख स्वरूप ब्रह्म (जीवनाय) हमारे जीवन के लिये (परिधिः) परकोटा रूप (असि) है ॥ १ ॥

सुभगत्वाय । शोभनैश्वर्याय । **समुद्रम् न** । समुद्रवद् गम्भीरस्वभावम् । **सुभुवः** । सु+भू—क्विप् । शोभना भूरुत्पत्तिर्भूमिर्वा यस्य स सुभूः शोभनजन्मातः । यद्वा । शोभनभूमयः पुरुषाः । **तस्थिवांसम्** । ष्ठा गतिनिवृत्तौ—क्वसुः । स्थितवन्तम् । **मर्मृज्यन्ते** । मृजू शौचालंकारयोः । यङि निपातनादभ्यासस्य रुगागमः । पुनः पुनः, अत्यर्थं वा शोधयन्ति अलंकुर्वन्ति वा । **द्वीपिनम्** । द्वि+इ गतौ—पप्रत्ययः । द्वौ वर्णौ ईयते द्वीपं द्विवर्णं चर्म । **अत इनिठनौ** (पा० ५ । २ । ११५) इति इनिः । शार्दूलवद् अधृष्यं राजानम् । **अप्सु** । उदकेषु । **अन्तः** । मध्ये ॥

१—**एहि** । आगच्छ । **जीवम्** । **इगुपधज्ञा०** (पा० ३ । १ । १३५) इति जीव प्राणधारणे—कः । जीवति प्राणयतीति जीवः । प्राणिनम् । आत्मानम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर मेघ के समान जगत् की रक्षा करने वाला हमारे हृदयों में विराजमान होकर हमारा प्राणाधार है, ऐसा समझ कर हम पुरुषार्थ के साथ सुख प्राप्त करें ॥ १ ॥

परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि ।
अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥ २ ॥

परिऽपानम् । पुरुषाणाम् । परिऽपानम् । गवाम् । असि ।
अश्वानाम् । अर्वताम् । परिऽपानाय । तस्थिषे ॥ २ ॥

भाषार्थः—तू (पुरुषाणाम्) अग्रगामी मनुष्यों का (परिपाणम्) रक्षासाधन, और (गवाम्) गौओं का (परिपाणम्) रक्षा साधन (असि) है। और (अर्वताम्) शीघ्रगामी (अश्वानाम्) घोड़ों के (परिपाणाय) पूर्ण रक्षा के लिये (तस्थिषे) तू ही स्थित हुआ है ॥ २ ॥

त्रायमाणम् । त्रैङ् पालने—शानच् । पालयन् । **पर्वतस्य । भृमृदृशियजिपर्वि०** (उ० ३ । ११०) इति पर्व पूरणे—अतच् । यद्वा । पर्वतो मेघः—निघ० १ । १० । **पर्वमरुद्भ्यां तप् वक्तव्यः** (वा० पा० ५।२।१२२) इति पर्वन्—मत्वर्थे तप् । पर्ववान् पर्वतः पर्व पुनः पृणातेः प्रीणातेर्वा । निरु० १ । २० । इष्टपूरकस्य यद्वा अवयवयुक्तस्य मेघस्य । **असि ।** भवसि । **अक्ष्यम् । अशेर्देवने** (उ० ३।६५) इति अशूङ् व्याप्तौ—सः । अक्षो व्यवहारः । अक्ष—यत् । अक्षाय व्यवहाराय हितम् । **विश्वेभिः ।** सर्वैः । **देवैः ।** दिव्यगुणैः सह । **दत्तम् ।** हृदये समर्पितम् । **परिधिः । उपसर्गे घोः किः** (पा० ३ । ३ । ९२) इति परि+धाञ्—किः । परितो धीयते परिधिः प्राकारः । **जीवनाय ।** चिरकालजीवनार्थम् । **कम् ।** कचि दीप्तौ—डः । सुखस्वरूपं ब्रह्म ॥

२—परिपाणम् । पातेः करणे—ल्युट् । **वा भावकरणयोः** (पा० ८ । ४ । १०) इति विकल्पेन नस्य णः । परिरक्षणसाधनम् । **पुरुषाणाम् ।** अ० १।१६।४ । पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः पूरयतेर्वा पूरयत्यन्तरित्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य—निरु० २ । ३ । अग्रगामिनाम् । मनुष्याणाम् । **गवाम् ।** धेनूनाम् । **असि ।** भवसि । **अश्वानाम् ।** मार्गव्यापनशीलानां तुरङ्गाणाम् । **अर्वताम् । स्नामदिपद्यर्त्तिपृशकिभ्यो**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—वह परब्रह्म कृपा करके हमसे सब पदार्थों की रक्षा कराता है, इस कारण अभिमान छोड़कर हम पुरुषार्थ करते रहें ॥ २ ॥

उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन । उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ॥ ३ ॥

उत । असि । परिऽपाणम् । यातुऽजम्भनम् । आऽअञ्जन । उत । अमृतस्य । त्वम् । वेत्थ । अथो इति । असि । जीवऽभोजनम् । अथो इति । हरित ऽभेषजम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(उत) और (आञ्जन) हे संसार के व्यक्त करने वाले ब्रह्म ! तू (परिपाणम्) हमारी रक्षा का साधन, (यातुजम्भनम्) पीड़ाओं का नाश करने वाला (असि) है, (उत) और (त्वम्) तू (अमृतस्य) अमृत अर्थात् मोक्ष सुख का (वेत्थ) ज्ञाता है, (अथो) और भी तू (जीवभोजनम्) जीवों का पालने वाला (अथो) और भी (हरितभेषजम्) रोग से उत्पन्न पीतरंग की औषधि (असि) है ॥ ३ ॥

भावार्थः—संसार के कर्ता धर्ता परमेश्वर के उपकारों को देखकर मनुष्य प्रयत्न पूर्वक विद्यादि सुख साधनों की प्राप्ति से मोक्षानन्द भोगें ॥ ३ ॥

वनिप (उ० ४ । ११३) इति ऋ गतिप्रापणयोः—वनिप् । **अर्वणस्त्रसावनजः** (पा० ६ । ४ । १२७) इति नकारस्य तृ=तकारः । गन्तॄणाम् । शीघ्रगामिनाम् **परिपाणाय** । परिरक्षणाय । **तस्थिषे** । ष्ठा—लिट् । स्थितं बभूविथ त्वं ब्रह्म ॥

३—**उत** । अपि च । **असि** । भवसि । **परिपाणम्** । म० २ । परिरक्षण-साधनम् । **यातुजम्भनम्** । **कृवापाजिमि०** (उ० १।१) इति यत ताडने[1]—उण् । जभि नाशने—ल्युट् । यातूनां यातनानां पीडानां नाशनम् । **आञ्जन** । आङ् पूर्वाद् अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु—ल्युट् । आसमन्ताद् अनक्ति व्यनक्ति व्यक्तं करोति अव्यक्तं जगत् आञ्जनम् । तत्सम्बुद्धौ । हे यथावत् संसारस्य व्यक्तीकारक ब्रह्म । **अमृतस्य** । मोक्षस्य । परमानन्दस्य । **त्वम्** । **वेत्थ** । **विदो लटो वा** (पा०३।४।८३) इति थल् आदेशः । ज्ञाता भवसि । **अथो** । अपि च । **जीव-भोजनम्** । भुज पालनाभ्यवहारयोः—ल्युट् । जीवानां जीवतां प्राणिनां पालनम्

---

१. ताडनार्थक यत धातु धातुपाठादि में नहीं है । इस विषय में हमारी का० २ पृ० २७१ की टिप्पणी देखें ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ॥ ४ ॥

यस्य । आऽअञ्जन । प्रऽसर्पसि । अंगम्ऽअंगम् । परुःऽपरुः ।
ततः । यक्ष्मम् । वि । बाधसे । उग्रः । मध्यमशीःऽइव ॥ ४ ॥

भाषार्थः--(आञ्जन) हे संसार के प्रकट करने वाले ब्रह्म ! तू (यस्य) जिसके (अङ्गमङ्गम्) अङ्ग अङ्ग में और (परुष्परुः) जोड़ जोड़ में (प्रसर्पसि) व्याप जाता है, (ततः) उस पुरुष से (यक्ष्मम्) राजरोग को (विबाधसे) तू सर्वदा हटा देता है, (इव) जैसे (उग्रः) प्रबल (मध्यमशीः) बिचौलिया पुरुष ॥ ४ ॥

भावार्थः--जो पुरुष पूर्ण भक्ति से परमात्मा को अपने रोम २ में व्यापक जानकर पुरुषार्थ करता है। परमात्मा उसके सब विघ्नों का नाश कर देता है, जैसे सद्वैद्य बड़े बड़े रोगों को, और नीति कुशल मध्यस्थ राजा आदि वादी और प्रतिवादी के टंटों को मिटा देता है ॥ ४ ॥

नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभि शोचनम् ।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥ ५ ॥

हरितभेषजम् । हृश्याभ्यामितन् (उ० ३ । ९३) इति हृञ् हरणे--इतन् । हरति सुखमिति हरितः, भेषं रोगं जयतीति भेषजम् । भेष + जि--डः । हरितस्य रोगजनितस्य पीतवर्णस्यौषधम् । तद्वद् उपकारम् ॥

४ यस्य । पुरुषस्य । **आञ्जन** । हे सम्यक् संसारस्य व्यक्तीकारक ब्रह्म । **प्रसर्पसि** । प्रकर्षेण व्याप्नोषि । **अङ्गमङ्गम्** । प्रत्येकमङ्गम् । **परुष्परुः** । **अर्त्तिपॄवपि०** (उ० २ । ११७) इति पॄ पालनपूरणयोः--उसिः । प्रत्येकपरुः । प्रत्येकग्रन्थिम् । **ततः** । तस्मात् पुरुषात् । **वि बाधसे** । विविधं निवारयसि । **यक्ष्मम्** । अ० २ । १० । ५ । राजरोगम् । क्षयम् । **उग्रः** । उद्गूर्णबलः । प्रबलः । **मध्यमशीः । क्विप् च** (पा० ३ । २ । ७६) इदि मध्यम + शीङ्-क्विप् । मध्यदेशे शेते वर्तते सः । वादिप्रतिवादिनोर्वाक्यादिविषयविमर्शपूर्वकं तत्वनिर्णायकः । मध्यवेत्ता । मध्यस्थः । **इव** । यथा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न । एनम् । प्र । आप्नोति । शपथः । न । कृत्या । न । अभिऽशोचनम् । न । एनम् । विऽस्कन्धम् । अश्नुते । यः । त्वा । बिभर्ति । आऽअञ्जन ॥५॥

भाषार्थः—(न) न तो (एनम्) इस [पुरुष] को (शपथः) क्रोध वचन, (न) न (कृत्या) हिंसा क्रिया और (न) न (अभिशोचनम्) महा-शोक (प्राप्नोति) पहुंचता है, और (न) न (एनम्) इसको (विष्कन्धम्) विघ्न (अश्नुते) व्यापता है, (यः) जो [पुरुष] (आञ्जन) हे संसार को व्यक्त करने वाले ब्रह्म ! (त्वा) तुझको (बिभर्ति) धारण करता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण से परमात्मा को आत्मा में स्थिर करता है, उसको आध्यात्मिक शान्ति होने से आधिभौतिक और आधिदैविक शान्ति भी मिलती है ॥ ५ ॥

असन्मन्त्राद् दुष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत ।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन ॥ ६ ॥

असत्ऽमन्त्रात् । दुःऽस्वप्न्यात् । दुःऽकृतात् । शमलात् । उत । दुःऽहार्दः । चक्षुषः । घोरात् । तस्मात् । नः । पाहि । आऽअञ्जन ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(आञ्जन) हे संसार के व्यक्त करने वाले ब्रह्म ! तू (असन्म-

---

५—**न** । नहि । **एनम्** । पुरुषम् । **प्राप्नोति** । गच्छति । **शपथः** । **शीङ्-शपिरुगमि०** (उ० ३।११३) इति शप आक्रोशे-अथप्रत्ययः । मिथ्यापवादः । उपद्रवः । क्रोधवचनम् । **कृत्या** । **विभाषा कृवृषोः** (पा० ३ । १ । १२०) इति कृञ् हिंसायाम्—क्यप्, तुक्, टाप् च । हिंसाक्रिया । **अभिशोचनम्** । शुच शोके-ल्युट् । इष्टवियोगानुचिन्तनम् । चित्तविकलता । **विष्कन्धम्** । अ० १ । १६ । ३ । विशेषेण शोषकः । विघ्नः । **अश्नुते** । व्याप्नोति । **यः** । आत्मा । **त्वा** । त्वाम् । **बिभर्ति** । आत्मनि धारयति । **आञ्जन** । म० ३ । हे जगतो व्यक्तीकारक ब्रह्म ! ।

६—**असन्मन्त्रात्** । असत् + मत्रि गुप्तभाषणे-अत्र् । मन्त्रा मननात्-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्त्रात्) असत्य भाषण से (दुःस्वप्न्यात्) बुरी निद्रा में उठे हुए कुविचार से, (दुष्कृतात्) दुष्ट कर्म से, (शमलात्) अशुद्धता से (उत) और (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले (घोरात्) घोर वा भयानक (चक्षुषः) नेत्र से (तस्मात्) इस सबसे (नः) हमें (पाहि) बचा ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के सहाय से प्रयत्न करें कि वे कभी मिथ्या न बोलें, स्वप्न में बुरा विचार न करें, और दुष्कर्मों से बच कर शुद्ध आचरण रक्खें तथा नेत्र आदि इन्द्रियों से कुचेष्टा न करें ॥ ६ ॥

इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।
सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥ ७ ॥

इदम् । विद्वान् । आऽअञ्जन । सत्यम् । वक्ष्यामि । न । अनृतम् । सनेयम् । अश्वम् । गाम् । अहम् । आत्मानम् । तव । पुरुष ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(आञ्जन) हे संसार के व्यक्त करने वाले ब्रह्म ! तेरे (इदम्) परम ऐश्वर्य को (विद्वान्) जानता हुआ मैं (सत्यम्) सत्य (वक्ष्यामि) बोलूँगा, (अनृतम्) असत्य (न) नहीं । (पूरुष = पुरुष) हे सबके अगुआ पुरुष,

---

निरु० ७ । १२ । असत्यभाषणात् । **दुष्वप्न्यात्** । दुःस्वप्नात् । दुर् दुष्टेषु स्वप्नेषु भवात् कुविचारात् । **दुष्कृतात्** । दुष्टकृतात् । पापात् । **शमलात्** । **शकिशम्योर्नित्** (उ० १ । ११२) इति शमु उपशमे-कलप्रत्ययः । अशुद्धव्यवहारात् । **उत** । अपि च । **दुर्हार्दः** । अ० २ । ७ । ५ । हार्दयतेः क्विपि णिलोपे रूपम् । दुष्टहृदययुक्तात् । **चक्षुषः** । नेत्रात् । **घोरात्** । क्रूरात् । **तस्मात्** । उपर्युक्तात् सर्वस्मात् । **नः** । अस्मान् । **पाहि** । रक्ष । **आञ्जन** । म० ३ । हे जगतो व्यक्तीकारक ब्रह्म ।

७—इदम् । इन्देः कमिन्नलोपश्च (उ० ४ । १५७) इति इदि परमैश्वर्य्ये कमिन्, नलोपः । परमैश्वर्यम् । महाप्रभुताम् । **विद्वान्** । अ० २ । १ । २ । विद ज्ञाने—शतृः । वसुरादेशः । जानन् । **सत्यम्** । यथार्थम् । **वक्ष्यामि** । वच—लृट् । वदिष्यामि । **न** । नहि । **अनृतम्** । असत्यम् । **सनेयम्** । षण सम्भक्तौ—लिङ् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमेश्वर ! (तव) तेरे [दिये हुए] (अश्वम्) घोड़े, (गाम्) गौ वा भूमि और (आत्मानम्) आत्मबल को (अहम्) मैं (सनेयम्) सेवन करूं ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा देख कर सदा सत्य ही बोले और पुरुषार्थ पूर्वक सब पदार्थों से उपकार लेवे ॥ ७ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्ध ऋ० १० । ९७ । ४ और यजु० १२ । ७८ में इस प्रकार है—

सनेयमश्वं गां वासं आत्मानं तव पूरुष ॥

हे पुरुष ! तेरे [दिये हुये] घोड़े, गौ वा भूमि वस्त्र और आत्मबल को सेवन करूं ॥

त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः ।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नामं ते पिता ॥ ८ ॥

त्रयः । दासाः । आऽअञ्जनस्य । तक्मा । बलासः । आत् ।
अहिः । वर्षिष्ठः । पर्वतानाम् । त्रिऽककुत् । नाम । ते । पिता ॥८॥

भाषार्थः—(तक्मा) जीवन को कष्ट देने वाला ज्वर, (बलासः) बल का गिराने वाला संनिपात, कफादि रोग, (आत्) और (अहिः) जीवों को मारने वाला सांप, (त्रयः) यह तीनों (आञ्जनस्य) संसार के व्यक्त करने वाले

संभजेयम् । **अश्वम्** । हयम् । **गाम्** । धेनुं भूमिं वा । **अहम्** । उपासकः । **आत्मानम्** । अ० १ । १८ । ३ । आत्मबलम् । पुरुषार्थम् । **तव** । तव प्रसादात् । **पूरुष** । म० २ । छान्दसो दीर्घः । हे अग्रगामिन् परमात्मन् ॥

८—**त्रयः** । त्रिसंख्याकाः । **दासाः** । **दंसेष्टनौ न आ च** (उ० ५ । १०) इति दसि दर्शने—टः । दंसयति पश्यतीति दासः । यद्वा । दासृ दाने—अच् । दासति ददाति आत्मानं स दासः । सेवकाः । **आञ्जनस्य** । म० ३ । जगतो व्यक्तीकारकस्य ब्रह्मणः । **तक्मा** । अ० १ । २५ । १ । कृच्छ्रजीवनकारी ज्वरः । **बलासः** । बल + असु क्षेपणे—अण् । बलमस्यति क्षिपतीति । श्लेष्मविकारः । **आत्** । अपि च । **अहिः** । अ० २ । ५ । ५ । आहन्ता । सर्पः । **वर्षिष्ठः** । **प्रियस्थिर०** (पा० ६ । ४ । १५७) इति वृद्धशब्दस्य—इष्ठनि वर्षि इत्यादेशः । वृद्धतमः । **पर्वतानाम्** । म० १ । पर्ववान् पर्वतः—निरु० १ । २० । पर्ववतां लोकानाम् । **त्रिककुत्** । त्रि +

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म के (दासाः) दास हैं। [हे आञ्जन, ईश्वर !] (वर्षिष्ठः) सबमें वृद्ध, (पर्वतानाम्) अवयव वाले स्थूल लोकों का (पिता) पालनकर्त्ता, (त्रिककुत्) तीन प्रकार के [आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] सुखों का पहुंचाने वाला यद्वा तीनों लोकों वा कालों में गति वाला (ते) तेरा (नाम) नाम है ॥ ८ ॥

भावार्थः—ईश्वरीय नियम तोड़ने वाले मनुष्यों को परमेश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से रोग आदि कष्ट देता है, और अपने आज्ञाकारियों को वह अत्यन्त सुख पहुंचाता है ॥ ८ ॥

यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि ।
यातूंश्च सर्वान् जम्भयत्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ९ ॥

यत् । आऽअञ्जनम् । त्रैककुदम् । जातम् । हिमऽवतः । परि ।
यातून् । च । सर्वान् । जम्भयत् । सर्वाः । च । यातुऽधान्यः ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(यत्) सबका पूजनीय वा पदार्थों की संगति करने वाला, (त्रैककुदम्) तीन प्रकार के [आध्यात्मिक आदि] सुखों के पहुंचाने वाले यद्वा तीनों लोकों वा कालों में गति वाले पुरुषों का ईश्वर, (जातम्) सबमें

क + कुत् । कं, सुखम्—निघ० ३ । ६ । कवतेः गतिकर्मा—निघ० २ । १४ । कुङ् शब्दे-क्विप्, तुक् च । अन्तर्भावितण्यर्थः । आध्यात्मिकादीनि त्रीणि कानि सुखानि कावयति गमयति स त्रिककुत् । यद्वा । **मृग्रोरुतिः** (उ० १ । ९४) इति त्रि + ककि गतौ—उतिः । त्रिषु लोकेषु कालेषु वा ककुद् गतिर्यस्य सः । **नाम** । संज्ञा । **ते** । तव । **पिता** । सर्वस्य पाता पालयिता वा ॥

९—यत् । त्यजितनियजिभ्यो डित् (उ० १ । १३२) इति यज देवपूजा-सङ्गतिकरणदानेषु—अदिः, स च डित् । यजनीयं पूजनीयम् । पदार्थानां सङ्गति-कारकम् । **आञ्जनम्** । म० ३ । लोकानां व्यक्तीकारकम् ब्रह्म । **त्रैककुदम्** । **तस्येश्वरः** (पा० ५ । १ । ४२) इति बाहुलकात् त्रिककुद्—अण् । त्रिककुद्—इति व्याख्यातम् म० ८ । त्रिककुदाम् आध्यात्मादित्रिप्रकारस्य सुखस्य प्राप-कानां, यद्वा, त्रिषु लोकेषु कालेषु गतिवतां मनुष्याणां ईश्वरम् । **जातम्** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध, (हिमवतः) हिंसा वाले कर्म से (परि) पृथक् वर्तमान, (आञ्जनम्) संसार का व्यक्त करने वाला ब्रह्म (सर्वान्) सब (यातून्) पीड़ा देने वाले दुष्टों (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः =०—नीः) पीड़ा देने वाली शत्रु सेनाओं को (च) भी (जम्भयत्) नाश करने वाला है ॥ ९ ॥

भावार्थः—जो पुण्यात्मा पुरुष विद्या बल से सब प्रकार के सुखों को पहुंचाते, और तीनों द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष लोकों, और तीनों भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालों के वृत्तान्त जानते हैं, वे परब्रह्म की छत्र छाया में रह कर सब विघ्नों को हटा कर आनन्द भोगते हैं ॥ ९ ॥

यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे ।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन ॥ १० ॥

यदि । वा । असि । त्रैककुदम् । यदि । यामुनम् । उच्यसे । उभे इति । ते । भद्रे इति । नाम्नी इति । ताभ्याम् । नः । पाहि । आऽअञ्जन ॥ १० ॥

भाषार्थः—(यदि वा) चाहे तू (त्रैककुदम्) तीन प्रकार के [आध्यात्मिक आदि] सुखों के पहुंचाने वाले, यद्वा तीनों लोकों वा कालों में गति वाले पुरुषों का ईश्वर (असि) है, (यदि=यदि वा) चाहे तू (यामुनम्) यमों, नियन्ताओं, न्यायकारियों का हितकारी (उच्यसे) कहा जाता है, (उभे) दोनों (ते) तेरे (नाम्नी) नाम (भद्रे) कल्याण कारक हैं, (आञ्जन) हे

सर्वत्र प्रादुर्भूतम् । **हिमवतः । हन्तेर्हिं च** (उ० १ । १४७) इति हन हिंसागत्योः मक्, हिरादेशः । मतुप् । हिंसायुक्तात् कर्मणः । **परि** । वर्जने । पृथग् वर्तमानम् । **यातून् । कृवापा०** (उ० १ । १) इति यत ताडने[1]—उण् । पीडकान् राक्षसान् । **सर्वान्** । अशेषान् । **जम्भयत्** । नाशयद् वर्तते । **सर्वाः । च । यातुधान्यः** । अ० १ । २८ । २ । शसः स्थाने जस् । यातुधानीः । पीड़ादायिनीः शत्रुसेनाः ॥

१०—यदि वा । अथवा । **असि** । भवसि । **त्रैककुदम्** । व्याख्यातम् म०९ । **यदि** । अथवा । **यामुनम्** । **अजियमिशीङ्भ्यश्च** (उ० ३ । ६१) इति यम नियमने—उनन् । यमयतीति यमुनः । **तस्मै हितम्** (पा० ५ । १ । ५) इति अण् ।

---

१. देखें काण्ड २ पृ० २७१ में टिप्पणी ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार के व्यक्त करने वाले ब्रह्म ! (ताभ्याम्) उन दोनों से (नः पाहि) हमारी रक्षा कर ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के उत्तम उत्तम गुणों का चिन्तन करके पुरुषार्थ के साथ दुष्कर्मों से बच कर सदा आनन्द भोगें ॥ १० ॥

सूक्तम् १० ॥

१—७ । शङ्खो देवता ॥ १—५ अनुष्टुप्, ६ पथ्या पङ्क्तिः ७ पञ्चपदा त्रिष्टुप् ॥

विघ्ननिवारणायोपदेशः—विघ्नों के हटाने के लिये उपदेश ।

वातांज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि ।
स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः ॥ १ ॥

वातात् । जातः । अन्तरिक्षात् । विऽद्युतः । ज्योतिषः । परि ।
सः । नः । हिरण्यऽजाः । शङ्खः । कृशनः । पातु । अंहसः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(वातात्) पवन से, (अन्तरिक्षात्) आकाश से (विद्युतः) बिजुली से, और (ज्योतिषः) सूर्य से, (परि) ऊपर (जातः) प्रकट होने वाला (सः) दुःख नाशक ईश्वर (हिरण्यजाः) सूर्यादि तेजों का उत्पन्न करने वाला, (कृशनः) सूक्ष्म रचना करने वाला, (शङ्खः) सबों का विवेचन करने वाला

यमुनेभ्यो यमेभ्यो न्यायकारिभ्यो हितम् । **उच्यसे** । त्वं कथ्यसे । **उभे** । त्रैककुदं यामुनमिति । **ते** । तव । **भद्रे** । कल्याणकरे । **नाम्नी** । नामनी, संज्ञे । **ताभ्याम्** । नामभ्याम् । **नः** । अस्मान् । **पाहि** । रक्ष । **आञ्जन** । म० ३ । हे संसारस्य व्यक्तीकारक, ब्रह्म ॥

१—**वातात्** । अ० १ । ११ । ६ । वायुसकाशात् । **जातः** । प्रादुर्भूतः । **अन्तरिक्षात्** । अ० १ । ३० । ३ । सर्वमध्ये दृश्यमानात् । आकाशात् । **विद्युतः** । **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जि०** (पा० ३ । २ । १७७) इति वि + द्युत दीप्तौ—क्विप् । विद्योतमानायाः । तडितः सकाशात् । **ज्योतिषः** । अ० १ । ९ । १ । दीप्यमानात् । सूर्यात् । **परि** । अधि । उपरि भागे जातः । **पञ्चम्याः परावध्यर्थे** (पा० ८ । ३ । ५१) इति विसर्जनीयस्य सत्वम् । **सः** । षो अन्तकर्मणि—डः । दुःखनाशकः । विष्णुः । ईश्वरः । **नः** । अस्मान् । **हिरण्यजाः** । हिरण्यम् । अ० १ । ९ । २ । **जन-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा देखने वाला, वा शान्ति देने वाला परमेश्वर (नः) हमको (अंहसः) रोग-जनक दुष्कर्म से (पातु) बचावे ॥ १ ॥

भावार्थः—परमेश्वर संसार के सब सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों का रचने वाला और हमारे गुप्त प्रकट कर्मों का देखने और विचारने वाला है, उसका सदा ध्यान करके हम दुष्कर्मों से बचकर सत्कर्म करते रहें ॥ १ ॥

यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे ।
शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्रिणो वि षहामहे ॥ २ ॥

यः । अग्रतः । रोचनानाम् । समुद्रात् । अधि । जज्ञिषे ।
शङ्खेन । हत्वा । रक्षांसि । अत्रिणः । वि । सहामहे ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यः = यः त्वम्) जो तू (रोचनानाम्) प्रकाशमान लोकों के (अग्रतः) आगे और (समुद्रात्) जल समूह समुद्र से भी (अधि) ऊपर [देश-और काल में] (जज्ञिषे) प्रकट हुआ था, [उस तुझ] (शङ्खेन) सबों के विवेचन करने वाले, वा देखने वाले, वा शान्ति देने वाले, परमेश्वर [के आश्रय]

सनखन० (पा० ३ । २ । ६७) इति जन जनने, वा जनी प्रादुर्भावे—विट् । **विड्वनो-रनुनासिकस्यात्** (पा० ६ । ४ । ४१) इति आत्त्वम् । हिरण्यानां तेजसां सूर्यादीनां सुवर्णादिधनानां च जनयिता । **शङ्खः । शमेः खः** (उ० १ । १०२) इति शम आलोचने = विवेचने । यद्वा । शमो दर्शने । यद्वा । शमु उपशमे = शान्तीकरणे—खप्रत्ययः । सर्वेषां विवेचको विचारकर्त्ता दर्शको शान्तिदायको वा परमेश्वरः । **कृशनः । कृपृवृजि०** (उ० २ । ८१) इति कृश तनूकरणे—क्युः । कृशनं हिरण्य-म्—निघ० १ । २ । रूपम् निघ० ३ । ७ । तनूकर्ता । सूक्ष्मरचयिता । **पातु ।** रक्षतु । **अंहसः । अमेर्हुक् च** (उ० ४ । २१३) इति अम रोगे गतौ च—असुन् हुक् च । पापात् ॥

२—यः । हे शङ्ख ! यस्त्वम् । **अग्रतः ।** अग्रे । आदौ । **रोचनानाम् । अनुदा-त्तेतश्च हलादेः** (पा० ३ । २ । १४९) इति रुच दीप्तौ—युच् । प्रकाशमानानां नक्षत्रादीनाम् । **समुद्रात् ।** जलसमूहात् । **अधि ।** उपरि देशे काले च । **जज्ञिषे ।** जनी—लिट् । त्वं प्रादुर्बभूविथ । **शङ्खेन ।** म० १ । सर्वेषां विवेचकेन दर्शकेन शा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (रक्षांसि) जिनसे रक्षा की जावे उन राक्षसों को (हत्वा) मारकर (अत्रिणः) पेटार्थियों को (वि) विविध प्रकार से (सहामहे) हम दबाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थः---सर्वदा सर्वोपरि विराजमान परमेश्वर की महिमा और उपकारों को विचारकर, हम लोग कुव्यवहार से बचकर पुरुषार्थ के साथ आनन्द भोगें ॥ २ ॥

शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः ।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ॥ ३ ॥

शङ्खेन । अमीवाम् । अमतिम् । शङ्खेन । उत । सदान्वाः ।
शङ्खः । नः । विश्वऽभेषजः । कृशनः । पातु । अंहसः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(शङ्खेन) सबों के विचार करने वाले परमेश्वर से (अमीवाम्) अपनी पीड़ा और (अमतिम्) कुमति को (उत) और भी (शङ्खेन) सबों के देखने वाले परमेश्वर से (सदान्वाः) सदा चिल्लाने वाली, यद्वा, दानवों, दुष्टों के साथ रहने वाली निर्धनता आदि विपत्तियों को [विषहामहे म० २] [हम दबाते हैं म० २]। (शङ्खः) शान्ति देने वाला, (विश्वभेषजः) सब भय का जीतने वाला, (कृशनः) सूक्ष्म रचना करने वाला परमात्मा (नः) हमको (अंहसः) पाप से (पातु) बचावे ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्य जगदीश्वर के सर्वोपकारक गुणों को विचारता हुआ प्रयत्न करके दुष्कर्मों से अपनी रक्षा करे ॥ ३ ॥

न्तिदायकेन वा परमेश्वरेण । **हत्वा** । नाशयित्वा । **रक्षांसि** । अ० १ । २१ । ३ । राक्षसान् । शत्रून् । **अत्रिणः** । अ० १ । ७ । ३ । अद भक्षणे-त्रिनिः । भक्षणशीलान् । उदरपोषकान् । **वि** । विशेषेण । **सहामहे** । अभिभवामः ॥

३--शङ्खेन । म० १ तथा २ । **अमीवाम्** । **इण्शीभ्यां वन्** (उ०१।१५२) इति अम रोगे-वन् । ईडागमः । टाप् । पीडाम् । रोगम् । **अमतिम्** । कुमतिम् । अज्ञानम् । **उत** । अपि च । **सदान्वाः** । अ० २ । १४ । १ । सदा नोनूयमानाः शब्दायमानाः । यद्वा । सदानवाः, दानवैः सह वर्तमाना दरिद्रतादिविपत्तीः, "विषहामहे"-इत्यनुषज्यते—म० २ । **शङ्खः** । म० १ । **नः** । अस्मान् । **विश्वभेषजः** । अ० २ । ४ । ३ । सर्वभयजेता । सर्वौषधः । **कृशनः पातु अंहसः** । व्याख्यातं म० ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः ।
स नो हिरण्यजाः शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः ॥ ४ ॥

दिवि । जातः । समुद्रऽजः । सिन्धुतः । परि । आऽभृतः ।
सः । नः । हिरण्यऽजाः । शङ्खः । आयुःऽप्रतरणः । मणिः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(दिवि) सूर्यमण्डल में (जातः) प्रकट, (समुद्रजः) अन्तरिक्ष में प्रकट, (सिन्धुतः) पार्थिव समुद्र से (परि) ऊपर (आभृतः) सर्वथा पुष्टि को प्राप्त, (सः) दुःखनाशक, (हिरण्यजाः) सूर्यादि तेजों का उत्पन्न करने वाला, (शङ्खः) शान्तिकारक, (मणिः) प्रशंसा योग्य परमेश्वर (नः) हमारा (आयुष्प्रतरणः) जीवन बढ़ाने वाला है ॥ ४ ॥

भावार्थः—परमात्मा सबके ऊपर, नीचे, मध्य में विराजमान होकर अपनी न्याय व्यवस्था से हमारे उत्तम कर्मों के अनुसार हमें उत्तम फल देता है ॥ ४ ॥

समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः ।
सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ॥ ५ ॥

समुद्रात् । जातः । मणिः । वृत्रात् । जातः । दिवाऽकरः ।
सः । अस्मान् । सर्वतः । पातु । हेत्याः । देवऽअसुरेभ्यः ॥ ५ ॥

भाषार्थः— (वृत्रात्) ढकने वाले मेघ से (जातः) प्रकट हुये (दिवाकरः)

४—**दिवि** । द्युलोके सूर्यमण्डले । **जातः** । प्रादुर्भूतः । वर्तमानः । **समुद्रजः** । सप्तम्यां जनेर्डः (पा० ३ । २ । ९७) इति डप्रत्ययः । अन्तरिक्षे प्रत्यक्षः । **सिन्धुतः** । पार्थिवजलौघात् । **परि** । म० १ । दुःखनाशकः ईश्वरः । **आभृतः** । समन्तात् पुष्टिं प्राप्तः । **सः** । म० १ । अधि । उपरि । **नः** । अस्माकम् । अस्मभ्यम् । **हिरण्यजाः** । म० १ । तेजसां जनयिता । **शङ्खः** । म० १ । शान्तिकारकः । **आयुष्प्रतरणः** । आयुषो जीवनस्य प्रवर्धयिता । **मणिः** । अ० १ । २९ । १ । रत्नम् । प्रशंसनीयः परमेश्वरः ॥

५—**समुद्रात्** । अन्तरिक्षात् । अन्तरिक्षस्थलोकजातात् । **जातः** । प्रादु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य [के समान] (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (जातः) प्रकट हुआ, (मणिः) प्रशंसा योग्य (सः) दुःखनाशक, विष्णु (अस्मान्) हमको (सर्वतः) सब ओर से (हेत्या) अपने वज्र द्वारा (देवासुरेभ्यः) देवताओं के गिराने वाले शत्रुओं से (पातु) बचावे ॥ ५ ॥

भावार्थः—जैसे सूर्य मेघ मंडल से निकल कर देदीप्यमान होता है, इसी प्रकार परमात्मा अन्तरिक्षस्थ प्रत्येक पदार्थ से विज्ञानियों को प्रकाशमान दीखता है। वह जगदीश्वर दुष्टों को दंड और शिष्टों को आनन्द देता है ॥ ५ ॥

हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे। रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्रण आयूंषि तारिषत् ॥ ६ ॥

हिरण्यानाम्। एकः। असि। सोमात्। त्वम्। अधि। जज्ञिषे। रथे। त्वम्। असि। दर्शतः। इषुऽधौ। रोचनः। त्वम्। प्र। नः। आयूंषि। तारिषत् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(हिरण्यानाम्) सूर्यादि तेजों के बीच तू (एकः) एक (असि) है, (त्वम्) तू (सोमात्) सूर्य लोक से (अधि) ऊपर (जज्ञिषे) प्रकट हुआ था, (त्वम्) तू (रथे) रथ में (दर्शतः) दृश्यमान और (त्वम्)

भूतः। उत्पन्नः। **मणिः**। म० ४। प्रशंसनीयः परमेश्वरः। **वृत्रात्**। अ० २। ५। ३। आवरकाद् मेघात्। **दिवाकरः**। **दिवाविभानिशा०** (पा० ३। २। २१) इति दिवा + कृञ् करणे—टः। दिवा दिनं करोतीति। सूर्यः। लुप्तोपममेतत्। तद्वत् प्रभातिशययुक्तः परमेश्वरः। **सः**। म० १। दुःखनाशक ईश्वरः। **अस्मान्**। वेदानुगामिनः पुरुषान्। **सर्वतः**। सर्वस्मादुपद्रवात्। **पातु**। रक्षतु। **हेत्या**। अ० १। १३। ३। वज्रम्—निघ० २। २०। **देवासुरेभ्यः**। **असेरुरन्** (उ० १। ४२) इति असु क्षेपणे—उरन्। अस्यति क्षिपति देवान् सोऽसुरः। देवानां धर्मात्मनाम् असुरेभ्यः क्षेपकेभ्यः सकाशात् ॥

६—हिरण्यानाम्। अन्धकारहरणशीलानां सूर्यादितेजसां मध्ये। **एकः**। अद्वितीयः। **असि, सोमात्**। सोमः सूर्यः, प्रसवनात्—निरु० १४। १२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू (इषुधौ) तूणीर में (रोचनः) प्रकाशमान (असि) है। [आप] (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्रतारिषत्) बढ़ावें ॥ ६ ॥

भावार्थः—अद्वितीय प्रकाशस्वरूप परमात्मा सूर्यादि लोकों से काल और विस्तार में बड़ा है, वही रथारूढ़ और बाणधारी शूर को रणक्षेत्र में बल देता है, उसी जगदीश्वर के आश्रय से हम अपना जीवन धार्मिक बनाकर आनन्द भोगें ॥ ६ ॥

देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्व१न्तः।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय
कार्शनस्त्वाभि रक्षतु ॥ ७ ॥

देवानाम् । अस्थि । कृशनम् । बभूव । तत् । आत्मन्ऽवत् । चरति । अप्ऽसु । अन्तः । तत् । ते । बध्नामि । आयुषे । वर्चसे । बलाय । दीर्घायुऽत्वाय । शतऽशारदाय । कार्शनः । त्वाः । अभि । रक्षतु ॥ ७ ॥

भावार्थः—(कृशनम्) सूक्ष्म रचना करने वाला ब्रह्म (देवानाम्) दिव्य गुणों और प्रकाशमान पदार्थों का (अस्थि) प्रकाशक (बभूव) हुआ था।

सूर्यलोकात्। **त्वम्** । **अधि** । उपरि देशे काले च। **जज्ञिषे** । प्रादुर्भूविथ। **रथे** । **हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्** (उ० २। २) इति रमु क्रीडायाम् क्थन्। रथो रंहतेर्गतिकर्मणः स्थिरतेर्वा स्यात् विपरीतस्य रममाणोऽस्मिंस्तिष्ठतीति वा रपतेर्वा रसतेर्वा—निरु० ९।११। रमणीये याने। रथारूढे, इत्यर्थः। **त्वम् असि** । **दर्शतः** । **भृमृदृशि०** (उ० ३ । ११०) इति दृशिर् प्रेक्षणे—अतच्। दृश्यमानः। **इषुधौ** । अ० ३। २३। २। वाणाधारे। तूणीरे। **रोचनः** । रोचमानः। दीप्यमानः। **नः** । अस्माकम्। **आयूंषि** । जीवनानि। **प्रतारिषत्** । अ० २। ४। ६। लेटि रूपम्। प्रवर्धयेत्, भवान् इति शेषः॥

७—देवानाम् । दिव्यगुणानां प्रकाशमानानां पदार्थानां च । **अस्थि** । **असिसञ्जिभ्यां क्थिन्** (उ० ३। १५४) इति असु क्षेपणे। यद्वा। अस गतिदीप्त्यादानेषु—क्थिन्। प्रदीपकं प्रकाशकम्। **कृशनम्** । म० १। सूक्ष्मकारकं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तत्) विस्तृत ब्रह्म (अप्सु अन्तः) अन्तरिक्ष के भीतर [ठहरे हुये] (आत्मन्वत्) आत्मा वाले जगत् में (चरति) विचरता है। [हे प्राणी !] (तत्) उस ब्रह्म को (ते) तेरे (आयुषे) लाभ के लिये, (वर्चसे) तेज वा यश के लिये (बलाय) बल के लिये, और (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले (दीर्घायुत्वाय) चिरकाल जीवन के लिये [अन्तः करण के भीतर] (बध्नामि) मैं बांधता हूं। (कार्शनः) अनेक सुवर्णादि धनों और तेजों वाला परमेश्वर (त्वा) तुझको (अभि) सब प्रकार (रक्षतु) पाले ॥ ७ ॥

भावार्थः—विश्वकर्मा ब्रह्म ने बुद्धि आदि गुण और मनुष्य शरीर आदि दिव्य पदार्थ रचे हैं, वही सबमें रम कर जीवन शक्ति दे रहा है, उसी को मनुष्य हृदय में धारण करके पुरुषार्थ के साथ यशस्वी होकर आनन्द भोगें ॥ ७ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ।

ब्रह्म । **तत्** । विस्तृतम् ब्रह्म । **आत्मन्वत्** । आत्मन्—मतुप् । **मादुपधायाश्च०** (पा० ८ । २ । ९) इति वत्वम् । **अनो नुट्** (पा० ८ । २ । १६)इति नुट् । सात्मकं स्थावरजङ्गमात्मकं जगत् । **चरति** । गच्छति व्याप्नोति । **अप्सु** । अन्तरिक्षे—निघ० १ । ३ । **तत् ते ····शतशारदाय** । व्याख्यातम्—अ० १ । ३५ । १ । **तत्** । प्रसिद्धम् । **ते** । तव । **बध्नामि** । धारयामि । **आयुषे** । आयाय । लाभाय । **वर्चसे** । तेजसे ! यशसे । **बलाय** । पराक्रमाय । **दीर्घायुत्वाय** । चिरकालजीवनाय । **शतशारदाय** । शतशरदृतुयुक्ताय । शतसंवत्सरयुक्ताय । **कार्शनः** । कृशनः—म० १ । कृशनं हिरण्यम्—निघ० १ । २ । रूपम्—निघ० ३ । ७ । **तस्येदम्** (पा० ४ । ३ । १२०) इति कृशन—अण् । कृशनानि हिरण्यानि सुवर्णादिधनानि तेजांसि च यस्य स कार्शनः । **त्वा** । प्राणिनम् । **अभि** । सर्वतः । **रक्षतु** । । पालयतु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ तृतीयोऽनुवाकः

सूक्तम् ११ ॥

१–१२ ॥ अनड्वान् देवता ॥ १–६ त्रिष्टुप्, ७ षट्पदा त्रिष्टुप्, ८–१२ अनुष्टुप् ॥

ब्रह्मविद्या पुरुषार्थश्चोपदिश्येते । ब्रह्मविद्या और पुरुषार्थ का उपदेश ॥

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्व१न्तरिक्षम्। अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान् विश्वं भुवनमा विवेश ॥ १ ॥

अनड्वान् । दाधार । पृथिवीम् । उत । द्याम् । अनड्वान् । दाधार । उरु । अन्तरिक्षम् । अनड्वान् । दाधार । प्रऽदिशः । षट् । उर्वीः । अनड्वान् । विश्वम् । भुवनम् । आ । विवेश ॥ १ ॥

भाषार्थः— (अनड्वान्) प्राण जीविका पहुंचाने वाले परमेश्वर ने (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) सूर्य को (दाधार) धारण किया था। (अनड्वान्) प्राण और जीविका पहुँचाने वाले परमेश्वर ने (उरु) चौड़े (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक वा आकाश को (दाधार) धारण किया था। (अनड्वान्) प्राण और जीविका पहुंचाने वाले परमेश्वर ने (षट्) पूर्वादि, नीचे और उपकारी छह (उर्वीः) चौड़ी (प्रदिशः) महादिशाओं को (दाधार) धारण किया था। (अनड्वान्) प्राण और जीविका पहुँचाने वाले परमेश्वर ने (विश्वं भुवनम्) सब जगत् में (आ विवेश) सब प्रकार प्रवेश किया था ॥ १ ॥

१—**अनड्वान्। सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४। १८९) इति अन प्राणने-असुन्। 'अनो वायुरनितेरपि वोपमार्थे स्यादनस इव शकटादिव, अनः शकटमानद्धमस्मिंश्चीवरमनितेर्वा स्याज्जीवनकर्मण उपजीवन्त्येनन्मेघोऽप्यन एतस्मादेव'—निरु० ११। ४७। अनः प्राणं जीवनं वायुं मेघं शकटं वहति वा गमयतीति विग्रहे। **अनसि वहेः क्विप् अनसो डश्च**[1] (दश०उ०९।१०७) इति वहेः क्विप्, अनसः डश्चान्ता-

---

१. दशपादी उणादि का पाठ 'वहेः क्विबनसो डश्च' है। सूत्र का यह पाठ अम०को० रामाश्रमी टीका (अम० को० टी० २। ६। ५६) का है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—पुनरुक्ति निश्चय द्योतक हैं, अर्थात् एक परमात्मा ही सब जीवन साधन देकर सब पदार्थों को रचता है। संब मनुष्य भक्ति पूर्वक उसकी अपार महिमा को विचार कर सदा पुरुषार्थ करें ॥ १ ॥

अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे त्रयाञ्छक्रो विमिमीते अध्वनः। भूतं भविष्यद् भुवना दुहानः सर्वां देवानां चरति व्रतानि ॥ २ ॥

अनड्वान्। इन्द्रः। सः। पशुऽभ्यः। वि। चष्टे। त्रयान्। शक्रः। वि। मिमीते। अध्वनः। भूतम्। भविष्यत्। भुवना। दुहानः। सर्वा। देवानाम्। चरति। व्रतानि ॥ २ ॥

भाषार्थः—(सः) वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला (अनड्वान्) प्राण और जीविका पहुंचाने वाला परमेश्वर (पशुभ्यः) व्यक्त वाणी वाले और अव्यक्त वाणी वाले जीवों के लिये (वि) विविध प्रकार से (चष्टे) देखता है (शक्रः) वह समर्थ परमात्मा (त्रयान्) तीन अवयव [भूमि सूर्य और अन्तरिक्ष] वाले

देशः। **वचिस्वपियजादीनां किति** (पा० ६।१।१५) इति यजादित्वात् संप्रसारणम्। अनडुह् स् इति स्थिते। [1]आम्नुम्सुलोपेषु कृतेषु संयोगान्तलोपेन हकारलोपः। अनसः प्राणस्य जीवनस्य च वाहकः प्रापकः परमेश्वरः। **दाधार**। तुजादित्वाद् अभ्यासदीर्घत्वम्। धृतवान्। **पृथिवीम्**। भूमिम्। **उत**। अपि च। **द्याम्**। प्रकाशमानं सूर्यम्। **उरु**। विस्तीर्णम्। **अन्तरिक्षम्**। मध्यलोकम्। **प्रदिशः**। महादिशाः। **षट्**। प्राच्यादिनीचोच्चषट्संख्याकाः। **उर्वी**। विस्तीर्णाः। **विश्वं भुवनम्**। सर्वं जगत्। **आ विवेश**। सर्वतः प्रवृष्टवान्॥

२—अनड्वान्। म० १। अनसः प्राणस्य जीवनस्य च वाहकः। **इन्द्रः**। परमैश्वर्यवान्। **सः**। प्रसिद्धः। **पशुभ्यः**। अ० २। २६। १। व्यक्तवाग्भ्योऽव्यक्तवाग्भ्यो जीवेभ्यः—निरु० ११।२९। तेषां हिताय। **वि**। विविधम्। **चष्टे**। चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि दर्शने च। चष्टे पश्यतिकर्मा—निघ० ३। ११। पश्यति कथयति वा। **त्रयान्। संख्याया अवयवे तयप्** (पा० ५। २। ४२) इति तयप्। **द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा** (पा०५।२।४३) इति तयस्य अयच्। त्र्यवयववान्। **शक्रः**।

---

१. चतुरनडुहोरामु० (७। १। ९८) से आम् आगम तथा सावनडुहः (७। १। ८२) से नुम् आगम हुआ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अध्वनः) मार्गों को (वि) विशेष करके (मिमीते) नापता है। (भूतम्) भूत, (भविष्यत्) भविष्यत् और (भुवना = ०-नि) लोकों वा वर्त्तमान वस्तुओं, को (दुहानः) परिपूर्ण करता हुआ वह (देवानाम्) इन्द्रियों के (सर्वा व्रतानि) सब कामों को (चरति) सिद्ध करता है ॥ २ ॥

भावार्थः—परमेश्वर संसार के कर्मों का साक्षी होकर तीनों लोकों और तीनों कालों की सुधि रखता, और देखना आदि सब काम करता है ॥ २ ॥

इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर्घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः। सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद् यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥ २ ॥

इन्द्रः। जातः। मनुष्येषु। अन्तः। घर्मः। तप्तः। चरति। शोशुचानः। सुऽप्रजाः। सन्। सः। उत्ऽआरे। न। सर्षत्। यः। न। अश्नीयात्। अनडुहः। विऽजानन् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(तप्तः) तपते हुये (घर्मः) सूर्य के समान (शोशुचानः) अत्यन्त प्रकाशमान (इन्द्रः) परमेश्वर (मनुष्येषु अन्तः) मननशील मनुष्यों के

शक्तः समर्थः। **वि**। विशेषेण। **मिमीते**। माङ् माने शब्दे च। **भृञामित्** (पा० ७। ४। ७६) इत्यभ्यासस्य इत्वम्। परिमितान् करोति। **अध्वनः**। अ० १। ४। १। मार्गान्। **भूतम्**। गतम्। **भविष्यत्**। अनागतम्। **भुवना**। भुवनानि। लोकान् वर्तमानानि वस्तूनि वा। **दुहानः**। दुह प्रपूरणे—शानच्। प्रपूरयन्। **सर्वा**। सर्वाणि। **देवानाम्**। इन्द्रियाण्यत्र देवा उच्यन्ते—निरु० १३। ११। इन्द्रियाणाम्। **व्रतानि**। कर्माणि। **चरति**। करोति ॥

३—इन्द्रः। परमैश्वर्यवान्। **जातः**। प्रादुर्भूतः सन्। **मनुष्येषु**। अ० ३। ४। ६। मननशीलेषु। **अन्तः**। मध्ये। **घर्मः**। अ० ४। १। २। दीप्यमानः। घृणिः सूर्य इव। घर्मः, अहर्नाम—निघ० १।९। **तप्तः**। तापयुक्तः। **चरति**। संचरति। वर्तते। **शोशुचानः**। शुच दीप्तौ[1] यङन्तात् शानच्। देदीप्यमानः। **सुप्रजाः**। उत्तमान् पुत्रपौत्रभृत्यादीन्। **सन्**। अस भुवि—शतृः। विद्यमानः पुरुषः। **सः**।

---

१. शुचिः शोचतेर्ज्वलतिकर्मणः। अयमपीतरः शुचिरेतस्मादेव। निष्विक्तमस्मात् पापकमिति नैरुक्ताः (निरु० ६। १) इस प्रमाण से यहाँ दीप्ति अर्थ किया है। धातुवृत्ति आदि में तो शुच शोके ही पठित है। शतपथ में कहा है—ऐतौ (शुक्रश्च शुचिश्च) एव ग्रैष्मौ (मासौ) स यदेतयोर्बलिष्ठं तपति तेनो हैतौ शुक्रश्च शुचिश्च (श. ब्रा. ४। ३। १। १५)। अथवा पवित्रता में दीप्ति सम्भव ही है, यह मानकर 'ईशुचिर पूतिभावे' से यहां शानच् हो सकता है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर (जातः) प्रकट होकर (चरति) विचरता है। (यः) जो पुरुष (अनड्वहः) प्राण और जीविका पहुँचाने वाले परमेश्वर का (न विजानन्) विज्ञान न रखता हुआ (अश्नीयात्) भोजन करे, (सः) वह (सन्) विद्यमान पुरुष (उदारे) बड़े पद पर वर्तमान (सुप्रजाः) उत्तम प्रजा गणों को (न सर्षत्) न पावे ॥ ३ ॥

भावार्थः—परमात्मा मनुष्यादि प्राणियों में निःसन्देह प्रकाशमान है, जो अज्ञानी पुरुष उसकी महिमा को नहीं जानता, वह दुष्ट आप, और उसके साथी प्रजा गण महा दुःख भोगते हैं ॥ ३ ॥

अनड्वान् दुहे सुकृतस्य लोक एनं प्याययति पवमानः पुरस्तात् । पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥ ४ ॥

अनड्वान् । दुहे । सुऽकृतस्य । लोके । आ । एनम् । प्याययति । पवमानः । पुरस्तात् । पर्जन्यः । धाराः । मरुतः । ऊधः । अस्य । यज्ञः । पयः । दक्षिणा । दोहः । अस्य ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अनड्वान्) प्राण वा जीविका पहुंचाने वाला परमेश्वर (सुकृतस्य) पुण्य के (लोके) स्थान में (दुहे = दुग्धे) पूर्ण करता है, (पवमानः) शुद्ध करने वाला परमात्मा (पुरस्तात्) पहिले से ही (एनम्) इस

उदारे । उत्+आङ्+रा दानादानयोः—कः । यद्वा । उत्+ऋ गतिप्रापणयोः घञ् । महति पदे । उदारो दातृमहतोः, इत्यमरटीकायाम्–३ । १ । ८ । **न ।** नहि । **सर्षत् ।** सृ गतौ लेटि अडागमः, सिप् च । प्राप्नुयात् । **यः ।** पुरुषः । **न ।** नहि । **अश्नीयात् ।** अश भोजने—विधिलिङ् । भक्षयेत् । **विजानन् ।** म० १ । प्राणस्य जीवनस्य च वाहकस्य परमेश्वरस्य । **अनड्वहः ।** विशेषेण ज्ञानं प्राप्नुवन् ॥

४—अनड्वान् । म० १ । प्राणस्य जीवनस्य वा प्रापकः परमेश्वरः । **दुहे । लोपस्त आत्मनेपदेषु** (पा० ७ । १ । ४१) इति तलोपः । दुग्धे । इष्टं प्रपूरयति । **सुकृतस्य ।** पुण्यकर्मणः । **लोके ।** लोकृ दर्शने—घञ् । भुवने । गृहे । **एनम् ।** इमं जीवं संसारं वा । **आ प्याययति ।** प्रवर्धयति । **पवमानः ।** अ० ३ । ३१ । २ । संशोधकः परमेश्वरः । **पुरस्तात् ।** अग्रतः । सृष्ट्यादौ । **पर्जन्यः ।** अ० १ । २ । १ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[जीव] को (आ प्याययति) सब प्रकार बढ़ाता है। (अस्य) इस [परमेश्वर] की (धाराः) धारण शक्तियाँ (पर्जन्यः) मेघ [के समान] हैं और (ऊधः) वहन वा ले चलने का सामर्थ्य (मरुतः) पवन [के समान] है, (अस्य) इसकी (यज्ञः) संगति क्रिया (पयः) दूध [के समान] है, और (दक्षिणा) दान शक्ति (दोहः) दोहनी [के समान] है ॥ ४ ॥

भावार्थः—वह जगदीश्वर पुण्यात्माओं की इच्छा पूर्ण करता है, और सृष्टि की आदि में वेद देकर सबकी वृद्धि करता है, और जैसे मेघ, वायु आदि पदार्थ उपकारी हैं, इसी प्रकार वह परमात्मा मेघ, पवन आदिकों का धारण करने वाला आदिमूल है ॥ ४ ॥

यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दाता ईशे न प्रतिग्रहीता। यो विश्वजिद् विश्वभृद् विश्वकर्मा घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात् ॥५॥

यस्य। न। ईशे। यज्ञऽपतिः। न। यज्ञः। न। अस्य। दाता। ईशे। न। प्रतिऽग्रहीता। यः। विश्वऽजित्। विश्वऽभृत्। विश्वऽकर्मा। घर्मम्। नः। ब्रूत। यतमः। चतुःऽपात् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(न) न तो (यज्ञपतिः) संगतिकर्ता पुरुष, और (न) न

मेघ इव। **धाराः**। धृञ् धारणे णिच्—अङ्, टाप्। धार्य्यते यया। धारणशक्तयः। **मरुतः**। अ० १। २०। १। वायुरिव। **ऊधः**। **श्वेः सम्प्रसारणं च** (उ० ४। १९३) इति वह–असुन्। धातोः सम्प्रसारणे कृते दीर्घत्वं धकारश्चान्तादेशः। वहनसामर्थ्यम्। **अस्य**। अनडुहः परमेश्वरस्य। **यज्ञः**। संगतिकरणम्। **पयः**। दुग्धमिव। **दक्षिणा**। **दुदक्षिभ्यामिनन्** (उ० २। ५०) इति दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे च—इनन्। टाप्। दक्षिणा दक्षतेः समर्द्धयतिकर्मणः, दक्षिणो हस्तो दक्षतेरुत्साहकर्मणो दाशतेर्वा स्याद् दानकर्मणः—निरु० १। ७। दानशक्तिः। **दोहः**। दुह प्रपूरणे—घञ्। दोहनपात्रमिव ॥

५—**यस्य**। घर्मस्य। **अधीगर्थदयेशां कर्मणि** (पा० २। ३। ५२) इति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यज्ञः) संगतिकर्म (यस्य) जिस [परमेश्वर] का (ईशे = ईष्टे) ईश्वर है, (न) न तो (दाता) दाता, (न) न (प्रतिग्रहीता) ग्रहणकर्ता (अस्य) इसका (ईशे) ईश्वर है, (यः) जो (विश्वजित्) सबका जीतने वाला, (विश्वभृत्) सबका पोषण करने वाला, (विश्वकर्मा) सब काम करने वाला, और (यतमः) जौन सा (चतुष्पात्) चारों दिशाओं में स्थित वा गति वाला है, (घर्मम्) उस प्रकाशमान सूर्यसदृश परमात्मा को (नः) हमें, [हे ऋषियो !] (ब्रूत) बताओ ॥ ५ ॥

भावार्थः—उस परमात्मा का शासक कोई अन्य नहीं है, वह सर्वशक्तिमान्, सर्वरक्षक, सर्वव्यापक, प्रकाशस्वरूप है। उसकी उपासना और अन्वेषणा से सब मनुष्य अपनी उन्नति करें ॥ ५ ॥

येन॑ दे॒वाःस्व॒॑रारु॒हु॒र्हि॒त्वा शरी॑रम॒मृत॑स्य॒ नाभि॑म् । तेन॑ गेष्म सु॒कृत॑स्य॑ लो॒कं घ॒र्मस्य॑ व्र॒तेन॒ तप॑सा य॒श॒स्यवः॑ ॥६॥

येन॑ । दे॒वाः । स्व॒॑रि॑ति॒ स्वः॑ । आऽरु॑हुः । हि॒रु॒त्वा । शरी॑रम् । अ॒मृत॑स्य । नाभि॑म् । तेन॑ । गे॒ष्म॒ । सु॒ऽकृत॑स्य॑ । लो॒कम् । घ॒र्मस्य॑ । व्र॒तेन॑ । तप॑सा । य॒श॒स्यवः॑ ॥६॥

कर्मणि षष्ठी । **न** । नहि । **ईशे** । **लोपस्त आत्मनेपदेषु** (पा० ७ । १ । ४१) ईष्टे । शासिता भवति । **यज्ञपतिः** । यजमानः, सङ्गतिकर्ता । **यज्ञः** । संगतिक्रिया । **दाता** । दानशीलः । **प्रतिग्रहीता** । दानस्य स्वीकर्ता । **यः** । अनड्वान् । घर्मः । **विश्वजित्** । विश्वस्य जेता । **विश्वभृत्** । सर्वस्य भर्ता पोषयिता वा । **विश्वकर्मा** । विश्वं सर्वं कर्म कर्तव्यं व्यापारो यस्य । सर्वव्यापारकर्ता । **घर्मम्** । म० ३ । तं दीप्यमानम् । आदित्यरूपम् । अनड्वाहं परमात्मानम् । **नः** । अस्मभ्यम् । **ब्रूत** । कथयत । उपदिशत । **यतमः** । **वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्** (पा०५।३।९३) इति यत्—डतमच् । बहूनां मध्ये निर्द्धारित एकः । एषां मध्ये यः । **चतुष्पात्** । पद स्थैर्ये, गतौ च—घञ् । इति पादः । **संख्यासुपूर्वस्य** (पा० ५ । ४ । १४०) इति बहुव्रीहेः पादान्तस्य लोपः । चतसृषु दिक्षु पादः स्थितिर्गतिर्वा यस्य सः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(येन) जिस [परमात्मा] के द्वारा (देवाः) व्यवहार कुशल पुरुष (शरीरम्) नाशमान शरीर [देह अभिमान] (हित्वा) छोड़ कर (अमृतस्य) अमरपन के (नाभिम्) केन्द्र (स्वः) स्वर्ग को (आरुरुहुः) चढ़े थे। (तेन) उसी [ईश्वर] के सहारे से (यशस्यवः) यश चाहने वाले हम लोग (घर्मस्य) दीप्यमान सूर्य के [समान] (व्रतेन) कर्म और (तपसा) सामर्थ्य से (सुकृतस्य) पुण्य के (लोकम्) लोक [परमात्मा] को (गेष्म) खोजें ॥ ६ ॥

भावार्थः—जैसे पूर्वज महात्मा परमात्मा की भक्ति से मोक्ष सुख पाकर अमर अर्थात् कीर्तिमान हुये हैं, उसी प्रकार हम परमेश्वर की आज्ञा पाल कर संसार में उपकार करके यशस्वी होवें, जैसे सूर्य अपने तेज से वृष्टि दान और आकर्षण आदि करके लोक का उपकार करता है ॥ ६ ॥

इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् । विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानड्वहयक्रमत । सो दृहंयत सो धारयत ॥ ७ ॥

इन्द्रः । रूपेण । अग्निः । वहेन । प्रजाऽपतिः । परमेऽस्थी । विऽराट् । विश्वानरे । अक्रमत । वैश्वानरे । अक्रमत । अनड्वहि । अक्रमत । सः । अदृंहयत । सः । अधारयत ॥ ७ ॥

६—येन । अनड्वहा । परमेश्वरेण । **देवाः** । व्यवहारिणः पुरुषाः । **स्वः** । अ० २ । ५ । २ । स्वर्गम् । देवालयम् । **आरुरुहुः** । आरूढवन्तः । **हित्वा** । ओहाक् त्यागे—क्त्वा । त्यक्त्वा । **शरीरम्** । अ० २ । १२ । ८ । शीर्यमाणं देहम् । देहाभिमानमित्यर्थः । **अमृतस्य** । अमरणस्य । मोक्षसुखस्य । **नाभिम्** । अ० १ । १३ । ३ । मध्यस्थानम् । केन्द्रम् । **तेन** । अनड्वहा । **गेष्म** । गेषृ अन्विच्छायाम्—लोटि छान्दसं रूपम् । गेषामहै । अन्विच्छाम । अन्वेषणेन प्राप्नुवाम । **सुकृतस्य** । पुण्यस्य । **लोकम्** । गृहम् । **घर्मस्य** । म० ३ । प्रकाशमानस्य । आदित्यस्य । **व्रतेन** । वरणीयेन कर्मणा । **तपसा** । ऐश्वर्येण । **यशस्यवः** । **सुप आत्मनः क्यच्** (पा० ३ । १ । ८) इति यशस्—क्यच् । **क्याच्छन्दसि** (पा० ३ । २ । १७०) इति उप्रत्ययः । यशः कीर्तिमात्मन इच्छन्तः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(प्रजापतिः) उत्पन्न पदार्थों का रक्षक, (परमेष्ठी) ऊंचे स्थान पर ठहरने वाला, (विराट्) विशेष प्रकाशमान, (अग्निः) व्यापक वा अग्निरूप (इन्द्रः) सूर्य (रूपेण) अपने रूप से और (वहेन) चलाने के सामर्थ्य से (विश्वानरे) सबके नायक परमात्मा में (अक्रमत) प्रविष्ट हुआ, (वैश्वानरे) सब नायकों के हितकारी परमेश्वर में (अक्रमत) प्राप्त हुआ, (अनडुहि) जीवन पहुँचाने वाले जगदीश्वर में (अक्रमत) प्रविष्ट हुआ है। (सः) उस [जगदीश्वर] ने [सूर्य को] (अदृंहयत) दृढ़ किया और (सः) उसने ही (अधारयत) धारण किया है ॥ ७ ॥

भावार्थः—सूर्य अर्थात् सूर्य आदि बड़े बड़े लोक अपने आकर्षण आदि शक्तियों के साथ सर्वनियन्ता जगदीश्वर में स्थित हैं, वही उनका धारण पोषण करता है। उसी की उपासना हम सदा करें ॥ ७ ॥

मध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः ।
एतावदस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ् समाहित ॥ ८ ॥

मध्यम् । एतत् । अनडुहः । यत्र । एषः । वहः । आऽहितः ।
एतावत् । अस्य । प्राचीनम् । यावान् । प्रत्यङ् । सम्ऽआहितः ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(अनडुहः) जीविका पहुंचाने वाले परमात्मा का (एतत्)

७—इन्द्रः । ऐश्वर्यवान् सूर्यः । **रूपेण** । तेजसा । **अग्निः** । व्यापकः । अग्निरूपः । **वहेन** । वहनसामर्थ्येन । आकर्षणेन । **प्रजापतिः** । प्रजानां प्रजातानां पदार्थानां पालकः । **परमेष्ठी** । अ० १।७।२ । परमे प्रधानस्थाने स्थितः । **विराट्** । राजृ दीप्तौ—क्विप् । विशेषेण दीप्यमानः । **विश्वानरे** । विश्व+नृ नये—अच् । **नरे संज्ञायाम्** (पा० ६।३।१२९) इति दीर्घः । सर्वनायके परमेश्वरे । **अक्रमत** । अक्रामत संक्रान्तवान् प्राप्तवान् । **वैश्वानरे** । अ० १ । १० । ४ । विश्वनरेभ्यः सर्वनायकेभ्यो हिते परमात्मनि । **अनडुहि** । म० १ । जीवनप्रापके परमेश्वरे । **सः** । अनड्वान् । **अदृंहयत** । दृढमकरोत् । **अधारयत** । धृतवान् ॥

८—मध्यम् । अ० १ । ३३ । २ । द्वयोरन्तरालम् । गोलस्य मध्यस्थानम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह [स्थान वा काल] (मध्यम्) मध्य है (यत्र) जहां (एषः) यह (वहः) [आकर्षित] भार (आहितः) धरा हुआ है। (अस्य) सर्वव्यापक वा सर्वरक्षक विष्णु का (एतावत्) उतना ही (प्राचीनम्) प्राचीन काल वा देश है, (यावान्) जितना (प्रत्यङ्) आगामी काल वा देश (समाहितः) सिद्ध है ॥ ८ ॥

भावार्थः—परमेश्वर की सर्वव्यापकता और नित्यता को विचार कर मनुष्य सावधानी से प्रयत्न करता रहे ॥८॥

यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः ।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः ॥९॥

यः । वेद । अनडुहः । दोहान् । सप्त । अनुपदस्वतः । प्रजाम् । च । लोकम् । च । आप्नोति । तथा । सप्तऋषयः । विदुः ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(यः) जो कोई (अनडुहः) जीवन पहुंचाने वाले परमेश्वर के (दोहान्) पूर्ति के प्रवाहों को (सप्त) नित्य संबन्ध वाले और (अनुपदस्वतः) अक्षय (वेद) जानता है, वह (प्रजाम्) प्रजा (च) और (लोकम्) लोक (च) भी (आप्नोति) पाता है, (तथा) ऐसा (सप्तऋषयः) सात व्यापनशील वा दर्शनशील, [अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि, अथवा दो कान, दो नथने, दो आंख और मुख यह सात छिद्र] (विदुः) जानते हैं [प्रत्यक्ष करते हैं] ॥ ९ ॥

एतत् । दृश्यमानं सर्वम् । **अनडुहः** । म० १ । जीवनप्रापकस्य परमेश्वरस्य । **यत्र** । यस्मिन् स्थाने । **एषः** । अयम् । **वहः** । वहनीयः पदार्थो भारो वा । **आहितः** । धा—क्तः । स्थापितः । **एतावत्** । एतत्परिमाणयुक्तम् । **अस्य** । अतति सर्वं व्याप्नोतीति अः । अत सातत्यगमने—डः । यद्वा अवति रक्षतीति अव रक्षणे डः । अः विष्णुः । सर्वव्यापकस्य सर्वरक्षकस्य वा परमेश्वरस्य । **प्राचीनम्** । **विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम्** (पा० ५ । ४ । ८) इति स्वार्थे खः । खस्य ईनादेशः । प्राक् पूर्वः कालो देशो वा । **यावान्** । यत्परिमाणवान् । **प्रत्यङ्** । प्रति + अञ्चु—क्विन् । पश्चिमकालः । पश्चिमदेशः । **समाहितः** । निष्पन्नः ॥

९—यः । यः पुरुषः । **वेद** । वेत्ति । **अनडुहः** । म० १ । प्राणप्रापकस्य । **दोहान्** । म० ४ । पूर्तिप्रवाहान् । **सप्त** । **सप्यशूभ्यां तुट् च** (उ० १ । १५७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—विज्ञानी पुरुष जीवनदाता परमेश्वर के सर्वव्यापी और अनन्त कोश को अपनी ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, मन और बुद्धि द्वारा साक्षात् करके अपना आत्मिक और शारीरिक बल बढ़ाते हैं ॥ ९ ॥

पद्भिःसेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन् ।
श्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः ॥ १० ॥

पत्ऽभिः । सेदिम् । अवऽक्रामन् । इराम् । जङ्घाभिः । उत्ऽखिदन् । श्रमेण । अनड्वान् । कीलालम् । कीनाशः । च । अभि । गच्छतः ॥ १० ॥

भाषार्थः—(कीनाशः) निन्दित कर्म का नाश करने वाला (अनड्वान्) जीवन पहुंचाने वाला परमेश्वर, (श्रमेण) परिश्रम से (अभिगच्छतः) चलते

इति षप समवाये—कनिन् अथवा क्तप्रत्ययः । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) इति विभक्तिलोपः । समवेतान् । नित्यसम्बद्धान् । अथवा, सप्तपुत्रं सप्तमपुत्रं सपर्णपुत्रमिति वा सप्त सृप्रा सङ्ख्या सप्तादित्यरश्मयः । निरु० ४ । २६ । इति यास्कवचनात् सूर्यरश्मिवत् परस्परसंयुक्तान् । **अनुपदस्वतः** । दसु उपक्षये—असुन्, मतुप् । अक्षयान् । **प्रजाम्** । पुत्रपौत्रभृत्यादिकम् । **च** । समुच्चये । अवधारणे । **लोकम्** । संसारम् । संसारराज्यम् । **आप्नोति** । लभते । **तथा** । तेनैव प्रकारेण । **सप्तऋषयः** । सप्त समवेताः । **इगुपधात् कित्** (उ० ४ । १२०) इति ऋषी गतौ दर्शने च—इन् । **ऋत्यकः** (पा०६।१। १२८) इति प्रकृतिभावः । सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे । य० ३४ । ५५ । सप्त ऋषयः षडिन्द्रियाणि विद्या सप्तमी । निरु० १२ । ३७ । कः सप्त खानि वितर्दं शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम् । अ० १०।२।६। त्वक्चक्षुः श्रवणरसनाघ्राणमनोबुद्धयः । अथवा । शीर्षण्यानि सप्तच्छिद्राणि । **विदुः** । जानन्ति । प्रत्यक्षीकुर्वन्ति ॥

१०—**पद्भिः** । पद स्थैर्ये गतौ च—क्विप् । स्वस्थितिभिः । **सेदिम्** । **क्किनावुत्सर्गश्छन्दसि सदादिभ्यो दर्शनात्** (वा० पा० ३ । २ । १७१) इति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिरते पुरुष के (सेदिम्) विषाद को (पद्भिः) अपनी स्थितियों से (अवक्रामन्) दबाता हुआ, (च) और (जङ्घाभिः) अपनी अत्यन्त व्याप्तियों से [उसके] (कीलालम्) बन्ध के निवारण, अर्थात् (इराम्) अन्न को (उत्खिदन्) उत्पन्न करता हुआ [वर्तमान है] ॥ १० ॥

भावार्थः—उद्योगी पुरुष सब स्थानों में परमेश्वर रचित पदार्थों से अन्नादि प्राप्त करके आनन्द भोगते हैं ॥ १० ॥

द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः ।
तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद् वा अनड्वाहो व्रतम् ॥ ११ ॥

द्वादश । वै । एताः । रात्रीः । व्रत्याः । आहुः । प्रजाऽपतेः ।
तत्र । उप । ब्रह्म । यः । वेद । तत् । वै । अनड्वाहः । व्रतम् ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(द्वादश) बारह (एताः) प्राप्ति योग्य (रात्रीः) विषय ग्रहण करने वाली और विज्ञान देने वाली मन बुद्धि सहित पांच ज्ञानेन्द्रियों और

षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु—किः । अवसादनम् । दरिद्रताम् । **अवक्रामन्** । अवाङ्मुखी कुर्वन् । **इराम्** । **ऋज्रेन्द्रा०** (उ० २ । २८) इति इण् गतौ—रन्, गुणाभावः । अन्नम्—निघ० २ । ७ । **जङ्घाभिः** । **अच् तस्य जङ्घ च** (उ०५।३१) इति जनी प्रादुर्भावे—अच्, जङ्घ इत्यादेशः । प्रादुर्भावैः । यद्वा । **अन्येष्वपि दृश्यते** (पा० ३ । २ । १०१) इति हन हिंसागत्योः—यङ्लुगन्तात्—डप्रत्ययः । अतिवेगगतिभिः । अत्यन्तव्याप्तिभिः । **उत्खिदन्** । खिद दैन्ये, परिघाते । उत्पूर्वात् खिद उत्पादने—शतृ । उत्पादयन् वर्तते । **श्रमेण** । श्रमु, तपसि, आयासे, खेदे च-घञ् । आयासेन । प्रयत्नेन । **अनड्वान्** । म० १ । जीवनप्रापकः । **कीलालम्** । कील बन्धने—घञ्+अल वारणपर्याप्तिभूषासु—अण् । बन्धनिवारणम् । अमृतम् । जीवनसाधनम् । **कीनाशः** । अ० ३ । १७ । ५ कुकुत्सितं नाशयतीति । कोः कीति आदेशः । निन्दितकर्मनाशकः परमेश्वरः । **अभि गच्छतः** । अभितो गच्छतः पुरुषस्य ॥

११—द्वादश । द्वे च दश च । **वै** । वा गतौ—डै । निश्चयेन । **एताः** । **हसिमृग्रिण्वा०** (उ० ३ । ८६) इति इण् गतौ—तन् । प्राप्तव्याः । **रात्रीः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांच कर्मेन्द्रियों को (प्रजापतेः) प्रजापालक परमात्मा के (व्रत्याः) व्रतयोग्य (वै) निश्चय करके [वे विज्ञानी] (आहुः) बताते हैं। (तत्र) उन [मन बुद्धि सहित इन्द्रियों] में (यः) गतिशील पुरुषार्थी पुरुष (अनड्वहः) जीवन पहुँचाने वाले परमेश्वर के (तत्) विस्तृत (ब्रह्म) वेद विज्ञान और (व्रतम्) व्रत को (वै) निश्चय करके (उप) आदर से (वेद) जानता है ॥ ११ ॥

भावार्थः—मन बुद्धि और इन्द्रियों से योगी पुरुषार्थी लोग परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव को जान कर संसार में उन्नति करते हैं ॥ ११ ॥

दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यं दिनं परि ।
दोहा ये अस्य संयन्ति तान् विद्मानु पदस्वतः ॥१२॥

दुहे । सायम् । दुहे । प्रातः । दुहे । मध्यंदिनम् । परि । दोहाः ।
ये ।। अस्य । सम्ऽयन्ति । तान् । विद्म । अनुपऽदस्वतः ॥ १२ ॥

भाषार्थः—वह [परमेश्वर] (सायम्) सायंकाल में (परि) सब ओर से (दुहे = दुग्धे) पूर्ण करता है। (प्रातः) प्रातः काल (दुहे) पूर्ण करता है। (मध्यंदिनम्) मध्याह्न में (दुहे) पूर्ण करता है। (अस्य) सर्वव्यापक वा

राशदिभ्यां त्रिप् (उ०४।६७) इति रा दानादानयोः-त्रिप्। विषयग्रहीतॄणि विज्ञानदातॄणि मनोबुद्धिसहितानि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च। **व्रत्याः**। व्रतं व्याख्यातम्—अ० २। ३०। २। व्रत—यत्। व्रतहिताः। कर्मयोग्याः। **आहुः**। ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि—लट्। ब्रुवन्ति विज्ञानिनः। **प्रजापतेः**। प्रजापालकस्य अनड्वहः। **तत्र**। रात्रिषु। **उप**। आदरेण। **ब्रह्म**। अ० १।८।४। वेदविज्ञानम्। **यः**। या प्रापणे-डः। याता। **वेद**। वेत्ति। **तत्**। **त्यजितनि०** (उ० १।१३२) इति तनु विस्तारे-अदिः। विस्तृतम्। **अनड्वहः**। म०१। प्राणप्रापकस्य परमेश्वरस्य। **व्रतम्**। वरणीयं कर्म ॥

१२—दुहे। **लोपस्त आत्मनेपदेषु** (पा० ७ । १ । ४१) इति तलोपः। दुग्धे प्रपूरयति अनड्वान्। **सायम्**। षो अन्तकर्मणि—णम्, युगागमः। दिनान्ते। **प्रातः**। **प्रातेररन्** (उ० ५ । ५९) इति प्र+अत सातत्यगमने—अरन्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वरक्षक विष्णु के (ये) जो (दोहाः) पूर्त्ति प्रवाह (संयन्ति) बटुरते रहते हैं (तान्) उनको (अनुपदस्वतः) अक्षय (विद्म) हम जानते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थः—परमेश्वर का सदा अक्षय भण्डार है। ऐसा जानकर मनुष्य विज्ञान पूर्वक आगे बढ़ता रहे ॥ १२ ॥

सूक्तम् १३ ॥

१—७ ॥ धाता देवता । १ गायत्री, २–५ अनुष्टुप्, ६ पदपङ्क्तिः, ७ बृहती छन्दः ॥

स्वदोषनिवारणायोपदेशः—अपने दोष मिटाने का उपदेश ॥

रोह॑ण्यसि॒ रोह॑ण्य॒स्थन॑श्छि॒न्नस्य॒ रोह॑णी ।
रो॒ह॒यै॒द॒मरु॑न्धति ॥ १ ॥

रोह॑णी । अ॒सि॒ । रोह॑णी । अ॒स्थनः॑ । छि॒न्नस्य॑ । रोह॑णी ।
रो॒ह॒य॑ । इ॒दम् । अरु॑न्धति ॥ १ ॥

भाषार्थः—[हे मानुषी प्रजा तू] (छिन्नस्य) टूटी (अस्थनः) हड्डी की (रोहणी) पूरनेवाली (रोहणी) रोहिणी वा लाक्षा [के समान] (रोहणी) पूरने वाली शक्ति (असि) है। (अरुन्धति) हे रोक न डालने वाली शक्ति तू ! (इदम्) ऐश्वर्य (रोहय) सम्पूर्ण कर ॥ १ ॥

प्रभातकाले। **मध्यंदिनम्** । राजदन्तादित्वात् मध्यशब्दस्य पूर्वत्वम्। पृषोदरादित्वात् नकारागमः। दिनस्य मध्यम्। मध्याह्नम्। **परि** । परितः। सर्वतः। **दोहाः** । पूर्तिप्रवाहाः। **अस्य** । म० ८। सर्वव्यापकस्य सर्वरक्षकस्य वा विष्णोः परमेश्वरस्य। **संयन्ति** । इण् गतौ। संगच्छन्ते। **तान्** । दोहान्। **विद्म** । **विदो लटो वा** (पा० ३। ४। ८३) इति मसो मादेशो वा। विद्मः। जानीम। **अनुपदस्वतः** । म० ९। क्षयरहितान् ॥

१—रोहणी । रुह प्रादुर्भावे–णिच्–ल्युट्, ङीप्। रोहयित्री पूरयित्री शक्तिः। **नित्यवीप्सयोः** (पा० ८। १। ४) इति द्विर्वचनम्। **असि** । भवसि। **अस्थनः** । अ० १। २३। ४। मांसाभ्यन्तरस्थस्य धातुविशेषस्य। **छिन्नस्य** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—बुद्धिमान् पुरुष विज्ञान पूर्वक अपने आत्मिक और शारीरिक दोषों को मिटावे जैसे सद्वैद्य रोहिणी वा लाक्षा [लाख वा लाह] आदि औषधि से रोगों को निवृत्त करता है ॥ १ ॥

सायण भाष्य में (रोहणी) पद के स्थान में [रोहिणी] मानकर "लाक्षा" अर्थ किया है ॥

यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्टं त आत्मनि ।
धाता तद् भद्रया पुनः सं दधत् परुषा परुः ॥ २ ॥

यत् । ते । रिष्टम् । यत् । ते द्युत्तम् । अस्ति । पेष्टम् । ते । आत्मनि ।
धाता । तत् । भद्रया । पुनः । सम् । दधत् । परुषा । परुः ॥ २ ॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (यत्) जो कुछ (ते) तेरा (रिष्टम्) टूटा हुआ और (यत्) जो (ते) तेरा (द्युत्तम्) जलता हुआ, और जो (ते) तेरे (आत्मनि) शरीर में (पेष्टम्) पिसा हुआ (अस्ति) है । (धाता) पोषण करने वाला वैद्य (भद्रया) कल्याण करने वाली क्रिया से (तत् परुः) उस जोड़ को (परुषा) दूसरे जोड़ से (पुनः) फिर (सं दधत्) सन्धि कर देवे ॥ २ ॥

भिन्नस्य । **रोहणी** । व्युत्पत्तिः पूर्ववत् । रोहणी एव रोहिणी, ओषधिविशेषः । तत्पर्यायाः शब्दकल्पद्रुमे । कटुंभरा । सोमवल्कः । सोमवृक्षः । सायणमते तु रोहिणी लाक्षा नामौषधिविशेषः । **रोहय** । प्ररोहय । पूरय । **इदम्** । **इन्देः कमिन्नलोपश्च** (उ०४।१५७) इति इदि परमैश्वर्ये—कमिन् । परमैश्वर्यम् । **अरुन्धति** । नञ् + रुधिर् आवरणे—शतृ, ङीप् । हे अरोधनशीले । हे अवारयित्रि शक्ते ॥

२—**यत्** । अङ्गम् । **ते** । तव । **द्युत्तम्** । द्योतते, ज्वलतिकर्मा—निघ० १ । १६ । द्योतितम् । प्रज्वलितम् । **अस्ति** । **पेष्टम्** । **सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्** (उ०४।१५९) इति पिष्लृ संचूर्णने—ष्ट्रन् । पिष्टम् । चूर्णितम् । **आत्मनि** । शरीरे । **धाता** । पोषयिता पुरुषः । **तत्** । सर्वमङ्गम् । **भद्रया** । कल्याण्या क्रियया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—विचारवान् पुरुष आप ही अपने दोषों का वैद्य होता है ॥ २ ॥

सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु सम् ते परुषा परुः ।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु ॥ ३ ॥

सम् । ते । मज्जा । मज्ज्ञा । भवतु । सम् । ऊँ इति । ते । परुषा । परुः । सम् । ते । मांसस्य । विऽस्रस्तम् । सम् । अस्थि । अपि । रोहतु ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे विद्वान्] (ते) तेरे (मज्जा) हाड़ की मींग (मज्ज्ञा) हाड़ की मींग से (संभवतु) मिल जावे (उ) और (ते परुः) तेरा जोड़ (परुषा) जोड़ से (सम् = संभवतु) मिल जावे । (ते) तेरे (मांसस्य) मांस का (विस्रस्तम्) हटा हुआ अंश (सम् = सं रोहतु) जुड़ जावे, और (अस्थि) हाड़ (अपि) भी (संरोहतु) जुड़ कर ठीक हो जावे ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्य अपने चंचल मन को ज्ञान प्राप्ति में ऐसा जोड़ दे जैसे वैद्य विचलित अवयवों को जोड़ देता है ॥ ३ ॥

मज्जा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥ ४ ॥

मज्जा । मज्ज्ञा । सम् । धीयताम् । चर्मणा । चर्म । रोहतु । असृक् । ते । अस्थि । रोहतु । मांसम् । मांसेन । रोहतु ॥ ४ ॥

पुनः । अवधारणे । द्वितीयवारे । **संदधत्** । संदधातु । संयुनक्तु । **परुषा** । पर्वणा । **परुः** । पर्व । अन्यत् पूर्ववत् ॥

३—**ते** । तव । **मज्जा** । अ० १ । ११ । ४ । अस्थिमध्यस्थस्नेहः । **मज्ज्ञा** । अस्थिस्नेहेन । **संभवतु** । संयुक्तो भवतु । **उ** । अपि । **परुषा** । पर्वणा । **परुः** । पर्व । **मांसस्य** । मन ज्ञाने धृतौ च—सप्रत्ययः । रक्तजधातुविशेषस्य । **विस्रस्तम्** । वि + स्रन्सु अवस्रंसने—क्तः । विचलितो भागः । **अस्थि** । शरीरस्थधातुविशेषः । **अपि । सं रोहतु** । संहितं भवतु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(मज्जा) हाड़ की मींग (मज्ज्ञा) हाड़ की मींग से (सं धीयताम्) मिल जावे, (चर्म) चाम (चर्मणा) चाम के साथ (रोहतु) जम जावे। (ते) तेरा (असृक्) रुधिर और (अस्थि) हाड़ (रोहतु) जमे, और (मांसम्) मांस (मांसेन) मांस के साथ (रोहतु) जमे ॥ ४ ॥

भावार्थः—मन्त्र ३ के समान ॥ ४ ॥

लोम॒ लोम्ना॒ सं क॑ल्पया त्व॒चा सं क॑ल्पया॒ त्वच॑म् ।
असृ॑क् ते॒ अस्थि॑ रोहतु च्छि॒न्नं सं धे॑ह्योषधे ॥ ५ ॥

लोम॑ । लोम्ना॑ । सम् । क॒ल्प॒य॒ । त्व॒चा । सम् । क॒ल्प॒य॒ । त्वच॑म् ।
असृ॑क् । ते॒ । अस्थि॑ । रो॒ह॒तु॒ । छि॒न्नम् । सम् । धे॒हि॒ । ओ॒ष॒धे॒ ॥५॥

भाषार्थः—(ओषधे) हे ताप नाशक ओषधि [के समान मनुष्य !] (लोम) रोम को (लोम्ना) रोम के साथ (संकल्पय) जमा दे, (त्वचम्) त्वचा को (त्वचा) त्वचा के साथ (संकल्पय) जोड़ दे, (ते) तेरा (असृक्) रुधिर और (अस्थि) हाड़ (रोहतु) उगे, (छिन्नम्) टूटा अंग भी (संधेहि) अच्छे प्रकार मिला दे ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर विचार से अपने दोषों की चिकित्सा करे जैसे वैद्य औषधि से करते हैं ॥ ५ ॥

४—मज्जा । अस्थिस्नेहः । **मज्ज्ञा** । अस्थिस्नेहेन । **सं धीयताम्** । संहितः संयुक्तो भवतु । **चर्मणा** । **सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उ० ४ । १४५) इति चर गतौ-मनिन् । शरीरावरणम् । **चर्म** । [1]त्वचा । **रोहतु** । प्ररूढं भवतु संयुज्यताम् । **असृक्** । असु क्षेपणे—ऋजिप्रत्ययः । अस्यते क्षिप्यते इतस्ततो नाडीभिः । रुधिरः । अन्यत् सुगमम् ॥

५—लोम । अ० २ । ३३ । ७ । देहजातं केशाकारं द्रव्यम् । रोम । **लोम्ना** । रोम्णा । **संकल्पय** । संक्लृप्तं पुनः स्वस्थानगतं कुरु । संयोजय । **त्वचा** । चर्मणा । **त्वचम्** । चर्म । **छिन्नम्** । भिन्नमङ्गम् । **सं धेहि** । संहितं संश्लिष्टं व्यापारक्षमं कुरु । अन्यत् पूर्ववत् ॥

---

१. द्र० टि० अ० २ । २५ । ३ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः ।
प्रति तिष्ठोर्ध्वः ॥ ६ ॥

सः । उत् । तिष्ठ । प्र । इहि । प्र । द्रव । रथः । सुऽचक्रः । सुऽपविः । सुऽनाभिः । प्रति । तिष्ठ । ऊर्ध्वः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(सः = स त्वम्) सो तू (उत्तिष्ठ) उठ, (प्रेहि) आगे बढ़, (सुचक्रः) सुन्दर पहिये वाले, (सुपविः) दृढ़ नेमि वा पुट्ठी वाले, (सुनाभिः) सुन्दर मध्य छिद्र वाले (रथः) रथ [के समान] (प्र द्रव) वेग से चल और (ऊर्ध्वः) ऊंचा होकर (प्रति तिष्ठ) प्रतिष्ठित हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न पूर्वक आगे बढ़कर प्रतिष्ठा प्राप्त करे जैसे उत्तम शिल्पी का बनाया हुआ सुदृढ़ रथ अन्य रथों से आगे निकल जाता है ॥ ६ ॥

यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान ।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत् परुषा परुः ॥ ७ ॥

यदि । कर्तम् । पतित्वा । सम्ऽशश्रे । यदि । वा । अश्मा । प्रऽहृतः । जघान । ऋभुः । रथस्यऽइव । अङ्गानि । सम् । दधत् । परुषा । परुः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(यदि) यदि (कर्तम्) कटारी आदि हथियार ने (पतित्वा)

६—सः । तादृशो विचारवान् त्वम् । **उत्तिष्ठ ।** उद्गच्छ । सावधानो भव । **प्रेहि ।** प्रकर्षेण गच्छ । **प्रद्रव ।** प्रधाव । **रथः ।** **हनिकुषिनीरमि०** (उ०२। २) इति रमु क्रीडायाम्, वा रंहतेर्गतिकर्मणः क्थन् । रथो रंहतेर्गतिकर्मणः स्थिरतेर्वा स्याद् विपरीतस्य रममाणोऽस्मिंस्तिष्ठतीति वा रपतेर्वा रसतेर्वा—निरु० ९ । ११ । वेगवान् । स्यन्दनो यथा । **सुचक्रः ।** सुदृढ़ैश्चक्रैर्युक्तः । **सुपविः ।** सुदृढः पविर्नेमिश्चक्रधारा यस्य स तथोक्तः । **सुनाभिः ।** दृढ़या नाभ्या, अक्षच्छिद्रेण युक्तः । **प्रति तिष्ठ ।** प्रतिष्ठितो भव । **ऊर्ध्वः ।** उत्थितः सन् ॥

७—यदि । पक्षान्तरे । सम्भावनायाम् । **कर्तम् ।** कृती छेदने-घञ् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिर कर (संशश्रे) काट दिया है, (यदि वा) अथवा (प्रहृतः) फेंके हुये (अश्मा) पत्थर ने (जघान) चोट लगाई है। (ऋभुः) बुद्धिमान् पुरुष (रथस्य अङ्गानि इव) रथ के अंगों के समान (परुः) एक जोड़े को (परुषा) दूसरे जोड़ से (सं दधत्) मिला देवे ॥ ७ ॥

भावार्थः—बुद्धिमान् पुरुष अपने विचलित मन को इस प्रकार ठीक करे, जैसे चिकित्सक चोट को, और शिल्पी टूटे रथ को फिर जोड़कर सुधार लेते हैं ॥७॥

सूक्तम् १३ ॥

१—७ ॥ आत्मा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

स्वास्थ्यरक्षोपदेशः—स्वास्थ्य रक्षा का उपदेश ।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥ १ ॥

उत । देवाः । अवऽहितम् । देवाः । उत् । नयथ । पुनः । उत । आगः । चक्रुषम् । देवाः । देवाः । जीवयथ । पुनः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(देवाः) हे व्यवहार कुशल (देवाः) विद्वान् लोगो। (अवहितम्) अधोगत पुरुष को (उत) अवश्य (पुनः) फिर (उन्नयथ) तुम उठाते हो (उत) और भी, (देवाः) हे दानशील (देवाः) महात्माओ ! (आगः)

कर्तकं छेदकमायुधम् । कर्त्तरी । कृपाणी । **पतित्वा** । अधः प्राप्य । **संशश्रे** । शृ हिंसायाम्—लिट् । संश्रृणाति स्म । संहिनस्ति स्म । **यदि वा** । अपि वा । **अश्मा** । प्रस्तरः । **प्रहृतः** । प्रक्षिप्तः । **जघान** । हन—लिट् । हतवान् । **ऋभुः** । अ० १ । २ । ३ । मेधावी—निघ० ३ । १५ । **रथस्य** । **इव** । यथा । **अङ्गानि** । अक्षचक्रेषायुगादीनि । **सं दधत्** । संदधातु । संयोजयतु । **परुषा** । पर्वान्तिरेण । **परुः** । पर्व ॥

१—उत । निश्चयेन । **देवाः** । हे व्यवहारकुशलाः । **अव हितम्** । अव परिभवे + धाञ्-क्तः । अधोधृतम् । अवनीतं पुरुषम् । **देवाः** । दिव्यगुणवन्तो विद्वांसः । **उन्नयथ** । उन्नतं कुरुथ । **पुनः** । **उत** । अपि च । **आगः** । इण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराध (चक्रुषम्) करने वाले प्राणी को (पुनः) फिर (जीवयथ) तुम जिलाते हो ॥ १ ॥

भावार्थः—महात्मा लोग स्वभाव से ही अधोगत पुरुषों को ऊंचा करते और मृतक समान अपराधियों को पाप से छुड़ा कर उनका जीवन सुफल कराते हैं। मनुष्य सत्पुरुषों के सत्संग से अपने आत्मिक और शारीरिक दोषों को त्याग कर जीवन सुधारें ॥१॥

इस सूक्त के मन्त्र १—५, ७ ऋग्वेद १०। १३७ के म० १—५, ७ कुछ भेद से हैं।

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आवातु व्य१न्यो वातु यद् रपः ॥ २ ॥

द्वौ। इमौ। वातौ। वातः। आ। सिन्धोः। आ। पराऽवतः।
दक्षम्। ते। अन्यः। आऽवातु। वि। अन्यः। वातु। यत्। रपः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(इमौ) यह (द्वौ) दोनों (वातौ) पवन, अर्थात् प्राण और अपान वायु (आसिन्धोः) बहने वाले इन्द्रियदेश तक और (आ परावतः) बाहिर दूर स्थान तक (वातः) चलते रहते हैं। (अन्यः) एक [प्राण वायु] (ते) तेरा (दक्षम्) वृद्धि करने वाले बल को (आवातु) बह कर लावे और (अन्यः) दूसरा [अपान वायु] (यत् रपः) जो दोष है उसे (विवातु) बहकर निकाल देवे ॥ २ ॥

आगोऽपराधे च (उ० ४। २१२) इति इण् गतौ असुन् आगादेशः। अपराधम् **चक्रुषम्।** करोतेर्लिटः क्वसुः। अमि भत्वाभावेऽपि छान्दसं वसोः संप्रसारणम्। चक्रुवांसम्। कृतवन्तं पुरुषम्। **देवाः।** हे दानशीलाः। **देवाः।** महात्मानः। **जीवयथ।** जीवनवन्तं कुरुथ ॥

२—**द्वौ।** **इमौ।** दृश्यमानौ। **वातौ।** पवनौ। प्राणापानौ। **वातः।** वा गतिगन्धनयोः। गच्छतः, संचरतः। **आसिन्धोः।** मर्यादायामाकारः। स्यन्दनशील-नाडीदेशपर्यन्तम्। **आ परावतः।** शरीरादं बाह्यदेशपर्यन्तम्। **दक्षम्।** दक्ष वृद्धौ—अच्। वृद्धिकरं बलम्। **ते।** तव। **अन्यः।** एकः प्राणवायुः। **आवातु।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः— मनुष्य शुद्ध स्थान में शुद्ध वायु के सेवन से प्राण वायु के सञ्चार द्वारा शरीर का बल बढ़ाकर और अपान से पसीना आदि मल दोष नाश करके स्वस्थ रहें ॥ २ ॥

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः ।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ॥ ३ ॥

आ । वात । वाहि । भेषजम् । वि । वात । वाहि । यत् । रपः ।
त्वम् । हि । विश्वऽभेषज । देवानाम् । दूतः । ईयसे ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(वात) हे वायु (भेषजम्) स्वास्थ्य को (आ वाहि) बह कर ला और, (वात) हे वायु (यत् रपः=यत् रपः तत्) जो दोष है उसे (विवाहि) बह कर निकाल दे (हि) क्योंकि (विश्वभेषज) हे सर्वरोग-नाशक वायु ! (त्वम्) तू (देवानाम्) इन्द्रियों, विद्वानों और सूर्यादि लोकों के बीच (दूतः) चलने वाला वा दूत [समान सन्देश पहुंचाने वाला] होकर (ईयसे) फिरता रहता है ॥ ३ ॥

भावार्थः—वायु के संचार से शरीर का मल निकलकर स्वास्थ्य मिलता है और तार, विमान, ताप, वृष्टि आदि का संचार होता है ॥ ३ ॥

आगमयतु । **अन्यः** । द्वितीयोऽपानवायुः । **वि वातु** । विगमयतु । निवारयतु । **यत् । रपः** । रप व्यक्तायां वाचि—असुन् । रपो रिप्रमिति पापनामनी भवतः—निरु० ४ । २१ । पापम् दोषम् ॥

३—**वात** । हे वायो ! **आ वाहि** । आवह । आगमय । **भेषजम्** । **तस्येदम्** (पा० ४ । ३ । १२०) इति भिषज्—अण् । निपातनाद् गुणः । भिषजो वैद्यस्येदम् । स्वास्थ्यम् । **वि वाहि** । विगमय । विनाशय । **यत्** । यत्किञ्चित् । **रपः** । पापम् । दोषः । **हि** । यस्मात् कारणात् । **विश्वभेषज** । भेषं भयं जयतीति । जि—डः । सर्वव्याधिनिवर्तक वायो ! **देवानाम्** । इन्द्रियाणां विदुषां सूर्यादीनां च मध्ये । **दूतः** । **दुतनिभ्यां दीर्घश्च** (उ० ३ । ९०) इति दु गतौ उपतापे वा—कर्त्तरि क्तः । गन्ता । यद्वा दूतवत्सन्देशहरः । **ईयसे** । ईङ् गतौ—श्यन् । संचरसि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥ ४ ॥

त्रायन्ताम् । इमम् । देवाः । त्रायन्ताम् । मरुताम् । गणाः ।
त्रायन्ताम् । विश्वा । भूतानि । यथा । अयम् । अरपाः । असत् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(देवाः) इन्द्रियां (इमम्) इस [जीव] की (त्रायन्ताम्) रक्षा करें, और (मरुताम्) पवनों [श्वास प्रश्वासों] के (गणाः) प्रवाह (त्रायन्ताम्) रक्षा करें । और (विश्वाः = ०—नि) सब (भूतानि) पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, पांच तत्त्व (त्रायन्ताम्) रक्षा करें, (यथा) जिससे (अयम्) यह [प्राणी] (अरपाः) दोष रहित (असत्) रहे ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य इन्द्रियों के शोधन और श्वास प्रश्वास के यथावत् प्राणायाम से पंच भूतों को सम रख कर सदा हृष्ट पुष्ट रहें ॥ ४ ॥

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥ ५ ॥

आ । त्वा । अगमम् । शंतातिऽभिः । अथो इति । अरिष्टतातिऽभिः । दक्षम् ।
ते । उग्रम् । आ । अभारिषम् । परा । यक्ष्मम् । सुवामि । ते ॥ ५ ॥

४—**त्रायन्ताम्** । रक्षन्तु । **इमम्** । प्राणिनम् । **देवाः** । इन्द्रियाणि । **मरुताम्** । वायूनां श्वासप्रश्वासानाम् । **गणाः** । समूहाः । प्रवाहाः । **विश्वा** । विश्वानि सर्वाणि । **भूतानि** । पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानि । **यथा** । येन प्रकारेण । **अयम्** । देहस्थो जीवः । **अरपाः** । न विद्यन्ते रपांसि पापानि यस्मिन्निति बहुव्रीहौ । **नञसुभ्याम्** (पा० ६।२।१७२) इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् । अपापः । निर्दोषः । **असत्** । लेट् । भवेत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे प्राणी !] (त्वा) तुझको (शन्तातिभिः) शान्तिदायक कर्मों से (अथो) और भी (अरिष्टतातिभिः) अहिंसाकारक कर्मों से (आगमम्) मैं प्राप्त हुआ हूं । (ते) तेरे लिये (उग्रम्) उग्र (दक्षम्) वृद्धिकारक बल (आ अभारिषम्) मैं लाया हूं, [उससे] (ते) तेरे (यक्ष्मम्) महारोग को (परा सुवामि) दूर हटाता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्य श्वास प्रश्वास और पंच भूतों की यथावत् समता और ब्रह्मचर्य आदि शुभ कर्मों द्वारा दुष्कर्मों से बच कर बलवान् धनवान् और नीरोग होवे ॥ ५ ॥

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥ ६ ॥

अयम् । मे । हस्तः । भगऽवान् । अयम् । मे । भगवत्ऽतरः ।
अयम् । मे । विश्वऽभेषजः । अयम् । शिवऽअभिमर्शनः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (मे) मेरा (हस्तः) [बायां] हाथ (भगवान्) भाग्यवान् है, और (अयम्) यह (मे) मेरा [दायां हाथ] (भगवत्तरः) अधिक भाग्यवान् है । (अयम्) यह (मे) मेरा [हाथ] (विश्वभेषजः) सर्वरोगनाशक, और (अयम्) यह (शिवाभिमर्शनः) छूने में मंगल दायक है ॥ ६ ॥

५—**त्वा** । त्वां प्राणिनम् । **आगमम्** । गमेर्लुङि रूपम् । आगतवान्, प्राप्तवानस्मि । **शंतातिभिः** । **शिवशमरिष्टस्य करे** (पा० ४ । ४ । १४३) इति करणेऽर्थे तातिल् प्रत्ययः । **तिति**(पा० ६।१।१९३)इति प्रत्ययात् पूर्वस्य उदात्तत्वम् । शंकरैः सुखकरैः कर्मभिः । **अथो** । अपि च । **अरिष्टतातिभिः** । पूर्ववत् तातिल्, उदात्तत्वं च । अरिष्टम् अहिंसा । तत्करैः श्रेयोहेतुभिः कर्मभिः । **दक्षम्** । वृद्धिकरं बलम् । **ते** । तुभ्यम् । **उग्रम्** । उद्गूर्णम् । तीव्रम् । **आ अभारिषम्** । हस्य भकारः । आहार्षम् । आहृतवानस्मि । आनैशम् । **यक्ष्मम्** । महारोगम् । **परा सुवामि** । षू प्रेरणे, तौदादिकः । पराङ्मुखं प्रेरयामि । **ते** । तव ।

६—**अयम्** । दृश्यमानो वामहस्तः । **मे** । मदीयः । **हस्तः** । करः । **भगवान्** । भाग्यवान् । समर्थः । **अयम्** । दक्षिणहस्तः । **भगवत्तरः** । वामहस्ताद्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य श्वास प्रश्वास और पंच भूतों के परिज्ञान से स्पर्श द्वारा रोगों का निदान करके शरीर को रोग रहित और पुष्ट करे ॥ ६ ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—म० १० । सू० ६० । म० १२ ।

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ॥ ७ ॥

हस्ताभ्याम् । दशऽशाखाभ्याम् । जिह्वा । वाचः । पुरःऽगवी । अनामयित्नु-ऽभ्याम् । हस्ताभ्याम् । ताभ्याम् । त्वा । अभि । मृशामसि ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(दशशाखाभ्याम्) दश शाखा वाले (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों के द्वारा (जिह्वा) जिह्वा (वाचः) वाणी की (पुरोगवी) आगे ले चलने वाली है । (ताभ्याम्) उन (अनामयित्नुभ्याम्) आरोग्य देने वाले (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों से (त्वा) तुझको (अभि मृशामसि) हम छूते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य प्राण अपान और पंच भूत परीक्षा द्वारा दस अंगुलियों से दस इन्द्रियों और दस दिशाओं का ज्ञान प्राप्त करके दुःख की निवृत्ति और सुख की प्रवृत्ति करें ॥ ७ ॥

अधिकभाग्यवान् । **विश्वभेषजः** । सर्वरोगनिवर्तकः । **शिवाभिमर्शनः** । मङ्गल-स्पर्शयुक्तः । सुखस्पर्शः ॥

७—हस्ताभ्याम् । कराभ्याम् । **दशशाखाभ्याम्** । दश अङ्गुलयः शाखाभूता ययोस्तादृशाभ्याम् । **जिह्वा** । रसना । **वाचः** । वाण्याः । **पुरोगवी** । **गोरतद्धित-लुकि** (पा० ५।४।९२) इति पुरस् + गो समासे टच्, स्त्रियां ङीप्, अन्तर्गतण्यर्थः । पुरो अग्रे गौर्गमयित्री । **अनामयित्नुभ्याम्** । अनामय-इत्नुच् । अनामयशीला-भ्याम् । आरोग्यहेतुभ्याम् । **त्वा** । त्वां प्राणिनम् । **अभि मृशामसि** । **इदन्तो मसि** (पा० ७ । १ । ४६) इति मसः स्थाने मसि । अभितः स्पृशामः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १४ ॥

१–९ ॥ अग्निर्देवता ॥ १, ५–७ त्रिष्टुप् । २, ४ अनुष्टुप् । ३ प्रस्तारपङ्क्तिः । ८ पञ्चपदा जगती, ९ जगती ॥

ब्रह्मप्राप्त्युपदेशः—ब्रह्म की प्राप्ति का उपदेश ॥

अजो ह्य१ग्नेरजनिष्ट शोकात् सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्र आयन् तेन रोहान् रुरुहुर्मेध्यासः ॥१॥

अजः । हि । अग्नेः । अजनिष्ट । शोकात् । सः । अपश्यत् । जनितारम् । अग्रे । तेन । देवाः । देवताम् । अग्रे । आयन् । तेन । रोहान् । रुरुहुः । मेध्यासः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अजः) अजन्मा, वा गतिशील, अज अर्थात् जीवात्मा (शोकात्) दीप्यमान (अग्नेः) सर्वव्यापक अग्नि अर्थात् परमेश्वर से (हि) ही (अजनिष्ट) प्रकट हुआ । (सः) उस [जीवात्मा] ने (अग्रे) पहिले से वर्तमान (जनितारम्) अपने जनक [परमात्मा] को (अपश्यत्) देखा । (तेन) उस [ज्ञान] से (देवाः) देवताओं ने (अग्रे) पहिले काल में (देवताम्) देवतापन (आयन्) पाया, (तेन) उससे ही (मेध्यासः) मेधावी वा पवित्रस्वभाव पुरुष (रोहान्) चढ़ने योग्य पदों पर (रुरुहुः) चढ़े ॥ १ ॥

१—अजः । न जायते यः । नञ् + जन–डः । यद्वा, अज गतिक्षेपणयोः, अच् । अजन्मा । गतिशीलः । जीवात्मा–इति शब्दस्तोममहानिधिः । **हि** । निश्चयेन । **अग्नेः** । अगि गतौ–निः । सर्वव्यापकात् परमेश्वरात् । **अजनिष्ट** । प्रादुरभूत् । **शोकात्** । शुच शौचे, शोके च–घञ् । दीप्यमानात्–इति महीधरः य० १३ । ५१ । **सः** । अजः । जीवात्मा । **अपश्यत्** । दृष्टवान् । **जनितारम्** । जनयितारं स्वोत्पादकं प्रजापतिम् अग्निम् । **अग्रे** । सृष्टेः प्राग् वर्तमानम् । **तेन** । जनयितृज्ञानेन । **देवाः** । विद्वांसः । महात्मानः । **देवताम्** । तस्य भावस्त्वतलौ (पा० ५ । १ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य आदि पिता जगदीश्वर से अपना शरीर और सामर्थ्य पाकर अपने जन्म और वंश का गौरव बढ़ाते हैं, जैसे पूर्वज महात्माओं ने परमात्मा की महिमा पहचान कर मोक्ष आदि उच्च पद पाये हैं ॥ १ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद १३ । ५१ में है ॥

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान् हस्तेषु बिभ्रतः ।
दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥ २ ॥

क्रमध्वम् । अग्निना । नाकम् । उख्यान् । हस्तेषु । बिभ्रतः । दिवः । पृष्ठम् । स्वः । गत्वा । मिश्राः । देवेभिः । आध्वम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—[हे वीरो !] (उख्यान्) पके हुये आहारों को (हस्तेषु) हाथों में (बिभ्रतः) भरे हुये तुम (अग्निना) अग्नि अर्थात् परमेश्वर के सहारे से [अथवा अपने शरीर की उष्णता वा बल से] (नाकम्) पूर्ण सुख (क्रमध्वम्) पराक्रम से प्राप्त करो। और (देवेभिः) विद्वानों के साथ (मिश्राः) मिलते हुये तुम (दिवः) व्यवहार के (पृष्ठम्) सींचने वा बढ़ाने वाले अथवा पीठ के समान सहायक (स्वः) सुखस्वरूप परमात्मा को (गत्वा) प्राप्त होकर (आध्वम्) बैठो ॥ २ ॥

---

११९) इति तल् । देवभावम् । दिव्यगुणताम् । **अग्रे** । अस्मत्पूर्वकाले वर्त्तमानाः । **आयन्** । इण् गतौ–लङ् । प्राप्नुवन् । **रोहान्** । रुह-घञ् । आरोहणीयान् सुखलोकान् । **रुरुहुः** । आरूढवन्तः । **मेध्यासः** । **उगवादिभ्यो यत्** (पा० ५ । १ । २) इति मेधा–यत् । असुगागमः । मेधायै हिताः । मेध्याः । मेधाविनः । पवित्राः पुरुषाः ॥

२—क्रमध्वम् । पराक्रमेण प्राप्नुत । **अग्निना** । परमेश्वरसहायेन । यद्वा स्वशरीरस्थेन उष्णत्वेन । **नाकम्** । अकेन दुःखेन रहितं पूर्णसुखम् । **उख्यान्** । **शूलोखाद्यत्** (पा० ४ । २ । १७) इति उखा—**"संस्कृतं भक्षाः"**—इत्यर्थे यत् । उखायां पाकपात्रे संस्कृतान् आहारान् । **हस्तेषु** । करेषु, दानाय । **बिभ्रतः** । धरन्तः । **दिवः** । व्यवहारस्य । **पृष्ठम्** । **तिथपृष्ठगूथ०** (उ० २ । १२) इति पृषु सेचने—थक् । सेचकं वर्धकम् । यद्वा पृष्ठवत् सहायकम् । **स्वः** । सुखस्वरूपं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की अपार सृष्टि में पुरुषार्थ पूर्वक परोपकार के लिये अन्न प्राप्त करें और विद्वानों से व्यवहार शिक्षा पाकर आनन्द भोगें ॥ २ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से य० १७ । ६५ में है ॥

पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् । दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥ ३ ॥

पृष्ठात् । पृथिव्याः । अहम् । अन्तरिक्षम् । आ । अरुहम् । अन्तरिक्षात् । दिवम् । आ । अरुहम् । दिवः । नाकस्य । पृष्ठात् । स्वः । ज्योतिः । अगाम् । अहम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (पृथिव्याः) पृथिवी के (पृष्ठात्) पृष्ठ से (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक, आकाश को (आ अरुहम्) चढ़ गया (अन्तरिक्षात्) आकाश लोक से (दिवम्) सूर्य लोक को (आ अरुहम्) मैं चढ़ गया । (नाकस्य) सुख देने हारे (दिवः) प्रकाशमान सूर्य लोक के (पृष्ठात्) पृष्ठ से (अहम्) मैंने (स्वः) सुख स्वरूप और (ज्योतिः) ज्योति स्वरूप परमात्मा को (अगाम्) प्राप्त किया ॥ ३ ॥

भावार्थः—योगी पुरुष विद्याभ्यास और योगाभ्यास से पृथिवी, अन्तरिक्ष

परमात्मानम् । **गत्वा** । प्राप्य । **मिश्राः** । मिश्रिताः । मिलिताः सन्तः । **देवेभिः** । देवैः । विद्वद्भिः । **आध्वम्** । आस उपवेशने—लोट् । उपविशत ॥

३—**पृष्ठात्** । तलात् । **पृथिव्याः** । भूमेः । **अहम्** । विद्वान् योगी जनः । **अन्तरिक्षम्** । आकाशम् । **आ अरुहम्** । रुह–लुङ् । आरूढवान् । **अन्तरिक्षात्** । आकाशात् । **दिवम्** । प्रकाशमानं सूर्यम् । **दिवः** । सूर्यस्य । **नाकस्य** । सुखनिमित्तस्य अन्धकारनाशकत्वात् । **पृष्ठात्** । उपरिभागात् । **स्वः** । सुखस्वरूपम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सूर्य लोक में खोजता हुआ तुरीय अर्थात् इन तीनों से चौथे आनन्दघन, ज्योतिः स्वरूप परब्रह्म को प्राप्त करके ब्रह्मानन्द में मग्न हो जाता है ॥ ३ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजु० १७।६७ में है ॥

स्व१र्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥ ४ ॥

स्वः । यन्तः । न । अप । ईक्षन्ते । आ । द्याम् । रोहन्ति । रोदसी इति । यज्ञम् । ये । विश्वतःऽधारम् । सुऽविद्वांसः । विऽततेनिरे ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(ये) जो (सुविद्वांसः) बड़े विद्वान् योगी जन (द्याम्) अन्तरिक्ष और (रोदसी) सूर्य और पृथिवी लोक तक (आरोहन्ति) चढ़ते हैं, और जिन्होंने (विश्वतोधारम्) सब प्रकार से धारण शक्ति वाले (यज्ञम्) देव अर्थात् ब्रह्म के पूजन को (वितेनिरे) फैलाया है, वे ही योगी पुरुष (यन्तः न) चलते फिरते उद्योगी पुरुषों के समान (स्वः) सुख स्वरूप परब्रह्म को (अपेक्षन्ते) हृदय से चाहते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् योगी जन संसार के सब पदार्थों के विज्ञानी होकर परमात्मा की महिमा को विचारते हैं, वे ही उससे प्रीति करके आत्मबल पाकर यशस्वी होते हैं ॥ ४ ॥

यह मंत्र यजुर्वेद में है–य० १७ म० ६८ ॥

ज्योतिः । ज्योतिः स्वरूपं परमात्मानम् । **अगाम्** । इण् गतौ—लुङ् । आगमम् । प्राप्तवान् ॥

४—स्वः । सुखस्वरूपं परब्रह्म । **यन्तः** । गच्छन्तः । उद्योगिनः पुरुषाः । **न** । इव—निरु० ३ । १५ । **अप ईक्षन्ते** । अप + ईक्ष दर्शने । आकाङ्क्षन्ति । समालोकन्ते ते सुविद्वांसः । **द्याम्** । अन्तरिक्षम् । **आ रोहन्ति** । आरूढा भवन्ति ये सुविद्वांसः । **रोदसी** । द्यावापृथिव्यौ च । **यज्ञम्** । देवस्य परब्रह्मणः पूजनम् । **ये** । **विश्वतोधारम्** । सर्वतो धाराभिर्धारणशक्तिभिर्युक्तम् । **सुविद्वांसः** । सुष्ठु विशेषेण कर्म प्रकारं जानन्तः, पण्डिताः, योगिनः । **वितेनिरे** । तनु—लिट् । विस्तारितवन्तः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥५॥

अग्ने । प्र । इहि । प्रथमः । देवतानाम् । चक्षुः । देवानाम् । उत । मानुषाणाम् । इयक्षमाणाः । भृगुऽभिः । सऽजोषाः । स्वः । यन्तु । यजमानाः । स्वस्ति ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (प्रेहि) प्राप्त हो, तू (देवतानाम्) सब विद्वानों में (प्रथमः) पहिला और (देवानाम्) सूर्य आदि लोकों का (उत) और भी (मानुषाणाम्) मनुष्य जातियों का (चक्षुः) नेत्र [के समान देखने वाला] है । (इयक्षमाणाः) संगति चाहने वाले (भृगुभिः) परिपक्व विज्ञानी वेदज्ञ ब्राह्मणों के साथ (सजोषाः) एक सी प्रीति करते हुये, (यजमानाः) दानशील यजमान लोग (स्वः) सुख स्वरूप परब्रह्म और (स्वस्ति) कल्याण को (यन्तु) प्राप्त होवें ॥ ५ ॥

भावार्थः—परमात्मा सबका आदि गुरु है वही सबका साक्षी और नियन्ता है, पुरुषार्थी सदाचारी पुरुष विज्ञानी महात्माओं के सत्संग से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करके परमगति प्राप्त करें ॥ ५ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—य० १७ । ६९ ॥

५—**अग्ने** । हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! । **प्रेहि** । प्रगच्छ । अस्मान् प्राप्नुहि । **प्रथमः** । आदिमः । मुख्यः । **देवतानाम्** । देव–स्वार्थे तल् । देवानां विदुषाम् । **चक्षुः** । नेत्रवद् द्रष्टा । **देवानाम्** । सूर्यादिलोकानाम् । **उत** । अपि च । **मानुषाणाम्** । **मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च** (पा० ४ । १ । १६१) इति मनु–अञ् षुगागमः । मनुष्यजातीनाम् । **इयक्षमाणाः** । यजेः सन् । **सन्यतः** (पा० ७ । ४ । ७९) इति अभ्यासाकारस्य इकारः, आदिवर्ण लोपश्छान्दसः । इयक्षमाणाः । यष्टुं संगन्तुमिच्छन्तः । **भृगुभिः** । अ० २ । ५ । ३ । परिपक्वविज्ञानैः अनूचानब्राह्मणैः । **सजोषाः** । जुषी प्रीतिसेवनयोः—घञ् । समानस्य सभावः । समानप्रीतयः । प्रीतिमन्तः । **स्वः** । सुखस्वरूपं परब्रह्म । **यन्तु** । प्राप्नुवन्तु । **यजमानाः** । यज–शानच् । दानशीलाः । **स्वस्ति** । कल्याणं च ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥६॥

अजम् । अनज्मि । पयसा । घृतेन । दिव्यम् । सुऽपर्णम् । पयसम् । बृहन्तम् । तेन । गेष्म । सुऽकृतस्य । लोकम् । स्वः । आऽरोहन्तः । अभि । नाकम् । उत्ऽतमम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(दिव्यम्) दिव्य गुण वाले, (सुपर्णम्) बड़े पूर्ण शुभ लक्षण वाले (पयसम्) गतिमान् वा उद्योगी (बृहन्तम्) बड़े बली (अजम्) जीवात्मा को (घृतेन) प्रकाशमान (पयसा) ज्ञान से (अनज्मि) मैं [मनुष्य] संयुक्त करता हूं । (तेन) उस [ज्ञान] से (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) दुःख रहित (स्वः) सुखस्वरूप परब्रह्म को (अभि = अभिलक्ष्य) लख कर (आरोहन्तः) चढ़ते हुये हम (सुकृतस्य लोकम्) पुण्य लोक को (गेष्म) खोजें ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा की दी हुई अद्भुत शक्तियों से अपना ज्ञान बढ़ावे, और उस आनन्दस्वरूप जगत्पति की अनन्त महिमा को खोजता हुआ निरन्तर उन्नति करके मोक्ष पद प्राप्त करे ॥ ६ ॥

६—**अजम्** । म० १ । अजनशीलम् जीवात्मानम् । **अनज्मि** । अञ्जू व्यक्ति-म्रक्षणकान्तिगतिषु । म्रक्षयामि । मिश्रयामि । **पयसा** । पय गतौ-असुन् । ज्ञानेन । **घृतेन** । घृ क्षरणदीप्त्योः सेचने च-क्तः । प्रकाशमानेन । **दिव्यम्** । प्रकाशार्हम् । मनोहरम् । **सुपर्णम्** । पॄ पालनपूरणयोः-नः । शोभनानि पर्णानि पूर्णानि शुभलक्षणानि यस्य तम्-यथा दयानन्दभाष्ये य० १७-७२ । **पयसम्** । **अत्यविचमि०** (उ० ३।११७) इति पय गतौ—असच् । गतिशीलम् । उद्योगिनम् । **बृहन्तम्** । महान्तं बलिनम् । **तेन** । उक्तप्रकारेण । **गेष्म** । अ० ४।११।६। अन्विच्छाम । **सुकृतस्य** । शुभकर्मणः । **लोकम्** । अ० ४।११।६ । स्थानम् । **स्वः** । सुखस्वरूपं परब्रह्म । **आरोहन्तः** । रुह-शतृ । अधिरोहन्तः । **अभि** । अभिलक्ष्य । **नाकम्** । दुःखशून्यम् । **उत्तमम्** । सर्वोत्कृष्टम् ॥

---

१. वस्तुतः पय गतौ से औणादिक असुन् प्रत्यय करके पयस् शब्द निष्पन्न हो जाता है । किन्तु उपर्युक्त दोनों स्थलों में स्वरभेद होने से 'पयसम्' यहाँ बाहुलक से पय धातु मान कर असच् प्रत्यय करते हैं । जिससे चितः (६ । १ । १६३) से अन्तोदात्त हो जाये ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिर्दर्व्योद्धर पञ्चधैतमोदनम् । प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ॥ ७ ॥

पञ्चऽओदनम् । पञ्चऽभिः । अङ्गुलिऽभिः । दर्व्या । उत् । हर । पञ्चऽधा । एतम् । ओदनम् । प्राच्याम् । दिशि । शिरः । अजस्य । धेहि । दक्षिणायाम् । दिशि । दक्षिणम् । धेहि । पार्श्वम् ॥ ७ ॥

भावार्थः—(एतम्) इस (पञ्चधा) पांच प्रकार पर (पञ्चौदनम्) पांच भूतों से सींचे हुये (ओदनम्) वृद्धि करने वाले आत्मा को (पञ्चभिः) विस्तृत (अङ्गुलिभिः) चेष्टाओं के साथ (दर्व्या) विदारण वा पृथक् करण शक्ति से (उद्धर=उत्हर) ऊपर ला, (प्राच्याम्) अपने से पूर्व वा सन्मुख (दिशि) दिशा में (अजस्य) जीवात्मा का (शिरः) शिर (धेहि) धर, (दक्षिणायाम् दिशि) दक्षिण दिशा में (दक्षिणम्) दाहिने (पार्श्वम्) कक्षा के नीचे भाग को (धेहि) धर ॥ ७ ॥

७—**पञ्चौदनम् । कनिन् युवृषितक्षि०** (उ० १ । १५६) इति पचि व्यक्तीकरणे विस्तारे च–कनिन् । **उन्देर्नलोपश्च** (उ० २ । ७६) इति उन्दी क्लेदने–युच् । ओदनो मेघः–निघ० १ । १० । ओदनमुदकदानं मेघम्–निरु० ६ । ३४ । पंचभिर्भूतैः ओदनः सेचनं यस्य तम् । **पंचभिः** । विस्तृताभिः । **अङ्गुलिभिः** । **ऋतन्यञ्जि०** (उ० ४ । २) इति अङ्ग पदे=चेष्टायाम्–उलिप्रत्ययः । अंगुलयः कस्मादग्रगामिन्यो भवन्तीति वाग्रगालिन्यो भवन्तीति वाग्रकारिण्यो भवन्तीति वाग्रसारिण्यो भवन्तीति वाङ्कना भवन्तीति वाञ्चना भवन्तीति वापि वाभ्यञ्चनादेव स्युः । निरु० ३ । ८ । चेष्टाभिः । **दर्व्या** । **दृदृभ्यां क्विन्** (उ० ४ । ५३) इति दृ विदारणे क्विन्, ङीष् । विदारणशक्तया । **उद् हर** । उद्धृत्य स्थापय । **पंचधा** । पंचप्रकारेण विभज्य । **एतम्** । आ—इण्–क्तः । आगतं दृश्यमानं वा । **ओदनम्** । व्याख्यातम् । सेचनसमर्थं यद्वा, अन्नवद् वृद्धिकरम् आत्मानम् । **प्राच्याम्** । अ० ३ । २६ । १ । स्वस्थानात् पूर्वस्याम् । स्वाभिमुखी भूतायाम् । **दिशि** । दिशायाम् । **शिरः** । अ० २।२५।२ । मस्तकम् । **अजस्य** । म०१ । अजन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—पंच भूत निर्मित स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर वाला आत्मा इन्द्रियों सहित रहता है। योगी विवेक दृष्टि द्वारा आत्मा को स्थूल शरीर से पृथक् करे, और आत्मा के सूक्ष्म अवयवों को मन्त्र ७ व ८ के अनुसार स्थापित करके मन्त्र ९ के अनुसार मोक्ष फल प्राप्त करे ॥ ७ ॥

प्रतीच्यां दिशि भसदस्य धेह्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम् । ऊर्ध्वायां दिश्य१ जस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्य मन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य ॥ ८ ॥

प्रतीच्याम् । दिशि । भसदम् । अस्य । धेहि । उत्तरस्याम् । दिशि । उत्तरम् । धेहि । पार्श्वम् । ऊर्ध्वायाम् । दिशि । अजस्य । अनूकम् । धेहि । दिशि । ध्रुवायाम् । धेहि । पाजस्य म् । अन्तरिक्षे । मध्यतः । मध्यम् । अस्य ॥८॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (प्रतीच्याम्) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशि) दिशा में (अस्य) इस [जीवात्मा] के (भसदम्) दीप्ति वा कटि भाग को (धेहि) धर, (उत्तरस्याम्) उत्तर वा बाईं (दिशि) दिशा में (उत्तरम्) बायें (पार्श्वम्) कक्षा के नीचे भाग को (धेहि) धर। (ऊर्ध्वायाम्) ऊपर वाली (दिशि) दिशा में (अजस्य) जीवात्मा की (अनूकम्) रीढ़ को (धेहि)

शीलस्य जीवात्मनः। **धेहि** । धर। **दक्षिणायाम्** । दक्षिणस्याम् । **पार्श्वम्** । **स्पृशेः श्वण्शुनौ पृ च** (उ० ५ । २७) इति स्पृश संस्पर्शने श्वण्, धातोः पृ इत्यादेशः । कक्षयोरधोभागम् ॥

८—**प्रतीच्याम्** । अ० ३ । २६ । ३ । पश्चिमायाम् पश्चात् स्थितायाम् । **दिशि** । दिशायाम् । **भसदम्** । **शृदृभसोऽदिः** (उ० १ । १३०) इति भस भर्त्सनदीप्तचोः-अदिः । कटिप्रदेशं जघनं वा । **अस्य** । अजस्य । **धेहि** । स्थापय । **उत्तरस्याम्** । उदीच्याम् । वामभागवर्तमानायाम् । **उत्तरम्** । वामभागस्थम् । **पार्श्वम्** । म० ७ । **ऊर्ध्वायाम्** । अ० ३ । २६ । ६ । उपरि वर्तमानायाम् । **अजस्य** । म० १ । जीवात्मनः । **अनूकम्** । अनु+उच समवाये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर, (ध्रुवायाम्) स्थिर (दिशि) दिशा में (अस्य) इसके (पाजस्यम्) बल देने वाले उदर को, और (अन्तरिक्षे) आकाश में (मध्यतः) बीचोबीच (मध्यम्) मध्य भाग को (धेहि) धर ॥ ८ ॥

भावार्थः—मन्त्र ७ देखो ॥८॥

शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः संभृतं विश्वरूपम् । स उत् तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु ॥ ९ ॥

शृतम् । अजम् । शृतया । प्र । ऊर्णुहि । त्वचा । सर्वैः । अङ्गैः । सम्ऽभृतम् । विश्वऽरूपम् । सः । उत् । तिष्ठ । इतः । अभि । नाकम् । उत्ऽतमम् । पत्ऽभिः । चतुःऽभिः । प्रति । तिष्ठ । दिक्षु ॥ ९ ॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (विश्वरूपम्) संपूर्ण रूप से (सर्वैः) सब (अङ्गैः) अंगों के साथ (संभृतम्) भले प्रकार पुष्ट, और (शृतम्) परिपक्व [दृढ़ ज्ञानी] (अजम्) जीवात्मा को (शृतया) परिपक्व (त्वचा) विस्तृत शक्ति से (प्र) भले प्रकार (ऊर्णुहि) ढक ले । (सः) सो तू (इतः) यहां से (उत्तमम्) सर्वोत्तम (नाकम्) सुख स्वरूप परब्रह्म को (अभि = अभिलक्ष्य) लखकर (उत् तिष्ठ) उठ, और (चतुर्भिः पद्भिः) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पदार्थों के सहित (दिक्षु) सब दिशाओं में (प्रतितिष्ठ) प्रतिष्ठित हो ॥ ९ ॥

घञर्थे कः । **न्यङ्क्वादीनां च** (पा० ७ । ३ । ५३) इति कुत्वम् । पृष्ठवंशम् । **ध्रुवायाम्** । अ० २ । २६ । ४ । स्थिरायाम् । अधस्तात् । **पाजस्यम्** । पाज इति बलनाम-निघ० २ । ९ । पाजसे हितम् । बलकरमङ्गम् । उदरम् । **अन्तरिक्षे** । आकाशे । **मध्यतः** । मध्यभागे । **मध्यम्** । शरीरमध्यभागम् । **अस्य** । निर्दिष्टस्य ॥

९—**शृतम्** । श्रा वा श्रै पाके-क्तः । **शृतं पाके** (पा० ६ । १ । २७) इति शृभावः । पक्वम् । परिपक्वज्ञानम् । **अजम्** । म० १ । जीवात्मानम् । **शृतया** । परिपक्वया । दृढया । **प्र ऊर्णुहि** । ऊर्णुञ् आच्छादने । प्रकर्षेणाच्छादय । **त्वचा** । **तनोतेरनश्च वः** (उ० २ । ६३) इति तनु विस्तारे-चिक्, अनश्च वः यद्वा, त्वच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य उपरोक्त रीति से पंच भूत और जीवात्मा के विवेक से पक्का ज्ञानी होकर सब प्रकार पुष्ट और परमात्मा में लवलीन होकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, की प्राप्ति से संसार भर में प्रतिष्ठावान् होता है ।। ९ ।।

सूक्तम् १५ ।।

१-१६ ।। पर्जन्यो देवता ।। १-३,-५ जगती, ४, ७, ८, १३-१५ अनुष्टुप्, ६, १०, ११, १६ त्रिष्टुप् १२ जगती ज्योतिष्मती ।।

वृष्टेः प्रार्थना गुणाश्चोपदिश्यन्ते—वृष्टि की प्रार्थना और गुणोंका उपदेश ।।

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु । महृक्षभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ।। १ ।।

सम्ऽउत्पतन्तु । प्रऽदिशः । नभस्वतीः । सम् । अभ्राणि । वातऽजूतानि । यन्तु । महाऽऋषभस्य । नदतः । नभस्वतः । वाश्राः । आपः । पृथिवीम् । तर्पयन्तु ।।१।।

भाषार्थः—(नभस्वतीः = ०—त्यः) बादल से छायी हुई (प्रदिशः) दिशायें (समुत्पतन्तु) भले प्रकार उदय हों, (वातजूतानि) पवन से चलाये गये (अभ्राणि) जल भरे बादल (संयन्तु) छा जावें । (महऋषभस्य) बड़े

संवरणे—क्विप् । विस्तृतशक्त्या । ज्ञानावरणेन वा । **सर्वैः** । अशेषैः । **अङ्गैः** । अवयवैः । **संभृतम्** । सम्यक् पुष्टम् । **विश्वरूपम्** । यथा तथा । सर्वरूपेण । सर्वाकारेण । **सः** । तादृशः परिपक्वज्ञानः । **उत् तिष्ठ** । उद्गच्छ । **इतः** । अस्माद् देशात् । **अभि** । अभिलक्ष्य । **नाकम्** । दुःखरहितं परब्रह्म । **उत्तमम्** । श्रेष्ठम् । **पद्भिः** । पद स्थैर्ये गतौ च—क्विप् । धर्मार्थकाममोक्षाख्यैः पदार्थैः । **चतुर्भिः** । **प्रतितिष्ठ** । प्रतिष्ठितो भव । **दिक्षु** । सर्वासु दिशासु ।।

१—**समुत्पतन्तु** । सम्यग् उद्गच्छन्तु । उद्यन्तु । **प्रदिशः** । प्रकृष्टाः दिशः । **नभस्वतीः** । नभः—म० ३ । **वा छन्दसि** (पा० ६ । १ । १०६) इति पूर्वसवर्णदीर्घः । नभस्वत्यः । मेघवत्यः । **अभ्राणि** । अभ्र गतौ=पचाद्यच् (पा० ३ । १ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गमन शील (नदतः) गरजते हुये (नभस्वतः) आकाश में छाये [बादल] की (वाश्राः) धड़ धड़ाती (आपः) जल धारायें (पृथिवीम्) पृथिवी को (तर्पयन्तु) तृप्त करें ॥ १ ॥

भावार्थः—पवन द्वारा वर्षा होने से दिशायें निर्मल और पृथिवी अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न करने योग्य हो जाती है, इसी प्रकार मनुष्य उपकारी बनें ॥ १ ॥

समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम् । वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः ॥ २ ॥

सम् । ईक्षयन्तु । तविषाः । सुऽदानवः । अपाम् । रसाः । ओषधीभिः । सचन्ताम् । वर्षस्य । सर्गाः । महयन्तु । भूमिम् । पृथक् । जायन्ताम् । ओषधयः । विश्वऽरूपाः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(तविषाः विशाल गुण वाले (सुदानवः) बड़े दान करने वाले [मेघ, हमें वृष्टि] समीक्षयन्तु) दिखावें, (अपाम्) जल के (रसाः) रस (ओषधीभिः) अन्नादि ओषधियों से (सचन्ताम्) एक सम हो जावें । (वर्षस्य)

---

१३४) यद्वा, अप्–भृञ्–कः । अपो जलानि बिभ्रति धारयन्तीति मेघाः । **वातजूतानि** । जु वेगे–क्तः, दीर्घत्वम् । वायुना प्रेरितानि । **संयन्तु** । संगच्छन्ताम् । **मह ऋषभस्य । ऋषिवृषिभ्यां कित्** (उ० ३ । १२३) इति ऋषी गतौ–अभच् स च कित् । महागतिशीलस्य । **नदतः** । गर्जतः । **नभस्वतः** । आकाशस्थस्य मेघस्य । **वाश्राः** । **स्फायितञ्चिवञ्चि०** (उ० २ । १३) इति वाशृ शब्देरक् । शब्दायमानाः । **आपः** । जलधाराः । **पृथिवीम्** । भूमिम् । **तर्पयन्तु** । तृप्ताम् ओषधिप्ररोहणसमर्थां कुर्वन्तु ॥

२—**समीक्षयन्तु** । ईक्ष दर्शने, णिच् । संदर्शयन्तु अस्मान् वृष्टिम् । **तविषाः** । **तवेर्णिद्वा** (उ० १ । ४८) इति तु गति वृद्धिहिंसासु–टिषच् । तविषो महन्नाम निघ० ३।३ । महान्तः । **सुदानवः** । **दाभाभ्यां नुः** (उ० ३ । ३२) इति दा–नुः । शोभनदानाः मेघाः । **अपाम्** । उदकानाम् । **रसाः** । श्रेष्ठगुणाः । **ओषधीभिः** । व्रीहियवादिभिः । अन्नैः । **सचन्ताम्** । षच समवाये । समवयन्तु ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षा की (सर्गाः) धारायें (भूमिम्) भूमि को (महयन्तु) समृद्ध करें, (विश्व-रूपाः) नाना रूप वाली (ओषधयः) चावल, यवादि ओषधें (पृथक्) नाना प्रकार से (जायन्ताम्) उत्पन्न होवें ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे मेघों की वर्षा से सब लोग आनन्द पाते हैं, वैसे ही मनुष्य विद्वानों के सत्संग से लाभ उठावें ॥ २ ॥

समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद् विजन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः॥ ३॥

सम् । ईक्षयस्व । गायतः । नभांसि । अपाम् । वेगासः । पृथक् । उत् । विजन्ताम् । वर्षस्य । सर्गाः । महयन्तु । भूमिम् । पृथक् । जायन्ताम् । वीरुधः । विश्वऽरूपाः ॥ ३ ॥

भावार्थः—[हे ईश्वर !] गायतः गान करने वाले लोगों को (नभांसि) बादलों का (समीक्षयस्व) दर्शन करा । (अपाम्) जल के (वेगासः) प्रवाह (पृथक्) नाना प्रकार से (उद् विजन्ताम्) उमड़ कर चलें । (वर्षस्य) वर्षा की (सर्गाः) धारायें (भूमिम्) भूमि को (महयन्तु) समृद्ध करें, (विश्व-

---

वर्षस्य । वृष्टिजलस्य । **सर्गाः** । सृज्यमानाः प्रवाहाः । **महयन्तु** । मह वृद्धौ । वर्धयन्तु । समर्धयन्तु । **भूमिम्** । पृथिवीम्, भूमिस्थपदार्थानित्यर्थः । **पृथक्** । नानाप्रकारेण जातिभेदेन । **जायन्ताम्** । उत्पद्यन्ताम् । **ओषधयः** । व्रीहियवाद्याः । **विश्वरूपाः** । नानाविधाः ॥

३—**समीक्षयस्व** । द्विकर्मकः । सन्दर्शय । **गायतः** । स्तुवतो लोकान् । **नभांसि** । **नहेर्दिवि भश्च** (उ० ४ । २११) इति णह बन्धने–असुन् हस्य भः । यद्वा णभ हिंसायाम्–असुन् । नभ उदकम्–निघ० १।१२ । नभ आदित्यो भवति नेता रसानां नेता भासां ज्योतिषां प्रणयोऽपि वा । भन एव स्याद् विपरीतो न न भातीति वैतेन द्यौर्व्याख्याता–निरु० २ । १४ । अभ्राणि । **अपाम्** । उदकानाम् । **वेगासः** । वेगाः प्रवाहाः । **पृथक्** । भिन्नभिन्नप्रकारेण । **उद् विजन्ताम्** । ओविजी भयसंचलनयोः । उच्चलन्तु । **वीरुधः** । विरोहणशीला आरण्या ओषधिवनस्पतयः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपाः) नाना रूप (वीरुधः) झाड़ लतायें (पृथक्) नाना प्रकार से (जायन्ताम्) उपजें ॥ ३ ॥

भावार्थः—मन्त्र २ के समान है ॥ ३ ॥

गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक् ।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥ ४ ॥

गणाः । त्वा । उप । गायन्तु । मारुताः । पर्जन्य । घोषिणः ।
पृथक् । सर्गाः । वर्षस्य । वर्षतः । वर्षन्तु । पृथिवीम् । अनु ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(पर्जन्य) हे मेघ ! (घोषिणः) आनन्द ध्वनि करने वाले (मारुताः) ऋत्विज् लोगों के (गणाः) समूह (त्वा) तेरा (पृथक्) नाना प्रकार से (उप) आदर पूर्वक (गायन्तु) गान करें। (वर्षतः) बरसते हुये (वर्षस्य) वृष्टि जल की (सर्गाः) धारायें (पृथिवीम्) पृथिवी पर (अनु) अनुकूल (वर्षन्तु) बरसें ॥ ४ ॥

भावार्थः—वृष्टि से अन्न आदि यज्ञ के पदार्थ उत्पन्न होते और याजक गण वृष्टि के गुणों को गा गाकर आनन्द मनाते हैं ॥ ४ ॥

उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु॥५॥

४—गणाः । समूहाः । **त्वा ।** त्वाम् । **उप गायन्तु ।** उप आदरेण स्तुवन्तु । **मारुताः ।** मरुतः—अ० १ । २० । १ । ऋत्विजः—निघ० ३।१८ । मरुत्—अण् । ऋत्विक्संबन्धिनः । **पर्जन्य ।** अ० १ । २ । १ । हे सेचक, मेघ ! **घोषिणः ।** आनन्दघोषयुक्ताः । **पृथक् ।** नानात्वेन । **सर्गाः ।** प्रवाहाः । **वर्षस्य ।** वृष्टिजलस्य । **वषतः ।** सिञ्चतः । **वर्षन्तु ।** आर्द्रीकुर्वन्तु । **पृथिवीम् । अनु ।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत् । ईरयत । मरुतः । समुद्रतः । त्वेषः । अर्कः । नभः । उत् । पातयाथ । महाऽऋषभस्य । नदतः । नभस्वतः । वाश्राः । आपः । पृथिवीम् । तर्पयन्तु ॥५॥

भाषार्थः—(मरुतः) हे वायुवेगो ! (अर्कः = अर्कस्य) सूर्य के (त्वेषः = त्वेषेण) प्रकाश द्वारा (नभः) जल को (समुद्रतः) समुद्र से (उदीरयत) उठाओ और (उत् पातयाथ) ऊपर ले जाओ। (मह ऋषभस्य) बड़े गमनशील, (नदतः) गरजते हुये, (नभस्वतः) आकाश में छाये [बादल] की (वाश्राः) धड़धड़ाती (आपः) जल धारायें (पृथिवीम्) पृथिवी को (तर्पयन्तु) तृप्त करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—जल, पवन और प्रकाश द्वारा पृथिवी से मेघमंडल में चढ़ता और फिर पृथिवी पर बरसकर अनेक पदार्थ उपजाता है, इसी प्रकार सज्जन पुरुष विज्ञान से परिपूर्ण होकर संसार में विद्या फैलाते हैं ॥ ५ ॥

अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्धि ।
त्वया सृष्टं बहुलमेतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ॥ ६ ॥

अभि । क्रन्द । स्तनय । अर्दय । उदऽधिम् । भूमिम् । पर्जन्य । पयसा । सम् । अङ्धि । त्वया । सृष्टम् । बहुलम् । आ । एतु । वर्षम् । आशारऽएषी । कृशऽगुः । एतु । अस्तम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(पर्जन्य) हे मेघ ! तू (अभि) सब ओर (क्रन्द) गड़गड़ कर, (स्तनय) गरज, (उदधिम्) समुद्र को (अर्दय) हिला दे, (भूमिम्) भूमि को

५—उदीरयत । ऊर्ध्वं प्रेरयत जलम् । **मरुतः ।** वायुवेगाः । **समुद्रतः ।** पार्थिवसमुद्रात् । **त्वेषः ।** त्विष दीप्तौ—घञ् । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) इति तृतीयायां प्रथमा । त्वेषेण । प्रकाशेन । **अर्कः ।** अर्क स्तवने तापे च—अच् । षष्ठ्यर्थे प्रथमा । सूर्यस्य । **नभः ।** म० ३ । उदकम् । **उत् पातयाथ ।** पत गतौ—णिच् लेट् । उद्गमयत । अन्यद् गतम्—म० १ ॥

६—अभि । अभितः । **क्रन्द ।** शब्दं कुरु । **स्तनय ।** घोषय । गर्ज । **अर्दय ।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पयसा) जल से (सम्अङ्धि) भरदे । (त्वया) तुझ करके (सृष्टम्) भेजा हुआ (बहुलम्) बहुत पदार्थ लाने वाला (वर्षम्) वृष्टि जल (ऐतु) आवे, (आशारैषी) शरण चाहने वाला, (कृशगुः) दुबली गौ बैल वाला किसान (अस्तम्) अपने घर (एतु) जावे ॥ ६ ॥

भावार्थः—पृथिवी पर वृष्टि होने से अनेक पदार्थ उपजते हैं, तब किसान आनन्द पूर्वक थके दुर्बल पशुओं को चराकर घर ले जाते हैं ॥ ६ ॥

सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥ ७ ॥

सम् । वः । अवन्तु । सुऽदानवः । उत्साः । अजगराः । उत ।
मरुत्ऽभिः । प्रऽच्युताः । मेघाः । वर्षन्तु । पृथिवीम् । अनु ॥७॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (सुदानवः) महा दानी, (अजगराः) अजगर [समान स्थूल आकार वाले] (उत्साः) स्रोते (वः) तुम्हें (उत) अत्यन्त करके (सम्) यथावत् (अवन्तु) तृप्त करें। (मरुद्भिः) पवन से (प्रच्युताः) चलाये गये (मेघाः) मेघ (पृथिवीम्) पृथिवी पर (अनु) अनुकूल (वर्षन्तु) बरसें ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य मेह के समान परस्पर उपकार करें ॥ ७ ॥

पीडय । **उदधिम्** । जलधिम् । **भूमिम्** । **पर्जन्य** । हे मेघ । **पयसा** । वृष्टिजलेन । **सम् अङ्धि** । अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु । समक्तां संसिक्तां कुरु । **त्वया** । **सृष्टम्** । प्रेरितम् । **बहुलम्** । अ० ३ । १४ । ६ । बहूनर्थान् लातीति, बहु+ला दानादानयोः-कः । बहुपदार्थप्रापकम् । **आ एतु** । आगच्छतु । **वर्षम्** । वृष्टिजलम् । **आशारैषी** । शॄ वायुवर्णनिवृत्तेषु (वा० पा० ३।३।२१) इति आङ् + शॄ हिंसायाम्-घञ् । आशृणाति दुःखम् आशारः शरणम् । आशारमिच्छतीति, इष-णिनि । शरणेच्छुः । **कृशगुः** । **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** (पा०१।२।४८) इति ह्रस्वः। कृशाः दुर्बलाः गावः पशवो यस्यतथाविधिः कर्षकः। **एतु**। गच्छतु । **अस्तम्**। **हसिमृग्रिण्०** (उ० ३ । ८६) अस गतिदीप्त्यादानेषु-तन् । गृहम्—निघ०३।४॥

७—**सम्** । सम्यक् । एकीभूय । **वः** । युष्मान् हे जनाः । **अवन्तु** । तर्पयन्तु । **सुदानवः** । म० २ । महादातारः । **उत्साः** । अ० १ । १५ । ३ । स्रोतां-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः संयन्तु पृथिवीमनु ॥ ८ ॥

आशाम्ऽआशाम् । वि । द्योततताम् । वाताः । वान्तु । दिशःऽदिशः । मरुत्ऽभिः । प्रऽच्युताः । मेघाः । सम् । यन्तु । पृथिवीम् । अनु ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(वाताः) पवनें (दिशोदिशः) दिशा दिशा से (द्योतताम्) दीप्यमान (आशाम्-आशाम्) प्रत्येक दिशा को (वि) विविध प्रकार से (वान्तु) चलें । (मरुद्भिः) पवनों से (प्रच्युताः) चलाये गये (मेघाः) मेह (पृथिवीम्) पृथिवी पर (अनु) अनुकूल (संयन्तु) उमड़ कर आवें ॥८॥

भावार्थः—जैसे मेह पवन द्वारा एक देश से दूसरे देश में बरसते हैं वैसे ही मनुष्य प्रयत्न करके देश देशान्तरों में वेद विद्या फैलावें ॥८॥

आपो विद्युदभ्रं वर्ष सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत । मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥९॥

आपः । विऽद्युत् । अभ्रम् । वर्षम् । सम् । वः । अवन्तु । सुऽदानवः । उत्साः । अजगराः । उत । मरुत्ऽभिः । प्रऽच्युताः । मेघाः । प्र । अवन्तु । पृथिवीम् । अनु ॥ ९ ॥

सि । कूपाः–निघ० ३ । २३ । **अजगराः** । अज + गृ निगरणे–अच् । अजान् गतिशीलान् जन्तून् गिरन्ति भक्षयन्ति ये । बृहत्सर्पाः । तद्वत् स्थूलाकाराः । **उत** । अत्यर्थम् । एव । **मरुद्भिः** । वायुभिः । **प्रच्युताः** । प्रेरिताः । **मेघाः** । मिह सेचने–अच्, कुत्वम् । वारिवाहाः । **वर्षन्तु** । सिंचन्तु । **पृथिवीम्** । **अनु** । अनुकूले ॥

८–आशामाशाम् । दिशंदिशम् आश्रित्य । **द्योतताम्** । **भृमृदृशि०** (उ० ३ । ११०) इति द्युत दीप्तौ-अतच्, टाप् । द्योतमानाम्, दीप्यमानाम् । **वाताः** । पवनाः । **वि वान्तु** । विविधं संचरन्तु । **दिशोदिशः** । सर्वस्या अपि दिशः सकाशात् । **संयन्तु** । संगता भवन्तु । **अनु** । अनुलक्ष्य । अन्यद् यथा म० ७ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(आपः) जल धारायें, (विद्युत्) बिजुली, (अभ्रम्) जल से भरा मेह (वर्षम्) बरसा और (सुदानवः) महादानी, (अजगराः) अजगर [समान स्थूल आकार वाले] (उत्साः) स्रोते (वः) तुम्हें (उत) अत्यन्त करके (सम्) यथावत् (अवन्तु) तृप्त करें। (मरुद्भिः) पवनों से (प्रच्युताः) चलाये गये (मेघाः) मेह (पृथिवीम्) पृथिवी को (अनु) अनुकूल (प्र) भले प्रकार (अवन्तु) तृप्त करें ॥९॥

भावार्थः—जैसे जल, बिजुली आदि मिलकर जगत् का उपकार करते हैं, वैसे ही मनुष्य परस्पर मिलकर संसार का सुधार करें ॥९॥

मन्त्र ७ व ८ का मिलान करो ॥

अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव ।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥१०॥

अपाम् । अग्निः । तनूभिः । सम्ऽविदानः । यः । ओषधीनाम् । अधिऽपाः । बभूव । सः । नः । वर्षम् । वनुताम् । जातऽवेदाः । प्राणम् । प्रऽजाभ्यः । अमृतम् । दिवः । परि ॥ १० ॥

भाषार्थः—(यः) जो (अग्निः) अग्नि [सूर्य ताप] (अपाम्) जलों के (तनूभिः) विस्तारों से (संविदानः) मिलता हुआ (ओषधीनाम्) चावल, यवादियों का (अधिपाः) विशेष पालन कर्ता (बभूव) हुआ है। (सः) वह (जातवेदाः) धनों का उत्पन्न करने वाला, वा उत्पन्न पदार्थों में सत्ता वाला अग्नि (नः प्रजाभ्यः) हम प्रजाओं के लिये (दिवः) अन्तरिक्ष से (परि) सब

९—**आपः** । जलधाराः । **विद्युत्** । तडित् । **अभ्रम्** । उदकपूर्णो मेघः । **वर्षम्** । वृष्टिजलम् । **प्र** । प्रकर्षेण । अन्यद् यथा म० ७ ॥

१०—**अपाम्** । जलानाम् । **अग्निः** । सूर्यतापः । **तनूभिः** । विस्तारैः । कणैः । **संविदानः** । संगच्छमानः । **यः** । **ओषधीनाम्** । व्रीहियवादीनाम् । **अधिपाः** । अधि+पा रक्षणे-विच् । विशेषरक्षकः । **बभूव** । **सः** । तादृशोऽग्निः । **नः** । अस्मभ्यम् । **वर्षम्** । वृष्टिजलम् । **वनुताम्** । प्रयच्छतु । **जातवेदाः** । अ० १ । ७ । २ । वेदः = धनम्-निघ० २ । १० । जातानि वेदांसि धनानि यस्मात्, यद्वा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर (वर्षम्) बरसा, (प्राणम्) प्राण और (अमृतम्) अमृत [मरण से बचाव का साधन] (वनुताम्) देवे ॥ १० ॥

भावार्थः—जैसे सूर्य जल को खैंच लेकर फिर बरसा कर सब प्राणियों का जीवन आधार होता है, वैसे ही मनुष्य विद्या और धन प्राप्त करके संसार का उपकार करें ॥ १० ॥

प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नुदधिमर्दयाति ।
प्रप्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि ॥११॥

प्रजाऽपतिः । सलिलात् । आ । समुद्रात् । आपः । ईरयन् । उदऽधिम् । अर्दयाति । प्र । प्यायताम् । वृष्णः । अश्वस्य । रेतः । अर्वाङ् । एतेन । स्तनयित्नुना । आ । इहि ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(प्रजापतिः) प्रजापालक सूर्य (सलिलात्) व्यापक (समुद्रात्) आकाश से (आपः=अपः) जल (आ ईरयन्) भेजता हुआ (उदधिम्) [पार्थिव] समुद्र को (अर्दयाति) दबावे [जल खैंचे]। (अश्वस्य) व्यापक (वृष्णः) बरसने वाले मेघ का (रेतः) जल (प्रप्यायताम्) अच्छे प्रकार बढ़े। [हे पर्जन्य ! तू] (एतेन) इस (स्तनयित्नुना) गर्जन के साथ (अर्वाङ्) सन्मुख (आ इहि) आ ॥ ११ ॥

भावार्थः—मन्त्र १० के समान है ॥ ११ ॥

इस मन्त्र का चौथा पाद 'अर्वाङेतेन···' ऋ० ५ । ८३ । ६ का तीसरा पाद है ।

जातेषु पदार्थेषु वेदः सत्ता यस्य स तथाभूतः । **प्राणम् ।** जीवनम् । **प्रजाभ्यः ।** सृष्टिपदार्थेभ्यः । **अमृतम् ।** नास्ति मृतं मरणं यस्मात् । अमरणम् । **दिवः ।** अन्तरिक्षात् । **परि ।** परितः ॥

११—प्रजापतिः । प्रजानां पालयिता वृष्टिप्रदः सूर्यः । **सलिलात् ।** **सलिकल्यनि०** (उ० १ । ५४) इति षल गतौ–इलच् । व्यापनशीलात् । **आ ।** समन्तात् । **समुद्रात् ।** अन्तरिक्षात्–निघ० १ । ३ । **आपः । सुपां सुलुक्०**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरुणाव नीचीरपः सृज । वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु ॥१२॥

अपः । निऽसिञ्चन् । असुरः । पिता । नः । श्वसन्तु । गर्गराः । अपाम् । वरुण । अव । नीचीः । अपः । सृज । वदन्तु । पृश्निऽबाहवः । मण्डूकाः । इरिणा । अनु ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(नः) हमारा (पिता) पालन करने वाला (असुरः) प्राण दाता मेघ (अपः) जल धारायें (निषिञ्चन्) उंडेलता हुआ [वर्तमान हो] । (अपाम्) जल के (गर्गराः) गड़गड़ाते हुये गगरे (श्वसन्तु) श्वास लेवें । (वरुण) हे वरणीय मेघ ! (अपः) जलधाराओं को (नीचीः) नीचे की ओर (अव सृज) छोड़ दे । (पृश्निबाहवः) छोटी २ भुजा वाले (मण्डूकाः) शोभा बढ़ाने वाले वा डुबकी लगाने वाले मेंढके (इरिणा=इरिणानि) ऊसर भूमियों को (अनु=अनुहाय) छोड़कर (वदन्तु) ध्वनि करें ॥ १२ ॥

भावार्थः—बरसा होने पर जैसे मेंढकों में फिर प्राण आ जाते हैं इसी प्रकार अनेक पदार्थ उगकर आनन्द दायक होते हैं ॥ १२ ॥

इस मन्त्र का पहिला पाद 'अपो. . .नः' (ऋ० ५।८३।६) का चौथा पाद है ॥

(पा० ७ । १ । ३९) इति शसः स्थाने जस् । अपः । उदकानि । **ईरयन्** । प्रेरयन् । **उदधिम्** । जलधिम् । **अर्दयाति** । अर्दयतेर्लेटि आडागमः । अर्दयतु । रश्मिभिर्जलादानेन पीडयतु । **प्रप्यायताम्** । प्रवर्धताम् । **वृष्णः** । वर्षकस्य मेघस्य । **अश्वस्य** । व्यापकस्य । **रेतः** । **सुरीभ्यां तुट् च** (उ० ४ । २०२) इति रि गतौ रीङ् स्रवणे—असुन्, तुट् च । उदकम्—निघ० १ । १२ । **अर्वाङ्** । अभिमुखः सन् । **एतेन** । पूर्वोक्तेन । **स्तनयित्नुना** । **स्तनिहृषिपुषि०** (उ० ३ । २९) इति स्तन देवशब्दे—इत्नुच् । गर्जनेन सह । **आ—इहि** । आगच्छ हे पर्जन्य ॥

१२—**अपः** । जलानि । **निषिञ्चन्** । न्यग्भावेन नितरां वा वर्षयन् । **असुरः** । अ० १ । १० । १ । असून् प्राणान् रातीति । असु+रा दाने—कः । प्राणप्रदः । मेघः—निघ० १ । १० । **पिता** । पालकः । **नः** । अस्माकम् । **श्वसन्तु** । उच्छ्वसिता भवन्तु । **गर्गराः** । **मुदिग्रोर्गग्गौ** (उ० १ । १२८) इति गृ शब्दे—गप्र-

---

१. भाष्यकार की व्युत्पत्ति अनुसार यहाँ विवृति दिखाई है । सायणाचार्य ने यहाँ शब्दानुकृति माना है अतः 'गर्गराः' ऐसा पदपाठ रखा है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्य जिन्विता प्र मण्डूका अवादिषुः ॥ १३ ॥

सम्ऽवत्सरम् । शशयानाः । ब्राह्मणाः । व्रतऽचारिणः ।
वाचम् । पर्जन्यऽजिन्विताम् । प्र । मण्डूकाः । अवादिषुः ॥ १३ ॥

भाषार्थः—(संवत्सरम्) बोलने के समय तक (शशयानाः) शयन करने वाले (मण्डूकाः) शोभा बढ़ाने वाले वा डुबकी लगाने वाले मेंडुके, (व्रतचारिणः) व्रतधारी (ब्राह्मणाः) ब्राह्मणों के समान, (पर्जन्यजिन्विताम्) मेंह से तृप्त की हुई (वाचम्) वाणी को (प्र) अच्छे प्रकार (अवादिषुः) बोलें ॥ १३ ॥

भावार्थः—जैसे वेदज्ञानी पुरुष वेदों में मौन [मनन] व्रत साधकर सत्य ज्ञान से तृप्त होकर संसार में उपदेश करते हैं, इसी प्रकार मेंडुके वृष्टि होने से संतुष्ट होकर बोलते हैं ॥ १३ ॥

यह मन्त्र ऋ० ७ । १०३ । १ में और निरुक्त ९ । ६ में भी व्याख्यात है ॥

त्ययः । गर्ग + रा-कः । गर्गं शब्दं रान्ति ददतीति । शब्दं कुर्वाणः कलसाः जलपात्राणि । प्रवाहाः । **अपाम्** । उदकानाम् । **वरुण** । हे वरणीय जलेश मेघ । **नीचीः** । न्यग्भावं गताः । **अपः** । वृष्टिधाराः । **अव** । नीचैः । **सृज** । त्यज । **वदन्तु** । ध्वनिं कुर्वन्तु । **पृश्निबाहवः** । स्वल्पभुजयुक्ताः । **मण्डूकाः** । **शलिमण्डिभ्यामूकण्** (उ० ४ । ४२) इति मडि भूषायाम्-ऊकण् । यद्वा टुमस्जो शुद्धौ ऊकण्, जकारस्य डकारे नुमि ष्टुत्वम् । मण्डयन्ति भूषयन्ति जलाशयं निमज्जन्ति जले वा । मण्डूका मज्जूका मज्जनान्मदतेर्वा मोदतिकर्मणो मन्दतेर्वा तृप्तिकर्मणो मण्डयतेरिति वैयाकरणा मण्ड एषामोक इति वा मण्डो मदेर्वा मुदेर्वा—निरु० ९ । ५ । मण्डनशीलाः । मज्जनस्वभावाः । मज्जूकाः । **भेकाः** । [1]**इरिणा** । **अर्तेः किरिच्च** (उ० २ । ५१) इति ऋ गतिप्रापणयोः—इनन्, शेर्लोपः । इरिणानि । ऊषरभूमीः । **अनु** । हीने । विहाय ॥

१३—संवत्सरम् । **संपूर्वाच्चित्** (उ० ३ । ७२) इति बाहुलकात् सम् + वद व्यक्तायां वाचि—सरन् प्रत्ययः, स च चित् । चित्वादन्तोदात्तः । सम्यग् वदनपर्यन्तम् वर्षारम्भपर्यन्तम् इत्यर्थः । **शशयानाः** । शिश्याना: शयानाः । शयनशीलाः । निद्रालवः । **ब्राह्मणाः** । अ० २।६।३ । वेदपाठिनः । ब्रह्मज्ञानिनो यथा ।

---

१. शेश्छन्दसि बहुलम् (पा० ६।१।७०) से शिलोप होता है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उप॒प्रव॑द मण्डूकि॒ व॒र्षमा व॑द॒ तादु॒रि ।
मध्ये॑ ह्र॒दस्य॑ प्लवस्व वि॒गृह्य॑ च॒तुर॑: प॒दः ॥ १४ ॥

उप॒ऽप्रव॑द । म॒ण्डू॒कि॒ । व॒र्षम् । आ । व॒द॒ । ता॒दु॒रि॒ ।
मध्ये॑ । ह्र॒दस्य॑ । प्ल॒व॒स्व॒ । वि॒ऽगृह्य॑ । च॒तुर॑: । प॒दः ॥ १४ ॥

भाषार्थः—(मण्डूकि) हे शोभा बढ़ाने वाली वा डुबकी लगाने वाली मेंडुकी ! (उप प्रवद) पास आकर बोल, (तादुरि) हे तैरने वाली वा उतने [शरीर जितना] उदरवाली (वर्षम्) वर्षा को (आवद) बुला (ह्रदस्य) पोखर के (मध्ये) बीच में (चतुरः) चारों (पदः) पदों को (विगृह्य) फैला कर (प्लवस्व) तैर ॥ १४ ॥

भावार्थः—जैसे मेंडुकी वर्षा होने पर आनन्द से जल के भीतर तैरती फिरती है, ऐसे ही ब्रह्मज्ञानी लोग ब्रह्मविद्या में मग्न होकर विचरते हैं ॥ १४ ॥

यह मन्त्र निरुक्त ९ । ७ में उदाहृत है ॥

खण्व॒खा३इ॒ खैम॒खा३इ॒ मध्ये॑ तदुरि ।
व॒र्षं व॑नु॒ध्वं पि॑तरो म॒रुता॑ मन॑ इच्छत ॥ १५ ॥

खण्व॒खा३इ॑ । खैम॒खा३इ॑ । मध्ये॑ । त॒दु॒रि॒ ।
_र्षम् । व॒नु॒ध्व॒म् । पि॒त॒रः । म॒रुता॑म् । मन॑: । इ॒च्छ॒त ॥ १५ ॥

व्रतचारिणः । व्रत + चर-णिनिः । कृतसंयमाः । **वाचम्** । वाणीम् । **पर्जन्यजिन्विताम्** । जिवि प्रीणने-क्तः । पर्जन्येन प्रीतां तर्पिताम् । **प्र** । प्रकर्षेण । **मण्डूकाः** । म० १२ । मज्जूकाः । भेकाः । **अवादिषुः** । वद—लुङ् । अवोचन् ।

१४—उपप्रवद । उपेत्य प्रकृष्टं घोषं कुरु । **मण्डूकि** । मण्डूक, म० १२ स्त्रियां ङीष् । हे मण्डनशीले । निमज्जनस्वभावे । भेकि । **वर्षम्** । वृष्टिम् । **आवद** । आभाषय । **तादुरि** । तरणशीले ! अथवा तावत् उदरि ! यावच्छरीरं तावदेवोदरं तस्याः—इति दुर्गाचार्यो निरुक्तटीकायाम्—९ । ७ । दर्दुरि इत्यस्यैव छान्दसं रूपम् । **मकुरदर्दुरौ** (उ० १ । ४०) इति दृ विदारणे—उरच्, निपातनात् साधुः । दृणाति भूमिं कर्णौ वा स दर्दुरः । ङीष् । हे दर्दुरि ! मण्डूकि ! **मध्ये** । मध्यदेशे । **ह्रदस्य** । ह्राद अव्यक्ते शब्दे-अच् । पृषोदरादित्त्वात् ह्रस्वत्वम् । जलाशयस्य । **प्लवस्व** । प्रतर । **विगृह्य** । प्रसार्य । **चतुरः** । **पदः** । पादान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(खण्वखा ३ इ=खण्वखे) हे खनती में लंगड़ाने वाली (खैमखा ३ इ=खैमखे) हे कष्ट में ठहरी हुई (तदुरि=दर्दुरि) हे [भूमि वा कान] फोड़ने वाली दादुरी ! (मध्ये) [जल के] भीतर वर्तमान ! और (पितरः) हे पालन करनेवाले विद्वान् किसान आदि लोगो ! (वर्षम्) वर्षा का (वनुध्वम्) सेवन करो (मरुताम्) याजकों के (मनः) मन को (इच्छत) चाहो [प्रसन्न करो] ॥ १५ ॥

भावार्थः—वृष्टि होने से अन्न आदि पदार्थों की उत्पत्ति से सब प्राणी मेंडुकी के समान प्रसन्न होते हैं। और यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होते हैं ॥१५॥

महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु ॥ १६॥

महान्तम् । कोशम् । उत् । अच । अभि । सिञ्च । सऽविद्युतम् । भवतु । वातु । वातः । तन्वताम् । यज्ञम् । बहुऽधा । विऽसृष्टाः । आऽनन्दिनीः । ओषधयः । भवन्तु ॥ १६ ॥

१५—खण्वखा३ इ=खण्वखे । अशूप्रुषि (उ० १ । १५१) इति खनु अवदारणे—क्वन् । णत्वं छान्दसम् । खजि गतिवैकल्ये—डः । टाप् । **एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुतौ** (पा० ८ । २ । १०७) इति एकारं विगृह्य अकारस्य प्लुतः । खण्वे खनने छिद्रे खञ्जति सा खण्वखा, तत्सम्बुद्धौ खण्वखे । हे बिले पङ्गुगते ! **खैमखा३ इ=खैमखे । अर्त्तिस्तुसुहु०** (उ० १ । १४०) इति खै स्थैर्ये-खनने, हिंसायां चेति शब्दकल्पद्रुमः—ततो मन् प्रत्ययः, स च णित् । पुनः खै—ड, टाप् । खैमे हिंसायां कष्टे खायति तिष्ठति सा खैमखा । हे कष्टस्थिते । **तदुरि** । म० १४ ! हे दर्दुरि ! मण्डूकि । **वर्षम्** । वृष्टिम् । **वनुध्वम्** । वन सम्भक्तौ । सेवध्वम् । **पितरः** । हे पालयितारो विद्वांसो यूयं च । **मरुताम्** । ऋत्विजाम्—निघ० ३ । १८ । दोषनाशकानां याजकानाम् । **मनः** । चित्तम् । **इच्छत** । कामयध्वम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (महान्तम्) बड़े (कोशम्) धन भण्डार को (उत् अच) ऊंचा कर, (अभि) सब ओर से (सिञ्च) बरसा दे। (सवि-द्युतम्) समान विविध प्रकाशित [जगत्] (भवतु) होवे। (वातः) वायु (वातु) [अनुकूल] चले। (बहुधा अनेक प्रकार से (विसृष्टाः) फैली हुई (ओषधयः) चावल, यव आदि ओषधें (यज्ञम्) यज्ञ को (तन्वताम्) फैलावें, और (आन-न्दिनीः = ०—न्यः) आनन्द युक्त (भवन्तु) होवें ॥ १६ ॥

भावार्थः—परमात्मा के अनुग्रह से मनुष्य प्रयत्न पूर्वक धन संचय करें और वायु, वृष्टि आदि से उपकार लेकर यज्ञ अर्थात् अनेक विज्ञान युक्त कर्मों को फैलावें और अन्न आदि पदार्थ को पुष्टिकारक करें ॥ १६ ॥

इस मन्त्र का प्रथम पाद 'महान्तं. . .षिञ्च' ऋ० ५ । ८३ । ८ में है।

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः

सूक्तम् १६ ॥

१-९ ॥ वरुणो देवता । १ अनुष्टुप्, २-६ त्रिष्टुप् ७ जगती, ८, ९ त्रिपदा त्रिष्टुप् ॥

वरुणस्य सर्वव्यापकतोपदिश्यते—वरुण की सर्वव्यापकता का उपदेश ॥

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।
यस्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः ॥ १ ॥

बृहन् । एषाम् । अधिऽस्थाता । अन्तिकात्ऽइव । पश्यति ।
यः । तायत् । मन्यते । चरन् । सर्वम् । देवाः । इदम् । विदुः ॥१॥

१६—महान्तम् । विशालम् । **कोशम्** । कुश श्लेषणे—घञ् । हिरण्यादिस्थापन-गृहम् । मेघम्—निघ० १ । १० । **उत् अच** । अञ्चु गतौ । ऊर्ध्वं प्राप्नुहि । उत्थापय । **अभि** । अभितः । **षिञ्च** । वर्षय । **सविद्युतम्** । स+वि+द्युत दीप्तौ—कः । समानं विविधं प्रकाशितं जगत् । **भवतु** । **वातु** । अनुकूलं संचरतु । **वातः** । पवनः । **तन्वताम्** । विस्तारयन्तु । **यज्ञम्** । यजनीयं कर्म । **बहुधा** । नानाप्रकारेण । **विसृष्टाः** । उत्पन्नाः । विस्तीर्णाः । **आनन्दिनीः** । आनन्द-इनि, ङीप् । आनन्दिन्यः । हर्षयुक्ताः । **ओषधयः** । व्रीहियवतरुगुल्मादयः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(एषाम्) इन [लोकों] का (बृहन्) बड़ा (अधिष्ठाता) अधिष्ठाता [वह वरुण] (अन्तिकात् इव) समीप में वर्तमान सा (पश्यति) देखता है, (यः) जो [वरुण] (तायत्) विस्तार वा पालन (चरन्) करता हुआ (सर्वम्) सब जगत् को (मन्यते) जानता है। (देवाः) व्यवहार में कुशल देवता लोग (इदम्) यह बात (विदुः) जानते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—परमात्मा सर्व नियन्ता, सर्वज्ञाता, सर्वस्रष्टा और सर्वरक्षक है, इस बात को ऋषि महात्मा साक्षात् करते हैं ॥ १ ॥

यस्तिष्ठति॒ चर॑ति॒ यश्च॒ वञ्च॑ति॒ यो नि॒लाय॑ं॒ चर॑ति॒ यः प्र॒तङ्क॑म्।
द्वौ सं॑नि॒षद्य॒ यन्म॒न्त्रये॑ते॒ राजा॒ तद् वे॑द॒ वरु॑णस्तृ॒तीय॑ः ॥ २ ॥

यः। तिष्ठति। चरति। यः। च। वञ्चति। यः। निऽलायन्। चरति। यः। प्रऽतङ्कम्। द्वौ। सम्ऽनिषद्य। यत्। मन्त्रयेते इति। राजा। तत्। वेद। वरुणः। तृतीयः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (तिष्ठति) खड़ा होता है, वा (चरति) चलता है, (च) और (यः) जो पुरुष (वञ्चति) ठगी करता है, और (यः) जो (निलायन्) भीतर घुस कर, और (यः) जो (प्रतङ्कम्) बाहिर निकल कर

१—बृहन्। महान्। **एषाम्**। दृश्यमानानां लोकानाम्। **अधिष्ठाता**। नियन्ता। **अन्तिकात्**। इव समीपदेशाद् यथा। **पश्यति**। अवलोकयति। **यः**। वरुणः। **तायत्**। **वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच्च** (उ० २। ८४) इति तायृ सन्तानपालनयोः—अति। विस्तारम्। पालनम्। **मन्यते**। जानाति। **चरन्**। चर गतिभक्षणयोः शतृः। कुर्वन् सन्। **सर्वम्**। सरणशीलं जगत्। **देवाः**। व्यवहारकुशलाः विद्वांसः। **इदम्**। निर्दिष्टं वृत्तम्। **विदुः**। विदन्ति। जानन्ति। साक्षात् कुर्वन्ति ॥

२—यः। पुरुषः। **तिष्ठति**। स्थितो भवति। **चरति**। गच्छति। **वञ्चति**। प्रतारयति। वञ्चनं करोति। **निलायन्**। नि+ली श्लेषणे द्रवीकरणे च—शतृः। निलीनः अदृश्यः सन्। **चरति**। आचरति। **प्रतङ्कम्**। प्र+तकि कृच्छ्रजीवने—णमुल्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चरति) काम करता है और (द्वौ) दो जने (संनिषद्य) एक साथ बैठकर (यत्) जो कुछ (मन्त्रयेते) कानाफूसी करते हैं, (तृतीयः) तीसरा (राजा) राजा (वरुणः) वरणीय वा दुष्टनिवारक वरुण परमेश्वर (तत्) उसे (वेद) जानता है ॥ २ ॥

भावार्थः—परमेश्वर प्राणियों के गुप्त से गुप्त कर्मों को सर्वथा जानता और उनका यथावत् फल देता है ॥ २ ॥

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्पे उदके निलीनः ॥३॥

उत । इयम् । भूमिः । वरुणस्य । राज्ञः । उत । असौ । द्यौः । बृहती । दूरेऽअन्ता । उतो इति । समुद्रौ । वरुणस्य । कुक्षी इति । उत । अस्मिन् । अल्पे । उदके । निऽलीनः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(इयम् भूमिः) यह भूमि (उत) भी, (उत) और (असौ) वह (बृहती) बड़ा, (दूरे अन्ता) [पृथिवी से] दूर गति वाला (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य (वरुणस्य राज्ञः) वरुण राजा का है, (उतो) और भी [पृथिवी और आकाश के] (समुद्रौ) दोनों समुद्र (वरुणस्य) वरुण की (कुक्षी) दो कोखें हैं, (उत) और वह (अस्मिन्) इस (अल्पे) थोड़े से (उदके) जल में भी (निलीनः) लीन हो रहा है ॥ ३ ॥

प्रकृष्टगमनं बहिर्गमनं प्राप्य । **द्वौ** । यौ पुरुषौ । **संनिषद्य** । सहोपविश्य । **यत्** । यत्किञ्चित् कार्यम् । **मन्त्रयेते** । मन्त्रि गुप्तभाषणे । रहसि गुप्तं भाषेते । **राजा** । ईश्वरः । **सर्वम्** । **वेद** । वेत्ति । **वरुणः** । वरणीयो दुष्टानां निवारको वा । **तृतीयः** । **त्रेः संप्रसारणं च** (पा० ५ । २ । ५५) इति त्रेः तीयः, संप्रसारणं च । त्रयाणां पूरकः ॥

३—**उत** । अपि । **इयम्** । दृश्यमाना । **भूमिः** । **वरुणस्य** । सर्वश्रेष्ठस्य परमेश्वरस्य । **राज्ञः** । ईश्वरस्य । समर्थस्य । **असौ** । विप्रकृष्टा । **द्यौः** । प्रकाशमानः सूर्यलोकः । **बृहती** । महती । **दूरेअन्ता** । **दुरीणो लोपश्च** (उ० २ । २०) इति दुर् + इण् गतौ—रक् । इति दूरम् । **हसिमृग्रिण्वामि०** (उ० ३ । ८६) इति

---

१. यहाँ रो रि (८ । ३ । १४) से दुर् के रेफ का लोप तथा ढ्रलोपे पूर्वस्य० (६ । ३ । १११) से दीर्घ होता है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—वरुण परमात्मा की ईश्वरता बड़ों से बड़े और छोटों से छोटे पदार्थों में है, अर्थात् यह स्थूल और सूक्ष्म जगत् उसी के आकर्षण, धारण, संयोग, वियोग सामर्थ्य में स्थित है। उसकी उपासना करके सब मनुष्य अपनी उन्नति करें ॥ ३ ॥

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्॥४॥

उत। यः। द्याम्। अतिऽसर्पात्। परस्तात्। न। सः। मुच्यातै। वरुणस्य। राज्ञः। दिवः। स्पशः। प्र। चरन्ति। इदम्। अस्य। सहस्रऽअक्षाः। अति। पश्यन्ति। भूमिम्॥ ४॥

भाषार्थः—(उत) और (यः) जो [दुष्ट] (परस्तात्) दूर देश में (द्याम्) सूर्य लोक को (अतिसर्पात्) पार करके चुपके से रेंग जावे, (सः) वह पुरुष (वरुणस्य राज्ञः) वरुण राजा की (न मुच्यातै) मुक्ति न पा सके। (दिवः) प्रकाशमान (अस्य) इस [वरुण] के (स्पशः) बन्धन सामर्थ्य (इदम्)

अम गत्यादिषु-तन्। अन्तो अततेः-निरु० ४।२५। पृथिव्या दूरे अन्तं गमनं यस्याः सा। **उतो**। अपि च। **समुद्रौ**। अन्तरिक्षभूमिस्थौ जलधी। **कुक्षी**। **लुषि-कुषिशुषिभ्यः किसः** (उ० ३।१५५) इति कुष निष्कर्षे-किसः। उदरस्य दक्षिणवाम-पार्श्वौ यथा। **अस्मिन्**। निकटस्थे। **अल्पे**। अल वारणपर्य्याप्तिभूषासु-पप्रत्ययः। लेशमात्रे। **उदके**। जले। **निलीनः**। अन्तर्हितः॥

४—उत। अपि च। **यः**। दुष्टः। **द्याम्**। सूर्यलोकम्। **अतिसर्पात्**। सृप—लेट्। अतिक्रम्य सर्पेत् गुप्तं गच्छेत्। **परस्तात्**। **दिक्शब्देभ्यः सप्तमी-पञ्चमी** (पा० ५। ३। २७) इति पर-अस्तातिः। परस्सन् दूरे देशे। **न**। नहि। **सः**। पुरुषः। **मुच्यातै**। मुचेः कर्मणि लेटि आडागमः। **वैतोऽन्यत्र** (पा० ३। ४। ९६) इति ऐकारः। मुक्तिं प्राप्नुयात्। **वरुणस्य**। वरणीयस्य। परमेश्वरस्य। **राज्ञः**। ईश्वरस्य। **दिवः**। प्रकाशमानस्य। **स्पशः**। स्पश बाधनस्पर्शनयोः-क्विप्। बाधमानाः। बन्धाः। पाशाः। **प्र चरन्ति**। प्रकर्षेण गच्छन्ति। **इदम्**।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस [जगत्] में (प्र चरन्ति) चलते रहते हैं, [उनको] (सहस्राक्षाः) सहस्र प्रकार की दृष्टि वा व्यवहार वाले पुरुष (भूमिम् अति) भूमि के पार (पश्यन्ति) देखते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—चाहे कोई दुष्कर्म करके कहीं छिप जावे, तो भी वह वरुण परमेश्वर के अखंड दण्ड से नहीं बच सकता। वह अपनी करनी का फल इस जन्म वा परजन्म में अवश्य पाता है ॥ ४ ॥

सर्वं॒ तद् राजा॒ वरु॑णो॒ वि च॑ष्टे॒ यद॑न्त॒रा रोद॑सी॒ यत् प॒रस्ता॑त् ।
संख्या॑ता अ॒स्य नि॒मिषो॒ जना॑नाम॒क्षानि॑व श्व॒घ्नी नि मि॑नोति॒ तानि॑ ॥ ५ ॥

सर्व॑म् । तत् । राजा॑ । वरु॑णः । वि । च॒ष्टे॒ । यत् । अ॒न्त॒रा । रोद॑सी॒ इति॑ । यत् । प॒रस्ता॑त् । सम्ऽख्या॑ताः । अ॒स्य॒ । नि॒ऽमिषः॑ । जना॑नाम् । अ॒क्षान्ऽइ॑व । श्व॒ऽघ्नी । नि । मि॒नो॒ति॒ । तानि॑ ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(राजा वरुणः) राजा वरुण (तत् सर्वम्) वह सब (वि चष्टे) देखता रहता है, (यत्) जो कुछ (रोदसी अन्तरा) सूर्य और भूमि के बीच में और (यत्) जो कुछ (परस्तात्) परे है। (जनानाम्) मनुष्यों के (निमिषः) पलक मारने (अस्य) इस [वरुण] के (संख्याताः) गिने हुये

दृश्यमानं जगत्। **अस्य** । वरुणस्य । **सहस्राक्षाः** । अ० ३ । ११ । ३ । सहस्र + अक्षि-षच् । यद्वा । सहस्र+अक्ष । सहस्राणि बहूनि अक्षीणि दर्शनसामर्थ्यानि, अथवा, अक्षा व्यवहारा येषां ते तथाभूताः। बहुदर्शकाः बहुव्यवहारशीलाः पुरुषाः। **अति** । अतीत्य। **पश्यन्ति** । साक्षात्कुर्वन्ति तान् स्पशः। **भूमिम्** । भूलोकम् ॥

५—सर्वम् तत् । सकलं वृत्तम्। **राजा वरुणः** । समर्थः परमेश्वरः। **विचष्टे** । अ० ४ । ११ । २ । विशेषेण पश्यति । **यत् । रोदसी अन्तरा** । द्यावापृथिव्योर्मध्ये । **परस्तात्** । म० ४ । दूरदेशे । **संख्याताः** । परिगणिताः । **अस्य** । वरुणस्य । **निमिषः** । मिष स्पर्द्धायाम्-क्विप् । निमेषाः । चक्षुषः स्पन्दनकालाः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, वह (तानि) हिंसा कर्मों को (नि मिनोति) गिरा देता है (श्वघ्नी इव) जैसे धन हारने वाला जुआरी (अक्षान्) पासों को [गिरा देता है] ॥ ५ ॥

भावार्थः—वरुण सर्वज्ञ सर्वनियन्ता है, वह दुष्टों को दण्ड देकर ऐसे गिरा देता है जैसे हारा जुआरी निर्धन होकर क्रोध से पासे आदि पटक देता है। यहां गिराने मात्र में दृष्टान्त है ॥ ५ ॥

ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः ।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥६॥

ये । ते । पाशाः । वरुण । सप्तऽसप्त । त्रेधा । तिष्ठन्ति । विऽसिताः । रुशन्तः । छिनन्तु । सर्वे । अनृतम् । वदन्तम् । यः । सत्यऽवादी । अति । तम् । सृजन्तु ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(वरुण) हे दुष्ट निवारक परमेश्वर ! (सप्तसप्त = सप्त-सप्ताः) सात धाम [पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, विराट् अर्थात् स्थूल जगत्, परमाणु और प्रकृति] से सम्बन्ध वाले, (त्रेधा) तीन प्रकार से [भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल में] (विषिताः) फैले हुए (रुशन्तः) [दुष्टों वा दोषों

जनानाम् । प्राणिनाम् । **अक्षान्** । **अशेर्देवने** (उ० ३ । ६५) इति अशूङ् व्याप्तौ-सः । द्यूतसाधनानि । **इव** । यथा । **श्वघ्नी** । **कर्मणि हनः** (पा० ३ । २ । ८६) स्व + हन—णिनिः । सस्य शः । श्वघ्नो कितवो भवति, स्वं हन्ति स्वं पुनराश्रितं भवति–निरु० ५ । २२ । स्वहा, स्वघाती । धननाशकः । द्यूतकारकः । **निमिनोति** । डुमिञ् प्रक्षेपणे । नीचैः क्षिपति । **तानि** । तर्द हिंसायाम्–ङः । तर्दनानि । हिंसनानि ॥

६—**ये** । **ते** । तव । **पाशाः** । अ० १ । ३१ । २ । बन्धनानि । **वरुण** । परमेश्वर । **सप्तसप्त** । **सप्यशूभ्यां तुट् च** (उ० १ । १५७) इति षप समवाये-कनिन् तुट् च । षप—क्तः । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) इति विभक्तेर्लुक् मध्यपदलोपश्च । सप्तसप्ताः । सप्तधामभिः पृथिवीजलाग्निवायुविराट्परमा—णुप्रकृतिभिः समवेताः समृद्धाः–यथा 'पृथिव्याः सप्त धामभिः' ऋ० १ । २२ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को] नाश करते हुये (ये) जो (ते) तेरे (पाशाः) फांस वा जाल (तिष्ठन्ति) स्थित हैं। (सर्वे) वे सब [फांस] (अनृतं वदन्तम्) मिथ्या बोलने वाले को (छिनन्तु) छिन्न भिन्न करें, और (यः) जो (सत्यवादी) सत्यवादी है (तम्) उसको (अति) सत्कार पूर्वक (सृजन्तु) छोड़ें ॥ ६ ॥

भावार्थः—वह परमात्मा प्रत्येक वस्तु और काल में व्यापक होकर दुष्टों को यथावत् दण्ड और शिष्टों को यथावत् आनन्द देता है ॥ ६ ॥

शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंशयित्वा कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥७॥

शतेन । पाशैः । अभि । धेहि । वरुण । एनम् । मा । ते । मोचि । अनृतवाक् । नृचक्षुः । आस्ताम् । जाल्मः । उदरम् । श्रंशयित्वा । कोशः इव । अबन्धः । परिकृत्यमानः ॥ ७ ॥

भावार्थः—(वरुण) हे दुष्टनिवारक परमेश्वर ! (शतेन) सौ (पाशैः) फांसों से (एनम्) इस [मिथ्यावादी] को (अभि धेहि) बांध ले, (नृचक्ष) हे मनुष्यों के देखने वाले ! (अनृतवाक्) मिथ्यावादी पुरुष (ते) तेरी (मा मोचि) मुक्ति न पावे। (जाल्मः) नीच अन्यायी (उदरम्) युद्ध कर्म को (श्रंशयित्वा=

---

१६ । इत्यत्र दयानन्दभाष्ये । **त्रेधा** । त्रिप्रकारं भूतभविष्यत्वर्तमानकालेषु । **तिष्ठन्ति** । वर्त्तन्ते । **विषिताः** । षिञ् बन्धने-क्तः । विविधं बद्धाः । विस्तृताः । **रुशन्तः** । दुष्टान् । दोषान् वा हिंसन्तः । **छिनन्तु** । छिन्दन्तु । **सर्वे** । पाशाः । **अनृतम्** । असत्यम् । **वदन्तम्** । कथयन्तम् । **यः** । **सत्यवादी** । सत्यवक्ता । **तम्** । **अति** । अत सातत्यगमने-इन् । पूजायाम् । उत्कर्षे । **सृजन्तु** । त्यजन्तु, मुञ्चन्तु ।

७ - **शतेन** । बहुभिः । **पाशैः** । दण्डबन्धनैः । **अभि धेहि** । अभिपूर्वो दधातिर्बन्धने । बधान । **वरुण** । हे दुष्टनिवारक । **एनम्** । अनृतवादिनम् । **ते** । तव । **मा मोचि** । मुक्तिं न प्राप्नुयात् । **अनृतवाक्** । मिथ्यावादी । **नृचक्षः** । **चक्षेर्बहुलं शिच्च** (उ० ४ । २३३) नृ + चक्षिङ् दर्शने[1]-असुन् । हे नृणां मनुष्याणां साध्वसाधुचरित्राणां द्रष्टः । **आस्ताम्** । तिष्ठतु । **जाल्मः** । जल अपवारणे-मप्रत्ययः ।

१—धातुपाठादि में चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि पढ़ा है । यहाँ 'दर्शन' अर्थ 'अयं दर्शनकर्मा च' इस माधवीय धातुवृत्ति के प्रमाण से दिखाया है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्रंसयित्वा) नीचे गिरा कर (परिकृत्यमानः) कटी हुई, (अबन्धः) अपने से छुटी (कोशः इव) फूल की कली के समान (आस्ताम्) बैठा रहे ॥ ७ ॥

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के दण्ड से कोई मिथ्यावादी नहीं छूट सकता, और अधर्मी दुष्ट, धर्मात्माओं के सन्मुख ऐसा गिर जाता है, जैसे फूल की अधखिली कली अधिक पवन आदि के कारण गिरकर कुम्हला जाती है ॥ ७ ॥

यः स॑मा॒म्यो॒ ३॑ वरु॑णो॒ यो व्या॒म्यो॒ ३॑ यः सं॑दे॒श्यो॒ ३॑ वरु॑णो॒ यो वि॑दे॒श्य॑ः । यो दै॒वो वरु॑णो॒ यश्च॒ मानु॑षः ॥ ८ ॥

यः । स॒म्ऽआ॒म्य॑ः । वरु॑णः । यः । वि॒ऽआ॒म्य॑ः । यः । स॒म्ऽदे॒श्य॑ः । वरु॑णः । यः । वि॒ऽदे॒श्य॑ः । यः । दै॒वः । वरु॑णः । यः । च॒ । मानु॑षः ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(वरुणः) वरुण परमेश्वर (यः) व्यापक, (समाम्यः) समान सेवनीय, (यः) सर्वनियन्ता और (व्याम्यः) पीड़ा रहित है, (वरुणः) वरुण ही (यः) यत्नशील, (संदेश्यः) समान देशीय, (यः) संयोग और वियोग

जालयति दूरी करोति हितज्ञानमिति । पामरः, क्रूरः । **उदरम्** । **उदि दृणातेरलचौ पूर्वपदान्त्यलोपश्च** (उ० ५ । १९) इति उद्+दॄ विदारणे–अच् । उदो दस्य लोपः । उद्विदारणं युद्धम् । **श्रंशयित्वा** । स्रंसु अवस्रंसने = अधः पतने णिचि क्त्वा, सकारस्य शकारः । स्रंसयित्वा । अधः पातयित्वा । **कोशः** । कुश संश्लेषणे–घञ् । कोशोऽस्त्री कुड्मले, इत्यमरः–३ । ३ । २१८ । कुड्मलः । विकाशोन्मुखकलिका । **इव** । यथा । **अबन्धः** । बन्धेन शाखासंयोगतन्तुना विश्लिष्टः । **परिकृत्यमानः** । कृती छेदने–कर्मणि यक्, शानच्, मुक् च । परिच्छिद्यमानः ॥

८—**यः** । या प्रापणे–डः । व्यापकः । **समाम्यः** । **ऋहलोर्ण्यत्** (पा० ३ । १ । १२४) इति सम्+अम गत्यादिषु–ण्यत् । सम्यग् आम्योः भजनीयः सेवनीयः । **वरुणः** । वरणीयः सर्वश्रेष्ठः । **यः** । यम्–डः । नियन्ता । **व्याम्यः** । वि+अम रोगे भावे ण्यत् । विगतम् आम्यं पीडनं यस्मात् सः । पीडारहितः । आनन्दस्वरूपः । **यः** । यती प्रयत्ने–डः । **संदेश्यः** । **दिगादिभ्यो यत्** (पा० ४ । ३ । ५४) इति देश-यत् । समानदेशे भवः । **यः** । यु मिश्रणामिश्रणयोः–डः । यविता संयोक्ता वियोक्ता च । **विदेश्यः** । पूर्ववद्–यत् । विदेशे भवः । **यः** । यज देवपू-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाला, (विदेश्यः) विदेशीय है। (वरुणः) वरुण ही (यः) पूजनीय, (दैवः) दिव्य गुण वालों में वर्त्तमान, (च) और (यः) दाता, और (मानुषः) मनन शील मनुष्यों में वर्त्तमान है ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वान्तर्यामी परमेश्वर की महिमा भले प्रकार जानकर अपने आत्मा की उन्नति करें ॥ ८ ॥

तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैरसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र ।
तानु ते सर्वाननु संदिशामि ॥ ९ ॥

तैः । त्वा । सर्वैः । अभि । स्यामि । पाशैः । असौ । आमुष्यायण । अमुष्याः । पुत्र । तान् । ऊँ इति । ते । सर्वान् । अनुऽसंदिशामि ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(असौ=असौ त्वम्) वह तू (आमुष्यायण) हे अमुक पिता के पुत्र ! और (अमुष्याः पुत्र) हे अमुक माता के पुत्र ! (त्वा) तुझको (तैः सर्वैः) उन सब (पाशैः) नियम बन्धनों से (अभि ष्यामि) मैं [वरुण] बांधता हूँ, और (तान् सर्वान्) उन सबों को (उ) अवश्य (ते) तेरे लिये (अनुसंदिशामि) समीप से समझाता हूं ॥ ९ ॥

भावार्थः— परमेश्वर ने वेद द्वारा स्पष्ट दिखा दिया है कि सत्कर्म सुख के और दुष्कर्म दुःख के मूल हैं। इसलिये मनुष्य दुष्कर्मों को छोड़कर सत्कर्म करके आनन्द भोगें ॥ ९ ॥

जासङ्गतिकरणदानेषु-डः। पूजनीयः। **दैवः। देवाद् यजञौ** (वा०पा०४।१।८५) इति देव-अञ्। देवेषु दिव्यगुणवत्सु भवः। **यः।** यज दाने—डः। दाता। **च।** समुच्चये। **मानुषः।** अ० ४। १४। ५। मनुष्येषु मननशीलेषु भवः ॥

९—**तैः।** सुप्रसिद्धैः। **त्वा।** त्वां मनुष्यम्। **सर्वैः। अभि ष्यामि।** अभिपूर्वकः षो बन्धने। बध्नामि, अहं वरुणः। **पाशैः।** बन्धैः। **असौ।** स त्वम्। **आमुष्यायण।** अमुष्य, अदस् इत्यस्य षष्ठी, फक्, षष्ठ्या अलुक्। हे अमुष्य-पुरुषस्य पुत्र। हे प्रख्यातकुलोद्भव। **अमुष्याः।** स्त्रियाम् अदस्-षष्ठी। अमुक-जनन्याः। **पुत्र। तान्। सर्वान्।** पाशान्। **उ।** अवश्यम्। **ते।** तुभ्यम्। **अनुसंदिशामि।** दिश अतिसर्जने। अनु सामीप्येन विज्ञापयामि निरूपयामि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १७ ॥

१-८ ॥ ओषधिर्वापामार्गो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

राजलक्षणोपदेशः—राजा के लक्षणों का उपदेश ॥

ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेषे आ रभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा ॥ १ ॥

ईशानाम् । त्वा । भेषजानाम् । उत्ऽजेषे । आ । रभामहे ।
चक्रे । सहस्रऽवीर्यम् । सर्वस्मै । ओषधे । त्वा ॥ १ ॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (ईशानाम्) समर्थ (भेषजानाम्) भय निवारक पुरुषों में (त्वा) तेरा (उज्जेषे) [शत्रुओं को] जीतने के लिये (आरभामहे) हम आश्रय लेते हैं । (ओषधे) हे ताप नाशक [वा अन्न आदि ओषधि के समान उपकारक !] (सर्वस्मै) सब जनों के लिये (त्वा) तुझे (सहस्रवीर्यम्) सहस्रों सामर्थ्य वाला (चक्रे) उस [परमात्मा] ने बनाया है ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्य पुरुषार्थियों में महा पुरुषार्थी पुरुष को अपना प्रधान बनावें और उससे अपनी रक्षा का सहारा लें ॥ १ ॥

सत्यजितं शपथ्यावनीं सहमानां पुनःसराम् ।
सर्वाः समह्वओषधीरितो नः पारयादिति ॥ २ ॥

सत्यऽजितम् । शपथ्यावनीम् । सहमानाम् । पुनःऽसराम् ।
सर्वाः । सम् । अह्वि । ओषधीः । इतः । नः । पारयात् । इति ॥२॥

१—**ईशानाम्** । ईश ऐश्वर्ये—कः । ईश्वराणां समर्थानाम् । **त्वा** । त्वां राजानम् । **भेषजानाम्** । भेष + जि जये—डः । भेषस्य भयस्य जेतॄणां मध्ये । **उज्जेषे** । **तुमर्थे सेसेनसे०** (पा० ३ । ४ । ९) इति जिधातोः—सेप्रत्ययः । उज्जेतुं निवारयितुं शत्रून् । **आरभामहे** । आङ्पूर्वको रभ स्पर्शे । संस्पृशामः । आश्रयामः । **चक्रे** । स परमेश्वरः कृतवान् । **सहस्रवीर्यम्** । अपरिमितसामर्थ्ययुक्तम् । **सर्वस्मै** । सर्वजनहिताय । **ओषधे** । हे दाहनाशक ! अन्नाद्योषधिवद् उपकारक । **त्वा** । त्वाम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सत्यजितम्) सत्य से जीने वाली, (शपथयावनीम्) शाप वा क्रोध वचन हटाने वाली, (सहमानाम्) शत्रुओं को हराने वाली, और (पुनः सराम्) बारंबार आगे बढ़ाने वाली सेना को, और (सर्वाः) सब (ओषधीः) ताप नाश करने वाली प्रजाओं को (सम् अह्वि) यथावत् मैंने आवाहन किया है, (इतः) इस [कठिन कर्म] से (नः) हमें (पारयात्) वह [पुरुषार्थी] पार लगावे, (इति) इस अभिप्राय से ॥ २ ॥

भावार्थः—प्रजा प्रतिनिधि सब हितकारी सेना और प्रजा गणों को बुला कर शत्रुओं से बचने के लिये राजा बनाने का प्रयोजन प्रकाशित करे ॥ २ ॥

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥ ३ ॥

या । शशाप । शपनेन । या । अघम् । मूरम् । आदधे ।
या । रसस्य । हरणाय । जातम् । आरेभे । तोकम् । अत्तु । सा ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(या) जिस [शत्रुसेना] ने (शपनेन) शाप [कुवचन] से (शशाप) कोसा है और (या) जिसने (अघम्) दुःख देने वाली (मूरम्) मूल को (आदधे) जमा लिया है, और (या) जिसने (रसस्य) रस के (हर-

---

२—**सत्यजितम्** । जि-क्विप्, तुक् । सत्येन जयशीलाम् । **शपथयावनीम्** । यु मिश्रणामिश्रणयोः-णिच्,ल्युट्,ङीप्। शपथस्य आक्रोशस्य क्रोधवचनस्य पृथक्कर्त्रीं नाशयित्रीम् । **सहमानाम्** । अभिभवशीलाम् । **पुनः सराम्** । पुनः पुनः सरति प्रवर्तते सा तां सेनां प्रजां वा । **सर्वाः** । **सम्** । सम्यक् । **अह्वि** । अह्वे आहूतवानस्मि । **ओषधीः** । तापनिवारिकाः प्रजाः । **इतः** । अस्मात् कठिनकर्मणः । **नः** । अस्मान् । **पारयात्** । पार कर्मसमाप्तौ । अस्मत्कर्तव्यं समापयेत् । पारं गमयेत् स राजा । **इति** । अनेन हेतुना ॥

३—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० १ । २८ । ३ । इह शब्दार्थो दीयते । **या** । शत्रुसेना । **शशाप** । अनिष्टकथनं कृतवती । **शपनेन** । शापेन कुवचनेन । **अघम्** । दुःखकरम् । **मूरम्** । लस्य रः । मूलं प्रतिष्ठाम् । **आदधे** । परिजग्राह । **रसस्य** । सारस्य । आनन्दस्य । **हरणाय** । नाशनाय । **आरेभे** । आलेभे । स्पृष्टवती । **तोकम्** । वर्धनम् । सन्तानम् । **अत्तु** । भक्षयतु । **सा** । शत्रुसेना ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णाय) हरण के लिए (जातम्) [हमारे] समूह को (आरेभे) छुआ है, (सा) वह [शत्रुसेना] (तोकम्) अपनी बढ़ती वा संतान को (अत्तु) खा लेवे ॥ ३ ॥

भावार्थः—जल शत्रु सेना दुर्वचन बोलती और उपद्रव मचाती बढ़ती आवे, युद्ध कुशल सेनापति उनमें भेद डाल दे कि वह लोग अपने संतान अर्थात् इष्ट मित्रों को ही नाश कर दें ॥ ३ ॥

यह मन्त्र पहले अ० १ । २८ । ३ में आ चुका है ॥

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ॥ ४ ॥

याम् । ते । चक्रुः । आमे । पात्रे । याम् । चक्रुः । नीलऽलोहिते । आमे । मांसे । कृत्याम् । याम् । चक्रुः । तया । कृत्याऽकृतः । जहि ॥ ४ ॥

भावार्थः—[हे राजन् !] (याम्) जिस [हिंसा] को (ते) तेरे (आमे) भोजन में, वा (पात्रे) पानी में (चक्रुः) उन्होंने [हिंसाकारियों ने] किया है, (याम्) जिसको [तेरे] (नीललोहिते = नीलरोहिते) नीलों अर्थात् निधियों की उत्पत्ति में (चक्रुः) उन्होंने किया है। (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को [तेरे] (आमे) चलने में वा (मांसे) ज्ञान काल वा मांस में (चक्रुः)

४—याम् । कृत्याम् । **ते** । तव । **चक्रुः** । कृतवन्तः ते कृत्याकृतः । **आमे** । अम गतिभोजनादिषु–घञ् । भोजने । **पात्रे** । **दादिभ्यश्छन्दसि** (उ० ४ । १७०) इति पा पाने–त्रन् । पाने जलभाजने वा । **नीललोहिते** । नि नितराम् इलन्ति प्राप्नुवन्ति **यं** स नीलो निधिः कोशः । नि+इल प्रेरणे–कः । **रुहेरश्च लो वा** (उ० ३ । ९४) इति रुह बीजजन्मनि, प्रादुर्भावे च–इतन्, रस्य लः । निधीनां प्रादुर्भावे, उत्पत्तौ । **आमे** । अम गतौ—घञ् । गमने । **मांसे** । **मनेर्दीर्घश्च** (उ० ३ । ६४) इति मन ज्ञाने, अर्च्चे, गर्वे, धृतौ–सप्रत्ययः, दीर्घश्च । मन्यते ज्ञायते ध्रियते वानेन तन्मांसम् । ज्ञाने । मांसः कालः, कीटः—इति शब्दकल्पद्रुमः । काले । यद्वा रक्त-जधातुविशेषः । **कृत्याम्** । अ० ४ । ९ । ५ । हिंसाक्रियाम् । विपत्तिम् । **तया** । कृत्यया । **कृत्याकृतः** । कृत्या+डुकृञ् करणे–क्विप् तुक् । हिंसाकारिणः पुरुषान् हन–लोट् । नाशय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने किया है, (तया) उस [हिंसा] के कारण (कृत्याकृतः) हिंसाकारियों को (जहि) नाश कर दे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो दुष्कर्मी राजा के खान, पान, धनसंचय, मार्ग, तथा सत्य सत्य जानने, वा काल के सुप्रयोग एवं शरीर में विपत्ति डालें, राजा उनको यथावत् दंड देकर नाश कर दे ॥ ४ ॥

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥ ५ ॥

दौःऽस्वप्न्यम् । दौःऽजीवित्यम् । रक्षः । अभ्वम् । अराय्यः ।
दुःऽनाम्नीः । सर्वाः । दुःऽवाचः । ताः । अस्मत् । नाशयामसि ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(दौष्वप्न्यम्) नींद में बेचैनी, (दौर्जीवित्यम्) जीवन का कष्ट, (अभ्वम्) बड़े (रक्षः) राक्षस, (अराय्यः) अनेक अलक्ष्मियों और (दुर्णाम्नीः) दुष्ट नाम वाली (दुर्वाचः) कुवाणियों, (ताः सर्वाः) इन सब को (अस्मत्) अपने से (नाशयामसि) हम नाश करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजा ऐसी नीति चलावे कि प्रजागण बाहिर भीतर से निश्चिन्त होकर सुख की नींद सोवें, उद्यमी होकर आनन्द भोगें, चोर डाकू आदिकों से निर्भय रहें, धन की वृद्धि करें और विद्या बल से कलह छोड़कर परस्पर उन्नति करने में लगे रहें ॥ ५ ॥

५—**दौष्वप्न्यम्** । दुर्+स्वप्न-ष्यञ् । बाह्याभ्यन्तरकारणैः स्वप्नावसादं निद्राभङ्गम् । **दौर्जीवित्यम्** । दुर्+जीवित-ष्यञ् । दुर्जीवनत्वम् । **रक्षः** । राक्षसम् । **अभ्वम्** । **अशूप्रुषि०** (उ० १ । १५१) इति अभि शब्दे-क्वन्, नलोपः । अभ्वो महन्नाम-निघ० ३ । ३ महद् । अतिभयकरम् । **अराय्यः** । अ० २ । १४ । ३ । शसि जस् । अरायीः । अलक्ष्मीः । विपत्तीः । **दुर्णाम्नीः** । दुर्+नामन्-ङीप् दुष्टनामोपेताः । **सर्वाः** । दुर्वाचः । दुष्टवाणीः । **ताः** । **अस्मत्** । अस्मत्सकाशात् । **नाशयामसि** । नाशयामः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥ ६ ॥

क्षुधाऽमारम् । तृष्णाऽमारम् । अगोताम् । अनपऽत्यताम् ।
अपामार्ग । त्वया । वयम् । सर्वम् । तत् । अप । मृज्महे ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(क्षुधामारम्) भूख से मरना, (तृष्णामारम्) पियास से मरना, (अगोताम्) गौओं की हानि, और (अनपत्यताम्) बच्चों का अभाव, (तत् सर्वम्) इस सबको, (अपामार्ग) हे सर्वसंशोधक ! [वा अपामार्ग औषध के समान उपकारी राजन् !] (त्वया) तेरे साथ (वयम्) हम (अप मृज्महे) शोधते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—राजा के सुप्रबन्ध से सूखा के समय भी अन्न, जल, गौ, बैल आदि की बहुतायत से मनुष्य यथावत् बढ़ते रहते हैं ॥ ६ ॥

"अपामार्ग" का अर्थ सर्वथा संशोधक है, और एक औषध भी है, जिससे कफ, बवासीर, खुजली, उदर रोग और विष रोग का नाश होता है ॥

तृष्णामारं क्षुधामारमथो अन्नपराजयम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥ ७ ॥

तृष्णाऽमारम् । क्षुधाऽमारम् । अथो इति । अन्नऽपराजयम् ।
अपामार्ग । त्वया । वयम् । सर्वम् । तत् । अप । मृज्महे ॥७॥

६—क्षुधामारम् । मृङ्—घञ् । क्षुत्पीडया मरणम् । **तृष्णामारम्** । पिपासया मरणम् । **अगोताम्** । गवाम् अभावम् । **अनपत्यताम्** । अपत्यानां राहित्यम् । **अपामार्ग** । अप + आङ् + मृजू शौचालंकारयोः—घञ् । हे सर्वथा संशोधक । हे अपामार्गौषधवद् उपकारिन् ! अपामार्गपर्य्यायाः—'अपामार्गः शैखरिको धामार्गवमयूरकौ'—इत्यमरः, २ । ४ । ८८ । अस्यगुणाः—कफार्शः कण्डूदरामयविषरोगनाशित्वम्—इति शब्दकल्पद्रुमः । **त्वया** । राज्ञा । **वयम्** । प्रजागणाः । **सर्वम्** । **तत्** । एतत् । **अपमृज्महे** । अपमार्जयामः, शोधयामः, विनाशयामः इत्यर्थः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(तृष्णामारम्) पियास से मरना, (क्षुधामारम्) भूख से मरना, (अथो) और भी (अक्षपराजयम्) व्यवहारों वा इन्द्रियों की हार, (तत् सर्वम्) इस सबको (अपामार्ग) हे सर्व संशोधक राजन् ! (त्वया) तेरे साथ (वयम् अपमृज्महे) हम शोधते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—राजा के उत्तम प्रबन्ध से न तो जल, अन्न और दैनिक काम काज की हानि, और न शरीर और आत्मा की दुर्बलता होती है ॥ ७ ॥

अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी ।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥ ८ ॥

अपामार्गः । ओषधीनाम् । सर्वासाम् । एकः । इत् । वशी ।
तेन । ते । मृज्मः । आऽस्थितम् । अथ । त्वम् । अगदः । चर ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(अपामार्गः) सब दोषों का शोधने वाला परमेश्वर (सर्वासाम्) सब (ओषधीनाम्) तापनाशक अन्न आदि पदार्थों का (एकः इत्) एक ही (वशी) वश में रखने वाला है। (तेन) उस [के आश्रय] से [हे राजन् !] (ते) तेरे (आस्थितम्) उपस्थित [भय] को (मृज्मः) हम शोधते हैं, (अथ) इस लिये (त्वम्) तू (अगदः) नीरोग होकर (चर) विचर ॥ ८ ॥

भावार्थः—प्रजागण कहते हैं—"परमात्मा सब संसार का स्वामी है, उसी सहारे से हम आप पर यह राज्य भार रखते हैं, आप भी उसी के सहारे से निश्चिन्त होकर अपना कर्तव्य करें" ॥ ८ ॥

७—अथो । अपि च । **अक्षपराजयम् ।** अक्षू व्याप्तौ-पचाद्यच् घञ् वा। यद्वा । **अशेर्देवने** (उ० ३ । ६५) इति अशूङ् व्याप्तौ-सप्रत्ययः । अक्षाणां व्यवहाराणाम् इन्द्रियाणां वा पराजयं पराभवम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

८—अपामार्गः । म० ६ । सर्वदोषशोधकः परमेश्वरः । **ओषधीनाम् ।** तापनाशयित्रीणाम् अन्नादिपदार्थानाम् । **सर्वासाम् ।** अशेषाणाम् । **एकः ।** अद्वितीयः । **इत् ।** एव । **वशी ।** वशयिता । **तेन ।** अपामार्गेण परमेश्वरेण । **ते ।** तव । **मृज्मः ।** मार्जयामः शोधयामः । **आस्थितम् ।** आपतितं राज्यभाररूपं भयम् । **अथ ।** अनन्तरम् । **त्वम् ।** राजन् । **अगदः ।** अगद[1] नीरोगत्वे च-अच् । रोगशून्यः स्वस्थः । **चर ।** चिरकालं वर्त्तस्व ॥

---

१. कण्ड्वा० ग० ३६ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १८ ॥

१-८ ॥ अपामार्गो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

समं ज्योतिः सूर्येणाह्ना रात्री समावती ।
कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तु कृत्वरीः ॥ १ ॥

समम् । ज्योतिः । सूर्येण । अह्ना । रात्री । समऽवती ।
कृणोमि । सत्यम् । ऊतये । अरसाः । सन्तु । कृत्वरीः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ज्योतिः) ज्योति (सूर्येण समम्) सूर्य के साथ साथ और (रात्री) रात्रि (अह्ना समावती) दिन के साथ वर्तमान है, [ऐसे ही] मैं (सत्यम्) सत्यकर्म को (ऊतये) रक्षा के लिये (कृणोमि) करता हूं, (कृत्वरीः = कृत्वर्यः) कतरने वाली विपत्तियां (अरसाः) नीरस (सन्तु) हो जावें ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे प्रकाश के साथ सूर्य का और दिन के साथ रात्रि का नित्य सम्बन्ध है, ऐसे ही मनुष्य का सत्य के साथ नित्य सम्बन्ध है। इससे राजा और प्रजा सदा सत्य में प्रवृत्त होकर मिथ्या कामों की विपत्तियों से बचें ॥ १ ॥

यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम् ।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम् ॥ २ ॥

१—**समम्** । सह वर्तमानम् । **ज्योतिः** । प्रभामण्डलम् । **सूर्येण** । आदित्येन । **अह्ना** । दिवसेन । **रात्री** । अ० २।८।२ । निशा । **समावती** । सम-मतुप् । छान्दसो दीर्घः । समं समानं वर्तमाना । **कृणोमि** । करोमि । **सत्यम्** । यथार्थं कर्म । **ऊतये** । रक्षणार्थम् । **अरसाः** । निर्बलाः । **सन्तु** । भवन्तु । **कृत्वरीः** । **इण्नशृजिसर्त्तिभ्यः क्वरप्** (पा० ३ । २ । १६३) इति कृती छेदने-क्वरप् । **टिड्ढाणञ्०** (पा० ४ । १ । १५) इति ङीप् । पूर्वसवर्णदीर्घः । कर्तनशीलाः । विपत्तयः । बाधाः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः । देवाः । कृत्याम् । कृत्वा । हरात् । अविदुषः । गृहम् ।
वत्सः । धारुःऽइव । मातरम् । तम् । प्रत्यक् । उप । पद्यताम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वानों ! (यः) जो पुरुष (कृत्याम्) हिंसा (कृत्वा) करके (अविदुषः) अजान मनुष्य के (गृहम्) घर को (हरात्) हर लेवे। वह दुष्कर्म (प्रत्यक्) लौट कर (तम्) उसी [दुष्कर्मी] को (उप पद्यताम्) जा मिले (इव) जैसे (धारुः) दूध पीने वाला (वत्सः) बछड़ा (मातरम्) अपने माता [गौ के पीछे पीछे दौड़ता है] ॥२॥

भावार्थः—दुष्ट मनुष्य को उसकी दुष्टता का दण्ड राजप्रबन्ध वा ईश्वर व्यवस्था से अवश्य पहुंचता है, जैसे छोटा बछड़ा अनेक गौओं में से अपनी ही माता को चिपट जाता है ॥२॥

अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति ।
अश्मानस्तस्यां दुग्धायां बहुलाः फट् करिक्रति ॥३॥

अमा । कृत्वा । पाप्मानम् । यः । तेन । अन्यम् । जिघांसति ।
अश्मानः । तस्याम् । दुग्धायाम् । बहुलाः । फट् । करिक्रति ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (तेन अमा) चोर वा म्लेच्छ के साथ होकर (पाप्मानम्) पाप कर्म (कृत्वा) करके (अन्यम्) दूसरे को (जिघांसति) मारना चाहे, (बहुलाः) वृद्धि करने वाले (अश्मानः) व्यापनशील वा

२—यः । शत्रुः । **देवाः ।** हे विद्वांसः । **कृत्याम् ।** हिंसाम् । **कृत्वा ।** विधाय । **हरात् ।** लेटि आडागमः । हरेत् । **अविदुषः ।** अजानानस्य । **गृहम् ।** गेहम् । **वत्सः ।** वदनशीलः । गोशिशुः । **धारुः । दाधेट्सिशदसदो रुः** (पा०३।२।१५९) इति धेट् पाने-रुः । स्तनपानकर्त्ता । **इव ।** यथा । **मातरम् ।** जननीम् । **तम् ।** दुष्टम् । **प्रत्यक् ।** प्रतिनिवृत्य । **उप पद्यताम् ।** उप गच्छतु ॥

३—अमा । अम गत्यादिषु-क्विप्, टा । सह । **कृत्वा । पाप्मानम् ।** अ०३।३१।१। पाति यस्मात् स पाप्मा पापम् । **यः ।** शत्रुः । **तेन ।** तर्द हिंसायाम्-डः । तर्दति हिनस्तीति तः । चौरः, म्लेच्छः । चौरेण । पामरेण । **अन्यम् ।** सत्कर्माणम् । **जिघांसति ।** हन्तुमिच्छति । **अश्मानः ।** अ० १ । २ । २ । व्यापनशीलाः पाषा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाषाण के समान दृढ़स्वभाव पुरुष (तस्याम्) उस [दुष्क्रिया] के (दग्धायाम्) भस्म किये जाने पर (फट्) [उस दुष्ट का] नाश (करिक्रति) कर डालें ॥ ३ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष दुष्टों से मिल कर लोगों में उपद्रव मचावें, राज-पुरुष अनुसन्धान करके उन दोनों को यथावत् दण्ड देवें ॥ ३ ॥

सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवाञ् छाययात्वम् ।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ॥ ४ ॥

सहस्रऽधामन् । विऽशिखान् । विऽग्रीवान् । शायय । त्वम् ।
प्रति । स्म । चक्रुषे । कृत्याम् । प्रियाम् । प्रियऽवते । हर ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(सहस्रधामन्) हे सहस्रों धारण, पोषण और दान वाले राजन् ! (त्वम्) तू (विशिखान्) विरुद्ध प्रकार से सोने वाले, वा विरुद्ध गति वाले, (विग्रीवान्) विरुद्ध प्रकार से खाने वाले, [दुष्टों] को (शायय) सुला दे [गिरा दे] । (कृत्याम्) दुष्क्रिया (चक्रुषे) करने वाले पुरुष को (प्रति) प्रत्यक्ष (स्म) अवश्य [वैसी ही दण्ड पीडा] (हर) पहुंचा [जैसे] (प्रियाम्) प्रिया, भार्या को (प्रियावते) उसके स्वामी के पास [प्रत्यक्ष पहुँचाते हैं] ॥ ४ ॥

णवद् दृढस्वभावा वा राजपुरुषाः । **तस्याम्** । पूर्वोक्तायां कृत्यायाम्—म० २ । **दग्धायाम्** । भस्मीकृतायां नष्टायां सत्याम् । **बहुलाः** । अ० ३ । १४ । ६ । वृद्धि-शीलाः । **फट्** । त्रिफला विशरणे—क्विप् । डलयोरैक्यम् । तस्य विशीर्णम् । **करिक्रति** । करोतेर्यङ्लुगन्तात् लेटि । **रुग्रिकौ च लुकि** (पा० ७ । ४ । ९१) इति अभ्यासस्य रिगागमः । पुनः पुनः कुर्वन्तु ॥

४—**सहस्रधामन्** । **सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उ० ४ । १४५) इति डुधाञ् धारणपोषणयोः—मनिन् । हे असंख्यातधारणपोषणदानयुक्त राजन् ! **विशि-खान्** । **शीङो ह्रस्वश्च** (उ० ५ । २४) इति शीङ् स्वप्ने—खः, ह्रस्वो गुणाभा-वश्च । यद्वा, शिखि गतौ—कः, नलोपः । विरुद्धनिद्रान् । विरुद्धगतीन् । **विग्रीवान्** । **शेवायह्वजिह्वाग्रीवा०** (उ०१।१५४) इति गृ निगरणे—वन् । ग्री इत्यादेशः । विरुद्धं निगरणशीलान् भक्षकान् दुष्टान् । **शायय** । शीङ् स्वप्ने—णिच् । स्वापय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा अनेक प्रकार से प्रजा का रक्षण आदि करता हुआ दुष्टों को दण्ड पहुंचावे, जैसे भूली भटकी स्त्री को उसके स्वामी के पास प्रत्यक्ष पहुंचा देते हैं ॥ ४ ॥

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥ ५ ॥

अनया । अहम् । ओषध्या । सर्वाः । कृत्याः । अदूदुषम् ।
याम् । क्षेत्रे । चक्रुः । याम् । गोषु । याम् । वा । ते । पुरुषेषु ॥५॥

भाषार्थः—(अहम्) मैंने (अनया ओषध्या) इस ओषधिरूप [तापनाशक तुझ राजा] के साथ (सर्वाः कृत्याः) सब हिंसाओं को (अदूदुषम्) खंडित कर दिया है, (याम्) जिस [हिंसा] को (क्षेत्रे) खेत में, अथवा (याम्) जिसको (गोषु) गौओं में (वा) अथवा (याम्) जिसको (ते) तेरे (पुरुषेषु) पुरुषों में (चक्रुः) उन लोगों ने किया था ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो दुष्ट लोग प्रजा को किसी प्रकार से सतावें, प्रजा गण और राजपुरुष मिलकर दुष्टों का नाश करें ॥ ५ ॥

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकारं भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः ॥ ६ ॥

यः । चकार । न । शशाक । कर्तुम् । शश्रे । पादम् । अङ्गुरिम् ।
चकार । भद्रम् । अस्मभ्यम् । आत्मने । तपनम् । तु । सः ॥ ६ ॥

निद्रापय । पातय । **त्वम् प्रति** । प्रत्यक्षम् । **स्म** । अवश्यम् । **चक्रुषे** । करोतेः क्वसुः । कृतवते पुरुषाय । **कृत्याम्** । हिंसां दुष्क्रियाम् । **प्रियाम्** । प्रीञ् तर्पणे-कः, टाप् । भार्य्या यथा । **प्रियावते** । प्रियया भार्यया तद्वते । **हर** । प्रापय = दण्डपीडां प्रापय ॥

५—अनया ओषध्या । अनेन ओषधिरूपेण तापनाशकेन राज्ञा सह । **अहम्** । प्रजागणः । **सर्वाः** । **कृत्याः** । हिंसाः । **अदूदुषम्** । दुषेर्णयन्तात् लुङि चङि रूपम् । दूषितवान् खण्डितवानस्मि । **याम्** । कृत्याम् । **क्षेत्रे** । शस्यवपनयोग्ये प्रदेशे । **चक्रुः** । कृतवन्तः शत्रवः । **गोषु** । गोषु मध्ये । **वा** । अथवा । **ते** । तव । **पुरुषेषु** । मनुष्येषु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यः) जिस दुष्ट ने (कर्तुम्) हिंसा को (चकार) किया था, वह (न शशाक) समर्थ न था, उसने (पादम्) अपना पैर और (अंगुरिम्) अंगुरी (शश्रे) तोड़ ली। (सः) उसने (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (भद्रम्) आनन्द, और (आत्मने) अपने लिये (तु) तो (तपनम्) तपन (चकार) कर लिया ॥ ६ ॥

भावार्थः—पापी का आत्मा दुर्बल होता है, वह दण्ड पाने से आप ही अपने हाथ पैर में कुल्हाड़ी मारता है। उससे शिष्टों को सुख और उस दुष्ट को दुःख होता है ॥६॥

अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः।
अपाहं यातुधानीरप सर्वा अराय्यः॥ ७ ॥

अपामार्गः। अप। मार्ष्टु। क्षेत्रियम्। शपथः। च। यः।
अप। अह। यातुऽधानीः। अप। सर्वाः। अराय्यः॥ ७ ॥

भाषार्थः—(अपामार्गः) दोषों का शोधने वाला राजा (क्षेत्रियम्) देह वा वंश के दोष को, (च) और (यः) जो कुछ (शपथः) दुर्वचन हो [उसे भी] (अप मार्ष्टु) शुद्ध कर देवे। (अह) अरे (यातुधानीः) यातना देने वाली शत्रु सेनाओं को (अप = अप मार्ष्टु) शुद्ध कर डाले, और (सर्वाः) सब (अराय्यः = अरायीः) अलक्ष्मियों को (अप = अप मार्ष्टु) शुद्ध कर डाले ॥ ७ ॥

६—यः। दुष्टपुरुषः। **चकार**। कृतवान्। **न**। नहि। **शशाक**। शक्तः समर्थः आसीत्। **कर्तुम्**। **सितनिगमि०** (उ० १। ६९) इति कृञ् हिंसायाम्-तुन्। हिंसाम्। **शश्रे**। शॄ हिंसायाम्-लिट्। शीर्णवान्। छिन्नवान्। **पादम्**। चरणम्। **अंगुरिम्**। अ० २। ३३। ६। अङ्गुलिम्। **भद्रम्**। मङ्गलम्। **अस्मभ्यम्**। प्रजागणेभ्यः। **आत्मने**। स्वस्मै। **तपनम्**। दहनं पीडनम्। **तु**। किन्तु। **सः**। दुष्कर्मी ॥

७—अपामार्गः। अ० ४। १७। ६। सर्वथा शोधको राजा। **अप मार्ष्टु**। मृजूष् शुद्धौ। शोधयतु। अपगमयतु। **क्षेत्रियम्**। अ० २। ८। १। क्षेत्र-घच्। देहे वंशे वा भवं रोगं दोषं वा। **शपथः**। क्रोशः। दुर्वचनम्। **च**। **यः**।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा अपनी सुनीति से प्रजा के दुःखों का नाश करके उनके स्वास्थ्य और धन की वृद्धि करे ॥ ७ ॥

अपमृज्य यातुधानानप सर्वा अराय्यः ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥ ८ ॥

अपऽमृज्य । यातुऽधानान् । अप । सर्वाः । अराय्यः ।
अपामार्ग । त्वया । वयम् । सर्वम् । तत् । अप । मृज्महे ॥८॥

भाषार्थः—(यातुधानान्) पीड़ा देने वाले राक्षसों को (अपमृज्य) शोधकर, और (सर्वाः) सब प्रकार की (अराय्यः) दरिद्रताओं को (अप= अपमृज्य) शोधकर, (अपामार्ग) हे सर्वसंशोधक राजन् ! (त्वया) तेरे साथ (वयम्) हम लोग (तत् सर्वम्) उस सब [कष्ट कर्म] को (अप मृज्महे) शोधते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थः—नीति निपुण राजा के शासन में सब प्रजागण अपने कष्टों को दूर करके आनन्द भोगते हैं ॥ ८ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्ध सूक्त १७ मन्त्र ६ में आया है ॥

॥ **सूक्तम् १९** ॥

१—८ ॥ अपामार्गो देवता ॥ १, ३—८ अनुष्टुप्, २ पथ्या पङ्क्तिः ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत् ।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवाच्छिन्धि वार्षिकम् ॥१॥

यः, तमपि । **अप** । अप मार्ष्टु । **अह** । विनिग्रहे । **यातुधानीः** । अ० १ । २८ । २ । पीडादायिनीः शत्रुसेनाः । **सर्वाः** । **अराय्यः** अ० ४ । १७ । ५ । अलक्ष्मीः ॥

८—**अपमृज्य** । सम्यक् शोधयित्वा । **यातुधानान्** । अ० १ । ७ । १ । पीडाप्रदान् । **अप** । अपमृज्य । **सर्वाः** । **अराय्यः** । म० ७ । अरायीः । अलक्ष्मीः । अन्यद् व्याख्यातं सू० १७ म० ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतो इति । असि । अबन्धुऽकृत् । उतो इति । असि । नु । जामिऽकृत् । उतो इति । कृत्याऽकृतः । प्रऽजाम् । नडम्ऽइव । आ । छिन्धि । वार्षिकम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—[हे राजन्] तू (अबन्धुकृत्) अबन्धुओं का काटने वाला (उतो) भी (असि) है, (नु) और (जामिकृत्) बन्धुओं का बनाने वाला (उतो) भी (असि) है। (उतो) इससे (कृत्याकृतः) हिंसा करने वालों और (प्रजाम्) उनके सेवकों को (आछिन्धि) काट डाल, (इव) जैसे (वार्षिकम्) वर्षा में उत्पन्न (नडम्) नरकट घास को ॥ १ ॥

भावार्थः—राजा अपने उत्तम शासन से हिंसक दुष्टों का नाश करके इष्ट मित्रों में मेल बढ़ावे ॥ १ ॥

ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन । सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे ॥ २ ॥

ब्राह्मणेन । परिऽउक्ता । असि । कण्वेन । नार्षदेन । सेनाऽइव । एषि । त्विषिऽमती । न । तत्र । भयम् । अस्ति । यत्र । प्रऽआप्नोषि । ओषधे ॥२॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] तू (ब्राह्मणेन) वेदज्ञानी ब्राह्मण, (कण्वेन) मेधावी, (नार्षदेन) नायकों की सभा के हितकारी पुरुष करके (पर्युक्ता) उप-

---

१—**उतो** । अपि च । **असि** । **अबन्धुकृत्** । कृती छेदने—क्विप् । अबन्धूनां शत्रूणां कर्तकश्छेदकः । **नु** । अनुनये । **जामिकृत्** । जामि इति व्याख्यातम्—अ० २ । ७ । २ । जामिः, बन्धुः—यथा सायणः—ऋ० १ । ७५ । ३ । करोतेः क्विप् । बन्धूनां कर्ता सम्पादकः । **कृत्याकृतः** । हिंसाकर्तॄन् । **प्रजाम्** । तेषां जनान् भृत्यादीन् च । **नडम्** । नल बन्धे[1] = पचाद्यच् । लस्य डत्वम् । सुच्छेद्यं तृणविशेषम् । **इव** । यथा । **आ** । समन्तात् । **छिन्धि** । भिन्धि । विदारय । **वार्षिकम्** । **छन्दसि ठञ्** (पा० ४ । ३ । १९) इति वर्षा—ठञ् । वर्षाकालोद्भवम् ॥

२—**ब्राह्मणेन** । वेदज्ञेन विदुषा । **पर्युक्ता** । उपदिष्टौषधिवत् । **असि** । **कण्वेन** । अ० २ । ३२ । ३ । उपदेशकेन । मेधाविना—निघ० ३ । १५ । **नार्षदेन** ।

---

१. कोषानुसारी यह अर्थ है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिष्ट [ओषध समान] (असि) है। (त्विषीमती) प्रकाशयुक्त (सेना) सेना, अर्थात् सूर्य की किरण पुंज के (इव) समान (एषि) तू चलता है। (तत्र) वहां पर (भयम्) भय (न अस्ति) नहीं होता, (यत्र) जहां पर (ओषधे) हे ओषधि तुल्य तापनाशक राजन् (प्राप्नोषि) तू व्यापक होता है ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य की बतलाई ओषधि बड़ी गुणकारी होती है और जैसे सूर्य अपनी किरणों से अन्धकार मिटाता है, वैसे ही राजा वेदज्ञानी, बुद्धिमान् नरशिरोमणि पुरुषों के उपदेशक और सत्संग से प्रतापी होकर शत्रुओं का नाश करके प्रजा को सुख देता है ॥ २ ॥

अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन्।
उत त्रातासि पाकस्यार्थो हन्तासि रक्षसः ॥ ३ ॥

अग्रम्। एषि। ओषधीनाम्। ज्योतिषाऽइव। अभिऽदीपयन्। उत। त्राता। असि। पाकस्य। अथो इति। हन्ता। असि। रक्षसः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (ज्योतिषा इव) अपने तेज से जैसे (अभिदीपयन्) सब ओर प्रकाश फैलाता हुआ (ओषधीनाम्) ओषधि तुल्य उपकारी पुरुषों में (अग्रम्) आगे आगे (एषि) तू चलता है। (उत) और तू (पाकस्य) पक्का (दृढ) करने योग्य अथवा रक्षा योग्य दुर्बल पुरुष का (त्राता)

नरो नायकाः सीदन्ति यत्रेति नृषत्। **तस्मै हितम्** (पा० ५। १। ५) इति नृषद्-अण्। नृणां नायकानां सभायाः हितकारकेण। **सेना इव**। यथा सेना सूर्यकिरणसमूहः। **एषि**। गच्छसि। **त्विषीमती**। **इगुपधात् कित्** (उ० ४। १२०) इति त्विष दीप्तौ-इन् 'स च कित्' ङीप्। दीप्तियुक्ता। **न**। **तत्र**। **भयम्**। भीतिः दरः। **अस्ति**। **यत्र**। **प्राप्नोषि**। व्याप्नोषि। **ओषधे**। हे ओषधिवत् तापनाशक राजन्॥

३—अग्रम्। अग्रतः। **एषि**। गच्छसि। **ओषधीनाम्**। ओषधिसमानहितकारकाणां मध्ये। **ज्योतिषा**। तेजसा स्वप्रतापेन। **अभि दीपयन्**। अभितः सर्वतः प्रकाशयन्। **उत**। अपि च। **त्राता**। रक्षिता। **असि**। **पाकस्य**। डुपचष् पाके-घञ्। पक्तव्यस्य दृढीकरणीयस्य। यद्वा, **इण्भीकापा०** (उ० ३। ४३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षक (असि) है (अथो) और भी तू (रक्षसः) राक्षस का (हन्ता) हनन करने वाला (असि) है ॥ ३ ॥

भावार्थः—प्रतापी राजा सब उपकारी पुरुषों में अग्रगामी होकर यथावत् शासन करता है ॥ ३ ॥

यद॒दो दे॒वा असु॑रांस्त्वया॒ग्रे नि॒रकु॑र्वत ।
तत॒स्त्वमध्योष॑धेऽपामा॒र्गो अ॑जायथाः ॥ ४ ॥

यत् । अ॒दः । दे॒वाः । असु॑रान् । त्वया॑ । अग्रे॑ । नि॒ः॒ऽअकु॑र्वत ।
तत॑ः । त्वम् । अधि॑ । ओष॑धे । अ॒पा॒मा॒र्गः । अ॒जा॒य॒थाः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अदः) वह (यत्) जो (अग्रे) पूर्वकाल में (त्वया) तेरे साथ होकर (देवाः) देवताओं [विद्वान् शूरों] ने (असुरान्) असुरों को (निरकुर्वत) निकाल दिया है, (ततः) उसी से (ओषधे) हे ओषधि समान तापनाशक राजन् ! (त्वम्) तू (अपामार्गः) संशोधक (अधि) अधिक करके (अजायथाः) प्रकट हुआ है ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य प्रशंसनीय काम करने से ही संसार में प्रशंसा पाते हैं ॥४॥

वि॒भि॒न्दु॒ती श॒तशा॑खा विभि॒न्दन् नाम॑ ते पि॒ता ।
प्र॒त्यग् वि भि॑न्धि॒ त्वं तं यो अ॒स्माँ अ॑भि॒दास॑ति ॥ ५ ॥

वि॒ऽभि॒न्दु॒ती । श॒तऽशा॑खा । वि॒ऽभि॒न्दन् । नाम॑ । ते॒ । पि॒ता । प्र॒त्यक् ।
वि । भि॒न्धि॒ । त्वम् । तम् । यः । अ॒स्मान् । अ॒भि॒ऽदास॑ति ॥ ५ ॥

इति पा रक्षणे—कन् । रक्षणीयस्य दुर्बलस्य पुरुषस्य । **अथो** । अपि च । **हन्ता** । नाशयिता । **रक्षसः** । राक्षसस्य ॥

४—यत् । यस्मात् । **अदः** । तत् । **देवाः** । विद्वांसः शूराः । **असुरान्** । सुरविरोधिनो दुष्टान् । **त्वया** । राज्ञा । **अग्रे** । पूर्वकाले । **निरकुर्वत** । निराकृतवन्तः । निवारितवन्तः । **ततः** । तस्मात् कारणात् । **त्वम्** । **अधि** । उपरि वर्त्तमानः श्रेष्ठः सन् । **ओषधे** । हे ओषधिवत् तापनाशक राजन् ! **अपामार्गः** । दोषाणाम् अपमार्जनशीलः संशोधकः । **अजायथाः** । उत्पन्नोऽभवः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः--[हे राजन् !] (विभिन्दती) रोगों को छिन्न भिन्न करने वाली (शतशाखा) सैकड़ों शाखा वाली [औषधि के समान] (विभिन्दन्) शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाला (नाम) प्रसिद्ध (ते) तेरा (पिता) पिता है । (त्वम्) तू भी (प्रत्यक्) लौटाकर (तम्) उसको (विभिन्धि) छिन्न भिन्न करदे, (यः) जो (अस्मान्) हमको (अभिदासति) सताता रहता है ॥ ५ ॥

भावार्थः--शूरवीर पिता का पुत्र भी अपने पिता के तुल्य शूरवीर होकर वैरियों का नाश करता है ॥ ५ ॥

असद् भूम्याः समभवत् तद्यामेति महद् व्यचः ।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्त्तारमृच्छतु ॥ ६ ॥

असत् । भूम्याः । सम् । अभवत् । तत् । याम् । एति । महत् ।
व्यचः । तत् । वै । ततः । विऽधूपायत् । प्रत्यक् । कर्त्तारम् । ऋच्छतु ॥६॥

भाषार्थः--(तत्) वह (महत्) बड़ा (व्यचः) परस्पर मिला हुआ वा फैला हुआ (असत्) अनित्य जगत् (भूम्याः) भूमि से (समभवत्) उत्पन्न हुआ है, [जो जगत्] (याम्) जिस [भूमि] को (एति) चला जाता है । (ततः) उसी कारण से (तत्) वह [दुष्ट कर्म] (वै) अवश्य (प्रत्यक्) लौटकर (कर्त्तारम्) हिंसक को (विधूपायत् संताप देता हुआ [उसको ही] (ऋच्छतु) पहुँचे ॥ ६ ॥

५--विभिन्दती । भिदिर् विदारणे-शतृः । रोगविदारणशीला । **शतशाखा** । बहुशाखायुक्ता यथौषधिः । **विभिन्दन्** । शत्रूणां विभेदकः । विदारणशक्तिः । **नाम** । प्रसिद्धः । **ते** । तव । **पिता** । पालकः । जनकः । **प्रत्यक्** । प्रति गमनेन प्रतिनिवार्य । **वि भिन्धि** । विदारय । **त्वम्** । हे राजन् । **तम्** । अस्मदीयं शत्रुम् । **यः** । शत्रुः । **अस्मान्** । धार्मिकान् । **अभिदासति** । दसु उपक्षये । अभितो हिनस्ति ॥

६--असत् । सत् नित्यम् असत् अनित्यं नश्वरं कार्यरूपं जगत् । **भूम्याः** । भूमिसकाशात् । **समभवत्** । उदपद्यत । **तत्** । असद् यत् । **याम्** । भूमिम् । **एति** । प्राप्नोति, प्रतिनिवृत्य । **महत्** । विशालम् । **व्यचः** । व्यच व्याजीकरणे सम्बन्धे-असुन् । सम्बद्धं व्याप्तम् । **तत्** । शत्रुकृतं कर्म । **वै** । अवश्यम् । **ततः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे ईश्वर नियम से कार्य रूप स्थूल पदार्थ भूमि आदि तत्त्वों से उत्पन्न होकर फिर छिन्न भिन्न होकर भूमि आदि अपने कारणों में लौट जाते हैं, ऐसे ही राजा के दण्ड से दुष्ट की दुष्टता उसी को ही लौटती और सताती है ॥ ६ ॥

बम्बई गवर्नमेन्ट पुस्तक में टिप्पणी है कि जर्मनी के भट्ट रोथ और ह्विटनी महाशय के मत में 'याम्' के स्थान पर 'द्याम्' होना चाहिये और ग्रिफ़िथ महाशय ने भी 'द्याम्' मानकर स्वर्ग [heaven] अनुवाद किया है, परन्तु पद पाठ और सायण भाष्य में 'याम्' है, और हमारे मत में भी 'याम्' ही शुद्ध है ॥

प्रत्यङ् हि संबभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम् ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम् ॥ ७ ॥

प्रत्यङ् । हि । सम्ऽबभूविथ । प्रतीचीनऽफलः । त्वम् । सर्वान् ।
मत् । शपथान् । अधि । वरीयः । यवय । वधम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (त्वम्) तू (हि) ही (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष होकर (प्रतीचीनफलः) प्रतिकूल गति में रहने वालों का नाश करने वाला (संबभूविथ) हुआ है, [इस कारण] (मत्) मुझसे [शत्रु के] (सर्वान्) सब (शपथान्) शापों को और (वरीयः) अधिक विस्तीर्ण (वधम्) हथियार को (अधि) अधिकार पूर्वक (यवय) पृथक् कर ॥ ७ ॥

तस्मात् कारणात् । **त्रिधूपायत्** । धूप संतापे । **गुधूपविच्छि०** (पा० ३ । १ । २८) इति आयप्रत्ययः स्वार्थे, ततः शतृः । संतापयत् शत्रुम् । **प्रत्यक्** । प्रतिनिवृत्य । **कर्त्तारम्** । कृञ् हिंसायाम्-तृच् । हिंसकम् । **ऋच्छतु** । गच्छतु ॥

७—प्रत्यङ् । प्रति+अञ्चु-क्विन् । प्रत्यञ्चनः । प्रतिगतः । अभिमुखः सन् । **हि** । एव । **संबभूविथ** । सम्यग् विद्यमानो बभूविथ । **प्रतीचीनफलः** । प्रत्यच्—खप्रत्ययः, त्रिफला विशरणे-अच् । प्रत्यक् प्रतिगमनं तत्र भवानां फलं विशरणं नाशनं यस्मात् स तथाभूतः । प्रतिगतिभवानां शत्रूणां विदारकः । **त्वम्** । राजन् । **सर्वान्** । **मत्** । मत्तः । **शपथान्** । शापान् । शत्रुकृतानि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—पराक्रमी विजयी राजा शत्रुओं का नाश करके प्रजा को सुख पहुंचावे ॥ ७ ॥

शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा ।
इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओजमानमा दधत् ॥ ८ ॥

शतेन । मा । परि । पाहि । सहस्रेण । अभि । रक्ष । मा ।
इन्द्रः । ते । वीरुधाम् । पते । उग्रः । ओजमानम् । आ । दधत् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (शतेन) सौ [उपाय] से (मा) मेरा (परि पाहि) सब प्रकार पालन कर, (सहस्रेण) सहस्र साधन से (मा) मेरी (अभि) सब ओर से (रक्ष) रक्षा कर । (वीरुधां पते) हे विविध प्रकार बढ़ने वाली प्रजाओं के पालक ! (उग्रः) महाबली (इन्द्रः) परमेश्वर (ते) तुझको (ओज्मानम्) पराक्रम (आ) यथावत् (दधत्) देता हुआ वर्तमान है ॥८॥

भावार्थः—राजा अपनी प्रजा की सदा रक्षा करे वह पुरुषार्थी पुरुष परमेश्वर की न्याय व्यवस्था से सब बल पाता रहता है ॥ ८ ॥

सूक्तम् २० ॥

१–९ । ब्रह्म देवता अनुष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मोपासनोपदेशः—ब्रह्म की उपासना का उपदेश ॥

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।
दिवमन्तरिक्षमाद्भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति ॥ १ ॥

दुर्वाक्यानि । **अधि** । अधिकृत्य । **वरीयः** । उरु–ईयसुन् । उरुतरं विस्तीर्णतरम् । **यवय** । पृथक् कुरु । **वधम्** । हननसाधनम् । आयुधम् ॥

८—**शतेन** । शतसंख्याकेन रक्षणोपायेन । **मा** । माम् । **परि** । परितः । **पाहि** । रक्ष । **सहस्रेण** । सहस्रसंख्याकेन साधनेन । **अभिरक्ष** । सर्वतः पालय । **इन्द्रः** । परमेश्वरः । **ते** । तुभ्यम् । **वीरुधाम्** । विरोहणशीलानां लतारूपाणां वा प्रजानाम् । **पते** । अधिपते । **उग्रः** । उद्गूर्णबलः । महाबली । **ओजमानम्** । **सर्वधातुभ्यो मनिन्** (उ० ४।१४५) इति ओज बले[1]–मनिन् । बलम् । पराक्रमम् । **आ** । समन्तात् । **दधत्** । डुधाञ् धारणपोषणयोः–शतृः । ददन् प्रयच्छन् वर्तते ॥

---

१. बाहुलकात् ओज बले धातु की कल्पना की है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ । पश्यति । प्रति । पश्यति । परा । पश्यति । पश्यति । दिवम् । अन्तरिक्षम् । आत् । भूमिम् । सर्वम् । तत् । देवि । पश्यति ॥ १ ॥

भाषार्थः—(देवि) हे दिव्यशक्ति परमात्मन् ! तू, (तत्) विस्तार करने वाला वा विस्तीर्ण ब्रह्म आप (आ) अभिमुख (पश्यति) देखता है, (प्रति) पीछे से (पश्यति) देखता है, (परा) दूर से (पश्यति) देखता है, और (पश्यति) सामान्यतः देखता है । (दिवम्) सूर्य लोक, (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक (आत्) और भी (भूमिम्) भूमि अर्थात् (सर्वम्) सबको (पश्यति) देखता है ॥ १ ॥

भावार्थः—वह ब्रह्म सब संसार को एक रस देखता रहता है इसलिए सब मनुष्य उसकी उपासना करके दुष्कर्मों से बचकर सत्कर्मों में प्रवृत्त रहें ॥ १ ॥

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक् ।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ॥ २ ॥

तिस्रः । दिवः । तिस्रः । पृथिवीः । षट् । च । इमाः । प्रऽदिशः । पृथक् । त्वया । अहम् । सर्वा । भूतानि । पश्यानि । देवि । ओषधे ॥ २ ॥

भाषार्थः—(देवि) हे दिव्यशक्ति, (ओषधे) तापनाशक परमात्मन् ! (त्वया) तेरे सहारे से (अहम्) मैं (तिस्रः) तीनों (दिवः) सूर्य लोकों,

---

१—**आ** । अभिमुखम् । **पश्यति** । अवलोकयति । **प्रति** । प्रतिमुखम् । **परा** । दूरतः । **पश्यति** । अविशेषेण साक्षात्करोति । **दिवम्** । सूर्यलोकम् । **अन्तरिक्षम्** । मध्यलोकम् । **आत्** । अपि च । **भूमिम्** । पृथिवीम् । **सर्वम्** । सकलम् । **तत्** । **त्यजितनियजिभ्यो डित्** (उ० १ । १३२) इति तनु विस्तारे श्रद्धोपकरणयोः च इत्यनेन अदिः,स च डित् । विस्तारकं विस्तीर्णं वा,ब्रह्मनामैतत् । **देवि** । हे दिव्यशक्ते ! त्वं तद् ब्रह्म भवत् । **पश्यति** ॥

२—**तिस्रः** । उत्तममध्यमाधमरूपेण त्रिसंख्याकाः । **दिवः** । द्युलोकान् । **पृथिवीः** । भूलोकान् । **षट्** । प्राच्याद्या ऊर्ध्वाधोदिग्भ्यां सह षट्संख्याकाः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तिस्रः) तीनों (पृथिवीः) भूमियों (च) और (इमाः) इन (षट्) छह (प्रदिशः) फैली हुई दिशाओं और (सर्वा) सब (भूतानि) सृष्ट पदार्थों को (पृथक्) नाना प्रकार से (पश्यानि) देखूं ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा के साथ तीन उत्तम, मध्यम और अधम प्रकार से संसार के सब पदार्थों को साक्षात् करके विज्ञान पूर्वक उनसे उपकार लेवे ॥ २ ॥

दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका ।
सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ॥ ३ ॥

दिव्यस्य । सुऽपर्णस्य । तस्य । ह । असि । कनीनिका । सा ।
भूमिम् । आ । रुरोहिथ । वह्यम् । श्रान्ता । वधूःऽइव ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (दिव्यस्य) दिव्य गुण वाले (सुपर्णस्य) यथावत् पालनीय जीव की, तू (ह) अवश्य (कनीनिका) कमनीया देवी, अथवा नेत्र तारा समान (असि) है । (सा = सा त्वम्) उस तूने (भूमिम्) हृदय भूमि को (आ रुरोहिथ) प्राप्त किया है, (इव) जैसे (श्रान्ता) थकी हुई, शान्त स्वभाव, वा जितेन्द्रिय (वधूः) स्त्री (वह्यम्) अपने पाने योग्य पदार्थ को [प्राप्त करती है] ॥ ३ ॥

च इमाः । परिदृश्यमानाः । **प्रदिशः** । प्रकृष्टाः दिशाः । **पृथक्** । नानारूपेण । **त्वया** । ब्रह्मणा सहायेन । **अहम्** । उपासकः । **सर्वा** । सर्वाणि । **भूतानि** । भूतजातानि । **पश्यानि** । साक्षात्करवाणि । **देवि** । हे दिव्यशक्ते । **ओषधे** । हे अन्नाद्योषधिवत् तापनाशक परमात्मन् ॥

३—दिव्यस्य । दिव्यस्वभावस्य । **सुपर्णस्य** । पॄ पालनपूरणयोः—नः । सुष्ठु यथावत् पालनीयस्य जीवस्य । **तस्य** । प्रसिद्धस्य । **ह** । प्रसिद्धौ । **असि** । **कनीनिका** । कनी दीप्तिकान्तिगतिषु—ईन्, कन्, टाप्, अत इत्वम् । कमनीया । यद्वा, चक्षुस्तारावत् प्रदर्शिका । **सा** । सा त्वं देवी । **भूमिम्** । योगिनो हृदय-भूमिम् । **आ रुरोहिथ** । आरूढवती, प्राप्तवती । **वह्यम्** । **अघ्न्यादयश्च** (उ० ४ । ११२) इति वह—यक् । यद्वा । **वह्यं करणम्** (पा० ३ । १ । १०२) इति वह—यत् । प्रापणीयं पदार्थं स्थानं वा । **श्रान्ता** । श्रमु तपसि खेदे च—क्तः । अध्वश्रमयुक्ता । श्रान्ता । जितेन्द्रिया । **वधूः** । **वहेर्धश्च** (उ० १ । ८३) इति वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे जैसे योगी समाधि लगाकर परमात्मा की महिमा देखता है वैसे वैसे ही परमात्मा उसके हृदय में दृढ़ भूमि होता है, जैसे जितेन्द्रिय स्त्री वा पुरुष ठिकाने पर पहुँचकर ठहर जाता है ॥ ३ ॥

तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥ ४ ॥

ताम् । मे । सहस्रऽअक्षः । देवः । दक्षिणे । हस्ते । आ । दधत् ।
तया । अहम् । सर्वम् । पश्यामि । यः । च । शूद्रः । उत । आर्यः ॥ ४ ॥

भावार्थः—(सहस्राक्षः) असंख्य दर्शन शक्ति वाला अथवा सहस्रों व्यवहारों वाला (देवः) प्रकाश स्वरूप परमात्मा (दक्षिणे) प्रवृद्ध (हस्ते) प्रकाश के निमित्त (ताम्) उपकारशक्ति (मे) मुझको (आ) सब ओर से (दधत्) दान कर रहा है, (तया) उस [उपकारशक्ति] से (अहम्) मैं (सर्वम्) सबको (पश्यामि) देखता हूँ, (यः च) जो कोई (शूद्रः) शोचनीय शूद्र अर्थात् मूर्ख (उत) अथवा (आर्यः) प्राप्त करने योग्य आर्य अर्थात् विद्वान् [ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य] हो ॥ ४ ॥

प्रापणे—ऊप्रत्ययः, ह्रस्य धः । वहति सुखानि । यद्वा । बन्ध—ऊः, नलोपः, बध्नाति प्रेम्णा या । नारी, स्त्री । **इव** । यथा ॥

४—**ताम्** । तनु विस्तारे, श्रद्धोपकरणयोः च-डः । टाप् । विस्तृतिम् । उपकृतिम् । **मे** । मह्यम् । **सहस्राक्षः** । अ० ४ । १६ । ४ । बहुदर्शकः । बहुव्यवहारवान् । असंख्यदर्शनः । **देवः** । प्रकाशदानादिगुणयुक्तः परमेश्वरः । **दक्षिणे** । अ० ४ । ११ । ४ । समर्थे । प्रवृद्धे । **हस्ते** । **हसिमृग्रिण्०** (उ० ३ । ८६) इति हसे[1] विकाशे—तन् । विकाशे । प्रकाशे । निमित्ते । **आ** । समन्तात् । **दधत्** । ददद् वर्तते । **तया** । विस्तृत्या । **अहम्** । उपासकः । **सर्वम्** । शूद्रमार्यञ्च । **पश्यामि** । साक्षात्करोमि निर्णयामि । **यः** । **च** । पक्षान्तरे । **शूद्रः** । **शुचेर्दश्च** (उ० २ ।

---

१. धातुपाठादि में 'हसे हसने' धातु पठित है । हास में मुख का विकास ही होता है यह मानकर ऐसा अर्थ दिखाया है । निरुक्त में 'हस्तो हन्तेः प्राशुर्हनने' (निरु० १।७) ऐसा कहकर हस्त शब्द 'हन हिंसागत्योः' से सिद्ध किया है, क्योंकि निरुक्त अर्थ को प्रधान मानकर निर्वचन करता है, इस विषय में निरुक्त २।१ के "अर्थनित्यः परीक्षेत । केनचिद्वृत्तिसामान्येन" सिद्धान्त द्रष्टव्य है । इस प्रकार यास्काचार्य के इस महत्त्वपूर्ण बात को न समझकर जिन काशीनाथ जी राजवाड़े आदि ने यास्क के निर्वचनों को मूर्खतापूर्ण कहा है वह सब व्यर्थ प्रलाप है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सर्व व्यवहार कुशल, सर्वद्रष्टा, सर्वनियन्ता जगदीश्वर की दी हुई उपकारशक्ति द्वारा मनुष्य सब मनुष्यों और पदार्थों का यथावत् विवेक करके संसार की उन्नति करें ॥ ४ ॥

आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः ।
अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ॥ ५ ॥

आविः । कृणुष्व । रूपाणि । मा । आत्मानम् । अप । गूहथाः । अथो इति । सहस्रचक्षो इति सहस्रऽचक्षो । त्वम् । प्रति । पश्याः । किमीदिनः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(रूपाणि) [पदार्थों के] रूपों अर्थात् बाहिरी आकार को (आविष्कृणुष्व) प्रकट कर दे, (आत्मानम्) [वस्तुओं के] आत्मा अर्थात् भीतरी स्वभाव को (मा अप गूहथाः) गुप्त मत रख (अथो) और भी (सहस्रचक्षो) हे असंख्य दर्शन शक्ति वाले परमात्मन् ! (त्वम्) तू (किमीदिनः) अब क्या, यह क्या हो रहा है, ऐसे गुप्त कर्म करने वाले को लुतरे लोगों को (प्रति) प्रत्यक्ष (पश्याः) देख ले ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्य पदार्थों के आकार और गुण को स्थूल और सूक्ष्म रीति से पहचान कर दोषों से बचे और दूसरों को बचावें ॥ ५ ॥

---

१९) इति शुच शोके—रक्, चस्य दः, धातोर्दीर्घश्च । शोचनीयः मूर्खः । उत । विकल्पे । **आर्यः** । **ऋहलोर्ण्यत्** (पा० ३ । १ । १२४) इति ऋ गतौ—ण्यत् । अर्त्तुं प्राप्तुं योग्यः । । पूज्यः, श्रेष्ठः, विद्वान् । ब्राह्मणः । क्षत्रियो वैश्यो वा । महाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधवः—इत्यमरः, २ । ७ । ३ ॥

५—**आविष्कृणुष्व** । प्रकटी कुरु । प्रकाशय । **रूपाणि** । **खष्पशिल्पशष्प०** (उ० ३ । २८) इति रु शब्दे—पप्रत्ययः, दीर्घश्च । यद्वा, रूप रूपक्रियायाम् करणे वा—अच् । पदार्थानां बाह्याकारान् । **मा अप गूहथाः** । गुहू संवरणे । संवृतम् । आच्छादितं मा कार्षीः । **आत्मानम्** । अ० १ । १८ । ३ । पदार्थानां सूक्ष्मस्वभावं सारं तत्त्वं वा । **अथो** । अपि च । **सहस्रचक्षो** । **भृमृशीङ्०** (उ० १ । ७)इति चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि दर्शने च—उः । हे बहुदर्शनशक्ते परमात्मन् । **त्वम्** । **प्रति** । प्रत्यक्षम् । **पश्याः** । दृशेर्लेटि आडागमः । अवलोकय । **किमीदिनः** । अ० १ । ७ । १ । किमिदानीं वर्तते किमिदं वर्तते—इत्येवमन्वेषमाणान् पिशुनान् राक्षसान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः ।
पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥ ६ ॥

दर्शय । मा । यातुऽधानान् । । दर्शय । यातुऽधान्यः । पिशाचान् ।
सर्वान् । दर्शय । इति । त्वा । आ । रभे । ओषधे ॥ ६ ॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (यातुधानान्) यातना देने वाले दोषों को (मा) मुझे (दर्शय) दिखा, (यातुधान्यः=० नीः) महापीडा देने वाली कुवासनाओं को (दर्शय) दिखा। (सर्वान्) सब (पिशाचान्) मांस खाने वाले विघ्नों को (दर्शय) दिखा, (ओषधे) हे तापनाशक परमेश्वर ! (इति) इसके लिये (त्वा) तेरा (आरभे) मैं सहारा लेता हूं ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य की बाहिरी कुचेष्टायें और भीतरी कुवासनायें उसकी उन्नति के महाविघ्न हैं। इसलिये वह विवेक पूर्वक उनका संशोधन करे ॥ ६ ॥

कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः ।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥ ७ ॥

कश्यपस्य । चक्षुः । असि । शुन्याः । च । चतुःऽअक्ष्याः ।
वीध्रे । सूर्यम्ऽइव । सर्पन्तम् । मा । पिशाचम् । तिरः । करः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] तू (कश्यपस्य) रस पीने वाले सूर्य का (च) और (चतुरक्ष्याः) पूर्वादि चार प्रकार से व्याप्ति वाली (शुन्याः) बढ़ी हुई दिशा का (चक्षुः) देखने वाला ब्रह्म (असि) है। (पिशाचम्) मांस

६—**दर्शय**। आविष्कारय, प्रकाशय। **मा**। माम्। **यातुधानान्**। पीडाप्रदान् दोषान्। **यातुधान्यः**। यातुधानीः। पीडाप्रदायिकाः कुवासनाः। **सर्वान्**। **पिशाचान्**। अ० १। १६। ३। पिशितस्य मांसस्य भक्षकान् महादुःखदायिनो विघ्नान्। **इति**। एवमर्थम्। **त्वा**। त्वां परमात्मानम्। **आरभे**। आलभे। स्पृशामि। धारयामि ॥

७—**कश्यपस्य**। अ० २। ३७। ७। कश्यं जलरसं पिबतीति, तस्य, सूर्यस्य। **चक्षुः**। दर्शकं ब्रह्म। **असि**। **शुन्याः**। **श्वनुक्षन्पूषन्०** (उ० १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाने वाले [पीडादायक] विघ्न को (मा तिरस्कर) गुप्त मत रख [प्रकाश करदे] (वीध्रे) विशेष चमकने के समय अर्थात् मध्याह्न में (सर्पन्तम्) चलते हुये (सूर्यमिव) सूर्य को जैसे [नहीं छिपा सकते] ॥ ७ ॥

भावार्थः—परमात्मा इस सब विशाल संसार को सर्वथा देखता है, और सबके दोषों को इस प्रकार जानता है, जैसे दोपहर के सूर्य को। इससे सब मनुष्य दोषों को त्याग कर सदा सुख से रहें ॥ ७ ॥

उद॑ग्रभं परि॒पाणा॑द् यातु॒धानं॑ किमी॒दिन॑म् ।
तेना॒हं सर्वं॑ पश्याम्यु॒त शू॒द्रमु॒तार्यं॑म् ॥ ८ ॥

उत् । अ॒ग्र॒भ॒म् । प॒रि॒ऽपाना॑त् । या॒तु॒ऽधान॑म् । कि॒मी॒दिन॑म् ।
तेन॑ । अ॒हम् । सर्व॑म् । प॒श्या॒मि॒ । उ॒त । शू॒द्रम् । उ॒त । आर्य॑म् ॥८॥

भाषार्थः—(परिपाणात्) रक्षास्थान [अपने हृदय देश] से (यातुधानम्) पीड़ा देने हारे (किमीदिनम्) पिशुन रूप अपने दोष को (उत् अग्रभम्) मैंने पकड़ लिया है। (तेन) उसी से (अहम्) मैं (सर्वम्) सबको (पश्यामि) देखता हूं, (उत) जो कोई (शूद्रम्) शोचनीय शूद्र अर्थात् मूर्ख, (उत) अथवा (आर्यम्) प्राप्त करने योग्य आर्य अर्थात् विद्वान् [ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य] हो ॥ ८ ॥

---

१५९) इति टुओश्वि गतिवृद्ध्योः–कनिन्, नान्तत्वात् ङीप्। व्याप्तायाः प्रवृद्धायाः दिशायाः। **चतुरक्ष्याः**। चतुर्+अक्षू व्याप्तौ—इन्। पूर्वादि दिग्रूपेण चतुर्विधानि अक्षीणि व्यापनानि यस्याः सा चतुरक्षी तस्याः। चतुर्विधव्यापनशीलायाः। **वीध्रे। वाविन्धेः** (उ० २।२६) इति वि+ञिइन्धी दीप्तौ–क्रन्। विशेषदीप्तिकाले। **मध्याह्ने। सूर्यमिव। सर्पन्तम्**। गच्छन्तम्। **पिशाचम्**। पिशितभक्षकं विघ्नम्। **मा तिरस्करः**। करोतेर्माङि लुङि। **कृमृदरुहिभ्यश्छन्दसि** (पा० ३।१।५९) इति च्लेः अङ् आदेशः। अन्तर्हितं मा कार्षीः। सर्वथा प्रकाशय–इत्यर्थः ॥

८---**उत् अग्रभम्**। उत्कर्षेण अग्रहं गृहीतवानस्मि वशीकृतवानस्मि। **परिपाणात्**। परिरक्षणस्थानात्। हृदयदेशात्। **यातुधानम्**। यातनाप्रदम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जितेन्द्रिय पुरुष आत्मदोष के निवारण और बुरे भले के विवेक से शिवसंकल्पी होकर अविद्या का नाश और विद्या का प्रकाश करके सुखी होता है ॥ ८ ॥

इस मन्त्र के उत्तरार्ध के लिये मन्त्र ४ देखो ॥

यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति ।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय ॥ ९ ॥

यः । अन्तरिक्षेण । पतति । दिवम् । यः । च । अतिऽसर्पति ।
भूमिम् । यः । मन्यते । नाथम् । तम् । पिशाचम् । प्र । दर्शय ॥९॥

भाषार्थः—(यः) जो [उपद्रवी] (अन्तरिक्षेण) मध्यवर्ती हृदय अवकाश द्वारा (पतति) नीचे गिरता है, (च) और (यः) जो (दिवम्) व्यवहार वा प्रकाश को (अतिसर्पति) लाँघकर रेंगता है, और (यः) जो (भूमिम्) अपनी सत्ता को [अहंकार से] (नाथम्) ईश्वर (मन्यते) मानता है, (तम्) उस (पिशाचम्) मांसभक्षक, दुःखदायक, आत्मा को (प्रदर्शय) तू दिखा दे ॥ ९ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य मनोविकार से वेद मर्यादा छोड़ कुकर्मी बन जाता है, वह मनुष्य ईश्वर भक्ति से अपने अविद्यादि दोषों को छोड़कर सुखी होवे ॥ ९ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

किमीदिनम् । म० ५ । पिशुनरूपं स्वदोषम् । **तेन** । तेन कारणेन दोषनिग्रहेण । अन्यद् व्याख्यातं म० ४ ॥

९—यः । आत्मदोषः । उपद्रवी जनो वा । **अन्तरिक्षेण** । मध्यवर्त्तिना हृदयावकाशेन, तत्सहायेन । **पतति** । अधोगच्छति । **दिवम्** । **इगुपधज्ञा०** (पा० ३ । १ । १३५) इति दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारादिषु—कप्रत्ययः । व्यवहारम् । प्रकाशम् । **यः** । **च** । **अतिसर्पति** । अतीत्य, उल्लङ्घ्य गच्छति । **भूमिम्** । अ० १ । ११ । २ । भू सत्तायाम्—मिः । सत्ताम् । **यः** । **मन्यते** । अहंकारेण जानाति । **नाथम्** । नाथृ याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु—अच् । प्रभुम् । ईश्वरम् । **तम्** । **पिशाचम्** । पिशिताशनम् । दुःखदायकमात्मानम् । **प्रदर्शय** । अवगमय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २१ ॥

१-७ ॥ गावो देवताः । १, ५-७ त्रिष्टुप् २-४ जगती ॥

विद्यागुणोपदेशः—विद्या के गुणों का उपदेश ॥

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥१॥

आ । गावः । अग्मन् । उत । भद्रम् । अक्रन् । सीदन्तु । गोऽस्थे । रणयन्तु । अस्मे इति । प्रजाऽवतीः । पुरुऽरूपाः । इह । स्युः । इन्द्राय । पूर्वीः । उषसः । दुहानाः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(गावः) पाने वा स्तुति योग्य विद्यायें (आ अग्मन्) प्राप्त हुई हैं, (उत) और उन्होंने (भद्रम्) कल्याण (अक्रन्) किया है। वे (गोष्ठे) हमारी गोठ अर्थात् विद्यासमाज में (सीदन्तु) प्राप्त होवें और (अस्मे) हमें (रणयन्तु = रमयन्तु) सुख देवें। वे (इह) यहां समाज में (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य वाले पुरुष के लिये (पूर्वीः) बहुत (उषसः) प्रभात वेलाओं तक (प्रजावतीः) उत्तम मनुष्यों वाली, (पुरुरूपाः) अनेक लक्षण वाली होकर (दुहानाः) [कामनाओं को] पूर्ण करती हुई (स्युः) रहें ॥ १ ॥

१—**गावः । गमेर्डोः** (उ० २ । ६७) इति गम्लृ गतौ गा स्तुतौ वा—डोः । गौरिति वाङ् नाम—निघ० १ । ११ । प्रापणीया गानयोग्या वा वाचः । विद्याः । **आ अग्मन् । मन्त्रे घसह्वर०** (पा० २ । ४ । ८०) इति लुङि च्लेर्लुक् । अगमन् आगताः प्राप्ता अभवन् । **उत** । अपि च । **भद्रम्** । कल्याणम् । **अक्रन्** । पूर्ववत् लुङ् । अकार्षुः । **सीदन्तु** । षदॢ गतौ । ताः प्राप्नुवन्तु । **गोष्ठे** । गावो वाचस्तिष्ठन्ति यत्र । विद्यासमाजे । **रणयन्तु** । रणाय रमणीयाय संग्रामाय—निरु० १० । ४७ । इति निर्देशात् मस्य णः । रमयन्तु । सुखयन्तु । **अस्मे** । विभक्तेः शे इत्यादेशः । अस्मान् । **प्रजावतीः** । प्रजावत्यः । प्रशस्तजनवत्यः । **पुरुरूपाः** । बहुरूपाः । नानाविधाः । **इह** । अस्मिन् गोष्ठे । **स्युः** । भवेयुः । **इन्द्राय** । परमैश्वर्ययुक्ताय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—विद्यायें परमेश्वर से आकर संसार को महा उपकारी हुई हैं। मनुष्य ईश्वर विद्या, शिल्प विद्या आदि अनेक विद्याओं को प्राप्त करें और 'इन्द्र' महापुरुषार्थी प्रधान पुरुष के सहायक होकर बहुत काल तक सुख भोगें ॥ १ ॥

यह सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद, म० ६ सू० २८ म० १—७ में है। वहाँ सूक्त के भरद्वाज बार्हस्पत्य ऋषि हैं ॥

इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद्ददाति न स्वं मुषायति।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम्॥ २॥

इन्द्रः। यज्वने। गृणते। च। शिक्षते। उप। इत्। ददाति। न। स्वम्। मुषायति। भूयःऽभूयः। रयिम्। इत्। अस्य। वर्धयन्। अभिन्ने। खिल्ये। नि। दधाति। देवऽयुम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला राजा (यज्वने) यज्ञ करने वाले (च) और (गृणते) उपदेशक पुरुष को (शिक्षते) शिक्षा देता है, और (उप = उपेत्य) आदर करके (स्वम्) धन (ददाति) देता है, और (न) न (मुषायति) चुराता है, और (देवयुम्) दिव्य गुण वा विद्वानों के प्राप्त करने

पुरुषाय। **पूर्वीः**। पुरु बहुनाम-निघ० ३। १। ततो ङीष्। पूर्वीः। बह्वीः। **उषसः। कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** (पा० २। ३। ५) इति द्वितीया। उषाः—कालोपलक्षितान् दिवसान्। सर्वकालम्। **दुहानाः**। दुह प्रपूरणे—शानच्। कामान् प्रपूरयन्त्यः ॥

२—**इन्द्रः**। राजा। **यज्वने। सुयजोऽर्वनिप्** (पा० ३। २। १०३) इति यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु—ङ्वनिप्। यज्ञकर्त्रे। **गृणते**। गृ शब्दे—शतृः। उपदेशकाय जनाय। **च**। **शिक्षते**। उपदिशति। **उप**। उपेत्य। **इत्**। अवधारणे। **ददाति**। सुपात्राय प्रयच्छति। **न**। निषेधे। **स्वम्**। धनम्। **मुषायति**। **छन्दसि शायजपि** (पा० ३। १। ८४) इति मुष स्तेये—श्नः शायच्। मुष्णाति चोरयति। **भूयोभूयः**। बहुतरम्। **रयिम्**। धनम्। **इत्**। **अस्य**। संसा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले (रयिम्) धन को (भूयोभूयः) अधिक (इत्) ही (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ (इत् अस्य) इस संसार के (अभिन्ने) अटूट (खिल्ये) कण कण प्राप्ति के लाभ में (निदधाति) निधि रूप से रखता है ॥ २ ॥

भावार्थः—प्रतापी राजा स्वार्थ छोड़कर विद्यादानादि में धन को व्यय करता है, विद्याबल से धन बढ़ाता हुआ संसार को बहुत लाभ पहुंचाता है ॥ २ ॥

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति । देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित् ताभिः सचते गोपतिः सह ॥ ३ ॥

न । ताः । नशन्ति । न । दभाति । तस्करः । न । आसाम् । आमित्रः । व्यथिः । आ । दधर्षति । देवान् । च । याभिः । यजते । ददाति । च । ज्योक् । इत् । ताभिः । सचते । गोऽपतिः । सह ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(ताः) वे [विद्यायें] (न) नहीं (नशन्ति) नष्ट होती हैं, (न) न [उन्हें] (तस्करः) चोर (दभाति) ठगता है, (न) न (आमित्रः) पीडा देने वाला (व्यथिः) व्यथाकारी शत्रु (आसाम्) इनकी (आ दधर्षति) हँसी उड़ाता है । (च) और (गोपतिः) विद्याओं का स्वामी, वाचस्पति (याभिः)

रस्य । **वर्धयन्** । समर्धयन् । **अभिन्ने** । अच्छिन्ने । निरुपद्रवे । **खिल्ये** । खिल[1] कणश आदाने–कः । ततो यत् । कणश आदानस्थाने, अप्रहते देशे भवे सुरक्षिते लाभे । **निदधाति** । निधिरूपेण स्थापयति । **देवयुम्** । **मृगय्वादयश्च** (उ० १ । ३७) इति देव + या प्रापणे—कुः । देवानां दिव्यगुणानां विदुषां वा प्रापकम् ॥

३—न । नहि । **ताः** । गावः । विद्याः । **नशन्ति** । णश अदर्शने, छान्दसो विकरणस्य लुक् । नश्यन्ति । **दभाति** । दम्भु दम्भने=वञ्चने, लेटि आडागमः । दम्भयति दभ्नोति वञ्चति ताः । **तस्करः** । अ० ४।३।२ । उपतापकरः । चोरः । **आसाम्** । गवाम् । विद्यानाम् । **आमित्रः** । **अमेर्द्विपति चित्** (उ० ४ । १७४) इति आङ् + अम रोगे–इत्रः । आ समन्ताद् आमयति पीडयतीति सः । शत्रुः । **व्यथिः** । **सर्व-**

---

१. यह धातु धातुपाठादि में कहीं पठित नहीं है । वाचस्पत्यम् कोष पठित है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन [विद्याओं] से (देवान्) दिव्य गुणों को (यजते) पूजता (च) और (ददाति) देता है, (ताभिःसह) उन [विद्याओं] के साथ (ज्योक् इत्) बहुत ही काल तक वह (सचते) मिला रहता है ॥३॥

भावार्थः—विद्या अक्षय कोश है। जो मनुष्य विद्याओं को सत्कारपूर्वक ग्रहण करके संसार में फैलाता है, वह यशस्वी होकर सदा आनन्द भोगता है ॥३॥

न ता अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः॥४॥

न। ताः। अर्वा। रेणुऽककाटः[1]। अश्नुते। न। संस्कृतत्रम्। उप। यन्ति। ताः। अभि। उरुऽगायम्। अभयम्। तस्य। ताः। अनु। गावः। मर्तस्य। वि। चरन्ति। यज्वनः॥ ४॥

भाषार्थः—(न) न तो (अर्वा) घोड़े के समान विषयासक्त,[2] अथवा हिंसक पुरुष, और (न) न (रेणुककाटः) धूलि के कूये के समान गिर जाने वाला मनुष्य (ताः) उन [विद्याओं] को (अश्नुते) पाता है। (ताः) वे विद्यायें (संस्कृतत्रम्) संस्कृत [शुद्ध] विद्याओं के रक्षक जन को (अभि) सब ओर से (उप यन्ति) आती हैं। (ताः गावः) वे विद्यायें (तस्य) उस (यज्वनः)

धातुभ्य इन् (उ० ४। ११८) इति व्यथ भयसंचलनयोः—इन्। व्यथाजनको दुष्टः **आ दधर्षति**। धृष प्रसहने। आधर्षति आधर्षणं प्रसहनं तिरस्कारं करोति। **देवान्**। दिव्यगुणान्। **च**। **याभिः**। गोभिः। विद्याभिः। **यजते**। पूजयति। **ददाति**। प्रयच्छति। **च**। **ज्योक्**। निरन्तरम्। **इत्**। **ताभिः**। गोभिः। विद्याभिः। **सचते**। समवैति। **गोपतिः**। गवां विद्यानां स्वामी। वाचस्पतिः। **सह**। सहितः॥

४—**न**। निषेधे। **ताः**। गाः। वाचः। विद्याः। **अर्वा**। **अवद्यावमाधमार्वरेफाः कुत्सिते** (उ०५।५४) इति ऋ गतौ हिंसायां च-वन्। अर्वा, अश्वनाम। निघ० १। १४। अर्वेरणवान्-निरु० १०। ३१। निकृष्टप्रतिकृष्टार्वरेफ० इत्यमरः-३। १। ५४। ऋच्छति मार्गम्, ऋणोत्यन्यान्। अश्व इव विषयासक्तो हिंसको

---

१. यहाँ रेणुककाटः के अर्थ में सायणाचार्य एवं भाष्यकार के अर्थों में भिन्नता होने से पदपाठ प्रदर्शित विवृति में अन्तर है। सायणाचार्य ने स्वार्थ में रेणु से कप्रत्यय मानकर 'रेणुक' के पश्चात् विवृति दिखाई है, पर भाष्यकार ने 'कस्य जलम्' करके तीन पद माने हैं ॥सम्पा०॥

२. अश्व अत्यन्त संयमी पशु है, विषयासक्त नहीं, अतः यहाँ 'हिंसक पुरुष' अर्थ ही सङ्गत है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवताओं के पूजने वाले (मर्तस्य) मनुष्य के (उरुगायम्) बड़े प्रशंसनीय (अभयम्) निर्भय राज्य में (अनु) अनुकूलता से (विचरन्ति) विचरती हैं ॥४॥

भावार्थः—विषयी, अदृढ़स्वभाव, दुष्ट जन विद्या के उत्तम फल को नहीं पा सकते हैं। जितेन्द्रिय, विद्वानों के सत्कार करने वाले राजा के सुरक्षित राज्य में अनेक उत्तम विद्यायें उन्नति को प्राप्त होती हैं ॥ ४ ॥

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः । इमा या गावः स जनास इन्द्रं इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥ ५ ॥

गावः । भगः । गावः । इन्द्रः । मे । इच्छात् । गावः । सोमस्य । प्रथमस्य । भक्षः । इमाः । याः । गावः । सः । जनासः । इन्द्रः । इच्छामि । हृदा । मनसा । चित् । इन्द्रम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—(गावः) विद्यायें ही (भगः) धन हैं, (गावः) विद्यायें (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य हैं, (गावः) विद्यायें (प्रथमस्य) अति श्रेष्ठ (सोमस्य) सोमरस अर्थात् अमृत वा मोक्ष का (भक्षः) सेवन हैं, [इति] (मे इच्छात्)

वा कुत्सितः पुरुषः । **रेणुकाटः** । रेणु + क + काटः । **अजिदृरीभ्यो निच्च** (उ० ३ । ३८ इति री गतिरेषणयोः—नुः । इति रेणुः । कटे वर्षावरणयोः—घञ् । कस्य जलस्य काटो वर्षणं सेचनं यस्मात् स ककाटः कूपः । धूलिकूप इव पतनस्वभावः । **अश्नुते** । प्राप्नोति । **संस्कृतत्रम्** । संस्कृत + त्रैङ् पालने—कः । संस्कृतानां देववाणीनां शोभनविद्यानां रक्षकम् । **उपयन्ति** । आगच्छन्ति प्राप्नुवन्ति । **अभि** । आभिमुख्येन । । **उरुगायम्** । अ० २।१२।१ । बहुप्रशंसनीयम् । **अभयम्** । निर्भयं राज्यम् । **तस्य** । विद्यारक्षकस्य । **ताः** । **अनु** । अनुकूलतया **गावः** । विद्याः । **मर्तस्य** । **हसिमृग्रिण्०** (उ० ३ । ८६) इति मृङ् प्राणत्यागे—तन् । मारयति दोषान् स मर्तः । मनुष्यस्य । **विचरन्ति** । विविधं गच्छन्ति । **यज्वनः** । म० २ । याजकस्य । देवपूजकस्य ॥

५—**गावः** । वाचः । विद्याः । **भगः** । भजनीयं धनम्—निघ० २ । १० । **इन्द्रः** । परमैश्वर्याः सन्ति । **मे** । मम । **इच्छात्** । इषु इच्छायां लेटि आडागमः । इच्छा भवेत्—इति । **सोमस्य** । ऐश्वर्यवतो अमृतस्य मोक्षस्य । **प्रथमस्य** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[यह] मेरी इच्छा हो। (जनासः) हे मनुष्यो ! (इमाः) ये (याः) जो (गावः) विद्यायें हैं, (सः) सो ही (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य हैं। (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य की (चित्) ही (हृदा) हृदय अर्थात् आत्मा और (मनसा) विज्ञान के साथ (इच्छामि) मैं चाह करता हूं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य विद्याओं को धन, ऐश्वर्य और मोक्ष का मुख्य साधन जानकर पूर्ण श्रद्धा से प्राप्त करें ॥५॥

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु ॥६॥

यूयम् । गावः । मेदयथ । कृशम् । चित् । अश्रीरम् । चित् । कृणुथ । सुऽप्रतीकम् । भद्रम् । गृहम् । कृणुथ । भद्रऽवाचः । बृहत् । वः । वयः । उच्यते । सभासु ॥ ६ ॥

भावार्थः—(गावः) हे विद्याओ ! (यूयम्) तुम (कृशम्) दुर्बल से (चित्) भी, (अश्रीरम्) श्रीरहित निर्धन से (चित्) भी (मेदयथ) स्नेह करती हो और (सुप्रतीकम्) बड़ी प्रतीति वाला वा बड़े रूप वाला (कृणुथ) बना देती हो। (भद्रवाचः) हे कल्याणी विद्याओ ! (गृहम्) घर को (भद्रम्)

अतिश्रेष्ठस्य। **भक्षः** । **वृतॄवदिवचि०** (उ० ३। ६२) इति भज सेवायाम्- सः। सेवनम्। भोगः। **इमाः** । **याः** । **गावः** । **सः** । स एव। **इन्द्रः** । ऐश्वर्यम्। **जनासः** । हे जनाः। विद्वांसः। **इच्छामि** । अहं कामये। **हृदा** । हृदयेन। आत्मना। **मनसा** । विज्ञानेन । **चित्** । अपि। एव। **इन्द्रम्** । विद्यारूपम् ऐश्वर्यम् ॥

६—**यूयम् । गावः** । हे विद्याः । **मेदयथ** । ञिमिदा स्नेहने—णिच् । स्नेहयथ । आप्याययथ । **कृशम् । अनुपसर्गात् फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः** (पा० ८। २। ५५) इति कृश तनूकरणे—क्तप्रत्ययान्तो निपात्यते। क्षीणं निर्बलम्। **चित्** । अपि। **अश्रीरम्** । रो मत्वर्थीयः अश्रीयुक्तम्। निर्धनम्। अमङ्गलम्। **कृणुथ** । कुरुथ। **सुप्रतीकम्** । **अलीकादयश्च** (उ० ४। २५) इति सु+प्र+इण् गतौ—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंगलमय (कृणुथ) कर देती हो, (सभासु) विद्वानों से प्रकाशमान सभाओं में (वः) तुम्हारा ही (वयः) बल (बृहत्) बड़ा (उच्यते) बखाना जाता है ॥ ६ ॥

भावार्थः—विद्या से दुर्बल मनुष्य सबल, और निर्धन बड़ा विश्वासी और रूपवान् होता है, विद्वानों के घर में सदा आनन्द रहता, और विद्वानों की ही राज-सभा और पंचायतों में बड़ाई होती है ॥ ६ ॥

प्रजावंतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः । मा वस्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥ ७ ॥

प्रजाऽवंतीः । सुऽयवसे । रुशन्तीः । शुद्धाः । अपः । सुऽप्रपाने । पिबन्तीः । मा । वः । स्तेनः । ईशत । मा । अघऽशंसः । परि । वः । रुद्रस्य । हेतिः । वृणक्तु ॥ ७ ॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य प्रजाओ !] (प्रजावतीः) उत्तम सन्तान वाली, (सुयवसे) सुन्दर यव आदि अन्न वाले [घर] में [अन्न] (रुशन्तीः) खाती हुई, और (सुप्रपाणे) सुन्दर जलस्थान में (शुद्धाः) शुद्ध (अपः) जलों को (पिबन्तीः) पीती हुई (वः) तुमको (स्तेनः) चोर (मा ईशत) वश में न करे, और (मा) न (अघशंसः) बुरा चीतने वाला, डाकू उचक्का आदि [वश में करे] ।

कीकन्, धातोस्तुट्चागमः । शोभनप्रतीतिवन्तम् । शोभनावयवम् । सुरूपम् । **भद्रम्** । कल्याणकरम् । **गृहम्** । गेहम् । **भद्रवाचः** । हे शोभना वाचो विद्याः । **बृहत्** । महत् । **वः** । युष्माकम् । **वयः** । अ० २ । १० । ३ । यौवनम् । बलम् । **उच्यते** । प्रशस्यते । **सभासु** । सह+भा दीप्तौ-अङ्, टाप्, सहस्य सः । विद्वद्भिः प्रकाशमानासु परिषत्सु ॥

७—प्रजावतीः । उत्तमसन्तानयुक्ताः [हे प्रजाः—इति शेषः] । **सुयवसे** । **अत्यविचमि०** (उ० ३ । ११७) इति सु+यु मिश्रणामिश्रणयोः-असच् । शोभनानि यवाद्यन्नानि यस्मिन्,तस्मिन् गृहे । **रुशन्तीः** । रुश हिंसायाम्-शतृः । अन्नं भक्षयन्तीः । **शुद्धाः** । निर्मलाः । **अपः** । जलानि । **सुप्रपाणे** । सुन्दरे जलपानस्थाने । **पिबन्तीः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रुद्रस्य) पीडानाशक परमेश्वर की (हेतिः) हनन शक्ति (वः) तुमको (परि) सब ओर से (वृणक्तु) त्यागे रहे ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य विद्यायें उपार्जन करके अपनी सन्तानों को उत्तम शिक्षा देते हुये और अन्न जल आदि का सुप्रबन्ध करते हुये सदा हृष्ट पुष्ट बुद्धिमान् और धर्मनिष्ठ रहें जिससे उन्हें न चोर आदि सता सके और न परमेश्वर दण्ड देवे ॥ ७ ॥

'मा वस्तेन ईशत माघशंसः' इतना मन्त्रांश य० १ । १ और 'परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु' यह मन्त्रांश य० १६ । ५० में है ॥

सूक्तम् २२ ॥

१–७ ॥ इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

संग्रामजयायोपदेशः—संग्राम में जय के लिये उपदेश ॥

इमर्मिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम् ।
निरमित्रानक्षण्ह्यस्य सर्वांस्तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु ॥१॥

इमम् । इन्द्र । वर्धय । क्षत्रियम् । मे । इमम् । विशाम् । एकऽवृषम् । कृणु । त्वम् । निः । अमित्रान् । अक्षण्हि । अस्य । सर्वान् । तान् । रन्धय । अस्मै । अहम्ऽउत्तरेषु ॥ १ ॥

पानं कुर्वतीः । **वः** । युष्मान् । **स्तेनः** । चोरः । **व स्तेन । खपरे शरि वा लोपो वक्तव्यः** (वा० पा० ८ । ३ । ३६) इति विसर्गलोपः । **मा ईशत** । मा ईशिष्ट । अधिकारे वशे न करोतु । **मा** । मा ईशत । **अघशंसः** । अघ पापकरणे–पचाद्यच्, शसि इच्छायाम्–अच् । अघं पापं शंसति इच्छतीति यः । अनिष्टचिन्तकः । **परि** । सर्वतः । **वः** । युष्मान् । **रुद्रस्य** । रुद्+रस्य । रुदिर् अश्रुविमोचने–क्विप्, इति रुत् पीडा । रुङ् गतिरेषणयोः–डः । रुदं पीडां रवते नाशयतीति रुद्रः, [1]तस्य दुःखनाशकस्य परमेश्वरस्य । **हेतिः** । **ऊतियूतिजूति०** (पा० ३ । ३ । ९७) इति हन हिंसागत्योः–क्तिन् । हन्यते ताड्यते अनया । हननशक्तिः । **वृणक्तु** । वृजी वर्जने । वर्जयतु । त्यजतु ॥

---

१. रुद्र शब्द की इस व्युत्पत्ति में क्लिष्ट कल्पना करनी पड़ती है । पापिनो रोदयतीति रुद्रः परमेश्वरः ऐसा विग्रह करके रोदेर्णिलुक् च (उ० २ । २२) से ण्यन्त रुदिर् धातु से रक् प्रत्यय करने पर अर्थ की भी असङ्गति नहीं होती है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वम्) तू (इमम्) इस (क्षत्रियम्) राज्य करने में चतुर राजा को (मे) मेरे लिये (वर्धय) बढ़ा, और (इमम्) इसको (विशाम्) मनुष्यों का (एकवृषम्) अद्वितीय प्रधान अर्थात् सार्वभौम शासक (कृणु) बना। (अस्य) इसके (सर्वान्) सब (अमित्रान्) वैरियों को (निरक्ष्णुहि) निर्बल करदे, और (तान्) उन्हें (अस्मै) इसके लिये (अहमुत्तरेषु) मैं ऊंचा होता हूं, मैं ऊंचा होता हूं ऐसे कथन स्थान रणक्षेत्रों में (रन्धय) नाश कर वा वश में कर ॥ १ ॥

भावार्थः—प्रजागण सर्वश्रेष्ठ पुरुष को राजा बनावें जो परमेश्वर में विश्वास करके युद्ध भूमि में शत्रुओं को मारकर प्रजा को सुखी रक्खे ॥ १ ॥

सायणाचार्य ने "अहमुत्तरेषु" पद को पदपाठ के विरुद्ध "अहम् उत्तरेषु" ऐसे दो पद मानकर व्याख्या की है ॥

एमं भंज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भंज यो अमित्रो अस्य ।
वर्ष्मं क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै ॥ २ ॥

आ । इमम् । भज । ग्रामे । अश्वेषु । गोषु । निः । तम् । भज । यः । अमित्रः । अस्य । वर्ष्म । क्षत्राणाम् । अयम् । अस्तु । राजा । इन्द्र । शत्रुम् । रन्धय । सर्वम् । अस्मै ॥ २ ॥

१—**इमम्** । अस्माकं मध्ये वर्त्तमानम् । **इन्द्र** । हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन् । **वर्धय** । समर्धय । **क्षत्रियम्** । **क्षत्राद् घः** (पा० ४ । १ । १३८) इति क्षत्रघः । क्षत्रे राष्ट्रे साधुम् । राजानम् । **मे** । मह्यम् । **विशाम्** । विश प्रवेशने–क्विप् । विशः, मनुष्यनाम–निघ० २ । ३ । मनुष्याणाम् । प्रजानाम् । **एकवृषम्** । वृषु सेचने, प्रजननैश्वर्ययोः–कः । अद्वितीयप्रधानम् । एकवीरम् । सार्वभौमम् । **कृणु** । कुरु । **त्वम्** । **अमित्रान्** । अ० १ । १९ । २ पीडकान् शत्रून् । **निः अक्ष्णुहि** । अक्षू व्याप्तौ । निर्गतव्याप्तिकान् निर्बलान् कुरु । **अस्य** । राज्ञः । **सर्वान्** । तान् तथाविधान् शत्रून् । **रन्धय** । रध हिंसासंराध्योः । **रधिजभोरचि** (पा० ७ । १ ६१) इति नुमागमः । रध्यतिर्वशगमने- निरु० १०।४० । नाशय । वशीकुरु । **अस्मै** । राज्ञे । **अहमुत्तरेषु** । अहम् + उत्तरेषु । अहमुत्तरो भवामि अहमुत्तरो भवामि इति कथनं यत्र । परस्परोत्कर्षाय योधानां धावनकर्मसु । महासंग्रामेषु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इमम्) इसको (ग्रामे) ग्राम में, (अश्वेषु) घोड़ों में, और (गोषु) गौ आदिकों में (आभज) भाग्यवान् कर और (यः) जो (अस्य) इसका (अमित्रः) बैरी है, (तम्) उसको (निर्भज) अलग करदे। (अयम्) यह (राजा) राजा (क्षत्राणाम्) क्षत्रियों का (वर्ष्म) मस्तक [समान ऊंचा] (अस्तु) होवे। (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले इन्द्र भगवान्! (अस्मै) इसके लिये (सर्वम्) सब (शत्रुम्) शत्रु को (रन्धय) वश में कर ॥२॥

भावार्थः—राजा परमेश्वर में श्रद्धा रखता हुआ अपनी प्रजा, सेना, और गौ आदि पशुओं की रक्षा करता हुआ अपने सब शत्रुओं का नाश करके क्षत्रियों का शिरोमणि बने ॥ २ ॥

अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा ।
अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य ॥३॥

अयम् । अस्तु । धनऽपतिः । धनानाम् । अयम् । विशाम् । विश्पतिः । अस्तु । राजा । अस्मिन् । इन्द्र । महि । वर्चांसि । धेहि । अवर्चसम् । कृणुहि । शत्रुम् । अस्य ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (धनानाम्) बहुत प्रकार के धनों का (धनपतिः) धनपति (अस्तु) होवे। (अयम्) यह (राजा) राजा (विशाम्) बहुत प्रजाओं का (विश्पतिः) प्रजापति (अस्तु) होवे। (इन्द्र) हे परमेश्वर!

२—**इमम्**। राजानम्। **आ भज**। भज सेवाविश्राणनयोः। समन्तात् सेवस्व। भागं देहि। **ग्रामे**। अ० ४। ७। ५। वसतौ। **अश्वेषु**। तुरङ्गेषु। **गोषु**। धेन्वादिपशुषु। **तम्**। शत्रुम्। **निर्भज**। निर्भक्तं वियुक्तं कुरु। **यः**। **अमित्रः**। पीडकः शत्रुः। **अस्य**। राज्ञः। **वर्ष्म**। अ० ३। ४। २। उन्नतस्थानम्। शिरोवदुन्नतः। **क्षत्राणाम्**। अ० २। १५। ४। क्षतस्त्रायकाणां क्षत्रियाणां मध्ये। **अस्तु**। **राजा**। **इन्द्र**। हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन्। **शत्रुम्**। रिपुम्। **रन्धय**। म० १। वशीकुरु। **सर्वम्**। **अस्मै**। राजहिताय ॥

३—**अयम्**। **अस्तु**। **धनपतिः**। धनानां निधीनां पालकः। **धनानाम्**। बहुविधधनानाम्। **विशाम्**। बहुप्रजानाम्। **विश्पतिः**। प्रजापालकः। **राजा**। **अस्मिन्**। राजनि। **इन्द्र**। हे परमात्मन्। **महि**। **सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अस्मिन्) इस राज्य में (महि=महीनि) बड़े बड़े (वर्चांसि) तेजों को (धेहि) धारण कर, (अस्य) इसके (शत्रुम्) बैरी को (अवर्चसम्) निस्तेज (कृणुहि) कर दे ॥ ३ ॥

भावार्थः—राजा परमेश्वर के अनुग्रह से पुरुषार्थ पूर्वक बहुत धन एकत्र करके प्रजा की रक्षा करे और महा प्रतापी होकर शत्रुओं को वश में रक्खे ॥ ३ ॥

अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघे इव धेनू । अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात् प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम् ॥४॥

अस्मै । द्यावापृथिवी इति । भूरि । वामम् । दुहाथाम् । घर्मदुघे इवेतिघर्मदुघे-ऽइव । धेनू । इति । अयम् । राजा प्रियः । इन्द्रस्य । भूयात् । प्रियः । गवाम् । ओषधीनाम् । पशूनाम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी तुम दोनों ! (अस्मै) इस राजा के लिये (घर्मदुघे) यज्ञ की पूर्ति करने वाली (धेनू इव) दो गौओं के समान (भूरि) बहुत (वामम्) उत्तम धन (दुहाथाम्) पूर्ण करो। (अयम्) यह (राजा) राजा (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (प्रियः) प्रिय (गवाम्) विद्याओं का, (ओषधीनाम्) सब अन्नों का और (पशूनाम्) दोपाये और चौपाये जीवों का (प्रियः) प्रिय (भूयात्) होवे ॥ ४ ॥

---

११८) इति मह पूजायाम्—इन् । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७।१।३९) इति शसः सुः । महीनि महान्ति । **वर्चांसि** । तेजांसि । **धेहि** । धारय । **अवर्चसम्** । अतेजस्कम् । **कृणुहि** । कुरु । **शत्रुम्** । **अस्य** ॥

४---अस्मै । राज्ञे । **द्यावापृथिवी** । हे द्यावापृथिव्यौ । सूर्यभूलोकौ । तत्रस्थपदार्थाः, इत्यर्थः । **भूरि** । प्रभूतम् । **वामम्** । **अर्तिस्तुसुहु०** (उ०१। १४०) इति वा गतिगन्धनयोः—मन् । यद्वा । **इषियुधीन्धि०** (उ० १ । १४५) इति वन सम्भक्तौ शब्दे च—मक् । नस्य आकारः । प्रशस्यम्—निघ० ३ । ८ । धनम् । **दुहाथाम्** । दुग्धम् । प्रपूरयतम् । **घर्मदुघे** । घर्म+दुघे । घर्म इति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा सूर्य पृथिवी आदि सब लोकों और पदार्थों से विज्ञान पूर्वक उपकार लेकर धन संचय करे, और अनेक विद्याओं और अन्नों और सब प्राणियों की वृद्धि करके सुख प्राप्त करे ॥ ४ ॥

युनज्मि॑ त उत्त॒रावं॑न्त॒मिन्द्रं॒ येन॒ जय॑न्ति॒ न प॒॑राजय॑न्ते ।
यस्त्वा॒ कर॑दे॒कवृ॑षं जना॑नामु॒त राज्ञा॑मुत्त॒मं मा॑न॒वाना॑म् ॥ ५ ॥

युनज्मि । ते॒ । उ॒त्त॒रऽवं॑न्तम् । इन्द्र॑म् । येन॑ । जय॑न्ति । न । प॒रा॒ऽजय॑न्ते । यः । त्वा॒ । कर॑त् । एक॑ऽवृषम् । जना॑नाम् । उ॒त । राज्ञा॑म् । उ॒त्ऽत॒मम् । मा॒न॒वाना॑म् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (ते !) तेरे लिये (उत्तरावन्तम्) अत्यन्त उत्तम गुण वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को (युनज्मि) मैं संयुक्त करता हूं, (येन) जिसके साथ [शूर जन] (जयन्ति) जय पाते हैं, और (न) कभी नहीं (पराजयन्ते) हारते हैं। (यः) जो (त्वा) तुझको (जनानाम्) मनुष्यों के बीच (एकवृषम्) अद्वितीय प्रधान, और (मानवानाम्) मनन शील अथवा माननीय (राज्ञाम्) राजाओं में (उत्तमम्) अति श्रेष्ठ (करत्) करे ॥ ५ ॥

व्याख्यातम्—अ० ४ । १ । २ । **दुहः कब्घश्च** (पा० ३ । २ । ७०) इति दुह प्रपूरणे-कप्, हस्य घश्च । टाप् । घर्मस्य यज्ञस्य प्रपरयित्र्यौ यज्ञाय दोग्ध्र्यौ । **इव** । यथा । **धेनू** । गावौ । **अयम्** । **राजा** । **प्रियः** । हृद्यः । तर्पकः । **इन्द्रस्य** । परमेश्वरस्य । **गवाम्** । वाणीनाम् । विद्यानाम् । **ओषधीनाम्** । व्रीहियवादिसस्यानाम् । **पशूनाम्** । द्विपाच्चतुष्पदां प्राणिनाम् ॥

५—**युनज्मि** । योजयामि । **ते** । तुभ्यम् । **उत्तरावन्तम्** । छान्दसो दीर्घः । अत्युत्कृष्टगुणयुक्तम् । **इन्द्रम्** । परमात्मानम् । **येन** । इन्द्रेण सह । **जयन्ति** । शूरा जयं प्राप्नुवन्ति । **न** । निषेधे । **पराजयन्ते** । **विपराभ्यां जेः** (पा० १।३। १९) इति आत्मनेपदम् । शत्रुभ्यः सकाशात् पराभवं प्राप्नुवन्ति । **यः** । इन्द्रः । **त्वा** । त्वां राजानम् । **करत्** । करोतेर्लेट् । **लेटोऽडाटौ** (पा० ३ । ४ । ९४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—विद्वान् पुरुष राजा को परमेश्वर का उपदेश करें, जिसके आश्रय से वह राजा धीर वीर होकर प्रजा का पालन करे और उत्तमों में उत्तम राजा हो ॥ ५ ॥

उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन् प्रतिशत्रवस्ते ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ् छत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥६॥

उत्तरः । त्वम् । अधरे । ते । सऽपत्नाः । ये । के । च । राजन् । प्रतिऽशत्रवः । ते । एकऽवृषः । इन्द्रऽसखा । जिगीवान् । शत्रुऽयताम् । आ । भर । भोजनानि ॥ ६ ॥

भाषार्थः—[राजन् !] हे राजन् ! (त्वम्) तू (उत्तरः) अधिक ऊंचा हो, (च) और (ये के) जो कोई (ते) तेरे (प्रतिशत्रवः) प्रतिकूलवर्ती शत्रु और (ते) तेरे (सपत्नाः) साथ झगड़ने वाले हैं, [वे] (अधरे) नीचे होवें । (इन्द्रसखा) परमेश्वर का मित्र, (जिगीवान्) विजयी और (एकवृषः) अद्वितीय प्रधान तू (शत्रुयताम्) शत्रुओं जैसे आचरण वाले मनुष्यों के (भोजनानि) भोगों के साधन, धन धान्यों को (आभर) लाकर भर दे ॥ ६ ॥

इति अडागमः । **इतश्च लोपः परस्मैपदेषु** (पा० ३ । ४ । ९७) इति इकारलोपः । कुर्यात् । **एकवृषम् ।** म० १ । अद्वितीयं सुखसेचकं सार्वभौमम् । **जनानाम् ।** शूरजनानाम् । **उत ।** अपि च । **राज्ञाम् ।** क्षत्रियाणाम् । **उत्तमम् ।** मुख्यं सर्वश्रेष्ठं प्रजापरिपालनशौर्यादिगुणैरुत्कृष्टम् । **मानवानाम् । तस्येदम्** (पा० ४ । ३ । १२०) इति मनु—अण् । मननशीलानाम् । यद्वा । **छन्दसीवनिपौ च** (वा० पा० ५ । २ । १०९) इति मान—वप्रत्ययो मत्वर्थे । मान्यानाम् ॥

६—उत्तरः । ऊर्ध्वतरः । **त्वम् ।** राजन् । **अधरे ।** नीचाः । **ते ।** त्वदीयाः । **सपत्नाः ।** अ० १ । ९ । २ । सहपतित्ववन्तः । शत्रवः । **ये के च राजन् । प्रतिशत्रवः ।** प्रतिकूलवर्तिनो वैरिणः । **एकवृषः ।** म० १ । अद्वितीयशासकः । **इन्द्रसखा ।** इन्द्रेण परमेश्वरेण सखित्वयुक्तः । **जिगीवान् ।** जि जये+क्वसुः । **सन्लिटोर्जेः** (पा० ७ । ३ । ५७) इत्यभ्यासादुत्तरस्य कुत्वम् । छान्दसो दीर्घः । जयशीलः । **शत्रुयताम् ।** अ० ३ । १ । ३ । शत्रु - क्यच्,–शतृः । शत्रुवदाचरताम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा प्रतिकूलवर्ती सब शत्रुओं को परमेश्वर के सहाय से जीतकर सर्वथा निर्बल करे और प्रजा को सुख देवे ॥ ६ ॥

सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून्।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ् छत्रूयतामा खिदा भोजनानि ॥७॥

सिंहऽप्रतीकः । विशः । अद्धि । सर्वाः । व्याघ्रऽप्रतीकः । अव । बाधस्व । शत्रून् । एकऽवृषः । इन्द्रऽसखा । जिगीवान् । शत्रुऽयताम् । आ । खिद । भोजनानि ॥ ७ ॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (सिंहप्रतीकः) सिंह तुल्य पराक्रमी तू (सर्वाः) सब [शत्रुओं को] (विशः) मनुष्यों को (अद्धि) खाले, (व्याघ्रप्रतीकः) व्याघ्र समान झपट कर (शत्रून्) दुष्ट वैरियों को (अव बाधस्व) हटा दे। (इन्द्रसखा) परमेश्वर का मित्र, (जिगीवान्) विजयी और (एकवृषः) अद्वितीय प्रधान तू (शत्रूयताम्) शत्रु जैसे आचरण वाले मनुष्यों के (भोजनानि) भोगों के साधन धन धान्यों को (आ खिद) छीन ले ॥ ७ ॥

भावार्थः—राजा पूर्ण पराक्रम से शत्रुओं की सेनाओं और शत्रुओं का नाश करे और सब प्रकार से विजय प्राप्त करके उन्हें अपने आधीन रक्खे ॥७॥

आ भर । छान्दसो दीर्घः । आनीय धर । **भोजनानि । ल्युट् च** (पा० ३ । ३ । ११५) इति भुज पालनाभ्यवहारयोः—ल्युट् । भोगसाधनानि धान्यानि धनानि च ॥

७—सिंहप्रतीकः । सिंह इति । गतम्—अ० ४ । ८ । ७ । **अलीकादयश्च** (उ०४।२५) इति प्रति + इण् गतौ-कीकन् । प्रतीयते स प्रतीकः । प्रतीतिःख्यातिः । सिंहतुल्यपराक्रमः । **विशः** । प्रजाः, शत्रूणाम् । **अद्धि** । अद भक्षणे—लोट् । भुङ्क्ष्व नाशय । **सर्वाः** । सकलाः । **व्याघ्रप्रतीकः** । व्याघ्रवदाक्रमणशीलः । **अव बाधस्व** । निवारय । **शत्रून्** । शातयितॄन् । हिंसकान् । **आ खिद** । खिद दैन्ये परिघातने च । आङ्पूर्वः खिदिः आच्छेदने । आच्छिन्धि । अपहरेत्यर्थः । अन्यत् व्याख्यातं म० ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् २३ ॥

१-७ ॥ अग्निर्देवता । १, २, ५, ७, पादत्रयं जगती, अन्तिमोऽनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुब् ज्योतिष्मती, ४ अनुष्टुप्, ६ पूर्वार्धस्त्रिष्टुप्, उत्तरोऽनुष्टुप् ॥

कष्टनिवारणायोपदेशः—कष्ट हटाने के लिये उपदेश ॥

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते ।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ १ ॥

अग्नेः । मन्वे । प्रथमस्य । प्रऽचेतसः । पाञ्चऽजन्यस्य । बहुऽधा । यम् । इन्धते । विशःऽविशः । प्रविशिऽवांसम् । ईमहे । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ १ ॥

भावार्थः—(प्रथमस्य) सबसे पहिले वर्तमान, (प्रचेतसः) बड़े ज्ञान वाले (पाञ्चजन्यस्य) पांच भूतों से उत्पन्न मनुष्य आदि के हितकारक (अग्नेः) सर्वव्यापक अग्नि, अर्थात् परमेश्वर का (मन्वे) मैं मनन करता हूँ, (यम्) जिसको [ऋषि लोग] (बहुधा) बहुत प्रकार से (इन्धते) प्रकाशित करते हैं (विशोविशः) सब प्रवेश स्थानों में (प्रविशिवांसम्) प्रवेश करने वाले परमेश्वर को (ईमहे) हम पहुंचते हैं । (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) पीड़ा से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥ १ ॥

१—**अग्नेः** । सर्वव्यापकस्य परमेश्वरस्य । **मन्वे** । मनु अवबोधने । मननं करोमि । **प्रथमस्य** । आद्यस्य । मुख्यस्य । **प्रचेतसः** । प्रकृष्टज्ञानस्य । **पाञ्चजन्यस्य** । पञ्चजनाः, इति मनुष्यनाम—निघ० २ । ३ । पञ्चभिर्भूतैर्जाताः, इत्यर्थः । **तस्मै हितम्** (पा० ५ । १ । ५) इति पञ्चजन-ञ्यः । पञ्चजनेभ्यो मनुष्येभ्यो हितस्य । **बहुधा** । बहुप्रकारेण । **यम्** । अग्निम् । **इन्धते** । दीपयन्ति प्रकाशयन्ति । **विशोविशः** । विश प्रवेशने—क्विप् । सर्वप्रवेशस्थानानि । सर्वाःप्रजाः । **प्रविशिवांसम्** । विश प्रवेशने । छान्दसं रूपम् । प्रविविशिवांसम् । प्रविष्टवन्तम् । **ईमहे** । ईङ् गतौ । प्राप्नुमः । याचामहे—निघ० ३ । १९ । **सः** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सबके आदि कारण, सर्वज्ञ, सर्वहितकारक, सर्वव्यापक परमेश्वर की महिमा विचारते हुए मनुष्य पुरुषार्थ करके अधर्म को छोड़कर धर्म में प्रवृत्त होकर आनन्द भोगें ॥ १ ॥

यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन् ।
एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ २ ॥

यथा । हव्यम् । वहसि । जातऽवेदः । यथा । यज्ञम् । कल्पयसि । प्रऽजानन् । एव । देवेभ्यः । सुऽमतिम् । नः । आ । वह । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले परमेश्वर ! (यथा) जिस प्रकार से (हव्यम्) देने वा खाने योग्य अन्न को (वहसि) तू पहुंचाता है, (यथा) जिस प्रकार से (यज्ञम्) पूजनीय कर्म को (प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानता हुआ (कल्पयसि) तू रचता है। (एव) वैसे ही (देवेभ्यः) दिव्य गुणों के लिये (सुमतिम्) सुमति (नः) हमें (आवह) पहुंचा, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) पीड़ा से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥ २ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने पुष्टिकारक और सुखदायक अन्न सूर्य आदि पदार्थ उत्पन्न करके हम पर बड़ा उपकार किया है; उसके गुणों को जानकर विज्ञानपूर्वक अपनी धार्मिक बुद्धि बढ़ावें और दुष्कर्मों से पृथक् रहकर जीवन लाभ उठावें ॥ २ ॥

अग्निः । **नः** । अस्मान् । **मुञ्चतु** । मोचयतु वियोजयतु । **अंहसः** । अ० २ । ४ ३ । **अमेर्हुक् च** (उ० ४ । २१३) इति अम रोगे, असुन्, हुक् च । रोगात् । पीडकात् कष्टात् ॥

२—यथा । येन प्रकारेण । **हव्यम्** । अ० ३ । ३ । ४ । हु दानादनयोः-यत् । दातव्यं भोक्तव्यं वान्नम् । **वहसि** । प्रापयसि । **जातवेदः** । अ० १ । ७ । २ । जातानामुत्पन्नानां वेदितः । **यज्ञम्** । यजनीयं पूजनीयं कर्म । **कल्पयसि** । विरचयसि । **प्रजानन्** । प्रकर्षेणावगच्छन् । **एव** । एवम् । तथा । **देवेभ्यः** । दिव्यगुणानां प्राप्तये । **सुमतिम्** । धार्मिकां बुद्धिम् । **नः** । अस्मान् । **आवह** । द्विकर्मकः । प्रापय । अन्यद् गतम्—म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यामंन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभगम् । अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ३ ॥

यामंन्ऽयामन् । उपऽयुक्तम् । वहिष्ठम् । कर्मन्ऽकर्मन् । आऽभगम् । अग्निम् । ईडे । रक्षःऽहनम् । यज्ञऽवृधम् । घृतऽआहुतम् । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(यामन् यामन्) प्रत्येक गति वा उद्योग में (उपयुक्तम्) उपयोग किये, (कर्मन् कर्मन्) प्रत्येक कर्म में (आभगम्) अच्छे प्रकार से भक्ति योग्य, (वहिष्ठम्) अतिबली, (रक्षोहणम्) राक्षसों के हनन करनेहारे, (यज्ञवृधम्) पूजनीय कर्म के बढ़ाने वाले, (घृताहुतम्) प्रकाश के भलीभाँति देनेवाले, (अग्निम्) सर्वज्ञ अग्नि, परमात्मा की (ईडे) मैं स्तुति करता हूं। (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रत्येक कर्म में परमात्मा का ध्यान करके उद्योग करते हैं, वही बाहिरी और भीतरी शत्रुओं को हटाकर संसार में सुख भोगते हैं ॥ ३ ॥

३—यामन्, यामन्। सर्वधातुभ्यो मनिन् (उ० ४। १४५) इति या प्रापणे—मनिन्। सप्तम्याः लुक्। यामनि यामनि। सर्वस्यां गतौ। **उपयुक्तम्।** उपयोगीभूतम्। **वहिष्ठम्। तुश्छन्दसि** (पा० ५। ३। ५९) इति वोढृ—इष्ठन्। **तुरिष्ठेमेयस्सु** (पा० ६। ४। १५४) इति तृलोपः। वोढृतमम्। अतिशयेन प्रापकम्। बलिष्ठम्। **कर्मन्, कर्मन्।** डुकृञ् करणे—मनिन्। सप्तम्याः लुक्। सर्वस्मिन् कर्मणि। **आभगम्।** आभक्तव्यम्। आसेव्यम्। **अग्निम्।** सर्वज्ञं परमात्मानम्। **ईडे।** ईड स्तुतौ। अग्निमीडेऽग्निं याचामीडिरध्येषणाकर्मा पूजाकर्मा वा—निरु० ७। १५। स्तौमि। **रक्षोहणम्।** रक्षस्+हन हिंसागत्योः—क्विप्। रक्षसां हन्तारम्। **यज्ञवृधम्।** यज्ञस्य पूजनीयकर्मणो वर्धयितारम्। **घृताहुतम्।** घृत+आङ्—हुदानादनयोः-क्विप्, तुक् च। घृतस्य प्रकाशस्य सम्यग् दातारम्। अन्यत् पूर्ववत् म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम् ।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ४ ॥

सुऽजातम् । जातऽवेदसम् । अग्निम् । वैश्वानरम् । विऽभुम् ।
हव्यऽवाहम् । हवामहे । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(सुजातम्) बड़े प्रसिद्ध, (जातवेदसम्) उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले अथवा धन प्राप्त कराने हारे (वैश्वानरम्) सब नरों [नायकों] के हित करने वाले, (विभुम्) सर्वशक्तिमान् (हव्यवाहम्) उत्तम अन्न पहुंचाने वाले (अग्निम्) सर्वव्यापक परमेश्वर को (हवामहे) हम पुकारते हैं, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर के गुण और कर्मों को जानकर मनुष्य अपना सामर्थ्य बढ़ावें और परस्पर उपकार करके आनन्दित रहें ॥४॥

येन ऋषयो बलमद्योतयन् युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः ।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ५ ॥

येन । ऋषयः । बलम् । अद्योतयन् । युजा । येन । असुराणाम् । अयुवन्त ।
मायाः । येन । अग्निना । पणीन् । इन्द्रः । जिगाय । सः । नः । मुञ्चतु ।
अंहसः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(येन) जिस (युजा) मित्र परमेश्वर के साथ (ऋषयः)

४—सुजातम् । जनी प्रादुर्भावे—क्तः । सुप्रसिद्धम् । **जातवेदसम् ।** म० २ । जातानां वेदितारम् । धनस्य जनयितारं प्रापकम् । **अग्निम् ।** सर्वव्यापकम् । **वैश्वानरम् ।** अ० १ । १० । ४ । सर्वेषां नराणां नायकानां हितम् । **विभुम् । विप्रसंभ्योड्वसंज्ञायाम्** (पा० ३ । २ । १८०) इति वि+भु-ङुः । सर्वगतम् । प्रभुम् । **हव्यवाहम् ।** हव्यं वहतीति । हव्य+वह अण् । अन्नप्रापकम् । **हवामहे ।** आह्वयामः । अन्यद् गतम् म० १ ॥

५—येन । अग्निना परमेश्वरेण । **ऋषयः ।** अ० २ । ६ । १ । ऋषिर्द-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि लोगों ने (बलम्) बल (अद्योतयन्) प्रकाशित किया है, और (येन) जिसके साथ (असुराणाम्) असुरों की (मायाः) मायाओं [छलों] को (अयुवन्त) हटाया है। और (येन) जिस (अग्निना) सर्वव्यापक परमेश्वर के साथ (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष ने (पणीन्) कुव्यवहारी मनुष्यों को (जिगाय) जीता है, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥ ५ ॥

भावार्थः—जिस परमात्मा का आश्रय लेकर सूक्ष्मदर्शी महात्माओं ने सत्य का प्रकाश और असत्य का नाश किया है और जिसपर विश्वास करके प्रतापी मनुष्यों ने दुष्टों को जीता है, उसी परमात्मा की शरण लेकर हम विघ्नों को हटा कर सुख पावें ॥ ५ ॥

येनं देवा अमृतमन्वविन्दन् येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन् ।
येनं देवाः स्वं १ राभरन्त्स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ६ ॥

येनं । देवाः । अमृतम् । अनुऽअविन्दन् । येनं । ओषधीः । मधुऽमतीः । अकृण्वन् । येनं । देवाः । स्वः । आऽअभरन् । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(येन) जिसके द्वारा (देवाः) विद्वान् देवताओं ने (अमृतम्)

र्शनात्—निरु० २ । ११ । साक्षात्कृतधर्म्माणः । सन्मार्गदर्शकाः । अतीन्द्रियार्थदर्शिनः । **बलम्** । सामर्थ्यम् । **अद्योतयन्** । द्युत दीप्तौ–णिचि लङि रूपम् । अदीपयन् । **युजा** । सख्या, मित्रेण सह । **असुराणाम्** । सुरविरोधिनाम् । खलानाम् । **अयुवन्त** । यु मिश्रणामिश्रणयोः—आत्मनेपदं छान्दसम् । अयुवन् । पृथक् कृतवन्तः । **मायाः** । **माछापसिभ्यो यः** (उ० ४।१०९) इति माङ् माने—यः । टाप् । प्रज्ञाः–निघ० ३ । ९ । छलानि । मिथ्याजालान् । **अग्निना** । परमात्मना । **पणीन्** । **सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४ । ११८) इति पण व्यवहारे स्तुतौ च–इन् । पणिर्वणिग्भवति पणिः पणनात्–निरु० २ । १७ । कुव्यवहारिणः पुरुषान् । **इन्द्रः** । परमैश्वर्यवान् पुरुषः । **जिगाय** । जि जये—लिट् । जितवान् । अन्यत् पूर्ववत् म० १ ॥

६—**येन** । अग्निना परमेश्वरेण । **देवाः** । विद्वांसः । **अमृतम्** । अमरत्वम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरपन [मृत्यु से छुटकारा अर्थात् मोक्ष वा कीर्ति] को (अनु--अविन्दन्) अनन्तर पाया है, और (येन) जिसके आश्रय से (ओषधीः) यव आदि पदार्थों को (मधुमतीः) मधुर रस वाली (अकृण्वन्) बनाया है, और (येन) जिसके द्वारा (देवाः) देवताओं ने (स्वः) स्वर्ग अर्थात् महा आनन्द (आ अभरन्) यथावत् धारण किया है, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥ ६ ॥

भावार्थः--जिस परमेश्वर की महिमा से महापुरुषों ने पुरुषार्थ करके अमरपन अर्थात् सुन्दर नाम प्राप्त किया है, और सांसारिक पदार्थों से विज्ञान पूर्वक उपकार लेकर अत्यन्त सुख पाया है, उसी जगदीश्वर के आश्रय से हम भी उद्योग करके दुःख से छूटें ॥ ६ ॥

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम् ।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७ ॥

यस्य । इदम् । प्रऽदिशि । यत् । विऽरोचते । यत् । जातम् । जनितव्यम् । च । केवलम् । स्तौमि । अग्निम् । नाथितः । जोहवीमि । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ ७ ॥

भाषार्थः--(केवलम्) केवल (यस्य) जिस परमेश्वर के (प्रदिशि) शासन में (इदम्) यह [जगत्] है, अर्थात् (यत्) जो कुछ (विरोचते) चमकता है और (यत्) जो कुछ (जातम्) उत्पन्न हुआ है (च) और (जनि-

---

मोक्षम् । **अनु--अविन्दन्** । विदॢ लाभे--लङ् । अनुक्रमेण अलभन्त । **ओषधीः** । व्रीहियवाद्यास्तरुगुल्माद्याश्च । **मधुमतीः** । मधुररसयुक्ताः । **अकृण्वन्** । अकुर्वन् । **स्वः** । स्वर्गं सुखम् । **आ--अभरन्** । डुभृञ् धारणपोषणयोः--लङ् सम्यग् अधारयन् । अलभन्तेत्यर्थः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

७--यस्य । अग्नेः परमेश्वरस्य । **इदम्** । परिदृश्यमानं जगत् । **प्रदिशि** । प्रदेशने । प्रशासने । **यत्** । **विरोचते** । विविधं दीप्यते । **यत्** । **जातम्** । उत्पन्नम् । **जनितव्यम्** । जनयितव्यम् । जनिष्यमाणम् । **च** । समुच्चये । **केव-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तव्यम्) उत्पन्न होगा। (नाथितः) मैं भक्त (अग्निम्) उस सर्वव्यापक परमेश्वर को (स्तौमि) सराहता हूं और (जोहवीमि) बारंबार पुकारता हूं। (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥७॥

भावार्थः—जगत्पिता परमेश्वर की आज्ञा में यह सब जगत् वर्तमान है, उसी की प्रार्थना उपासना करके मनुष्य अपने विघ्नों को हटाकर सदा धर्म में प्रवृत्त होकर प्रसन्न रहें ॥७॥

सूक्तम् २४ ॥

१-७ ॥ इन्द्रो देवता। १, ४ पादत्रयं जगती, अन्तिमोऽनुष्टुप्, २, ३, ५-७ पादत्रयं त्रिष्टुप्, अन्तिमोऽनुष्टुप् ॥

सर्वसुखप्राप्त्युपदेशः—पूर्ण सुख पाने का उपदेश ॥

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उपमेम आगुः। यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१॥

इन्द्रस्य। मन्महे। शश्वत्। इत्। अस्य। मन्महे। वृत्रऽघ्नः। स्तोमाः। उप। मा। इमे। आ। अगुः। यः। दाशुषः। सुऽकृतः। हवम्। एति। सः। नः। मुञ्चतु। अंहसः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य वाले परमात्मा का (मन्महे) हम मनन करते हैं, (शश्वत् इत्) सदा ही (अस्य) इस (वृत्रघ्नः) शत्रुनाशक

लम्। अ० ३। १८। २। निश्चितम्। अनन्यसाधारणम्। **स्तौमि**। प्रशंसामि। **अग्निम्**। सर्वव्यापकं परमेश्वरम्। **नाथितः**। **तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्** (पा० ५। २। ३६) इति नाथ-इतच्। नाथःस्वामी संजातो यस्य स नाथितः। नाथवान्। भक्तः। **जोहवीमि**। अ० २। १२। ३। पुनः पुनराह्वयामि। अन्यद् व्याख्यातम् म० १ ॥

१—**इन्द्रस्य**। परमैश्वर्ययुक्तस्य परमात्मनः। **मन्महे**। मनुमहे। मननं कुर्मः। **शश्वत्**। सर्वदा। **इत्**। निश्चयेन। **अस्य**। इन्द्रस्य। **वृत्रघ्नः**। अ० १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा अन्धकार निवारक का (मन्महे) हम मनन करते हैं। (इमे) ये (स्तोमाः) स्तुति के ज्ञान (मा) मुझको (उप आ अगुः) प्राप्त हुये हैं। (यः) जो परमेश्वर (दाशुषः) दानशील और (सुकृतः) सुकर्मी पुरुष के (हवम्) आवाहन को (एति) प्राप्त होता है, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥ १ ॥

भावार्थः—परमेश्वर के गुणों को नित्य गाते हुए हम लोग पाप से बचकर धर्म प्रचार करें ॥ १ ॥

य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवानां बलमारुरोज ।
येन जिताः सिन्धवो येन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ २ ॥

यः । उग्रीणाम् । उग्रऽबाहुः । ययुः । यः । दानवानाम् । बलम् । आऽरुरोज । येन । जिताः । सिन्धवः । येन । गावः । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यः) जो (ययुः) शीघ्रगामी परमात्मा (उग्रीणाम्) प्रचण्ड सेनाओं की (उग्रबाहुः) भुजाओं को प्रचण्ड करने वाला है, (यः) जिसने (दानवानाम्) छेदनशील राक्षसों का (बलम्) बल (आरुरोज) तोड़ दिया है, (येन) जिस परमेश्वर करके (सिन्धवः) जल और (येन)

---

२१ । १ । शत्रुनाशकस्य । अन्धकारनिवारकस्य । **स्तोमाः** । **अर्तिस्तुसुहु०** (उ० १।१४०) ष्टुञ् स्तुतौ–मन् । स्तोत्राणि । **उप** । समीपे । **मा** । मां सेवकम् । **इमे** । वक्ष्यमाणाः । **आ अगुः** । इण् गतौ–लुङ् । आगमन् । **यः** । इन्द्रः । **दाशुषः । दाश्वान् साह्वान् मीढ्वांश्च** (पा० ६ । १ । १२) इति दाशृ दाने–क्वसौ निपात्यते । दानशीलस्य । **सुकृतः** । शोभनकर्मणः । धार्मिकस्य पुरुषस्य । **हवम्** । अ० १ । १५ । २ । आह्वानम् । **एति** । गच्छति प्राप्नोति । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

२—यः । इन्द्रः । **उग्रीणाम् । षिद्गौरादिभ्यश्च** (पा० ४ । १ । ४१) इति उग्र–ङीष् । उग्रस्वभावानां प्रजानां सेनानां वा । **उग्रबाहुः** । उग्रा बाहवो यस्मात् स तथाभूतः । अतिशयेन बलदाता इत्यर्थः । **ययुः । यो द्वे च** (उ० १ । २१) इति या प्रापणे–उप्रत्ययः, द्वित्वं च । शीघ्रगामी । **दानवानाम्** । दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस करके (गावः) वायु, सूर्य, और भूलोक (जिताः) जीते गये हैं, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥२॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर ने सब विघ्नों का नाश करके जल पृथिवी आदि पदार्थों को उपकारी बनाया है, उसी की उपासना से हम सामर्थ्य बढ़ाकर क्लेशों से बचें ॥ २ ॥

यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद् यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम् । यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३॥

यः । चर्षणिऽप्रः । वृषभः । स्वःऽवित् । यस्मै । ग्रावाणः । प्रऽवदन्ति । नृम्णम् । यस्य । अध्वरः । सप्तऽहोता । मदिष्ठः । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(यः) जो परमेश्वर (चर्षणिप्रः) उद्योगी पुरुषों का मनोरथ पूरा करने वाला, (वृषभः) सुख की वर्षा करने वाला, श्रेष्ठ और (स्वर्वित्) स्वर्ग अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने हारा है। और (यस्मै) जिसके [आज्ञा पालन के] लिये (ग्रावाणः) शास्त्र वेत्ता पण्डित जन (नृम्णम्) बल वा धन (प्रवदन्ति) बताते हैं। (यस्य) जिसका (अध्वरः) सन्मार्गदर्शक वा हिंसारहित

अवखण्डने–ल्युट् इति दानं = छेदनम्, ततः **छन्दसीवनिपौ च** (वा० पा० ५ । २ । १०९) इति–वप्रत्ययो मत्वर्थे । छेदनशीलानां राक्षसानाम् । **बलम्** । सामर्थ्यम् । **आ-रुरोज** । रुजो भङ्गे–लिट् । सर्वतो बभञ्ज । **येन** । इन्द्रेण । **जिताः** । वशीकृताः । **सिन्धवः** । स्यन्दनशीलानि जलानि । **गावः** । गच्छतीति गौः । वायुसूर्यभूलोकाः । अन्यद्गतम् ॥

३—यः । इन्द्रः । **चर्षणिप्रः** । **अर्तिसृधि०** (उ० २ । १०२) इति चर गतौ–अनिः, षुगागमश्च । यद्वा । **कृषेरादेश्च चः**[1] (उ० २ । १०४) इति कृष विलेखने-अनिः, आदेश्च चः । चर्षणयो मनुष्याः–निघ० २ । ३ । **आतोऽनुपसर्गे कः** (पा० ३ । २ । ३) इति प्रा पूरणे–कः । मनुष्याणां मनोरथपूरकः । **वृषभः** । अ० ४ । ५ । १ । सुखस्य वर्षकः । श्रेष्ठः । **स्वर्वित्** । अन्तर्गतण्यर्थः । स्वर्गस्य प्रापयिता । **यस्मै** । इन्द्राय । **ग्रावाणः** । अ० ३ । १० । ५ । गॄ शब्दे-क्वनिप्

---

१. इस विषय में अ० १।५।४ पृ० २६ पर 'चर्षणीनाम्' की टिप्पणी देखें ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार (सप्तहोता) सातहोताओं से [अर्थात् विषयों के ग्रहण करने और देने वाले त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि से] साक्षात् किया हुआ (मदिष्ठः) अतिशय आनन्द दायक है, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के अनन्त सुखदायक गुणों को साक्षात् करके पुरुषार्थ पूर्वक कष्टों को नाश करके आनन्द प्राप्त करें ॥ ३ ॥

यहाँ पर 'सप्त प्राणान्' (अ० २ । १२ । ७) और 'सप्त ऋषयः' (अ० ४ । ११ । ९) इन पदों की भी व्याख्या देखो ॥

यस्यं वृशासं ऋषभासं उक्षणो यस्मैं मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदें ।
यस्मैं शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ४ ॥

यस्यं । वृशासंः । ऋषभासंः । उक्षणंः । यस्मैं । मीयन्तें । स्वरवंः । स्वःऽविदें । यस्मैं । शुक्रः । पवंते । ब्रह्मऽशुम्भितः । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥४॥

शास्त्रविज्ञापकाः । पण्डिताः । **प्रवदन्ति** । प्रकथयन्ति । **नृम्णम्** । णम प्रह्वत्वे-शब्दे च–पचाद्यच् । पृषोदरादित्वादाद्यन्तविपर्ययोऽलोपश्च इति नृम्ण रूपं जातम् । नृम्णं च बलं नृन्नतम्–निरु० ११ । ९ । नृन् नमयति प्रह्वीकरोतीति । बलम्–निघ० २ । ९ । धनम्—निघ० २ । १० । **यस्य** । इन्द्रस्य । **अध्वरः** । अ० १ । ४ । २ । सन्मार्गदाता हिंसारहितो वा व्यवहारः । **सप्तहोता** । सप्त+हु दानादनयोः—तृच् । सप्तहोता सप्तास्मै रश्मयो रसानभिसन्नामयन्ति, सप्तैनमृषयः स्तुवन्तीति वा—निरु० ११ । २३ । सप्त त्वक्चक्षुः श्रवणरसनाघ्राणमनोबुद्धयो होतारो विषयाणां ग्रहीतारो दातारः साक्षात्कर्तारो यस्य स सप्तहोता । अत्र 'सप्त प्राणान्' इत्यस्य पदस्य, अ० २ । १२ । ७ । तथा 'सप्तऋषयः' इत्यस्य पदस्य च,अ० ४ । ११ । ९ । व्याख्या द्रष्टव्या । **मदिष्ठः** । मदी हर्षे—तृच् । **तुरिष्ठेमेयस्सु** (पा० ६।४।१५४) इति तृलोपः । अतिशयेन मादयिता हर्षकः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यस्य) जिस परमेश्वर के (वशासः) वशीभूत होकर (ऋषभासः) धर्म जानने वाले ऋषि लोग (उक्षणः) सुख की वर्षा करने वाले होते हैं, और (यस्मै) जिस (स्वर्विदे) सुख प्राप्त कराने वाले के लिये (स्वरवः) जयस्तम्भ (मीयन्ते) गाड़े जाते हैं। (यस्मै) जिसके लिये (ब्रह्म-शुम्भितः) वेदों से कहा गया (शुक्रः) निर्मल सोम रस [अमृत वा मोक्षानन्द] (पवते) शुद्ध किया जाता है। (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जिस परमात्मा की आज्ञा पालन से ऋषि महात्मा वेदों का उपदेश करके संसार को सुख देते हैं और शूरवीर लोग शत्रुओं पर जय पाते हैं तथा ब्रह्मज्ञानी मोक्ष सुख प्राप्त करते हैं, वही परमात्मा हमारे कष्टों को मिटावे ॥ ४ ॥

यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ ।
यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ५ ॥

यस्य । जुष्टिम् । सोमिनः । कामयन्ते । यम् । हवन्ते । इषुऽमन्तम् । गोऽइष्टौ । यस्मिन् । अर्कः । शिश्रिये । यस्मिन् । ओजः । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ ५ ॥

४—यस्य । इन्द्रस्य परमेश्वरस्य । **वशासः** । असुगागमः । वशाः अधीनाः सन्तः । **ऋषभासः** । अ० ३ । ६ । ४ । असुगागमः । ऋषन्ति प्राप्नुवन्ति सर्वान् मन्त्रानिति ऋषभाः । साक्षात्कृतधर्माण ऋषयः । ऋषिर्दर्शनात्—निरु० २ । ११ । श्रेष्ठाः । **उक्षणः** । अ० ३ । ११ । ८ । उक्षाणः । बलवन्तः । **यस्मै** । इन्द्राय । **मीयन्ते** । डुमिञ् प्रक्षेपणे । स्थाप्यन्ते । **स्वरवः** । **शॄस्वृस्निहि०** (उ० १ । १०) इति स्वृ शब्दोपतापयोः—उः । यूपाः । जयस्तम्भाः । **स्वर्विदे** । म० ३ । स्वर्गप्रापकाय । **शुक्रः** । अ० २ । ११ । ५ । शुक्रं शोचतेर्ज्वलतिकर्मणः—निरु० ८ । ११ । निर्मलो रसवान् सोमः । **पवते** । गच्छति--निघ० २ । १४ । पूयते । **ब्रह्मशुम्भितः** । शुम्भ भाषणभासनहिंसासु—क्तः । ब्रह्मभिर्वेदैः शुम्भितो भाषितः कथितः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सोमिनः) सोम अर्थात् ऐश्वर्य वाले पुरुष (यस्य) जिस परमात्मा की (जुष्टिम्) प्रीति की (कामयन्ते) कामना करते हैं, (यम्) जिस (इषुमन्तम्) दृष्टि वाले परमात्मा को (गविष्टौ) वज्रों के दान स्थान, संग्राम में [शूर लोग] (हवन्ते) पुकारते हैं। (यस्मिन्) जिसमें (अर्कः) अन्न और (यस्मिन्) जिसमें (ओजः) पराक्रम (शिश्रिये) आश्रित हुआ है, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥ ५ ॥

भावार्थः—जिस परमात्मा के आश्रय से ऐश्वर्य, विजय, अन्न, और पराक्रम प्राप्त होते हैं, उसी के विश्वास पर हम पुरुषार्थ पूर्वक दुखों का नाश करें ॥ ५ ॥

यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम्। येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥६॥

यः। प्रथमः। कर्मऽकृत्याय। जज्ञे। यस्य। वीर्यम्। प्रथमस्य। अनुऽबुद्धम्। येन। उत्ऽयतः। वज्रः। अभिऽआयत। अहिम्। सः। नः। मुञ्चतु। अंहसः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यः) जो (प्रथमः) मुख्य परमात्मा (कर्मकृत्याय) कर्म करने वाले के हित के लिये (जज्ञे) प्रकट हुआ है, (यस्य) जिस (प्रथमस्य)

५—**यस्य**। परमात्मनः। **जुष्टिम्**। जुषी प्रीतिसेवनयोः-क्तिन्। प्रीतिम्। **सोमिनः**। सोमवन्तः। ऐश्वर्यवन्तः। **कामयन्ते**। अभिलषन्ति। **यम्**। इन्द्रम्। **हवन्ते**। आह्वयन्ति। **इषुमन्तम्**। **ईषेः किच्च** (उ०१।१३) इति ईष गतिहिंसादर्शनेषु-उः। ह्रस्वश्च। दर्शनवन्तम्। **गविष्टौ** गौरिति वज्रम् इत्याप्टे कोषः। यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु-क्तिन्। गवां वज्राणां शस्त्राणामिष्टदानं यत्र। संग्रामे। **यस्मिन्**। इन्द्रे। **अर्कः**। **कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः** (उ० ३। ४०) इति अर्च पूजायाम्-कः, अर्कः—अन्ननाम्-निघ० २। ७। अर्कमन्नं भवत्यर्चति भूतानि—निरु० ५। ४। अन्नम्। **शिश्रिये**। श्रिञ् सेवायाम्-लिट्। आश्रितो बभूव। **ओजः**। बलम्। पराक्रमः। अन्यत् पूर्ववत् ॥

६—**यः**। इन्द्रः परमेश्वरः। **प्रथमः**। मुख्यः। श्रेष्ठः। **कर्मकृत्याय**। **विभाषा कृवृषोः** (पा० ३। १। १२०) इति डुकृञ् करणे—कर्तरि क्यप् तुक् च।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ परमात्मा का (वीर्यम्) सामर्थ्य (अनुबुद्धम्) सर्वत्र जाना गया है। (येन) जिस परमात्मा करके (उद्यतः) उठाये गये (वज्रः) वज्र ने (अहिम्) हनन करने वाले शत्रु को (अभ्यायत) हनन कर दिया है, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥ ६ ॥

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर वैदिक कर्म करने वालों का सदा आनन्द-दायक है, उसी शत्रुनाशक जगदीश्वर की कृपा से हम अपने दोषों को त्याग कर सदा प्रसन्न रहें ॥ ६ ॥

यः संग्रामान् नयति संयुधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि। स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥७॥

यः । सम्ऽग्रामान् । नयति । सम् । युधे । वशी । यः । पुष्टानि । सम्ऽसृजति । द्वयानि । स्तौमि । इन्द्रम् । नाथितः । जोहवीमि । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥७॥

भाषार्थः—(यः) जो (वशी) स्वतन्त्र परमात्मा (संग्रामान्) संग्राम करने वाले योधाओं को (युधे) युद्ध करने के लिये (संनयति) यथावत् ले चलता है, और (यः) जो (द्वयानि) दो प्रकार की [शारीरिक और आत्मिक]

कर्मणां कर्तुर्हिताय । **जज्ञे** । जातवान् । प्रादुर्बभूव । **यस्य** । **वीर्यम्** । सामर्थ्यम् । **प्रथमस्य** । श्रेष्ठस्य । **अनुबुद्धम्** । अनुज्ञातम् । **येन** । इन्द्रेण । **उद्यतः** । उद्धृतः । **वज्रः** । दण्डः । **अभ्यायत** । आङ् पूर्वाद् यमेर्लुङि च्लेः सिच् । **यमो गन्धने** (पा० १ । २ । १५) इति सिचेः कित्वात्, **अनुदात्तोपदेश०** (पा० ६ । ४ । ३७) इति अनुनासिकलोपः । **हस्वादङ्गात्** (पा० ८ । २ । २७) इति सिच्लोपः । अभितः सर्वतोऽहिंसीत् । **अहिम्** । अ० २ । ५ । ५ । आहन्तारम् । क्लेशप्रदम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

७—यः । इन्द्रः परमेश्वरः । **संग्रामान्** । संग्राम युद्धे-पचाद्यच् । योद्धॄन् । **सन्नयति** । सम्यक् प्रापयति । **युधे** । युद्धाय । **वशी** । स्वतन्त्रः । **पुष्टानि** । पोषणानि । **संसृजति** । सम्यग् ददाति । **द्वयानि** । **संख्याया अवयवे तयप्**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पुष्टानि) पुष्टियां (संसृजति) यथावत् देता है। (नाथितः) मैं भक्त (इन्द्रम्) परमैश्वर्य वाले परमात्मा को (स्तौमि) सराहता हूँ और (जोहवीमि) बार-बार पुकारता हूँ (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे॥७॥

भावार्थः—जो परमेश्वर सत्यवादी शूरों का जय करता है और वेद द्वारा शरीर और आत्मा को सुख देता है, उसी परमात्मा की उपासना और प्रार्थना से सब मनुष्य पुरुषार्थी होकर कष्टों को निवारें ॥७॥

सूक्तम् २५ ॥

१–७ ॥ वायुसवितारौ देवते १, २, ४–६ पादत्रयं त्रिष्टुप्, अन्तिमोऽनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ७-७ बृहती छन्दः ॥

वायुसूर्यगुणोपदेशः—पवन और सूर्य के गुणों का उपदेश ॥

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद् विशथो यौ च रक्षथः। यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥

वायोः। सवितुः। विदथानि। मन्महे। यौ। आत्मन्ऽवत्। विशथः। यौ। च। रक्षथः। यौ। विश्वस्य। परिभू इति परिऽभू। बभूवथुः। तौ। नः। मुञ्चतम्। अंहसः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(वायोः) गतिशील वा दोषनाशक पवन के और (सवितुः) सर्वप्रेरक सूर्य के (विदथानि) कर्मों को (मन्महे) हम विचारते हैं। (यौ) जो तुम (यौ) गमनशील होकर (आत्मन्वत्) आत्मा वाले जगत् (विशथः)

(पा० ५। २। ४२) इति द्वि-तयप्। **द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा** (पा०५।२।४३) इति तयस्य अयच्। द्वौ अवयवौ यस्य तद्द्वयम्। द्वन्द्वानि। शारीरिकात्मिकानि। **इन्द्रम्**। परमैश्वर्यवन्तं परमात्मानम्। अन्यद् व्याख्यातम्–सू० २३ म० ७ ॥

१—वायोः। **कृवापा०** (उ० १। १) इति वा गतिगन्धनयोः-उण् युगागमः। गमनशीलस्य दोषनाशकस्य वा जगदाधारभूतस्य वातस्य। **सवितुः**। सर्वप्रेरकस्य सूर्यस्य। **विदथानि**। विद ज्ञाने-अथः। वेदितव्यानि कर्माणि। **मन्महे**। जानीमः। विचारयामः। **यौ**। वायुसवितारौ युवाम्। **आत्म-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवेश करते हो (च) और (रक्षथः) रक्षा करते हो, (यौ) जो तुम दोनों (विश्वस्य) सब जग के (परिभू) सहारा देने वाले (बभूवथुः) हुये हो, (तौ) वह तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥१॥

भावार्थः—वायु और सूर्य के यथावत् गुण जानकर मनुष्य आत्मिक शारीरिक और सामाजिक उन्नति करें ॥ १ ॥

ययोः संख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे । ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ २ ॥

ययोः । सम्ऽख्याता । वरिमा । पार्थिवानि । याभ्याम् । रजः । युपितम् । अन्तरिक्षे । ययोः । प्रऽअयम् । न । अनुऽआनशे । कः । चन । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(ययोः) जिन दोनों [वायु सूर्य] के (संख्याता) गिने हुए (पार्थिवानि) पृथिवी के (वरिमा) विस्तार हैं, (याभ्याम्) जिन दोनों करके (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजः) जल वा जगत् (युपितम्) विमोहित किया गया [मेघ मण्डल में ताड़न शक्ति से रोका गया] है। (ययोः) जिन दोनों की

न्वत् । अ० ४ । १० । ७ । सात्मकं स्थावरजङ्गमात्मकं जगत् । जीवनशक्तियुक्तम् । **विशथः** । प्रविशथः । **यौ** । या प्रापणे-डः । यातारौ । गन्तारौ सन्तौ । रक्षथः । पालयथः । **विश्वस्य** । सर्वस्य जगतः । **परिभू** । अ० ३।२१।४। **सुपां सुलुक्०** (पा० ७।१।३९) इति पूर्वसवर्णदीर्घः । परिग्रहीतारौ । सर्वतो व्यापकौ । **बभूवथुः** । **तौ** । तथाभूतौ युवाम् । **नः** । अस्मान् । **मुञ्चतम्** । मोचयतम् । **अंहसः** । कष्टात् ॥

२— **ययोः** । वायुसवित्रोः । **संख्याता** । संख्यातानि परिगणितानि । **वरिमा** । **पृथ्वादिभ्य इमनिज् वा** (पा० ५ । १ । १२२) इति उरु-इमनिच् । **प्रियस्थिर०** (पा० ६ । ४ । १५७) इति वर् आदेशः शेर्लोपः । वरिमाणि । उरुत्वानि । महत्वानि । **पार्थिवानि** । **पृथिव्या अञौ** (वा० पा० ४ । १ । ८५) इति पृथिवी-अञ् । पृथिव्यां भवानि जातानि । **याभ्याम्** । वायुसवितृभ्याम् । **रजः** । अ० ४ । १ । ४ । उदकम् । जगत् । **युपितम्** । युपु विमोहने-क्तः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रायम्) उत्तम गति को (कश्चन) कोई भी जीव (न) नहीं (अन्वानशे) पहुंचा है, (तौ) वह तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥२॥

भावार्थः—जगत् व्यापी वायु और सूर्य के प्रभाव से जल पृथिवी से आकाश पर और आकाश से पृथिवी पर आता है, और उनको मनुष्य जितना जितना खोजते हैं, उतना उतना ही अधिक उनका विषय जानते जाते हैं, उन वायु और सूर्य से यथावत् उपकार लेकर हम लाभ उठावें ॥२॥

तवं व्रते निविशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो। युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ३ ॥

तवं । व्रते । नि । विशन्ते । जनासः । त्वयि । उत्ऽइते । प्र । ईरते । चित्रभानो इति चित्रऽभानो । युवम् । वायो इति । सविता । च । भुवनानि । रक्षथः । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे वायु] (तव) तेरे (व्रते) वरणीय नियम में (जनासः) सब जने (निविशन्ते) प्रवृत्त होते हैं, और (चित्रभानो) हे विचित्र प्रकाश वाले सूर्य ! (त्वयि उदिते) तेरे उदय होने पर [कामों में] (प्रेरते) लगते हैं। (वायो) हे वायु ! (च) और (सविता) हे सूर्य ! (युवम्) तुम दोनों (भुवनानि) सब प्राणियों को (रक्षथः) बचाते हो, (तौ) तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ ३ ॥

विमोहितम्। ताडनैर्मेघमण्डले धृतम्। **अन्तरिक्षे**। आकाशे। **प्रायम्। एरच्** (पा० ३ । ३ । ५६) इति प्र+इण् गतौ-अच्। प्रकृष्टगमनम्। **न**। निषेधे। **अन्वानशे**। अशूङ् व्याप्तौ-लिट्। अनुप्राप। अनुगन्तुं समर्थो बभूव। **कश्चन**। कोऽपि जीवः। अन्यत् पूर्ववत् ॥

३—[हे वायो]। **तव**। त्वदीये। **व्रते**। अ० २। ३०। २। वरणीये कर्मणि। नियमे। **निविशन्ते। नेर्विशः** (पा० १। ३। १७) इति आत्मनेपदम्। नितरां वर्तन्ते। **जनासः**। जनाः। प्राणिनः। **त्वयि**। सवित्रि। **उदिते**। उदयं प्राप्ते सति। **प्रेरते**। ईर गतौ। प्रवर्तन्ते। **चित्रभानो**। हे विचित्रदीप्ते सवितः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—वायुविद्या और सूर्यविद्या से उपकार लेकर मनुष्य अनेक प्रकार के लाभ उठावें ॥ ३ ॥

अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षाँसि शिमिदां च सेधतम्।
संह्यू३र्जया सृजथः सं बलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ४ ॥

अप। इतः। वायो इति। सविता। च। दुःऽकृतम्। अप। रक्षांसि। शिमिदाम्। च। सेधतम्। सम्। हि। ऊर्जया। सृजथः। सम्। बलेन। तौ। नः। मुञ्चतम्। अंहसः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(वायो) हे वायु (च) और (सविता) हे सूर्य! तुम दोनों (इतः) यहां से (दुष्कृतम्) मलिन काम को (अप=अप सेधतम्) हटा दो, (रक्षांसि) निवारणीय रोगों (च) और (शिमिदाम्) कर्म छेदन करने हारी पीडा को (अप सेधतम्) निकाल दो। (हि) क्योंकि (ऊर्जया) आत्मिक पुष्टि के साथ (संसृजथः) तुम दोनों मिलाते हो और (बलेन) शारीरिक बल के साथ (सम्=संसृजथः) तुम दोनों संयुक्त करते हो (तौ) सो तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य पवन और सूर्य के यथावत् सेवन और उपयोग से

युवम्। युवाम्। **वायो**। **सविता**। हे सवितः, त्वम्। **च**। **भुवनानि**। भूतजातानि। **रक्षथः**। पालयथः। अन्यत् पूर्ववत् ॥

४—अप। =अप सेधतम्। **इतः**। अस्मात्स्थानात्। **वायो**। **सविता**। हे सवितः! **च**। समुच्चये। **दुष्कृतम्**। दुष्टं कर्म। **अप सेधतम्**। षिध गत्याम्, अन्तर्गतो णिजर्थः। अपगमयतम्। **रक्षांसि**। रक्षो रक्षितव्यमस्मात्—निरु० ४। १८। उपद्रवकारिणो रोगान्। **शिमिदाम्**। **सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४। ११८) इति शमु उपशमने-इन्, आकारस्य इकारः। शिमी कर्मनाम—निघ० २। १। दाप् लवने-डः। टाप्। कर्मछेदिकां पीडाम्। **च**। **हि**। अवश्यम्। **ऊर्जया**। ऊर्ज बलप्राणनयोः-पचाद्यच्, टाप्। पुष्ट्या। मानसिकपराक्रमेण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोषों और मलिनता को दूर करके स्वस्थ रहें और आत्मिक तथा शारीरिक बल बढ़ाकर संसार में उन्नति करें ॥ ४ ॥

रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम् ।
अयक्ष्मतातिं महं इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥

रयिम् । मे । पोषम् । सविता । उत । वायुः । तनू इति । दक्षम् । आ । सुवताम् । सुऽशेवम् । अयक्ष्मऽतातिम् । महः । इह । धत्तम् । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(सविता) सूर्य (उत) और (वायुः) पवन (मे) मेरे लिये (तनू = तन्वाम्) अपने शरीर में वर्त्तमान (सुशेवम्) अति सुखदायक (रयिम्) धन, (पोषम्) पुष्टि और (दक्षम्) बल को (आ सुवताम्) भेजें । (इह) यहाँ पर (अयक्ष्मतातिम्) नीरोगता और (महः) तेज (धत्तम्) तुम दोनों दान करो, (तौ) सो तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्य वायु और सूर्य के विज्ञान से ऋद्धि, सिद्धि, बल और स्वस्थता प्राप्त करके आनन्द भोगें ॥ ५ ॥

संसृजथः । संयोजयथः । **सम्** । संसृजथः । **बलेन** । शारीरिकसामर्थ्येन । अन्यत् पूर्ववत् ॥

५—**रयिम्** । धनम् । **मे** । मह्यम् । **पोषम्** । पुष्टिं समृद्धिम् । **सविता** । सूर्यः । **उत** । अपि च । **वायुः** । पवनः । **तनू** । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) इति सप्तम्या लुक् । **ईदूतौ च सप्तम्यर्थे** (पा० १ । १ । १९) इति प्रगृह्यम् । तन्वाम् । स्वशरीरे वर्तमानम् । **दक्षम्** । बलम्—निघ० २ । ९ । **आसुवताम्** । षू प्रेरणे । समन्तात् प्रेरयताम् । प्रयच्छताम् । **सुशेवम्** । **इण्-शीभ्यां वन्** (उ० १ । १५२) इति शीङ् स्वप्ने-वन् । शेवं सुखम्-निघ० ३ । ६ । अतिशयेन सुखकरम् । **अयक्ष्मतातिम्** । **भावे च** (पा० ४ । ४ । १४४) इति बाहुलकात् भावे तातिल् । अयक्ष्मताम् । यक्ष्माद् राहित्यम् । आरोग्यम् । **महः** । तेजः । **इह** । अस्मिन् शरीरे । **धत्तम्** । दत्तम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः।
अर्वाग् वामस्य प्र वतो नि यच्छतं तौ नो मुञ्चतमंहसः॥६॥

प्र। सुऽमतिम्। सवितः। वायो इति। ऊतये। महस्वन्तम्। मत्सरम्। मादयाथः। अर्वाक्। वामस्य। प्रऽवतः। नि। यच्छतम्। तौ। नः। मुञ्चतम्। अंहसः॥६॥

भाषार्थः—(सवितः) हे सूर्य ! (वायो) हे वायु ! (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (सुमतिम्) सुमति और (महस्वन्तम्) तेज वाले (मत्सरम्) हर्ष को (प्र) अच्छे प्रकार (मादयाथः) तुम दोनों परिपूर्ण करो। (अर्वाक्) हमारे सन्मुख (प्रवतः) बड़ाई वाले (वामस्य) धन का (नि) नियमपूर्वक (यच्छतम्) तुम दोनों दान करो। (तौ) सो तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य और वायु के गुणों का यथावत् प्रयोग करके बुद्धि प्रताप और धन बढ़ा कर आनन्द भोगें ॥ ६ ॥

उप श्रेष्ठा न आशिषो दैव्योर्धामन्नस्थिरन्।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ ७ ॥

उप। श्रेष्ठाः। नः। आऽशिषः। दैव्योः। धामन्। अस्थिरन्।

६—**प्र**। प्रकर्षेण। **सुमतिम्**। शोभनां बुद्धिम्। **सवितः**। हे सूर्य ! **वायो**। हे पवन ! **ऊतये**। रक्षणाय। **महस्वन्तम्**। तेजोवन्तम्। **मत्सरम्**। **कृधूमदिभ्यः कित्** (उ० ३। ७३) इति मदी हर्षे-सरन्। मत्सरः सोमो मन्दते-स्तृप्तिकर्मणो मत्सर इति लोभनामाभिमत्त एनेन धनं भवति—निरु० २। ५। हर्षम्। सोमम्। आनन्दरसम्। **मादयाथः**। मद तृप्तियोगे-चुरादिः। णिच्-लेट्। युवां तर्पयतं पूरयतम्। **अर्वाक्**। सन्मुखम्। **वामस्य**। धनस्य। **प्रवतः**। अ० ३। १। ४। प्रकर्षवतः। **नि**। नियमेन। **यच्छतम्**। दाण् दाने। **पाघ्राध्मा०** (पा० ७। ३। ७८) इति यच्छ आदेशः। दानं कुरुतम्। अन्यत् पूर्ववत्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तौमि । देवम् । सवितारम् । च । वायुम् । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(देवयोः) उन दोनों देवों की [=के लिये] (श्रेष्ठाः) श्रेष्ठ (आशिषः) कामनायें (नः) हमारे (धामन्) देह में (उप अस्थिरन्) उपस्थित हुई हैं । (देवम्) दिव्य (सवितारम्) सूर्य (च) और (वायुम्) वायु की (स्तौमि) मैं स्तुति करता हूं । (तौ) सो तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य और वायु से गुण ग्रहण करने के लिये पूरी इच्छा अपने हृदय में स्थित करके प्रयत्न पूर्वक लाभ उठावें और सदा सुखी रहें ॥ ७ ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः

सूक्तम् २६ ॥

१-७ ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ सर्वत्रान्तिमः पादोऽनुष्टुप् । शेषाः पादाः—१ स्वराट् पथ्याबृहती, २-५ त्रिष्टुप्, ६, ७ बृहती ॥

द्यावापृथिव्योर्गुणोपदेशः—सूर्य और पृथिवी के गुणों का उपदेश ॥

मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाम्

७—**उप** । उपसर्गः । **श्रेष्ठाः** । अतिशयेन प्रशस्ताः । **नः** । अस्माकम् । **आशिषः** । आङ्पूर्वः शासु इच्छायाम्-क्विप् । **क्वौ च शास इत्वम् भवतीति वक्तव्यम्** (वा० पा० ६ । ४ । ३४) इति इत्वम् । कामनाः । **देवयोः** । दानादि-गुणयुक्तयोः । वायुसवित्रोः । **धामन्** । धामनि । स्थाने । देहे । **उप अस्थिरन्** । तिष्ठतेर्लुङि । **अकर्मकाच्च** (पा० १ । ३ । २६) इत्यात्मनेपदम्[1] । उपस्थिता अभवन् । **स्तौमि** । प्रशंसामि । **देवम्** । दिव्यम् । **सवितारम्** । सूर्यम् । **च** । **वायुम्** । पवनम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

---

१. यहाँ व्यत्यय से 'झ' के स्थान में रन् आदेश हुआ है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमिता योजनानि । प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ १ ॥

मन्वे । वाम् । द्यावापृथिवी इति । सुऽभोजसौ । सऽचेतसौ । ये इति । अप्रथेथाम् । अमिता । योजनानि । प्रतिस्थे इति प्रतिऽस्थे । हि । अभवतम् । वसूनाम् । ते इति । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(सुभोजसौ) हे उत्तम भोग देने वाली वा पालन करने वाली (सचेतसौ) समान ज्ञान कराने वाली (द्यावापृथिवी) सूर्य पृथिवी ! (वाम्) तुम दोनों का (मन्वे) मैं मनन करता हूं, (ये) जिन तुम दोनों ने (अमिता) अगणित (योजनानि) संयोग कर्मों को (अप्रथेथाम्) प्रसिद्ध किया है और (हि) अवश्य ही (वसूनाम्) धनों की (प्रतिष्ठे) आधार (अभवतम्) हुई हो, (ते) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ १ ॥

भावार्थः—सूर्य और पृथिवी के परस्पर आकर्षण से अन्न, धन और अनेक संयोग वियोग क्रियायें प्रकट होती हैं, मनुष्य उनके गुणों का यथावत् उपयोग करके आनन्द भोगें ॥ १ ॥

१—मन्वे । मननं करोमि । **वाम्** । युवयोः । **द्यावापृथिवी** । हे द्यावापृथिव्यौ ! हे सूर्यभूलोकौ ! । **सुभोजसौ** । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति भुज पालनाभ्यवहारयोः-असुन् । शोभनपालयित्र्यौ । सुष्ठु भोजयित्र्यौ । **सचेतसौ** । अ० १ । ३० । २ । समानचेतयित्र्यौ । **ये** । द्यावापृथिव्यौ । **अप्रथेथाम्** । प्रथ प्रख्याने-लङ् । प्रख्यातवत्यौ । प्रसिद्धी कृतवत्यौ । **अमिता** । माङ् माने शब्दे च-क्तः । अमितानि । अपरिमितानि, बहूनि । **योजनानि** । युजिर्-योगे-ल्युट् । संयोजनानि । संयोगकर्माणि । **प्रतिष्ठे** । **आतश्चोपसर्गे** (पा० ३ । ३ । १०६) इति प्रति+ष्ठा गतिनिवृत्तौ-अधिकरणेऽङ् । आधारभूते । **हि** । अवश्यम् । **अभवतम्** । **वसूनाम्** । निवासहेतूनाम् । धननाम-निघ० २ । १० । **ते** । तथाभूते युवाम् । **नः** । अस्मान् । **मुञ्चतम्** । मोचयतम् । **अंहसः** । कष्टात् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ २ ॥

प्रतिस्थे इति प्रतिऽस्थे । हि । अभवतम् । वसूनाम् । प्रवृद्धे इति प्रऽवृद्धे । देवी इति । सुभगे इति सुऽभगे । उरूची इति । द्यावापृथिवी इति । भवतम् । मे । स्योने इति । ते इति । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(प्रवृद्धे) हे बढ़ी वृद्धि वाली, (देवी) दिव्य स्वरूप (सुभगे) बड़े ऐश्वर्य वाली, (उरूची) बहुत पदार्थ प्राप्त कराने वाली तुम दोनों (हि) ही (वसूनाम्) धनों की (प्रतिष्ठे) आधार (अभवतम्) हुई हो। (द्यावा-पृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी तुम दोनों (मे) मेरे लिये (स्योने) सुखवती (भवतम्) होओ। (ते) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य और पृथिवी के विज्ञान से अनेक ऐश्वर्य प्राप्त करके सुखी रहें ॥ २ ॥

असंतापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ३ ॥

असंतापे इत्यसम्ऽतापे । सुऽतपसौ । हुवे । अहम् । उर्वी इति । गम्भीरे इति । कविऽभिः । नमस्ये ३ इति । द्यावा-

---

२—**प्रतिष्ठे** । म० १ । आधारभूते । **हि** । अवश्यम् । **अभवतम्** । **वसूनाम्** । धनानाम् । **प्रवृद्धे** । हे प्रकर्षेण वृद्धियुक्ते । **देवी** । हे देव्यौ दिव्यस्व-रूपे । **सुभगे** । हे शोभनैश्वर्ये । **उरूची** । अ० ३ । ३ । १ । उरवो बहवः पदार्था अञ्चन्ति गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति याभ्यां सकाशात् ते उरूच्यौ । बहुपदार्थप्रापिके । **द्यावापृथिवी** । हे सूर्यभूलोकौ ! । **भवतम्** । **मे** । मह्यम् । **स्योने** । अ० १ । ३३ । १ सुखवत्यौ । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवी इति । भवतम् । मे । स्योने इति । ते इति । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(सुतपसौ) सुन्दर ताप रखने वाली, (असंतापे) संताप न देने वाली, (उर्वी) चौड़ी, (गम्भीरे) गहरी [शान्त स्वभाव वाली] (कविभिः) विद्वानों से (नमस्ये) नमस्कार योग्य तुम दोनों को (अहम्) मैं (हुवे) पुकारता हूँ। (द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी तुम दोनों (मे) मेरे लिये .....म० २ ॥ ३ ॥

भावार्थः—सूर्य के पिण्ड में ताप है जिससे पृथिवी तापयुक्त होती है। इस प्रकार दोनों के ताप से सब जगत् के पदार्थ रक्षित रहते हैं। उन दोनों के यथावत् ज्ञान से मनुष्य बुद्धिमान् होकर आनन्द प्राप्त करें ॥ ३ ॥

ये अमृतं बिभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या बिभृथो ये मनुष्यान्। द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ४ ॥

ये इति । अमृतम् । बिभृथः । ये इति । हवींषि । ये इति । स्रोत्याः । बिभृथः । ये इति । मनुष्यान् । द्यावापृथिवी इति । भवतम् । मे । स्योने इति । ते इति । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥४॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम दोनों (अमृतम्) मृत्यु से बचने के साधन और (ये) जो तुम (हवींषि) देने और ग्रहण करने योग्य अन्न आदि पदार्थों को (बिभृथः) धारण करती हो, (ये) जो तुम दोनों (स्रोत्याः) जल वा

३—**असंतापे** । नास्ति संतापो याभ्याम् । असंतापकर्त्र्यौ । **सुतपसौ** । सुन्दरतापयुक्ते । शोभनैश्वर्ययुक्ते । **हुवे** । आह्वयामि । **अहम्** । जीवः । **उर्वी** । उर्व्यौ । विस्तीर्णे । **गम्भीरे** । **गभीरगम्भीरौ** (उ० ४ । ३५) इति गम्ल्ल गतौ—ईरन्, मस्य भः, नुम् च । गमनीये प्रापणीये । शान्तस्वभावे । महाशये । **कविभिः** । मेधाविभिः । **नमस्ये** । वन्दनीये । अन्यत् पूर्ववत् म०—२ ॥

४—**ये** । द्यावापृथिव्यौ युवाम् । **अमृतम्** । नास्ति मृतं मरणं यस्मात् तत् । मरणाद् रक्षणसाधनम् । अन्नादिकम् । **बिभृथः** । धारयथः । **हवींषि** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदियों को और (ये) जो तुम दोनों (मनुष्यान्) मनुष्यों को (बिभृथः) धारण करती हो। (द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी तुम दोनों (मे) मेरे लिये...म० २ ॥ ४ ॥

भावार्थः—सूर्य और पृथिवी के परस्पर आकर्षण से वृष्टि होकर अन्न आदि उत्पन्न होते हैं, जिनसे मनुष्य आदि प्राणियों को अमृत अर्थात् अन्न आदि पदार्थ मिलते हैं ॥४॥

ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन् ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः। द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः॥५॥

ये इति। उस्रियाः। बिभृथः। ये इति। वनस्पतीन्। ययोः। वाम्। विश्वा। भुवनानि। अन्तः। द्यावापृथिवी इति। भवतम्। मे। स्योने इति। ते इति। नः। मुञ्चतम्। अंहसः॥ ५॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम दोनों (उस्रियाः) गौओं को और (ये) जो तुम दोनों (वनस्पतीन्) वनस्पतियों को (बिभृथः) धारण करती हो, (ययोः वाम्) जिन तुम दोनों के (अन्तः) भीतर (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक हैं। (द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी तुम दोनों (मे) मेरे लिये म० २ ॥ ५ ॥

भावार्थः—सूर्य के ताप और पृथिवी के संयोग से किरण द्वारा वृष्टि

अर्चिशुचिहु० (उ० २ । १०८) इति हु दानादनयोः—इसिः। देयग्राह्यद्रव्याणि धान्यादीनि। **स्रोत्याः। स्रोतसो विभाषा ङ्यड्ङ्यौ** (पा०४ । ४ । ११३) इति स्रोतस्-ङ्यः। स्रोतसि भवाः। अपो जलानि। स्रोत्याः, नदीनाम-निघ०१ । १३। **मनुष्यान्।** मननशीलान् नरान्। अन्यत् पूर्ववत्—म० २ ॥

५—**ये।** युवाम्। **उस्रियाः। स्फायितञ्चिवञ्चि०** (उ० २ । १३) इति वस निवासे-रक्, सम्प्रसारणं च। वसति क्षीरादिहविरस्याम्-इति उस्रा[1]। ततः-पृषोदरादित्वात्स्वार्थे घः। उस्रियेति गोनामोत्स्राविणोऽस्यां भोगाः। निरु० ४ । १९। गाः। **बिभृथः।** धारयथः। **वनस्पतीन्।** अ० १ । १२ । ३। वनानां सेवकानां पालकान्। वृक्षान्। **ययोः। वाम्।** युवयोः। **विश्वा।**

---

१. उस्रा यह रश्मि नामों में भी पढ़ा है। (निघ० १ । ५) महर्षि दयानन्द जी ने यजु० ३५ । २ में उस्रिया शब्द पर व्याख्यान किया है। अर्थात् उस्रिया वे किरणें हैं जो शरीर छूट जाने के पश्चात् जीव को कर्म फल के अनुसार गर्भ में पहुँचाती हैं। द्र०—(यजु० । द० भा० ३५ । २, ३) एवं (द० भा० ३६ । ६) भी द्रष्टव्य है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर गौ आदि सब पशु और सब वृक्ष पुष्ट होते हैं और सब लोक उनके ही प्रभाव में ठहरे हैं ॥ ५ ॥

ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किंचन शक्नुवन्ति । द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६ ॥

ये इति । कीलालेन । तर्पयथः । ये इति । घृतेन । याभ्याम् । ऋते । न । किम् । चन । शक्नुवन्ति । द्यावापृथिवी इति । भवतम् । मे । स्योने इति । ते इति । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ६ ॥

भाषार्थः--(ये) जो तुम दोनों (कीलालेन) जाठराग्नि के निवारण करने वाले अन्न से, और (ये) जो तुम दोनों (घृतेन) जल से (तर्पयथः) तृप्त करती हो, (याभ्याम् ऋते) जिन तुम दोनों के विना [सब प्राणी] (किम् चन) कुछ भी (न) नहीं (शक्नुवन्ति) शक्ति रखते हैं । (द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी (मे) मेरे लिये (स्योने) सुखवती (भवतम्) हो । (ते) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ ६ ॥

भावार्थः--सूर्य और पृथिवी के प्रभाव से अन्न और जल आदि पदार्थ उत्पन्न होकर जगत् का उपकार करते हैं । उनके विज्ञान से सब मनुष्य सुखी रहें ॥ ६ ॥

विश्वानि सर्वाणि । **भुवनानि** । अ० २ । १ । ३ । लोकान् । **अन्तः** । मध्ये । अन्यत् पूर्ववत्—म० २ ॥

६—ये । युवाम् । **कीलालेन** । कील—अलेन । कील बन्धने घञ्, कः वा । अल भूषणपर्याप्तिवारणेषु–अण् । कीलं जाठराग्नेर्ज्वालामलति वारयतीति कीलालम् अन्नम्—निघ० २ । ७ । अन्नेन । **तर्पयथः** । **घृतेन** । उदकेन-निघ० १ । १२ । **याभ्याम्** । **अन्यारादितरर्ते०** (पा० २ । ३ । २९) इति पञ्चमी । **ऋते** । विना । **न** । निषेधे । **किञ्चन** । यथा तथा । किमपि । **शक्नुवन्ति** । शक्ता भवन्ति सर्वे जनाः । अन्यत् पूर्ववत् । म० २ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात्।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः॥७॥

यत्। मा। इदम्। अभिऽशोचति। येनऽयेन। वा। कृतम्। पौरुषेयात्। न। दैवात्। स्तौमि। द्यावापृथिवी इति। नाथितः। जोहवीमि। ते इति। नः। मुञ्चतम्। अंहसः॥ ७॥

भाषार्थः—(येनयेन) जिस किसी कारण से (पौरुषेयात्) पुरुष [इस शरीर] से किया हुआ (वा) अथवा (दैवात्) दैव [प्रारब्ध, पूर्वजन्म] के फल से प्राप्त हुआ (यत्) जो (इदम्) यह (कृतम्) कर्म (न) इस समय (मा) मुझको (अभिशोचति) शोक में डालता है। [इसलिये] (नाथितः) मैं अधीन होकर (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी को (स्तौमि) सराहता हूं और (जोहवीमि) बारंबार पुकारता हूं। (ते) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो॥ ७॥

भावार्थः—मनुष्य पुरुषार्थ के साथ सुकर्म करके इस जन्म वा प्रारब्ध से प्राप्त हुए दुःख का नाश करके सूर्य पृथिवी आदि लोकों के उपयोग से सुख भोगें॥ ७॥

सूक्तम् २७॥

१—७॥ मरुतो देवताः॥ सर्वत्रान्तिमः पादोऽनुष्टुप्, शेषाः पादाः-१-४, ६, ७, त्रिष्टुप्, ५ बृहती छन्दः॥

मरुतां गुणोपदेशः—पवन के गुणों का उपदेश॥

७—**यत्। मा।** माम्। **इदम्।** इण् गतौ–दमुक्। पुरोवर्त्ति। **अभिशोचति।** अभितः सर्वतो दहति। **येनयेन।** येनकेन कारणेन। **वा।** अथवा। **कृतम्।** कर्म। **पौरुषेयात्। पुरुषात्वधविकारसमूहतेनकृतेषु** (वा० पा० ५। १। १०) इति पुरुष–ढञ्। पुरुषकृतोत्कर्मणः। **न।** सम्प्रत्यर्थे–निरु० ७। ३१। **दैवात्।** अ० ४। १६। ८। पूर्वजन्मार्जितात् कर्मणः। **स्तौमि।** प्रशंसामि द्यावापृथिव्यौ। **नाथितः।** अ० ४। २३। ७। नाथवान् अधीनः। **जोहवीमि।** पुनः पुनराह्वयामि। अन्यत् पूर्ववत्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु ।
आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १ ॥

मरुताम् । मन्वे । अधि । मे । ब्रुवन्तु । प्र । इमम् । वाजम् । वाजसाते । अवन्तु । आशून्ऽइव । सुऽयमान् । अह्वे । ऊतये । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(मरुताम्) दोष नाशक वायुओं का (मन्वे) मैं मनन करता हूं । (मे) मेरे लिये (अधि) अनुग्रह से (ब्रुवन्तु) बोलें और (इमम्) इस (वाजम्) बल को (वाजसाते) अन्न के सुख वा दान के निमित्त (प्र) अच्छे प्रकार (अवन्तु) तृप्त करें । (आशून् इव) शीघ्रगामी घोड़ों के समान (सुयमान्) उन सुन्दर नियम वालों को (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (अह्वे) मैंने पुकारा है । (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य प्राण अपान व्यानरूप वायुओं के शोधन, सेवन, और प्राणायाम से बल और अन्न प्राप्त करके अपनी रक्षा करें ॥ १ ॥

उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आस्िञ्चन्ति रसमोषधीषु । पुरो दधे मरुतः पृश्निमातंस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२॥

१—**मरुताम् ।** अ० १ । २० । १ । मारयन्ति दोषान् मरुतः । दोषनाशकानां प्राणापानव्यानरूपाणां वायूनाम् । **मन्वे** । मननं करोमि । **मे** । मह्यम् । **अधि ब्रुवन्तु ।** अधिकमनुग्रहेण वदन्तु । **इमम् । वाजम् ।** बलम्-निघ० २ । ९ । **वाजसाते ।** वाजः, अन्नम्—निघ० २ । ७ । **अनुपसर्गाल्लिम्पविन्द०** (पा० ३ । १ । १३८) इति सूत्रे पठितः सातिः सौत्रो धातुः । सति सुखे-अच् । यद्वा षणु दाने-क्तः । **जनसनखनाम्०** (पा० ६ । ४ । ४२) इत्यात्वम् । वाजस्य अन्नस्य साते सुखे दाने वा निमित्तभूते सति । **प्र अवन्तु ।** प्रकर्षेण तर्पयन्तु । **आशून् ।** अ० २ । १४ । ६ । शीघ्रगामिनोऽश्वान् । **इव ।** तथा । **सुयमान् ।** शोभननियमयुक्तान् तान् मरुतः । **अह्वे ।** ह्वेञ् स्पर्द्धायां शब्दे च—लुङ् । **लिपिसिचिह्वश्च** (पा० ३ । १ । ५३) इति च्लेः अङ् आदेशः । आहूतवानस्मि । **ऊतये ।** रक्षायै **ते ।** मरुतः । **नः ।** अस्मान् । **मुञ्चन्तु ।** मोचयन्तु । **अंहसः ।** कष्टात् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्सम्। अक्षितम्। व्यचन्ति। ये। सदा। ये। आसिञ्चन्ति। रसम्। ओषधीषु। पुरः। दधे। मरुतः। पृश्निमातॄन्। ते। नः। मुञ्चन्तु। अंहसः॥ २॥

भाषार्थः—(ये) जो [मरुत् देवता] (सदा) सदा (अक्षितम्) अक्षय (उत्सम्) सींचने वाले जल को (व्यचन्ति) विविध प्रकार से पहुँचाते हैं, और (ये) जो (रसम्) रस को (ओषधीषु) अन्न आदि ओषधियों में (आसिञ्चन्ति) सींच देते हैं। (पृश्निमातॄन्) छूने योग्य पदार्थों को वा आकाश के नापने वाले (मरुतः) उन वायु देवताओं को (पुरो दधे) मैं सन्मुख रखता हूँ। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें॥ २॥

भावार्थः—मनुष्य वायु के गुणों में विज्ञान प्राप्त करके सदा आनन्दित रहें॥ २॥

पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ।
शुग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ ३॥

पयः। धेनूनाम्। रसम्। ओषधीनाम्। जवम्। अर्वताम्। कवयः। ये। इन्वथ। शुग्माः। भवन्तु। मरुतः। नः। स्योनाः। ते। नः। मुञ्चन्तु। अंहसः॥ ३॥

२—**उत्सम्**। अ० १।१५।३। सेचनसाधनं जलं वा। **अक्षितम्**। क्षयरहितम्। **व्यचन्ति**। अंचु अचु गतौ याचने च, अन्तर्गतो ण्यर्थः। विविधं गमयन्ति। **ये**। मरुतः। **सदा**। सर्वदा। **आसिञ्चन्ति**। समन्तात् क्षारयन्ति वर्षयन्ति। **रसम्**। सारम्। **ओषधीषु**। व्रीहियवाद्यासु तरुगुल्मादिषु च। **पुरोदधे**। पुरस्ताद् धारयामि। भजामि। पूजयामि। **मरुतः**। दोषनाशकान् वायून्। **पृश्निमातॄन्**। **घृणिपृश्निपार्ष्णि०** (उ० ४। ५२) इति स्पृश संस्पर्शने—निः। धातोः सलोपः। पृश्नि……द्यौः संस्पृष्टा ज्योतिर्भिः पुण्यकृद्भिश्च—निरु० २। १४। **ण्वुल्तृचौ** (पा० ३। १। १३३) इति माङ् माने—तृच्। पृश्नीनां स्पर्शनीयानां पदार्थानाम्। अथवा पृश्नेर्दिव आकाशस्य मातारो मानकर्तारः परिच्छेत्तारो ये तान्। अन्यत् पूर्ववत्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ये) जो तुम (कवयः) चलने फिरने वाले अथवा सुखाने वाले [मरुत् देवता] (धेनूनाम्) गौओं का (पयः) दूध, (ओषधीनाम्) अन्न आदि ओषधियों का (रसम्) रस और (अर्वताम्) घोड़ों का (जवम्) वेग (इन्वथ) भर देते हो। (शग्माः) शक्ति वाले (मरुतः) वे आप दोषनाशक वायु गण (नः) हमारे लिये (स्योनाः) सुखदायक (भवन्तु) होवें। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ३ ॥

भावार्थः—प्राण अपान आदि द्वारा सब पदार्थों में शक्ति पहुँचती है। उन वायु प्रवाहों का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य सदा प्रसन्न रहें ॥ ३ ॥

अपः समुद्राद् दिवमुद्वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति।
ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४ ॥

अपः। समुद्रात्। दिवम्। उत्। वहन्ति। दिवः। पृथिवीम्। अभि। ये। सृजन्ति। ये। अत्ऽभिः। ईशानाः। मरुतः। चरन्ति। ते। नः। मुञ्चन्तु। अंहसः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(ये) जो [वायुगण] (अपः) जल को (समुद्रात्) पार्थिव समुद्र से (दिवम्) आकाश में (उद्वहन्ति) उठाकर पहुँचाते हैं और (दिवः)

३—पयः। दुग्धम्। **धेनूनाम्**। अ० २। ५। ६। दुग्धं पाययित्रीणां गवाम्। **रसम्**। सारम्। **ओषधीनाम्**। अन्नादीनाम्। **जवम्**। ऋदोरप् (पा० ३। ३। ५७) इति जु वेगे[1]–अप्। वेगम्। **अर्वताम्**। अ० ४। ९। २। अश्वानाम्। **कवयः**। कुङ् गतौ शब्दे च–इन्। कवतेः गतिकर्मा–निघ० २। १४। गन्तारः। शोषयितारः। **ये**। यूयं मरुतः। **इन्वथ**। इवि व्याप्तौ। इदित्वान्नुम्। व्यापयथ। स्थापयथ। **शग्माः**। **अर्तिस्तुसुहु०** (उ० १। १४०) इति शक्लृ–मन्। शक्तारः। समर्थाः। **भवन्तु**। **मरुतः**। वायवः। **नः**। अस्मभ्यम्। **स्योनाः**। सुखकराः। अन्यत् पूर्ववत् ॥

४—अपः। जलानि। **समुद्रात्**। पार्थिवसागरात्। **दिवम्**। अन्तरिक्षम्। **उत्**। ऊर्ध्वम्। **वहन्ति**। प्रापयन्ति। **दिवः**। अन्तरिक्षात्। **पृथिवीम्**।

---

१. यह सौत्र धातु है। द्र० मा० धा० पृ० २६७ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश से (पृथिवीम् अभि) पृथिवी पर (सृजन्ति) छोड़ देते हैं। और (ये) जो (ईशानाः) समर्थ (मरुतः) वायुगण (अद्भिः) जल के साथ (चरन्ति) चलते रहते हैं। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ४ ॥

भावार्थः—सूर्य की किरणों से मिलकर वायु गण जल आकाश में ले जाते और पृथिवी पर बरसाते हैं। उनके उपकारों को समझ कर मनुष्य आनन्द प्राप्त करें ॥ ४ ॥

ये क्रीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति। ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ५ ॥

ये। क्रीलालेन। तर्पयन्ति। ये। घृतेन। ये। वा। वयः। मेदसा। सम्ऽसृजन्ति। ये। अत्ऽभिः। ईशानाः। मरुतः। वर्षयन्ति। ते। नः। मुञ्चन्तु। अंहसः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(ये) जो [मरुत्गण] (वयः) जीवन को (कीलालेन) अन्न से और (ये) जो (घृतेन) जल से (तर्पयन्ति) तृप्त करते हैं, (वा) और (ये) जो (मेदसा) मेदा अर्थात् चर्बी से (संसृजन्ति) संयुक्त करते हैं। और (ये) जो (ईशानाः) समर्थ (मरुतः) वायुगण (अद्भिः) जल से [प्राणियों को] (वर्षयन्ति) सींचते हैं। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ५ ॥

भूमिम्। **अभि**। अभिलक्ष्य। **ये**। मरुतः। **सृजन्ति**। त्यजन्ति। **अद्भिः**। जलैः। **ईशानाः**। ईश्वराः समर्थाः। **मरुतः**। दोषनाशका वायवः। **चरन्ति**। गच्छन्ति। अन्यद् गतम् ॥

५—**ये**। मरुतः। **कीलालेन**। अ०। ४। २६। ६। अन्नेन। **तर्पयन्ति**। पोषयन्ति। **घृतेन**। उदकेन। **वा**। चार्थे। **वयः**। अ० २। १०। ३। वी गतौ-असुन्। अन्नम्-निघ० २। ७। आयुः। जीवनम्। **मेदसा**। **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४। १८९) इति ञिमिदा स्नेहने—असुन्। मांसप्रभवधातुविशेषेण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—वायु वेग द्वारा अन्न, जल मिलकर शरीर रक्षा के लिये रक्त अस्थि आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं। उन वायु गणों के गुणों से हम सदा स्वस्थ और पुष्ट रहें ॥ ५ ॥

यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगारं ।
यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ६ ॥

यदि । इत् । इदम् । मरुतः । मारुतेन । यदि । देवाः । दैव्येन । ईदृक् । आर । यूयम् । ईशिध्वे । वसवः । तस्य । निःऽकृतेः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विजयशील (मरुतः) दोषनाशक वायुगण ! (यदि) यत्नशील (इदम्) चलता हुआ जगत् (इत्) निश्चय करके [तुम्हारे] (मारुतेन) दोषनाशक धर्म से और (दैव्येन) दिव्यपन से (ईदृक्) ऐसा (यदि) यत्नशील (आर) प्राप्त हुआ है। (वसवः) हे निवास कराने वाले ! (यूयम्) तुम (तस्य) उस जगत् के (निष्कृतेः) उद्धार के (ईशिध्वे) समर्थ होते हो। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ६ ॥

भावार्थः—यह सब जगत् वायु के कारण चेष्टा करता हुआ उद्योगी रहता है, उस वायु के गुणों को जान कर सब मनुष्य प्रसन्न रहें ॥ ६ ॥

वपया तुरीयधातुना। **संसृजन्ति।** संयोजयन्ति। **वर्षयन्ति।** सिञ्चन्ति प्राणिनः। अन्यत् पूर्ववत्–म० ४ ॥

६—यदि। सर्वधातुभ्य इन् (उ० ४ । ११८) इति यती प्रयत्ने–इन् तस्य दः। यत्नशीलम्। **इत्।** अवधारणे। **इदम्।** इण् गतौ–दमुक्। एति गच्छतीति इदं जगत्। **मरुतः।** हे दोषनाशका वायवः। **मारुतेन। तस्येदम्** (पा० ४। ३ १२०) इति मरुत्–भावेऽण्। मरुत्वेन मरुतो दोषनाशकधर्मेण। **यदि।** यत्नशीलम्। **देवाः।** हे विजिगीषवः। **दैव्येन।** दिवि भवं दिव्यम्। ततो भावे अण्। दिव्यगुणेन। **ईदृक्। त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च** (पा० ३। २। ६०) इति दृशेः क्विन्। **इदंकिमोरीश्की** (पा० ६। ३। ९०) इति इदम ईशादेशः। एवं रूपं जगद् यथा दृश्यते। **आर।** ऋ गतौ लिट्। प्राप्तं बभूव। **यूयम्। ईशिध्वे।** ईश्वराः समर्था भवथ। **वसवः।** हे वासयितारः प्रशस्ताः। **तस्य।** दृश्यमानस्य जगतः। **निष्कृतेः।** निस्तारस्य उद्धारस्य। अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन्मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम्।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥७॥

तिग्मम्। अनीकम्। विदितम्। सहस्वत्। मारुतम्। शर्धः। पृतनासु। उग्रम्। स्तौमि। मरुतः। नाथितः। जोहवीमि। ते। नः। मुञ्चन्तु। अंहसः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(मारुतम्) दोषनाशक वायु गणों का (अनीकम्) सेना-दल और (शर्धः) बल (पृतनासु) संग्रामों में (तिग्मम्) तीक्ष्ण, (सहस्वत्) बड़ा साहसी और (उग्रम्) बड़ा प्रचण्ड (विदितम्) विदित है। (नाथितः) अधीन मैं (मरुतः) वायु गणों को (स्तौमि) सराहता हूँ और (जोहवीमि) बारंबार पुकारता हूँ। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो साहसी शूरवीर संग्रामों में अपने श्वास प्रश्वास को सावधान रखके वायु का यथावत् प्रयोग करते हैं, वे विजयी होकर आनन्द भोगते हैं ॥ ७ ॥

सूक्तम् २८ ॥

१-७ ॥ भवाशर्वौ देवते ॥ पादत्रयं त्रिष्टुप्, अन्तिमोऽनुष्टुप् ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

७—**तिग्मम्**। **युजिरुचितिजां कुश्च** (उ० १। १४६) इति तिज निशाने—मक्, कुत्वं च। तीक्ष्णम्। **अनीकम्**। **अनिहृषिभ्यां कित्च** (उ०४।१७) इति अन प्राणने-ईकन्। सैन्यम्। **विदितम्**। प्रख्यातम्। **सहस्वत्**। बलवत्। **मारुतम्**। मरुतां सम्बन्धि। **शर्धः**। शर्द्धतिरुत्साहार्थः—असुन्। इति देवराजयज्वा निघण्टुटीकायाम्। बलम् निघ० २। ९। **पृतनासु**। अ० ३। २१। ३। संग्रामेषु। **उग्रम्**। प्रचण्डम्। अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद् विरोचते। यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ १ ॥

भवाशर्वौ। मन्वे। वाम्। तस्य। वित्तम्। ययोः। वाम्। इदम्। प्रऽदिशि। यत्। विऽरोचते। यौ। अस्य। ईशाथे इति। द्विऽपदः। यौ। चतुःऽपदः। तौ। नः। मुञ्चतम्। अंहसः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(भवाशर्वौ) हे सुख उत्पन्न करने वाले और शत्रुनाशक [परमेश्वर के गुणों !] (वाम्) तुम दोनों का (मन्वे) मैं मनन करता हूं। (तस्य) उस [जगत्] का (वित्तम्) वे तुम दोनों ज्ञान रखते हो, (ययोः-वाम्) जिन तुम दोनों के (प्रदिशि) शासन में (इदम्) यह (यत्) जो कुछ जगत् (विरोचते) प्रकाशमान है। (यौ) जो तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये समूह के और (यौ) जो तुम दोनों (चतुष्पदः) चौपाये संसार के (ईशाथे) ईश्वर हो, (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावें ॥ १ ॥

भावार्थः—परमेश्वर सर्वजनक सर्वशासक और सर्वज्ञ है। उसकी उपासना करके सब मनुष्य सुखी रहें ॥ १ ॥

इस सूक्त में गुणों के वर्णन से गुणी अर्थात् ईश्वर का ग्रहण है ॥

१—**भवाशर्वौ**। भवत्युत्पद्यते सुखमस्मादिति भवः। सुखोत्पादको गुणः। **कृगृशदृभ्यो वः** (उ० १। १५५) इति शॄ हिंसायाम् वः। शत्रुनाशको गुणः। भवश्च शर्वश्च भवाशर्वौ परमेश्वरस्य गुणौ। **देवताद्वन्द्वे च** (पा० ६। ३। २६) इति आनङ्। अस्मिन् सूक्ते गुणग्रहणेन गुणिग्रणम्। **मन्वे**। मननं करोमि। **वाम्**। युवयोः। **तस्य**। जगतः। **वित्तम्**। लडर्थे लोट्। वित्थः। वेदनं ज्ञानं कुरुथः। **ययोः**। **वाम्**। युवयोः। **इदम्**। दृश्यमानं गमनशीलं वा जगत्। **प्रदिशि**। प्रदेशने प्रशासने। **यत्**। यत्किञ्चित्। **विरोचते**। रुच दीप्तौ। प्रकाशते। **यौ**। **अस्य**। वर्तमानस्य। **ईशाथे**। ईश्वरौ भवथः। **द्विपदः**। पादद्वयोपेतस्य प्राणिमात्रस्य। **चतुष्पदः**। पादचतुष्टयोपेतस्य गवादेः। **तौ**। भवाशर्वौ। **नः**। अस्मान्। **मुञ्चतम्**। मोचयतम्। **अंहसः**। कष्टात् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ययोरभ्यध्व उत यद् दूरे चिद् यौ विदितावसिष्ठौ इषुभृतामसिष्ठौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥

ययोः । अभिऽअध्वे । उत् । यत् । दूरे । चित् । यौ । विदितौ । इषुऽभृताम् । असिष्ठौ । यौ । अस्य । ईशाथे इति । द्विऽपदः । यौ । चतुःऽपदः । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(ययोः) जिन दोनों का [वह सब है] (यत् चित्) जो कुछ (अभ्यध्वे) समीप में (उत) और (दूरे) दूर देश में है। (यौ) जो तुम दोनों (इषुभृताम्) हिंसा कारियों के (असिष्ठौ) अत्यन्त गिराने वाले (विदितौ) विदित हो। (यौ) जो तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये..... म० १॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर सर्व अन्तर्यामी और शत्रुनाशक है हम उसकी उपासना से सदा पुरुषार्थी रहें ॥ २ ॥

सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥

सहस्रऽअक्षौ । वृत्रऽहनौ । हुवे । अहम् । दूरेगव्यूती इति दूरेऽगव्यूती । स्तुवन् । एमि । उग्रौ । यौ । अस्य । ईशाथे इति । द्विऽपदः । यौ । चतुःऽपदः । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ३ ॥

२—**ययोः** । भवाशर्वयोः । **अभ्यध्वे** । अभि अध्वन अभ्यध्वः । **उपसर्गादध्वनः** (पा० ५ । ४ । ८५) इति अच् समासान्तः । समीपदेशे । **उत** । अपि । **यत् चित्** । यत्किञ्चित् । **दूरे** । दूरदेशे । **यौ** । भवाशर्वौ । **विदितौ** । प्रज्ञातौ । **इषुभृताम्** । ईष हिंसायाम्—कुः, ह्रस्वश्च । डुभृञ् धारणपोषणयोः-क्विप्—तुक् च । हिंसाधारकाणाम् । **असिष्ठौ** । **तुश्छन्दसि** (पा० ५ । ३ । ५९) इति असितृ-इष्ठन् । **तुरिष्ठेमेयस्सु** (पा० ६ । ४ । १५४) इति तृलोपः । असितृतमौ । क्षेप्तृतमौ । अन्यत् पूर्ववत्—म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अहम्) मैं (स्तुवन्) स्तुति करता हुआ (उग्रौ) उग्र स्वभाव वाले, (सहस्राक्षौ) सहस्रों व्यवहारों में व्यापक रहने वाले वा दृष्टि रखने वाले, (वृत्रहणा=०—णौ) शत्रुओं वा अन्धकार के नाश करने वाले, (दूरेगव्यूती) दूर तक प्रकाश का संयोग रखने वाले, दोनों को (हुवे) मैं पुकारता हूँ और (एमि) प्राप्त होता हूं। (यौ) जो तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये.....म० १ ॥ ३ ॥

भावार्थः—परमेश्वर सर्व व्यापक, सर्वदर्शक, शत्रु वा अज्ञान नाशक और सूर्य आदि लोकों का प्रकाशक है, उसकी स्तुति उपासना करके हम सदा पुरुषार्थ करें ॥ ३ ॥

यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्रचेदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ४ ॥

यौ । आरेभाथे इत्याऽरेभाथे । बहु । साकम् । अग्रे । प्र । च । इत् । अस्राष्ट्रम् । अभिऽभाम् । जनेषु । यौ । अस्य । ईशाथे इति । द्विऽपदः । यौ । चतुःऽपदः । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(यौ) जिन तुम दोनों ने (बहु) बहुत सा जगत् (साकम्)

३—**सहस्राक्षौ** । अ० ४ । २० । ४ । बहुव्यवहारव्यापकौ । यद्वा । सर्वतोदत्त-दृष्टी स्थूलसूक्ष्मविषयेष्वपि प्राप्तदर्शनौ । **वृत्रहणा** । अ० १ । २१ । १ । शत्रु-नाशकौ । अन्धकारनिवारकौ । **हुवे** । आह्वयामि । **अहम्** । मनुष्यः । **दूरेगव्यूती** । दूरे+गो+यूती । **दुरीणो लोपश्च** (उ० २ । २०) इति दुर्+इण् गतौ—रक् धातु—लोपश्च । इति दूरं विप्रकृष्टम् । **गमेर्डोः** (उ० २ । ६७) गम्लृ गतौ—डोः प्रत्ययः । **ऊतियूतिजूति०** (पा० ३ । ३ । ९७) इति यु मिश्रणामिश्रणयोः—क्तिन् । निपातनात् साधुः । **गोर्यूतौ छन्दसि** (वा० पा० ६ । १ । ७९) इति अव् आदेशः । रश्मयो गाव उच्यन्ते—निरु० २ । ६ । दूरे दूरदेशे गवां रश्मीनां प्रकाशानां यूतिः संयोगो ययोस्तौ । सर्वलोकप्रकाशकौ—इत्यर्थः । **स्तुवन्** । प्रशंसन् । **एमि** । प्राप्नोमि । **उग्रौ** । तीक्ष्णस्वभावौ । अन्यत् पूर्ववत् म० १ ॥

४—**यौ** । भवाशर्वौ । **आरेभाथे** । रभ राभस्ये=उपक्रमे—लुङ् । आरब्ध-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक साथ (अग्रे) पूर्वकाल में (आरेभाथे) आरम्भ किया (च) और जिन तुम दोनों ने (इत्) ही (जनेषु) प्राणियों में (अभिभाम्) प्रतिभा अर्थात् बुद्धि को (प्र अस्राष्ट्रम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न किया। (यौ) जो तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये.....म० १ ॥ ४ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने सृष्टि को उत्पन्न करके प्राणियों में इष्ट अनिष्ट और सुख दुःख जानने के लिये बुद्धि दी है, उसकी ही भक्ति से हम सदा प्रसन्न रहें ॥ ४ ॥

ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ५॥

ययोः । वधात् । न । अपऽपद्यते । कः । चन । अन्तः । देवेषु । उत । मानुषेषु । यौ । अस्य । ईशाथे इति । द्विऽपदः । यौ । चतुःऽपदः । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(ययोः) जिन तुम दोनों के (वधात्) हनन सामर्थ्य से (देवेषु) प्रकाशमान सूर्य आदि लोकों (उत) और (मानुषेषु अन्तः) मनुष्यों के बीच (कश्चन) कोई भी (न) नहीं (अपपद्यते) छुटकर जाता है। (यौ) जो तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये .....म० १ ॥ ५ ॥

भावार्थः—सर्व नियन्ता जगदीश्वर की आज्ञा पालन करके सब मनुष्य आनन्द प्राप्त करें ॥ ५ ॥

वन्तौ । **बहु** । प्रभूतं जगत् । **साकम्** । सह । **अग्रे** । आदौ । **प्र** । प्रकर्षेण । **च** । **इत्** । एव । **अस्राष्ट्रम्** । सृज विसर्गे छान्दसं लुङि रूपम् । अस्राष्ट्रम् । सृष्टवन्तौ । उत्पादितवन्तौ । **अभिभाम्** । भा क्विप् । प्रतिभां बुद्धिम् । **जनेषु** । उत्पन्नेषु प्राणिषु । अन्यत् पूर्ववत् म० १ ॥

५—ययोः । भवाशर्वयोः । **वधात्** । अ० १ । २० । २ । हननसामर्थ्यात् । **न** । निषेधे । **अपपद्यते** । अपेत्य गच्छति । **कश्चन** । कोऽपि । **अन्तः** । मध्ये । **देवेषु** । प्रकाशमानेषु सूर्यादिलोकेषु । **उत** । अपि च । **मानुषेषु** । अ० ४ । १४ ५ । मनुष्–अण् । मनुष्येषु । अन्यत् पूर्ववत् म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६ ॥

यः। कृत्याऽकृत्। मूलऽकृत्। यातुऽधानः। नि। तस्मिन्। धत्तम्। वज्रम्। उग्रौ। यौ। अस्य। ईशाथे इति। द्विऽपदः। यौ। चतुःऽपदः। तौ। नः। मुञ्चतम्। अंहसः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यः) जो (कृत्याकृत्) हिंसाकारी, (मूलकृत्) मूल कतरने वाला और (यातुधानः) पीडा देने वाला पुरुष है, (तस्मिन्) उस पर (उग्रौ) हे उग्र स्वभाव वाले तुम दोनों (वज्रम्) वज्र (निधत्तम्) गिरावो (यौ) जो तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये समूह के और (यौ) जो तुम दोनों (चतुष्पदः) चौपाये संसार के (ईशाथे) ईश्वर हो, (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ ६ ॥

भावार्थः—परमेश्वर दुष्ट नाशक और शिष्ट रक्षक है, उसकी ही उपासना से मनुष्य बलवान् होवें ॥ ६ ॥

अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ संवर्जेण सृजतं यः किमीदी। स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ७ ॥

अधि। नः। ब्रूतम्। पृतनासु। उग्रौ। सम्। वर्जेण। सृजतम्। यः। किमीदी। स्तौमि। भवाशर्वौ। नाथितः। जोहवीमि। तौ। नः। मुञ्चतम्। अंहसः ॥ ७ ॥

६—**यः**। शत्रुः। **कृत्याकृत्**। अ० ४। १७। ४। हिंसाकारकः। **मूलकृत्**। मूल+कृती छेदने—क्विप्। मूलकर्तकः। प्रतिष्ठाछेदकः। **यातुधानः**। अ० १। ७। १। यातनाकरः। पीडाकारकः। **तस्मिन्**। यातुधाने। **निधत्तम्**। निक्षिपतम्। **वज्रम्**। अ० १।७।७। दण्डरूपम्। कुठारम्। **उग्रौ**। प्रचण्डस्वभावौ। अन्यत् पूर्ववत् म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(उग्रौ) हे उग्र स्वभाव वाले तुम दोनों (नः) हमसे (पृतनासु) संग्रामों में (अधि) अनुग्रह से (ब्रूतम्) बोलो और [उसको] (वज्रेण) वज्र के साथ (सम् सृजतम्) संयुक्त करो (यः) जो (किमीदी) अब क्या हो रहा है, यह क्या हो रहा है, ऐसा खोजने वाला लुतरा पुरुष है, (नाथितः) मैं अधीन होकर (भवाशर्वौ) सुख उत्पन्न करने वाले और शत्रु नाश करने वाले तुम दोनों को (स्तौमि) सराहता हूँ और (जोहवीमि) बारंबार पुकारता हूँ। (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य सदाचारी और सत्यवादी होकर शत्रुओं को संग्राम में जीतें और परमेश्वर की उपासना करके सदा प्रसन्न रहें ॥ ७ ॥

सूक्तम् २९ ॥

१-७ ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ सर्वत्रान्तिमः पादोऽनुष्टुप्, ५-७ जगती ॥

पुरुषार्थकरणायोपदेशः—पुरुषार्थ करने का उपदेश ॥

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे ।
प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ १ ॥

मन्वे । वाम् । मित्रावरुणौ । ऋतऽवृधौ । सऽचेतसौ । द्रुह्वणः । यौ । नुदेथे इति । प्र । सत्यऽवानम् । अवथः । भरेषु । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ १ ॥

७—**अधिब्रूतम्** । अधिकमनुग्रहेण वदतम् । **नः** । अस्मभ्यम् । **पृतनासु** । संग्रामेषु । **वज्रेण** । **संसृजतम्** । संयोजयतम् । **यः** । पुरुषः । **किमीदी** । अ० १ । ७ । १ । किमिदानीं वर्तते किमिदं वर्तते—इत्येवमन्वेषणं कुर्वाणः । पिशुनः । **स्तौमि** । प्रशंसामि । **भवाशर्वौ** । सुखजनकशत्रुनाशकौ परमेश्वरगुणौ । **नाथितः** । अ० ४ । २३ । ७ । नाथवान् । अधीनः । **जोहवीमि** । पुनः पुनराह्वयामि । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ऋतावृधौ) हे सत्य के बढ़ाने वाले (सचेतसौ) समान ज्ञान कराने हारे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण [प्राण और अपान अथवा दिन और रात] (वाम्) तुम दोनों का (मन्वे) मैं मनन करता हूं, (यौ) जो तुम दोनों (द्रुह्वणः) द्रोहकारियों को (नुदेथे) निकाल देते हो और (सत्यावानम्) सत्यवान् पुरुष को (भरेषु) संग्रामों में (प्र) अच्छे प्रकार (अवथः) बचाते हो। (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्राणायाम करके श्वास प्रश्वास पर दिन रात शुभ चिन्तन करते हैं, वे सत्यवादी सत्यसंकल्पी पुरुष आत्म दोषों को त्याग कर संसार में विजय पाते और आनन्द भोगते हैं ॥१॥

सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥

सऽचेतसौ । द्रुह्वणः । यौ । नुदेथे इति । प्र । सत्यऽवानम् । अवथः । भरेषु । यौ । गच्छथः । नृऽचक्षसौ । बभ्रुणा । सुतम् । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ २ ॥

१—**मन्वे** । मननं करोमि । **वाम्** । युवयोः । **मित्रावरुणौ** । अ० १।२०।२। मिनोति प्रेरयति जगत् कार्ये स मित्रः। वृणोति आच्छादयति स्वीकरोति वा स वरुणः। प्राणापानौ, दयानन्दभाष्ये-य० २।३। अहोरात्राभिमानिनौ-इतिसायणः, म० २। अहोरात्रौ। **ऋतावृधौ** । छान्दसो दीर्घः। ऋतस्य सत्यस्य वर्धयितारौ। **सचेतसौ** । अ० ४ । २६ । १। समानचेतयितारौ। **द्रुह्वणः** । **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** (पा० ३ । २ । ७५) इति द्रुह जिघांसायाम्–क्वनिप्। द्रोग्धॄन्। उपद्रविणः। **यौ** । मित्रावरुणौ। **नुदेथे** । णुद प्रेरणे। दूरे प्रेरयथः। स्थानात् प्रच्यावयथः। **प्र** । प्रकर्षेण। **सत्यावानम्** । **छन्दसीवनिपौ** (वा० पा० ५ । २ । १०९) इति मत्वर्थीयो वनिप्। छान्दसो दीर्घः। सत्यवन्तं सत्यप्रतिज्ञं पुरुषम्। **अवथः** । रक्षथः। **भरेषु** । भृ भर्त्सने क्र्यादिः—पचाद्यच्। संग्रामेषु-निघ० २। १७। **तौ** । तादृशौ युवाम्। **नः** । अस्मान्। **मुंचतम्** । मोचयतम्। **अंहसः** । कष्टात् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सचेतसौ) हे समान ज्ञान कराने वाले ! (यौ) जो तुम दोनों (द्रुह्वणः) उपद्रवियों को (नुदेथे) निकाल देते हो और (सत्यावानम्) सत्यवान् पुरुष को (भरेषु) संग्रामों में (प्र) अच्छे प्रकार (अवथः) बचाते हो। (नृचक्षसौ) मनुष्यों के देखने वाले (यौ) जो तुम दोनों (बभ्रुणा) पोषण के साथ (सुतम्) उत्पन्न जगत् वा पराक्रमी वा पुत्र समान सेवक पुरुष को (गच्छथः) प्राप्त होते हो। (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ २ ॥

भावार्थः— जो मनुष्य श्वास प्रश्वास और पल पल पर दृष्टि रख कर वैदिक कर्म करते रहते हैं, वे सत्यप्रतिज्ञ पुरुष बल पराक्रम प्राप्त करके सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ २ ॥

यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम् ।
यौ कुश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ३ ॥

यौ । अङ्गिरसम् । अवथः । यौ । अगस्तिम् । मित्रावरुणा । जमत्ऽअग्निम् । अत्रिम् । यौ । कुश्यपम् । अवथः । यौ । वसिष्ठम् । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(यौ) जो (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण तुम दोनों (अङ्गिरसम्) उद्योगी वा ज्ञानी पुरुष को और (यौ) जो तुम दोनों (अगस्तिम्)

२—पूर्वार्द्धो व्याख्यातः—म० १। **यौ** । मित्रावरुणौ । **गच्छथः** । प्राप्नुथः । **नृचक्षसौ** । अ० १। ७। ५। हे नृणां चष्टारौ द्रष्टारौ सर्वस्यापि मानुषव्यापारस्य साक्षिणौ । **बभ्रुणा** । **कुर्भ्रश्च** (उ० १। २२) इति डुभृञ् धारणपोषणयोः—कुः, द्वित्वं च । भरणेन पोषणेन । **सुतम्** । षु प्रसवैश्वर्ययोः—क्तः । उत्पन्नं जगत् ऐश्वर्यवन्तम् । पराक्रमिणम् । पुत्रवत्सेवकं वा । अन्यत् पूर्ववत् ॥

३—**यौ** । युवाम् । **अङ्गिरसम्** । अ० २। १२। ४। गन्तारम् । उद्योगिनं ज्ञानिनं वा । **अवथः** । रक्षथः । **अगस्तिम्** । अ० २। ३२। ३। अग कुटिलायां गतौ—अच् । **वसेस्तिः** (उ० ४। १८०) इति अग + असु क्षेपणे कर्त्तरि-तिप्रत्ययः, पृषो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्रगति पाप के गिरा देने वाले, (जमदग्निम्) [यज्ञ वा शिल्प सिद्धि में] प्रकाशमान अग्नि वाले और (अत्रिम्) दोष के नाश करने वाले, यद्वा निरन्तर गतिशील, यद्वा कायिक वाचिक और मानसिक तीन दोष रहित महात्मा को (अवथः) बचाते हो। (यौ) जो तुम दोनों (कश्यपम्) सोमरस पीने वाले वा सूक्ष्मदर्शी पुरुष को और (यौ) जो तुम दोनों (वसिष्ठम्) बड़े धनी और बड़े श्रेष्ठ जन को (अवथः) बचाते हो। (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्य (मित्रावरुणा) दिन रात अर्थात् समय, और प्राण अपान अर्थात् इन्द्रियों के यथावत् प्रयोग से ज्ञानी, शुद्ध चित्त, और सूक्ष्मदर्शी होकर सदा आनन्द भोगते हैं ॥ ३ ॥

यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम् ।
यौ विन्मदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ४ ॥

यौ । श्यावऽअश्वम् । अवथः । वध्रिऽअश्वम् । मित्रावरुणा । पुरुऽमीढम् । अत्रिम् । यौ । विऽमदम् । अवथः । सप्तऽवध्रिम् । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(यौ) जो (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण तुम दोनों (श्यावाश्वम्) ज्ञान में व्याप्ति रखने वाले को, (वध्र्यश्वम्) मित भोजन करने वाले

दरादित्वाद् दीर्घाभावः। अगं कुटिलगतिं पापम् अस्यति उत्पाटयतीति अगस्तिः। तथाभूतं पापनाशकं महर्षिम्। **मित्रावरुणा।** म० १। हे अहोरात्रौ प्राणापानौ वा। **जमदग्निम्।** अ० २। ३२। ३। जमन्तः प्रज्वलन्तोऽग्नयो यज्ञे शिल्पसिद्धौ वा यस्य तं महर्षिम्। **अत्रिम्।** अ० २। ३२। ३। दोषभक्षकं निरन्तरगतिशीलं वा मुनिम्। यद्वा अत्रिर्न त्रयः—निरु० ३। १७। इति कायिकवाचिकमानसिकत्रिदोषरहितं पुरुषम्। **कश्यपम्।** अ० २। ३३। ७ सोमरसपानशीलम्। यद्वा पश्यकं सूक्ष्मदर्शिनम्। **वसिष्ठम्।** वसुमत्-इष्ठन्। **विन्मतोर्लुक्** (पा० । ५। ३ ६५) इति मतुपो लुक्। वसुमत्तमम्। अतिशयेन धनवन्तम्। यद्वा वसु-इष्ठन्। सर्वश्रेष्ठम्। अन्यत् पूर्ववत् ॥

४—**यौ।** युवां मित्रावरुणौ। **श्यावाश्वम्। कृगृशदृभ्यो वः** (उ० १। १५५) इति श्यैङ् गतौ—वः=श्यावः। **अशूप्रुषिलटि०** (उ० १। १५१) इति

---

१. चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिः। यदेनेन जगत्पश्यति, अथो मनुते—तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषिः (श० ब्रा० ८। १। २। ३) ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को, (पुरुमीढम्) बड़े धनी को और (अत्रिम्) नित्य उद्योगी को (अवथः) बचाते हो। (यौ) जो तुम दोनों (विमदम्) मदरहित वा अदीन पुरुष को और (सप्तवध्रिम्) [पाँच ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि इन] सात को संयम में रखने वाले पुरुष को (अवथः) बचाते हो। (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुंचतम्) छुड़ावो ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य समय और प्राण के संयम से ज्ञानपूर्वक शुद्ध आहार विहार करके निरभिमानी और अदीन अर्थात् उत्साही, स्वस्थ और धनी होकर सदा आनन्दित रहते हैं ॥ ४ ॥

यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम्।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ५ ॥

यौ। भरत्ऽवाजम्। अवथः। यौ। गविष्ठिरम्। विश्वामित्रम्। वरुण। मित्र। कुत्सम्। यौ। कक्षीवन्तम्। अवथः। प्र। उत। कण्वम्। तौ। नः। मुञ्चतम्। अंहसः ॥ ५ ॥

भावार्थः—(यौ) जो (मित्र वरुण) मित्र और वरुण तुम दोनों

अशूङ् व्याप्तौ, अश भोजने वा–क्वन् इति अश्वः। श्यावे ज्ञाने अश्वो व्याप्तिर्यस्य तं ज्ञानव्याप्तिकम्। **अवथः**। रक्षथः। **वध्यश्वम्**। **अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन्** (उ० ४। ६५) इति बध बन्धने भ्वा०, वा बध संयमने चुरा०—क्रिन्। बध्रौ संयमने अश्वोऽशनं भोजनं यस्य तं मितभोजिनम्। **मित्रावरुणा**। म० १। अहोरात्रौ। प्राणापानौ। **पुरुमीढम्**। मिह सेचने—क्तः। मीढं धननाम–निघ० २। १०। बहुधनयुक्तम्। **अत्रिम्**। म० ३। निरन्तरगतिशीलम्। **विमदम्**। मदी हर्षग्लेपनयोः—अच्। ग्लेपनं दैन्यम्। विगतो मदोऽहङ्कारो दैन्यं वा यस्य तम्। निरहङ्कारम्। अदीनम्। **सप्तवध्रिम्**। बध संयमने–क्रिन्, पूर्ववत्। पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि मनो बुद्धिश्च सप्त बध्रौ संयमने यस्य तम्। अतिजितेन्द्रियम्। अन्यत् पूर्ववत् ॥

५—यौ। मित्रावरुणौ युवाम्। **भरद्वाजम्**[1]। अ० २। १२। २। अन्नस्य बलस्य विज्ञानस्य वा भर्तारं धारकं पुरुषम्। **अवथः**। रक्षथः। **गविष्ठिरम्**। **तत्पुरुषे कृति बहुलम्** (पा० ६। ३। १४) इत्यलुक्। **गवियुधिभ्यां स्थिरः** (पा० ८। ३। ९५) इति षत्वम्। गवि वाचि वेदात्मिकायां स्थिरं दृढम्। **विश्वामि-**

---

१. मनो वै भरद्वाज ऋषिरन्नं वाजो यो वै मनो बिभर्त्ति सोऽन्नं वाजं भरति, तस्मात् मनो भरद्वाज ऋषिः (श० ब्रा० ८। १। १। ९) ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(भरद्वाजम्) अन्न वा बल, वा ज्ञान के धारण करने वाले को, (यौ) जो तुम (गविष्ठिरम्) वेद वाणी में स्थिर को, (विश्वामित्रम्) सबके मित्र को, वा सब हैं मित्र जिसके उसको, और (कुत्सम्) संगतिशील वा दोषों के कतरने वाले को (अवथः) बचाते हो, (यौ) जो तुम दोनों (कक्षीवन्तम्) उद्योगी वा शासन शील (उत) और (कण्वम्) स्तुति करने वाले मेधावी पुरुष को (प्र) अच्छे प्रकार (अवथः) बचाते हो। (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ ५ ॥

भावार्थः—पुरुषार्थी, वेदों की आज्ञा पालन करने वाले सर्वहितकारक आदि पुरुषों के लिये समय और आत्मबल सदा अनुकूल रहते हैं ॥ ५ ॥

त्रम् । मित्रे चर्षौ (पा० ६ । ३ । १३०) इति दीर्घः । विश्वामित्रः सर्वमित्रः, सर्वं संसृतम्–निरु० २ । २४ । सर्वस्यैव मित्रं सर्वमेव वा तस्य मित्रम् । तं सर्वहितम् । **वरुण, मित्र** । हे मित्रावरुणौ । **कुत्सम् । स्नुव्रश्चिकृत्यृषिभ्यः कित्** (उ० ३ । ६६) इति-कुस संश्लेषणे–सः । **सः स्यार्धधातुके** (पा० ७ । ४ । ४९) इति सस्य तः । सङ्घिः संगतिशीलम् । यद्वा कृती छेदने सप्रत्ययः । ऋकारस्य उत्वम् । दोषाणां कर्त्तकं छेत्तारम् । यद्वा कुत्स अवक्षेपणे चुरा०—घञ् । कुत्सयति दोषान् यः तम् । कुत्सो वज्रः-निघ० २ । २० । कुत्स इत्येतत्कृन्ततेः । ऋषिः कुत्सो भवति कर्ता[1] स्तोमानामित्यौपमन्यवः । अत्राप्यस्य वधकर्मैव भवति तत्सख इन्द्रःशुष्णं जघानेति–निरु० ३ । ११ । **कक्षीवन्तम् । अशेर्नित्** (उ० ३ । १५६) इति कश गतिशासनयोः–क्सिः । ततो मतुप् । मस्य वः । **अन्येषामपि दृश्यते** (पा० ६ । ३ । १३७) इति दीर्घः । कक्षिर्गतिः शासनं वा विद्यते यस्मिन् स कक्षिवान् तं गतिशीलं शासनशीलं वा कक्षीवान् । कक्षीवान् कक्ष्यावान् ..अपि त्वयं मनुष्यकक्ष एवाभिप्रेतः स्यात्—निरु० ६ । १० । **प्र** । प्रकर्षेण । **उत** । अपि च । **कण्वम्** । अ० २ । २५ । ३ । **अशूप्रुषिलटिकणि०** (उ० १ । १५१) इति कण शब्दे निमीलने वा—क्वन् । कणति स्तौति यद्वा निमीलयति दोषान् स्वज्ञानेन, तम् मेधाविनम्–निघ० ३ । १५ । अन्यत्पूर्ववत् ॥

---

१. यहाँ कर्त्ता शब्द देखकर कतिपय लोग वेद ऋषिकृत हैं, ऐसा विचार करते हैं जो अनुचित है, क्योंकि धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं ऐसा हम लिख चुके हैं तदनुसार यहाँ डुकृञ् धातु दर्शनार्थक है। तद्यथा तै० आ० में भट्टभास्कर लिखते हैं—'अथ नम ऋषिभ्यो द्रष्टृभ्यः, मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्राणां द्रष्टृभ्यः, दर्शनमेव कर्त्तृत्वम्' (तै० आ० / भट्ट० भा० ४ । १ । १) किञ्च सायणाचार्य ने भी इसी स्थल पर लिखा है–'ऋषिरतीन्द्रियार्थद्रष्टा **मन्त्रकृत्**, करोतिधातुस्तत्र दर्शनार्थः' (तै० आ० / सा० भा० ४ । १ । १) ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ ।
यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६ ॥

यौ । मेधऽअतिथिम् । अवथः । यौ । त्रिऽशोकम् । मित्रावरुणौ । उशनाम् । काव्यम् । यौ । यौ । गोतमम् । अवथः । प्र । उत । मुद्गलम् । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यौ) जो (मित्रावरुणौ) दिन रात वा प्राण और अपान तुम दोनों ! (मेधातिथिम्) धारणावती बुद्धि के नित्य प्राप्त करने वाले को और (यौ) जो तुम दोनों (त्रिशोकम्) कायिक, वाचिक, और मानसिक तीन दोषों पर शोक करने वाले को, और (यौ) जो तुम दोनों (उशनाम्) कामना योग्य नीति को और (काव्यम्) बुद्धिमानों के कर्म को (अवथः) बचाते हो। (यौ) जो तुम दोनों (गोतमम्) अतिशय स्तुति करने वाले वा विद्या की कामना करने वाले को (उत) और (मुद्गलम्) मोद अर्थात् हर्ष देने वाले को (प्र) अच्छे प्रकार (अवथः) बचाते हो, (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ ६ ॥

६—**यौ** । युवाम् । **मेधातिथिम् । षिद्भिदादिभ्योऽङ्** (पा० ३ । ३ । १०४) इति मेधृ मेधाहिंसासङ्गमेषु—अङ् । टाप् । धीर्धारणावती मेधा—इत्यमरः । १।५।२ । **ऋतन्यञ्जिवन्यञ्ज्यर्षिमद्यत्यञ्जि०** (उ०४।२) इति अत सातत्यगमने—इथिन् । अततीति अतिथिः । मेधां धारणावतीं बुद्धिम् अतति निरन्तरं प्राप्नोति यः, तम् । **अवथः** । **त्रिशोकम्** । त्रिषु कायिकवाचिकमानसिकदोषेषु शोकः खेदो यस्य तम् । **मित्रावरुणौ** । अहोरात्रौ प्राणापानौ वा । **उशनाम् । रञ्जेः क्युन्** (उ० २ । ७९) इति वश कान्तौ—क्युन् टाप् । सम्प्रसारणं च । कमनीयां नीतिम् । **काव्यम् । गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** (पा० ५।१।१२४) इति कवि—ष्यञ् । कवीनां मेधाविनां कर्म । **गोतमम्** । गो-तमप् । गौः स्तोता—निघ०३। १६ । अतिशयेन स्तोतारम् । यद्वा, गौः, वाङ्नाम निघ० १ । ११ । तमु काङ्क्षायाम्, पचाद्यच् । गां वाचं विद्यां ताम्यति काङ्क्षति यस्तं विद्याकामम् । **प्र उत । मुद्गलम् । मुदिग्रोर्गग्गौ** (उ० १ । १२८) इति मुद हर्षे—गक् । ला दानादनयोः कः । मुद्गलो मुद्गवान् मुद्गिलो वा मदनङ्गिलतीति वा मदङ्गिलो वा मुदङ्गिलो वा । निरु० ९ । २४ । मोदस्य हर्षस्य दातारम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य तपश्चर्या करके अपने समय और शारीरिक मानसिक शक्तियों का यथावत् उपयोग करते हैं वे उत्तम नीति और कर्म प्राप्त करके आनन्दित होते हैं ॥ ६ ॥

ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन् । स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ७ ॥

ययोः । रथः । सत्यऽवर्त्मा । ऋजुऽरश्मिः । मिथुया । चरन्तम् । अभिऽयाति । दूषयन् । स्तौमि । मित्रावरुणौ । नाथितः । जोहवीमि । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(ययोः) जिन दोनों का (सत्यवर्त्मा) सत्यमार्ग वाला, (ऋजुरश्मिः) सरल व्याप्ति वा डोरी वाला (रथः) रथ (मिथुया) हिंसा के साथ (चरन्तम्) चलते हुये पुरुष को (दूषयन्) सताता हुआ (अभियाति) चढ़ाई करता है । (नाथितः) मैं अधीन होकर (मित्रावरुणौ) दिन रात वा प्राण अपान को (स्तौमि) सराहता हूं । और (जोहवीमि) बारंबार पुकारता हूं, (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावो ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य समय और आत्मिक शक्तियों का कुप्रयोग करते हैं, वे ही कर्म उन दुराचारियों का नाश कर देते हैं, इसलिये मनुष्य अपने काल और सामर्थ्य को उत्तम कामों में लगाकर प्रसन्न रहें ॥ ७ ॥

७—**ययोः** । मित्रावरुणयोः । **रथः** । अ० ४।१२।६ । वेगवान् । स्यन्दनः । **सत्यवर्त्मा** । अवितथमार्गयुक्तः । **ऋजुरश्मिः** । **अर्जिदृशिक्रम्यमि०** । (उ०१।२७) इति अर्ज अर्जने—कुः, ऋजि आदेशश्च इति ऋजुः । **अश्नोतेरशच्** (उ०४।४६) इति अशूङ् व्याप्तौ-मिः । धातोः रश् इत्यादेशः । ऋजवः सरला अनुकूला रश्मयो व्याप्तयः प्रग्रहा वा यस्य सः । **मिथुया** । मिथ मेधाहिंसनयोः—कुः । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७।१।३९) इति विभक्तेर्याच् । मिथुना हिंसनेन । **चरन्तम्** । गच्छन्तम् । **अभियाति** । अभिमुखं गच्छति । **दूषयन्** । दुष वैकृत्ये ण्यन्तात्—शतृः । **दोषो णौ** (पा० ६ । ४ । ९०) इति ऊत्वम् । **स्तौमि** । प्रशंसामि । **मित्रावरुणौ** । अहोरात्रौ प्राणापानौ वा । **नाथितः** । नाथवान् । अधीनः । **जोहवीमि** । पुनः पुनराह्वयामि । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ३० ॥

१-८ ॥ राष्ट्रो देवता । १-५, ७, ८ त्रिष्टुप् , ६ जगती ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥ १ ॥

अहम् । रुद्रेभिः । वसुऽभिः । चरामि । अहम् । आदित्यैः । उत । विश्वऽदेवैः । अहम् । मित्रावरुणा । उभा । बिभर्मि । अहम् । इन्द्राग्नी इति । अहम् । अश्विना । उभा ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं [परमेश्वर] (रुद्रेभिः) ज्ञान दाताओं वा दुःख नाशकों (वसुभिः) निवास कराने वाले पुरुषों के साथ (उत) और (अहम्) मैं ही (विश्वदेवैः) सब दिव्य गुण वाले (आदित्यैः) प्रकाशमान, अथवा अदीन प्रकृति से उत्पन्न हुये सूर्य आदि लोकों के साथ (चरामि) चलता हूँ । (अहम्) मैं (उभा) दोनों (मित्रावरुणा) दिन और रात को, (अहम्) मैं (इन्द्राग्नी) पवन और अग्नि को, (अहम्) मैं ही (उभा) दोनों (अश्विना) सूर्य और पृथिवी को (बिभर्मि) धारण करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थः—परमेश्वर सर्वशक्तिमान् सर्वोत्पादक और सर्वपोषक है, उसकी उपासना से सब मनुष्य नित्य उन्नति करें ॥ १ ॥

१—अहम् । परमेश्वरः । **रुद्रेभिः ।** अ० २ । २७ । ६ । रुद्+र । रुद्रैः । ज्ञानदातृभिः । दुःखनाशकैः । **वसुभिः ।** अ० २ । १२ । ४ । वासयितृभिः । धनैः । **चरामि ।** गच्छामि । **आदित्यैः ।** अ० १ । ९ । १ । प्रकाशमानैः । अदितेरदीनायाः, देवमातुः प्रकृतेः सकाशादुत्पन्नैः सूर्यादिलोकैः । **उत ।** अपि च । **विश्वदेवैः ।** सर्वदिव्यगुणयुक्तैः । **मित्रावरुणा ।** अहोरात्रौ । **उभा ।** उभौ । **बिभर्मि ।** धारयामि । **इन्द्राग्नी ।** अ० १ । ३५ । ४ । वाय्वग्नी । **अश्विना ।** अ० २ । २९ । ६ । द्यावापृथिव्यौ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १२५ में है। वहाँ सूक्त की वागाम्भृणी ऋषि और वागाम्भृणी ही देवता है ॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः ॥२॥

अहम् । राष्ट्री । सम्ऽगमनी । वसूनाम् । चिकितुषी । प्रथमा । यज्ञियानाम् । ताम् । मा । देवाः । वि । अदधुः । पुरुऽत्रा । भूरिऽस्थात्राम् । भूरि । आऽवेशयन्तः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (वसूनाम्) धनों की (संगमनी) पहुँचाने वाली और (यज्ञियानाम्) संगति योग्य पूजनीय विषयों की (चिकितुषी) जानने वाली (प्रथमा) पहिली (राष्ट्री) नियम करने वाली शक्ति हूँ। (देवाः) विद्वानों ने (पुरुत्रा) बहुत प्रकारों से (भूरिस्थात्राम्) अनेक पदार्थों में ठहरी हुई (ताम् मा) उस मुझको (भूरि) अनेक विध से (आवेशयन्तः) [अपने आत्मा में] प्रवेश कराके (व्यदधुः) विविध प्रकार धारण किया है ॥ २ ॥

भावार्थः—अनादि, अनन्त, सर्वज्ञ, सर्वपोषक, सर्वनियन्ता परमेश्वर सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों में विद्यमान है। विद्वान् लोग ही उसकी अपार महिमा का अनुभव करते हैं ॥ २ ॥

२—**अहम्** । परमेश्वरः । **राष्ट्री** । अ० ४ । १ । २ । राज्ञी । नियन्त्री शक्तिः । **संगमनी** । सम् + गम्लृ-ल्युट् । ङीप् । संगमयित्री प्रापयित्री । **चिकितुषी** । कित ज्ञाने-क्वसुः । **उगितश्च** (पा० ४ । १ । ६) इति ङीप् । ज्ञातवती । प्राप्तज्ञाना । **प्रथमा** । प्रख्याता मुख्या । **यज्ञियानाम्** । अ० २ । १२ । २ । यज्ञार्हाणां संगमनीयानां देवानाम् । **ताम्** । तथाविधाम् । **मा** । माम् । परमेश्वरम् । **देवाः** । विद्वांसः । **व्यदधुः** । धात्रो लङि रूपम् । विविधं स्थापितवन्तः । **पुरुत्रा** । **देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो०** (पा० ५ । ४ । ५६) इति सप्तम्यर्थे-त्रा । बहुषु प्रकारेषु । **भूरिस्थात्राम्** । **अदिशदिभू०** (उ० ४ । ६५) इति भू-क्रिन् । भूरि बहुनाम-निघ० ३।१ । **दादिभ्यश्छन्दसि** (उ० ४ । १७०) इति ष्ठा-त्रन् । बहुपदार्थेषु कृतावस्थानाम् । **भूरि** । अनेकधा । **आवेशयन्तः** । विश, णिच्-शतृः । प्रवेशयन्तः स्वात्मानं प्रति ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम् । यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥३॥

अहम् । एव । स्वयम् । इदम् । वदामि । जुष्टम् । देवानाम् । उत । मानुषाणाम् । यम् । कामये । तम्ऽतम् । उग्रम् । कृणोमि । तम् । ब्रह्माणम् । तम् । ऋषिम् । तम् । सुऽमेधाम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—(अहम्) मैं (एव) ही (स्वयम्) आप (देवानाम्) सूर्य आदि लोकों (उत) और (मानुषाणाम्) मननशील मनुष्यों का (जुष्टम्) प्रिय (इदम्) यह वचन (वदामि) कहता हूं । [अर्थात्] (यम्) जिस जिस-को (कामये) मैं चाहता हूं (तम्-तम्) उस उसको ही [कर्मानुसार] (उग्रम्) तेजस्वी, (तम्) उसको ही (ब्रह्माणम्) वृद्धिशील ब्रह्मा, (तम्) उसी को (ऋषिम्) सन्मार्गदर्शक ऋषि, (तम्) उसी को (सुमेधाम्=०-धम्) उत्तम बुद्धि वाला (कृणोमि) बनाता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थः—परमात्मा सब लोकों और प्राणियों को शरण में रखकर उपदेश करता है कि मैं अपने आज्ञाकारियों को प्रीति पूर्वक उत्तम गति देता हूं ॥ ३ ॥

३—**अहम्** । परमेश्वरः । **एव** । अवधारणे । नान्योऽस्ति ममोपदेष्टेति यावत् । **स्वयम्** । आत्मना । **इदम्** । अनुभूयमानं ब्रह्मात्मकं वाक्यम् । **वदामि** । उपदिशामि । प्रकटयामि । **जुष्टम्** । प्रियं हितम् । सेवितम् । **देवानाम्** । सूर्यादिलोकानाम् । **उत** । अपि च । **मानुषाणाम्** । मननशीलानां मनुष्याणाम् । **यम्** । उपासकम् । **कामये** । वाञ्छामि । **तम्-तम्** । प्रत्येकं वीप्सितं पुरुषम् । **उग्रम्** । दुष्प्रधर्षं तेजस्विनम् । **कृणोमि** । करोमि । **ब्रह्माणम्** । **बृंहेर्नोच्च** (उ० ४ । १४६) इति बृहि वृद्धौ-मनिन् । नस्य अकारः । बृंहति वर्धते वृंहयति वर्धयति । वेदज्ञानेन स ब्रह्मा । विधातारं ब्रह्माणम् । **ऋषिम्** । अ० २ । ६ । १ । ऋषिर्दर्शनात्-निरु० २ । ११ । आप्तं सन्मार्गदर्शकम् । **सुमेधाम्** । दीर्घश्छान्दसः । सुमेधम् । सुमेधसम् । शोभनप्रज्ञम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥४॥

मया । सः । **अन्नम्** । **अत्ति** । यः । **विपश्यति** । यः । **प्राणति** । यः । **ईम्** । **शृणोति** । **उक्तम्** । **अमन्तवः** । **माम्** । **ते** । **उप** । **क्षियन्ति** । **श्रुधि** । **श्रुत** । **श्रद्धेयम्** । **ते** । **वदामि** ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(मया) मेरे द्वारा ही (सः) वह (अन्नम्) अन्न (अत्ति) खाता है (यः) जो कोई (विपश्यति) विशेष करके देखता है, (यः) जो (प्राणति) श्वास लेता है और (यः) जो (ईम्) यह (उक्तम्) वचन (शृणोति) सुनता है। (माम्) मुझे (अमन्तवः) न जानने वाले (ते) वे पुरुष (उप) हीन होकर (क्षियन्ति) नष्ट हो जाते हैं। (श्रुत) हे सुनने में समर्थ जीव ! (श्रुधि) तू सुन, (ते) तुझसे (श्रद्धेयम्) आदर योग्य सत्य (वदामि) बताता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थः—विवेकी पुरुष परमात्मा को जानकर आनन्द, और अज्ञानी नास्तिक उससे विमुख होकर दुःख भोगते हैं, यह परमेश्वर का उपदेश है ॥ ४ ॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश ॥ ५ ॥

४—मया । मम द्वारा । **सः** । पुरुषार्थी । **अन्नम्** । अदनीयम् । जीवनसाधनं वा । **अत्ति** । भक्षयति । **यः** । **वि पश्यति** । विशेषेणावलोकयति । **प्राणति** । शपःप्रयोगश्छान्दसः इड भावश्च । प्राणिति प्रश्वसिति । **ईम्** । इदम् । **शृणोति** । श्रोत्रेण गृह्णाति । **उक्तम्** । वचनम् । **अमन्तवः** । **कमिमनिजनि०** (उ० १ । ७३) इति नञ् + मनु अवबोधने–तुः । अजानन्तः । **माम्** । परमेश्वरम् । **ते** । प्रसिद्धाः मूर्खाः । **उप** । हीने । **क्षियन्ति** । क्षि क्षये । नश्यन्ति । **श्रुधि** । शृणु । **श्रुत** । श्रुतं श्रवणं । यस्यास्तीति श्रुतः । श्रुत–अर्शआद्यच् । हे श्रवणसमर्थ ! **श्रद्धेयम्** । श्रत्, सत्यम्–निघ० ३ । १० । **अचो यत्** (पा० ३ । १ । ९७) इति श्रत् + धाञो यत् । **ईद्यति** (पा० ६।४।६५) इति ईकारः । श्रद्धातव्यम् । आदरणीयं सत्यम् । **ते** । तुभ्यम् । **वदामि** । उपदिशामि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहम् । रुद्राय । धनुः । आ । तनोमि । ब्रह्मद्विषे । शरवे । हन्तवै । ऊँ इति । अहम् । जनाय । समदम् । कृणोमि । अहम् । द्यावापृथिवी इति । आ । विवेश ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (रुद्राय) दुःखनाशक शूर के लिये (ब्रह्मद्विषे) ब्राह्मणों के द्वेषी (शरवे) हिंसक के (हन्तवै) मारने को (उ) ही (धनुः) धनुष (आ तनोमि) सब ओर से तानता हूँ। (अहम्) मैं (जनाय) भक्त जन के लिये (समदम्) आनन्दयुक्त [जगत्] (कृणोमि) करता हूँ। (अहम्) मैंने (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक में (आ) सब ओर से (विवेश) प्रवेश किया है ॥ ५ ॥

भावार्थः—सर्वव्यापक परमेश्वर शिष्टों की रक्षा के लिये दुष्टों का नाश करता है और अपने भक्तों को सब स्थानों में आनन्द देता है ॥ ५ ॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या ३ यजमानाय सुन्वते ॥ ६ ॥

अहम् । सोमम् । आहनसम् । बिभर्मि । अहम् । त्वष्टारम् । उत । पूषणम् । भगम् । अहम् । दधामि । द्रविणा । हविष्मते । सुप्रऽअव्या । यजमानाय । सुन्वते ॥ ६ ॥

५—**अहम्** । परमेश्वरः । **रुद्राय** । म० १ । ज्ञानदात्रे । दुःखनाशकाय । तस्य हितायेत्यर्थः । **धनुः** । अ० ४ । ६ । ६ । चापम् । **आ तनोमि** । विस्तारयामि । आततज्यं करोमि । **ब्रह्मद्विषे** । द्विष अप्रीतौ-क्विप् । ब्राह्मणानां द्वेष्ट्रे । **शरवे** । **शॄस्वृस्निहि०** (उ० १ । १०) इति शॄ हिंसायाम्—उः । कर्मणि चतुर्थी । हिंसकम् । दुष्टम् । **हन्तवै** । **तुमर्थे सेसेनसे०** (पा० ३।४।९) इति हन हिंसागत्योः—तवै । हन्तुं हिंसितुम् । **उ** । अवधारणे । **जनाय** । भक्तजनार्थम् । **समदम्** । **मदोऽनुपसर्गे** (पा० ३ । ३ । ६७) इति मदी हर्षे-अप् । मदेन हर्षेण सहितम् । **कृणोमि** । करोमि । **द्यावापृथिवी** । सूर्यभूलोकौ । **आविवेश** । प्रविष्टवान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अहम्) मैं (आहनसम्) प्राप्तयोग्य (सोमम्) ऐश्वर्य को (अहम्) मैं (त्वष्टारम्) रसों के छिन्न भिन्न करने हारे सूर्य को (उत) और (पूषणम्) पोषण करने हारी पृथिवी को और (भगम्) सेवनीय चन्द्रमा को (बिभर्मि) धारण करता हूँ। (अहम्) मैं (हविष्मते) भक्ति रखने वाले, (सुन्वते) विद्या रस का निचोड़ करने हारे (यजमानाय) देवताओं की पूजा वा संगति करने हारे पुरुष को (सु प्राव्या=०—णि) सुन्दर सुन्दर रक्षा योग्य (द्रविणा) अनेक धन (दधामि) देता हूँ ॥ ६ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने अनेक प्रकार के ऐश्वर्य और सूर्य आदि बड़े उपकारी पदार्थ रचे हैं। विद्वान् लोग विज्ञान द्वारा उनसे लाभ प्राप्त करके आनन्द भोगते हैं ॥ ६ ॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे। ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥ ७ ॥

अहम् । सुवे । पितरम् । अस्य । मूर्धन् । मम । योनिः । अप्ऽसु । अन्तः । समुद्रे । ततः । वि । तिष्ठे । भुवनानि । विश्वा । उत । अमूम् । द्याम् । वर्ष्मणा । उप । स्पृशामि ॥ ७ ॥

६—**अहम्** । परमेश्वरः । **सोमम्** । अ० १ । ६ । २ । ऐश्वर्यम् । **आहनसम्** । आङ्+हन हिंसागत्योः—असुन् । सम्यक् प्रापणीयम् । **बिभर्मि** । धारयामि । **त्वष्टारम्** । अ० २ । ५ । ६ । रसानां तनूकर्तारं सूर्यम् । **उत** । अपि च । **पूषणम्** । अ० १ । ९ । १ । पूषा पृथिवी नाम । निघ० १ । १ । पोषयित्रीं पृथिवीम् । **भगम्** । अ० १ । १४ । १ । भगो भजतेः—निरु० १ । ७ । सेवनीयं चन्द्रम् । **दधामि** । ददामि प्रयच्छामि । **द्रविणा** । द्रविणानि । धनानि । **हविष्मते** । हविः—अ० १ । ४ । ३ । दानयुक्ताय । भक्तिविशिष्टाय । **सुप्राव्या** । **ऋहलोर्ण्यत्** (पा० ३ । १ । १२४) इति सु+प्र+अव रक्षणे—ण्यत् । 'संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः'—इति वृद्धेरभावः । सुष्ठु प्रकर्षेण अवनीयानि । रक्षणीयानि । **यजमानाय** । देवपूजकाय । **सुन्वते** । षुञ् अभिषवे—शतृः । विद्यारसस्याभिषवं मथनं कुर्वते ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अहम्) मैं (अस्य) इस जगत् के (मूर्धन्) नियम के निमित्त (पितरम्) पालन करने वाले गुण को (सुवे) उत्पन्न करता हूं। (मम) मेरा (योनिः) घर (समुद्रे) अन्तरिक्ष में वर्तमान (अप्सु अन्तः) व्यापनशील रचनाओं के भीतर है, (ततः) इसी से (विश्वा) सब (भुवनानि) प्राणियों में (वितिष्ठे) व्यापक होकर वर्तमान हूँ (उत) और (अमूम् द्याम्) उस प्रकाशमान सूर्य को (वर्ष्मणा) अपने ऐश्वर्य से (उप स्पृशामि) छूता रहता हूं ॥ ७ ॥

भावार्थः—परमेश्वर सबमें व्यापक रहकर सबका पालन कर्त्ता, और नियन्ता तथा उपास्य है ॥ ७ ॥

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव ॥ ८ ॥

अहम् । एव । वातःऽइव । प्र । वामि । आऽरभमाणा । भुवनानि । विश्वा । परः । दिवा । परः । एना । पृथिव्या । एतावती । महिम्ना । सम् । बभूव ॥ ८ ॥

७—**अहम्** । परमेश्वरः । **सुवे** । षूङ् प्राणिगर्भविमोचने । जनयामि । **पितरम्** । पालकं गुणम् । **अस्य** । दृश्यमानस्य । जगतः । **मूर्धन्** । अ० ३ । ६ । ६ । मुर्वी बन्धने—कनिन् । मूर्धनि । बन्धने । नियमे, निमित्ते । **मम** । **योनिः** । गृहम्—निघ० ३ । ४ । **अप्सु** । व्यापनशीलासु प्रकृतिरचनासु । **अन्तः** । मध्ये । **समुद्रे** । अ० १ । ३ । ८ । समुद्रवन्त्यस्माद् भूतानि । अन्तरिक्षे—निघ० १ । ३ । **ततः** । तस्मात्कारणात् । **वितिष्ठे** । **समवप्रविभ्यः स्थः** (पा० १ । ३ । २२) इति आत्मनेपदम् । विविधं व्याप्य तिष्ठामि । **भुवनानि** । भूतजातानि । **विश्वा** । विश्वानि सर्वाणि । **अमूम्** । विप्रकृष्टाम् । **द्याम्** । प्रकाशमानं सूर्यम् । **वर्ष्मणा** । अ० ३ । ४ । २ । वृषु प्रजननैश्वर्ययोः—मनिन् । ऐश्वर्येण । **उपस्पृशामि** । व्याप्नोमि इत्यर्थः ॥

८—**अहम्** । परमेश्वरः । **एव** । निश्चयेन । **वातः** । पवनः । **इव** । यथा । **प्रवामि** । प्रवर्ते । **आरभमाणा** । आङ् पूर्वको लभ स्पर्शे—शानच् । लस्य रः ।

---

१. यथा जैमिनि० न्या० में भी यह स्थल द्रष्टव्य है 'वत्सालम्भो यजिः स्पर्शो वा वायव्यादिवद्यजिः । स्पर्शः स्याद्देवराहित्यात्संस्कारः प्रायपाठतः' (जैमिनि० न्या० अ० २ पा० ३ अधि० ६) यहाँ स्पर्श अर्थ दिखाया है । इस प्रकार याज्ञिक प्रसङ्गों में आलम्भन का जो वध अर्थ करते हैं वह न्यायसङ्गत नहीं है । स्पर्श अर्थ करना युक्त है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अहम् एव) मैं ही (विश्वा) सब (भुवनानि) प्राणियों को (आरभमाणा = आलभमाना) छूती हुई शक्ति (वातः इव) पवन के समान (प्रवामि) चलती रहती हूँ। (दिवा) सूर्य लोक से (परः) परे और (एना पृथिव्या) इस पृथिवी से (परः) परे [वर्तमान होकर] (एतावती) इतनी बड़ी शक्ति (महिम्ना) अपनी महिमा से (संबभूव) हो गई हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थः—जैसे वायु सब सांसारिक पदार्थों का अवलम्बन कर्ता है उसी प्रकार परमात्मा वायु का भी आश्रय दाता है और वह इन्द्रियों के विषय, सूर्य पृथिवी आदि पदार्थों से अलग है। उसकी महिमा को जान कर सब मनुष्य पुरुषार्थी होकर आनन्दित रहें ॥ ८ ॥

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ३१ ॥

१-७ ॥ मन्युर्देवता ॥ १-३ त्रिष्टुप्, ४-७ जगती ॥

संग्रामे जयप्राप्त्युपदेशः—संग्राम में जय पाने का उपदेश ॥

त्वया॑ मन्यो स॒रथ॑मारु॒जन्तो॒ हर्ष॑माणा हृषि॒तासो॑ मरुत्वन् ।
तिग्मेष॑व॒ आयु॑धा सं॒शिशा॑ना॒ उप॒ प्र य॑न्तु॒ नरो॑ अ॒ग्निरू॑पाः ॥१॥

त्वया॑ । म॒न्यो॒ इति॑ । स॒ऽरथ॑म् । आ॒ऽरु॒जन्तः॑ । हर्ष॑माणाः । हृ॒षि॒तासः॑ । म॒रु॒त्व॒न् । ति॒ग्मऽइ॑षवः । आयु॑धा । स॒म्ऽशिशा॑नाः । उप॑ । प्र । य॒न्तु॒ । नरः॑ । अ॒ग्निऽरू॑पाः ॥१॥

आलभमाना । स्पृशन्ती । आलम्बमाना शक्तिः । **भुवनानि** । भूतजातानि लोकान् वा । **विश्वा** । सर्वाणि । **परः** । परस्तात् । दूरे । **दिवा** । सूर्येण । **एना** । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) इति आच् । एनया । अनया । **पृथिव्या** । भूम्या । **एतावती** । **यत्तदेतेभ्यः परिमाणे०** (पा० ५ । २ । ३९) इति एतद्-वतुप् । **आ सर्वनाम्नः** (पा० ६ । ३ । ९१) इति आत्वम् । एतत्परिमाणा महती । **महिम्ना** । माहात्म्येन । **सं बभूव** । समर्थो बभूव ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(मरुत्वन्) हे शूरवीरता वाले (मन्यो) क्रोध ! (त्वया) तेरे साथ (सरथम्) एक रथ पर चढ़ कर [शत्रुओं को] (आरुजन्तः) तोड़ते फोड़ते हुये, (हर्षमाणाः) हर्ष मानते हुये, (हृषितासः) संतुष्ट मन, (तिग्मेषवः) तीक्ष्ण बाणों वाले, (आयुधा) शस्त्रों को (संशिशानाः) तीक्ष्ण करते हुये, (अग्निरूपाः) अग्निरूप [अग्नि तुल्य प्रचण्ड कर्मों वाले, अथवा सन्नद्ध कवच पहिने हुये] (नरः) हमारे नर [मुखिया लोग] (उप प्र यन्तु) व्यापकर चढ़ाई करें ॥ १ ॥

भावार्थः—जो शूरवीर दुष्टों पर क्रोध करके चढ़ाई करते हैं, वे विजयी होते हैं ॥ १ ॥

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि । हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥ २ ॥

अग्निःऽइव । मन्यो इति । त्विषितः । सहस्व । सेनाऽनीः । नः । सहुरे । हूतः । एधि । हत्वाय । शत्रून् । वि । भजस्व । वेदः । ओजः । मिमानः । वि । मृधः । नुदस्व ॥ २ ॥

१—**त्वया** । मन्युना । **मन्यो** । **यजिमनिशुन्धि०** (उ० ३।२०) इति मन ज्ञाने स्तम्भे च—युच्, अनादेशाभावः[1] । मन्युर्मन्यतेर्दीप्तिकर्मणः क्रोधकर्मणो वधकर्मणो वा मन्यन्त्यस्मादिषवः—निरु० १०। २९। हे क्रोध—निघ० २। १३। **सरथम्** । समानं रथमारुह्य । सरथमारुह्य—निरु० १०। ३०। **आरुजन्तः** । आभञ्जन्तः पीडयन्तः शत्रून् । **हर्षमाणाः** । हृष तुष्टौ—शानच् । हर्षं कुर्वाणाः । **हृषितासः** । संतुष्टाः सन्तः । **मरुत्वन्** । अ० १। २०। १। मरुद्भिः शूरैर्युक्त । **तिग्मेषवः** । तीक्ष्णशराः । **आयुधा** । आयुधानि खड्गादीनि शस्त्राणि । **संशिशानाः** । शो तनूकरणे—कानच् । संश्यन्तः । तीक्ष्णीकुर्वन्तः । **उप** । व्याप्तौ । **प्र यन्तु** । प्रकर्षेण गच्छन्तु । **नरः** । **नयतेर्डिच्च** (उ० २। १००) इति णीञ् प्रापणे—ऋः । नेतारः । **अग्निरूपाः** । अग्निवत्तीक्ष्णदाहादिकर्माणः । यद्वा सन्नद्धाः कवचिनः । अग्निरूपा अग्निकर्माणः सन्नद्धाः कवचिन इति वा—निरु० १०। ३० ॥

---

१. सानुनासिक यु एवं वु को अन अक होता है। यहाँ युच् का 'यु' सानुनासिक नहीं है, अतः 'अन' आदेश नहीं हुआ। द्र० काशि० ७। १। १ ॥ सम्पा० ॥

❀ यह सूक्त ऋग्वेद मं० १०। ८४ में कुछ भेद से है। वहाँ पर सूक्त के ऋषि मन्यु तामस और देवता मन्यु हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(मन्यो) हे क्रोध ! (अग्निः इव) अग्नि के समान (त्विषितः) प्रज्वलित होकर (सहस्व) समर्थ हो, (सहुरे) हे प्रबल ! (हूतः) आवाहन किया हुआ तू (नः) हमारा (सेनानीः) सेनापति (एधि) हो। (शत्रून्) शत्रुओं को (हत्वाय) मारकर (वेदः) उनका धन (वि भजस्व) बाँट दे, और (ओजः) बल (मिमानः) दिखाता हुआ तू (मृधः) हिंसक लोगों को (वि नुदस्व) इधर उधर फेंक दे ॥ २ ॥

भावार्थः—सेनानी लोग क्रोध के साथ शत्रुओं को मारकर उनका धन बाँट लें और उन्हें इतर वितर कर दें ॥ २ ॥

सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मै रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून्। उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयासा एकज त्वम् ॥ ३ ॥

सहस्व। मन्यो इति। अभिऽमातिम्। अस्मै। रुजन्। मृणन्। प्रऽमृणन्। प्र। इहि। शत्रून्। उग्रम्। ते। पाजः। ननु। आ। रुरुध्रे। वशी। वशम्। नयासै। एकऽज। त्वम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(मन्यो) हे क्रोध ! (अस्मै) इस पुरुष के लिये (अभिमातिम्) अभिमानी शत्रु को (सहस्व) दबा दे, और (शत्रून्) बैरियों को (रुजन्)

२—अग्निरिव। मन्यो। हे क्रोध ! **त्विषितः।** प्रदीप्तः सन्। **सहस्व।** षह मर्षणे शक्तौ च। शक्तो भव। **सेनानीः।** सेनायाः नेता सेनाधिपतिः। **नः।** अस्माकम्। **सहुरे। जसिसहोरुरिन्** (उ० २। ७३) इति षह–उरिन्। हे शक्तिमन्। **हूतः।** आहूतः। **एधि।** अस भुवि–लोट्। भव। **हत्वाय।** छान्दसः क्त्वाल्यपोः प्रयोगः। हत्वा। **शत्रून्।** वैरिणः। **विभजस्व।** विभज्य देहि। **वेदः।** विद्लृ लाभे–असुन्। धनम्–निघ० २। १०। **ओजः।** बलम्। **मिमानः।** माङ् माने–कानच्। आविष्कुर्वन्। **मृधः।** अ० १। २१। २। हिंसकान् शत्रून्। **विनुदस्व।** विविधं प्रेरय ॥

३—सहस्व। अभिभव। **मन्यो।** म० १। हे क्रोध ! **अभिमातिम्।** अ० २। ६। ३। अभिमन्तारं शत्रुम्। **अस्मै।** अस्य जनस्य हितार्थम्। **रुजन्।** भञ्जन्। **मृणन्।** हिंसन्। **प्रमृणन्।** प्रकर्षेण नाशयन्। **प्रेहि।** प्रगच्छ। **शत्रून्।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोड़ता हुआ, (मृणन्) मारता हुआ, (प्रमृणन्) कुचलता हुआ (प्रेहि) चढ़ाई कर। (ते) तेरे (उग्रम्) उग्र (पाजः) बल को (ननु) कभी नहीं (आ रुरुध्रे) वे रोक सकें। (एकज) हे एक [परमात्मा] से उत्पन्न हुये (वशी) बलवान् (त्वम्) तू [उनको] (वशम्) वश में (नयासै) ले आ ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य क्रोध करके अभिमान आदि शत्रुओं को जीतकर अपनी इन्द्रियों को वश में रखे ॥ ३ ॥

एको बहूनामसि मन्य ईडिता विशंविशं युद्धाय संशिशाधि।
अकृत्तरुक् त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि ॥४॥

एकः। बहूनाम्। असि। मन्यो इति। ईडिता। विशम्ऽविशम्। युद्धाय। सम्। शिशाधि। अकृत्तऽरुक्। त्वया। युजा। वयम्। द्युऽमन्तम्। घोषम्। विऽजयाय। कृण्मसि ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(मन्यो) हे क्रोध! (एकः) अकेला ही तू (बहूनाम्) बहुत से शूरों का (ईडिता) सत्कार करने वाला (असि) है। (विशंविशम्) प्रत्येक प्रजा वा मनुष्य को (युद्धाय) युद्ध के लिये (सम्) यथावत् (शिशाधि) शिक्षा दे वा तीक्ष्ण कर। (अकृत्तरुक्) हे पूर्ण कान्ति वाले! (त्वया युजा)

शातयितॄन् वैरिणः। **उग्रम्**। प्रचण्डम्। **ते**। त्वदीयम्। **पाजः**। **पातेर्बले जुट् च** (उ० ४। २०३) इति पा रक्षणे–असुन्, जुट् च। बलम्–निघ० २। ९। **ननु**। न नुदति, प्रेरयतीति। **हरिमितयोर्द्रुवः** (उ० १। ३४) इति न+णुद प्रेरणे–कुः, स च डित्। प्रश्नेनैव। **आ**। समन्तात्। **रुरुध्रे**। रुधिर् आवरणे लिटि छन्दसि इरेच् इत्येतस्य स्थाने **इरयो रे** (पा० ६। ४। ७६) इत्यनेन 'रे' इत्यादेशः। रुरुधिरे। रुद्धवन्तः। आवृतवन्तः केचित् शत्रवः। **वशी**। वशयिता स्वतन्त्रः। **वशम्**। अधीनत्वम्। **नयासै**। लेटि रूपम्। नय। प्रापय शत्रून्। **एकज**। एकस्मात्परमेश्वराज्जात! त्वम् ॥

४—एकः। एक एव। **बहूनाम्**। अनेकानां शूराणाम्। **असि**। भवसि। **मन्यो**। हे क्रोध। **ईडिता**। ईड–तृच्। ईडिरध्येषणाकर्मा पूजाकर्मा वा–निरु० ७।१।५। याचकः। पूजकः सत्कारकः। **विशंविशम्**। प्रत्येकं प्रजाम्। मनुष्यः–निघ०२।३। **युद्धाय**। संग्रामाय। **सम्**। सम्यक्। **शिशाधि**। शासु अनुशिष्टौ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुझ मित्र के साथ (वयम्) हम लोग (द्युमन्तम्) हर्षयुक्त (घोषम्) ध्वनि [सिंहनाद वा मारू गीत] (विजयाय) विजय के लिये (कृण्मसि) करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य क्रोध पूर्वक शत्रुओं पर धावा करके स्तुति, विजय और कीर्ति पाते हैं ॥ ४ ॥

विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवो ३ऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥५॥

विजेषऽकृत् । इन्द्रःऽइव । अनवऽब्रवः । अस्माकम् । मन्यो इति । अधिऽपाः । भव । इह । प्रियम् । ते । नाम । सहुरे । गृणीमसि । विद्म । तम् । उत्सम् । यतः । आऽबभूथ ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(मन्यो) हे क्रोध ! (अनवब्रवः) नीच वचन न बोलने वाला, (विजेषकृत्) विजय करने वाला तू (इन्द्रः इव) बड़े प्रतापी पुरुष के समान (इह) यहां पर (अस्माकम्) हमारा (अधिपाः) बड़ा स्वामी (भव) हो । (सहुरे) हे शक्तिमान् (ते) तेरा (प्रियम्) प्रिय (नाम) नाम (गृणी-

---

यद्वा शो तनूकरणे । लोटि छान्दसो विकरणस्य श्लुः, ततो श्लौ इत्यनेन द्वित्वम-भ्यासस्येत्वम् । हेर्धित्वम् । शाधि शिक्षय । श्य तीक्ष्णीकुरु । **अकृत्तरुक्** । हे अच्छि-न्नदीप्ते । संपूर्णप्रकाश ! । **त्वया** । **युजा** । मित्रेण । **वयम्** । **द्युमन्तम्** । दिवु मोदे–क्विप् । हर्षवन्तम् । **घोषम्** । सिंहनादात्मकं ध्वनिम् । **विजयाय** । विजयार्थम् । **कृण्मसि**[1] । कृण्मः, कुर्मः ॥

५—विजेषकृत् । वृतृवदि० (उ० ३ । ६२) इति जि जये–सः । विजेषस्य विजयस्य कर्ता । **इन्द्रः इव** । प्रतापी पुरुषो यथा । **अनवब्रवः** । अन् + अव + ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि–पचाद्यच् । निपातनात्साधुः । अनवनतवचनः । उन्नतवचनः । **अस्माकम् । मन्यो** । हे क्रोध । **अधिपाः** । पा रक्षणे–विच् । अधिकं पालकः । **भव । इह** । अत्र संग्रामे । **प्रियम्** । प्रीतिकरम् । **ते** । तव । **नाम** । **सहुरे** । म० २ । हे शक्तिमन् । **गृणीमसि** । गृ शब्दे । गृणीमः स्तुमः । **विद्म** । जानीमः ।

---

१. मस के स्थान में इदन्तो मसि (पा० ७।१।४६) से मसि आदेश हुआ है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मसि) हम सराहते हैं। (तम्) उस (उत्सम्) स्रोता [परमेश्वर को] (विद्म) हम जानते हैं (यतः) जिससे (आबभूथ) तू आकर प्रकट हुआ है ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अदीन वचन बोलते हैं वे ही विजयी होकर कीर्त्ति पाते हैं ॥ ५ ॥

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥६॥

आऽभूत्या । सहऽजाः । वज्र । सायक । सहः । बिभर्षि । सहऽभूते । उत्ऽतरम् । क्रत्वा । नः । मन्यो इति । सह । मेदी । एधि । महाऽधनस्य । पुरुऽहूत । सम्ऽसृजि ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(वज्र) वज्र रूप ! (सायक) हे शत्रुओं के अन्त करने वाले ! (सहभूते) हे सम्पत्ति के साथ वर्तमान ! (आभूत्या सहजाः) विभूति के साथ साथ उत्पन्न होने वाला तू (उत्तरम्) अधिक उत्तम (सहः) बल (बिभर्षि) धारण करता है, (पुरुहूत) बहुतों से आवाहन किये हुए (मन्यो) क्रोध ! (महाधनस्य) बड़े धन प्राप्त कराने हारे संग्राम के (संसृजि) भिड़-

---

तम् । उत्सम् । अ० ३ । २४ । ४ । निर्झरम् । कूपम् । परमेश्वरमित्यर्थः । **यतः ।** यस्मात्स्थानात् । **आ बभूथ ।** आगत्य प्रादुर्बभूविथ ॥

६—आभूत्या । विभूत्या । **सहजाः । जनसनखनक्रमगमो विट्** (पा० ३ । २ । ६७) इति जनी–विट् । **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** (पा० ६ । ४ । ४१) सह जायते प्रादुर्भवतीति सहजाः । **वज्र ।** अ० १ । ७ । ७ । **सायक ।** षो अन्त-कर्मणि–ण्वुल् युक् च । हे अन्तकर । **सहः ।** बलम् । **बिभर्षि ।** धारयसि । **सहभूते ।** आत्मना सह भूतिः सम्पत्तिर्यस्य तत्संबुद्धौ । **उत्तरम् ।** उत्कृष्टतरम् । **क्रत्वा । कृजः क्रतुः** (उ० १ । ७६) क्रतुना कर्मणा–निघ० २ । १ । प्रज्ञया–निघ० ३ । ९ । **नः ।** अस्माकम् । **मन्यो । सह ।** सार्धम् । **मेदी ।** मेद-इनिः । स्नेही । **एधि ।** भव । **महा धनस्य ।** महान्ति धनानि प्राप्यन्ते यस्मिन् तस्य महाधनस्य ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने पर (क्रत्वा सह) बुद्धि के साथ (नः) हमारा (मेदी) स्नेही (एधि) हो ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य संग्राम में बुद्धि पूर्वक क्रोध करके विजयी होते हैं ॥ ६ ॥

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं धत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियो दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम्॥७॥

सम्ऽसृष्टम् । धनम् । उभयम् । सम्ऽआकृतम् । अस्मभ्यम् । धत्ताम् । वरुणः । च । मन्युः । भियः । दधानाः । हृदयेषु । शत्रवः । पराऽजितासः । अप । नि । लयन्ताम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(वरुणः) श्रेष्ठ शूर (च) और (मन्युः) क्रोध (संसृष्टम्) संग्रह किया हुआ और (समाकृतम्) उगाही किया हुआ (उभयम्) दो प्रकार का [आत्मिक और सामाजिक] (धनम्) धन (अस्मभ्यम्) हमें (धत्ताम्) देवें । (पराजितासः) हारे हुए, और (हृदयेषु) हृदयों में (भियः) अनेक भय (दधानाः) रखते हुए (शत्रवः) शत्रु लोग (अप = अपक्रम्य) भागकर (नि लयन्ताम्) खिसक जावें ॥ ७ ॥

भावार्थः—शूर पुरुष यथानीति क्रोध धारण करके शत्रुओं को हराते और बहुत धन प्राप्त करके अपनी और समाज की उन्नति करते हैं ॥ ७ ॥

संग्रामस्य–निघ० २ । १७ । **पुरुहूत** । हे बहुभिराहूत ! । **संसृजि** । सृज–क्विप् । संसर्गे संयोजने सति ॥

७—संसृष्टम् । सृज विसर्गे–क्तः । संगृहीतम् । **धनम्** । वित्तम् । **उभयम्** । **संख्याया अवयवे तयप्** (पा० ५।२।४२) इति उभ–तयप् । **उभादुदात्तो नित्यम्** (पा० ५ । २ । ४४) इति तयपोऽयजादेशः । उभयविधम् । आत्मिकं समाजिकं चेत्यर्थः । **समाकृतम्** । समानीतम् । **अस्मभ्यम्** । **धत्ताम्** । प्रयच्छताम् । दत्ताम् । **वरुणः** । वरणीयः स्वीकरणीयः शूरः । **च** । समुच्चये । **मन्युः** । म० १ । क्रोधः । **भियः** । भिभी भये–संपदादित्वात् क्विप् । भयानि । **दधानाः** । धारयन्तः । **हृदयेषु** । मनःसु । **शत्रवः** । अरयः । **पराजितासः** । पराजिताः । अभिभूताः । **अप** । अपक्रम्य । **नि** । नितराम् । नीचैः । **लयन्ताम्** । लीङ् श्लेषणे–लोट् । लयं प्रलयं विनाशं प्राप्नुवन्तु । प्रच्छन्नं वर्तन्ताम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ३२ ॥

१-७ ॥ मन्युर्देवता ॥ १ जगती, २-७ त्रिष्टुप् ॥

संग्रामे जयप्राप्त्युपदेशः—संग्राम में जय पाने का उपदेश ॥

यस्ते मन्योऽविधद् वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक्। साह्याम दासमार्यं त्वया युजा वयं सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥ १ ॥

यः । ते । मन्यो इति । अविधत् । वज्र । सायक । सहः । ओजः । पुष्यति । विश्वम् । आनुषक् । साह्याम । दासम् । आर्यम् । त्वया । युजा । वयम् । सहःऽकृतेन । सहसा । सहस्वता ॥ १ ॥

भाषार्थः—(वज्र) हे वज्र रूप ! (सायक) हे शत्रुनाशक ! (मन्यो) दीप्तिमान् क्रोध ! (यः) जिस पुरुष ने (ते) तेरी (अविधत्) सेवा की है, वह (विश्वम्) सब (सहः) शरीर बल और (ओजः) समाज बल से (आनुषक्) लगातार (पुष्यति) पुष्ट करता है। (सहस्कृतेन) बल से उत्पन्न हुए, (सहस्वता) बलवान्, (त्वया युजा) तुझ सहायक के साथ (सहसा) बल से (वयम्) हम लोग (दासम्) दास, काम बिगाड़ देने वाले मूर्ख और (आर्यम्) आर्य अर्थात् विद्वान् का (साह्याम) निर्णय करें[1] ॥ १ ॥

१—**यः** । पुरुषः । **ते** । तव । **मन्यो** । अ० ४ । ३१ । १ । हे दीप्तिमन् क्रोध ! **अविधत्** । विध विधाने—लङ् । विधेम परिचरणकर्मा—निघ० ३ । ५ । परिचरणं शुश्रूषणं कृतवान् । **वज्र** । हे व्यापनशील वज्र रूप । **सायक** । हे शत्रुनाशक । **सहः** । शारीरिकं बलम् । **ओजः** । सामाजिकं बलम् । **पुष्यति** । वर्धयति । **विश्वम्** । सर्वम् । **आनुषक्** । अनुपूर्वात् षञ्ज सङ्गे—क्विप् । **अनिदिताम्०** (पा० ६ । ४ । २४) इति नलोपः । अनोरकारस्य दीर्घश्छान्दसः । आनुषगिति नामानुपूर्वभ्यानुषक्तं भवति । निरु० ६।१४ । अनुषक्तमुपर्युपरिलग्नम् । निरन्तरम् । **साह्याम** । वेर्लोपः । वि+षह मर्षणे । विषह्याम अभिभवेम । **दासम्** । उत् असु

---

१. अर्थात् निर्णय करके उन्हें अपने वश में हर प्रकार से रखें ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य बुद्धि पूर्वक क्रोध का आराधन करते हैं वे भीतरी और बाहिरी बल बढ़ाकर मूर्खों का निरादर और विद्वानों का आदर करके कीर्त्ति पाते हैं ॥ १ ॥

यह सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद म० १० । सू० ८३ में है । वहाँ सूक्त के ऋषि मन्यु तापस और देवता मन्यु हैं ॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।
मन्युर्विश ईडते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥२॥

मन्युः । इन्द्रः । मन्युः । एव । आस । देवः । मन्युः । होता । वरुणः । जातऽवेदाः । मन्युः । विशः । ईडते । मानुषीः । याः । पाहि । नः । मन्यो इति । तपसा । सऽजोषाः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(मन्युः) प्रकाशमान क्रोध (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (मन्युः) क्रोध (एव) ही (देवः) दिव्यगुण वाला, (मन्युः) क्रोध (होता) दाता वा ग्रहीता, (वरुणः) वरणीय अङ्गीकारयोग्य, और (जातवेदाः) धन प्राप्त कराने वाला (आस) हुआ है । (मन्युः = मन्युम्) क्रोध को (याः) उद्योग करने वाली (मानुषीः = ०–ष्यः) मनुष्य जातीय (विशः) प्रजायें (ईडते) सराहती हैं । (मन्यो) हे क्रोध (तपसा) ऐश्वर्य से (सजोषाः) प्रीति करता हुआ तू (नः) हमें (पाहि) बचा ॥ २ ॥

उत्क्षेपे–घञ् । दासो दस्यतेः, उपदासयति कर्माणि–निरु० २ । १७ । उत्क्षपयितारम् । दस्युं चोरम् । **आर्यम्** । अ० ४ । २० । ४ । श्रेष्ठं । विद्वांसम् । **त्वया** । मन्युना । **युजा** । सहायेन । **वयम्** । पुरुषार्थिनः पुरुषाः । **सहस्कृतेन** । सहसा बलेनोत्पादितेन । **सहसा** । बलेन । **सहस्वता** । बलवता ॥

२—मन्युः । दीप्यमानः क्रोधः । **इन्द्रः** । ऐश्वर्यवान् । **एव** । निश्चयेन । **आस** । अस्तेर्लिटि छान्दसो भूभावाभावः । बभूव । **देवः** । दिव्यगुणयुक्तः । प्रकाशमानः । **होता** । दाता ग्रहीता वा । **वरुणः** । श्रेष्ठः । **जातवेदाः** । अ० १ । ७ । २ । जातधनः । **मन्युः** । **सुपां सुपो भवन्ति** (वा० पा० ७ । १ । ३९) इति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—यथावत् प्रयुक्त क्रोध के गुण पहिले से विदित हैं नीतिज्ञ पुरुष विधिपूर्वक क्रोध से ऐश्वर्य बढ़ाकर रक्षा करते हैं ॥ २ ॥

'मन्युर्विशः' के स्थान में सायण भाष्य और ऋग्वेद में 'मन्युं विशः' पद हैं ॥

अ॒भी॒हि मन्यो त॒वस॒स्तवी॑या॒न् तप॑सा यु॒जा वि ज॑हि॒ शत्रू॑न् ।
अ॒मि॒त्र॒हा वृ॑त्र॒हा द॑स्यु॒हा च॒ विश्वा॒ वसू॒न्या भ॑रा॒ त्वं नः॑ ॥३॥

अ॒भि । इ॒हि॒ । म॒न्यो॒ इति॑ । त॒वसः॑ । तवी॑यान् । तप॑सा । यु॒जा । वि । ज॒हि॒ । शत्रू॑न् । अ॒मि॒त्र॒ऽहा । वृ॒त्र॒ऽहा । द॒स्यु॒ऽहा । च॒ । विश्वा॑ । वसू॑नि । आ । भ॒र॒ । त्वम् । नः॒ ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(मन्यो) हे प्रकाशमान क्रोध (तवसः) महान् से भी (तवीयान्) अति महान् तू (अभीहि) इधर आ, (तपसा युजा) अपने ऐश्वर्य, मित्र के साथ (शत्रून्) शत्रुओं को (विजहि) मिटा दे। (च) और (अमित्रहा) पीड़ा देने वालों का मारने वाला, (वृत्रहा) अन्धकार नाश करने वाला, (दस्युहा) डाकुओं का मारने वाला (त्वम्) तू (विश्वा) सब (वसूनि) धन को (नः) हमारे लिये (आ) सब ओर से (भर) भर दे ॥ ३ ॥

द्वितीयार्थे प्रथमा । मन्युं क्रोधम् । **विशः** । प्रजाः । **ईडते** । स्तुवन्ति । **मानुषीः** । **मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च** (पा०४।१।१६१) इति मनु-अञ् षुक् चागमः । **टिड्ढाण०** (पा० ४ । १ । १५) इति-ङीप् । यद्वा, **जनेरुसिः** (उ० २ । ११५) इति मनु अवबोधने-उसिः । मनुष्-अण, ङीप् । मानुष्यः । मनुष्यजातीयाः । **याः** । या प्रापणे-डः, टाप् । उद्योगशीलाः । **पाहि** । रक्ष । **नः** । अस्मान् । **मन्यो** । हे क्रोध । **तपसा** । तप संतापैश्वर्ययोः-असुन् । प्रतापेन । ऐश्वर्येण । **सजोषाः** । जुषी-असुन् । समानप्रीतिः ॥

३—**अभीहि** । अभिमुखं गच्छ । **मन्यो** । हे क्रोध । **तवसः** । तु सौत्रो धातुर्गतिवृद्धिहिंसासु—असुन् । तवस इति महतो नामधेयम्—निरु० ५ । ९ । तवः, बलनाम—निघ० २ । ९ । महतः प्रवृद्धादपि । **तवीयान्** । तोतृ—ईयसुन् तृलोपः । प्रवृद्धतरः । **तपसा** । सामर्थ्येन । **युजा** । सहायेन । **वि जहि** । विनाशय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य नीति पूर्वक क्रोध से धन प्राप्त करके आनन्द भोगते हैं ॥ ३ ॥

त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहीयानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥ ४ ॥

त्वम् । हि । मन्यो इति । अभिभूतिऽओजाः । स्वयम्ऽभूः । भामः । अभिमातिऽसहः । विश्वऽचर्षणिः । सहुरिः । सहीयान् । अस्मासु । ओजः । पृतनासु । धेहि ॥ ४ ॥

भावार्थः—(मन्यो) हे क्रोध (त्वम् हि) तू ही (अभि भूत्योजाः) शत्रु पराजय का सामर्थ्यवाला, (स्वयंभूः) अपने आप उत्पन्न होनेवाला, (भामः) प्रकाशमान और (अभिमातिषाहः) अभिमानियों को हराने वाला है। (विश्वचर्षणिः) सब देखने वाला, (सहुरिः) शक्तिमान्, (सहीयान्) अधिक बलवान् तू (पृतनासु) संग्रामों के बीच (अस्मासु) हममें (ओजः) पराक्रम (धेहि) धारण कर ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य नीति कुशल और कर्म कुशल होकर दुष्टों पर क्रोध करते हैं; वे ही संग्रामों में विजयी होते हैं ॥ ४ ॥

शत्रून् । अरीन् । **अमित्रहा** । अ० १ । १९ । २ । पीडकनाशकः । **वृत्रहा** । शत्रुहन्ता । **दस्युहा** । चोरादीनां घातकः । **च** । **विश्वा** । सर्वाणि । **वसूनि** । धनानि । **आ** । समन्तात् । **भर** । धारय । **त्वम्** । **नः** । अस्मभ्यम् ॥

४—त्वम् । हि । मन्यो । हे दीप्यमान क्रोध । **अभिभूत्योजाः** । अभिभूतये शत्रुपराजयाय ओजो बलं यस्य स तथाभूतः । **स्वयंभूः** । स्वयमेव आत्मन्युत्पद्यमानः । **भामः** । **अर्त्तिस्तुसुहु०** (उ० १ । १४०) इति भा दीप्तौ—मन् । प्रदीप्यमानः । **अभिमातिषाहः** । षह मर्षणे—पचाद्यच् । छान्दसो दीर्घः । अभिमातीनामभिमानिनां पराजेता । **विश्वचर्षणिः** । विश्वचर्षणिः पश्यतिकर्मा—निघ० ३ । ११ । विश्वस्य सर्वस्य द्रष्टा । **सहुरिः** । अ० ४ । ३१ । २ । शक्तिमान् । **सहीयान्** । सोढृतरः । बलवत्तरः । **अस्मासु** । **ओजः** । पराक्रमम् । **पृतनासु** । संग्रामेषु । **धेहि** । धारय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं स्वा तनूर्बलदावा न एहि ॥५॥

अभागः । सन् । अप । पराऽइतः । अस्मि । तव । क्रत्वा । तविषस्य । प्रऽचेतः । तम् । त्वा । मन्यो इति । अक्रतुः । जिहीड । अहम् । स्वा । तनूः । बलऽदावा । नः । आ । इहि ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(प्रचेतः) हे उत्तम ज्ञान वाले ! मैं (अभागः सन्) अभागा होकर (तव तविषस्य) तुझ बलवान् के (क्रत्वा) कर्म वा बुद्धि से (अप = अपेत्य) हटकर (परेतः) दूर पड़ा हुआ (अस्मि) हूँ । (मन्यो) हे क्रोध (अक्रतुः) बुद्धि हीन वा कर्म हीन (अहम्) मैंने (तम् त्वा) उस तुझको (जिहीड) क्रुद्ध कर दिया है, (बलदावा) तू (स्वा तनूः) अपने स्वरूप से (नः) हमको (आ इहि) प्राप्त हो ॥ ५ ॥

भावार्थः—अनीतिज्ञ पुरुष यथावत् क्रोध न करके दरिद्र और बुद्धिहीन हो जाते हैं, इससे मनुष्यों को यथावत् वर्त्तना चाहिये ॥ ५ ॥

५—**अभागः** । भगानामैश्वर्याणां समूहः—इति भग—अण् । ऐश्वर्यसमूह-रहितः । सर्वथा निर्धनः । **सन्** । वर्तमानः सन् । **अप** । अपेत्य । **परेतः** । परागतः । **अस्मि** । वर्ते । **तव** । **क्रत्वा** । अ० ४ । ३१ । ६ । कर्मणा प्रज्ञया वा । **तविषस्य** । अ० ४ । १५ । २ । महतः पूजनीयस्य । **प्रचेतः** । हे प्रकृष्टज्ञान । **तम्** । **त्वा** । त्वाम् । **अक्रतुः** । अप्रज्ञः, बुद्धिहीनः कर्महीनो वा । **जिहीड** । हेडृ अनादरे क्रोधे च । लिटि छान्दसं रूपम् । हेडते क्रुध्यतिकर्मा—निघ० २ । १२ । जिहीडे, क्रुद्धं कृतवानस्मि । **स्वा** । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७।१।३९) विभक्तेः सुः । स्वया आत्मीयया । **तनूः** । उक्तसूत्रेण विभक्तेः सुः । तन्वा । स्वरूपेण । **बलदावा** । **आतो मनिन्क्वनि०** (पा० ३ । २ । ७४) इति बल + डुदाञ् दाने—वनिप् । बलस्य दाता । **नः** । अस्मान् । **आ इहि** । आगच्छ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयं ते अस्म्युप न एह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वदावन् ।
मन्यो वज्रिन्नभि न आ ववृत्स्व हनाव दस्यूंरुत बोध्यापेः ॥६॥

अयम् । ते । अस्मि । उप । नः । आ । इहि । अर्वाङ् । प्रतीचीनः । सहुरे । विश्वऽदावन् । मन्यो इति । वज्रिन् । अभि । नः । आ । ववृत्स्व । हनाव । दस्यून् । उत । बोधि । आपेः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(अयम्) यह मैं (ते) तेरा (अस्मि) हूँ। (सहुरे) हे समर्थ ! (विश्वदावन्) हे सर्वदाता ! (प्रतीचीनः) प्रत्यक्ष चलता हुआ तू (नः) हमारे (अर्वाङ्) सन्मुख होकर (उप एहि) समीप आ (वज्रिन्) हे वज्रधारी (मन्यो) क्रोध ! (नः अभि) हमारी ओर (आ ववृत्स्व) वर्तमान हो जा, (उत) और (आपेः) अपने बन्धु का (बोधि) बोधकर, [जिससे हम दोनों] (दस्यून्) दुष्टों को (हनाव) मारें ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब प्रकार विचार करके दुष्टों पर क्रोध करते हैं, वे विजयी होते हैं ॥ ६ ॥

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा नोऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभावुपांशुप्रथमा पिबाव ॥७॥

६—**अयम्** । पुरुषार्थी । **ते** । तव । **अस्मि** । **उप** । समीपे । **नः** । अस्माकम् । **आ इहि** । आगच्छ । **अर्वाङ्** । अभिमुखः । **प्रतीचीनः** । **विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम्** (पा० ५ । ४ । ८) इति प्रत्यच्-स्वार्थे खः । अल्लोपो दीर्घश्च । प्रत्यञ्चन् । प्रत्यक्षं गच्छन् । **सहुरे** । हे शक्तिमन् । **विश्वदावन्** । विश्व + डुदाञ्—वनिप् । हे सर्वस्य दातः । **मन्यो** । हे क्रोध । **वज्रिन्** । हे वज्रोपेत । **अभि** । अभिलक्ष्य । **नः** । अस्मान् । **आ** । समन्तात् । **ववृत्स्व** । छान्दसः शपः श्लुः । वर्तस्व । **हनाव** । आवां हिनसाव । **दस्यून्** । उपक्षपयितान् दुष्टान् । **उत** । अपि च । **बोधि** । बुध अवगमने लोटि छान्दसं रूपम् । बुध्यस्व । बोधं कुरु । **आपेः** । **इणजादिभ्यः** (वा० पा० ३ । ३ । १०८) इति आप्ल् व्याप्तौ—इण् । बन्धोः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभि । प्र । इहि । दक्षिणतः । भव । नः । अध । त्राणि । जङ्घनाव । भूरि । जुहोमि । ते । धरुणम् । मध्वः । अग्रम् । उभौ । उपऽअंशु । प्रथमा । पिबाव ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(अभि प्र इहि) आगे आ, और (नः) हमारी (दक्षिणतः) दाहिनी ओर (भव) वर्त्तमान हो, (अध) तब (भूरि) बहुत से (वृत्राणि) अन्धकारों को (जङ्घनाव) हम दोनों मिटा देवें। (मध्वः) मधुर रस का (अग्रम्) श्रेष्ठ (धरुणम्) धारण करने योग्य [स्तुतिरूप] रस (ते) तुझे (जुहोमि) भेंट करता हूँ। (प्रथमा = ०–मौ) पहिले वर्तमान (उभौ) हम दोनों (उपांशु) एकान्त में (पिबाव) [रसपान] करें ॥ ७ ॥

भावार्थः—महात्मा पुरुष आत्मदोषों पर क्रोध करके अनेक अन्धकारों को मिटाते हैं और वे ही इस मन्युस्तुति को एकान्त में सूक्ष्म रूप से विचारकर अधिक आनन्द भोगते हैं ॥ ७ ॥

सूक्तम् ३३ ॥

१–८ ॥ अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

सर्वरक्षणोपदेशः—सब प्रकार की रक्षा का उपदेश ॥

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ १ ॥

७—अभि । प्र । इहि । गच्छ । **दक्षिणतः । दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्** (पा० ५ । ३ । २८) इति अतसुच् । दक्षिणभागे परमसहायकत्वेन । **भव । नः ।** अस्माकम् । **अध ।** अथ । अनन्तरम् । **वृत्राणि ।** तमांसि । **जङ्घनाव ।** हन्तेर्यङ्लुगन्ताल्लोटि । **आडुत्तमस्य पिच्च** (पा० ३ । ४ । ९२) इति आडागमः । आवामतिशयेन हनाव । **भूरि ।** भूरीणि बहूनि । **जुहोमि ।** ददामि । **ते ।** तुभ्यम् । **धरुणम् ।** अ० ३ । १२ । ३ । धर्तव्यम् । स्तुतिरूपं रसम् । **मध्वः ।** मधोः । मधुररसस्य । **अग्रम् ।** श्रेष्ठं सारभूतम् । **उभौ ।** अहं च मन्युश्च । **उपांशु ।** निर्जने देशे । **प्रथमा ।** प्रथमौ । शत्रुभ्यः पूर्वभाविनौ सन्तौ । **पिबाव ।** आवां पानं करवाव ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप । नः । शोशुचत् । अघम् । अग्ने । शुशुग्धि । आ । रयिम् । अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे । (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (रयिम्) धन को (आ) अच्छे प्रकार (शुशुग्धि) पवित्र करो । (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ।। १ ।।

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा विचारते हुए दुष्कर्म के त्याग और और सुकर्म के ग्रहण से विद्या रूप और सुवर्ण आदि रूप धन प्राप्त करें ।। १ ।।

यह सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद म० १ सू० ९७ में है ।।

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ २ ॥

सुऽक्षेत्रिया । सुऽगातुया । वसुऽया । च । यजामहे ।
अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(सुक्षेत्रिया) उत्तम खेत के लिये, (सुगातुया) उत्तम भूमि के लिये (च) और (वसुया) धन के लिये (यजामहे) हम [परमेश्वर को] पूजते हैं । (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ।। २ ।।

१—**अप** । दूरीभूय । **नः** । अस्माकम् । **शोशुचत्** । ईशुचिर् पूतिभावे यङ्लुगन्तात् लेटि अडागमः । अत्यन्तं शुच्यात् विनश्येदित्यर्थः । **अघम्** । पापम् । **अग्ने** । हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् । **शुशुग्धि** । शुचिर्ज्वलतिकर्मणः निरु० ६ । १ । लोट् । अन्तर्गतण्यर्थः । शपः[1] श्लुः । **हुझल्भ्यो हेर्धिः** (पा० ६ । ४ । १०१) इति धिः । **चोः कुः** (पा० ८ । २ । ३०) इति कुत्वम् । क्लेदय । सिञ्च । **आ** । समन्तात् । **रयिम्** । धनम् । अन्यद् गतम् । आदरार्थं पुनः प्रयोगः ।।

२—**सुक्षेत्रिया । इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम्** (वा० पा० ७।१।३९) इति ङेर्डियाजादेशः । चित्त्वादन्तोदात्तः शोभनाय क्षेत्राय । **सुगातुया । सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) इति ङेर्याच् । गातुः—पृथिवीनाम—निघ० १ । १ ।

---

१. बहुलं छन्दसि (२ । ४ । ७६) से छान्दस शप् के स्थान में श्लु हुआ है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा जानकर अनिष्टों को मिटाकर पुरुषार्थ से अपनी प्रभुता बढ़ावें ॥ २ ॥

प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ३ ॥

प्र । यत् । भन्दिष्ठः । एषाम् । प्र । अस्माकासः । च ।
सूरयः । अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(यत्) जिस प्रकार से (एषाम्) इन प्राणियों के मध्य (भन्दिष्ठः) अत्यन्त सुखी होकर (प्र) प्रकृष्ट [होजाऊं] (च) और (अस्माकासः) हमारे (सूरयः) विद्वान् लोग (प्र) प्रकृष्ट [होवें] [उसी प्रकार से] (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य शुभ कर्मों में प्रवृत्त होकर दरिद्रता आदि दुःखों को मिटावें ॥ ३ ॥

प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ४ ॥

प्र । यत् । ते । अग्ने । सूरयः । जायेमहि । प्र । ते । वयम् ।
अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ ४ ॥

शोभनभूमिप्राप्तये । **वसुया** । पूर्वसूत्रेण ङेर्याच् । वसुने धनाय । **च** । समुच्चये । **यजामहे** । परमेश्वरं पूजयामः । अन्यत्पूर्ववत् ॥

३—प्र । प्रकर्षेण भवानि । **यत्** । यथा । **भन्दिष्ठः** । भदि कल्याणे सुखे च—तृच्, इष्ठन् । **तुरिष्ठेमेयःसु** (पा० ६ । ४ । १५४) इति तृलोपः । भन्दना भन्दतेः स्तुतिकर्मणः—निरु० ५ । २ । स्तोतृतमः सुखितमः । **एषाम्** । मनुष्यादिप्राणिनां मध्ये । **प्र** । प्रकर्षेण भवन्तु । **अस्माकासः** । **तस्येदम्** (पा० ४ । ३ । १२०) इति अस्मद्—अण् । **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ** (पा० ४।३। २) इति अस्माकादेशः अणि वृद्धचभावश्छान्दसः । असुगागमश्च । आस्माकः । अस्मदीयाः । **च** । **सूरयः** । अ० २ । ११ । ४ । विद्वांसः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अग्ने) हे परमात्मन् (सूरयः) विद्वान् लोग (यत् ते) जिस तेरे (प्र=प्रजायन्ते) प्रजा हैं, (ते) उस तेरे ही (वयम्) हम लोग (प्र जायेमहि) प्रजा होवें। (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥ ४ ॥

भावार्थः—सब मनुष्य विद्वानों के समान परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव जानकर सदा सुखी रहें ॥ ४ ॥

प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ५ ॥

प्र । यत् । अग्नेः । सहस्वतः । विश्वतः । यन्ति । भानवः ।
अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(यत्) जिस कारण से (सहस्वतः) बलवान् (अग्नेः) परमात्मा के (भानवः) अनेक प्रकाश (विश्वतः) सब ओर (प्र) भली प्रकार (यन्ति) चलते रहते हैं। (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की अनेक सूक्ष्म और स्थूल रचनाओं को देखकर अपने विघ्नों को मिटावें ॥ ५ ॥

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥

४—**प्र** । इत्यस्य, जायेमहि, इति क्रियया सह सम्बन्धः । प्रजायन्ते प्रजाः सन्ति । **यत्** । यस्य । **ते** । तव । **अग्ने** । परमात्मन् । **सूरयः** । विद्वांसः । **प्र जायेमहि** । प्रजा भवेम । **ते** । तस्य तव । **वयम्** । उपासकाः । अन्यद्गतम् ॥

५—**प्र** । प्रकर्षेण । **यत्** । यस्मात् । **अग्नेः** । परमात्मनः । **सहस्वतः** । बलवतः । **विश्वतः** । सर्वतः । **यन्ति** । गच्छन्ति । **भानवः** । प्रकाशाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वम् । हि । विश्वतःऽमुख । विश्वतः । परिऽभूः । असि ।
अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(हि) जिस कारण से (विश्वतोमुख) हे सब ओर मुख वाले [मुख के समान सर्वोपदेशक, सर्वोत्तम] परमेश्वर ! (त्वम्) तू (विश्वतः) सब ओर से (परिभूः) व्यापक (असि) है । (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के समान 'विश्वतोमुख' होकर सदा चैतन्य रहें और अनिष्टों को मिटाकर अपनी वृद्धि करें ॥ ६ ॥

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ७ ॥

द्विषः । नः । विश्वतःऽमुख । अति । नावाऽइव । पारय ।
अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(विश्वतोमुख) हे सब ओर मुख वाले [मुख के समान, सर्वोपदेशक सर्वोत्तम] परमेश्वर ! (द्विषः) द्वेषियों को (अति = अतीत्य) लांघ कर (नः) हमें (पारय) पार लगा, (नावा इव) जैसे नाव से [समुद्र को पार करते हैं], (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥ ७ ॥

भावार्थः—जैसे पोत द्वारा समुद्र पार करते हैं, वैसे ही मनुष्य परमेश्वर के आश्रय से सब दोषों को हटाकर सुखी रहें ॥ ७ ॥

६—**त्वम् । हि । विश्वतोमुख** । हे मुखवत् सर्वोपदेशक, सर्वोत्तम परमात्मन् । **विश्वतः** । सर्वतः । **परिभूः** । अ० ३ । २१ । ४ । ग्रहीता व्यापकः । **असि** । अन्यत् पूर्ववत् ॥

७—**द्विषः** । द्वेष्टॄन् शत्रून् । **नः** । अस्मान् । **विश्वतोमुख** । म० ६ । **अति** । अतीत्य । उल्लङ्घ्य । **नावा इव** । यथा नौकया । **पारय** । पारं गमय । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये ।

अप नः शोशुचदघम् ॥ ८ ॥

सः । नः । सिन्धुम्ऽइव । नावा । अति । पर्ष । स्वस्तये । अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(सः) सो तू (नः) हमें (स्वस्तये) आनन्द के लिये (पर्ष) पार लगा, (इव) जैसे (नावा) नाव से (सिन्धुम्) समुद्र को (अति = अतीत्य) लांघ कर [पार करते] हैं। (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर में निष्ठा करके पुरुषार्थ पूर्वक दुःख सागर से पार होकर सुखी होवें जैसे नाव के आश्रय से जलयात्री समुद्र पार करके प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥

सूक्तम् ३४ ॥

१-८ ॥ ओदनो देवता । १-४ त्रिष्टुप्, ५ एष यज्ञानामिति त्रिष्टुप्, एतात्स्त्वेति द्विपदा जगती, ६, ७ पञ्चपदा जगती, ८ जगती ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्मविद्या का उपदेश ॥

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं वामदेव्यमुदरमोदनस्य । छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः ॥ १ ॥

८—**सः** । स त्वम् । **नः** । अस्मान् । **सिन्धुम् इव** । यथा समुद्रं तथा । **नावा** । नौकया । **अति** । अतीत्य । **पर्ष** । पॄ पालनपूरणयोः, लेटि अडागमः । **सिब् बहुलं लेटि** (पा० ३ । १ । ३४) इति–सिप् । पारं प्रापय । **स्वस्तये** । आनन्दाय । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म । अस्य । शीर्षम् । बृहत् । अस्य । पृष्ठम् । वामऽदेव्यम् । उदरम् । ओदनस्य । छन्दांसि । पक्षौ । मुखम् । अस्य । सत्यम् । विष्टारी । जातः । तपसः । अधि । यज्ञः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अस्य) इस (ओदनस्य) सेचनसमर्थ वा अन्नरूप परमेश्वर का (शीर्षम्) शिर (ब्रह्म) वेद है, (अस्य) इसकी (पृष्ठम्) पीठ (बृहत्) प्रवृद्ध जगत् और (उदरम्) उदर (वामदेव्यम्) मनोहर परमात्मा से जताया गया [भूतपञ्चक] है। (अस्य) इसके (पक्षौ) दोनों पार्श्व (छन्दांसि) आनन्दप्रद वा पूजनीय कर्म और (मुखम्) मुख (सत्यम्) सत्य है। (विष्टारी) वह विस्तार वाला (यज्ञः) पूजनीय परमात्मा (तपसः) अपने ऐश्वर्य से (अधि) सबसे ऊपर (जातः) प्रकट हुआ है ॥ १ ॥

भावार्थः—परमेश्वर सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी है, उसकी उपासना सब मनुष्य नित्य करें ॥ १ ॥

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥ २ ॥

१—**ब्रह्म** । वेदः । **अस्य** । प्रत्यक्षस्य । **शीर्षम्** । शिरः । **बृहत्** । प्रवृद्धं जगत् । **पृष्ठम्** । पृष्ठभागः । **वामदेव्यम्** । **वामदेवाड् ड्यड्ड्यौ** (पा० ४ । २ ९) इति वामदेव-ड्यः । वामदेवेन दृष्टं विज्ञातं विज्ञापितं वा-इति दयानन्दभाष्ये यजु० १२ । ४ । वामो वल्गुरेव देवः, वामदेवः परमेश्वरः, तेन विज्ञापितं भूतपञ्चकम् । **उदरम्** । उदरस्थानीयम् । **ओदनस्य** । अ० ४ । १४ । ७ । सेचनशीलस्य प्रवर्धकस्य अन्नरूपस्य वा परमात्मनः । **छन्दांसि** । **चन्देरादेश्च छः** (उ० ४ । २१९) इति चदि आह्लादने—असुन्, चस्य छः । छन्दति, अर्चतिकर्मा-निघ० ३ । १४ । छन्दांसि छादनात्—निरु० ७ । १२ । आह्लादकर्माणि । अर्चनीयकर्माणि । **पक्षौ** । पक्ष परिग्रहे-अच् । पार्श्वौ । **मुखम्** । **सत्यम्** । याथार्थ्यम् । **विष्टारी** । **अत इनिठनौ** (पा० ५ । २ । ११५) इति विस्तार-इनिः । विस्तारवान् । **जातः** । प्रादुर्भूतः । **तपसः** । स्वैश्वर्यात् । **अधि** । उपरि । **यज्ञः** । यजनीयः । ओदनः । परमेश्वरः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनस्थाः । पूताः । पवनेन । शुद्धाः । शुचयः । शुचिम् । अपि । यन्ति । लोकम् । न । एषाम् । शिश्नम् । प्र । दहति । जातवेदाः । स्वः । उ । गे । लोके । बहु । स्त्रैणम् । एषाम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अनस्थाः) न गिराने योग्य (पवनेन) शुद्ध आचरण से (पूताः) शुद्ध किये गये, (शुद्धाः) शुद्ध स्वभाव, (शुचयः) प्रकाशमान महात्मा लोग (अपि) ही (शुचिम्) ज्योतिः स्वरूप (लोकम्) लोक [परमात्मा] को (यन्ति) पाते हैं । (जातवेदाः) प्राणियों का जानने वाला परमेश्वर (एषाम्) इनकी (शिश्नम्) गति वा सामर्थ्य को (न) नहीं (प्रदहति) जलाता है । [इसलिये कि] (एषाम्) इन [महात्माओं] का (स्त्रैणम्) सृष्टि का हितकर्म (स्वर्गे) अच्छे प्रकार पाने योग्य सुखदायक (लोके) लोक [परमात्मा] में (बहु) बहुत है ॥ २ ॥

भावार्थः—जितेन्द्रिय शुद्ध स्वभाव योगी जन ही परमात्मा को पाते हैं, और उस जगदीश्वर के सहारे में रह कर संसार का हित करते हुये सर्वत्र गतिमान् होते हैं ॥ २ ॥

२—**अनस्थाः । असिसंज्ञिभ्यां क्थिन्** (उ० ३ । १५४) इति असु क्षेपणे—क्थिन् इति अस्थि = क्षेपणम् । **छन्दस्यपि दृश्यते** (पा० ७।१।७६) इति अस्थिशब्दस्य अनङ् आदेशः । अनसनीयाः । अक्षेपणीयाः । अनिवारणीयाः, इत्यर्थः । **पूताः** । पवित्रीकृताः । **पवनेन** । शोधनकर्मणा । **शुद्धाः** । निर्मला । **शुचयः** । दीप्यमानाः परमयोगिनः । **शुचिम्** । दीप्यमानं ज्योतिर्मयम् । **अपि** । अवधारणे । **यन्ति** । प्राप्नुवन्ति । **लोकम्** । परब्रह्मधाम । **न** । निषेधे । **एषाम्** । योगिनाम् । **शिश्नम्** । **इण्सिञ्जि०** (उ० ३ । २) इति शश प्लुतगतौ-नक्[1] । शिश्नं श्नथतेः—निरु० ४ । १९ । गतिम् । बलम् । **प्र** । **दहति** । भस्मीकरोति । **जातवेदाः** । अ० १ । ७ । २ । जातानां वेदिता परमेश्वरः । **स्वर्गे** । सु+अर्ज–घञ् । सुष्ठु अर्जनीये । सुखप्रदे । **लोके** । स्थाने । **बहु** । विपुलम् । **स्त्रैणम्** । **स्त्यायतेर्ड्रट्** (उ० ४ । १६६) इति स्त्यै शब्दसंघातयोः–ड्रट् । **लोपो व्योर्वलि** (पा० ६ । १ । ६६) इति यलोपः । टित्वात् ङीप् इति स्त्री = संहतिः । **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** (पा० ४ । १ । ८७) **तस्मै हितम्** (पा० ५ । १ । ५) इति हितार्थे नञ् । स्त्रीभ्यः संहतिभ्यः सृष्टिभ्यो हितम् । **एषाम्** ॥

---

१. पृषोदरादीनि० (६ । ३ । १०९) से यहाँ इत्व जानें ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानवर्तिः सचते कदा चन ।
आस्ते यम उप याति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ॥ ३ ॥

विष्टारिणम् । ओदनम् । ये । पचन्ति । न । एनान् । अवर्तिः । सचते । कदा । चन । आस्ते । यमे । उप । याति । देवान् । सम् । गन्धर्वैः । मदते । सोम्येभिः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(ये) जो महात्मा लोग (विष्टारिणम्) विस्तारवान् (ओदनम्) सेचन समर्थ वा अन्नरूप परमात्मा को [हृदय में] (पचन्ति) परिपक्व करते हैं, (एनान्) इन लोगों को (अवर्त्तिः) दरिद्रता (कदा चन) कभी भी (न) नहीं (सचते) मिलती है । [जो पुरुष] (यमे) नियम वा न्यायकारी परमात्मा में (आस्ते) रहता है, [वह] (देवान्) उत्तम गुणों को (उप) अधिक अधिक (याति) पाता है, और (गन्धर्वैः) पृथिवी आदि लोकों वा वेदवाणियों को धारण करने वाले (सोम्येभिः) सोम अर्थात् ऐश्वर्य योग्य महात्माओं से (सम्) मिल कर (मदते) आनन्द भोगता है ॥ ३ ॥

भावार्थः—योगी जन परमात्मा में श्रद्धा रखकर सदा उदारचित्त रहते हैं, क्योंकि जितेन्द्रिय पुरुष ही विद्वानों के सत्सङ्ग से उत्तम उत्तम गुण पाकर आनन्द भोगते हैं ॥ ३॥

३—**विष्टारिणम्** । म० १ । विस्तारवन्तम् । **ओदनम्** । म० १ । सेचनशीलम् अन्नरूपं वा परमात्मानम् । **ये** । महात्मानो योगिनः । **पचन्ति** । पक्वं श्रद्धया दृढं कुर्वन्ति । **न** । निषेधे । **एनान्** । एतान् । योगिनः । **अवर्तिः** । **हृषिषिरुहिवृति०** (उ० ४ । ११९) इति वृतु वर्तने--इन् । वर्तिर्वृत्तिः जीविका । तदभावः अवर्तिः । दारिद्र्यम् । **सचते** । समवैति यः । **कदाचन** । कदाचिदपि । **आस्ते** । तिष्ठति । **यमे** । नियमे न्यायकारिणि परमात्मनि वा । **उप** । अधिकम् । **याति** । प्राप्नोति सः । **देवान्** । दिव्यगुणान् । **सम्** । सह भूत्वा । **गन्धर्वैः** । अ० २ । १ । २ । गवां पृथिव्यादिलोकानां वेदवाणीनां वा धारकैः । **मदते** । हृष्यति । **सोम्यैः** । सोमार्हैः ऐश्वर्ययोग्यैः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान् यमः परि मुष्णाति रेतः । रथी ह भूत्वा रथयानं ईयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ॥४॥

विष्टारिणम् । ओदनम् । ये । पचन्ति । न । एनान् । यमः । परि । मुष्णाति । रेतः । रथी । ह । भूत्वा । रथऽयाने । ईयते । पक्षी । ह । भूत्वा । अति । दिवः । सम् । एति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(ये) जो महात्मा (विष्टारिणम्) विस्तारवान् (ओदनम्) सेचनशील वा अन्नरूप परमात्मा को [हृदय में] (पचन्ति) पक्का करते हैं, (एनान्) इनसे (यमः) नियम (रेतः) सामर्थ्य को (न) नहीं (परि मुष्णाति) मूस लेता है। वह पुरुष (रथयाने) शरीर से चलने योग्य संसार में (ह) निश्चय करके (रथी) क्रीडाशील (भूत्वा) होकर (ईयते) विचरता है और (ह) अवश्य (पक्षी) सबका पक्ष करने वाला (भूत्वा) होकर (अति) अत्यन्त (दिवः) प्रकाशमान लोकों को (सम्) यथावत् (एति) पाता है ॥ ४ ॥

भावार्थः—परमात्मा में पूर्ण श्रद्धालु शूरवीर महात्मा सदा बलवान् होकर संसार को सहारा देते हुये सूर्य समान प्रकाशित रहते और आनन्द भोगते हैं ॥ ४ ॥

एष यज्ञानां वितंतो बर्हिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा द्विवमाविवेश । आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूक शफको मुलाली । एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे

४—पचन्तीति व्याख्यातम् म० ३। **न**। निषेधे। **एनान्**। एतान्। अपादाने द्वितीया। **यमः**। नियमः। **परि**। वर्जने। **मुष्णाति**। द्विकर्मकः। अपहरति। **रेतः**। बलं सामर्थ्यम्। **रथी**। रथ–इनिः। रथवान्। **ह**। अवधारणे। **भूत्वा**। **रथयाने**। रथेन शरीरेण यातव्ये लोके। **ईयते**। ईङ् गतौ। संचरति। **पक्षी**। पक्ष परिग्रहे–अच्, ततः–इनिः। पक्षवान् परिग्रही। **अति**। अत्यन्तम्। **दिवः**। प्रकाशमानान् लोकान्। **समेति**। सम्यक् प्राप्नोति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ५ ॥

एषः । यज्ञानाम् । विऽततः । बहिष्ठः । विष्टारिणम् । पक्त्वा । दिवम् । आ । विवेश । आण्डीकम् । कुमुदम् । सम् । तनोति । विसम् । शालूकम् । शफकः । मुलाली । एताः । त्वा । धाराः । उप । यन्तु । सर्वाः । स्वःऽगे । लोके । मधुऽव्रत् । पिन्वमानाः । उप । त्वा । तिष्ठन्तु । पुष्करिणीः । सम्ऽअन्ताः ॥५॥

भाषार्थः—(एषः) यह (यज्ञानाम्) उत्तम कर्मों के बीच (विततः) फैला हुआ (बहिष्ठः) अत्यन्त बहुत शुभ गुणों वाला पुरुष (विष्टारिणम्) बड़े विस्तार वाले परमात्मा को [हृदय में] (पक्त्वा) पक्का, दृढ़, करके (दिवम्) प्रकाशस्वरूप परमात्मा में (आ विवेश) प्रविष्ट हुआ है।

५—**एषः** । दृश्यमानः पुरुषः । **यज्ञानाम्** । यजनीयानां कर्मणां मध्ये । **विततः** । विस्तृतः । **बहिष्ठः** । **अतिशायने तमबिष्ठनौ** (पा० ५ । ३ । ५५) इति बहु–इष्ठन् । **टेः** (पा० ६ । ४ । १५५) इति टिलोपः । अतिशयेन बहुशुभ-गुणोपेतः । **विष्टारिणम्** । म० १ । विस्तारवन्तम् । **पक्त्वा** । परिपक्वं हृदये दृढं कृत्वा । **दिवम्** । प्रकाशमानं परमात्मानम् । **आ विवेश** । प्रविष्टवान् । **आण्डीकम्** । **अमन्ताड् डः** (उ० १ । ११४) इति अम गतौ–डः । **ईकञ् छन्दसि** (वा० पा० ४ । १ । ८५) इति अण्ड–ईकञ् बाहुलकात् । प्राप्तियोग्यम् । **कुमुदम्** । **इगुपध०** (पा० ३ । १ । १३५) इति कु + मुद हर्षे–कः । कौ भूमौ मोदते । पृथिव्यां मोदकरं वस्तु । **सम्** । सम्यक् । **तनोति** । विस्तारयति । **विसम्** । बिस प्रेरणे, दिवा०-कः । प्रेरकम् । बलकरं वस्तु । **शालूकम्** । **शलिमण्डिभ्यामूकण्** (उ० ४ । ४२) इति शल गतौ–ऊकण् । वेगकरं वस्तु । **शफकः** । शमु उपशमे–अच्, मस्य फः । इति शब्दस्तोममहानिधिः । कमु कान्तौ–डः । शफं शान्तिं निवृत्तिं कामयते स शफकः । शान्तिकामः । **मुलाली** । मुल रोपणे–कः । **सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये** (पा० ३ । २ । ७८) इति मुल + अल भूषणपर्याप्ति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शफकः) शान्ति की कामना करने वाला, (मुलाली) कर्म फल के रोपण, उत्पत्ति को सुधारने वाला पुरुष (आण्डीकम्) प्राप्तियोग्य (कुमुदम्) पृथिवी में आनन्द करने वाली वस्तु को, (बिसम्) बलदायक गुण को (शालूकम्) वेगशील कर्म को (सम्) यथावत् (तनोति) फैलाता है।

(एताः) ये (सर्वाः) सब (धाराः) धारण शक्तियां (स्वर्गे लोके) स्वर्ग लोक में (मधुमत्) मधु नाम ज्ञान की पूर्णता से (त्वा) तुझको (पिन्वमानाः) सींचती हुई (उप) आदर से (यन्तु) मिलें और (समन्ताः) सम्पूर्ण (पुष्करिणीः = ०-ण्यः) पोषणवती शक्तियां (त्वा) तुझमें (उप तिष्ठन्तु) उपस्थित होवें ॥ ५ ॥

भावार्थः— पुरुषार्थी योगी जन परमात्मा की महिमा में लवलीन होकर मधुमती नाम प्रजा की प्राप्ति से संसार का पूरा उपकार करता है ॥ ५ ॥

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ६ ॥

घृतऽह्रदाः । मधुऽकूलाः । सुराऽउदकाः । क्षीरेण । पूर्णाः । उदकेन । दध्ना । एताः । त्वा । धाराः । उप । यन्तु । सर्वाः । स्वःऽगे । लोके । मधुऽमत् । पिन्वमानाः । उप । त्वा । तिष्ठन्तु । पुष्करिणीः । सम्ऽअन्ताः ॥ ६ ॥

वारणेषु-णिनिः । मुलं रोपणं कर्मफलजननम् अलति भूषयतीति मुलाली । सत्पुरुषः । **एताः** । त्वा । त्वां पुरुषम् । **धाराः** । धारणशक्तयः । **उप** । समीपे । **यन्तु** । गच्छन्तु । **सर्वाः** । सकलाः । **स्वर्गे** । म० २ । सुष्ठु अर्जनीये पुण्ये । **लोके** । दर्शनीये स्थाने । **मधुमत्** । **फलिपाटिनमिमनि०** (उ० १ । १८) इति मनु अवबोधने-उः, नस्य धः । यथा तथा मधुमत्तया ज्ञानवत्तया । **पिन्वमानाः** । पिवि-सेचने-शानच् । सिञ्चन्त्यः । **उप तिष्ठन्तु** । उपस्थिताः संगता भवन्तु । **पुष्करिणीः** । **पुषः कित्** (उ० ४ । ४) इति पुष पुष्टौ-करन् । **अत इनिठनौ** (पा० ५ । २ । ११५) । इति पुष्कर-इनिः । पुष्कराणि पोषणानि सन्ति यत्र पुष्करिण्यः पोषणवत्यः शक्तयः । **समन्ताः** । सम्पूर्णाः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(घृतह्रदाः) प्रकाश की ध्वनि वाली, (मधुकूलाः) मधु अर्थात् ज्ञान के रक्षा साधन वाली, (सुरोदकाः) सुरा अर्थात् ऐश्वर्य वा तत्त्व मथन का सेवन करने वाली, (क्षीरेण) भोजन साधन से, (उदकेन) सेचन वा वृद्धि साधन से और (दध्ना) धारण पोषण सामर्थ्य से (पूर्णाः) परिपूर्ण,

(एताः) वे (सर्वाः) सब (धाराः) धारण शक्तियां (स्वर्गे लोके) स्वर्ग लोक में (मधुमत्) मधु नाम ज्ञान की पूर्णता से (त्वा) तुझको (पिन्वमानाः) सींचती हुई, (उप) आदर से (यन्तु) मिलें, और (समन्ताः) सम्पूर्ण (पुष्करिणी-०-ण्यः) पोषणवती शक्तियां (त्वा) तुझमें (उप तिष्ठन्तु) उपस्थित होवें ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य योग साधन से अपनी अनेक शक्तियां बढ़ाकर संसार का उपकार करके आनन्द भोगता है ॥ ६ ॥

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ७ ॥

६—**घृतह्रदाः** । **अश्विघृसिभ्यः क्तः** (उ० ३ । ८९) इति घृ क्षरणदीप्त्योः-क्तः । घृतम् । प्रकाशः । ह्लाद अव्यक्ते शब्दे-अच्, निपातः । प्रकाशयुक्तध्वनयः । **मधुकूलाः** । कूल आवरणे-अच् । मधु ज्ञानं कूलम् आवरणं रक्षासाधनं यासां ताः । **सुरोदकाः** । **सुसूधाञ्गृधिभ्यः क्रन्** (उ० २ । २४) षु प्रसवैश्वर्ययोः, यद्वा षुञ् अभिषवे-क्रन् । यद्वा, षुर ऐश्वर्यदीप्त्योः-कः, टाप् । सुरा = उदकम्-निघ० १ । १२ । सुरा सुनोतेः-निरु० १ । ११ । सुराणां पत्नी शक्तिः सुरा । **उदकञ्च** (उ० २ । ३९) इति उन्दी क्लेदने-क्वुन् । सुरा, ऐश्वर्यं तत्त्वमथनं वा, उदकं सेचनं यासां ताः । **क्षीरेण** । **घसेः क्विच्च**[1] (उ० ४ । ३४) इति घस्लृ अदने-ईरन् । वा क्षर संचलने-डीरन् । क्षीरम् उदकम्-निघ० १ । १२ । क्षीरं क्षरतेर्घसेर्वेरो नामकरण उशीरमिति यथा—निरु० २ । ५ । भोजनसाधनेन । **पूर्णाः** । पूरिताः । **उदकेन** । सेचनसाधनेन । **दध्ना** । अ० ३ । १२ । ७ । दधि धारणं पोषणं तेन । अन्यत् पूर्ववत् म० ५ ॥

---

१. क्षीर शब्द वेद में अन्तोदात्त मिलता है, अतएव इस सूत्र का नारायणउणादिवृत्ति के अनुसार 'घसेः क्विच्च' पाठ मानना चाहिये, जिससे क्वित् मानकर अन्तोदात्त हो जाये। इस विषय में दश० पा० उ० की सम्पादकीय टिप्पणी द्रष्टव्य है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुरः । कुम्भान् । चतुःऽधा । ददामि । क्षीरेण । पूर्णान् । उदकेन । दध्ना । एताः । त्वा । धाराः । उप । यन्तु । सर्वाः । स्वःऽगे । लोके । मधुऽमत् । पिन्वमानाः । उप । त्वा । तिष्ठन्तु । पुष्करिणीः । सम्ऽअन्ताः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(क्षीरेण) भोजन साधन से, (उदकेन) सेचन वा वृद्धि साधन से और (दध्ना) धारण पोषण सामर्थ्य से (पूर्णान्) परिपूर्ण (कुम्भान्) भूमि को पूर्ण करने वाले (चतुरः) चार अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को (चतुर्धा) चार प्रकार से अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास आश्रम वा चारों वेद द्वारा (ददामि) दान करता हूं ।

(एताः) ये (सर्वाः) सब (धाराः) धारण शक्तियां (स्वर्गे लोके) स्वर्ग लोक में (मधुमत्) मधु नाम ज्ञान की पूर्णता से (त्वा) तुझको (पिन्वमानाः) सींचती हुई (उप) आदर से (यन्तु) मिलें, और (समन्ताः) सम्पूर्ण (पुष्करिणीः = ०—ण्यः) पोषणवती शक्तियां (त्वा) तुझमें (उप तिष्ठन्तु) उपस्थित होवें ॥ ७ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रम द्वारा और चारों वेद द्वारा धर्म अर्थ आदि चार पदार्थ देता है । इसलिये मनुष्य चारों आश्रम और चारों वेदों के यथावत् सेवन से चारों पदार्थ प्राप्त करके सदा आनन्दित रहें ॥७॥

इममोदुनं निदधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् । स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु ॥ ८ ॥

७—**चतुरः** । चतुः संख्याकान् धर्मार्थकाममोक्षान् । **कुम्भान्** । अ० ३ । १२ । ७ । कुं भूमिम् उम्भति पूरयतीति कुम्भः । भूमिपूरकान् । **चतुर्धा** । चतुष्प्रकारेण ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्रमरूपेण यद्वा वेदचतुष्टयेन । **ददामि** । प्रयच्छामि । **क्षीरेण** । म० ६ भोजनसाधनेन । **पूर्णान्** । पूरितान् । **उदकेन** । सेचनसाधनेन । **दध्ना** । म० ६ । धारणेन पोषणेन वा । अन्यत् पूर्ववत् म० ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमम् । ओदनम् । नि । दधे । ब्राह्मणेषु । विष्टारिणम् । लोकऽजितम् । स्वःऽगम् । सः । मे । मा । क्षेष्ट । स्वधया । पिन्वमानः । विश्वऽरूपा । धेनुः । कामऽदुघा । मे । अस्तु ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(ब्राह्मणेषु) ब्रह्मज्ञानियों के बीच (विष्टारिणम्) विस्तार वाले (लोकजितम्) सब लोक के जीतनेवाले (स्वर्गम्) सुख स्वरूप (इमम्) इस (ओदनम्) सींचने वा बढ़ाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा को (नि) निरन्तर (दधे) धरता हूं । (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (पिन्वमानः) बढ़ता हुआ (सः) वह ईश्वर (मे) मेरे लिये (मा क्षेष्ट) कभी न घटे । (विश्वरूपा) सब अङ्गों से सिद्ध (धेनुः) यह तृप्त करने वाली वेदवाणी (मे) मेरे लिये (कामदुघा) उत्तम कामनाओं को पूर्ण करनेवाली (अस्तु) होवे ॥ ८ ॥

भावार्थः—ब्रह्मज्ञानी महात्मा लोग परमात्मा की महिमा को साक्षात् करके सुखी होते हैं, सब मनुष्य परमकल्याणी वेदवाणी को प्राप्त कर उस जगदीश्वर के ज्ञान से सदा आनन्द भोगें ॥ ८ ॥

सूक्तम् ३५ ॥

१-७ ॥ ओदनो देवता । १, २, ५-७ त्रिष्टुप् ३, ४ जगती ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् । यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ १ ॥

८—**इमम्** । निर्दिष्टम् । **ओदनम्** । सेचनशीलं प्रवर्धकम् अन्नरूपं वा परमात्मानम् । **नि** । नितराम् । **दधे** । धरामि । **ब्राह्मणेषु** । अ० ४ । ६ । १ । वेदवेत्तृषु पण्डितेषु । **विष्टारिणम्** । म० १ विस्तारवन्तम् । **लोकजितम्** । सर्वलोकजेतारम् । **स्वर्गम्** । सुष्ठु अर्जनीयं सुखस्वरूपम् । **सः** । ओदनः । **मे** । मह्यम् । **मा क्षेष्ट** । क्षि क्षये, माङि लुङ् । क्षयं मा प्राप्नोतु । **स्वधया** । स्वधारणशक्त्या । **पिन्वमानः** । वर्धमानः । **विश्वरूपा** । सर्वाङ्गसिद्धा । **धेनुः** । अ० ३ । १० । १ । वाङ्नाम—निघ० १।११ । तर्पयित्री वेदवाणी । **कामदुघा** । **दुहः कब्घश्च** (पा० ३ । २ । ७०) इति काम+दुह प्रपूरणे—कप् हस्य घः । उत्तमकामानां दोग्ध्री प्रपूरयित्री । अभीष्टसम्पादयित्री । **मे** । मह्यम् । **अस्तु** ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यम् । ओदनम् । प्रथमऽजाः । ऋतस्य । प्रजाऽपतिः । तपसा । ब्रह्मणे । अपचत् । यः । लोकानाम् । विऽधृतिः । न । अभिऽरेषात् । तेन । ओदनेन । अति । तराणि । मृत्युम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ऋतस्य) सत्य के (यम्) जिस (ओदनम्) वृद्धि करने वाले परमात्मा को (प्रथमजाः) प्रख्यात पुरुषों में उत्पन्न हुए, (प्रजापतिः) प्रजापालक योगी जन ने (तपसा) अपने तप, सामर्थ्य से (ब्रह्मणे) ब्रह्म की प्राप्ति के लिये (अपचत्) परिपक्व अर्थात् हृदय में दृढ़ किया है। (यः) जो परमात्मा (लोकानाम्) सब लोकों का (विधृतिः) विधाता (न) कभी नहीं (अभिरेषात्) घटता है, (तेन) उस (ओदनेन) बढ़ाने वाले वा अन्न रूप परमात्मा के साथ (मृत्युम्) मृत्यु के कारण [निरुत्साह आदि दोष] को (अति = अतीत्य) लांघकर (तराणि) मैं तर जाऊँ ॥ १ ॥

भावार्थः—जिस परमात्मा को ऋषि मुनि महात्मा लोग साक्षात् करते चले आये हैं, उसी के गुणों को हम जानकर पुरुषार्थ के साथ अपने जीवन को सुधारें ॥ १ ॥

येनातरन् भूतकृतोऽति मृत्युं यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण ।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥२॥

१—**यम् । ओदनम् ।** सू० ३४ । म० १ । सेचकं प्रवर्धकं वा परमात्मानम् । **प्रथमजाः ।** प्रथमेषु श्रेष्ठपुरुषेषु जातः । **ऋतस्य ।** सत्यस्य परब्रह्मरूपस्य । **प्रजापतिः ।** प्रजानां पालको योगिजनः । **तपसा ।** स्वसामर्थ्येन । **ब्रह्मणे ।** ब्रह्मप्राप्तये । **अपचत् ।** पक्वं हृदये दृढं कृतवान् । **यः ।** ओदनः । **लोकानाम् ।** ब्रह्माण्डानाम् । **विधृतिः ।** विधारयिता । **न ।** निषेधे । **अभिरेषात् ।** रिष हिंसायाम्–लङर्थे लेट् कर्मण्यर्थे । रेष्यते । नश्यति । **तेन । ओदनेन ।** सेचकेन प्रवर्धकेन अन्नरूपेण वा परमात्मना । **अति ।** अतीत्य । **तराणि ।** पारं गच्छानि प्राप्नवानि । **मृत्युम् ।** मरणकारणं निरुत्साहम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येन । अतरन् । भूतऽकृतः । अति । मृत्युम् । यम् । अनुऽअविन्दन् । तपसा । श्रमेण । यम् । पपाच । ब्रह्मणे । ब्रह्म । पूर्वम् । तेन । ओदनेन । अति । तराणि । मृत्युम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(येन) जिस परमात्मा के साथ (भूतकृतः) प्राणियों को [उत्तम] बनाने वाले पुरुष (मृत्युम्) मृत्यु के कारण निरुत्साह आदि को (अति = अतीत्य) लांघकर (अतरन्) तर गये हैं, और (यम्) जिसको (तपसा) ब्रह्मचर्य आदि तप और (श्रमेण) परिश्रम से (अन्वविन्दन्) उन्होंने अनुक्रम से पाया है। और (यम्) जिसको (ब्रह्मणे) ब्रह्मा, [वेदज्ञानी] के लिये (ब्रह्म) वेद में (पूर्वम्) पहिले ही (पपाच) परिपक्व वा दृढ किया था। (तेन) उस (ओदनेन) बढ़ाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ.....म० १ ॥ २ ॥

भावार्थः—जिस परमात्मा को पाकर महा उपकारी जनों ने तप और परिश्रम से अनेक विघ्नों को हटाकर सुख प्राप्त किया है और जिसका प्रतिपादन वेदों ने किया है, उसी के ज्ञान से सब मनुष्य अपने क्लेश टालकर आनन्द पावें ॥ २ ॥

यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन । यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनातितराणि मृत्युम् ॥ ३ ॥

यः । दाधार । पृथिवीम् । विश्वऽभोजसम् । यः । अन्तरिक्षम् । आऽअपृणात् । रसेन । यः । अस्तभ्नात् । दिवम् । ऊर्ध्वः । महिम्ना । तेन । ओदनेन । अति । तराणि । मृत्युम् ॥ ३ ॥

२—**येन** । ओदनेन । **अतरन्** । पारं प्राप्नुवन् । **भूतकृतः** । भूतानां प्राणिनां कर्तार उपकर्तारः पुरुषाः । **अति** । अतीत्य । **मृत्युम्** । मरणहेतुं निरुत्साहादिकम् । **यम्** । **अन्वविन्दन्** । अनुक्रमेण प्राप्नुवन् । **तपसा** । ब्रह्मचर्येण । **श्रमेण** । श्रमु तपसि खेदे च-घञ् । परिश्रमेण । ब्रह्माभ्यासेन । **यम्** । **पपाच** । पक्वं दृढं चकार । **ब्रह्मणे** । ब्रह्मज्ञानिने । **ब्रह्म** । वेदः । **पूर्वम्** । प्रथमम् । अन्यत् पूर्ववत् म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यः) जिस परमेश्वर ने (विश्वभोजसम्) सबका पालन करने वाली (पृथिवीम्) पृथिवी को (दाधार) धारण किया था, (यः) जिसने (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (रसेन) रस अर्थात् अन्न वा जल से (आ अपृणात्) भर दिया है । (यः) जिसने (महिम्ना) अपनी महिमा से (ऊर्ध्वः) ऊंचा होकर (दिवम्) प्रकाशमान सूर्य को (अस्तभ्नात्) ठहराया है । (तेन) उस (ओदनेन) बढ़ाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ ..म० १ ॥ ३ ॥

भावार्थः—परमात्मा ने पृथिवी आदि लोकों और सब चराचर जगत् को रचकर धारण किया है और जो सबसे ऊपर विराजमान है, उसकी महिमा को विचार कर हम अपनी उन्नति करें ॥ ३ ॥

यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदरात्राः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः । अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदुनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ ४ ॥

यस्मात् । मासाः । निःऽमिताः । त्रिंशत्ऽअराः । सम्ऽवत्सरः । यस्मात् । निःऽमितः । द्वादशऽअरः । अहोरात्राः । यम् । परिऽयन्तः । न । आपुः । तेन । ओदुनेन । अति । तराणि । मृत्युम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(यस्मात्) जिस [परमात्मा] से (त्रिंशदराः) तीस अरों

३—**यः** । ओदनः । **दाधार** । धृतवान् । **पृथिवीम्** । भूमिम् । **विश्वभोजसम्** भुज पालनाभ्यवहारयोः—असुन् । सर्वस्य पालयित्रीम् । **अन्तरिक्षम्** । मध्यलोकम् । **आ—अपृणात्** । पॄ पालनपूरणयोः—लङ् । सम्यक् पूरितवान् । **रसेन** । अन्नम्—निघ० २ । ७ । उदकम्—निघ० १ । १२ । **अस्तभ्नात्** । स्तन्भु[1] रोधने—लङ् । अवरुद्धवान् । दृढ़ीकृतवान् । **दिवम्** । प्रकाशमानं सूर्यम् । **ऊर्ध्वः** । उपरि वर्तमानः सन् । **महिम्ना** । महत्त्वेन । प्रभावेण । अन्यत् पूर्ववत् म० १ ॥

४—**यस्मात्** । ओदनात्परमेश्वरात् । **मासाः** । मसी परिमाणे—घञ् ।

---

१. यह सौत्र धातु है । द्र० काशि० ३ । १ । ८२ ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले (मासाः) महीने (निर्मिताः) बने हैं, (यस्मात्) जिससे (द्वादशारः) बारह अरों [के समान महीनों] वाला (संवत्सरः) संवत्सर (निर्मितः) बना है। (यम्) जिसको (परियन्तः) घूमते हुए (अहोरात्राः) दिन रात (न) नहीं (आपुः) पकड़ सके हैं। (तेन) उस (ओदनेन) बढ़ाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ...म० १ ॥ ४ ॥

भावार्थः—परमात्मा ने दिन रात आदि काल चक्र बनाया है परन्तु वह अनादि अनन्त होने से काल के अधिकार से बाहिर है। उसी की उपासना सब मनुष्य करें ॥ ४ ॥

यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति । ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ ५ ॥

यः । प्राणदः । प्राणदवान् । बभूव । यस्मै । लोकाः । घृतवन्तः । क्षरन्ति । ज्योतिष्मतीः । प्रदिशः । यस्य । सर्वाः । तेन । ओदनेन । अति । तराणि । मृत्युम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(यः) जो परमेश्वर (प्राणदः) प्राण देने वाला और (प्राणदवान्) प्राणदाताओं [सूर्य पृथिवी वायु आदि] का रखने वाला (बभूव)

मस्यते परिमीयते कालोऽनेन स मासः । शुक्लकृष्णपक्षद्वयात्मकाः कालाः। **निर्मिताः** । रचिताः । **त्रिंशदराः** । रथचक्रावयवाः कीलका अराः चक्रवदावर्तमानत्वान्मासास्तथा रूप्यन्ते । त्रिंशत्संख्याकानि दिनानि अरा इव येषां ते तथोक्ताः । **संवत्सरः** । अ० १ । ३५ । ४ । द्वादशमासात्मकः कालः । **यस्मात्** । **निर्मितः** । **द्वादशारः** । द्वादशमासा अरा इव चक्रे स्थिता यस्मिन् स तथाभूतः । **अहोरात्राः** । अहानि च रात्रयश्च । **यम्** । परमात्मानम् । **परियन्तः** । परिगच्छन्तः । परिवर्त्तमानाः । **न** । निषेधे । **आपुः** । प्राप्तवन्तः । अन्यत् पूर्ववत् । म० १ ॥

५— **यः** । ओदनः । परमात्मा । **प्राणदः** । प्राणदाता । **प्राणदवान्** । प्राणदैः प्राणप्रदैः सूर्यपृथिवीव्याप्यादिभिर्युक्तः । **बभूव** । **यस्मै** । परमेश्वराय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ, और (यस्मै) जिसके लिये (घृतवन्तः) प्रकाशमान् वा सारवान् (लोकाः) सब लोक (क्षरन्ति) बहते हैं। और (यस्य) जिसकी ही (सर्वाः) सब (ज्योतिष्मतीः=०-त्यः) तेजोमय (प्रदिशः) बड़ी दिशायें हैं। (तेन) उस (ओदनेन) बढ़ाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ.....म० १ ॥ ५ ॥

भावार्थः—सब लोक लोकान्तर और सब पदार्थ परमेश्वर के वशवर्ती हैं। उसकी आज्ञा पालन से हम सदा सुखी रहें ॥ ५ ॥

यस्मात् पक्वादमृतं संबभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव। यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ ६ ॥

यस्मात्। पक्वात्। अमृतम्। सम्ऽबभूव। यः। गायत्र्याः। अधिऽपतिः। बभूव। यस्मिन्। वेदाः। निऽहिताः। विश्वऽरूपाः। तेन। ओदनेन। अति। तराणि। मृत्युम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यस्मात् पक्वात्) जिस परिपक्व परमात्मा से (अमृतम्) मोक्ष (संबभूव) उत्पन्न हुआ, (यः) जो (गायत्र्याः) गायत्री [स्तुति वा वेदवाणी] का (अधिपतिः) अधिपति (बभूव) हुआ, (यस्मिन्) जिसमें (विश्वरूपाः) सबसे कीर्तन योग्य अथवा सब का निरूपण करने वाले (वेदाः)

लोकाः। दृश्यमानानि भुवनानि। **घृतवन्तः**। दीप्तिमन्तः। सारवन्तः। **क्षरन्ति**। स्रवन्ति। **ज्योतिष्मतीः**। प्रशस्ततेजस्काः। प्रकाशवत्यः। **प्रदिशः**। प्रकृष्टा दिशाः। **यस्य**। ओदनस्य सम्बन्धिन्यः सन्ति। **सर्वाः**। समस्ताः। अन्यत् पूर्ववत्। म० १ ॥

६—यस्मात्। परमात्मनः। **पक्वात्**। दृढस्वभावात्। **अमृतम्**। अमरणहेतुः। मोक्षः। **संबभूव**। उत्पन्नं बभूव। **यः**। **गायत्र्याः**[1]। अ०३।३।२। गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः—निरु० ७। १२। गायनीयायाः स्तुतेः। वेदवाण्याः। **अधिपतिः**। स्वामी। **बभूव**। **यस्मिन्**। **वेदाः**। विद ज्ञाने, विद सत्तायाम्,

---

१. 'यया गायन्तं त्रायते' इति गायत्री (य० / द०भा० ६। १३)। गयान् प्राणान् त्रायते सा गायत्री (ऋग्० भा० भू० ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय, पृ० ३२१)। प्राणा वै गयास्तत्प्राणांस्तत्रे, तद्यद्गयांस्तत्रे, तस्माद् गायत्री नाम (श० ब्रा० १४। ८। १५। ७) गायतो मुखादुदपतत् (निरु० ७। १२) ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद (निहिताः) निधिरूप से स्थित हैं। (तेन) उस (ओदनेन) बढ़ाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ (मृत्युम्) मरण के कारण [निरुत्साह आदि दोष] को (अति = अतीत्य) लांघ कर (तराणि) मैं तर जाऊं ॥ ६ ॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने कल्याणमयी वेदवाणी देकर मनुष्यों को मोक्ष का अधिकारी किया है। उसके गुण कर्म स्वभाव को पहिचान कर हम सदा पुरुषार्थ करते रहें ॥ ६ ॥

अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु। ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्धानस्य देवाः ॥७॥

अव। बाधे। द्विषन्तम्। देवऽपीयुम्। सऽपत्नाः। ये। मे। अप। ते। भवन्तु। ब्रह्मऽओदनम्। विश्वऽजितम्। पचामि। शृण्वन्तु। मे। श्रत्ऽदधानस्य। देवाः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(द्विषन्तम्) द्वेष करने वाले (देवपीयुम्) देवताओं के हिंसक को (अव बाधे) मैं हटाता हूं। (ये) जो (मे) मेरे (सपत्नाः) प्रतियोगी हैं, (ते) वे (अप भवन्तु) हट जावें। (विश्वजितम्) संसार के जीतने वाले (ब्रह्मौदनम्) सबसे बड़े सींचने वाले वा अन्नरूप परमात्मा को

विद्लृ लाभे विद विचारणे-घञ्। धर्मब्रह्मप्रतिपादकानि ऋग्यजुः सामाथर्वात्मकानि अपौरुषेयाणि शास्त्राणि। **निहिताः।** निधिरूपेण स्थापिताः। **विश्वरूपाः।** **खष्पशिल्पशष्पवाष्परूपपर्पतल्पाः** (उ० ३। २८) इति रु शब्दे-पः, दीर्घश्च। यद्वा रूप रूपक्रियायाम्। अच्, रूयते रूप्यते वा रूपम्। सर्वैः रूयमाणाः कीर्त्यमानाः। सर्वेषां पदार्थानां रूपकाः। अन्यत् पूर्ववत् ॥

७—**अव बाधे।** अपवारयामि। **द्विषन्तम्।** हिंसन्तम्। **देवपीयुम्।** पीयति हिंसाकर्मा-निरु० ४। २५। **खरुशङ्कुपीयु०** (उ० १। ३६) इति पीयतेः-कुः। देवानां हिंसकम्। **सपत्नाः।** अ० १। ९। २। शत्रवः। **ये। मे।** मम। **अपभवन्तु।** दूरे गच्छन्तु। **ते।** शत्रवः। **ब्रह्मौदनम्।** ओदन इति व्याख्यातम्—सू० ३४ म० १। प्रवृद्धं सेचकं प्रवर्धकम् अन्नरूपं वा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पचामि) पक्का [हृदय में दृढ़] करता हूं। (देवाः) व्यवहार कुशल विद्वान् लोग (श्रद्दधानस्य) श्रद्धा रखने वाले (मे) मेरी [वार्ता] (शृण्वन्तु) सुनें ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य जगदीश्वर में पूरी भक्ति करके पुरुषार्थ पूर्वक अपने सब विघ्नों को हटा कर आनन्द भोगें ॥ ७ ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

अथ अष्टमोऽनुवाकः

सूक्तम् ३६ ॥

१-१० । अग्निर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

तान्त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा ।
यो नो दुरस्याद् दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात् ॥ १ ॥

तान् । सत्यऽओजाः । प्र । दहतु । अग्निः । वैश्वानरः । वृषा । यः । नः ।
दुरस्यात् । दिप्सात् । च । अथो इति । यः । नः । अरातिऽयात् ॥ १ ॥

भावार्थः—(सत्यौजाः) सत्य बल वाला, (वैश्वानरः) सब नरों का हित करने वाला, (वृषा) सुख वर्षाने वाला वा ऐश्वर्यवान् (अग्निः) सर्व-व्यापक परमेश्वर (तान्) उन सबको (प्रदहतु) भस्म कर डाले। (यः)

परमात्मानम् । **विश्वजितम्** । सर्वस्य जेतारम् । **पचामि** । परिपक्वं दृढं करोमि । **शृण्वन्तु** । आकर्णयन्तु । **मे** । मम वाक्यम् । **श्रद्दधानस्य** । श्रद्धाधारकस्य । **देवाः** । व्यवहारिणो विद्वांसः ॥

१—तान् । निर्दिष्टान् । **सत्यौजाः** । अवितथबलः । **प्र** । प्रकर्षेण । **दहतु** । भस्मीकरोतु । **अग्निः** । सर्वव्यापकः परमेश्वरः । **वैश्वानरः** । अ० १ । १० । ४ । सर्वनरहितः । **वृषा** । अ० १ । १२ । १ । सुखवर्षकः । ऐश्वर्यवान् । **यः** । शत्रुः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो (नः) हमें (दुरस्यात्) दुष्ट माने, (च) और जो (दिप्सात्) मारना चाहे, (अथो) और भी (यः) जो (नः) हमसे (अरातियात्) बैरी सा बर्ताव करे ॥ १ ॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य परमेश्वर पर विश्वास करके धर्म के विघ्नकारियों को नष्ट करें ॥ १ ॥

यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति ।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ॥ २ ॥

यः । नः । दिप्सत् । अदिप्सतः । दिप्सतः । यः । च । दिप्सति ।
वैश्वानरस्य । दंष्ट्रयोः । अग्नेः । अपि । दधामि । तम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (अदिप्सतः) न सताने वाले (नः) हमको (दिप्सत्) सताना चाहे, (च) और (यः) जो (दिप्सतः) सताने वाले [हम] को (दिप्सति) सताना चाहता है, (तम्) उसको (वैश्वानरस्य) सब नरों के हितकारक (अग्नेः) ज्ञानी पुरुष के (दंष्ट्रयोः) दोनों डाढ़ों के बीच जैसे (अपि) अवश्य (दधामि) धरता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्मात्माओं को बिना कारण सतावे, और जो दुष्ट धर्मात्माओं को उनके दण्ड देने पर भी दुष्ट आचरण करे, उन शत्रुओं को

नः । अस्मान् । **दुरस्यात्** । **उपमानादाचारे** (पा० ३।१।१०) इति दुष्ट—क्यच् । **दुरस्युर्द्रविणस्युर्०** (पा० ७ । ४ । ३६) इति क्यचि दुष्टस्य दुरस्भावः । तदन्ताल्लेटि आडागमः । दुष्टानिवाचरेत् । **दिप्सात्** । दन्भु दम्भे—सन् । **दम्भ इच्च** (पा० ७ । ४ । ५६) इति इत्वम् । **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** (पा० ७ । ४ । ५८) इति अभ्यासलोपः । भष्भावाभावश्छान्दसः । धिप्सेत् । दम्भितुं हिंसितुमिच्छेत् । **च** । **अथो** । अपि च । **अरातियात्** । पूर्ववत् क्यचि लेट् । अरातिवदाचरेत् । शत्रुवदनुतिष्ठेत् ॥

२—यः । शत्रुः । **नः** । अस्मान् । **दिप्सत्** । लेटि अडागमः । दम्भितुं हिंसितुमिच्छेत् । **अदिप्सतः** । दम्भितुं हिंसितुमनिच्छतः । **दिप्सतः** । हिंसितुमिच्छतः । **यः** । **च** । **दिप्सति** । दम्भितुमिच्छति । जिहिंसिषति । **वैश्वानरस्य** । सर्वनरहितस्य । **दंष्ट्रयोः** । **दाम्नीशसयुयुज०** (पा० ३ । २ । १८२) इति दंश दशने—ष्ट्रन्, अजा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा परमेश्वर के दिये सामर्थ्य से ऐसे कुचल डाले जैसे डाढ़ों के बीच अन्न को ॥ २ ॥

य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशे ऽमावास्ये ।
क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वांस्तान्त्सहसा सहे ॥ ३ ॥

ये । आऽगरे । मृगयन्ते । प्रतिऽक्रोशे । अमाऽवास्ये । क्रव्यऽअदः । अन्यान् । दिप्सतः । सर्वान् । तान् । सहसा । सहे ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(ये) जो दुष्ट (आगरे) घर में (प्रतिक्रोशे) गूंजते हुए (अमावास्ये) अमावस के अन्धकार में (मृगयन्ते) खोजते फिरते हैं । (अन्यान्) दूसरों को (दिप्सतः) सताने वाले (तान् सर्वान्) उन सब (क्रव्यादः) मांस-भक्षी सिंह आदिकों को (सहसा) बल से (सहे) मैं जीतता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थः—रात्रि के अन्धकार में जो सिंह आदि हिंसक पशु वा मनुष्य सतावें, राजा उनका यथावत् प्रबन्ध करे ॥ ३ ॥

सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे ।
सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ॥ ४ ॥

सहे । पिशाचान् । सहसा । एषाम् । द्रविणम् । ददे । सर्वान् । दुरस्यतः । हन्मि । सम् । मे । आऽकूतिः । ऋध्यताम् ॥ ४ ॥

दित्वात्—टाप् । खादनसाधनयोर्दन्तविशेषयोर्मध्ये । **अग्नेः** । ज्ञानिनः पुरुषस्य । **अपि** । अवधारणे । **दधामि** । धरामि । **तम्** । शत्रुम् ॥

३—**ये** । शत्रवः । **आगरे** । **ऋदोरप्** (पा०३ । ३ । ५७) इति गृ निगरणे—अप् । आगारे । गृहे । **मृगयन्ते** । मृग अन्वेषणे । अन्विच्छन्ति । **प्रतिक्रोशे** । प्रतिध्वनियुक्ते । **अमावास्ये** । अमा = सह वसतश्चन्द्रार्कौ यस्याम्, अमा+वस निवासे—ण्यत्,[1] टाप् । अमावास्या कृष्णपक्षान्ततिथिः । **अ च** (पा० ४ । ३ । ३१) इति अमावास्या—अप्रत्ययः, जात इत्यर्थे । अमावास्यायां जाते कृष्णकाले । **क्रव्यादः** । अ० २ । २५ । ५ । मांसभक्षकान् सिंहादीन् । **अन्यान्** । इतरान् पुरुषान् । **दिप्सतः** । हिंसितुमिच्छून् । **सर्वान्** । **तान्** । **सहसा** । बलेन । **सहे** । अभिभवामि ॥

---

१. अमावस्यदन्य० (३ । १ । १२२) इत्यनेन ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(पिशाचान्) मांसभक्षकों को (सहसा) बल से (सहे) मैं जीतता हूं, और (एषाम्) इनका (द्रविणम्) धन [सुपात्रों को] (ददे) मैं देता हूं, (दुरस्यतः) सताने वाले (सर्वान्) सबों को (हन्मि) मैं मारता हूं। (मे) मेरा (आकूतिः) शुभ संकल्प (सम् ऋध्यताम्) यथावत् सिद्ध होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—राजा दुष्टों का हनन करके उनका धन सेनापति आदि योग्य पुरुषों को पारितोषिक में देवे और प्रयत्न पूर्वक अपना शुभ संकल्प सिद्ध करे ॥४॥

ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् ।
नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे ॥ ५ ॥

ये । देवाः । तेन । हासन्ते । सूर्येण । मिमते । जवम् । नदीषु । पर्वतेषु । ये । सम् । तैः । पशुऽभिः । विदे ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(ये) जो (देवाः) विजयी शूर (तेन) पुण्य के साथ (हासन्ते) चलना चाहते हैं, और (ये) जो (नदीषु पर्वतेषु) नदियों और पर्वतों पर (सूर्येण) सूर्य के साथ (जवम्) अपना वेग (मिमते) करते हैं (तैः) उन (पशुभिः) दृष्टि वाले देवताओं से (सम् विदे) मैं मिलता हूं ॥५॥

भावार्थः—जो महात्मा लोग सूर्य के समान शीघ्रगामी होकर बड़े बड़े कठिन कामों को सिद्ध करते हैं, उनसे मिलकर सब मनुष्य उत्तम गुण प्राप्त करें ॥ ५ ॥

४—**सहे** । अभिभवामि । **पिशाचान्** । अ० १ । १६ । ३ । पिशिताशिनो राक्षसान् । **सहसा** । बलेन । **एषाम्** । **द्रविणम्** । अ० २ । २९ । ३ । धनम् । **ददे** । ददामि पात्रेभ्यः । **सर्वान्** । **दुरस्यतः** । हन्तुमिच्छून् । **हन्मि** । नाशयामि । **मे** । मम । **आकूतिः** । अ० ३ । २ । ३ । शुभसंकल्पः । **सम् ऋध्यताम्** । सम्यक् सिध्यतु ॥

५—**ये** । **देवाः** । विजिगीषवः शूराः । **तेन** । तॄ प्लवनसंतरणयोः—डः । पुण्येन—इति शब्दकल्पद्रुमः । **हासन्ते** । ओहाङ् गतौ—सनि छान्दसं रूपम् । जिहासन्ते । गन्तुमिच्छन्ति । **सूर्येण** । आदित्येन । **मिमते** । माङ् माने—लट् । उपमया सादृश्येन कुर्वन्ति । **जवम्** । स्ववेगम् । **नदीषु** । **पर्वतेषु** । गिरिषु । **ये** । **तैः** । **पशुभिः** । अ० २ । २६ । १ । द्रष्टृभिर्देवैः । **सम् विदे** । संजाने । संगच्छे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपनो अस्मि पिशाचानाँ व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् ॥६॥

तपनः । अस्मि । पिशाचानाम् । व्याघ्रः । गोमताम्ऽइव । श्वानः । सिंहम्ऽइव । दृष्ट्वा । ते । न । विन्दन्ते । निऽअञ्चनम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—मैं (पिशाचानाम्) मांसाहारियों का (तपनः) संताप देने वाला (अस्मि) हूँ, (इव) जैसे (व्याघ्रः) बाघ (गोमताम्) गौ वालों का होता है। (ते) वे लोग (न्यञ्चनम्) छिपने का स्थान (न) नहीं (विन्दन्ते) पाते हैं, (इव) जैसे (श्वानः) कुत्ते (सिंहम्) सिंह को (दृष्ट्वा) देखकर [घबड़ा जाते हैं] ॥ ६ ॥

भावार्थः—दण्डवान् प्रतापी पुरुष के सन्मुख हिंसक जीव नहीं ठहरते हैं ॥ ६ ॥

न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः। पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ॥ ७ ॥

न । पिशाचैः । सम् । शक्नोमि । न । स्तेनैः । न । वनर्गुऽभिः । पिशाचाः । तस्मात् । नश्यन्ति । यम् । अहम् । ग्रामम् । आऽविशे ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(न) न तो (पिशाचैः) पिशाचों के साथ, (न) न

६—**तपनः** । तप–ल्युट् । संतापकः । **अस्मि** । **पिशाचानाम्** । मांसभक्षकाणाम् । **व्याघ्रः** । हिंसकजन्तुविशेषः । **गोमताम्** । गोस्वामिनाम् । **इव** । यथा । **श्वानः** । अ० ४ । ५ । २ । श्वाऽशुयायी शवतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः श्वसितेर्वा–निरु० । ३ । १८ । कुक्कुराः । **सिंहम्** । अ० । ४ । ८ । ७ । **इव** । **दृष्ट्वा** । अवलोक्य । **ते** । पिशाचाः । **न** । निषेधे । **विन्दन्ते** । लभन्ते । **न्यञ्चनम्** । निम्नगमनं रक्षास्थानम् ॥

७—**न** । निषेधे । **पिशाचैः** । पिशिताशिभिः । **सम्** । सम् वस्तुम् । **शक्नोमि** ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्तेनैः) चोरों के साथ, और (न) न (वनर्गुभिः) वनचर डाकुओं के साथ (सम् शक्नोमि) रह सकता हूं। (यम्) जिस (ग्रामम्) ग्राम में (अहम्) मैं (आविशे) घुसता हूं, (पिशाचाः) पिशाच लोग (तस्मात्) उस स्थान से (नश्यन्ति) भाग जाते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—राजा प्रबन्ध करे कि बस्तियों में हिंसक चोर आदि लूट खसोट न करें ॥ ७ ॥

यं ग्रामंमाविशतं इदमुग्रं सहो मम ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ॥ ८ ॥

यम् । ग्रामम् । आऽविशते । इदम् । उग्रम् । सहः । मम ।
पिशाचाः । तस्मात् । नश्यन्ति । न । पापम् । उप । जानते ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(यम् ग्रामम्) जिस ग्राम में (इदम्) यह (उग्रम्) उग्र (मम) मेरा (सहः) बल (आ विशते) प्रवेश करता है। (पिशाचाः) पिशाच लोग (तस्मात्) उस स्थान से (नश्यन्ति) भाग जाते हैं और (पापम्) पाप को (न) नहीं (उप जानते) जानते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थः—प्रतापी नीति निपुण राजा के शासन में दुष्ट लोग उपद्रव नहीं मचाते हैं ॥ ८ ॥

शक्तो भवामि । **स्तेनैः** । चौरैः । **वनर्गुभिः** । **मृगय्वादयश्च** (उ० १ । ३७) इति वन + गम्लृ गतौ–डु:, रुडागमः । स्तेननाम–निघ० ३।२४ । वनर्गू वनगामिनौ–निरु० ३ । १४ । वनचरैः । दस्युभिः । **पिशाचाः** । पिशिताशनाः । **तस्मात्** । ग्रामात् । **नश्यन्ति** । अदृष्टा भवन्ति, पलायन्ते । **यम्** । **अहम्** । **ग्रामम्** । अ० ४ । ७ । ५ । वसतिम् । **आविशे** । प्रविशामि ॥

८—**यम्** । **ग्रामम्** । वसतिम् । **आविशते** । प्रविशति । **इदम्** । **उग्रम्** । तीक्ष्णम् । **सहः** । बलम् । **मम** । मदीयम् । **पिशाचाः, तस्मात्, नश्यन्ति** । म० ७ । **न** । निषेधे । **पापम्** । पाति यस्मात् तत् । अनिष्टम् । **उप जानते** । अवबुध्यन्ते ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव ।
तानहं मन्ये दुर्हितान् जने अल्पशयूनिव ॥ ९ ॥

ये । मा । क्रोधयन्ति । लपिताः । हस्तिनम् । मशकाःऽइव । तान् । अहम् । मन्ये । दुःऽहितान् । जने । अल्पशयून्ऽइव ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(ये) जो (लपिताः) बकवादी लोग (मा) मुझे (क्रोधयन्ति) क्रोध करते हैं, (मशकाः इव) जैसे मच्छड़ (हस्तिनम्) हाथी को । (तान्) उन (दुर्हितान्) दुष्कर्मियों को (जने) मनुष्यों के बीच (अल्पशयून् इव) थोड़े सोने वाले कीट पतंगों के समान (अहम्) मैं (मन्ये) मानता हूँ ॥९॥

भावार्थः—बतबने दुराचारियों को दण्ड देकर राजा सदा दुर्बल रक्खे ॥ ९ ॥

अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या ।
मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते ॥ १० ॥

अभि । तम् । निःऽऋतिः । धत्ताम् । अश्वम्ऽइव । अश्वऽअभिधान्या । मल्वः । यः । मह्यम् । क्रुध्यति । सः । ऊँ इति । पाशात् । न । मुच्यते ॥ १० ॥

भाषार्थः—(तम्) उसको (निर्ऋतिः) अलक्ष्मी (अभिधत्ताम्) बांध लेवे (अश्वम् इव) जैसे घोड़े को (अश्वाभिधान्या) घोड़ा बांधने की

९—**ये** । दुष्टाः । **मा** । माम् । **क्रोधयन्ति** । कोपयन्ति । **लपिताः** । लप व्यक्तायां वाचि—क्तः । लपितं कथनमस्यास्तीति, अर्श आद्यच् । वाचालाः । **हस्तिनम्** । गजम् । **मशकाः** । **कृञादिभ्यः संज्ञायां वुन्** (उ० ५ । ३५) इति मश शब्दे–वुन् । दंशकाः । **इव** । यथा । **तान्** । **अहम्** । **मन्ये** । जानामि । **दुर्हितान्** । दुष्कर्मिणः । **जने** । जनसमूहे । **अल्पशयून्** । **भृमृशीङ्०** (उ० १ । ७) इति अल्प+शीङ् स्वप्ने–उः । अल्पशयनस्वभावान् क्षुद्रजन्तून् ॥

१०—**अभि धत्ताम्** । बध्नातु । **तम्** । दुष्टम् । **निर्ऋतिः** । । अ० ३ । ११ । २ । कृच्छ्रापत्तिः–निरु० २ । ७ । अलक्ष्मीः । **अश्वम् इव** । यथा तुरङ्गम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसरी से । (यः मल्वः) जो मलिन पुरुष (मह्यम्) मुझ पर (क्रुध्यति) क्रोध करता है, (सः) वह (पाशात्) फांसी से (उ न) कभी नहीं (मुच्यते) छुटता है ॥ १० ॥

भावार्थः—राजा कुकर्मी दुष्टों को यथावत् दण्ड देकर सत्पुरुषों की रक्षा करे ॥ १० ॥

सूक्तम् ३७ ॥

१-१२ ॥ १, २, ६, १० ओषधिः, ३, ४, ५ अप्सरसः, ८, ९, इन्द्रः, ११ गन्धर्वः, ७, १२ गन्धर्वाप्सरसो देवताः ॥ १-४, ६, ८-१५ अनुष्टुप्, ५ पथ्या पङ्क्तिः, ७ उष्णिक् ॥

गन्धर्वाप्सरसां गुणोपदेशः—गन्धर्व और अप्सराओं के गुणों का उपदेश ॥

त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षाँस्योषधे ।
त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः ॥ १ ॥

त्वया । पूर्वम् । अथर्वाणः । जघ्नुः । रक्षांसि । ओषधे ।
त्वया । जघान । कश्यपः । त्वया । कण्वः । अगस्त्यः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ओषधे) हे तापनाशक परमेश्वर ! (त्वया) तेरे सहारे से (पूर्वम्) पहिले (अथर्वाणः) निश्चल स्वभाव वाले अथवा मंगल के लिये व्यापक महात्माओं ने (रक्षांसि) राक्षसों को (जघ्नुः) मारा था । (त्वया)

अश्वाभिधान्या । अश्वमभिदधाति बध्नात्यनया सा अश्वाभिधानी । करणे—ल्युट् टित्त्वाद् ङीप् । अश्वबन्धनरज्ज्वा । **मल्वः** । **कृगृशदृभ्यो वः** (उ० १ । १५५) इति मल धारणे—वः । मलिनः । क्रूरः । **यः** । **मह्यम्** । **क्रुधद्रुहेर्ष्या०** (पा०१। ४ । ३७) इति चतुर्थी । **क्रुध्यति** । कुप्यति । **सः** । **उ** । एव । **पाशात्** । बन्धनात् । **न** । **मुच्यते** । वियुज्यते ॥

१—त्वया । **पूर्वम्** । अग्रे । **अथर्वाणः** । अ० ४ । १ । ७ । निश्चलस्वभावाः । मङ्गलाय व्यापकाः महात्मानः । **जघ्नुः** । हतवन्तः । **रक्षांसि** । राक्षसान् । **ओषधे** । अ० १ । २३ । १ । हे तापनाशक परमेश्वर ! **जघान** । हतवान् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरे साथ ही (कश्यपः) तत्वदर्शी पुरुष ने, और (त्वया) तेरे साथ ही (कण्वः) मेधावी, तथा (अगस्त्यः) कुटिलगति, पाप के फेंकने में समर्थ जीव ने (जघान) मारा था ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे पूर्वज ऐतिहासिक जितेन्द्रिय पुरुषों ने जगत् का उपकार किया है, वैसे ही सब मनुष्य ज्ञान पूर्वक दोषों का नाश करके परस्पर उपकार करें ॥ १ ॥

त्वया॑ व॒यमप्स॒रसो॑ गन्ध॒र्वाँश्चा॑तयामहे ।
अज॑शृङ्ग्यज॒ रक्ष॒ः सर्वा॑न् ग॒न्धेन॑ नाशय ॥ २ ॥

त्वया॑ । व॒यम् । अ॒प्स॒रसः॑ । ग॒न्ध॒र्वान् । चा॒त॒या॒म॒हे॒ । अज॑ऽशृङ्गि । अज॑ । रक्षः॑ । सर्वा॑न् । ग॒न्धेन॑ । ना॒श॒य॒ ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अजशृङ्गि) हे जीवात्मा के दुःखनाशक शक्ति परमेश्वर ! (त्वया) तेरे साथ (वयम्) हम लोग (अप्सरसः) आकाश, जल, प्राण और प्रजाओं में व्यापक शक्तियों को और (गन्धर्वान्) विद्या वा पृथिवी धारण करने वाले गुणों को (चातयामहे) मांगते हैं । (गन्धेन) अपनी व्याप्ति से (सर्वान्) सब (रक्षः) राक्षसों को (अज) हटा दे और (नाशय) नाश कर दे ॥ २ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर पर विश्वास करके पुरुषार्थ करते हैं, वे ही संसार को सुख देते हैं । [अजशृङ्गी एक औषध भी है] ॥ २ ॥

इन मन्त्रों के साथ अ० २ सू० २ का मिलान करो ॥

कश्यपः । अ० २ । ३३ । ७ । पश्यकः, तत्त्वदर्शकः पुरुषः । **कण्वः** । अ० २।३२ । ३ । मेधावी निघ० ३ । १५ । **अगस्त्यः** । अ० २ । ३२ । ३ । अगस्य कुटिलगतेः पापस्य असने उत्पाटने समर्थः पुरुषः ॥

२—**त्वया** । **वयम्** । **अप्सरसः** । अ० २ । २ । ३ । **सर्त्तेरप्पूर्वादसिः** (उ० ४ । २३७) इति अप् + सृ गतौ—असिः । अप्सु आकाशे जले प्राणेषु प्रजासु च सरणशीलाः शक्तीः । **गन्धर्वान्** । अ० २ । १ । २ । विद्याधारकान् पृथिवीधारकान् वा गुणान् । **चातयामहे** । चते याचने भ्वा० । व्यत्ययेन णिच्—याचामहे । **अजशृङ्गि** । अजो जीवात्मा—अ० ४ । १४ । १ शृङ्गम्—अ० २।३२।६ । शॄ हिंसायाम्—गन्, स च कित् नुट् च, ङीप् । अजस्य जीवात्मनः शृङ्गं दुःखनाशनं यस्याः सा शक्तिः परमेश्वरः, तत्सम्बुद्धौ । अजशृङ्गीति ओषधिविशेषोऽप्यस्ति । **अज** । प्रक्षिप । **रक्षः** । रक्ष पालने—अपादाने क्विप् । राक्षसान् । **सर्वान्** । **गन्धेन** । गन्ध गतिहिंसायाचनेषु[1]—अच् । स्वव्याप्त्या । **नाशय** ॥

---

१. देखें पृ० ६६० की टिप्पणी ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदीं यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम् । गुल्गुलूः पीला नलद्यौ३-क्षगन्धिः प्रमन्दनी । तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥३॥

नदीम् । यन्तु । अप्सरसः । अपाम् । तारम् । अवश्वसम् । गुल्गुलूः । पीला । नलदी । औक्षगन्धिः । प्रमन्दनी । तत् । परा । इत । अप्सरसः । प्रतिबुद्धाः । अभूतन ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अप्सरसः) आकाश, जल, प्राण, और प्रजाओं में व्यापक शक्तियां (अपाम्) जल के (तारम्) तट को (अवश्वसम्) भरती हुई (नदीम्) नदी [नदी के समान पूर्णता] को (यन्तु) प्राप्त हों ॥

[जो प्रत्येक] (गुल्गुलूः) रक्षा साधन से रक्षित, (पीला) सबको घेरने वाली, (नलदी) बन्धन काटने वाली, (औक्षगन्धिः) बड़ों के योग्य गतिवाली, और (प्रमन्दनी) आनन्द देने वाली शक्ति है ।

(तत्) इसलिये (अप्सरसः) हे आकाश, जल, प्राण और प्रजाओं में व्यापक शक्तियो ! (परा) पराक्रम से (इत) प्राप्त हो, तुम (प्रतिबुद्धाः) प्रत्यक्ष जानी हुयी (अभूतन) हो चुकी हो ॥ ३ ॥

३—**नदीम्** । अ० १ । ८ । १ नदीत्वम् । नदीवत्पूर्णताम् । **यन्तु** । प्राप्नुवन्तु । **अप्सरसः** । म० २ । अप्सु आकाशजलप्राणप्रजासु व्यापनशीलाः शक्तयः । **अपाम्** । व्याप्तिमतां जलानाम् । **तारम्** । तॄ प्लवनसंतरणयोः—घञ् । तरणस्थानम्, तीर्थम्, नदीकूलम् । **अवश्वसम्** । श्वस प्राणने—क्विप्, अन्तर्भावितण्यर्थः । अवश्वासयन्तीम् । सर्वतः पूरयन्तीम् । **गुल्गुलूः** । अ० २ । ३६ । ७ । गुड रक्षायाम्—क्विप् + गुड—कुः, स्त्रियाम् ऊङ् । डलयोरैक्यम् । गुडा रक्षासाधनेन गुडिता । रक्षिता शक्तिः । **पीला** । पील प्रतिष्टम्भे—अच्, टाप् । रोधनशीला नियामिका । **नलदी** । णल बन्धने—अच् + दो अवखण्डने—कः, ङीष् । बन्धनच्छेदिका । **औक्षगन्धिः** । औक्षः, अ० २ । ३६ । ७ । उक्षा, महन्नाम—निघ० ३ । ३ । ततः, अण् । **सर्वधातुभ्य इन्** (उ० ४ । ११८) इति गन्ध गतिहिंसायाचनेषु—इन् । महतां योग्या गतिर्यस्याः सा । **प्रमन्दनी** । मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु—ल्युट्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर की अनन्त गुणवाली शक्तियां संसार में व्याप्त हैं। मनुष्य विज्ञान पूर्वक उनसे उपकार लेकर आनन्द पावें ॥ ३ ॥

यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ४ ॥

यत्र । अश्वत्थाः । न्यग्रोधाः । महाऽवृक्षाः । शिखण्डिनः ।
तत् । परा । इत । अप्सरसः । प्रतिऽबुद्धाः । अभूतन ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(यत्र) जहां पर (अश्वत्थाः) वीरों में खड़े होने वाले, (न्यग्रोधाः) शत्रुओं को रोक देने वाले, (महावृक्षाः) अत्यन्त स्वीकार करने योग्य, और (शिखण्डिनः) अत्यन्त उद्यमी पुरुष हों।

(तत्) वहां (अप्सरसः) हे आकाश आदि में व्यापक शक्तियो ! (परा) पराक्रम से (इत) प्राप्त हो, तुम (प्रतिबुद्धाः) प्रत्यक्ष जानी हुई (अभूतन) हो चुकी हो ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव जानकर महापुरुषार्थी होवें ॥ ४ ॥

यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति । तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥

ङीप् । प्रमोदयित्री, हर्षयित्री । **तत्** । तस्मात् । **परा** । पराक्रमेण । **इत** । गच्छत प्राप्नुत । **अप्सरसः** । हे अप्सरसः । आकाशजलप्राणप्रजासु व्यापनशीलाः शक्तयः । **प्रतिबुद्धाः** । प्रत्यक्षज्ञाताः । **अभूतन** । भू सत्तायाम् लुङ् । **तप्तनप्तनथनाश्च** (पा० ७ । १ । ४५) इति तकारस्य तन । अभूत । अवर्तिढ्वम् ।

४—यत्र । यस्मिन् स्थाने । **अश्वत्थाः** । अ० ३ । ६ । १ । अश्वेषु बलवत्सु स्थितिशीलाः । अश्वत्थामानः । अतिवीरपुरुषाः । **न्यग्रोधाः** । न्यक् + रुधिर् आवरणे—अच् । शत्रूणां रोधकाः । **महावृक्षाः** । वृक्ष वरणे-कः । महावरणीयाः । अतिश्रेष्ठाः । **शिखण्डिनः** । **अण्डन् कृसृभृवृञः** (उ० १ । १२९) इति शिखि गतौ—अण्डन्, स च कित् तत इनिः । गतिवन्तः । उद्योगिनः । अन्यत् पूर्ववत् म० ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्र । वः । प्रऽङ्ईङ्खाः । हरिताः । अर्जुनाः । उत । यत्र । आघाटाः । कर्कर्यः । सम्ऽवदन्ति । तत् । परा । इत । अप्सरसः । प्रतिऽबुद्धाः । अभूतन ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(यत्र) जहां (प्रेङ्खाः) उत्तम गतिवाली, (हरिताः) स्वीकार करने योग्य, (अर्जुनाः) उपार्जन करने वाली, (उत) और (यत्र) जहां (आघाटाः) चेष्टा करती हुई (कर्कर्यः) उत्तम कर्म ग्रहण करने वाली प्रजायें (वः) तुम्हारा (संवदन्ति) सम्वाद करती हैं ।

(तत्) वहाँ (अप्सरसः) हे आकाशादि में व्यापक शक्तियो ! (परा) पराक्रम से (इत) प्राप्त हो, तुम (प्रतिबुद्धाः) प्रत्यक्ष जानी हुई (अभूतन) हो चुकी हो ॥ ५ ॥

भावार्थः—उद्योगी पुरुषार्थी पुरुष परमेश्वर की महिमा साक्षात् करके आनन्दित होते हैं ॥ ५ ॥

एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यवती ।
अजशृङ्ग्यरिाट्की तीक्ष्णशृङ्ग्यृषतु ॥ ६ ॥

आ । इयम् । अगन् । ओषधीनाम् । वीरुधाम् । वीर्यऽवती ।
अजऽशृङ्गी । अराट्की । तीक्ष्णऽशृङ्गी । वि । ऋषतु ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(ओषधीनाम्) ताप नाशक (वीरुधाम्) विविध प्रकार से उगने वाली प्रजाओं के बीच (वीर्यवती) बड़ी सामर्थ्य वाली (इयम्) यह

५—**यत्र । वः ।** युष्माकम् । **प्रेङ्खाः ।** प्र+ईखि गतौ-घञ्, टाप् । प्रकृष्टगतयः । **हरिताः । हृश्याभ्यामितन्** (उ० ३ । ९३) इति हृञ् हरणे=स्वीकारे-इतन्, टाप् । हरणीयाः स्वीकरणीयाः । **अर्जुनाः ।** अर्ज अर्जने-उनन् टाप् । अर्जनशीलाः । प्रयत्नस्वभावाः । **उत ।** अपि च । **आघाटाः ।** आङ्+घट चेष्टायाम्-घञ् । चेष्टायमानाः । **कर्कर्यः । कृदाधा०** (उ० ३।४०) इति डुकृञ् करणे-कः, रा दाने ङीप् । कर्कं रातीति कर्करी । कर्मग्रहीत्र्यः प्रजाः । **सम्वदन्ति ।** सम्वादं कुर्वन्ति । अन्यत् पूर्ववत् म० ३ ॥

६—**इयम् ।** समीपे वर्तमाना । **आ अगन् ।** गमेर्लुङि छान्दसं रूपम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति (आ अगन्) प्राप्त हुई है। वही (अजशृङ्गी) जीवात्मा का दुःख काटने वाली, (अराटकी) शीघ्र प्राप्त होने वाली, (तीक्ष्णशृङ्गी) बड़े तेज वाली शक्ति परमेश्वर (वि ऋषतु) व्याप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थः—परम पिता परमेश्वर की शक्ति सब पदार्थों में व्यापक है, उसके ज्ञान से हम लोग अपनी उन्नति करें ॥ ६ ॥

आ नृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः ।
भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ॥ ७ ॥

आऽनृत्यतः । शिखण्डिनः । गन्धर्वस्य । अप्सरःऽपतेः ।
भिनद्मि । मुष्कौ । अपि । यामि । शेपः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(आनृत्यतः) सब ओर चेष्टा करने वाले (शिखण्डिनः) महा उद्योगी (गन्धर्वस्य) वेदवाणी और पृथिवी आदि को धारण करने वाले (अप्सरापतेः) आकाश, जल प्राण और प्रजाओं में व्यापक शक्तियों के रक्षक परमेश्वर का (शेपः) सामर्थ्य (यामि) मैं मांगता हूं, [जिस से] (मुष्कौ) [काम क्रोध रूप] दो चोरों को (अपि) अवश्य (भिनद्मि) छिन्न भिन्न करूं ॥ ७ ॥

आगमत् । आगता । **ओषधीनाम्** । तापनाशयित्रीणां मध्ये । **वीरुधाम्** । विरोहणशीलानां प्रजानां मध्ये । **वीर्यावती** । छान्दसो दीर्घः । अतिशयेन सामर्थ्ययुक्ता । **अजशृङ्गी** । म० २ । अजस्य जीवात्मनो दुःखनाशनी शक्तिः । **अराटकी** । **कृञादिभ्यः संज्ञायां वुन्** (उ० ५ । ३५) इति अर+अट गतौ-वुन् ङीष् । अरं शीघ्रम् अटति सा । शीघ्रगामिनी । **तीक्ष्णशृङ्गी** । म० २ । शृङ्गाणि ज्वलतो नाम-निघ० १ । १७ । तीव्रतेजाः । **वि ऋषतु** । ऋषी गतौ । व्याप्नोतु ॥

७- **आनृत्यतः** । नृती-गात्रविक्षेपे—शतृः । सम्यक् चेष्टायमानस्य । **शिखण्डिनः** । म० ४ । उद्योगिनः । **गन्धर्वस्य** । म० २ । पृथिव्यादिधारकस्य । **अप्सरापतेः** । अ० २ । २ । ३ । अप्सराणाम् आकाशजलप्राणप्रजासु सरणशीलानां शक्तीनां पालकस्य परमेश्वरस्य । **भिनद्मि** । विदारयामि । **मुष्कौ** । **सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक्** (उ० ३ । ४१) इति मुष स्तेये-कक् । कामक्रोधरूपौ तस्करौ । **अपि** । एव । **यामि** । याञ्चाकर्मा-निघ० ३ । १९ । अहं याचे । **शेपः** । **पानीविषिभ्यः पः**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सर्वव्यापक सर्वनियामक परमेश्वर के विचार से मनुष्य जितेन्द्रिय होकर काम क्रोध आदि दोषों को मिटावें ॥ ७ ॥

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः ।
ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ॥ ८ ॥

भीमाः । इन्द्रस्य । हेतयः । शतम् । ऋष्टीः । अयस्मयीः । ताभिः । हविःऽअदान् । गन्धर्वान् । अवकाऽअदान् । वि । ऋषतु ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) परमेश्वर की (शतम्) सौ (हेतयः) हनन शक्तियां (अयस्मयीः) लौह की बनी हुई (ऋष्टीः) खड्गों के समान (भीमाः) भयानक हैं । (ताभिः) उनके साथ [दुष्ट दमन के लिये] (हविरदान्) ग्राह्य अन्न के भोजन करने वाले (अवकादान्) हिंसाओं के नाश करने वाले, (गन्धर्वान्) वेदवाणी और पृथिवी के धारण करने वाले पुरुषों को [वह परमेश्वर] (वि ऋषतु) व्याप्त होवे ॥ ८ ॥

भावार्थः—परमेश्वर दुराचारियों को अनेक प्रकार से दण्ड देकर सत्पुरुषों की रक्षा करता है ॥ ८ ॥

(उ० ३ । २३) इति शीङ् स्वप्ने—पः । शेपो वैतस इति पुंस्प्रजननस्य । शेपः शपतेः स्पृशतिकर्मणः—निरु० ३ । २१ । सामर्थ्यम् ॥

८—**भीमाः** । अ० ३ । २५ । १ । भयंकराः । **इन्द्रस्य** । परमेश्वरस्य । **हेतयः** । अ० १ । १३ । ३ । हननशक्तयः । **शतम्** । बहु—निघ० ३ । १ । **ऋष्टीः** । ऋषी गतौ—क्तिच्, क्तिन् वा । ऋष्टयः । खड्गाः यथा । **अयस्मयीः** । **सर्वधातुभ्योऽसुन्** (उ० ४ । १८९) इति इण् गतौ—असुन् । अयस्मय्यः लौहे निर्मिताः । **ताभिः** । **हविरदान्** । हविः+अद भक्षणे पचाद्यच् । ग्राह्यान्नभोक्तॄन् । **गन्धर्वान्** । म० २ । वेदवाण्यादिधारकान् । **अवकादान्** । **कृञादिभ्यः०** (उ० ५ । ३५) इति अव रक्षणगतिहिंसादिषु—वुन् । टाप् + अद—अच् । हिंसानां भक्षकान् नाशकान् । **वि ऋषतु** । व्याप्नोतु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः।
ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ॥ ९ ॥

भीमाः। इन्द्रस्य। हेतयः। शतम्। ऋष्टीः। हिरण्ययीः। ताभिः। हविःऽअदान्। गन्धर्वान्। अवकाऽअदान्। वि। ऋषतु ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) परमेश्वर की (शतम्) सौ (हेतयः) हनन शक्तियां (हिरण्ययीः) तेजोमयी (ऋष्टीः) तलवारों के समान (भीमाः) भयानक हैं। (ताभिः) उनके साथ [दुष्ट दमन के लिये] (हविरदान्) ग्राह्य अन्न के भोजन करने वाले (अवकादान्) हिंसाओं को नाश करने वाले (गन्धर्वान्) वेदवाणी और पृथिवी के धारण करने वाले पुरुषों को [वह परमेश्वर] (वि ऋषतु) व्याप्त होवे ॥ ९ ॥

भावार्थः—म० ८ के समान ॥ ९ ॥

अवकादानभिशोचान्प्सु ज्योतय मामकान्।
पिशाचान् सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च ॥ १० ॥

अवकाऽअदान्। अभिऽशोचान्। अप्ऽसु। ज्योतय। मामकान्। पिशाचान्। सर्वान्। ओषधे। प्र। मृणीहि। सहस्व। च ॥ १० ॥

भाषार्थः—(अवकादान्) हिंसाओं के नाश करने वाले, (अभिशोचान्) सब ओर प्रकाशमान (मामकान्) मेरे पुरुषों को (अप्सु) व्याप्यमान प्रजाओं

९—हिरण्ययीः। हिरण्यः=हिरण्यमयः=निरु० १०। २३। हिरण्यमय्यः। तेजोमय्यः। अन्यत् पूर्ववत्—म० ८॥

१०—अवकादान्। म० ८। हिंसानां भक्षकान् नाशकान्। **अभिशोचान्**। अभितः शोचमानान् दीप्यमानान्। **अप्सु**। व्याप्यमानासु प्रजासु। **ज्योतय**। ज्योततेर्ज्वलतिकर्मा—निघ० १। १६। णिचि रूपम्। द्योतय प्रकाशय। **मामकान्**। मत्सम्बन्धिनः पुरुषान्। **पिशाचान्**। मांसभक्षकान् रोगादीन्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बीच (ज्योतय) ज्योति वाला कर। (ओषधे) हे औषध समान ताप नाशक परमेश्वर (सर्वान्) सब (पिशाचान्) मांस भक्षक रोग वा जीवों को (प्रमृणीहि) मार डाल (च) और (सहस्व) हरा दे ॥ १० ॥

भावार्थः—परमेश्वर की प्रार्थना पूर्वक धर्मात्मा पुरुष दुष्ट स्वभावों रोग और दुष्ट जीवों का नाश करें ॥ १० ॥

श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः।
प्रियो दृश इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावता ॥ ११ ॥

श्वाऽइव। एकः। कपिःऽइव। एकः। कुमारः। सर्वऽकेशकः। प्रियः। दृशेऽइव। भूत्वा। गन्धर्वः। सचते। स्त्रियः। तम्। इतः। नाशयामसि। ब्रह्मणा। वीर्यावता ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(एकः इव) एक ही परमेश्वर (श्वा) गतिशील वा वृद्धिशील है, (एकः इव) एक ही (कपिः) कंपाने वाला वा क्रोध शील, (कुमारः) कामना योग्य, (सर्वकेशकः) सर्व प्रकाशक है। (प्रियः इव) प्रिय ही परमेश्वर (गन्धर्वः) वेदवाणी वा पृथिवी का धारण करने वाला (भूत्वा) होकर (दृशे) सबके देखने के लिये (स्त्रियः) आपस में संगति रखने वाले समूहों में (सचते) मिला रहता है। (वीर्यावता) उस सामर्थ्य वाले (ब्रह्मणा) परब्रह्म के साथ (तम्) चोट करने वाले चोर को (इतः) यहां से (नाशयामसि) हम नाश करते हैं ॥ ११ ॥

सर्वान्। **ओषधे।** हे ओषधिवत् तापनाशक परमेश्वर। **प्र।** **मृणीहि।** मृण। नाशय। **सहस्व।** अभिभव। **च।** समुच्चये ॥

११—श्वा। **श्वनुक्षन्०** (उ० १। १५९) टुओश्वि गतिवृद्ध्योः कनिन्। श्वाऽशुयायी शवतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः श्वसितेर्वा—निरु० ३। १८। गतिशीलः वृद्धिशीलः। **इव।** अवधारणे। **एकः।** अद्वितीयः। **कपिः।** **कुण्ठिकम्प्योर्नलोपश्च** (उ०४।१४४) इति कपि चलने-इः। कम्पते क्रुध्यतिकर्मा—निघ० २। १२। कम्पयिता। क्रोधशीलः। **कुमारः।** **कमेः किदुच्चोपधायाः** (उ० ३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमात्मा को सर्वद्रष्टा आदि गुण विशिष्ट जानकर मनुष्य ज्ञान पूर्वक अपने दुष्कर्मों का नाश करें ॥ ११ ॥

जाया इद् वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम् ।
अप धावतामर्त्या मर्त्यान् मा सचध्वम् ॥ १२ ॥

जायाः । इत् । वः । अप्सरसः । गन्धर्वाः । पतयः । यूयम् । अप । धावत । अमर्त्याः । मर्त्यान् । मा । सचध्वम् ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(गन्धर्वाः) हे वेदवाणी वा पृथिवी लोक को धारण करने वाले पुरुषो ! (अप्सरसः) आकाश आदि में व्यापक शक्तियां (वः) तुम्हारे लिये (इत्) ही (जायाः) सुख उत्पन्न करने वाली हैं (यूयम्) तुम [उनके] (पतयः) रक्षक [बनो]। (अप) आनन्द से (धावत) धावो और (अमर्त्याः) हे अमर [नित्य उत्साही] पुरुषो ! (मर्त्यान्) मरते हुये [निरुत्साही] मनुष्यों के हित करने वाले पुरुषों को (मा=मया) लक्ष्मी के साथ (सचध्वम्) सदा मिलो ॥ १२ ॥

---

१३८) इति कमु कान्तौ—आरन् । कमनीयः । **सर्वकेशकः** । काशृ दीप्तौ—वुन् । अकारस्य एकारः । केशी केशा रश्मयस्तैस्तद्वान् भवति काशनाद् वा प्रकाशनाद्वा, निरु० १२ । २५ । सर्वप्रकाशकः । **प्रियः** । प्रीतिकरः । **दृशे** । अ० १ । ६ । ३ । द्रष्टुम् । सर्वदर्शनाय । **भूत्वा** । गन्धर्वः । पृथिव्यादिधारकः परमेश्वरः । **स्त्रियः** । अ० १ । ८ । १ । स्त्यै संघाते ड्रट्, ङीप् । सर्वाः संहतीः । समूहान् । **तम्** । तन आघाते[1]—डः । तानयतीति तः । आहन्तारं चोरम् । **इतः** । अस्मात् स्थानात् । **नाशयामसि** । नाशयामः । **ब्रह्मणा** । परमेश्वरेण सह । **वीर्यावता** । अतिशयसामर्थ्ययुक्तेन ॥

१२—जायाः । **जनेर्यक्** (उ० ४ । १११) इति जन जनने—यक्, टाप् । **ये विभाषा** (पा० ६ । ४ । ४३) इति आत्वम् । सुखस्य जनयित्र्यः । **इत्** । एव । **वः** । युष्मभ्यम् । **अप्सरसः** । म० २ । आकाशादिषु सरणशीलाः शक्तयः । **गन्धर्वाः** । म० २ । हे विद्यायाः पृथिव्याः वा धारकाः पुरुषा । **पतयः** । रक्षकाः । **यूयम्** । **अप** । आनन्देन । यथा—अपचितिः पूजा । **धावत** । शीघ्रं गच्छत । **अमर्त्याः** । **अघ्न्यादयश्च** (उ० ४ । ११२) इति मृङ् प्राणत्यागे—यक् तुक् च,

---

१. धातुओं के अनेक अर्थ होने से तन का आघात अर्थ दिखाया है ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर की अनन्त अद्भुत शक्तियां संसार में उपस्थित हैं, उत्साही पुरुष उनसे उपकार लेकर सदा परस्पर उन्नति करें ॥ १२ ॥

सूक्तम् ३८ ॥

१-७ ॥ अप्सरा देवता ॥ १-४ अनुष्टुप्, ५, ७ जगती, ६ त्रिष्टुप्-छन्दः ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

उद्भिन्दतीं संजयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे ॥ १ ॥

उत्ऽभिन्दतीम् । सम्ऽजयन्तीम् । अप्सराम् । साधुऽदेविनीम् ।
ग्लहे । कृतानि । कृण्वानाम् । अप्सराम् । ताम् । इह । हुवे ॥ १ ॥

भाषार्थः—(उद्भिन्दतीम्) [शत्रुओं को] उखाड़ने वाली, (सञ्जयन्तीम्) यथावत् जीतने वाली, (अप्सराम्) अद्भुत रूप वाली, (साधुदेविनीम्) उचित व्यवहार वाली, (ग्लहे = ग्रहे) [अपने] अनुग्रह में (कृतानि) कर्मों को (कृण्वानाम्) करती हुई (ताम्) उस (अप्सराम्) आकाश, जल, प्राण और प्रजाओं में व्यापक [परमेश्वर] शक्ति को (इह) यहाँ पर (हुवे) मैं बुलाता हूं ॥ १ ॥

निपातनात्साधुः । अमराः । नित्योत्साहिनः । **मर्त्यान् । हसिमृग्रिण्०** (उ० ३ । ८६) इति मृङ् प्राणत्यागे—तन् । **तस्मै हितम्** (पा० ५ । १ । ५) इति मर्त-यत् । मर्तेभ्यो मनुष्येभ्यो हितान् पुरुषान् । **मा** । माङ् माने—क्विप् । **सुपां सुलुक्०** (पा० ७ । १ । ३९) इति विभक्तेर्लुक् । मया लक्ष्म्या । इन्दिरा लोकमाता मा—इत्यमरः १ । १ । २७ । **सचध्वम्** । समवेत ॥

१—उद्भिन्दतीम् । भिदिर् विदारणे—शतृः, ङीप् । उत्कर्षेण शत्रून् विदारयन्तीम् । **संजयन्तीम्** । सम्यग् जयं कुर्वतीम् । **अप्सराम्** । अ० २ । २ । ३ । अद्भुतरूपवतीम् । **साधुदेविनीम्** । **सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये** (पा०३।२।७८) इति साधु + दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारस्तुत्यादिषु - णिनिः । उचितव्यवहार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर की अद्भुत शक्तियां सब व्यवहारों में व्याप्त हैं मनुष्य उनकी खोज लगा कर सदा सुखी रहें ॥ १ ॥

इस सूक्त का मिलान अ० २ सू० २ और पिछले सूक्त से करो ॥

विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे ॥ २ ॥

विऽचिन्वतीम् । आऽकिरन्तीम् । अप्सराम् । साधुऽदेविनीम् । ग्लहे । कृतानि । गृह्णानाम् । अप्सराम् । ताम् । इह । हुवे ॥ २ ॥

भाषार्थः—(विचिन्वतीम्) [पदार्थों को] समेटने वाली, (आकिरन्तीम्) फैलाने वाली, (अप्सराम्) अद्भुत रूप वाली, (साधुदेविनीम्) उचित व्यवहार वाली, ग्लहे) [अपने] अनुग्रह में (कृतानि) कर्मों को (गृह्णानाम्) ग्रहण करती हुई (ताम्) उस (अप्सराम्) आकाश आदि में व्यापक शक्ति को (इह) यहां पर (हुवे) मैं बुलाता हूं ॥ २ ॥

भावार्थः—सब मनुष्य परमेश्वर की अनन्त शक्तियों से अपने कार्य सिद्ध करके आनन्द प्राप्त करें ॥ २ ॥

यायैः परिनृत्यत्याददाना कृतं ग्लहात् ।
सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया ।
सा नः पयस्वत्येतु मा नो जैषुरिदं धनम् ॥ ३ ॥

शीलाम् । **ग्लहे** । **अक्षेषु ग्लहः**[1] (पा० ३।३।७०) इति ग्लहू ग्रहणे—अप् । अनुग्रहे । **कृतानि** । कर्माणि । **कृण्वानाम्** । कुर्वाणाम् । **अप्सराम्** । अ० २ । २ । ३ । अप्सु आकाशजलप्राणप्रजासु सरणशीलां परमेश्वरशक्तिम् । **ताम्** । प्रसिद्धाम् । **इह** । अस्मिन् वर्त्तमानकर्मणि । **हुवे** । आह्वयामि ॥

२—**विचिन्वतीम्** । चिञ् चयने—शतृः । संचीकुर्वतीम् । **आकिरन्तीम्** । कॄ विक्षेपे—शतृः । विक्षिपन्तीम् । **गृह्णानाम्** । ग्रह उपादाने—शानच् । आददानाम् । अन्यत् पूर्ववत् म० १ ॥

---

१. इस सूत्र से अप् प्रत्यय करने पर अर्थविषयक यह आपत्ति आती है कि अक्षदेवन विषय में 'ग्लहः' बनेगा, अतः यहाँ ३ । ३ । ११८ से घ प्रत्यय एवं व्यत्यय से स्वर मानना ठीक होगा । वस्तुतः ग्लह शब्द स्पर्धा-वाचक मानने पर प्रकृत सूत्र से अप् करने में भी हानि नहीं, पर उस पक्ष में सम्पूर्ण सूक्त का देवता 'सुगृहिणी स्त्री' मानना होगा ॥ सम्पा० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या । अयैः । परिऽनृत्यति । आऽददाना । कृतम् । ग्लहात् । सा । नः । कृतानि । सीषती । प्रऽहाम् । आप्नोतु । मायया । सा । नः । पयस्वती । आ । एतु । मा । नः । जैषुः । इदम् । धनम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(या) जो शक्ति (अयैः) मङ्गल अनुष्ठानों के साथ (ग्लहात्) [अपने] अनुग्रह से (कृतम्) कर्म (आददाना) स्वीकार करती हुई (परिनृत्यति) सब ओर चेष्टा करती है । (सा) वही (नः) हमारे (कृतानि) कर्मों को (मायया) बुद्धि के साथ (सीषती) नियमबद्ध चाहती हुई (प्रहाम्) उत्तम गति (आप्नोतु) प्राप्त करे [अर्थात् प्रसन्न हो] (सा) वही (नः) हमारे लिये (पयस्वती) अन्न वाली होकर (एतु) आवे । (नः) हमारे (इदम्) इस (धनम्) धन को [शत्रु लोग] (मा जैषुः) न जीतें ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की शक्तियों को जानकर पुष्कल अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके बलवान् हों ॥ ३ ॥

या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती ।
आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे ॥ ४ ॥

३—या । अयैः । एति सुखमनेन, इण् गतौ—अच् । अयः शुभावहो विधिः—इत्यमरः १ । ४ । २७ । शुभावहैर्विधिभिः । मङ्गलानुष्ठानैः । **परिनृत्यति** । सर्वत्र चेष्टते । **आददाना** । स्वीकुर्वाणा । **कृतम्** । कर्म । **ग्लहात्** । स्वानुग्रहात् । **सा** । **नः** । अस्माकम् । **कृतानि** । कर्माणि । **सीषती** । षिञ् बन्धने—सनि, शतरि छान्दसं रूपम् । सिषीषन्ती । बन्धुं नियन्तुम् इच्छन्ती । **प्रहाम्** । प्र+ओहाङ् गतौ—क्विप्, टाप् । प्रकृष्टां गतिम् । **आप्नोतु** । प्राप्नोतु । **मायया** । प्रज्ञया निघ० ३ । ९ । **नः** । अस्मभ्यम् । **पयस्वती** । पयः=अन्नम्—निघ० २ । ७ । अन्नवती । **एतु** । आगच्छतु । **नः** । अस्माकम् । **मा जैषुः** । जि जये माङि लुङि रूपम् । न जयन्तु । मापहार्षुः शत्रवः । **इदम्** । **धनम्** । वित्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याः । अक्षेषु । प्रऽमोदन्ते । शुचम् । क्रोधम् । च । बिभ्रती । आऽनन्दिनीम् । प्रऽमोदिनीम् । अप्सराम् । ताम् । इह । हुवे ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(याः = या) जो शक्ति (शुचम्) शुद्धि (च) और (क्रोधम्) क्रोध (बिभ्रती) धारण करती हुई 'अक्षेषु' सब व्यवहारों में (प्रमोदन्ते = ०—दते) हर्ष पाती है । (आनन्दिनीम्) आनन्द दायिनी, (प्रमोदिनीम्) हर्ष कारिणी (ताम्) उस (अप्सराम्) आकाश आदि में व्यापक शक्ति को (इह) यहां पर (हुवे) मैं बुलाता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थः—न्यायस्वरूप परमात्मा की महिमा जानकर मनुष्य सब व्यवहारों में आनन्द प्राप्त करें ॥ ४ ॥

पण्डित सेवकलाल कृष्णदास की संहिता में (बिभ्रती) के स्थान पर 'बिभ्रति' पद है ॥

सूर्यस्य रश्मीननु याः संचरन्ति मरीचीर्वा या अनुसंचरन्ति । यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्त्सद्यः सर्वान् लोकान् पर्येति रक्षन् । स न ऐतु होममिमं जुषाणोऽन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान् ॥ ५ ॥

सूर्यस्य । रश्मीन् । अनु । याः । सम्ऽचरन्ति । मरीचीः । वा । याः । अनुऽसंचरन्ति । यासाम् । ऋषभः । दूरतः । वाजिनीऽवान् । सद्यः । सर्वान् । लोकान् । परिऽएति । रक्षन् । सः । नः । आ । एतु । होमम् । इमम् । जुषाणः । अन्तरिक्षेण । सह । वाजिनीऽवान् ॥ ५ ॥

४—याः । एकवचने बहुवचनम् । या । अप्सरा । **अक्षेषु** । अक्षू व्याप्तौ अच्, घञ् वा । यद्वा । **अशेर्देवने** (उ० ३ । ६५) इति अशूङ् व्याप्तौ सङ्घाते च —सः । **प्रमोदन्ते** । प्रमोदते, प्रहृष्यति । **शुचम्** । ईशुचिर्—पूतीभावे—क्विप् । शुद्धिम् । **क्रोधम्** । कोपम् । **च** । **बिभ्रती** । धारयन्ती । **आनन्दिनीम्** । सुखवतीम् । **प्रमोदिनीम्** । प्रहर्षयित्रीम् । अन्यद् यथा म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(याः) जो [शक्तियां] (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मीन् अनु) व्यापक किरणों के साथ साथ (संचरन्ति) चलती रहती हैं, (वा) और (याः) जो (मरीचीः) सब प्रकाशों के (अनुसंचरन्ति) साथ साथ फिरती हैं।

(यासाम् = तासाम्) उनका (ऋषभः) दर्शक परमेश्वर (वाजिनीवान्) अन्नवती क्रिया धारण करता हुआ (दूरतः) दूर से (सद्यः) तुरन्त ही (सर्वान् लोकान्) सब लोकों को (रक्षन्) पालता हुआ (पर्येति) घेरकर आता है।

(अन्तरिक्षेण सह) सबमें दृश्यमान सामर्थ्य के साथ (वाजिनीवान्) बलवती क्रिया वाला (सः) वह परमेश्वर (नः) हमारे (इयम्) इस (होमम्) आत्मदान को (जुषाणः) स्वीकार करता हुआ (ऐतु) आवे ॥५॥

भावार्थः—परमेश्वर अपनी शक्ति से सब दूर और निकट के पदार्थों में व्यापक होकर रक्षा करता है। मनुष्य उसमें पूर्ण श्रद्धा करके पुरुषार्थ पूर्वक अपनी उन्नति करें ॥ ५ ॥

पं० सेवकलाल कृष्णदास की संहिता में 'पर्येति' के स्थान पर 'पर्येति' और पद पाठ में 'परि-एति' पद है ॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रंक्ष वाजिन्।
इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वाङियं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु ॥६॥

५—**सूर्यस्य**। आदित्यस्य। **रश्मीन्**। अ० २। ३२। १। व्यापकान् किरणान्। **अनु**। अनुसृत्य। **याः**। अप्सराः। ईश्वरशक्तयः। **संचरन्ति**। सम्यग् गच्छन्ति। **मरीचीः**। म्रियन्ते तमांसि यया। **मृकणिभ्यामीचिः** (उ० ४। ७०) इति मृङ्—ईचिः। दीप्तीः। प्रकाशान्। **वा**। वेति विचारणार्थे ..अथापि समुच्चयार्थे भवति निरु० १। ४। **अनुसंचरन्ति**। अनुलक्ष्य व्याप्नुवन्ति। **यासाम्**।=तासाम् अप्सराणाम्। **ऋषभः**। अ० ३। ६। ४। द्रष्टा सर्वश्रेष्ठः परमेश्वरः। **दूरतः**। दूरदेशात्। अगम्यस्थानात्। **वाजिनीवान्**। अन्नवती क्रियावान्। **सद्यः**। अ० २। १। ४। तत्क्षणम्। **सर्वान्**। **लोकान्**। दृश्यमानानि भुवनानि। **पर्येति**। परित आगच्छति। **रक्षन्**। पालयन्। **सः**। **नः**। अस्माकम्। **ऐतु**। आगच्छतु। **होमम्**। **अर्त्तिस्तुसुहु०** (उ० १।१४०) इति हु दानादानयोः—मन्। आत्मदानम्। **इमम्**। **जुषाणः**। सेवमानः। **अन्तरिक्षेण**। सर्वमध्यदृश्यमानेन सामर्थ्येन। **सह**। **वाजिनीवान्**। बलवती क्रियायुक्तः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तरिक्षेण । सह । वाजिनीऽवन् । कर्कीम् । वत्साम् । इह । रक्ष । वाजिन् । इमे । ते । स्तोकाः । बहुलाः । आ । इहि । अर्वाङ् । इयम् । ते । कर्की । इह । ते । मनः । अस्तु ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(अन्तरिक्षेण सह) सब में दृश्यमान सामर्थ्य के साथ (वाजिनीवन्) हे अन्नवती वा बलवती क्रिया वाले, (वाजिन्) हे बलवान् परमेश्वर ! (इह) यहां पर (कर्कीम्) अपनी बनाने वाली और (वत्साम्) निवास देने वाली शक्ति की (रक्ष) रक्षा कर । (इमे) यह सब (ते) तेरे (स्तोकाः) अनुग्रह (बहुलाः) बहुत पदार्थ देने वाले हैं । (अर्वाङ्) सन्मुख (एहि) तू आ । (इयम्) यह (ते) तेरी (कर्की) रचना शक्ति है । (इहि) इसमें (ते) तेरा (मनः) मनन (अस्तु) होवे ॥ ६ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने अपनी व्यापकता और कृपा से सब संसार हमारे लिये रचा है । हम उसका मनन करके सदा सुखी रहें ॥ ६ ॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन् । अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बध्नीमः । यथानाम वं ईश्महे स्वाहा ॥ ७ ॥

६—**अन्तरिक्षेण** । सर्वमध्यदृश्यमानेन सामर्थ्येन । **सह** । **वाजिनीवन्** । वाजिनी अन्नवती बलवती वा क्रिया तया तद्वत् । **कर्कीम्** । कृदाधा० (उ० ३ । ४०) इति डुकृञ्-कः, ङीष् । कर्त्रीं शक्तिम् । **वत्साम्** । वृतृवदि वचिवसि० (उ० ३ । ६२) इति वस निवासे-सः । निवासयित्रीम् । **इह** । अस्मिन् शरीरे । **रक्ष** । पालय । **वाजिन्** । हे बलवन् । **इमे** । दृश्यमानाः । **ते** । तव । **स्तोकाः** । ष्टुञ् प्रसादे-घञ् । प्रसादाः । अनुग्रहाः । यद्वा श्च्युतिर् क्षरणे इत्यनेन आद्यन्तविपर्ययो भवति, स्तोकाः—निरु० २ । १ । बिन्दवः । **बहुलाः** । अ० ३।१४।६ । वृद्धिशीलाः । बहुदातारः । **एहि** । आगच्छ । **अर्वाङ्** । अभिमुखः । **इयम्** । **ते** । **कर्की** । कर्त्रीशक्तिः । **इह** । **ते** । **मनः** । मननम् । विज्ञानम् । **अस्तु** । भवतु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तरिक्षेण । सह । वाजिनीऽवन् । कर्कीम् । वत्साम् । इह । रक्ष । वाजिन् । अयम् । घासः । अयम् । व्रजः । इह । वत्साम् । नि । बध्नीमः । यथाऽनाम । वः । ईश्महे । स्वाहा ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(अन्तरिक्षेण सह) सबमें दृश्यमान सामर्थ्य के साथ (वाजिनीवन्) हे अन्नवती वा बलवती क्रिया वाले, (वाजिन्) हे बलवान् परमेश्वर (इह) यहाँ पर (कर्कीम्) अपनी बनाने वाली और (वत्साम्) निवास देने वाली शक्ति की (रक्ष) रक्षा कर। (अयम्) यह (घासः) भोजन है, (अयम्) यह (व्रजः) आने जाने का स्थान है, (इह) यहाँ पर [हृदय में] (वत्साम्) तेरी निवास देने वाली शक्ति को (नि) निरन्तर (बध्नीमः) हम बांधते हैं।

(वः) तुम्हारा (यथानाम) जैसा नाम है, [वैसे ही] (ईश्महे) हम ऐश्वर्यवान् होवें। (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥ ७ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने अपने अनन्त सामर्थ्य से अन्न, शरीर, घर आदि पदार्थ हमें दिये हैं, हम उनका यथावत् उपयोग करके सदा ऐश्वर्यवान् होवें ॥ ७ ॥

सूक्तम् ३९ ॥

१-१० ॥ १, २, ९, १० अग्निः, ३, ४ वायुः; ५, ६ आदित्यः; ७, ८ चन्द्रो देवता ॥ १, ३, ५, ७ त्रिपदजगती; २, ४, ६, ८ संस्तारपङ्क्तिः, ९, १० त्रिष्टुप्छन्दः ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश।

७—अन्तरिक्षेणेत्यादिः। पूर्वोऽर्धर्चः पूर्ववद् योज्यः। **अयम्**। उपस्थितः। **घासः**। **घञपोश्च** (पा० २। ४। ३८) इति अदो घस्लृ आदेशो घञि। अदनीयः पदार्थः। **अयम्**। **व्रजः**। **गोचरसंचरवहव्रज०** (पा० ३। ३। ११९) इति व्रज गतौ—घः। गमनप्रदेशः। **इह**। अस्मिन् विषये। **वत्साम्**। म० ६। निवासयित्रीं शक्तिम्। **नि**। नितराम्। **बध्नीमः**। हृदये धारयामः। **यथानाम**। यादृशगुणविशिष्टं नामास्ति तथैव। **वः**। आदरे बहुवचनम्। तव। **ईश्महे**। ऐश्वर्यवन्तो भवामः। **स्वाहा**। अ० २। १६। १। सुवाणी। आशीर्वादः। सुदानम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आध्नोत् । यथा पृथिव्यामग्नये समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥ १ ॥

पृथिव्याम् । अग्नये । सम् । अनमन् । सः । आध्नोत् । यथा । पृथिव्याम् । अग्नये । समऽअनमन् । एव । मह्यम् । समऽनमः । सम् । नमन्तु ॥ १ ॥

भाषार्थः—(पृथिव्याम्) पृथिवी पर (अग्नये) भौतिक अग्नि के लिये वे [ऋषि लोग] (सम्) यथाविधि (अनमन्) नमे हैं, (सः) उसने [उन्हें] आध्नोत्) बढ़ाया है। (यथा) जैसे (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (अग्नये) अग्नि के लिये वे (सम् अनमन्) यथावत् नमे हैं, (एव) वैसे ही (मह्यम्) मेरे लिये (संनमः) सब सम्पत्तियां (सम्) यथावत् (नमन्तु) नमें ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे पूर्व ऋषियों ने शिल्प आदि में भौतिक अग्नि के प्रयोग से यज्ञ सिद्ध करके अनेक सम्पत्तियां प्राप्त की हैं, वैसे ही हम भी प्राप्त करें ॥ १ ॥

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः ।
सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ २ ॥

पृथिवी । धेनुः । तस्याः । अग्निः । वत्सः । सा । मे । अग्निना । वत्सेन । इषम् । ऊर्जम् । कामम् । दुहाम् । आयुः । प्रथमम् । प्रऽजाम् । पोषम् । रयिम् । स्वाहा ॥ २ ॥

१—**पृथिव्याम्** । भूलोके । **अग्नये** । भौतिकाग्नये । **सम्** । सम्यक् । यथाविधि । **अनमन्** । णम प्रह्वत्वे शब्दे च—लङ् । नता अभवन् ते ऋषयः । **सः** । अग्निः । **आध्नोत्** । ऋधु वृद्धौ—लङ्, अन्तर्गतण्यर्थः । अवर्धयत् । **यथा** । येन प्रकारेण । **एव** । एवम् । **मह्यम्** । पुरुषार्थिने पुरुषाय । **संनमः** । **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** (पा० ३ । २ । ७५) इति सम्+णम—विच् । सर्वाःसन्नतयः सम्पत्तयः । **नमन्तु** । प्रह्वीभवन्तु । अन्यद् गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(पृथिवी) पृथिवी (धेनुः) दुधैल गौ के समान है, (तस्याः) उस [धेनु] के (वत्सः) बच्चा सदृश (अग्निः) है। (सा) वह [धेनु] (मे) मुझे (वत्सेन) बच्चे रूप (अग्निना) अग्नि के साथ (इषम्) अन्न, (ऊर्जम्) पराक्रम, (कामम्) उत्तम मनोरथ, (प्रथमम् आयुः) प्रधान जीवन, (प्रजाम्) प्रजा (पोषम्) पोषण और (रयिम्) धन (दुहाम्) परिपूर्ण करे। (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥ २ ॥

भावार्थः—जिस प्रकार बछड़े द्वारा गौ से दूध लेते हैं, इसी प्रकार अग्नि विद्या द्वारा पृथिवी के पदार्थों से अनेक कला कौशल सिद्ध करके मनुष्य समृद्ध होवें ॥ २ ॥

अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आध्नोत्। यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥ ३ ॥

अन्तरिक्षे । वायवे । सम् । अनमन् । सः । आध्नोत् । यथा । अन्तरिक्षे । वायवे । सम्ऽअनमन् । एव । मह्यम् । सम्ऽनमः । सम् । नमन्तु ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अन्तरिक्षे) मध्यलोक में (वायवे) वायु को वे [ऋषि लोग] (सम्) यथाविधि (अनमन्) नमे हैं, (सः) उसने [उन्हें] (आध्नोत्) बढ़ाया है। (यथा) जैसे (अन्तरिक्षे) मध्यलोक में (वायवे) वायु को (सम्

२—**पृथिवी**। भूमिः। **धेनुः**। अ०३। १०। १। दोग्ध्री गौर्यथा। **तस्याः**। धेन्वाः। **अग्निः**। भौतिकाग्निः। **वत्सः**। अ०३। १२। ३। गोशिशुर्यथा। **सा**। धेनुः। **मे**। मह्यम्। **अग्निना**। **वत्सेन**। शिशुना च। **इषम्**। अ० ३। १०। ७। अन्नम्। **ऊर्जम्**। अ० ३। १०। ७। पराक्रमम्। **कामम्**। सुमनोरथम्। **दुहाम्**। तलोपः। दुग्धाम्। प्रपूरयतु। **आयुः**। जीवनम्। **प्रथमम्**। प्रख्यातं प्रधानम्। **प्रजाम्**। पुत्रपौत्रभृत्यादिरूपां संततिम्। **पोषम्**। पोषणम्। **रयिम्**। धनम्। **स्वाहा**। आशीर्वादोऽस्तु ॥

३—**अन्तरिक्षे**। मध्यलोके। **वायवे**। पवनाय। अन्यत् पूर्ववत्। म० १ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनमन्) वे यथावत् नमे हैं, (एव) वैसे ही (मह्यम्) मुझको (सन्नमः) सब सम्पत्तियां (सम्) यथावत् (नमन्तु) नमें ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्वज ऋषियों के समान सबमें वर्तमान वायु से उपकार लेकर आनन्द भोगें ॥ ३ ॥

अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः ।
सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ ४ ॥

अन्तरिक्षम् । धेनुः । तस्याः । वायुः । वत्सः । सा । मे । वायुना । वत्सेन । इषम् । ऊर्जम् । कामम् । दुहाम् । आयुः । प्रथमम् । प्रजाम् । पोषम् । रयिम् । स्वाहा ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अन्तरिक्षम्) मध्यलोक (धेनुः) दुधैल गौ के समान है। (तस्याः) उस [धेनु] का (वत्सः) बच्चा रूप (वायुः) वायु है। (सा) वह [धेनु] (मे) मुझे (वत्सेन) बच्चा रूप (वायुना) वायु के साथ (इषम्) अन्न, (ऊर्जम्) पराक्रम, (कामम्) उत्तम मनोरथ, (प्रथमम् आयुः) प्रधान जीवन, (प्रजाम्) प्रजा, (पोषम्) पोषण और (रयिम्) धन (दुहाम्) परिपूर्ण करे। (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥ ४ ॥

भावार्थः—वायु से अनेक प्रकार उपकार लेकर मनुष्य सुखी हों ॥ ४ ॥

दिव्यादित्याय समनमन्त्स आध्नोत् । यथा दिव्यादित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥ ५ ॥

दिवि । आदित्याय । सम् । अनमन् । सः । आध्नोत् । यथा । दिवि । आदित्याय । सम्ऽअनमन् । एव । मह्यम् । सम्ऽनमः । सम् । नमन्तु ॥५॥

४—सर्वं पूर्ववत् म० २, ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(दिवि) आकाश में वर्तमान (आदित्याय) सूर्य को वे [ऋषि लोग] (सम्) यथाविधि (अनमन्) नमे हैं, (सः) उसने [उन्हें] (आध्नोत्) बढ़ाया है। (यथा) जैसे (दिवि) आकाश में वर्तमान (आदित्याय) सूर्य को (सम्–अनमन्) वे यथावत् नमे हैं, (एव) वैसे ही (मह्यम्) मुझको (सन्नमः) सब सम्पत्तियाँ (सम्) यथावत् (नमन्तु) नमें ॥ ५ ॥

भावार्थः—पहिले ऋषि महात्माओं के समान सूर्य के प्रकाश आदि से उपकार लेकर आनन्द प्राप्त करें ॥ ५ ॥

द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः ।
सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ ६ ॥

द्यौः । धेनुः । तस्याः । आदित्यः । वत्सः । सा । मे । आदित्येन । वत्सेन । इषम् । ऊर्जम् । कामम् । दुहाम् । आयुः । प्रथमम् । प्रजाम् । पोषम् । रयिम् । स्वाहा ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(द्यौः) सूर्यलोक (धेनुः) दुधैल गौ के समान है, (तस्याः) उस [धेनु] का (वत्सः) बच्चा रूप (आदित्यः) सूर्य है। (सा) वह [धेनु] (मे) मुझे (वत्सेन) बच्चा रूप (आदित्येन) सूर्य के साथ (इषम्) अन्न (ऊर्जम्) पराक्रम, (कामम्) उत्तम मनोरथ, (प्रथमम् आयुः) प्रधान जीवन, (प्रजाम्) प्रजा, (पोषम्) पोषण, और (रयिम्) धन (दुहाम्) परिपूर्ण करे, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्यलोक और सूर्य का पृथिवी से संबन्ध जानकर अनेक लाभ उठाकर सुखी होवें ॥ ६ ॥

दिवु चन्द्राय समनमन्त्स आध्नोत् । यथा दिवु चन्द्रायं समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥ ७ ॥

५—**दिवि** । आकाशे वर्तमानाय । **आदित्याय** । अ० १ । ९ । १ । प्रकाशमानाय सूर्याय । अन्यत् पूर्ववत्–म० १ ॥

६—सर्वं पूर्ववत्–म० २, ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिक्षु । चन्द्रायं । सम् । अनमन् । सः । आध्नोत् । यथा । दिक्षु । चन्द्रायं । सम्ऽअनमन् । एव । मह्यम् । सम्ऽनमः । सम् । नमन्तु ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(दिक्षु) सब दिशाओं में (चन्द्राय) चन्द्रमा को वे [ऋषि लोग] (सम्) यथाविधि (अनमन्) नमे हैं। (सः) उसने [उन्हें] (आध्नोत्) बढ़ाया है। (यथा) जैसे (दिक्षु) सब दिशाओं में (चन्द्राय) चन्द्रमा को (सम्-अनमन्) वे यथावत् नमे हैं, (एव) वैसे ही (मह्यम्) मुझको (सन्नमः) सब सम्पत्तियां (सम्) यथावत् (नमन्तु) नमें ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य चन्द्रमा के पुष्टिकारक गुणों से उपकार लेकर आनन्दित हों ॥ ७ ॥

दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः ।
ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ ८ ॥

दिशः । धेनवः । तासाम् । चन्द्रः । वत्सः । ताः । मे । चन्द्रेण । वत्सेन । इषम् । ऊर्जम् । कामम् । दुहाम् । आयुः । प्रथमम् । प्रऽजाम् । पोषम् । रयिम् । स्वाहा ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(दिशः) सब दिशायें (धेनवः) दुधैल गौओं के समान हैं। (तासाम्) उन [गौ रूपों] का (वत्सः) बच्चा रूप (चन्द्रः) चन्द्रमा है। (ताः) वे [गौ रूप] (मे) मुझे (वत्सेन) बच्चा रूप (चन्द्रेण) चन्द्रमा के साथ (इषम्) अन्न, (ऊर्जम्) पराक्रम, (कामम्) उत्तम मनोरथ (प्रथमम् आयुः) प्रधान जीवन, (प्रजाम्) प्रजा, (पोषम्) पोषण और (रयिम्) धन (दुहाम् = दुहताम्) परिपूर्ण करें। (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥ ८ ॥

७—**दिक्षु** । प्राच्यादिषु । **चन्द्राय** । आह्लादकाय चन्द्रमसे । अन्यत् पूर्ववत् । म० १ ॥

८—**दुहाम्** । दुहताम् प्रपूरयन्तु । अन्यत् पूर्ववत् । म० २, ७ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य चन्द्रमा के गुणों का पृथिवी के साथ सम्बन्ध जान कर अन्न आदि पदार्थों को पुष्ट करके आनन्द भोगें ॥ ८ ॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ ।
नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम् ॥ ९ ॥

अग्नौ । अग्निः । चरति । प्रऽविष्टः । ऋषीणाम् । पुत्रः । अभिशस्तिऽपाः । ऊँ इति । नमःऽकारेण । नमसा । ते । जुहोमि । मा । देवानाम् । मिथुया । कर्म । भागम् ॥ ९ ॥

पदार्थः—(ऋषीणाम्) धर्म के साक्षात् करने वाले मुनियों वा विषय देखने वाली इन्द्रियों का (पुत्रः) शुद्ध करने वाला, (अभिशस्तिपाः) हिंसा के भय से बचाने वाला (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (उ) निश्चय करके (अग्नौ) सूर्य, अग्नि आदि तेज में (प्रविष्टः) प्रवेश किये हुये (चरति) चलता है । (ते)] उस] तुझको (नमस्कारेण) नमस्कार और (नमसा) आदर के साथ (जुहोमि) मैं आत्मदान करता हूँ । (देवानाम्) महात्माओं के (भागम्) ऐश्वर्य वा सेवनीय कर्म को (मिथुया = मियुना) दुष्टता से (मा कर्म) हम नष्ट न करें ॥ ९ ॥

भावार्थः—सब मनुष्य परब्रह्म जगदीश्वर को पूर्ण भक्ति से सर्वत्र व्यापक जानकर महात्माओं के समान शुभ कर्म करके सदा ऐश्वर्यवान् होवें ॥ ९ ॥

९—**अग्नौ** । सूर्यादितेजसि । **अग्निः** । सर्वव्यापकः परमेश्वरः । **चरति** । व्याप्नोति । **प्रविष्टः** । अन्तर्गतः । **ऋषीणाम्** । अ० २ । ६ । १ । साक्षात्कृतधर्माणां मुनीनाम्, विषयद्रष्टृणामिन्द्रियाणां वा । **पुत्रः** । अ० १ । ११ । ५ । पुनातीति पुत्रः । पविता शोधकः । **अभिशस्तिपाः** । अ० २ । १३ । ३ । हिंसाभयाद्ररक्षकः । **उ** । निश्चयेन । **नमस्कारेण** । सत्कारेण । **नमसा** । नमनेन, आदरेण । **ते** । तथाविधाय तुभ्यम् । **जुहोमि** । आत्मदानं करोमि । **देवानाम्** । महात्मनाम् । **मिथुया** । अ० ४ । २९ । ७ । मियुना हिंसनेन दुष्कर्मणा । **मा कर्म** । कृञ् हिंसायाम्–माङि लुङि । **मन्त्रे घसह्वर०** (पा० २ । ४ । ८०) इति च्लेर्लुक् । मा काष्र्म मा हिंसिष्म । **भागम्** । भग–अण् । ऐश्वर्याणां समूहम् । यद्वा, भज–घञ् । भजनीयं कर्म ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् ॥ १० ॥

हृदा । पूतम् । मनसा । जातऽवेदः । विश्वानि । देव । वयुनानि । विद्वान् । सप्त । आस्यानि । तव । जातऽवेदः । तेभ्यः । जुहोमि । सः । जुषस्व । हव्यम् ॥ १० ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् ! (देव) हे प्रकाशवान् परमेश्वर ! तू (विश्वानि) सब (वयुनानि) ज्ञानों को (विद्वान्) जानने वाला है । (जातवेदः) हे बड़े धन वाले ! [मेरी] (सप्त) सात (आस्यानि) [मस्तक की] गोलकें (तव) तेरी [तेरे तत्पर हों] । (तेभ्यः) उनके हित के लिये (हृदा) हृदय और (मनसा) मन से (पूतम्) शोधे हुये कर्म को (जुहोमि) समर्पण करता हूं । (सः) सो तू [मेरे] (हव्यम्) आवाहन को (जुषस्व) स्वीकार कर ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्य अपनी सब इन्द्रियों को उस सर्वशक्तिमान् की आज्ञा में लगा कर सदा आनन्द भोगें । मस्तक की सात इन्द्रियों के जीतने में ही सब प्राणी आनन्द पाते हैं जैसा "**कः सप्तखानि वि ततर्द शीर्षणि .....**" अ० १० । २ । ६ में वर्णन है । "सप्त आस्यानि" पद की व्याख्या में "सप्त ऋषयः" पद अ० ४ । ११ । ९ देखो ॥ १० ॥

इस मन्त्र का दूसरा पाद 'विश्वानि देव विद्वान्' य० ४० । १६ में है ॥

१०—**हृदा** । हृदयेन । **पूतम्** । शोधितं कर्म । **मनसा** । अन्तःकरणेन । **जातवेदः** । अ० १ । ७ । २ । हे जातप्रज्ञान परमेश्वर ! । **विश्वानि** । सर्वाणि । **देव** । हे प्रकाशमान । **वयुनानि** । अ० २ । २८ । २ । ज्ञानानि । **विद्वान्** । जानन् सन् वर्त्तसे । **सप्त** । सप्तसंख्याकानि । **आस्यानि** । **ऋहलोर्ण्यत्** (पा० ३ । १ । १२४) इति असु क्षेपणे, यद्वा आस उपवेशने–ण्यत् । अस्यन्ते क्षिप्यन्ते । यद्वा, आसते तिष्ठन्ति विषया यत्र तानि । शीर्षण्यानि खानि इन्द्रियाणि मम प्राणिनः । **तव** । तव परमेश्वरस्य, तत्पराणि भवन्तु–इत्यर्थः । **जातवेदः** । हे जातधन । **तेभ्यः** । तादर्थ्ये चतुर्थी । तेषामास्यानां हिताय । **जुहोमि** । समर्पयामि । **सः** । स त्वम् । **जुषस्व** । सेवस्व । स्वीकुरु । **हव्यम्** । ह्वेञ्–यत् । आह्वानम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ४० ॥

१-८ ॥ जातवेदा देवता ॥ १-७ त्रिष्टुप्, ८ । ये दिशामित्यस्य जगती छन्दः । ब्रह्मेत्यस्य त्रिष्टुप् छन्दः ।

शत्रुनाशनायोपदेशः—शत्रु के नाश करने का उपदेश ॥

ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदुः प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
अग्निमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेणा हन्मि॥१॥

ये । पुरस्तात् । जुह्वति । जातऽवेदुः । प्राच्याः । दिशः । अभिऽदासन्ति । अस्मान् । अग्निम् । ऋत्वा । ते । पराञ्चः । व्यथन्ताम् । प्रत्यक् । एनान् । प्रतिऽसरेण । हन्मि ॥ १ ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (पुरस्तात्) सन्मुख होकर (प्राच्याः) पूर्व वा सन्मुख (दिशः) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं। (ते) वे (अग्निम्) [तुझ] सर्वव्यापक को (ऋत्वा) पाकर (पराञ्चः) पीठ देते हुए (व्यथन्ताम्) व्यथा में पड़ें। (एनान्) इनको (प्रतिसरेण) [तुझ] अग्रगामी के साथ (प्रत्यक्) उलटा (हन्मि) मैं मारता हूं ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर में भक्ति करके पुरुषार्थ पूर्वक अपने आत्मिक और शारीरिक शत्रुओं का नाश करें। ऐसा ही भाव अन्य मन्त्रों का समझें ॥१॥

इस सूक्त का मिलान अथर्व ३ । २६ तथा २७ से करो ॥

१—**ये** । शत्रवः । **पुरस्तात्** । अग्रतः । **जुह्वति** । हु दानादनयोः । अदन्ति । नाशयन्ति । **जातवेदः** । नाशयन्ति । **जातवेदः** । अ० १ । ७ । २ । हे जातप्रज्ञान परमेश्वर । **प्राच्याः** । अ० ३ । २६ । १ । स्वस्थानात् पूर्वायाः स्वाभिमुखीभूतायाः । **दिशः** । दिशायाः सकाशात् । **अभिदासन्ति** । अभितो घ्नन्ति । **अस्मान्** । धार्मिकान् । **अग्निम्** । सर्वव्यापिनं त्वां जातवेदसम् । **ऋत्वा** । गत्वा, प्राप्य । **ते** । शत्रवः । **पराञ्चः** । पराङ्मुखाः । कुण्ठितशक्तयः सन्तः । **व्यथन्ताम्** । व्यथ भयसंचलनयोः । व्यथिताः संतप्ता भवन्तु । **प्रत्यक्** । प्रतिमुखम् । **एनान्** । दुष्टान् शत्रून् । **प्रतिसरेण** । अ० २ । ११ । २ । अग्रगामिना त्वया सह । **हन्मि** । नाशयामि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्। यममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ २ ॥

ये। दक्षिणतः। जुह्वति। जातऽवेदः। दक्षिणायाः। दिशः। अभिऽदासन्ति। अस्मान्। यमम्। ऋत्वा। ते। पराञ्चः। व्यथन्ताम्। प्रत्यक्। एनान्। प्रतिऽसरेण। हन्मि ॥ २ ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर! (ये) जो लोग (दक्षिणतः) दाहिनी ओर में (दक्षिणायाः) दक्षिण वा दाहिनी (दिशः) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं। (ते) वे (यमम्) [तुझ] धर्मराज न्यायकारी को (ऋत्वा) पाकर ..... म० १ ॥ २ ॥

ये पश्चाज्जुह्वति जातवेदः प्रतीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्। वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥३॥

ये। पश्चात्। जुह्वति। जातऽवेदः। प्रतीच्याः। दिशः। अभिऽदासन्ति। अस्मान्। वरुणम्। ऋत्वा। ते। पराञ्चः। व्यथन्ताम्। प्रत्यक्। एनान्। प्रतिऽसरेण। हन्मि ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर! (ये) जो लोग (पश्चात्) पीछे की ओर में (प्रतीच्याः) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशः)

२—दक्षिणतः। अ० ४। ३२। ७। दक्षिणहस्तदिशि। **दक्षिणायाः।** अ० ३। २६। २। दक्षिणस्याः। दक्षिणहस्तवर्त्तमानायाः। **यमम्।** यमयति नियमयति जीवान् स यमः, यम—अच्। धर्मराजं न्यायिनं जातवेदसम्। अन्यद् यथा म० १ ॥

३—पश्चात्। पश्चात् (पा० ५। ३। ३२) इति अपर-आतिः, पश्चभावः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं। (ते) वे वरुणम् [तुझ] सर्वश्रेष्ठ को (ऋत्वा) पाकर म०···१ ॥३॥

य उत्तरतो जुह्वति जातवेदु उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्। सोममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥४॥

ये। उत्तरतः। जुह्वति। जातऽवेदः। उदीच्याः। दिशः। अभिऽदासन्ति। अस्मान्। सोमम्। ऋत्वा। ते। पराञ्चः। व्यथन्ताम्। प्रत्यक्। एनान्। प्रतिऽसरेण। हन्मि ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर! (ये) जो लोग (उत्तरतः) बायीं ओर में (उदीच्याः) उत्तर वा बायीं (दिशः) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं। (ते) वे (सोमम्) [तुझ] ऐश्वर्य वाले को (ऋत्वा) पाकर···म० १ ॥ ४ ॥

ये ३ धस्ताज्जुह्वति जातवेदो ध्रुवायां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्। भूमिमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ ५ ॥

ये। अधस्तात्। जुह्वति। जातऽवेदः। ध्रुवायाः। दिशः। अभिऽदासन्ति। अस्मान्। भूमिम्। ऋत्वा। ते। पराञ्चः। व्यथन्ताम्। प्रत्यक्। एनान्। प्रतिऽसरेण। हन्मि ॥ ५ ॥

पश्चाद् देशे। **प्रतीच्याः**। अ०३। २६। ३। पश्चिमायाः। पश्चाद्भागे स्थितायाः। **वरुणम्**। वरणीयं श्रेष्ठं त्वाम् ॥

४—**उत्तरतः**। उत्तर-अतसुच्। वामहस्तदिशि। **उदीच्याः**। अ० ३। २६। ४। उत्तरस्याः। वामभागवर्त्तमानायाः। **सोमम्**। ऐश्वर्यवन्तं त्वाम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (अधस्तात्) नीचे की ओर में (ध्रुवायाः) स्थिर (दिशः) दिशा से (अस्मान्) हम को (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं । (ते) वे (भूमिम्) [तुझ] सर्वाधार को (ऋत्वा) पाकर .....म० १ ॥ ५ ॥

ये३न्तरिक्षाज्जुह्वति जातवेदो व्यध्वायां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् । वायुमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ ६ ॥

ये । अन्तरिक्षात् । जुह्वति । जातऽवेदः । विऽअध्वायाः । दिशः । अभिऽदासन्ति । अस्मान् । वायुम् । ऋत्वा । ते । पराञ्चः । व्यथन्ताम् । प्रत्यक् । एनान् । प्रतिऽसरेण । हन्मि ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष वा आकाश से (व्यध्वायाः) विविध मार्ग वाली (दिशः) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं । (ते) वे (वायुम्) [तुझ] बलवानों में महाबलवान् को (ऋत्वा) पाकर.....म० १ ॥ ६ ॥

य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वायां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् । सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ ७ ॥

५—अधस्तात् । दिक्शब्देभ्यः० (पा०५।३।२७) इति अधर-अस्तातिः । अस्ताति च (पा० ५ । ३ । ४०) इति अध् इत्यादेशः । अधोभागे । ध्रुवायाः । अ० ३ । २६ । ५ । स्थिरायाः । भूमिम् । अ० १।११।२ । भवन्ति भूतानि यस्यां सा भूमिः, ईश्वरनाम—सत्यार्थप्रकाशे, समुल्लास १ । सर्वाधारं, त्वाम् ॥

६—अन्तरिक्षात् । अ० १।३०।३१ । आकाशात् । व्यध्वायाः । उपसर्गादध्वनः (पा० ५ । ४ । ८५) इति वि+अध्वन्—अच् समासान्तः । विविधमार्गायाः । वायुम् । अ० २ । २० । १ । बलीनां बलिष्ठं त्वामीश्वरम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये । उपरिष्टात् । जुह्वति । जातवेदः । ऊर्ध्वायाः । दिशः । अभिदासन्ति । अस्मान् । सूर्यम् । ऋत्वा । ते । पराञ्चः । व्यथन्ताम् । प्रत्यक् । एनान् । प्रतिसरेण । हन्मि ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (उपरिष्टात्) ऊँचे स्थान में (ऊर्ध्वायाः) ऊपर वाली (दिशः) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं। (ते) वे (सूर्यम्) [तुझ] सर्वव्यापक वा सर्वप्रेरक को (ऋत्वा) पाकर" म० १ ॥ ७ ॥

ये दिशामन्तर्देशेभ्यो जुह्वति जातवेदः सर्वाभ्यो दिग्भ्योऽभिदासन्त्यस्मान् । ब्रह्मत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ ८ ॥

ये । दिशाम् । अन्तःऽदेशेभ्यः । जुह्वति । जातऽवेदः । सर्वाभ्यः । दिक्ऽभ्यः । अभिऽदासन्ति । अस्मान् । ब्रह्म । ऋत्वा । ते । पराञ्चः । व्यथन्ताम् । प्रत्यक् । एनान् । प्रतिऽसरेण । हन्मि ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (दिशाम्) दिशाओं के (अन्तर्देशेभ्यः) मध्य देशों से (सर्वाभ्यः) सब (दिग्भ्यः) दिशाओं से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं। (ते) वे (ब्रह्म) [तुझ] ब्रह्म को (ऋत्वा) पाकर (पराञ्चः) पीठ देते हुये (व्यथन्ताम्) व्यथा में पड़ें। (एनान्) इनको (प्रतिसरेण) [तुझ] अग्रगामी के साथ (प्रत्यक्) उलटा (हन्मि) मैं मारता हूँ ॥ ७ ॥

७—**उपरिष्टात् । उपर्युपरिष्टात्** (पा० ५ । ३ । ३१) इति ऊर्ध्व–रिष्टातिल्, ऊर्ध्वस्य उपभावः । ऊर्ध्वभागे । **ऊर्ध्वायाः** । अ० ३।२६।६ । उपरि वर्तमानायाः । **सूर्यम्** । अ० १ । ३ । ५ । सर्वव्यापकं सर्वप्रेरकं वा त्वां परमात्मानम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य उस सर्वनियन्ता परब्रह्म का आश्रय लेकर विचार पूर्वक अपने सब विघ्नों का नाश करके आनन्द भोगें ॥ ८ ॥

इति अष्टमो ऽनुवाकः ॥

इति चतुर्थं काण्डम् ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिम श्री **सयाजीरावगायकवाड**ा-
धिष्ठितबड़ोदेपुरीगतश्रावणमासपरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु
लब्धदक्षिणेन श्री पण्डित **क्षेमकरणत्रिवेदिना**
कृते अथर्ववेदभाष्ये चतुर्थंकाण्डं समाप्तम् ॥

इदं काण्डं प्रयागनगरे फाल्गुनमासे शिवचतुर्दश्याम् [कृष्णचतुर्दश्याम्]
१९७१ तमे विक्रमीये संवत्सरे सुसमाप्तिमगात् ॥

मुद्रितम्—आषाढकृष्णैकादश्यां संवत् १९७२ ता० ७ जुलाई १९१५ ॥

८—**दिशाम्** । दिशानाम् । **अन्तर्देशेभ्यः** । अन्तरालेभ्यः । **सर्वाभ्यः** । सकलाभ्यः । **दिग्भ्यः** । दिशाभ्यः । **ब्रह्म** । अ० १ । ८ । ४ । सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म । तं त्वां परमेश्वरम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

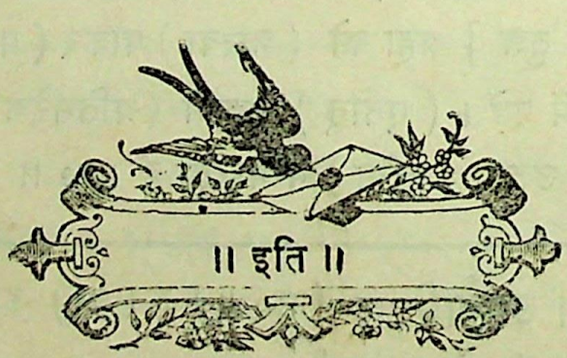

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ काण्ड

की

संक्षेप सूची

अम० को०	अमरकोष
ऋग्० भा० भू०	ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका
कण्ड्वा० ग०	कण्ड्वादि गण
चुरा०	चुरादि गण
जैमिनि० न्या०	जैमिनि न्यायमालाधिकरण
तुदा०	तुदादि गण
भट्ट० भा०	भट्टभास्कर भाष्य
भ्वा०	भ्वादि गण
यजु० प्रा०	यजुः प्रातिशाख्य
वैशे० द०	वैशेषिक दर्शन
सं० धा० को०	संस्कृत धातु कोष श्री युधिष्ठिर मीमांसक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

100370

वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना
सब आर्यों का परम
धर्म है ॥

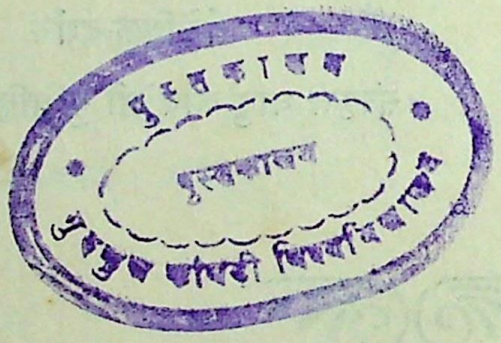

पं० आचार्य [illegible] राष्ट्रपति प्रदत्त संग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY		
	Signature	Date
Acces on		
Class on		
Cat on		
Tag etc		
Filing		
E A R.		
Any other		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar